सम्पादक

पं० रामनारायण मिश्र, बी० ए०

प्रकाशक

'भूगोल'-कार्यालय, इलाहाबाद

संस्करण] सितम्बर—१९५५ [मूल्य ७)

प्राचीन भारत में कृषि-कार्य

...य च मनुष्या उपजीवन्ति'—
... उस पर निर्भर रहकर ही मनुष्य
...र्व वेद ६।१३।१२। जीवन धारण
... का एक प्रधानतम कर्तव्य
... प्राचीन ऋषियों ने की।
उन्होंने केवल स्वर्ग की कामना नहीं
... की प्रार्थना भी की: 'कृषिरस्तु मे
... वीरुधिदश्च मे यज्ञेन कल्प-
१८।६। अन्यान्य कर्तव्यों में कृषि
राजा का एक कर्तव्य रहे कृत हुआ
न कृषितनोतु'—अथर्व ३।१२।४।
...ज के समान ही किसान फाल, हल,
से खेत जोतते थे और वृष्टि की भी
... थी। इसका प्रमाण ऋषि के एक
...मिला है:—
... कृषन्तु भूमि शुनं कीनाशा अभियं...

... मधुना घृतेभिः शुनासीरा शुनम-
...ऋग्वेद ४।५७।८ 'फाल ठीक से भूमि-
... किसान बैल के साथ आनन्दपूर्वक चल
... बरसे, हल तथा फाल (शुनासीर)
...रें।'

...र्व अथर्ववेद में भी कुछ परिवर्तित
... प्रार्थना-मन्त्र का उल्लेख है:—

... सुफाला वितुदन्तु भूमि
... कीनाशा अभियन्तु वाहैः॥
...सीरा हविषा तोशमाना
... ओषधीः कर्तनास्मै॥
—यजु १२।६९।

शुनं नः फाला वितुदन्तु भूमि
शुनं कीनाशा अभियन्तु वाहान्॥
—अथर्व ३।१७।५।

अथर्ववेद के अन्य एक मन्त्र में बैल, किसान के अतिरिक्त बैल चलाने के लिए चाबुक तथा लांगल का भी उल्लेख है.

शुनं वाहाः शुनं नरः शुनं कृषतु लाङ्गलम्।
शुनं वरत्रा बध्यन्तां शुनमष्ट्रामुदिङ्गय॥—
३।१७।६।

'बैल, किसान तथा लांगल आनन्दपूर्वक भूमिकर्षण कर सकें, इसलिए सानन्द हल चलावें और चाबुक उठावें।'

कृषि ही हमें स्वावलम्बी बना सकती है। ऋग्वेद के ऋषि ने कहा है—यह बात सही है कि फाल भूमि-कर्षण कर शस्य उत्पन्न करता है; किन्तु इसलिए पुरुषार्थ अवलम्बन करना पड़ेगा, अपने हाथ से हल को चलाना पड़ेगा। तब अन्न मिलेगा। कार्य व्यस्त व्यक्ति का कर्म ही उसे जीवन-संग्राम में विजयी बनाता है। स्वावलम्बी बनो, अपने पैर पर खड़ा होना सीखो:—

कृषन्नित् फाल आशितं कृणोति यन्नध्वानमप वृङ्क्ते चरित्रैः॥ऋ० १०।११७।७

स्वावलम्बी बनने का प्रधान साधन क्या है?—

अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित् कृषस्व।
वित्ते रमस्व बहु मन्यमानः॥
तत्र गावः कितव तत्र जाया।
तन्मे विचष्टे सवितायमर्यः॥
—ऋ० १०।३४।१३

—'हे कितव, द्यूत अर्थात् जुआ (ताश, पाशा,

आज के समान ही प्राचीन काल में धान पकने
पश्चात् हँसिया से पौधों को काटकर उसे किसी
पर एकत्रित करते थे। हँसिए का वैदिक नाम
', एवं 'दात्री' है, आँटी का वैदिक नाम 'पर्ष' है।
ने के पश्चात् धान के पौधों को आँटी बनाकर
जाता था। दिनभर इस तरह से काम करने
श्चात् कृषक निम्नलिखित प्रार्थना मंत्र से इंद्र की
याचना किया करते थे, जिससे वह उत्पादित
ल का भोग कर सकें:—

तवेदिंद्राहमशासा हस्ते दात्रं च नाददे।
स्व वा मघवन् सम्भृत तस्य व.पृधि यवस्य
काशिना॥

— ऋ, ८।६८। ०

वैदिक युग में आज के समान ही धान पौधे की
टेयों को पटककर पौधे से धान को अलग किया
ा था। उस समय जिस आधार पर आँटी को
ा जाता था, उसे 'खल' कहा जाता था। यह
पत्थर से प्रस्तुत पदार्थ है। उस समय चलनी
सूप के व्यवहार का प्रचलन भी था। चलनी का
क नाम 'तितउ' (ऋ,६१।७६२ और सूप का
क नाम 'शूर्प' (अथव, ६२।३६६) है। 'वर्षवृद्ध'
क एक प्रकार का गुल्म जातीय वृक्ष से सूप बनता
। धान से पृथककृत चावल का नाम 'तण्डुल'
र, ६०।६।२६) है। चावल पृथककृत धान का
'तुष' (अ, ६।६३।६६) है। तैत्तरेय-संहिता
।८।६३) में तुष चावल को आवरण और चावल
'कर्ण' कहा गया है। शस्य माप पात्र का नाम 'उर्दर'
ऋ, २।६१।६६) है, जो वर्ष वृद्ध (बेत ६) से ही
ता था। उर्दर का व्यवहार आज भी पैमाना है।

वैदिक युग की कृषि-पद्धति पूर्णतः वैज्ञानिक भित्ति
ऊपर प्रतिष्ठित थी। आधुनिक कृषि-विज्ञान का
न है कि एक ही जमीन में अविराम खेती करने से
की उर्वरा-शक्ति घट जाती है। इसलिए विराम
से खेत पर खेती करना उचित है। खेत में पर्याय-
से विभिन्न प्रकार की खेती करना युक्तिसंगत है।
से खेत के पूरा करण जनित नाइट्रोजन-ह्रास की
त होती है। नाइट्रोजन ही खेत की उर्वरा-शक्ति का
र है। नाइट्रोजन से वृक्ष तथा शस्य की वृद्धि एवं
पुष्टि साधित होती है। इन सभी बातों का ज्ञान वैदिक
मनुष्य को था। (—तै० स० ५।७।३) खाद्य संबंधी
ज्ञान उन्हें था। गोबर एक उत्कृष्ट खाद है—यह
तथ्य भी वैदिक युग में ज्ञात था (ऋ ६।१६१।१०,
अ, १२४।६, तै० स०, ७।१।१६।३।

प्राचीन आर्य ऋषिगण अपने देश को जिस
भक्ति एवं श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे उसका दृष्टांत
भारतेतर देश के इतिहास में कहीं नहीं है। जन्मभूमि
को मातृ संबोधन से संबोधित करने की मनोवृत्ति केवल
भारत में ही पैदा हुई:— माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः—
अथर्व १२।१।१२ क्यों? 'यदश्नामि यत् पिबसि
धान्य कृ.य. पय.'—अथर्व, ८।२।६—हमारे आहार
एवं पेय कृषि के ही दान हैं। इसलिए इन दोनों को
'कृष्या. पयः'—'कृषि-दुग्ध' कहा गया है। इतनी दूर
तक वैदिक भारत की कृषि-संबंधी जो संक्षिप्त चर्चा की
गई है, उसका तात्पर्य यह है कि हमारे देश के गोधन
के उन्नति साधन बिना हमारे अन्न, वस्त्र तथा गुड़ की
समस्या का समाधान नहीं हो सकता है। गोधन की
श्रीवृद्धि एवं उन्नति से दुग्ध समस्या का भी समाधान
होगा। खेती के लिए जो आंगल मद्र-लोह का बैल
(Tractor) मँगाया गया है उससे खेती होगी सही,
किंतु उसके मूल्य से गाय मँगाने से कृषि तथा दूध की
समस्या का समाधान नहीं होता। बेकारी की समस्या
का भी निराकरण नहीं होता। गो-जाति के प्रति श्रद्धा
हिन्दू का चिरंतन मज्जागत संस्कार है। किन्तु दुःख
का विषय यह है कि हमारी बातों के साथ कर्म का
सामंजस्य प्रायः नहीं रह गया है। भारत को हम 'पुण्य
भूमि' कहा करते हैं सही, किन्तु यह प्रशंसा वचन-
मात्र है। हमारे देश में धर्म के नाम पर बहुत कुसं-
स्कार तथा अनाचार मध्य युग से प्रचलित हैं। यह
बात सही है कि तथाकथित सभ्य देश में इन दिनों
हमारे देश की अपेक्षा अधिक अनाचार फैल रहा
है; किन्तु वह निज स्वार्थ की सिद्धि हेतु—धर्म की
ओट में छिपकर नहीं। जन्मभूमि के प्रति हम स्वर्ग
की अपेक्षा अधिक श्रद्धा प्रदर्शन करते हैं सही, किंतु
'स्वर्गादपि गरीयसी जन्मभूमि' को बारबार विदेशी
विधर्मी व्यक्तियों के पदाघात से दलित होना पड़ा
है—हमने समष्टि रूप से उसके प्रतिरोध की चेष्टा

नहीं की। फलस्वरूप 'जननी जन्मभूमि' को सैकड़ों वर्ष तक दासत्व के शृंखल में बद्ध रहना पड़ा। हमें राजनैतिक स्वतन्त्रता मिली है सही, किंतु अब तक मानसिक स्वतत्रता नहीं मिली है। आज के दिन में यांत्रिक साथा छोड़कर किसी जाति का अस्तित्व नहीं रह सकता है—यह सही बात है। किन्तु मनुष्य जब यन्त्र का नियामक नहीं बनकर दास बन जाता है, तब उसका निश्चय पतन होने लगता है—यह भी सही बात है। एटमबम इसका ज्वलंत प्रमाण है।

प्राचीन भारत में भूमि-कर्षण के निमित्त यांत्रिक लांगल का उपयोग होता था या नहीं, उसका उल्लेख भारतीय प्राचीन इतिहास एवं साहित्य में लेखक को अब तक नहीं हुआ है। लेकिन, अथर्ववेद (८।६।१६, ६।६१।२), तैत्तरेय संहिता (५।२।५।२), शतपथ ब्राह्मण (१०।८।२३) आदि ग्रंथों में [illegible] द्वारा कर्षण [illegible] लांगल की अपेक्षा वृहदाकार [illegible] लांगल का उल्लेख है। उन्हें खींचने के लिए छः, आठ एवं बारह बैलों की आवश्यकता होती थी। इस लांगलों का वैदिक नाम क्रमशः 'षड्योग' एवं 'षड्गव', अष्टायोग' तथा अष्टागवः 'द्वादशायोग' वा द्वादश- गावः' है।

कुछ समय पूर्व मनीषी राधाकृष्णन् के सभापतित्व में विश्वविद्यालय कमीशन गठित हुआ था। श्री राधा-कृष्णन् जगद्विख्यात दार्शनिक एवं अनुभवी हैं। वे राजनीति में भी कुशल हैं। उनके सहयोगियों में दो कार्यसिद्ध अमेरिकन शिक्षाविद् कृषि शिक्षा-परिषद् के अधिकांश सदस्य तथा अभीष्ट सरकारी कृषिविद् भी थे। उन्होंने कृषि-शिक्षा के सरकार-हेतु जो सुचिंतित अभिमत प्रदान किया था, उसको कार्य-रूप में परिणत करने का अवसर देश वासी को अब तक नहीं मिला है। इसके साथ ही साथ ग्राम-सुधार की व्यवस्था में भी सुधार की आवश्यकता है। ग्राम की वर्त्तमान अवस्था में शिक्षित समाज के लिए वहां निवास करना प्रायः दुःसह है। सरकार की समष्टिगत ग्रामोन्नयन योजना यथार्थतः कार्यकारी होने से यह उद्देश्य सिद्ध होगा। ये दो योजनाएँ—ग्रामोन्नयन एवं शिक्षा-सरकार में इतरेतर सम्बंध है। एक के अभाव में दूसरे की सफलता की आशा निरर्थक है।

जिस पीयूष धारा से पुष्ट होकर अतीत भारत के मनीषियों ने दार्शनिक आलोचना उच्चतम शिखर पर आरोहण की थी भारतीय भिक्षुओं ने देश विदेश में ज्ञानालोक प्रसारित किया था,-वह उत्स आजतक निःशेष नहीं हुआ है, हमें केवल मार्ग का संधान नहीं मिलता है। जिस पुण्यतोया गङ्गा के जल से सगर वंश के साठ हजार व्यक्तियों के भस्मावशेष को संशोधित कर भगीरथ ने उन्हें पुनर्जीवित किया था, वह गङ्गा क्षीणकाय हो गई है सही; किंतु, आज वे भगीरथ कहा हैं, जिनके शंखनिनाद से हजारों वर्ष की जड़ता मोह से मुक्त होकर जाति पुनः जाग्रत हो सकती है, भगीरथ के हजारों वर्त्तमान वंशधरों को यह उत्तर-दायित्व ग्रहण करना पड़ेगा। क्षीणकाय गङ्गा में पुनः पूर्ववत शक्ति प्रदान करना पड़ेगा, रुद्ध उत्स का अनुसंधान करना पड़ेगा : शहर से उसका संधान नहीं मिलेगा; लौटना पड़ेगा, ग्राम जननी की स्निग्ध गोद में। भाव संतान जिस दिन उसकी गोद में लौट आएगी, उसी दिन जननी के वक्ष से पुनः निःसृत होगी, पीयूष धारा, जिसे पीकर जाति नव बल से बलवती होगी, देश नव जागरण से जाग्रत् होगा, ध्वनित होगा—'अन्नं बहु कुर्वीत, तत् व्रतम्।' उसी दिन जगन्माता दशभुजा अन्नपूर्णा रूप में उन्मुक्त कर देगी, अपने अन्न का अनंत भंडार।

आदिम अथवा प्राचीन कृषि प्रणाली

बहुत से लोगों का विश्वास है कि मानसूनी निचले उष्ण प्रदेशों में बहुत अधिक खाद्य सामग्री नहीं पाई जाती है। वहां की भूमि भी सदैव के लिये उर्वरा तथा उपजाऊ नहीं बनती है। सदैव वर्षा होते रहने तथा वनस्पति के उगने के कारण उसकी उर्वरा शक्ति का ह्रास होता रहता है और इस प्रकार वहां उपज धीरे-धीरे कम होती जाती है। यद्यपि यह बात सही है कि उन प्रदेशों के निवासी वहां के वनों से खाद्य सामग्री प्राप्त करते है और वहां वाटिकाएं आदि लगाकर उससे भोजन सामग्री की उपज करते हैं। ऐसे प्रदेशों की भूमि में उर्वरा शक्ति के ह्रास होने के कारण वहां पर अस्थाई तौर पर खेती होती है और एक स्थान पर खेती करने के तथा उसकी उर्वरा शक्ति के ह्रास हो जाने के पश्चात् उसे छोड़ कर अन्य स्थान पर जाकर खेती की जाती है और इसी प्रकार क्रमानुसार एक स्थान को छोड़ कर दूसरे स्थान पर जाकर खेती करने का काम चलता रहता है। मानसूनी निचले प्रदेशों के सिरों पर अच्छी भूमि में तथा ऊँची भूमि में ही ऐसी दशा वतमान होती है जहां पर स्थाई रूप से खेती की जा सकती है।

मानसूनी उष्ण तथा अर्ध उष्ण प्रदेशो में प्राचीन प्रणाली के अनुसार ही लोग खेती करते हैं और वे एक स्थान से दूसरे स्थान पर हटकर तथा घूम-फिर कर खेती किया करते हैं और इसी प्रकार अपना जीवन परम्परागत से व्यतीत करते चले आ रहे हैं।

घूम-फिर कर की जाने वाली प्राचीन कृषि प्रणाली

अमरीका, मध्य अफ्रीका, दक्षिणी एशिया और पूर्वी द्वीप समूह तथा उष्ण प्रदेशों में घूम फिर कर प्राचीन तौर पर खेती करने का कार्य होता है। ऐसे प्रदेशों में लोग एक स्थान पर जाते है और वहां की भूमि की वनस्पति तथा वनों को साफ करके वहां साग भाजी, सब्जी तथा नाज की उपज करते है और फिर उस स्थान को छोड़ कर दूसरे स्थान पर चले जाते हैं और फिर वहां खेती के लिये भूमि साफ करते हैं। इस प्रकार की जाने वाली खेती की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि छोटे-छोटे टुकड़ों में खेती की जाती है जो वन में विभिन्न स्थानों पर बिखरे हुये होते हैं और विशाल वनैले टुकड़ों, सवन्ना-वनों या झाड़ी वाले वनैले टुकड़ों द्वारा एक-दूसरे से अलग स्थित होते हैं। ऐसी खेती वाले खेतों के पौधे चारो ओर वनैले वृक्षों से घिरे हुये होते है। जहां कहीं भी लोग खेती के लिये भूमि साफ करते हैं, वहीं पर अपने खेतों के मध्य अपने मकान बनाकर निवास करते हैं और इस प्रकार वनों में उनकी बस्तियां छितराई हुई बसी मिलती हैं। यह बस्तियां एक-दूसरे से बिलकुल अलग स्थित होती हैं और इसी कारण ऐसे प्रदेशों की बस्तियां घनी नहीं होती हैं। अमेजन नदी के बेसिन में ऐसी ही २० लाख वर्ग भूमि में केवल १५ लाख व्यक्ति निवास करते है जो कि घूम-फिर कर खेती करते हुये अपना जीवन वर्षों से व्यतीत करते चले आ रहे हैं। इसी प्रकार ससार के अन्य ऐसे ही प्रदेशों में मानव जाति की ऐसी ही बिखरी हुई बस्तियां बसी हैं।

भूमि का चुनाव तथा उसकी तैयारी

मानसूनी उष्ण प्रदेश के घूम फिर कर खेती करने वाले मानव समूहों के लोगों के खेती करने के लिये भूमि के तलाश के लिये बड़ी सतर्कता के साथ काम करना पड़ता है। उन समूहों के कुशल किसान वनों का निरीक्षण करते हैं और फिर जहां पर बड़े बड़े ऊचे वृक्ष वतमान होते हैं और जिनके नीचे पौधे तथा झाड़ियां आदि नहीं होती हैं, उस स्थान को नई खेती करने के लिये चुनते हैं। इस प्रकार के चुनाव का कारण यह है कि प्राचीन औजारों की सहायता से बड़े-ऊंचे वृक्षों को काट कर हटाना तथा साफ करना अधिक सरल होता है जब कि झाड़ों तथा झाड़ियों वाले छोटे पौधों का साफ करना कठिन होता है। दूसरे यह कि ऊंचे वृक्षों से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वहां पर अधिक समय से खेती नहीं हुई है और पौधे नो नहीं उगे है। अत. वहां की भूमि अधिक उपजाऊ होगी। ढालू भूमि का चुनाव अधिक उपयोगी सिद्ध होता है क्योंकि एक तो वहां वर्षा के समय पानी बहाने में सरल होता है दूसरे यह कि पानी के बहाव

से वहां की भूमि की ऊपरी सतह बहती रहती है जिस से उसकी मिट्टी सदैव नवीन होती रहती है। प्राकृतिक उपजाऊ तथा कछारी, और अधपकी भूमि का चुनाव भी विशेषरूप से किया जाता है क्योंकि ऐसी भूमि अधिक उपजाऊ होती है और नदियों के समीप स्थित होती है जिनके द्वारा व्यापार किया जा सकता है। दो नदियों के नालों के मध्य स्थित भूमि का चुनाव कम किया जाता है क्योंकि ऐसी भूमि पुरानी होती है और खतरनाक भी होती है। वहां पर विशेष रूप से परिश्रम करना पड़ता है।

बनैली भूमि का चुनाव हो जाने के पश्चात् उसे साफ करने का कार्य आरम्भ किया जाता है। यदि चुना हुआ स्थान शुष्क होता है तो वहां पर आग लगा दी जाती है जिस से वन जल जाता है और जो वने जलने से बचते हैं वह दो-तीन वर्ष में आप ही आप समाप्त हो जाते हैं। उनकी जली राख खाद का काम करती है। नम स्थानों में जंगल साफ करने का काम वर्षा काल में होता है ताकि वनस्पति वर्ग का काटना तथा पानी के सहारे उसे बहाना सरल हो। आधे भीषण वर्षा के पश्चात् जब वर्षा हल्की हो जाती है तो काटे हुये पौधों तथा वृक्षों की अर्ध शुष्क लकड़ी तथा झाड़-झंखाड़ों को जला दिया जाता है। एक बार वन का जला देने के पश्चात् जब उसमें घास तथा झाड़ियां उगने लगती हैं तो फिर ग्रीष्म ऋतु में उनमें आग लगाना तथा जलाना सरल हो जाता है। इस प्रकार दो तीन मौसम में वह भूमि साफ करके खेती योग्य बना ली जाती है।

खेती करने योग्य भूमि को बनाने के पश्चात जब वर्षा ऋतु आती है तो उसमें पौधों का रोपना तथा बीज बोने का कार्य आरम्भ कर दिया जाता है। बहुधा खेत छोटे छोटे बनाये जाते हैं और एक व्यक्ति या परिवार एक एकड़ से पांच एकड़ तक के खेत बनाता है जो अलग अलग स्थित होते हैं। कभी-कभी एक गांव के सम्पूर्ण निवासी मिलकर किसी बड़ी भूमि को साफ करते हैं और उसकी सफाई करके सामूहिक तौर पर एक साथ खेती करते हैं। नई भूमि में अरहर, सेम, केला आदि तथा कुछ भागों में ईख और कपास की खेती की जाती है। अमरीका में ऐसी भूमि में मक्का की खेती तथा अफ्रीका में बाजरा तथा ज्वार की और एशिया में धान की उपज की जाती है। धान और चना तथा मटर की खेती साथ-साथ होती है। धान के साथ सांवा, काकुन, मकरा की खेती की जाती है। क्योंकि सांवा, काकुन और मकरा धान काटने के पहले ही तैयार हो जाते हैं। यह अन्न ६ या ७ सप्ताह के भीतर ही तैयार होजाते हैं।

इस प्रकार की खेती करने में बड़ी कुशलता तथा चतुराई से काम करना पड़ता है क्योंकि वर्षा के दिनों में ही खेती अधिकतर की जाती है जिसको कीड़े-मकोड़ों तथा पशुओं से नष्ट हो जाने का भी भय रहता है। इसी कारण खेतों के चारों ओर बाड़े बनाने पड़ते हैं हैं ताकि बाहरी पशुओं से पौधों तथा फलों की रक्षा होती रहे। जहां कहीं वर्षा की दो ऋतु होती हैं वहां पर दोनों ऋतुओं को उपज के लिये प्रयोग करना पड़ता है। लौकी, लौका, खीरा, ककड़ी, तुराई, नेनुआ आदि साग-वर्ग होते ही बो दिये जाते हैं। अन्न तथा अधिक समय तक टिकने वाले अन्न और कन्द भूमि के मध्यवर्ती भाग में बोये तथा लगाये जाते हैं ताकि उनको नष्ट किये जाने से बचाया जा सके।

ऐसे स्थानों पर खेती पुराने तरीके पर की जाती है और वहां के किसानों के औजार लकड़ी तथा लोहे के बने होते हैं जो भद्दे और देखने में सुन्दर नहीं होते हैं। जोताई, कटाई, ढोलाई तथा बोआई और पौधों की लगाई आदि का सारा काम मानव शक्ति पर ही निर्भर करता है। यद्यपि पौधों को रोपने लगाने तथा बीज बोने के लिये विभिन्न प्रकार के तरीकों का प्रयोग किया जाता है। परन्तु अधिकतर नम भूमि को खरोच कर उसमें बीज बोये जाते हैं या पौधे रोपे जाते हैं। कभी कभी ऐसा होता है कि उपजाने वाली मिट्टी के लम्बे या चौकोर दो-फुट ऊंचे ढेर बनाये जाते हैं। लोग नुकीली लकड़ियों, फावड़ों, खुर्पों, हंसियों, कुदालियों, गैंतों आदि का प्रयोग खेती में करते हैं। लकड़ी आदि काटने के लिये कुल्हाड़ी तथा कुल्हाड़ों और लम्बे धार दार अन्य औजारों का प्रयोग किया किया जाता है। बीज बोने के पश्चात् चिड़ियों, चूहों तथा कीड़े-मकोड़ों आदि से उनकी रक्षा का प्रबन्ध करना पड़ता है। इस प्रकार की रखवाली

का काम बच्चे करते हैं। बच्चे रखवाली के लिये गोफनी का प्रयोग करते हैं। पशुओं तथा पक्षियों को डराने के लिये बाजे भी बजाये जाते हैं। बहुधा पक्षियों और पशुओं को डराने के लिये पक्षियों को मार कर टांग दिया जाता है या काले रंग के धोखा खड़े कर दिये जाते हैं। रात में रखवाली के लिये सफेद रंग कर हांड़ियां आदि छड़ियों या लाठियों को गाड़ कर टांग दी जाती हैं जिससे पता लगता रहे कि कोई व्यक्ति खड़ा है और रखवाली कर रहा है। चींटियां, घोंटे, तीड़ियां, टिड्डे-टिड्डियां तथा कुतरने वाले (कुतर कर खाने वाले पशु जैसे स्याही, सुअर, सियार, लोमड़ी आदि) से रक्षा करना बड़ा दुष्कर कार्य होता है। कोई-कोई जातियां तो ऐसा करती हैं कि झाड़झाड़ समाप्त करने तथा पौधों को लगाने के पश्चात् चली जाती हैं और फिर फसल तैयार होने पर ही खेतों के समीप जाती हैं। ऐसा तभी किया जाता है जब कि खेत निवास स्थान से अधिक दूर स्थित होते हैं। अधिक चतुर जातियां अपने खेतों की देख-भाल करती रहती हैं और खेतों की एक दो बार निराई करती हैं और हानिकारक घास पौधों को उखाड़ कर खेत के बाहर फेंक देती हैं। इसके अतिरिक्त कुछ लोग अपने खेतों के समीप अपने अस्थायी निवास स्थान बना लेते हैं और कभी कभी जब तक फसल तैयार नहीं हो जाता है तब तक वहाँ जाकर रहते हैं। या फसल के मौसिम में डेरे बनाकर रखवाली के लिये परिवार पीछे एक आदमी खेतों में ही रहा करता है। फसल जब पकने पर आ जाती है तो चिड़ियों तथा पशुओं से उसकी रक्षा करनी पड़ती है। फसल के तैयार हो जाने पर उसे हसिये से काट कर सूखने के लिये डाल दिया जाता है। पौधों को सूखने के बाद फिर उन्हें बडलों में बांध कर गांव में या खेतों में ही खलिहान में सुखाया जाता है और फिर कूट-पीट कर दाना निकाला जाता है। नाज के अतिरिक्त कुछ साग भाजियां भी सुखाकर सावधानी तथा सुरक्षित रूप से भविष्य में इस्तेमाल करने की लिये रख ली जाती हैं। कन्द जमीन में ही बिना खोदी महीनों पड़ी रखी जाती हैं या खोद कर जमीन में गाड़ दी जाती हैं और वह कई मास तक खराब नहीं होती हैं।

घुमक्कड़ तथा घूम फिर कर खेती करने वाले किसान को यदि अपने परिवार वालों को सुखी रखना है और भूखों नहीं मारना है तो उसे बहुत अधिक परिश्रम करने की आवश्यकता है। निम्नश्रेणि के औजारों, अच्छी श्रेणी के बीजों के न होने, कीड़े मकोड़ों, चिड़ियों तथा पशुओं से खेती को लगातार हानि होने, कम उपजाऊ भूमि और बहुधा भूमि की सफाई आदि करने के कारणों के फलस्वरूप समस्त परिवार बल्कि समस्त जाति अथवा समूह के पौरुष तथा परिश्रम की आवश्यकता होती है। इस प्रकार गांवों तथा जातियों के भीतर सहकारिता की उत्तम भावना का अच्छा विकास होता है। गर्मी तथा अधिक वर्षा और नमी के समय हाथ से काम करना इन लोगों के लिये असम्भव सा हो जाता है। इसलिये इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि यह लोग उजाली रात में काम करने के आदी होते हैं और जब गरमी विशेष पड़ती है या वर्षा अधिक होती है तो यह लोग उजाली रात में ही काम करते हैं।

ऐसे प्रदेशों के निवासी घरेलू पशुओं को पालते हैं। मुरगी, बतख, बनमुरगी आदि अंडे देने वाली चिड़ियां अधिकतर पाली जाती हैं जिनसे मांस तथा अंडे प्राप्त होते हैं जो उनकी खाद्य सामग्री के एक अंश की पूर्ति करते हैं। कुछ सुअर भी पाले जाते हैं जिनका मांस खाया जाता है। कोई कोई जातियां भेड़-बकरियां भी पालती हैं जिनसे मांस तथा दूध मिलता है और उनकी हड्डियां प्रयोग में आती हैं। अमरीका जैसे महाद्वीप के जंगली भागों में गधों, भैंसों, घोड़ों तथा गायों आदि का पालना सम्भव नहीं था। फिर भी पशु मिलने कम हैं। अफ्रीका में भी यही दशा है परन्तु अन्य स्थानों में खाना बदोश जातियां, भैंस, घोड़े, गाय आदि भी पालते हैं पर कम। यदि पशुओं के पालने का रिवाज इन लोगों के मध्य अधिक होता तो उन्हें बहुत अधिक सहायता मिलती क्योंकि घरेलू पशुओं से उन्हें चमड़ा, मांस, दूध-दही, खेती के लिये खाद तथा जोताई के लिये बैल और घोड़े आदि प्राप्त होते। पशुओं की कमी के कारण ही घूम-फिर कर खेती करने में प्रोत्साहन सा मिलता है।

फसलों के मध्य जो समय ऐसे प्रदेशों के निवा-

यद्यपि संसार के विशाल निचले उष्ण प्रदेशों के केवल छोटे-छोटे भागों में ही घुमक्कड़ प्राचीन प्रणाली तथा गतिहीन प्राचीन कृषि प्रणाली द्वारा खेती होती है, फिर भी ऊँचे प्रदेशों तथा पठारों पर स्थिर तथा अचल भाव से जो खेती की जाती है उससे निचले प्रदेशों में होने वाली खेती की अपेक्षा कहीं अधिक लोगों का भरण-पोषण होता है। प्राकृतिक दशाओं तथा अवस्थाओं के कारण ही उष्ण मानसूनी वनों वाले प्रदेशों में घुमक्कड़ कृषि प्रणाली तथा पठारों और ऊँचे प्रदेशों में स्थिर प्रणाली चालू है।

उष्ण नम निचले प्रदेशों में अचल या गतिहीन कृषि—यद्यपि अयनवृत्त के मानसूनी वनैले प्रदेशों में घुमक्कड़ ढङ्ग से ही खेती होती है फिर भी यहां पर कुछ ऐसे समूह बसे हैं जो एक ही स्थान पर स्थायी तौर पर रह कर खेती करते हैं और बार-बार एक ही भूमि को प्रतिवर्ष जोत कर अपनी उपज करते हैं। अनेक कारणों से प्रभावित होकर चल कृषक अस्थायी अथवा स्थायी अचल कृषक बने हैं। हेइटी, सेंट विन्सेंट, पूर्वी द्वीप समूह के कुछ द्वीपों तथा दक्षिणी एशिया की प्रधान भूमि के सघन प्रदेशों के किसान अचल कृषक बन गये हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि सघन बस्ती होने के कारण उनके लिये स्थान परिवर्तन करना तथा नई भूमि प्राप्त करना और साफ करना कठिन हो गया है। दूसरे यह कि अनेक स्थानों पर और विशेष कर दक्षिणी एशिया में जल में उत्पन्न होने वाले विभिन्न पौधों तथा पुष्पों ने उन्हें मजबूर किया कि वह सरोवरों के तट पर स्थायी तौर पर बस जावें। इसलिये सरोवरों, नदियों तथा झीलों के तटों पर उनकी बस्तियाँ बस गई हैं। इन स्थानों पर पानी वाले पौधों की उपज के कारण वहां की भूमि की उर्वरा शक्ति वैसी की वैसी बनी रहती है और उसमें बहुत कम ह्रास होता है।

शताब्दियों से उत्तरी उष्ण कटिबन्ध के निवासी भूमण्डल के वनैले छोटे छोटे समूहों को ऐसा प्रभावित करते चले आ रहे हैं कि वे अचल कृषक बन जाय। वनैले कृषकों को वनों से बहुत सी सामग्री उपलब्ध होती है जिसे वह विदेशियों के हाथ बेच सकते हैं। वर्षों की बात है कि पूर्वी द्वीप समूह से मसाला, गिनी तट के वनों से हाथी दांत, ब्राज़ील के पूर्वी भाग से ब्राज़ील लकड़ी, एँडीज से सिनकोना, पूर्वी द्वीप समूह तथा अमेज़न के बेसिन से रबर और मेवे, उत्तर पश्चिमी, दक्षिणी अमरीका के निचले प्रदेशों से मूंगफली, अखरोट आदि तथा अन्य प्रदेशों से अन्य प्रकार की वस्तुओं को वहां के आदि वासियों ने अपने समीपवर्ती बन्दरगाहों से विदेशियों के हाथ बेचना आरम्भ किया और इस प्रकार अपनी सामग्री बेचकर अथवा उसे परिवर्तित कर उन्होंने अपने लिये खाद्य तथा अन्य उपयोगी सामग्रियाँ खरीदनी आरम्भ की और इस प्रकार अचल कृषक बने। धीरे-धीरे इन प्रदेशों के आदि वासियों को अपने यहां आयात करने तथा अपनी सामग्री को निर्यात करने का शौक उत्पन्न हो गया। बाद में वनों द्वारा प्राप्त होने वाली सामग्री का संग्रह किया जाना बन्द हो गया और इस व्यवसाय का अन्त हो गया। योरुपीय लोगों ने अपने लाभ के लिये आदि वासियों को जाल में फँसाया। उनकी सम्पत्ति और भूमि लेली और कितनों ही का तो अन्त ही कर डाला। इसलिये वहां के आदि वासियों को पुनः घुमक्कड़ कृषि को अपनाना पड़ा। अब केवल स्थायी नगरों तथा मार्गों के समीप ही अचल कृषकों के गांव शेष रह गये हैं।

निचले प्रदेशों में वहां की खनिज सम्पत्ति का जब विदेशियों ने जाकर शोषण किया और अपने हित के लिये कारखाने आदि स्थापित किये तो वहां के बहुतेरे घुमक्कड़ कृषक अचल कृषक बन गये और खानों, तेल-कूपों तथा यातायात-मार्गों के समीप गांव बनाकर टिक गये। व्यवसायिक केन्द्रों, खानों तथा तेल कूपों और कारखानों के समीप जो आदिवासी बस गये वह न केवल अचल कृषक ही बने वरन् वह व्यवसायिक कृषक हो गये क्योंकि अपनी उपज वह विदेशियों तथा कारखाने में काम करने वालों के हाथ अधिक मूल्य पर बेचने लगे और उससे लाभ उठाने लगे। अनेक आदि वासी कारखानों में काम करने लग गये हैं। फिर भी इन गांवों में प्राचीन समय वाली फसलें ही उगाई जाती हैं और वहां प्राचीन संस्कृति वर्तमान है। उन्हीं के समीप

अचल कृषक अपने बगानों तथा वाटिकाओं में सिंचाई तथा खाद्य की सहायता से प्रत्येक वर्ष अच्छी खेती उगाते हैं। परन्तु आदि वासियों की कृषि-प्रणाली फिर भी अछूती है।

व्यवसायिक खेती की उन्नति के फलस्वरूप अयन वृत्त के किसानों के जीवन में परिवर्तन उत्पन्न हो गया है। बहुधा ऐसे कृषि कार्यों में नोकरी प्राप्त करने के ध्यान से बहुतेरे आदि वासी आ बसे और अपने स्थायी घर बना लिये और स्थायी भूमि पर अपनी उपज अनेक वर्षों तक करते रहे। विदेशी पूँजी के बल पर विदेशियों ने जो व्यवसायिक कृषि फार्म स्थापित किये, उनसे आदि वासियों का बहुत अधिक शोषण हुआ और उन्होंने यहां के आदि वासियों के रोजगार को छीन लिया जिसके फलस्वरूप आदि-वासियों को अपनी जंगलों के शांतिमय को समृद्ध करने वाले व्यवसाय को सदैव के लिये छोड़ना पड़ा। वहां के आदि वासियों की यहां तक दुर्गति हो गई है कि अब वह स्वयं व्यवसायिक कृषि करने के भी योग्य नहीं रह गये हैं। फिर भी वहां के आदिवासियों को पूर्ण रूपेण अन्त नहीं हुआ है। अब विदेशी लोग जब किसी नई फसल को ले जा कर अपने व्यवसायिक फार्मों में उगाते हैं तो आदिवासी भी उसे लेकर अपने छोटे खेतों में उगाने लग जाते हैं। फिर भी वह वनों में अपने पुराने खेतों में खेती करते हैं और उन्हें नहीं छोड़ते हैं ताकि वनों के समीप बने रहें।

अचल कृषक घुमक्कड़ कृषक की भांति ही खेती करते हैं और उसी प्रकार की फसलें उगाते हैं अन्तर केवल इतना ही है कि अचल कृषक भूमि को साफ करने तथा तैयार करने और जोतने-बोने तथा काटने में अधिक सावधानी के साथ काम करता है। वह अपने लिये अधिक सुदृढ़ तथा उपयोगी घर बनाता है। वह अपना कृषि कार्य योरुप, अमरीका तथा जापान जैसे देशों के बने हुये खेती के कलपुर्जों से खेती करता है। वह बहुधा व्यक्तिगत खेती को सामूहिक खेती का रूप देता है और खास वृक्षों की खेती में तो सामूहिक रूप अवश्य देता है क्योंकि वृक्ष कई वर्षों तक पकते हैं। यद्यपि व्यक्तिगत किसान खेतों में बधे रहते हैं तो भी वे समय समय पर खेतों को बदलते रहते हैं।

निचले नम शुष्क प्रदेशों के अचल कृषक

अयन वृत के मानसूनी वनों में, जहां छोटी शुष्क ऋतु के पश्चात् लम्बी वर्षा ऋतु होती है या सवन्ना वनों में अथवा झाड़ी वाले वनों वाले प्रदेशों में जहां पर दोनों ऋतुएं समान काल तक वर्तमान रहती हैं वहां पर किसानों को वनस्पति को उगाने तथा बढ़ाने को रोकना सरल होता है। वृक्षों तथा पौधों की कटाई और अग्नि द्वारा जलाये जाने के कारण घास तथा वृक्ष कम उगते और बढ़ते हैं खेती के लिये मौसिम होते हैं और उष्णार्द्र निचले प्रदेशों में स्थायी रूप से खेती करने के लिये अधिक अवसर होता है। इसलिये ऐसे प्रदेशों में अचल कृषि की जाती है यद्यपि साधारणतया अचल कृषक अपने खेतों को प्रतिवर्ष बदलते रहते हैं। लम्बी वर्षा ऋतु तथा छोटी शुष्क ऋतु के कारण ऐसे प्रदेशों में मकई, मटर, सेम, असड़े, कन्द, मैनिओक कपास, ईख, चरी आदि की उपज खूब होती है, फिर भी वर्षा के कारण कभी कभी समूचे समूह को अपना स्थान छोड़ कर अन्यत्र चले जाना पड़ता है। बहुधा वर्षा से पीड़ित होकर देशान्तर गमन करने वाले घास के मैदानों के निवासी अपने समीपवर्ती अचल कृषकों के खेतों पर आक्रमण कर बैठते हैं और फसल काट ले जाते हैं तथा खाद्य सामग्री चुरा ले जाते हैं।

इन प्रदेशों के चल कृषक गहरी कृषि करते हैं। परन्तु वह हाथ के द्वारा प्रयोग किये जाने वाले औजारों से ही खेती करते हैं। खेतों में भद्दे हलों द्वारा जोताई की जाती है और चार-चार फुट के अन्तर पर हलों के कूड़ बनाये जाते हैं जिनमें पौधे रोपे जाते हैं। एक ही खेत में फसल का समय बढ़ाने के लिये विभिन्न प्रकार के पौधे अन्तर देकर लगाये जाते हैं। पौधों के लगाने का काम वर्षा ऋतु में किया जाता है और वर्षा ऋतु के समाप्त हो जाने पर शुष्क ऋतु में नदियों के किनारे पुराने तरीके से सिंचाई की जाती है। उसके बाद पौधों की जड़ों को फैलने तथा पौधों की रक्षा करने के लिये दो-तीन बार पौधों के चारों ओर मिट्टी चढ़ाई जाती है। नगरों के

समीपवर्ती प्रदेशों में तो पौधों को खाद दी जाती है परन्तु नगर से दूर स्थित स्थानों पर खाद का प्रयोग बिलकुल नहीं किया जाता है। अनियमित वर्षा तथा प्राचीन ढङ्ग से खेती करने के कारण उपज कम होती है।

मानसूनी उष्ण प्रदेशों के घुमक्कड़ कृषकों तथा अचल कृषकों की अपेक्षा शुष्क-नम निचले प्रदेशों के अचल कृषक अधिक पशु पालते हैं। ऐसे स्थानों पर बड़ी, मोटी घास तथा चारा उत्पन्न होता है जिसे गाय, बैल, भैंस, घोड़े तथा गधे आदि खाते हैं। अधिकांश कृषक इन पशुओं को पालते हैं और वे बतख भी पालते हैं। यद्यपि इन स्थानों पर वर्षा ऋतु की बीमारी तथा ज्वर होते हैं, परन्तु शुष्क ऋतु उनको कम करने में सहायक है। चूंकि ऐसे प्रदेश संसार के भू-मंडल के अधिक आन्तरिक प्रदेशों में स्थित हैं और वहां पर शुष्क ऋतु होती है तथा सामान लाने-ले जाने के साधन नहीं हैं इसलिये वहां पर चारा तथा अन्न की व्यवसायिक खेती नहीं की जा सकती है।

उच्च प्रदेशों के निम्न अक्षांशों में अचल कृषि

अमरीका, अफ्रीका, दक्षिणी-पूर्वी एशिया तथा पूर्वी द्वीप समूह के उष्ण तथा अध उष्ण प्रदेशों तथा पठारों पर अचल कृषि प्रणाली साधारणतया प्रचलित है। अधिकांश शीतोष्ण कटिबन्ध के पठारों पर व्यवसायिक खेती होती है जिसकी उपज देश तथा विदेश में बची जाती है। इन प्रदेशों में श्रमिक लोग व्यवसायिक खेती के समीप पठारों पर अपनी व्यक्तिगत खेती भी छोटे-छोटे खेतों में करते हैं। अचल कृषक गण अपनी उपज का परिवर्तन अल्प मात्रा में एक-दूसरे के साथ करते रहते हैं। यह परिवर्तन कार्य ऊंचे प्रदेशों के अचल कृषक घाटियों में बसे हुये कृषकों और नगर वालों के साथ करते हैं। गांवों में जो स्थानीय बाजार समय-समय पर लगते हैं उन्हीं में यह लोग सामग्री परिवर्तन का कार्य सम्पन्न करते हैं।

इन क्षेत्रों में अचल कृषि प्रणाली प्रचलित होने के कई कारण हैं। उष्ण कटिबंध में जो पठार तथा ऊंचे प्रदेश स्थित हैं उनकी बस्ती अधिक सघन है और वहां पर अधिक खेती होती है। इन प्रदेशों में पहाड़ों के ऊपर जो अधिक वर्षा वाली संकरी पट्टियाँ स्थित हैं और वहां पर कम सघन वनस्पति है, उनको साफ करके उन्हीं में अचल कृषि की जाती है। इन क्षेत्रों में पर्वतीय पठारों पर चूंकि मिट्टी का कटाव अधिक शीघ्रता के साथ होता रहता है इसलिये नई मिट्टी बहुधा ऊपरी धरातल पर आती रहती है। इसलिये उस पर खेती करना अधिक सरल होता है। फिर ऊंचे प्रदेशों के किसानों के लिये अपने खेतों में खेती के लिये मिट्टी को बनाये रखना उनके लिये एक बहुत बड़ी समस्या रहती है। बहुत से ढालों पर जो ४५ अंश का कोण बनाते हैं वहां पर जोताई करना बड़ा दुष्कर कार्य होता है। ऐसे ढालों पर जोताई ढाल के साथ साथ ऊपर नीचे नहीं होती, वरन् ढाल के आर-पार जोतने का तरीका अपनाया जाता है जिसे कटूर जोताई कहते हैं। ऐसे स्थानों पर पानी तथा मिट्टी को रोकने के लिये हौल बनाये जाते हैं। ऐसे स्थानों पर ढाल की कुछ चौड़ाई तक चौरस करके उसका हौल बनाया जाता है और चढ़ाव के साथ-साथ सीढ़ीदार खेत बनाये जाते हैं। जिन स्थानों पर मिट्टी, पत्थर या झाड़ियों से रुककर मिट्टी एकत्रित हो जाती है वहां पर स्थान को चौरस चबूतरानुमा बना कर खेती की जाती है। ऐसे पर्वतीय स्थानों की जलवायु बड़ी सुहावनी तथा लाभदायक होती है। चूंकि जलवायु का परिवर्तन शीघ्र होता रहता है और जलवायु उष्ण नहीं होती है इस लिये जलवायु के परिवर्तन के कारण काम करने की शक्ति अधिक आती है और शरीर में फुर्ती रहती है। मानसूनी उष्ण निचले प्रदेशों में जो बीमारियां हुआ करती हैं वह पर्वतीय ढालों पर नहीं होती हैं। और चूंकि ढालों पर बस्ती अधिक होती है इसलिये अचल कृषि के लिये पर्याप्त काम करने वाले भी मिलते हैं जिसकी कि उसमें अधिक आवश्यकता रहती है।

ऐसे प्रदेशों में ऊँचाई के ध्यान से फसलों की उपज में भिन्नता पाई जाती है। शीतोष्ण कटिबन्ध के पठारों तथा घाटियों में विभिन्न प्रकार की शीतोष्ण कटिबन्धीय तथा उष्ण कटिबन्धीय तथा उष्ण-कटिबन्धीय फसलें उगाई जाती हैं। अन्न और कहीं की फसल

खूब होती है। अमरीका के ऐसे प्रदेशों में मक्का, बाजरा, ज्वार खूब होता है। अफ्रीका में मक्का तथा बाजरा अच्छा होता है तथा एशिया के पठारों पर मक्का, बाजरा और धान तथा मटर और चना खूब होता है। ऐसे ढालों पर मैनिओक तथा आलू और शकर कन्द की उपज खूब होती है। खेतों के समीप मेंड़ों पर तथा अन्य स्थानों पर विभिन्न प्रकार के फल-फलारी और साग-भाजियां भी उत्पन्न की जाती हैं। मदिरा तैयार करने के लिये भी उपज कर ली जाती है। रस्सी आदि के लिये रेशेदार पौधे लगाये जाते हैं। यद्यपि ११ हजार फुट की ऊँचाई पर विभिन्न प्रकार का अनाज उगाया जा सकता है। परन्तु साधारणतया १० हजार फुट की ऊँचाई के ऊपर गेहूँ और जौ की खेती विशेषरूप से की जाती है। ऊँचे स्थानों पर विभिन्न प्रकार की फसलों का तैयार होना उस स्थान की जलवायु पर निर्भर करता है क्योंकि यह मानी हुई बात है कि पौधे को उगने के लिये पानी तथा गरमी की जरूरत है। बढ़ने के लिये तरी और ठंडक चाहिये। परन्तु पकने के लिये उसे गरमी की जरूरत पड़ती है। इसी कारण विषुवतरेखा के समीप पठारों पर फसलों के पकने के लिये आवश्यक है कि उष्ण प्रदेश के सिरों पर स्थित पठारों की अपेक्षा उनकी ऊँचाई अधिक हो। मध्यवर्ती एंडीज में १३ हजार फुट की ऊँचाई पर गेहूँ उगाया जा सकता है, परन्तु वह भली भांति पकता नहीं है। १४ हजार फुट की ऊँचाई तक सुरक्षित पर्वतीय स्थानों पर जौ की खेती हो सकती है। १२ हजार से साढ़े १४ हजार फुट की ऊँचाई तक बाजरा उपजाया जा सकता है। बाजरा पथरीली तथा कंकरीली भूमि पर जहां दूसरे अन्न नहीं उपजाये जा सकते हैं वहाँ पर बाजरा खूब पैदा होता है। अधिक ऊँचे स्थानों पर अन्य कंदों के स्थान पर आलू की उपज अधिक अच्छी होती है और वहां पर सेब, अनन्नास, नाशपाती तथा बेर, आड़ू तथा चेरी आदि फल खूब होते हैं। पर्वतीय स्थानों पर जो कृषक निवास करते हैं वह अपनी दीवारों या घरों के बगल में, जहां धूप लगती है वहां पर इन फलों के वृक्ष लगाया करते हैं क्योंकि इन्हें धूप की आवश्यकता है। टमाटर, फली, सेम, मटर आदि भी ऊँचे स्थानों पर खूब उगते हैं।

ऊँचाई पर पाई जाने वाली विभिन्न प्रकार की मिट्टी तथा जलवायु में विभिन्न प्रकार की उपज की जा सकती है। अमरीकी ऊँचे प्रदेशों पर रहने वाले आदिवासी लोग विभिन्न प्रकार की जलवायु तथा मिट्टी में विभिन्न प्रकार की मक्का उपजाते हैं। मध्य एंडीज पर्वतों के आदिवासी १५० प्रकार के आलुओं की उपज कर लेते हैं। मध्यवर्ती एंडीज के अचल कृषक आज कल इसी प्रकार की मक्का तथा आलू और फलों की उपज करने लग गये हैं।

यद्यपि उष्ण कटिबंध के निचले प्रदेशों में रहने वाले चल तथा अचल कृषकों की अपेक्षा शीतोष्ण कटिबंध के पर्वतीय ढालों पर निवास करने वाले कृषकों के जोतने, बोने के तरीके अलग हैं फिर भी वह प्राचीन ही हैं। और अधिकतर जोताई का काम कुदाली तथा फावड़े के सहारे से ही किया जाता है फिर भी अनेक स्थानों पर घर का बना हुआ भद्दा लकड़ी या बाहर से मगाया हुआ लोहे का हल प्रयोग होने लगा है जिनको खींचने के लिये बैलों या घोड़ों का प्रयोग किया जाता है। ऐसे स्थानों के किसानों के मुख्य औजार कुदाली तथा फावड़े ही हैं। प्रायः प्रत्येक स्थान पर हंसिये के सहारे फसल काटी जाती है और उसे पशुओं द्वारा दाया या माड़ा जाता है उसके बाद हवा में ओसा कर उसका अन्न अलग किया जाता है। साधारणतया ऊँचे पहाड़ी स्थानों पर खेत छोटे होते हैं और वहां पर आधुनिक यंत्रों द्वारा खेती नहीं की जा सकती है। इसलिये यदि वहां के आदि वासी आधुनिक यंत्रों को खरीद कर कृषि करना भी चाहें तो भी सम्भव नहीं है क्योंकि खेत छोटे अधिक ढाल तथा पथरीले और ऊबड़-खाबड़ होते हैं। ऐसे स्थानों पर उपज कम होती है क्योंकि एक तो वहां की मिट्टी ही कम उपजाऊ होती है, दूसरे कंकरील पथरीली होती है, तीसरे ढालू होने से पानी नहीं सकता है। जमीन की जोताई भी अच्छी तरह नहीं हो पाती है और फिर कुहिरा, पाला तथा बरफ आदि से फसल खराब हो जाती है। ऐसे स्थानों पर व्यक्तिगत किसान साल भर में एक ही खेत में दो तीन और चार तक फसलें उगाते हैं। परन्तु कुछ वर्षों के पश्चात् उन्हें अपने खेतों को कम से कम १० वर्ष तक परती छोड़ना पड़ता है ताकि उसमें पुनः उर्वरा

शक्ति आ जाय। इन स्थानों पर सिंचाई तो साधारणतया सभी कृषक करते हैं। परन्तु खाद की कमी के कारण खाद का प्रयोग कम होता है। अधिक ऊंचे स्थानों पर, जहां वृक्ष नहीं उगते हैं या बहुत पहले ही वहां के वन काट डाले गये हैं वहां पर पशुओं के गोबर से उपलों बना कर ही जलाने का काम किया जाता है। इसी कारण पर्ती भूमि का गोबर तथा कूड़ा जलाने के लिये उठा लिया जाता है। यदि ऐसा न होता तो वही पर्ती भूमि में, खाद का काम करता। पर्ती भूमि में चराई का काम होता है जिससे पशु उसमें बराबर गोबर करते रहते हैं।

उष्ण कटिबंध के निचले स्थानों के किसानों की अपेक्षा शीतोष्ण कटिबंध के ऊंचे स्थानों के किसान पशुपालन का काम अधिक करते हैं क्योंकि इनकी आर्थिक दशा में पशुओं का भली भांति समावेश हो जाता है। पशुओं के लिये उनके पास काफी चारा तैयार होता रहता है जिसके बल पर वह पशु पाल सकते हैं। यही कारण है, जो कि ऊंचे पठारों के किसान घोड़े, बैल, गाय, गधे, सुअर, बतख, मुर्गी आदि पालतू जानवरों को पालते हैं। एंडीज पर्वतों के किसान भेड़ और बकरियां अधिक पालते हैं। इन पशुओं से किसानों को अंडा, मांस, चमड़ा, ऊन, दूध और हड्डी तथा जलाने के लिये गोबर मिलता है। ऊंचे स्थानों पर चरागाहों तथा पर्ती भूमि पर उगी घास और खेतों में उपजे चारे पर इन पशुओं का पालन-पोषण निर्भर करता है। वर्षा ऋतु में जिन स्थानों पर फसल नहीं उग सकती है वहां पर इन्हें चराया जाता है और ग्रीष्म काल में ये पशु अल्पाइन घास वाले मैदानों में चराने के लिये ले जाये जाते हैं। जानवरों की बनैले पशुओं से रक्षा करने तथा उनका गोबर प्राप्त करने के लिये प्रत्येक संध्या को सभी पशु बाड़ों में लाकर डाल दिये जाते हैं। जिन प्रदेशों में लम्बी शुष्क ऋतु होती है वहां के किसान अधिक पशुपालन का काम करते हैं क्योंकि इससे उन्हें अधिक आर्थिक लाभ होता है।

उष्ण कटिबंध के ऊंचे प्रदेशों के आदि वासियों ने विभिन्न प्रकार की जलवायु तथा प्राकृतिक दशाओं के अन्तर्गत युग-युगान्तर के प्रयोग से अपने लिये विशेष रूप की फसलों के तैयार करने का उपाय निकाल रखा है। वे उन फसलों के तैयार करने तथा काटने आदि के लिये विशेष रूप के औजारों का ही प्रयोग करते हैं। उनकी जोताई का ढङ्ग भी जुदा है। घुमक्कड़ किसानों ने बहुत छोटे भाग में व्यवसायिक खेती का काम अपनाया है और वह निर्यात के लिये कुछ सामग्री उगाते हैं। घुमक्कड़ कृषकों की भांति ही अचल कृषकों ने भी अपने युगों के प्रयोग से अपना कृषि करने का एक अलग तरीका बना रखा है और उसी को अधिकांश तौर पर अपनाये हुये हैं। चूंकि इनका सम्पर्क आधुनिक संसार के लोगों से अधिक होने लगा है इसलिये सम्भव है कि अचल कृषकों की कृषि प्रणाली में भविष्य में कुछ अन्तर आ जाय।

आदिम कृषि के निर्वाह योग्य प्रदेश

उष्ण कटिबंध में बगानों वाली व्यापारिक खेती

उष्ण कटिबंध में बागवानी वाली व्यापारिक खेती विशेष महत्त्व रखती है। आधुनिक प्रकार की बड़े पैमाने वाली खेती में यह सब से पुरानी है। आधुनिक काल में इसका श्री गणेश उपनिवेशों में की जाने वाली खेती के साथ हुआ है परन्तु विगत सवा या डेढ़ सौ वर्षों के भीतर इसकी बहुत अधिक उन्नति हुई है। शीतोष्ण कटिबंध तथा मुख्यत: उत्तरी गोलार्ध के निवासियों के भरण-पोषण के लिये उष्ण कटिबंध के देशों में बड़े पैमाने पर अन्न उपजाने के लिये खेती की जाती है। इस से उन श्रमिकों तथा पशुओं का भी भरण पोषण होता है जो इस कार्य लगे में रहते हैं। उष्ण कटिबंध के देशों की चाय तथा चीनी को छोड़ कर और कोई भी ऐसी उपज नहीं है जिसकी तुलना शीतोष्ण कटिबन्ध के देशों की उपज के साथ की जा सके। इसमें कोई भी सदेह नहीं है कि इस प्रकार की खेती में जो पूँजी लगती है वह पश्चिमी योरुप तथा संयुक्त राज्य अमरीका के शीतोष्ण कटिबन्ध में स्थित देशों से आती है। इस खेती के लिये प्रशासन कर्मचारी, टेकनिकल कार्य-कर्ता, खेती के लिये औजार, कारखाने वाली मशीनें, खाद, रेलवे सुविधाएं, खेती को नष्ट करने वाले रोगों तथा कीड़े-मकोड़ों के लिये औषधियाँ, वस्त्र सामग्री, तथा कर्मचारियों और श्रमिकों की भोजन-सामग्री का कुछ अंश भी बाहरी देशों से और मुख्यत: शीतोष्ण कटिबन्ध से आता है। इन खेतियों के श्रमिक जो अधिकांशत: कुशल नहीं होते हैं उनकी भर्ती समीप वर्ती प्रदेशों से ही की जाती है। खेती का कार्य बड़ी निपुणता के साथ किया जाता है। और खेती का अधिकांश कार्य पौधों की रोपाई, जोताई, निराई और और फसल की कटाई आदि का सारा कार्य हाथों के सहारे ही होता है। कहीं कहीं और कभी-कभी जमीन जोतने का काम मशीन द्वारा किया जाता है। फावडे और कुदाली का प्रयोग खेती में अधिक होता। फसल को तैयार करने में विशेष रूप से कुलियों द्वारा ही काम कराया जाता है यद्यपि चीनी, रबर तथा चाय आदि को उपयोग में लाने योग्य बनाने के लिये मशीन का प्रयोग किया जाता है। चाय की पत्तियां चुनकर सुखाने के लिये नहीं रख ली जाती है तब तक तो उसका सारा कार्य हाथों द्वारा ही होता है उसके बाद उसकी अन्तिम तैयारी मशीन द्वारा होती है। इसी प्रकार रबर का दूध जब तक इकट्ठा नहीं होता है तब तक हाथ से उसका काम होता है। दूध एकत्रित हो जाने के पश्चात् उसको तैयार करने का काम मशीन से होता है। उसी प्रकार जब तक गन्ना तैयार नहीं हो जाता है तब तक तो उसे हाथ का सहारा रहता है उसके पश्चात् उसका रस पेरने और फिर उससे चीनी तथा शक्कर तथा गुड़ आदि बनाने का काम मशीन द्वारा होता है। जिन स्थानों या प्रदेशों में बस्ती कम है वहां पर बड़े पैमाने पर खेती करने के लिये श्रमिकों तथा कुलियों को खेती में काम करने लिये लाकर लगाने की समस्या बडी ही जटिल होती है। आरम्भ काल में जब शक्तिशाली राष्ट्रों ने निर्बल राष्ट्रों पर अधिकार जमाया तो उन्होंने ऐसी खेती का काम दासों से करवाया। जब संसार से दासता की प्रथा उठ गई तो ऐसी खेती के लिये विशेष घने बसे देशों से कुली करारनामे की शर्तों पर भरती किये गये। पर इस प्रथा में तथा दास प्रथा में बहुत थोड़ा ही अन्तर था क्यों कि कुलियों को झूठे और धोखा देने वाले देने वाले वादों का इकरार करके भर्ती किया जाता था और फिर उन्हें अपने देशों से सुदूर स्थानों में ले जाकर उनसे जबरदस्ती मनमानी पशुओं की तरह काम लिया जाता था और उनके साथ बडा दुर्व्यवहार तथा निरंकुशता का बर्ताव होता था। भारतवर्ष से अंग्रेज लोग इसी प्रकार कुली भर्ती कर सुदूर पूर्व देशों को ले जाते थे और उन देशों में काम करने वाले प्रवासी भारतियों की समस्याएँ बड़ी जटिल होती थीं अन्त में ब्रिटिश सरकार ने एक कानून बनाकर इस प्रकार की भर्ती पर भी रोक लगा दी। अब इस प्रकार की खेती में मजदूर लगाकर काम किया जाता है। और खेती में काम करने वालों को नगद मजदूरी देनी पड़ती है और उनके रहने के लिये स्थान और उनके बाल-बच्चों की शिक्षा आदि के लिये भी प्रबन्ध करना पड़ता है। चूंकि रबर, चाय

और गन्ने की फसलों का काम सालभर बराबर नहीं होता है वरन् मौसमी होता है। इसलिये खेती में मजदूरी पर अधिक व्यय होता है।

ऐसी बड़े पैमाने पर की जाने वाली खेती के लिये जो प्रशासक तथा टेकनिकल कर्मचारी होते हैं उनके तथा खेती में काम करने वाले मजदूरों के निवास स्थानों, रहन सहन की सुविधाओं तथा वेतन आदि में बहुत अधिक अन्तर होता है। बगानों वाली खेती अधिकतर समुद्रों के समीप होती है और उनकी उपज रेलों और समुद्री जहाजों द्वारा अन्यत्र स्थानों को भेजी जाती हैं।

यद्यपि समग्र उष्ण कटिबन्ध में बगानों वाली व्यापारिक खेती का प्रसार है, परन्तु फिर भी अन्य प्रकार की खेती की अपेक्षा इस प्रकार की खेती में कम भूमि लगी हुई है। बहुत कम भूमि में खेती का काम किया जाता है और फिर उसमें या तो किसी दूसरी वस्तु की खेती की जाती है और या उसे छोड़ कर कोई अन्य भूमि को साफ करके उसमें बागानी का काम आरम्भ किया जाता है। एक स्थान को छोड़ कर अन्यत्र दूसरी भूमि में जाकर खेती करने के विभिन्न कारण होते हैं। सब से पहला कारण यह है कि उष्ण प्रदेशीय विकट वर्षा के फलस्वरूप खेती वाली भूमि अधिक नम हो जाती है और उसमें पानी का मरना सा होने लगता है जिससे उसकी उपज लगातार घटती जाती है। दूसरे यह कि पौधों में विभिन्न प्रकार की बीमारियाँ उत्पन्न हो जाती हैं और भांति-भांति के कीड़े-मकोड़े लग जाते हैं जिनकी रोक-थाम असम्भव सी हो जाती है। तीसरे यह कि जिन क्षेत्रों में ऐसी खेती होने लगती है वहां पर निर्यात कर बहुत हो जाता है और दूसरे साहसी लोग अच्छी खेती करने लगते हैं जिससे स्थान परिवर्तन करना पड़ता है।

आधुनिक युग में बगानों में शायद ही कोई विशेष प्रकार की उपज की जाती हो जो दूसरे खेतिहर न करते हों। प्रायः निजी छोटे छोटे खेतिहर तथा कृषक बगानों में उत्पन्न होने वाली सभी प्रकार की वस्तुएं पर्याप्त मात्रा में उपजाते हैं, हां यह यह बात अवश्य है कि देशी लोग जो छोटी छोटी खेती करते हैं वह वैज्ञानिक रूप से खेती का प्रबन्ध नहीं कर सकते हैं और न अपनी उपज को अच्छे भाव पर बेच ही सकते हैं। देशी कृषक अपने छोटे छोटे खेतों में जो उपज करते हैं उसको वह व्यापारिक अथवा वाणिज्य संस्थाओं के हाथ में बेचते हैं जो उसे खरीद कर अन्यत्र निर्यात करती हैं। यदि संसार में खाद्य सामग्री की अधिक मांग नहीं रहती है तो बगानों की उपज स्थानीय बाजारों में भरी पड़ी रहती है। इसी लिये बगानों वाली खेती की उपज पर साहसी लोगों के खेती करने के साहस तथा मालिकाना नियन्त्रण का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। तात्पर्य यह कि यदि बगान का मालिक अधिक साहसी तथा उत्साही हुआ और उसने अपनी भूमि का अच्छा प्रबन्ध किया तो उसकी भूमि में अच्छी उपज होती है और यदि उसके साहस तथा उत्साह में कमी आई और उसका कुप्रबन्ध हुआ तो फिर उसके बगान की उपज भी कम होती है।

यूँ तो अपवाद सभी स्थानों पर है, परन्तु साधारणतया उष्ण कटिबन्ध के प्रदेशों में एक जिले में एक ही प्रकार की वस्तु की उपज की जाती है। इसलिये प्रत्येक क्षेत्र या जिले में पौधों के लगाने, जोतने, फसल तैयार करने का उस स्थान की प्राकृतिक दशा उत्पादन के आर्थिक साधनों तथा वितरण प्रणाली से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। यदि उस स्थान की प्राकृतिक दशाएं अनुकूल हुईं, उत्पादन के आर्थिक साधन तथा वितरण प्रणाली अनुकूल हुईं तो उसकी उपज भी अधिक होती है और उसमें लाभ भी बहुत होता है।

रबर की खेती

रबर की खेती—सर्व प्रथम सोलहवीं सदी में रबर का नमूना योरुप ले जाया गया था। उसके सौ या डेढ़ सौ वर्षों के पश्चात् रबर का प्रयोग किया गया १८२३ ई० में चार्ल्स मैसिन्तोष स्काच ने इस बात का पता लगाया कि रबर का प्रयोग जल अभेद्य वस्त्रों में किया जा सकता है। परन्तु चूंकि शीतकाल में रबर में दरार आ जाती है और वह फट जाता है तथा ग्रीष्म काल में वह मुलायम तथा चिपचिदार हो जाता है इस लिये रबर उस समय अधिक उपयोगी सिद्ध नहीं हो सका। चार्ल्स उसे अधिक उपयोगी

बनाने की खोज में लगा रहा। १८३६ ई० में चार्ल्स मैसिन्तोष स्काच ने पता लगा लिया कि रबर के गुणों को किस प्रकार बदला जा सकता है और उसे सभी ऋतुओं में समान रूप से उपयोगी बनाया जा सकता है। उसके पश्चात् रबर को विभिन्न प्रकार से प्रयोग में लाने के उपायों की खोज की गई। परन्तु जब तक रबर के टायर और ट्यूब नहीं बने तब तक रबर की मांग कम ही बनी रही और उसका विशेष महत्व नहीं रहा। जिस समय से रबर के टायर और ट्यूब बनने लगे और उनका इस्तेमाल साइकिल, मोटर, मोटर साइकिल आदि गाड़ियों के पहियों में होने लगा तब से रबर की मांग बहुत अधिक हो गई है और आज तो यह दशा वर्तमान हो गई है कि प्रत्येक शक्तिशाली तथा आधुनिक देश के लिये रबर अनिवार्य वस्तु हो गई है और उसके बिना काम ही न नहीं चल सकता है।

जङ्गली रबर का संग्रह—ब्राजील के अमेजन बेसिन, पीरू इक्वेडार, तथा कोलम्बिया देशों में रबर का उत्पादन होता है। इसके अतिरिक्त जिन स्थानों पर साल भर में १०० इंच या इससे अधिक पानी बरसता है या महीने में २ या ३ इञ्च से अधिक पानी बरसता है वहाँ पर रबर की उत्पत्ति होती है। साधारणतया जिन स्थानों का तापमान ७० या ८० अंश से अधिक होता है वहां पर रबर का पेड़ उगता है। रबर वाले प्रदेशों में प्रति दिन दोपहर के पश्चात् अवश्य वर्षा होती है। इसलिये प्रातः काल रबर का दूध एकत्रित करने में किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न नहीं होती है। रबर की उत्पत्ति के लिये ढालू भूमि की आवश्यकता होती है ताकि पानी उस भूमि में एकत्रित न हो सके और वहाँ की भूमि गीली न रहे। इसके अतिरिक्त जो भूमि जितनी ही कम नम तथा गीली होती है उसमें उतना ही कम पौधों की बीमारी लगने तथा कीड़े मकोड़ों के लगने का भय रहता है और रबर को एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचाना सरल होता है। १९०६ ई० में अमेजन बेसिन तथा अफ्रीका के उष्ण प्रदेशों से संसार की समस्त मांग के ६६ प्रतिशत की पूर्ति हुई थी। चूंकि रबर अमेजन बेसिन की खास पैदावार है, इसलिये ब्राजील से ही संसार को सबसे पहले रबर की प्राप्ति हुई थी। उसके पश्चात् एक दीर्घ काल तक अमेजन बेसिन से ही संसार को रबर मिलता रहा क्योंकि उस समय रबर की मांग कम थी और किसी अन्य देश को रबर के उत्पादन बढ़ाने की परवाह ही न थी। इसके पूर्व कि रबर की उपयोगिता को संसार स्वीकार करता ब्राजील की सरकार ने यह कानून पास कर दिया कि रबर के बीज तथा पौधे वहां से बाहर न ले जाये जाय। १८७६ ई० में विखाम कमीशन जिसकी नियुक्ति ब्रिटिश सरकार ने की थी उसने ब्राजील से ७० हजार रबर के बीज चुराकर देश के बाहर कर दिया और उन्हीं बीजों से ब्रिटिश मलय तथा डच पूर्वी द्वीप समूह में रबर की खेती आरम्भ की गई। उसके बाद मलय और पूर्वी द्वीप समूहों में रबर का उत्पादन आरम्भ हुआ। १९०५ ई० में मलय से १७० टन रबर सर्व प्रथम बाहर भेजा गया जो ढेढ़ शिलिंग प्रति पौंड के हिसाब से बेचा गया और उससे बहुत अधिक लाभ हुआ। रबर के इतना अधिक महँगा बिकने का मुख्य कारण यह था कि एक तो टायरों के कारण रबर की मांग बढ़ गई थी दूसरे यह कि ब्राजील के व्यापारी तथा ब्राजील की सरकार जिनका वहां के रबर पर एकाधिकार था उन्होंने रबर के बाजार को ऐंठ दिया था। १९१० ई० में रबर का भाव ३ शिलिंग प्रति पौंड हो गया। इस प्रकार रबर के मूल्य में वृद्धि होने के कारण जङ्गली रबर के व्यवसाय को गहरा धक्का पहुँचा क्योंकि रबर की महँगी के सम्बन्ध में चारों ओर विभिन्न प्रकार की अफवाहें उड़ने लगीं और इसी के कारण लङ्का और मलय में रबर के पौधों की खेती करने के लिये पूंजी एकत्रित की गई। ब्राजील, लङ्का और मलय में रबर की खेती को नहीं रोक सका जिससे उसके जङ्गली रबर के व्यवसाय को गहरा धक्का लगा।

यद्यपि रबर अमेजन प्रदेश की साधारण उपज है फिर भी वहाँ रबर के संग्रह करने वालों को बड़ी बड़ी असुविधाओं का सामना करना पड़ता था। वहां रबर का वृक्ष अलग-अलग दूर-दूर पर उगते हैं। इसलिये एक आदमी को कई एक वृक्षों में छेद करके दूध निकालना बड़ा कठिन हो जाता था। इसके अलावा यह भी कठिनाई होती थी कि देशी लोग बहुत कम

रबर के दूध का संग्रह करने वाले प्राप्त होते थे, जो होते भी थे वह दिन भर में केवल कुछ ही घंटे काम करते थे। रबर के संग्रह करने वाले मजदूर चतुर तथा सुयोग्य न थे। वह बड़े सुस्त थे और मलेरिया, पीत ज्वर तथा पेचिश आदि रोगों से बहुधा पीड़ित रहते थे। रबर की मांग की वृद्धि के फल स्वरूप रबर के एकत्रित करने वाले और अधिक जङ्गलों में भीतर की ओर प्रवेश कर गये जिससे उसकी बराबरदारी का व्यय बढ़ गया। बन्द करके नदी द्वारा लाने में बेहार का बहुत अधिक समय लगता था। मन से जब रबर समुद्र तट पर आ भी जाता था तो भी वह जहाजी बन्दरगाह से बहुत दूर होता था। इसके अलावा राज्य, राष्ट्र तथा म्युनिसिपैलिटी आदि की ओर से बाजार मूल्य का एक तिहाई टैक्स लगाया जाता था।

इन सब कठिनाइयों के होते हुये भी अमेजन के बेसिन में रबर की खेती कुछ कारणों वश नहीं की गई। अमेजन नदी के वनों से जो रबर का संग्रह हुआ उससे ब्राजील को बहुत बड़ा लाभ पहुँचा, उसकी समृद्धता की बड़ी बढ़ती हुई। परन्तु इसके पूर्व कि ब्राजील के उत्पादक अपनी स्थिति का आभास कर सकें मलय रबर की स्पर्धा के कारण रबर के मूल्य में बड़ी कमी आ गई। दक्षिणी अमरीका के निवासियों ने आशा की थी कि उनके जङ्गली रबर का व्यवसाय पुन अपनी स्थिति पर आ जायगा और दक्षिणी अमरीका के निचले प्रदेशों में रबर के व्यवसाय को उन्नति प्रदान करने वाले अमरीकी लोग ही थे। नार्वे फायर स्टोन के अतिरिक्त सभी अमरीकी रबर के सामान तैयार करने में अपने हित का साधन समझते थे। परन्तु विचारों में परिवर्तन होने तथा क्रांतिकारी परिवर्तनों और राजनीतिक उथल-पुथल के कारण अमेजन के निचले प्रदेशों में पूँजी के लगाने में खतरा उत्पन्न कर दिया।

अभी हाल ही में हेनरी फोर्ड ने ब्राजील में रबर की व्यवसायिक खेती स्थापित की है और उनके साहस तथा उत्साह की सफलता पर अमेजन क्षेत्र में रबर के उत्पादन की वृद्धि निर्भर करती है परन्तु इस उन्नति के साथ ही साथ देशी रबर रोजगार की अवनति भी निश्चित है। यह बात भी निश्चय तौर पर कही जा सकती है कि ब्राजील के वनों के रबर का व्यवसाय पुनः अपनी पूर्व स्थिति नहीं प्राप्त कर सकता है। वास्तविकता तो यही है कि दिन प्रति दिन उसमें अवनति ही होने को है।

दक्षिणी एशिया में रबर का उत्पादन

समस्त संसार के रबर का अधिकांश भाग ब्रिटिश मलय, सुमात्रा, यव द्वीप, लङ्का, ब्रिटिश बोर्नियो, फ्रांसीसी हिन्द चीन, स्याम तथा भारत में उत्पन्न होता है। इन देशों में समस्त संसार का ६८ प्रतिशत भाग रबर उत्पन्न किया जाता है। इन स्थानों की भौगोलिक दशा राजनैतिक तथा आर्थिक स्थिति ने इन देशों में रबर के व्यवसाय को और अधिक उन्नतिशील बनाने में बहुत अधिक योगदान किया है।

दक्षिणी एशिया के जिन भागों में रबर का उत्पादन होता है वहां का वातावरण तथा जलवायु रबर के उत्पादन तथा पौधों के बढ़ने के लिये बहुत ही अधिक उपयोगी है। दक्षिणी एशिया में निचले तटीय प्रदेशों तथा निचली ढ.लू पहाड़ियों पर बड़े-बड़े सस्ते मैदान हैं जहां पर रबर की खेती सरलतापूर्वक की जा सकती है। इन प्रदेशों की मिट्टी में अधिक लवण है और मिट्टी की गहराई भी अधिक है। उसमें पानी भी नहीं एकत्रित होता है वरन् वह बराबर बह कर बाहर चला जाता है। इसलिये रबर के पौधों की जड़े १० फुट की गहराई तक सरलतापूर्वक जा सकती हैं। इन क्षेत्रों का तापमान भी ऊँचा रहता है और ७० से १२० इञ्च तक सालाना वर्षा होती है, किसी भी महीने में ३ इञ्च से कम वर्षा नहीं होती है। ऐसी अवस्था में रबर के पौधे इतनी शीघ्रता के साथ उगते और बढ़ते हैं कि पांच वर्ष के भीतर ही उनके तनों की मोटाई ८ इञ्च हो जाती है। इन नवीन होन हार रबर के वृक्षों में बहुत अधिक दूध निकलता है। इसलिये जिस समय (केवल कुछ सप्ताह तक) साल में कम वर्षा होती है उसी समय यहां रबर के पौधों से दूध नहीं निकलता है इसके अतिरिक्त साल भर उनमें विशेष वर्षा तथा तापमान होने के कारण दूध उत्पन्न होता रहता है और साल भर बराबर दूध निकाला जाता है। और उनसे अमेजन नदी के वनों से कहीं अधिक रबर का दूध प्राप्त होता है और चूंकि रबर की फसल बहुत अधिक

लम्बे समय वाली होती है इसलिये वहां पर मजदूर भी बहुत अधिक और सस्ते में मिलते हैं।

यद्यपि एशिया के यहां रबर उत्पादक प्रदेश अमरीका के बड़े बाजारों से १० हजार मील से अधिक दूरी पर स्थित हैं फिर भी इन की स्थिति अमेजन बेसिन की अपेक्षा भौगोलिक दृष्टि से कहीं अधिक लाभप्रद है। पहली बात तो यह है कि रबर के बगीचे समुद्र तट पर या उसके समीप स्थित हैं दूसरे यह कि यदि वे समुद्र तट से दूर आन्तरिक प्रदेश की ओर हैं तो ब्रिटिश मलय की भांति ही रेलवे लाइन पर स्थित हैं। यदि अमेजन नदी के बेसिन वाले वनों की एक हजार मील दूरी की ढुलाई वाली कठिनाइयों तथा व्ययों की तुलना दक्षिणी-पूर्वी एशिया के रबर को अमरीका लाने वाली कठिनाई तथा व्यय से की जाय तो पता चलेगा कि वास्तव में दक्षिणी-पूर्वी एशिया से अमरीका रबर लाना कहीं अधिक सरल तथा लाभप्रद है क्योंकि दक्षिणी-पूर्वी एशिया में यातायात साधनों की बड़ी सुविधा है। दूसरे यह कि रबर का यह एशियाई प्रदेश प्राचीन संसार तथा योरुप के व्यापारिक मार्ग पर स्थित है। संयुक्त राष्ट्र अमरीका को इसके लाने में कम व्यय करना पड़ता है क्योंकि रबर की ढुलाई के लिये जलयानों में पर्याप्त स्थान रहता है और ढुलाई भी सस्ती पड़ती है। और चूंकि रबर नाशवान वस्तु नहीं है, इसलिये उसे उस समय तक जहाज पर लादने से रोक रखा जा सकता है जब तक जहाज आवश्यक तथा नाशवान वस्तुओं को ढोकर खाली नहीं हो जाते हैं और फुर्सत के समय कम ढुलाई पर रबर को लादने के लिये तैयार नहीं हो जाते हैं। चूंकि दक्षिण पूर्व एशिया से यूरोप तथा अमरीका को नित्य-प्रति जहाज आते-जाते रहते हैं, इसलिये रबर की खेती के जो अमरीकी अथवा यूरोपीय निरीक्षक रहते हैं उन्हें घर से हजारों मील की दूरी पर भी बड़ी सुविधा रहती है। जिस स्थान की जानकारी अधिक लोगों को होती है और जो प्रसिद्ध व्यापारिक मार्ग पर स्थित होता है वहां आवश्यकता पड़ने पर लोग अपनी पूंजी लगाने में हिचक नहीं करते हैं। यह मानव जाति का स्वभाव है कि वह अपनी जानकारी वाली वस्तु तथा स्थान पर पूंजी लगाने में कम झिझकता है। समुद्र तट की स्थिति भीतरी स्थलीय भूमि की स्थिति की अपेक्षा कहीं अधिक स्वास्थ्यप्रद तथा लाभ दायी होती है।

आर्थिक दृष्टि से दक्षिण-पूर्व एशिया में सबसे बड़ी लाभ की बात यह है कि वहां पर देशी श्रमिक कहीं अधिक संख्या में प्राप्त हो सकते हैं। यदि किसी स्थान पर मजदूरों की कमी होती है तो वहां पर समीपवर्ती घने बसे देशों तथा स्थानों से श्रमिक आ जाते हैं। जैसे कि ब्रिटिश मलय में भारतवर्ष से तथा सुमात्रा में यवद्वीप से मजदूर रबर के बगानों में काम करने के लिये आते हैं। इस प्रकार श्रमिकों की अदला-बदली भी होती रहती है। इन श्रमिकों की सहायता के के लिये चीनी श्रमिक भी होते हैं। उष्ण कटिबन्ध में दक्षिण-पूर्व एशिया तथा चीन के श्रमिक सर्वोत्तम होते हैं। ये श्रमिक ब्राज़ील तथा मरटीजों के श्रमिकों की अपेक्षा न केवल अधिक कार्यकुशल तथा परिश्रमी होते हैं वरन् रबर के वृक्षों में सूराख करने में भी अधिक चतुर और कुशल होते हैं क्योंकि सूराख करने में यदि त्रुटि हो जाती है तो उससे रबर के वृक्ष मर जाते हैं।

जब अंग्रेजों को रबर के उत्पादन का शौक उत्पन्न हुआ तो उनके लिये आवश्यक हो गया कि वह अपने उपनिवेशों के आर्थिक जीवन में उसका समावेश करें। इसके अनेक वर्ष पूर्व कि व्यापारी लोगों को रबर के उत्पादन में रुचि प्राप्त हो ब्रिटिश सरकार ने लङ्का में रबर के बगीचों के लगाने का सफल प्रयोग कर लिया था। १६०५ तथा १९१० ई० में रबर के मूल्य में जो विशेष रूप की वृद्धि हुई उसके परिणाम स्वरूप अंग्रेजों ने मलय तथा लङ्का में रबर के बगीचों के लगाने में बहुत अधिक पूंजी लगाई और लङ्का तथा मलय में जमीन दिलवाकर, बीजों को बांट कर तथा यातायात साधन तैयार करके ब्रिटिश सरकार ने उनकी सहायता की। राजनीतिक दृष्टि से यह प्रदेश सुदृढ़ तथा मजबूत थे। अंग्रेज उपनिवेशों की भांति ही डच लोगों ने भी पूर्वी द्वीप समूह में रबर के व्यवसाय को उन्नति प्रदान की।

संसार में रबर के लिये जो मांग हुई और अमेजन के वनों से जिसकी पूर्ति नहीं हो सकी उसकी

पूर्ति रबर की व्यवसायिक खेती द्वारा की गई। जंगली रबर की अपेक्षा बगीचों वाले रबर में सब से बड़ा लाभ यह है कि बगीचों में रबर के वृक्ष समीप-समीप स्थित होते हैं और बगानों में एक मनुष्य ६ घंटे के भीतर लगभग ४०० वृक्षों में सुराख कर सकता तथा दूध एकत्रित कर सकता है और इस पर जो व्यय पड़ता है वह एक पौंड रबर पर जो सम्पूर्ण व्यय होता है उसका केवल एक तिहाई होता है।

इसके अतिरिक्त वैज्ञानिक अनुसंधानों द्वारा रबर की व्यवसायिक खेती से अनेक प्रकार के लाभ हुये हैं। विज्ञान की सहायता से प्रति एकड़ में ४०० पौंड से बढ़ाकर १५०० पौंड तक रबर के दूध में वृद्धि की

२—संसार के प्रमुख रबर उगाने वाले प्रदेश

गई है अर्थात् जहां पहले एक एकड़ बगीचे में ४०० पौंड रबर का दूध निकलता था वहां अब विज्ञान की सहायता से उसमें १५०० पौंड निकलता है। रबर के वृक्षों में छेद करने की प्रणाली में परिवर्तन उत्पन्न करने तथा निरीक्षण करने के फलस्वरूप अधिक दूध निकलने लगा है और रबर के वृक्ष भी छेद करने के कारण कम सूखने लगे हैं। रबर वैज्ञानिक तौर पर तैयार किया जाता है। रबर के कारखाने में रबर का दूध लाकर एक बड़े टैंक में डाला जाता है। टैंक में डालने के एक घंटे के पश्चात् ही वह जमकर एक बड़ा ठोस बाला या चट्टान बन जाता है। उसके पश्चात् रबर की वह बड़ी चट्टान एक रोलिंग मशीन में डाल दी जाती है जिसमें दब कर वह कई इंच चौड़ी तथा $\frac{1}{2}$ इंच मोटाई वाली एक बड़ी चादर सी बन जाती है उसके पश्चात् उसे मोड़ तथा बांध कर जहाज पर लाद दिया जाता है। व्यवसायिक रबर का क्रय-विक्रय बड़ी चतुराई के साथ किया जाता है।

दक्षिण-पूर्व एशिया के निवासियों ने अपने देशी रबर की एक नई किस्म का अनुसंधान किया है और वह उसे देशी रबर के नाम से पुकारते हैं। वे लोग एक छोटे से खेत में बहुत से रबर के वृक्ष लगा देते हैं और उसके पश्चात् उनमें सुराख करके दूध निकालते हैं और उसे तैयार करके बेचते हैं। इस प्रकार रबर का उत्पादन तो सम्भव है परन्तु केला या गन्ने का उत्पादन इस इस प्रकार किया जाना आर्थिक दृष्टि से कदापि सम्भव नहीं है। देशी रबर उत्पादन में व्यवसायिक खेती का ऊपरी व्यय तथा निरीक्षण सम्बन्धी व्यय नहीं पड़ता है। जब रबर की कीमत घट जाती है तो देशी लोग रबर का दूध निकालना बन्द कर देते हैं और वे अपने खेतों में खाद्य सामग्री

की उपज करने लग जाते हैं। और जब रबर का भाव बढ़ जाता है तो वह पुन: दूध निकालना आरम्भ कर देते हैं जो कि पहले की अपेक्षा बहुत अधिक निकलने लगता है। इसका मतलब यह हुआ कि रबर के वृक्षों को कुछ समय तक आराम देने के पश्चात् जब उससे दूध निकाला जाता है तो पहले की अपेक्षा उसमें अधिक दूध निकलता है।

यह देशी रबर जंगली व्यवसायिक खेती वाले रबर के मध्य वाला रबर होता है और इससे जंगली तथा व्यवसायिक दोनों प्रकार के रबर के लाभ प्राप्त हैं परन्तु हानि कम है। जंगली रबर के वृक्षों की भांति देशी रबर के वृक्ष दूर-दूर स्थित नहीं होते हैं वरन् समीप समीप स्थित होते हैं। यद्यपि रबर की देशी खेती से व्यवसायिक खेती की भांति लाभ नहीं होता है तो भी मलय, सुमात्रा तथा बोर्नियो द्वीपों में देशी रबर की खेती खूब होती है।

रबर उत्पादन का साहसी कार्य—

रबर के उत्पादन में सबसे बड़ा खतरा यह है कि उसके मूल्य को उतना ही नहीं रखा जा सकता है जितना कि उसके कुशल उत्पादक रखना चाहते हैं। १६०५ तथा १६१० ई० में ब्राजील ने रबर का मूल्य बढ़ाकर जो रुपया ऐंठ लिया उसका परिणाम यह हुआ कि लंका, मलय, जावा तथा भारत आदि में रबर का उत्पादन होने लगा और इन प्रदेशों में रबर की जो खेती की गई उससे ब्राजील के वनों से कहीं अधिक रबर उत्पन्न होने लग गया। १६२२ से १६२८ ई० तक स्टिवेंसन ने रबर तैयार करने की जो योजना बनाई उसके परिणाम स्वरूप रबर का मूल्य बहुत बहुत घट गया जिसके कारण ब्रिटिश सरकार को रबर का बनावटी मूल्य स्थापित करना पड़ा। जब अंग्रेजों ने रबर के उत्पादन पर रोक लगा दी और रबर का मूल्य बढ़ गया तो डच लोगों ने पूर्वी द्वीप समूह में रबर की व्यवसायिक खेती आरम्भ कर दी। जिससे वे संसार का ५० प्रतिशत रबर उत्पन्न करने लगे और इस प्रकार रबर के उत्पादन पर ब्रिटेन का जो एकाधिकार स्थापित था। यह जाता रहा बहुतेरे अंग्रेजों ने स्टिवेंसन की योजना को सर्वोत्तम स्वीकार किया इसलिये उसे सरकार की स्वीकृति तथा सहायता प्राप्त हो गई। इसका मुख्य कारण यह था कि रबर के बढ़े हुये मूल्य का भार अंग्रेज उत्पादकों पर पड़ता था वरन् अमरीकी लोगों पर पड़ता था जो कि उसका अधिकांश भाग खरीदते थे उस समय पहले प्रतिपौंड रबर पर ३० सेंट और बाद में ४२ सेंट उत्पादन में खर्च पड़ता था। इससे यह बात स्पष्ट है कि रबर के बनावटी मूल्य से रबर का अच्छा उत्पादन नहीं होता है क्योंकि आजकल कम्पनियां ६ सेंट प्रति पौंड के हिसाब से रबर का उत्पादन कर रही हैं।

१६२८ ई० में अंग्रेजों ने यह बात अनुभव की कि उन्हें रबर के उत्पादन में हानि हो रही है। इसलिये उन्होंने उसके उत्पादन पर से रोक हटा ली जिसका परिणाम यह हुआ कि रबर का मूल्य शीघ्रता के साथ गिर गया और उसका परिणाम यह हुआ कि समस्त संसार में रबर के मूल्यों में भारी गिरावट आ गई। १६३१ में यह दशा होगई कि रबर के उत्पादन पर सदैव के लिये ५ सेंट से भी कम खर्च पड़ने लगा।

अंग्रेज तथा डच लोगों को रबर के साहसी उत्पादन पर विश्वास नहीं हुआ और उन्होंने १६३४ ई० से उसके उत्पादन पर रोक लगा दी है और रबर के उत्पादकों को नियत कोटे के अनुसार ही रबर का उत्पादन करना पड़ता है। इस नीति से देशी उत्पादकों को हानि हो रही। अंग्रेजों तथा डच की यह योजना सदैव के लिये लाभदायी कदापि नहीं हो सकती है क्योंकि ब्राजील तथा लाइबेरिया में अमरीकनों ने अपने हितों के साधन की ओर ध्यान देना आरम्भ कर दिया है और यदि वे वहां पर रबर की व्यवसायिक खेती आरम्भ कर देते हैं तो फिर ब्रिटिश तथा डच रबर उत्पादकों के लिये वे बड़े भारी स्पर्धी बन जायेंगे क्योंकि अमरीकी लोग न केवल अपने देश के लिये रबर का उत्पादन करेंगे वरन् विदेशों के लिये भी उसका उत्पादन करेंगे। संयुक्त राज्य अमरीका चाहता है कि समूचा उत्तरी तथा दक्षिणी अमरीका उसके प्रभुत्व में आ जाय और वह यूरोप तथा एशिया पर किसी प्रकार की सामग्री की खरीद के लिये निर्भर न करे और चूंकि अमरीका से रबर की बहुत अधिक खपत होती है और उसे रबर विदेशों से ही खरीद-

पड़ता है जो कि संकट काल में मिलना बड़ा कठिन हो जाता है इसलिये सम्भव है कि अमरीका ब्राज़ील में रबर की खेती करने का पुनः प्रयास करे। कुछ लोग जिन्होंने रबर की स्थिति का भली भांति सिंहावलोकन तथा अध्ययन किया है उनका विचार है कि ब्राज़ील से अमरीका को शीघ्र ही भविष्य में रबर आने लग जायगा।

संयुक्त राज्य अमरीका में बनावटी रबर का भी प्रयोग किया जाता है इसके अलावा वहां पर जब रबर के मूल्यों में वृद्धि हो जाती है तो वहां पर प्रयोग में लाये हुये रबर को पुनः कारखानों में वापस करके और पुनः तैयार करके प्रयोग में लाया जाता है। अमरीका चूंकि रबर के लिये एशिया तथा यूरोप पर निर्भर करता है इसलिये इसमें बहुत कम संदेह है कि वह ब्राज़ील में रबर की व्यवसायिक खेती पर अधिक योगदान प्रदान करे।

केले की व्यवसायिक खेती

केला दक्षिण एशिया की उपज है और वहाँ से ही यह सारे संसार में फैलाया गया है। १६१६ ई० में इसके पौधे सैन डोमिंगो में ले जाये गये और फिर वहां से शीघ्र अमरीका के समस्त उष्ण प्रदेशों में फैला दिये गये जहां पर यह लोगों की खाद्य सामग्री का एक आवश्यक अंग बन गया है। १८७५ तथा १९०० के मध्य केले की फसल अमरीका की एक व्यवसायिक फसल हो गई। केरेबियन क्षेत्र के अतिरिक्त केनरी द्वीपों में भी केले की उपज बहुत अधिक होती रही है और वहां से केला अन्य-अन्य देशों में भेजा जाता रहा है। हाल के कुछ वर्षों में यूरोप, जापान, अर्जेनटाइना तथा भारत में केले की मांग अधिक हो गई जिससे इन देशों में और इनके अलावा अन्य देशों में भी केले का उत्पादन बढ़ गया है।

केरेबियन में केले की व्यवसायिक खेती—लगभग एक दर्जन देशों में केले की अच्छी उपज होती है। यद्यपि केरेबियन क्षेत्र में अब उतना अधिक केला नहीं पैदा होता है फिर भी वहां की उपज का ७५ प्रतिशत भाग विदेशों को अब भी निर्यात किया जाता है। केरेबियन क्षेत्र में केले की व्यवसायिक खेती अवसर वादी नहीं है। परन्तु यह वहां पर भौगोलिक तथा आर्थिक साधनों के उपलब्ध होने के कारण होती है।

केले का पौधा और उसकी खेती वाले क्षेत्र

केले का पौधा उष्ण तथा मानसूनी प्रदेश में अधिक होता है। और उष्ण मानसूनी निचले प्रदेशों में ही इसकी व्यवसायिक खेती हो सकती है। एक वर्ष में ही इसका पौधा अपनी पूरी ऊँचाई और चौड़ाई तक बढ़ जाता है। यह लगभग २५ फुट ऊँचा होता है और इसका तना १४ इंच मोटा होता है। केले के पौधों में फलियों या छीमियों के घौर लगते हैं। साधारण तौर पर एक पौधे में एक या दो घौर होते हैं। भारतवर्ष में तो एक-एक पौधे में चार-पांच घौर तक लगते हैं। भारत वर्ष में छोटी और बड़ी फलो वाले दो प्रकार के केले होते हैं। प्रत्येक घौर में १०० तक फलियाँ होती हैं और घौर का भार पकने पर ५० से ८० पौंड तक होता है। केले के पौधे के लिये ७५ से १०० इंच तक सालाना वर्षा की आवश्यकता होती है। यह नीची परन्तु पानी के बहाव वाली भूमि में उगता है। इसके पकने के लिये गरमी की आवश्यकता होती है और उस समय वर्षा बिल्कुल नहीं होनी चाहिये। इसके पौधे के लिये धूप की भी बड़ी आवश्यकता है। जिन प्रदेशों में अल्प शुष्क ऋतु होती है वहां पर भी केला उगाया जाता है। ऐसे स्थानों पर शुष्क ऋतु में वर्षा के अभाव में सिंचाई द्वारा काम लिया जाता है। होंडूराज, दक्षिणी जमैका, कोलम्बिया के सेन्टा माटी क्षेत्र तथा मध्य और पश्चिमी अमरीका के क्षेत्रों में वर्षा के अभाव में सिंचाई करके ही केले की उपज की जाती है। केले के पौधे के लिये गहरी भूमि की आवश्यकता होती है। उसके पौधे को पानी की ज़रूरत तो होती है, परन्तु उसकी जड़ों के आस-पास पानी नहीं एकत्रित होना चाहिये। उसको ४० प्रतिशत मिट्टी की आवश्यकता है। नमक की भी उसे खूब आवश्यकता होती है। इससे उसके पौधे में रोग होने की आशंका नहीं होती है। यदि किसी क्षेत्र में केले की उपज के लिये सभी प्रकार की आवश्यक वस्तुएं प्राप्त भी हों तो भी वहां पर अधिक लम्बे-चौड़े प्रदेश में केले की उपज करना असम्भव है क्योंकि आंधी या तूफान से इसकी फसल नष्ट हो जाती है। जिस समय केले की फसल तैयार

हो जाती है तो इसकी फलियों का भार बहुत अधिक हो जाता है। इसका पौधा इतना कमजोर होता है कि यदि फसल के तैयार होने पर २५ मील की चाल से भी हवा चलने लगती है तो इसके पौधे गिर जाते हैं। इसी कारण किसी देश के बाजार में सदैव केले की पूर्ति के लिये आवश्यक है कि वह एक नहीं वरन् विभिन्न समीपवर्ती प्रदेशों पर निर्भर करे। जब केले के पौधों पर पनामा रोग का आक्रमण होता है तो यह रोग केले के प्रदेश में शीघ्रता के साथ फैलता है और तब फिर सारी फसल नष्ट हो जाती है और वहां पर केला नहीं उत्पन्न हो सकता। ऐसी दशा में उसे क्षेत्र को छोड़ ही देना पड़ता है या केले के स्थान पर दूसरे पौधे लगाने पड़ते हैं। चूँकि केले का पौधा धरती की उर्वरा शक्ति को मार देता है इसलिये जिस क्षेत्र में किसी सरकार से जमीन मांगनी पड़ती है और उसके लिये ठीका करना करना पड़ता है या जमीन खरीदनी पड़ती है। यदि केले की खेती के हेतु उपयुक्त भूमि प्राप्त हो जाती है तो फिर उसकी खेती के लिये कुशल कार्यकर्ता काम पर लगाये जाते हैं। केवल केले की उपज करने वाले कुशल किसान ही केले के लिये उपयोगी भूमि का चुनाव सकते हैं। भूमि प्राप्त हो जाने के पश्चात् खेती करने के लिये मजदूरों की भर्ती कम्पनी द्वारा की जाती है और यदि स्थानीय मजदूर प्राप्त न हुये तो बाहर से मंगाने पड़ते हैं और उनके निवास के लिये मकान बनाने पड़ते हैं। उसके पश्चात् काम करने वाले श्रमिक भूमि की पड़ताल करते हैं और फिर उसकी सफाई करके उसमें खाइयाँ तथा नालियाँ बनाते हैं। उसके पश्चात् पंक्तियों में
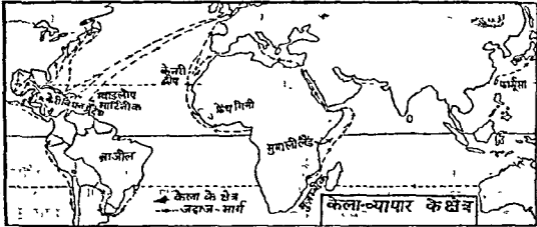
३—संसार के प्रधान केला उगाने वाले प्रदेश

केले की उपज की जाती है उस क्षेत्र को १० या १५ वर्षों के पश्चात् छोड़ देना पड़ता है।

केले का उत्पादन और उसकी जहाजों पर लदाई

केले का उत्पादन बड़े सस्ते तौर पर किया जाता है और वृहद् कृषक कार्पोरेशन प्रणाली के अन्तर्गत वह जहाजों पर लाद कर विदेशों को भेजा जाता है।

इसके पूर्व कि केले की फसल काटी जाय अनेक कठिन समस्याओं का सामना करना पड़ता है। सब से पहली कठिनाई केले की उत्पादन-संस्थाओं के सामने यह होती है कि केले के उत्पादन के हेतु उन्हें खूँटे गाड़े जाते हैं और उनके मध्य उत्तरी अमरीकी क्षेत्रों में १५ फुट की और दक्षिणी क्षेत्रों में २० फुट की दूरी रखी जाती है। उष्ण प्रदेशों में उत्पन्न होने वाला केले का वृक्ष शीत वाले स्थानों की अपेक्षा अधिक बड़ा होता है। उसके पश्चात् खूँटों के समीप सूराखों में केले की महीन जड़े एक फुट गहराई में जाती हैं।

केले की खेती आरम्भ करते ही खेती वाले क्षेत्र तक रेलवे लाइन का बनाना आरम्भ कर दिया जाता है ताकि खेती के लिये आवश्यक सामग्री रेलों द्वारा लाई जा सके। खेती में काम करने वाले श्यन प्रदेशों

तथा श्रमिकों के लिये निवास स्थान तैयार किये जाते हैं और काम में आने वाले पशुओं के रहने का स्थान तथा चराई के लिये चारे आदि सामग्री तथा भूमि का प्रबन्ध किया जाता है। केले के पौधों को रोपने के तीन महीने के बाद उसकी निराई पुरुषों के द्वारा की जाती है। और निराई वाली घास के ढेर केलों के पौधों के मध्य सूखने के लिये लगा दिये जाते हैं। जब तक केले के पौधे इतने बड़े नहीं हो जाते हैं कि वे अपने चारों ओर की भूमि पर छाया करलें तब तक चार-चार मास के अन्तर पर उनकी निराई और गोड़ाई होती रहती है। व्यवसायिक खेतों में काम करने वाले कर्मचारियों तथा श्रमिकों की स्वास्थ्य-रक्षा के लिये कम्पनी द्वारा डाक्टरों तथा औषधियों का प्रबन्ध किया जाता है। इंजीनियर भी रक्खे जाते हैं। मलेरिया तथा पेचिश आदि की बीमारियां अधिक होती हैं और जहां एक बार इन बीमारियों का प्रकोप बढ़ जाता है तो फिर इनकी रोक-थाम बड़ी कठिन हो जाती है। कृषि वाले क्षेत्र में अस्पताल तथा स्कूल भी स्थापित किये जाते हैं। अस्पतालों में रोगियों की चिकित्सा होती है और स्कूलों में कृषि में काम करने वाले कर्मचारियों के बच्चे शिक्षा प्राप्त करते हैं।

केले के पौधों के लगाने के १२ महीने के पश्चात् केलों के पौधों में केले के एक एक गुच्छे या और लगते हैं। गुच्छों या घौरों के तोड़ने के पश्चात् केले के वृक्षों को काटकर गिरा दिया जाता है और वह वहीं पड़े हुये सड़ते तथा सूखते रहते हैं। उसके पश्चात् केले की जड़ों में अंकुर निकलते हैं। प्रत्येक केले के वृक्ष के तने की जड़ से अनेकों अंकुर निकलते हैं। परन्तु दो से पांच तक होनहार अंकुर बढ़ने के लिये रक्खे जाते हैं। शेष को काट दिया जाता है क्योंकि यदि सभी अंकुरों को बढ़ने दिया जाता है तो केले के वृक्ष एक तो बड़े नहीं होते हैं दूसरे यह कि उनमें [illegible]यां भी छोटी ही आती हैं। बारह [illegible]यह अंकुर भी बढ़कर बड़े वृक्ष होकर [illegible]कार कई वर्षों तक लगातार केले [illegible]ती है और यह भी सम्भव हो [illegible] साल भर लगातार केले की [illegible]। इस प्रकार साल लगातार काम लगे रहने से मजदूरों की आवश्यकता भी कम हो जाती है और उत्पादन व्यय में कमी हो जाती है। केले की फलियां वृक्षों पर ही पकने नहीं दी जाती हैं और हरी अवस्था में ही काट ली जाती हैं। क्योंकि यदि वृक्षों पर ही फलियां पकने को छोड़ दी जाय तो वह फट जाती हैं, उनमें कीड़े लग जाते हैं और वे उनका रस चूस लेते हैं। केले के बगीचों का प्रबन्धक हर सप्ताह में अपने बगीचों का दो बार देख-भाल करता है ताकि उसे पता चलता रहे कि कितने फल पक गये हैं और कितनों को दिन भर में तोड़ा जा सकता है। केले के काटने के लिये तीन आदमियों की जरूरत पड़ती है। एक आदमी केले के गुच्छों को काटता है, दूसरा उन्हें बांधता है और तीसरा उन्हें उठाकर खच्चरों आदि पर लादता है।

पूर्वी कोस्टा रीका के मैदानों में केले के कुशल उत्पादकों ने १८८३ ई० में १ लाख केले के गुच्छे तैयार करके निर्यात किये थे। उसके बाद वहां केले के उत्पादन में वृद्धि हुई और १९१३ ई० में वहां से १ करोड़ १० लाख केले के गुच्छे बाहर भेजे गये। उसके बाद वहां केले के क्षेत्रों में पनामा रोग का प्रसार हो गया और केले की उपज वाली भूमि छोड़ दी गई जिससे वहां केवल ३० लाख गुच्छों की ही उपज होने लगी। उसकी पनामा से १९१९ ई० में ५० लाख केले के घौर या गुच्छे बाहर निर्यात किये गये परन्तु बाद में पनामा रोग के कारण खेत में कमी कर दी गई और हाल के वर्षों में वहां से केवल ५० हजार गुच्छे सालाना विदेशों को भेजे गये हैं।

चूंकि केले की फलियां शीघ्र ही खराब हो जाती हैं, इसलिये व्यवसायी कम्पनियों को केले की फलियों को सुरक्षित दशा में निर्यात करने के लिये निर्धारित समय के भीतर ही सुरक्षित यातायात साधनों का प्रबन्ध करना पड़ता है। उन्हें केले वाले क्षेत्रों के मध्य आध मील के अन्तर पर छोटी छोटी ट्रक लाइनें बनानी पड़ती हैं और उन्हें प्रधान रेलवे लाइनों से जोड़ना पड़ता है जो कि बन्दरगाहों तक जाती हैं। बन्दरगाह पर केले की लदाई के लिये एक विशेष घाट तैयार करना पड़ता है जिसमें केले की फलियों को सुरक्षित अवस्था में कम से कम हानि पहुँचाये हुये

शीघ्रता के साथ लादने का साधन करना पड़ता है। केले की कम्पनियों वाले जहाजों पर साधारण लादने वाले जहाजों की अपेक्षा ४० प्रतिशत अधिक व्यय करना पड़ता है क्योंकि उनमें फलियों को सर्दी, गर्मी तथा हवा पर्याप्त मात्रा में प्रदान करने के लिये मशीनों आदि की विशेष रूप से व्यवस्था करनी पड़ती है।

केले के बड़े-बड़े बगीचों अथवा खेतों से केलों की फलियों के गुच्छे काट कर खच्चरों या आदमियों के द्वारा रेलवे लाइन पर लाये जाते हैं। यहां से रेल के डिब्बों में लाद कर वे बन्दरगाहों पर पहुँचाये जाते हैं। काटने वाले स्थान से लेकर जहाज तक काटने, बांधने तथा ढोने तथा लादने आदि का ऐसा उत्तम प्रबन्ध रहता है कि १५ घंटे के भीतर ७० हजार गुच्छे खेत से काट कर जहाजों पर लादे जा सकते हैं।

जब केला जहाजों पर लाद दिया जाता है तो रेफ्रीजरेटर मशीनें जहाज में लगी रहती हैं वे जहाज के तापमान को ठंढा करके ५७ अंश कर देती हैं। चूंकि केले की फलियों में विशेष रूप से गरमी होती है और लादने के बाद भी उसमें से गरमी उत्पन्न होती रहती है इसलिये केले वाले रेफ्रीजरेटरों को साधारण मांस आदि वाले शीतल जहाजों से अधिक शक्ति शाली होना पड़ता है। क्योंकि यदि मशीनों द्वारा फलियों को शीतलता न मिलती रहे तो वह शीघ्र ही सड़कर खराब हो जाँय। यूरोप के देशों को जब केलों का जहाज लदकर चलता है तो रात दिन प्रति घंटा फलियों की देख-रेख करनी पड़ती है। शीत काल में जब केले वाले जहाज अटलांटिक सागरी बन्दरगाहों पर पहुँचते हैं तो केले के डिब्बों को गरमी पहुँचाना आवश्यक हो जाता है ताकि फलियों को आवश्यक गरमी प्राप्त होती रहे। जिन बन्दरगाहों पर केला उतार जाता है वहां पर केले की फलियों को पकाने के लिये विशेष प्रकार के कमरे बने होते हैं जिनमें उष्ण तथा ठंढा करने वाली मशीनें लगी रहती हैं और हवा देने के लिये भी मशीनें लगी होती हैं। बिकने वाले बाजारों तक ले जाने वाले रेल के डिब्बों में भी ऐसा ही प्रबंध होता है।

केले जैसे व्यवसाय के लिये आवश्यक है कि बाजार में लगातार केला पहुँचता रहे। केरेबियन क्षेत्रों में केले की जैसी उपज होती है उसके फलस्वरूप बाजारों में लगातार केले का पहुँचाना सम्भव होता रहता है यद्यपि आंधी तथा बवंडरों के कारण कभी-कभी फसल को बहुत अधिक हानि पहुँचती है। बड़े-बड़े कारपोरेशन (जिनके पास केले के बहुत अधिक खेत होते हैं उन) पर इस प्रकार की हानि का विशेष प्रभाव नहीं पड़ता है। केले के छोटे-मोटे उत्पादक अपने उत्पादन के निर्यात के लिये कम्पनियों पर ही निर्भर करते हैं। वास्तविकता तो यह है कि केले की बड़ी-बड़ी कम्पनियां जो केले का व्यवसाय करती हैं वह अपनी केले की लगातार मांग के लिये छोटे-मोटे उत्पादकों पर अधिकतर निर्भर करती हैं और उनका केला खरीद-खरीद कर वह निर्यात किया करती हैं।

केले के कारपोरेशनों के सम्बन्ध में उन देशों के लोग बहुत कुछ एतराज करते हैं तथा उनकी कार्य प्रणालियों के सम्बन्ध में टिपणियां किया करते हैं जहां पर वे स्थित होते हैं, क्योंकि उनके केले वाले क्षेत्रों पर उनका ही प्रभुत्व तथा प्रबन्ध होता है। उन क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के जीवन पर कारपोरेशनों का ही नियंत्रण होता है। बहुधा कम्पनियों को राजनैतिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। फिर भी केरेबियन क्षेत्रों में जो केले की कम्पनियां हैं उनके द्वारा वहां के निवासियों को बहुत कुछ लाभ पहुँचा है। इन कम्पनियों ने वहां के स्थानीय निवासियों को अपने यहाँ नौकरियां दी हैं, काम दिया है, स्वास्थ्य साधनों तथा सफाई में उन्नति प्रदान किया है, अस्पताल और स्कूल आदि स्थापित किये हैं तथा यातायात साधनों में उन्नति प्रदान की है। इसके अतिरिक्त इन कम्पनियों के अच्छे उन्नतशील केलों के उत्पादन करने के सम्बन्ध में जो आविष्कार तथा अनुसंधान किये हैं और उन पर जितना अधिक रुपया लगाया है, वह कदाचित कम्पनियों के अभाव में कभी भी सम्भव नहीं होता। वह उन्हीं कम्पनियों के प्रयत्नों का परिणाम है जो केले की उन्नतिशील फलियां प्राप्त हो रही हैं।

अन्य प्रदेशों में केले की व्यवसायिक खेती

अमरीकी विशेषज्ञों के विचार से केरेबियन प्रदेशों

के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में बहुत अधिक केला नहीं उत्पन्न होता है फिर भी हाल के वर्षों में संसार के विभिन्न प्रदेशों में इसकी खेती होने लग गई है। केले की खेती की उन्नति तथा प्रसार का मुख्य कारण केले की उपयोगिता ही है। प्रत्येक नवीन क्षेत्र जहाँ केले की उपज होने लगती है वह अपनी उपज के लिये नया बाजार स्थापित कर लेता है और उस पर अपना एकाधिकार प्राप्त कर लेता है। साधारणतया केले की उपज वाले क्षेत्र नीचे, उष्ण, नम मैदान होते हैं जो कि समुद्र के समीप स्थित होते हैं। इन क्षेत्रों में जो कम्पनियाँ स्थापित होती हैं वे केरेबियन क्षेत्र से ही प्रेरणा प्राप्त करती तथा लाभ उठाती हैं परन्तु इन क्षेत्रों में उत्पादन की वृद्धि जिन बाजारों में उनकी खपत होती है उनकी शक्ति पर ही निर्भर है।

फुट-कर तथा निजी खेती—व्यवसायिक खेती के अतिरिक्त केले की फुट कर तथा निजी खेती भी संसार के विभिन्न भागों में की जाती है। फुट कर तथा निजी खेती की अधिकांश उपज भी कम्पनी वाले क्षेत्रों में कम्पनी के हाथ में ही जाती है, जिससे कम्पनी लाभ में उत्पादकों की साझीदार बन जाती है। परन्तु जहाँ पर केले की खेती वाली कम्पनियाँ स्थापित नहीं हैं वहाँ पर इन व्यक्तियों द्वारा जो केला उत्पन्न किया जाता है वह स्थानीय तथा देशी बाजारों में बेचा जाता है। भारतवर्ष में बम्बई मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, बिहार, बङ्गाल, उड़ीसा और मद्रास राज्यों में केले की फुटकर, निजी तथा व्यवसायिक खेतियाँ होती हैं। भारतवर्ष में अपनी आवश्यकता के लिये पर्याप्त केला उत्पन्न होता है। भारतवर्ष में दो प्रकार का केला होता है। छोटी फलियों वाले केले को चिनिया केला और बड़ी फली वाले को बम्बइया केला कहते हैं। भारतवर्ष में लोग अपने निजी प्रयोग के लिये अपने बगीचों तथा घरों में और दरवाजों पर केले के पौधे लगाते हैं। भारतीय लोग केला को पवित्र पदार्थ मानते हैं। इसकी पत्ती का उपयोग यज्ञों में किया जाता है और इसकी फली प्रसाद में वितरण की जाती है। वास्तव में यह भारत-वर्ष का पुराना फल है और अनन्त काल से भारत में इसकी उपज होती आ रही है। किसी गाँव में भी आप जाइये आप को केले के वृक्ष देखने को मिलेंगे। भारत का जनसंख्या के ध्यान से संसार में दूसरा स्थान है। भारतवर्ष में केले की बहुत अधिक खपत है फिर भारत वर्ष में अपनी आवश्यकता के लिये पर्याप्त मात्रा में केला उत्पन्न होता है और उसे अपनी माँग के लिये विदेशों से केला आयात नहीं करना पड़ता है।

भारतवर्ष की भाँति ही मलाया, हिन्द चीन, हिन्देशिया, पूर्वी द्वीप समूह आदि देशों में केला खूब उपजाया जाता है और वहाँ की स्थानीय माँग की पूर्ति वहाँ की उपज से ही होती रहती है।

केले का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार—संसार की केले की उपज का तीन चौथाई भाग केरेबियन सागर के समीपवर्ती देशों में पैदा होता है और वहाँ की उपज का अधिकांश भाग अमरीका तथा यूरोप के बाजारों में खप जाता है। यूरोपीय देशों में इङ्गलैण्ड में ही केले की सबसे अधिक खपत होती है, अब अन्य देशों में भी इसकी खपत होने लग गई है। केले की कम्पनियों तथा फल कम्पनियों ने आधुनिक समय में यह विचार किया है कि जिन देशों की जन संख्या ५० लाख तक है वहाँ फलों की खपत हो जाने की पूरी सम्भावना है। इसलिये ऐसे स्थानों पर वह फलों के बाजार स्थापित कर रहे हैं तथा ऐसे बाजारों को उन्नति प्रदान करने में लगे हैं। कनारी से यूरोपीय देशों को सदैव से केला आता रहा है और जमैका तथा कोलम्बिया से भी पर्याप्त मात्रा में केला योरुप पहुँचता रहा है। वर्तमान समय में यूरोप के निवासी और खासकर उत्तरी-पश्चिमी योरुप के निवासी उतनी ही संख्या में केलों की खपत करते हैं जितनी संख्या में कि अमरीका के निवासी करते हैं। जैसे जैसे पुराने तथा नवीन देशों में केला की माँग बढ़ती जायगी वैसे वैसे नये-नये बाजार स्थापित होते जायँगे और उनकी पूर्ति के लिये नवीन उत्पादन क्षेत्रों की भी स्थापना होती जायगी।

—:—

कैकाओ या कोको

कैकाओ या कोको — रबर की भांति ही कैकाओ की उपज भी पश्चिमी गोलार्द्ध की ही है। परन्तु वर्तमान काल में इसका अधिकांश भाग पूर्वी गोलार्द्ध से ही प्राप्त होता है। यह उष्ण प्रदेशीय पौधा है और इसकी उपज वाले छोटे-बड़े सभी क्षेत्र उष्ण कटिबंध में ही स्थित हैं। चूंकि कैकाओ का प्रयोग मिठाइयों, मुरब्बों, मदिरा तथा उबटन और अगराज औषधियों में प्रयोग किया जाता है, इसलिये हाल ही में इसके व्यवसाय की उन्नति हो गई है। कैकाओ का प्रयोग सम शीतोष्ण कटिबंध में अधिक होता है और यह पौधा उष्ण कटिबंध के देशों में ही बड़े व्यवसायिक तथा छोटे खेतों में उगाया जाता है। पश्चिमी अफ्रीका, पूर्वी ब्राज़ील, कैरेबियन सागर के देश तथा द्वीपों में ही खास तौर पर इसकी उपज होती है और वहां से ही यह समस्त संसार की मांग की पूर्ति करता है।

पश्चिमी अफ्रीका में उत्पादन — यद्यपि गिनी की खाड़ी के अनेक द्वीपों में कैकाओ की उपज बहुत दीर्घ काल से होती आ रही है, फिर भी इसके समीपवर्ती मिले हुये प्रधान प्रदेश में इसकी उपज की उन्नति पिछले पचास वर्षों में ही हुई है। पश्चिमी अफ्रीका में योरुपीय देशों के दर्जनों उपनिवेश हैं जहां कैकाओ की खेती होती है और उसका निर्यात किया जाता है।

गोल्ड कोस्ट (स्वर्ण तट पर) कैकाओ की खेती

१८५६ ई० में फर्नाण्डो पो से गोल्ड कोस्ट में कैकाओ की खेती आरम्भ की गई। १८६१ ई० में गोल्ड कोस्ट से केवल ८० पौंड कैकाओ निर्यात किया गया उसके पश्चात् वहां कैकाओ का उत्पादन बढ़ने लगा। और १९०० ई० में वहां से ५०० पौंड से अधिक कैकाओ निर्यात किया गया। आज वहां से २ लाख ५० हजार टन कैकाओ निर्यात किया जाता है।

समुद्रतट से लगभग २५ मील की दूरी पर स्थिति से कैकाओ क्षेत्र आरम्भ होता है और भीतर की ओर कई सौ मीलों तक चला जाता है। इस प्रकार एक वृहद प्रदेश इसकी कृषि से घिरा हुआ है। वहां पर १० लाख से अधिक एकड़ भूमि में कैकाओ की खेती होती है। वहां पर कैकाओ की उपज के योग्य बड़ा क्षेत्र है। परन्तु अभी उसके केवल कुछ ही भाग में इसकी खेती होती है। हां भविष्य में वहां पर कैकाओ की खेती का प्रसार हो सकता है। वहां की भूमि निचली है, जहां का पानी नदी नालों द्वारा भली भांति निकला करता है। वहां की जलवायु उष्ण तथा नम है जो समस्त वर्ष एक समान वर्तमान रहती है। इस प्रकार की भूमि तथा जलवायु कैकाओ के लिये बहुत अधिक उपयोगी है। यह बात याद रखने की है कि कैकाओ की उपज उष्ण तथा नम जलवायु में उष्ण प्रदेशों के निचले मैदानों में होती है जहां का पानी सरलता के साथ बह जाता है और जमा नहीं होता है। कैकाओ के लिये अधिक वर्षा की आवश्यकता होती है। साल भर में उसके लिये समान रूप से विभाजित ८० इञ्च वर्षा की आवश्यकता है। अधिक वर्षा के पश्चात् कम वर्षा वाला मौसम उसे चाहिये और उसके पश्चात् सूखी ऋतु होनी चाहिये ताकि उसकी फलियां पक कर तैयार हो सकें। ऐसी अवस्था में कैकाओ की अच्छी उपज होती है। पर्याप्त मात्रा में धूप होने के कारण छाया दार वृक्षों का होना आवश्यक तथा अनिवार्य हो जाता है। परन्तु इससे कुकुरमुत्ता सम्बन्धी बीमारियों के उत्पन्न होने का भय नहीं होता है। यद्यपि इस प्रदेश में कैकाओ सम्बन्धी अनेक बीमारियां नहीं पाई जाती हैं, परन्तु हाल के वर्षों में ही देखा गया है कि वहां कैकाओ वृक्षों को बिना नाम वाली एक ऐसी बीमारी हो गई जिसके फल स्वरूप कैकाओ के वृक्ष सूख गये। वहां का कृषि विभाग इस बीमारी के कारण का पता लगा रहा है ताकि बीमारी की रोक थाम की जा सके। यदि भीषण हवा चलने लगती है तो उससे फलियों में अधिक रस आ जाता है और फिर कैकाओ के टोंढ़ें या फलियां गिर पड़ती हैं। जिस भूमि की मिट्टी अधिक गहरी होती है और लवण अधिक होता है अथवा जहां बलुई मिट्टी होती है या जिस मिट्टी में लोहे तथा सज्जी की मात्रा अधिक होती है उसमें कैकाओ की उपज बहुत अधिक होती है और यदि उसे लगातार खाद दी जाती रहे तो

सदैव उपज अच्छी होती रहती है। गोल्ड कोस्ट के प्रारम्भिक वनों को साफ करना बहुत कठिन है, और यदि वनों को काटा जाता है तो भी उसके वृक्ष और पौधे शीघ्रता के साथ उगते तथा बढ़ते हैं। यही बात कैकाओ के अन्य क्षेत्रों पर भी लागू है।

गोल्ड कोस्ट के निवासी हब्शों का ही प्रायः वहाँ की सारी भूमि पर अधिकार है और वे ही वहाँ कैकाओ की खेती करते हैं। जब तक कैकाओ खरीदार के हाथों में नहीं पहुँच जाती है तब तक उस पर उन लोगों का ही स्वामित्व रहता है। तात्पर्य यह कि गोल्ड कोस्ट के निवासियों का ही अपनी भूमि तथा उपज पर अधिकार है। उसमें कोई भी विदेशी साझीदार नहीं है। वहाँ के आदिवासी निवासी अशिक्षित हैं और वे प्राकृतिक तौर पर स्वेतवर्ण वालों पर सन्देह की दृष्टि से देखते हैं। इसलिये यदि कैकाओ की उपज के सम्बन्ध में सरकारी अफसरों द्वारा सुधार करने का कोई प्रयास किया जाता है तो वह उन्हें अमान्य होता है और वे उसका विरोध करते हैं। वे भविष्य के लिये किसी प्रकार की भी योजना बनाना अनावश्यक समझते हैं और अपने वंश तथा जाति के सरदार की आज्ञा का ही पालन करते हैं। इसलिये उन पर कोई भी बात चाहे जितनी लाभदायी हो यदि वह विरोध करते हैं तो वह लादी नहीं जा सकती है। वहाँ के अफसरों ने किसानों को भूमि को सावधानी के साथ जोतने, बीमारियों से पौधों तथा फसलों की रक्षा करने, वृक्षों को छाँटने तथा भूमि को खाद देने के लिये अनेक प्रकार की धमकियाँ दीं तथा फुसलाया, समझाया बुझाया परन्तु वे किसी भाँति भी उनकी बात स्वीकार करने पर राजी नहीं हुये। इसका परिणाम यह हुआ है कि नवीन भूमि में जो पौधे लगाये गये हैं उनमें उपज कम होती जा रही है। वहाँ प्रति एकड़ में ५० से लेकर १६०० पौंड तक उपज होती है। उपज में इस विषम अन्तर का मुख्य कारण यही है कि जो किसान अधिक समझदार हैं और उचित सलाह को स्वीकार करके उपज बढ़ाने की चेष्टा करते हैं उनकी भूमि में अधिक उपज होती है। जो किसान उचित सलाह नहीं मानते हैं उनकी भूमि में उपज कम होती है।

कैकाओ उष्णार्द्र प्रदेश की और गेहूँ शीतोष्ण प्रदेश की उपज है।

कैकाओ की फसल दो ऋतुओं में तैयार होती है। इन दोनों फसलों में शुष्क काल वाली फसल अधिक प्रसिद्ध है। शुष्क ऋतु सितम्बर से जुलाई मास तक होती है। दूसरी फसल मई तथा जून में तैयार होती है और खास कर जब अक्तूबर तथा नवम्बर मास में थोड़ी वर्षा होती है तो मई जून में अच्छी फसल तैयार

होती है। परन्तु यह फसल सितम्बर से फरवरी वाली फसल से छोटी होती है। फसल के समय वहां के मर्द, स्त्री तथा बच्चे सभी मिलकर वृक्षों से फलियां तोड़ते हैं और उन्हें चीर फाड़ कर बीज निकालते हैं। परन्तु बड़े दुःख का विषय है कि गोल्ड कोस्ट (स्वर्ण तट) के निवासी फसल काटते समय कच्ची, खराब, सड़ी, अधिक पकी। और उत्तम प्रकार की पकी सभी फलियों को एक साथ ही मिलाकर काटते तथा बीज निकालते हैं। इससे उनकी कैकाओ निम्न श्रेणी की हो जाती है और उसका मूल्य कम मिलता है। चूंकि वहां के किसान कैकाओ को उबालकर उसे अधिक उत्तेजित बनाने वाली क्रिया को भली भांति अभी तक नहीं समझ पाये हैं इसलिये वह इस क्रिया को इतनी असावधानी के साथ करते हैं कि निम्न श्रेणी की वस्तु प्राप्त होती है। इसके अलावा उबालने के पश्चात् उसे पूर्ण रूप से सुखाने का काम नहीं किया जाता है। यह कभी कभी तो गल्ती से होता है और कभी कभी जान बूझ कर किया जाता है ताकि भीगी होने के कारण अधिक भारी फलियों को बेचकर अधिक मूल्य प्राप्त किये जा सकें। जब खरीदार खेती से कैकाओ खरीद कर लाता है तो उसमें से १० प्रतिशत मटमैली फलियां होती है। यदि खरीद प्रणाली का सुधार तथा सगठन किया जाय तो इस प्रकार को खराबी को रोका जा सकता है। फसल के समय मजदूरों की बहुत अधिक कठिनाई हो जाती है और तब बाहर से मजदूरों को बीच-बीच में बुलाने की आवश्यकता पड़ती है।

चूंकि इस क्षेत्र में कृषि कार्य में आने वाले पशु यहां पर जीवित नहीं रह सकते हैं क्योंकि वे सेट्सी मक्खी के काटने से मर जाते हैं। इसलिये खेतों तथा बागों से गांवों में कैकाओ ढोकर लाने का काम लोग अपने सिरों पर ही करते हैं। गांव से ट्रकों द्वारा कैकाओ रेलों के स्टेशन या बन्दरगाहों पर ले जाई जाती है। कैकाओ को ले जाने तथा ढोने का काम इतना अधिक आवश्यक है कि कैकाओ प्रदेश में रेलों तथा सड़कों के बनाने में करोड़ों डालर व्यय किये गये हैं। गोल्ड तट के निवासियों ने भी सड़कों की उपयोगिता को समझ और स्वीकार कर लिया है। इसी कारण उन्होंने सड़कों के निर्माण में अपना योगदान किया है। वर्षा की अधिकता से सड़कों की सुरक्षा में प्रायः बहुत अधिक व्यय पड़ता है और जब वर्षा के कारण उनका धरातल गीला रहता है तो उन पर ट्रकों आदि का चलना बड़ा दूभर हो जाता है। स्वर्ण तट पर कहीं भी सुन्दर अच्छा बन्दरगाह नहीं है, इसलिये बहुधा कठिनाई का सामना करना पड़ता है और तट से प्रायः दूर खड़े जहाज पर ले जाकर कैकाओ लादना पड़ता है। इस प्रकार की लदाई में दो खतरे होते हैं एक तो यह कि लादने में अधिक समय तथा व्यय पड़ता है और दूसरे यह कि जब लहरों पर चलने वाली नावों पर कैकाओ की बोरियां लादी जाती हैं तो वह भीग जाती हैं और इससे कैकाओ खराब हो जाती है। इसी प्रकार एक दीर्घ काल तक कठिनाइयों का सामना किया गया आखिर कार मजबूर होकर ताकोराडी का बनावटी बन्दरगाह बनाना ही पड़ा और इसके बनाने में बहुत अधिक व्यय करना पड़ा। तटीय तट के निवासी वहां पर किसी प्रकार के तटीय सुधार के घोर विरोधी थे।

पश्चिमी अफ्रीका के अन्य प्रदेश—नाइजीरिया का कैकाओ की उपज में पश्चिमी अफ्रीका में दूसरा तथा संसार में तीसरा स्थान है। इस देश का इतिहास भी स्वर्ण तट की भांति ही है। नाइजीरिया की जनसंख्या स्वर्ण तट से अधिक थी और चूंकि इसे नारियल के तेल के व्यसाय को खोने का भय था, इसलिये इसने कैकाओ व्यवसाय को बढ़ाने के की आशा से अपनी सड़क योजना को शीघ्रता के साथ आगे बढ़ाया। चूंकि नाइजीरिया में कैकाओ की कृषि नवीन है, इसलिये यहां पर स्वर्ण तट की अपेक्षा कैकाओ सम्बन्धी बीमारियां भी कम होती हैं। यद्यपि यहां भी फलियों को भलीभांति नहीं उबाला जाता है फिर भी उन्हें सुखाने का काम बहुत अच्छी तरह किया जाता है जिसके लिये वहां की सरकार को धन्यवाद देना चाहिये क्योंकि इसने इस सम्बध में नियम बनाये हैं। नाइजीरिया की सरकार ने अपने देश की उपज बढाने के लिये अच्छे कार्य किये हैं। वहां के कृषि विभाग ने कृषकों तथा व्यापारियों दोनों का ही विश्वास प्राप्त कर रखा है और यह दोनों ही वर्ग उसके कार्य में उसकी सहायता करते हैं।

यद्यपि स्वर्ण तट की भांति आइवरी तट में कैकाओ के वृक्ष नहीं बढ़ते, उपजते तथा फल देते फिर भी उसकी कृषि में लगातार उन्नति होती जा रही है। यहां पर कैकाओ की उपज में वृद्धि होने का कारण यह है कि यहां पर योरुपीय लोगों ने व्यवसायिक रूप से कृषि कार्य का प्रसार किया है। यहां पर भी कैकाओ की उपज के लिये भूमि बहुत है। परन्तु मजदूरों की स्वर्ण तट की भांति ही बहुत कमी है।

टोगोलैंड, ब्रिटिश तथा फ्रांसीसी कैमरून्स, फर्नान्डोपो, साओटामी तथा पश्चिमी अमरीका के अन्य उपनिवेशों में भी उपयुक्त स्थानों की भांति ही कैकाओ का उत्पादन होता है। इन सभी उपनिवेशों में कैकाओ पर या तो बहुत कम निर्यात कर है और या बिलकुल ही नहीं है।

अमरीका में कैकाओ का उत्पादन—

एक दीर्घ काल तक अमरीका सारे संसार को कैकाओ देता रहा है। पहले एक्वेडोर, ब्राज़ील के अमेजन बेसिन तथा कैरेबियन सागर के तटीय देशों तथा द्वीपों में कैकाओ की खूब उपज होती थी और इसका व्यापार यहां पर खूब होता था। यद्यपि अमेजन प्रदेशों में कैकाओ की उपज खूब होती थी और हो सकती है। परन्तु पुराने वृक्षों की परवाह न करने तथा अकुशल और कम मजदूरों के होने के कारण तथा यातायात साधनों के अभाव के फलस्वरूप तथा ऊँचे करों के कारण यहां से इसका व्यवसाय ही जाता रहा।

आज कल ब्राज़ील का अधिकांश कैकाओ बाहिया के तटीय वर्षा वाले जिले से आता है। यह क्षेत्र २०० मील लम्बी भूमि की एक पट्टी है और यहां पर ५ लाख एकड़ भूमि में कैकाओ की उपज होती है। यहां साल भर में औसत से ८० इंच वर्षा हो जाती है। यहां का मासिक तापमान ७२ से ८० अंश तक रहता है। ढालों तथा घाटियों में मिट्टी पड़ी रहती है जहां पर घनेरे वृक्ष उगते तथा बढ़ते हैं और छाया प्रदान करते हैं तथा हवा के झोंकों की रोक-थाम करते हैं। नदियों तथा रेलों द्वारा बाहिया की कैकाओ बाहिया बन्दरगाह के समीप लाई जाती है और फिर स्टीमरों पर लाद कर बड़े जहाजों पर पहुँचा दी जाती है जहां से उसका निर्यात होता है। यद्यपि यहां पर मजदूरी सस्ती है, मजदूरों की भी कमी नहीं है फिर भी जोताई कार्य उचित रूप से न होने के कारण तथा फलियों की देख भाल में कमी करने तथा उनकी पूर्ण रूप से सुरक्षा न रखने के कारण मध्यम श्रेणी की कैकाओ उत्पन्न की जाती है। यहां पर निर्यात मूल्य का २० प्रतिशत राज्य तथा संघ राज्य की ओर से कर लगा हुआ है। इन कठिनाइयों के कारण यह प्रदेश अपने जैसे अन्य प्रदेशों की भांति अपनी उपज में स्पर्धा नहीं कर सकता है। टैक्सों की अधिकता के कारण उपनिवेशवासी भी भरपूर कोशिश नहीं करते हैं।

इक्वेडोर में ग्वायाक्विल के उत्तर की ओर कछारी भूमि स्थित है। इस कछारी मैदान में पहले बहुत अधिक कैकाओ की उपज होती थी। यहां की प्राकृतिक दशा भी आदर्श रूप में वर्तमान थी और यहां के कुशल कृषक प्रथम श्रेणी की कैकाओ उत्पन्न करते थे। किसी समय यहां पर समस्त संसार के निर्यात का ३० प्रतिशत भाग उत्पन्न होता था। अब यहां पर संसार के कैकाओ उत्पादन का केवल ३ प्रतिशत भाग ही उत्पन्न होता है और आज यहां पर कैकाओ की जितनी उपज होती है वह पच्चीस वर्ष पूर्व होने वाली उपज के एक तिहाई से भी कम है। कैकाओ में मोनी लिया रोग उत्पन्न होता है। यह रोग फलियों में होता है। १६१६ ई० में यह रोग उत्पन्न हुआ और बड़ी शीघ्रता के साथ फैला जिससे बहुत बड़ी हानि हुई और इसी के कारण २ वर्षों के भीतर ही २ करोड़ ५० लाख पौंड की निर्यात में कमी हो गई। इसके पश्चात् १६२२ ई० में यहां कैकाओ के वृक्षों में विचेज ब्रूम नामक रोग उत्पन्न हुआ। यह रोग बड़ी शीघ्रता के साथ फैला जिसके फलस्वरूप अनेक व्यवसायिक बगीचों को छोड़ देना पड़ा। भूमि के अधिक नम तथा छायादार होने के कारण यह बीमारियां बहुत अधिक फैलती हैं। इस समय भी बीमारी बड़े जोरों के साथ फैली और इसकी रोक थाम के लिये जितने धन की आवश्यकता थी उसकी आज्ञा नहीं दी जा सकी।

यूं तो यहां की दशा ऐसे ही बड़ी जटिल थी, परन्तु वर्तमान समय में विभिन्न प्रकार के करों को लगा

कर स्थिति और अधिक शोचनीय बना दी गई है। इस समय वहां पर प्रति पौंड पर २ सेंट कर है। इक्वेडोर में कैकाओ की उपज में कमी होने के कारण बड़ी भारी हानि हुई है। इक्वेडोर की इस दुर्दशा से उष्ण प्रदेशों की कमजोरी का पता चलता है। उष्ण कटिबन्ध के जो क्षेत्र कैकाओ की उपज के लिये अनुकूल हैं वे इतने अधिक हैं कि यदि किसी क्षेत्र की फसल की बीमारी के कारण हानि होती है या भारी कर के बोझ के कारण उसमें रुकावट डाली जाती है तो फिर वह क्षेत्र अन्य क्षेत्रों के साथ उपज में स्पर्धा नहीं स्थापित कर सकता है। इस प्रकार ऐसे क्षेत्रों में उपज शीघ्रता के साथ कम होती जाती है और पुराने प्रदेशों के स्थान पर नये प्रदेशों में कैकाओ की खेती होने लगी है।

कैरेबियन प्रदेश में अनेक छोटे-मोटे क्षेत्रों में कैकाओ की खेती होती है। कैकाओ के यह खेत या तो निचले ढालों पर स्थित हैं और या गहरी घाटियों में अथवा चौड़े कछारी मैदानों में स्थित हैं जहां की प्राकृतिक दशा अत्यन्त उत्तम है। प्रायः सभी कैकाओ के खेत समुद्र के समीप स्थित हैं और प्रत्येक जिले में अधिक संख्या में कुशल निग्रो मजदूर निवास करते हैं जो कि कम मजदूरी पर प्राप्त हो जाते हैं और वे भली भांति कैकाओ तैयार करना जानते हैं। वहां पर अनेक स्थानों पर बड़े पैमाने पर कैकाओ की खेती की जाती है जिनका प्रबन्ध श्वेतवर्ण वालों के हाथों में है। परन्तु कुछ क्षेत्र ऐसे भी हैं जहां पर छोटे-मोटे खेतों में भी निग्रो लोग कैकाओ उपजाते हैं। उनके खेतों का क्षेत्रफल प्रायः कुछ एकड़ ही होता है। ऐसे खेत डोमीनीकन रिपब्लिक तथा हेटी आदि में स्थित हैं। मध्य अमरीका के बड़े कारपोरेशनों में जहां पर कि पहले केले की उपज की जाती थी और अब उन्हें छोड़ दिया गया है उनमें कैकाओ के बगीचे लगा दिये गये हैं। इन स्थानों के निग्रो निवासी बहुत ही उत्तम प्रकार की कैकाओ उपजाते हैं क्योंकि उन्हें उसकी खेती करते-करते विशेष रूप से सजुर्बा हो गया है और वे उत्तम ढङ्ग से इसकी जोताई तथा फलियों की कटाई और तैयारी का काम करते हैं। फलियों की तैयारी में तो वे बड़े ही निपुण हैं। इसी कारण कैरेबियन क्षेत्र में जो कैकाओ होती है वह बड़े उत्तम प्रकार की होती है। वहां पर कुछ बगानों में बड़ी-बड़ी कैकाओ सुखाने वाली आधुनिक भट्टियां बनाई गई हैं और उनका प्रयोग कैकाओ सुखाने के लिये किया जाता है। परन्तु कैरेबियन प्रदेश में अधिकांश स्थानों पर संसार के अन्य भागों की भांति ही कैकाओ की फलियों को छोटी-छोटी थालों या पात्रों में रखकर धूप में ही सुखाया जाता है।

कैकाओ फलियों का व्यापार तथा कैकाओ और चाकलेट की तैयारी

—कैकाओ की फलियों को तोड़ने के पश्चात् एकत्रित किया जाता है और फिर उन्हें हंसिया, खुर्पी या अन्य काटने वाले औजारों से काट या चीड़ कर उनके भीतर से दाने निकाले जाते हैं और उन दानों को सुखाने वाले स्थानों पर ले जाया जाता है। कैकाओ के दानों को फलियों से अलग करने का काम इसलिये किया जाता है कि फलियों की ढोलाई से बचाव हो सके।

संयुक्त राज्य अमरीका में कैकाओ की संसार में सबसे अधिक खपत होती है। संयुक्त राज्य अमरीका के पश्चात् कैकाओ की खपत करने वाला सब से बड़ा देश जर्मनी है। इङ्गलैंड, स्काटलैंड, आयरलैंड, निदरलैंड और फ्रांस में भी कैकाओ की काफी खपत होती है। संयुक्त राज्य अमरीका तथा पश्चिमी योरुप के देशों में संसार की वर्तमान कैकाओ उपज का ६० प्रतिशत भाग उपभोग हो जाता है। परन्तु जैसे-जैसे संसार के अन्य देश कैकाओ को खाद्य पदार्थ के रूप में प्रयोग करने लग जायगे वैसे-वैसे कैकाओ की मांग बढ़ती जायगी इसलिये भविष्य में कैकाओ व्यवसाय को पर्याप्त मात्रा में बढ़ाया तथा उन्नतिशील बनाया जा सकता है। मानव जाति की यह प्रकृति है कि कोई भी वस्तु चाहे वह जितनी ही अधिक उपयोगी तथा गुणकारी क्यों न हो जब तक उसके प्रति मानव जाति को शौक तथा चाह नहीं उत्पन्न होती है तब तक वह उसका प्रयोग नहीं करता है और जहां उसे उसकी चाह हो गई तथा एक बार चस्का लग गया वहां वह उसका प्रयोग करने लग गया।

बगीचों से कैकाओ के दानों के निर्यात करने वाले स्थानों पर लाया जाता है और वहां पर उनकी

सफाई होती है और उन्हें एकत्रित किया जाता है और फिर भून कर उनकी चिकनाई निकाली जाती है। यह सब करने के लिये कुशल कारीगरों तथा मजदूरों की आवश्यकता होती है। बहुमूल्य मशीनों की भी जरूरत होती है। इसी कारण यह सारा कार्य सघन बस्ती में ही किया जा सकता है। फैशकों की चिकनाई का प्रयोग कोको तथा चाकलेट के बनाने में किया जाता है। जिन स्थानों पर चीनी, दूध तथा अन्य आवश्यक सामग्री और पर्याप्त संख्या में मजदूर मिलते हैं वहां पर कम्पनियां खुली हैं और वे कोको तथा चाकलेट वाली मिठाइयां फैशकों की बरफी से तैयार करते हैं। फैशकों के दानों को चौकोर तथा चौरस पात्रों में फैलाकर धूप में सुखाया जाता है। उसे दिन भर में कई बार चलाया जाता है और देख-रेख रखनी पड़ती है ताकि वर्षा से खराब न हो जाय। रात के समय अथवा वर्षा के समय यह हटा कर छतों के नीचे कर दिया जाता है।

चाय की खेती

चाय की खेती—चाय का पौधा पहाड़ियों तथा पर्वतीय ढालों पर पैदा होता है। यह पौधा दक्षिणी-पूर्वी एशिया के समशीतोष्ण तथा उष्ण कटिबन्ध की पहाड़ियों और पर्वतीय टीलों पर खूब उगता है क्योंकि वहां की जलवायु तथा प्राकृतिक दशाएं उसके लिये बड़ी अनुकूल सिद्ध होती हैं। चाय के पौधों को उगने तथा बढ़ने के लिये अच्छी मिट्टी चाहिये। पानी की उसे बहुत अधिक जरूरत है। परन्तु पानी उसकी जड़ों के समीप रुकना नहीं चाहिये अन्यथा पौधे सड़ कर नष्ट हो जाते हैं। चाय की खेती जीवन निर्वाह तथा व्यवसाय दोनों के लिये की जाती है।

संसार भर में केवल *दक्षिणी-पूर्वी एशिया* में ही चाय का पौधा क्यों उगता है इसके कई एक कारण हैं जिनमें से चार विशेष रूप से आवश्यक तथा अनिवार्य और महत्वपूर्ण हैं। पहली बात तो यह है कि इस भू भाग के बहुतेरे क्षेत्र तथा स्थान इसके जन्म स्थान ही हैं। दूसरे यह कि चाय की उपज वाले स्थानों तथा क्षेत्रों की जलवायु तथा वातावरण उसकी उपज के लिये अनुकूल है। तीसरे यह कि इस भू भाग में चाय की उपज के लिये बहुत अधिक निपुण और कुशल मजदूर भारी संख्या में वर्तमान हैं। चौथे यह कि यहां पर चाय के स्थायी पीने वाले वर्तमान हैं जिससे उसके लिये स्थायी तौर पर बड़े बड़े बाजार हैं। चाय की खेती में सबसे बड़ी बात मजदूरों की है। इसमें मजदूरों की बहुत अधिक आवश्यकता पड़ती है। यूं तो संसार में अनेक प्रदेश ऐसे हैं जहां का वातावरण तथा जलवायु चाय की उपज के लिये अनुकूल तो है परन्तु मजदूरों की कमी के कारण वहां पर चाय के बगीचे नहीं लगाये जा सकते हैं। यद्यपि अनेक देशों में और विशेषतया चीन तथा जापान में चाय की खेती कई शताब्दियों से छोटे पैमाने पर होती आ रही थी परन्तु विगत सौ वर्षों के भीतर ही चाय की खेती इन देशों में व्यवसायिक रूप से की जाने लगी है। इनके अतिरिक्त अन्य देशों में भी व्यवसायिक तौर पर चाय की खेती होने लग गई है। यद्यपि हो सकता है कि चाय की उपज के लिये समस्त संसार में प्राकृतिक दशाओं तथा अनुकूल जलवायु वाले प्रदेश पाये जा सकते हों परन्तु जीवन निर्वाह तथा व्यवसायिक कार्य के लिये केवल पूर्वी तथा दक्षिणी एशिया में ही चाय की खेती की जाती है। अभी हाल ही में दक्षिणी रूस के ट्रान्सकाकेशिया प्रदेश में तथा पूर्वी अफ्रीका में चाय की उपज की जाने लगी है। १९१४ ई० के प्रथम महासमर के पूर्व चाय के आयात में रूस का दूसरा स्थान था।

छोटे खेतों तथा बगीचों या बगानों में चाय की खेती—चीन तथा जापान के प्राचीन चाय उत्पादक प्रदेशों में चाय की खेती अब भी परिवार की उन्नति उत्थान की दृष्टि से की जाती है छोटे छोटे बगीचों तथा खेतों में जो चाय उगाई जाती है उसको तैयार करने का सारा कार्य हाथ से ही होता है। और वह विशेषतया देशी आवश्यकता की पूर्ति तथा इस्तेमाल के लिये उगाई जाती है। परन्तु देश

की खपत से जो चाय बच जाती है वह विदेशों को भेज दी जाती है।

चीन में चाय की खेती—चीन संसार का अत्यन्त प्राचीन देश है। वहां पर चाय एक दीर्घ काल से ही उगाई जाती आ रही है। चीन की जनसंख्या भी संसार में सभी देशों से अधिक है और यहां पर ४५ करोड़ व्यक्ति निवास करते हैं। वास्तव में चीन को चाय का सबसे बड़ा कोषागार कहना चाहिये। चीन में चाय की खपत भी सबसे अधिक होती है। चीन में चाय की बहुत अधिक खपत होती है। यूं तो समूचे चीन में चाय की खेती होती है परन्तु यांगटिसी घाटी के उत्तर की ओर उसके तथा सी क्यांग घाटी की उत्तरी कोर के मध्य स्थित प्रदेश में ही चीन की अधिकांश चाय की खेती होती है और वहां पर बहुत अधिक मात्रा में चाय की उपज होती है। इस प्रदेश की जलवायु तथा प्राकृतिक दशा और वातावरण चाय की उपज के लिये बहुत ही अनुकूल है। चाय प्राय: पर्वतों पर तथा उसके ढालों और सिरों पर ही

५—संसार के चाय उगाने वाले प्रदेश

उगती है। जिन प्रदेशों में ग्रीष्म कालीन वर्षा होती है वहां के पर्वतीय ढालों पर वर्षा का पानी शीघ्र ही बह जाता है और एकत्रित नहीं होता है इसलिये वहां पर चाय का पौधा खूब उगता और बढ़ता है। ऐसे ढालों पर जहां की मिट्टी अच्छी होती है वहां पर भोजन के लिये अन्न की उपज की जाती है इसलिये ऐसे ढालों पर जहां अन्न नहीं उपजाया जा सकता है वहां चाय की खेती की जाती है। निचले पहाड़ों पर उगाई जाने वाली चाय की अपेक्षा ऊँचे पहाड़ों तथा ढालों पर
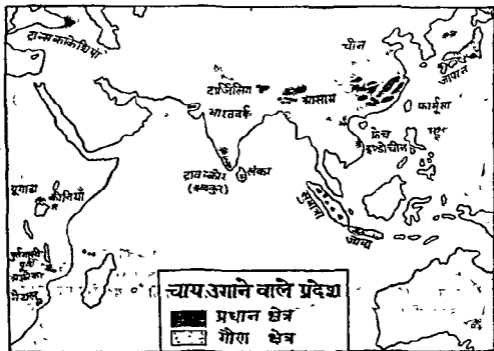
वहां पर चाय का प्रयोग बहुत अधिक होता है। चीन एक ऐसा देश है जहां पर शीतल जल कभी भी पीने के के लिये प्रयोग नहीं किया जाता है। चाहे समुद्र में हो, नदी में हो, पहाड़ पर हो, नगर में हो अथवा गांव में, सब कहीं जल को उबाल कर उसमें चाय की हरी पत्तियों डाल कर ही पानी पिया जाता है। वहां कोई भी व्यक्ति कभी भी और किसी भी दशा में पीने के लिये जल का प्रयोग बिना चाय की हरी पत्तियों को डाल कर उबाले हुये नहीं पीता है। इसी कारण

उगाई जाने वाली चाय यहीं अधिक उत्तम प्रकार की होती है। चाय के लिये साधारणतया लाल मिट्टी की जरूरत होती है जिसमें लोहे की मात्रा अधिक वर्तमान हो। चाय के लिये ५० इंच या उससे अधिक वर्षा की आवश्यकता है और यह वर्षा अधिकतर ग्रीष्म ऋतु में ही होनी चाहिये। चाय की पौधों की बढ़ने के लिये गर्मी के ऋतु की आवश्यकता होती है। गर्मी के कारण पौधे अधिक डालियां तथा टहनियां उत्पन्न करते हैं। अप्रैल के महीने में चाय की पत्तियों के चुनने का काम होता है। अप्रैल मास में ही चाय की पहली फसल तैयार होती है और इस मौसम की चाय उत्तम प्रकार की होती है। मई-जून मास में वर्षा होती है तब उस समय चाय की पत्तियां लम्बी, मोटी और सख्त होती हैं। मई-जून, मास में दूसरी बार चाय की पत्तियों की चुनाई होती है। अगस्त मास में तीसरी बार और सितम्बर-मास में चौथी बार पत्तियां चुनी जाती हैं। सितम्बर और अक्तूबर मास की पत्तियाँ निम्न श्रेणी की होती हैं और उनका घरों में ही प्रयोग किया जाता है। मौसम, तापमान और वर्षा तथा पथरीली भूमि और कमजोर मिट्टी के कारण साल में केवल चार बार ही पत्तियों की चुनाई होती है।

चीन में चाय की खेती तथा पत्तियों तैयार करने का कार्य अच्छी तरह से नहीं किया जाता। यहां ढालों पर जो चाय के छोटे छोटे बगीचे होते उनका पालन-पोषण किसान परिवार लोग ही अपने फुर्सत के समय करते हैं। चाय के पौधों को बहुत कम काटा छांटा जाता है और खाद भी नहीं दी जाती है; निराई भी नहीं की जाती है। साधारणतया चाय की पत्तियों की चुनाई का काम भी अच्छी तरह से नहीं होता है। यद्यपि चीन की अधिकांश चाय घरों में ही उपयोग हो जाती है फिर भी फालतू चाय मनुष्यों द्वारा ढोकर नदियों के मार्ग से चाय के कारखानों में पहुँचाई जाती है। जहां पर प्रत्येक भांति की पत्तियाँ मिला दी जाती है। इसी कारण एक प्रकार की चाय की पत्तियां अधिक मात्रा में चीन से नहीं मंगाई जा सकती हैं। इसके अतिरिक्त चीन की कोई भी सस्ता अच्छी चाय की पूर्ति के सम्बन्ध में किसी प्रकार की भी गारंटी नहीं दे सकती है।

चीन की चाय विषम जलवायु, सख्त मिट्टी; कमजोर भूमि तथा झाड़ियों में उत्पन्न होती है इसलिये यह अच्छे प्रकार की नहीं होती है। चाय की पत्तियों की अच्छाई या बुराई उसकी तैयारी पर निर्भर करती है काली चाय बनाने के लिये चाय की पत्तियाँ पौधों से तोड़ कर नीचे लाई जाती हैं और फिर उन्हें उबाला जाता है और उसके पश्चात उन्हें सुखा कर मरोड़ा जाता है। हरी चाय बनाने के लिये पत्तियों को पौधों से तोड़ कर खूब अच्छी प्रकार सुखा लिया जाता है ताकि पत्तियां हरी की-हरी बनी रहें और उनका जैसे का तैसा जायका बना रहे। चीन में केवल कुछ ही क्षेत्र ऐसे हैं जहां पर दोनों प्रकार की चाय बनाई जाती है चाय की गर्द, पत्तियों का बचा भाग और अगस्त तथा सितम्बर मास की चुनी सख्त पत्तियां चाय तथा भींज कर ब्रिक चाय तैयार की जाती। पहले ब्रिक चाय चीन से रूस को बहुत अधिक मात्रा में भेजी जाती थी परन्तु अब वही चाय बन्द गाड़ियों में भर कर मध्य एशिया भेजी जाती है। परन्तु चीन ने अपना चाय का निर्यात बाजार खोल दिया है और अब चीन से काली, हरी तथा ब्रिक चाय बहुत कम मात्रा में निर्यात की जाती है।

जापान में चाय की खेती—चीन की भांति ही जापान में भी चाय की खेती छोटे-छोटे खेतों तथा बगीचों में की जाती है। यह खेत एक एकड़ से छोटे होते हैं। मध्य तथा दक्षिणी जापान में चाय की उपज खासतौर पर की जाती है। जापान के पर्वतों के पूर्वी तथा पश्चिमी दोनों कोरों तथा ढालों पर चाय की खेती होती है। प्रशान्त महासागरी तट पर चाय के बगीचे बहुत अधिक हैं शिज़ुओका प्रान्त में मुख्यतः चाय की ही खेती होती है। चीन की भांति जापान में भी एक हजार फुट की ऊँचाई वाले पर्वतीय स्थानों पर चाय के बगीचे लगाये जाते हैं। ऊँचे स्थानों तथा पहाड़ी ढालों पर ही चाय की उपज होती है क्योंकि निचले स्थानों पर जहाँ मिट्टी अच्छी होती वहाँ पर अन्न उगाया जाता है। ढालों का पानी बह जाता है जो कि चाय की खेती के लिये आवश्यक है। ढालों पर चाय पौधे पंक्तियों में लगाये जाते हैं। यह पौधे ढालों पर लम्बाकार पास-

पास लगाये जाते हैं ताकि वह वर्षा में पड़कर गिर न सकें। जापान के ढालों पर ६ ७ से ८० इंच तक सालाना वर्षा होती है। यह वर्षा ग्रीष्म ऋतु में अधिक होती है। जापान के उत्तरी चाय वाले जिलों में धमारूतक और दक्षिणी जिलों में ८ मास तक चाय के पौधों के उगाने मौसम होता है। अधिकांश जिलों में साल भर में साधारणतया एक बार पत्तियों की चुनाई होती है। कहीं कहीं पर चार बार पत्तियाँ चुनी जाती हैं। चाय के पौधों की भिन्नता तथा अधिक लम्बे शुष्क शीतकाल के कारण चीन में चाय की पत्तियाँ तीन बार से अधिक नहीं चुनी जा सकती हैं।

चीन के प्रतिकूल जापान में चाय की खेती बड़ी सावधानी तथा वैज्ञानिक रूप से की जाती है। चाय के पोधों को बड़ी सावधानी के साथ गोड़ा तथा पासा जाता है। पत्तियों के चुनने तथा उन्हें तैयार करने का काम भी बड़ी सावधानी के साथ किया जाता है जिससे चाय की चाय बड़ी उत्तम प्रकार की होती है। कुछ भागों में चाय के पौधे घास-फूस की चटाइयों के नीचे उगाये जाते हैं ताकि पत्तियों का प्राकृतिक हरापन तथा जायका जैसे का तैसा बना रह सके। इस प्रकार की विशेष प्रकार की उत्तम चाय जापानी घरों में प्रयोग के लिये उगाई तथा तैयार की जाती है। पूर्वी तथा मध्य जापान और शिज़ुओका क्षेत्र में निर्यात करने के लिये चाय तैयार की जाती है। इस भाग में समस्त जापान की आधी चाय उत्पन्न की जाती है और उसका अधिकतर भाग निर्यात किया जाता है। शिज़ुओका समुद्र तट तथा समुद्री मार्ग के समीप स्थित है और यहाँ से चाय सरलता के साथ निर्यात की जाती है। जापान से प्रायः हरी चाय ही निर्यात होती है; जापान की ९८ प्रतिशत चाय संयुक्त राज्य अमरीका तथा कनाडा भेजी जाती है। और अधिकांश भाग संयुक्त राज्य अमरीका जाता है।

तैवान या फारमूसा में चाय की खेती

तैवान या फारमूसा में चाय के बगीचों का क्षेत्रफल साधारणतया ३ एकड़ से कम होता है। यह बगीचे तैवान के उत्तरी पश्चिमी भाग के सीढ़ीदार ढालों पर स्थित हैं। चाय उगाने वाली भूमि गहरी, पानी के बहाव वाली होती है। तैवान में साल में प्रायः ८० इंच वर्षा होती है। यहाँ पर चाय का मौसम ११ मास का होता है जिससे यहाँ जापान की अपेक्षा अधिक बार पत्तियाँ चुनी जाती हैं। तैवान में पहले छोटे-छोटे बगीचों में ही चाय की उपज की जाती थी परन्तु जब जापान का अधिकार उस पर हुआ तो उसने वहाँ पर बड़े-बड़े खेतों तथा तालुकों में चाय के बड़े बड़े बगीचे लगाये और वैज्ञानिक रीति से चाय की खेती की। जापानियों ने वैज्ञानिक रूप से बड़ी सावधानी के साथ चाय की खेती की थी जिसके परिणाम स्वरूप यहाँ बहुत अच्छे प्रकार की चाय उत्पन्न की जाती थी। जापान के बाद तैवान पर १९३९ ई० के महासागर के पश्चात् चीन का अधिकार हो गया और वर्तमान समय में तैवान में च्यांग सरकार का अधिकार है जो कि संयुक्त राज्य अमरीका की कठपुतली सरकार मानी जाती है। तैवान की अलांग चाय सबसे अधिक प्रसिद्ध है जो प्रायः सारी की सारी संयुक्त राज्य अमरीका भेजी जाती है तैवान से जितनी चाय निर्यात होती है उसका दो-तिहाई भाग इसी प्रकार की चाय का होता है। इसके अतिरिक्त तैवान में उत्तम प्रकार की महकदार जो अन्य प्रकार की चायें उगाई जाती हैं वह समीप वर्ती एशियाई देशों को निर्यात की जाती है।

चाय की व्यवसायिक उपज—विगत २० या २५ वर्षों से उत्पादन, तैयारी तथा बिक्री में वैज्ञानिक रूप से कार्य करने के फल स्वरूप उसकी उपज तथा उपयोग में बहुत अधिक उन्नति हुई है। वैज्ञानिक रूप से चाय का जो संसार में प्रचार कार्य हुआ है उसके कारण चाय की संसार में बहुत अधिक माँग हो गई है। चाय की कम्पनियों ने अपने प्रचारकों द्वारा घर-घर और द्वार-द्वार चाय तैयार करके प्रचार करना आरम्भ किया था और ६ मास तक लगातार वे लोगों को उनके द्वारों पर जा जाकर चाय तैयार करके पिलाते रहे जिसके कारण जो लोग चाय नहीं पीते थे और उसके प्रयोग से घृणा करते थे वे भी उसके पीने के आदि हो गये और नित्य-प्रति चाय का अपने जीवन में व्यवहार करने लग गये हैं। चाय के पुराने उगाने वाले क्षेत्रों तथा प्रदेशों के प्रतिकूल

स्त्रियाँ बड़ी सावधानी के साथ करती हैं, और पत्तियाँ तोड़ी जाने के पश्चात् शीघ्र ही कारखानों में पहुँचा दी जाती हैं जहाँ पर उन्हें वैज्ञानिक रीति से तपाया, सुखाया और तैयार किया जाता है और उसके पश्चात् बांध कर तथा बंडल बना कर बेचने के लिये बनाया जाता है। संसार के चाय के सभी खरीदारों को भारतीय चाय पर पूर्ण रूप से विश्वास होता है और जो खरीदार जिस प्रकार की चाय का आर्डर देता है उसे उसी प्रकार की चाय भेजी जाती है। चाय की प्राप्ति होने पर किसी भी खरीदार को अपने इच्छानुसार मंगाई गई चाय के सम्बन्ध में किसी प्रकार की शिकायत नहीं होती है। क्योंकि विभिन्न प्रकार की घटिया, बढ़िया तथा मध्य श्रेणी वाली चाय की पत्तियाँ आपस में मिलाई नहीं जाती हैं। प्रत्येक अलग-अलग रखी जाती हैं। कारखानों में चाय तैयार करने के पश्चात् रेलों तथा नदियों के मार्ग से कलकत्ता और चटगांव के बन्दरगाहों पर लाई जाती है। ब्रह्मपुत्र की घाटी वाली चाय रेल तथा नदी मार्ग होकर कलकत्ता लाई जाती है और सुरमा घाटी की चाय रेल मार्ग द्वारा चटगांव पहुँचती है।

दारजिलिंग की पहाड़ियों और हिमालय के ढालों पर प्रथम श्रेणी की उत्तम भारतीय चाय उत्पन्न की जाती है। वहां पर सीधे ढालों पर चाय के बगीचे लगाये गये हैं। यह ढालें ३ से ४ हजार फुट तक ऊँची हैं। ढालों की ऊँचाई अधिक होने तथा साल में १२० इञ्च से अधिक वर्षा होने के कारण ढालों पर चाय की सीढ़ीदार खेती करना ही अनिवार्य हो जाता है यदि ऐसा न किया जाय तो मिट्टी तथा पौधे पानी के बहाव के साथ गिर कर बह जाय और उससे भारी हानि होती रहे। यहाँ का ताप भी समशीतोष्ण रहता है। दारजिलिंग का जुलाई मास का न्यूनतम मान जुलाई मास का ६१.५ अश है। समशीतोष्ण जलवायु से दारजिलिंग की चाय का मजा तथा चाय बहुत उत्तम प्रकार की हो जाता है जो कि अन्य जिलों की चाय में नहीं पाया जाता है परन्तु दारजिलिंग के बगीचों में आसाम के बगीचों के अनुपात में प्रति एकड़ पीछे केवल आधी मात्रा में पत्तियां उत्पन्न होती हैं।

दक्षिण भारत में साधारणतया ऊँची ढालों, पश्चिमी घाट के पर्वतों तथा ट्रावनकोर के ऊँचे स्थानों, कुर्ग और मद्रास के कुछ पर्वतीय स्थानों चाय की खेती होती है। इन स्थानों में चूंकि पर्वतीय ढालें सीधी हैं और वर्षा भी बहुत अधिक होती है इसलिये ढालों से लम्बाकार खाइयाँ तथा सीढ़ियाँ बनाई जाती हैं और या तो चाय के पौधों की पत्तियों के मध्य अन्य प्रकार की फसलें उगाई जाती हैं। ग्रीष्म ऋतु में प्रतिवर्ष इन स्थानों पर घनघोर वर्षा होती है जो कि १०० से लेकर १५० इञ्च तक होती है, वर्षा ऋतु के बाद भी शेष काल में थोड़ी बहुत वर्षा होती रहती है। साल में केवल तीन मास तक शुष्क ऋतु वर्तमान होती है और उस समय पानी नहीं बरसता है। समूचे वर्ष भर गरमी यथेष्ठ मात्रा में पड़ती रहती है। यहां की मिट्टी लाल रङ्ग की है और काफी गहराई तक वर्तमान है। ८ या १५ दिन के पश्चात् चाय की पत्तियाँ तोड़ी जाती हैं और पत्तियों के तोड़ने का काम साल में दस महीने तक होता है। ऊँचे बाग जितनी अधिक ऊँचाई पर स्थित हैं उतनी ही जल्दी उनकी पत्तियां टहनियों में निकलती हैं और उतनी ही जल्दी उनकी तोड़ाई होती है। परन्तु साधारण रूप में ट्रावनकोर तथा दक्षिण भारत के अन्य प्रदेशों की चाय आसाम प्रान्त के चाय से कम मजेदार तथा शक्ति वर्धक होती है।

लगभग १५ वर्ष पूर्व चाय की खपत भारत में बहुत कम होती थी यद्यपि भारत की अपनी जन संख्या लगभग ३५ करोड़ के थी। उस समय भारत में केवल होटलों तथा पश्चिमी फैशन वालों के घरों में ही चाय का प्रयोग किया जाता था। शेष सारी की सारी चाय विदेशों को और खास तौर पर इङ्गलैंड को भेज दी जाती थी। १९३७-३८ ई० में भारतीय चाय के उत्पादकों ने भारतीय जनता के मध्य चाय के प्रयोग का प्रचार आरम्भ किया और उन्होंने भारतीय प्रान्तों में एक एक करके विभिन्न चाय प्रचारक तथा पूर्ति केन्द्रों में विभाजित कर दिया और अपने प्रचारकों द्वारा प्रत्येक भारतीय नागरिक के घर जाकर चाय बना कर पिलाना आरम्भ किया। इस प्रकार प्रत्येक भारतीय नगर तथा कस्बों में चाय प्रचारक बारी-बारी

से ६ मास तक लगातार प्रत्येक मुहल्ले तथा घर में कम्पनियों की ओर चाय के प्रचारक कर्मचारी चाय बना बना कर प्रतिदिन प्रातः काल भारतीय लोगों को चाय पिलाते रहे। कम्पनियों के इस प्रचार का परिणाम यह हुआ कि भारतीय जनता में चाय का साधारण प्रयोग किया जाना आरम्भ हो गया। अब तो भारत में प्रत्येक गाँव में चाय का प्रयोग ग्रामीणों के मध्य हो गया है। इस प्रचार कार्य से स्वयं भारत वर्ष में चाय की खपत बहुत अधिक बढ़ गई जिससे चाय की मांग में बहुत अधिक वृद्धि हो गई। चाय की बढ़ती मांग की पूर्ति के लिये चाय उत्पादकों को भी अपनी उत्पादन शक्ति को बढ़ाना पड़ा। परिणाम यह हुआ कि भारत में चाय का उत्पादन पहले की अपेक्षा कहीं अधिक हो गया है।

लङ्का में चाय की खेती—जब १८६०-७० में लङ्का में कहवा की खेती नष्ट की गई तो वहां के कहवा उत्पादक चाय की ओर झुके और उन्होंने चाय उगाना आरम्भ किया। लङ्का में दक्षिणी मध्य भाग में ऊँचे पहाड़ी प्रदेशों पर चाय का उत्पादन कार्य होता है। इस प्रदेश के सम्बन्ध में एक लेखक का कथन है—"लङ्का में ऊँचे तथा सीधे ढालों पर चाय की झाड़ियां इतनी अधिक उगी तथा बढ़ी हैं कि उनके आस-पास की भूमि नहीं दिखाई पड़ती है और पौधों की देख-भाल करने तथा निराने, गोड़ने और काट-छांट करने का काम भी दूभर प्रतीत होता है। वहां यदि कोई श्वेतवर्ण वाला आदमी जूते पहिन कर पौधों के मध्य काम करने जाय तो वह सैकड़ों फुट नीचे फिसल कर गिर पड़ेगा परन्तु लङ्का के निवासी खुले नंगे पांव चाय की झाड़ियों के मध्य निर्भीक तौर पर काम करते हैं।" लङ्का में भी ढालों की मिट्टी के बहाव को रोकने के लिये सीढ़ियां तथा खाइयाँ बनाई जाती हैं। चाय का पौधा नीचे पहाड़ों पर उगाया जाता है। यद्यपि लङ्का में ७ हजार फुट की ऊँचाई तक चाय के पौधे पाये जाते हैं परन्तु अधिकांश चाय के बगीचे ३ हजार फुट की ऊँचाई तक ही वर्तमान हैं। इन स्थानों पर १५० से २०० इञ्च तक सालाना वर्षा होती है जो साल भर उचित प्रकार से होती रहती है। तापमान ६५ से ७९ अंश तक रहता है। सबसे अधिक गरमी वाले मास के तापमान में तथा सबसे अधिक शीत मास के तापमान में ५ अंश का अन्तर रहता है। ऊँचे स्थानों वाली चाय विशेष अच्छी है। कम वर्षा वाले दिनों में जो चाय चुनी या तोड़ी जाती है वह अधिक अच्छी होती है।

चाय का विश्व व्यापी व्यापार—सत्रहवीं सदी में योरुप तथा उत्तरी अमरीका के देशों में चाय का पिया जाना आरम्भ हुआ उसके बाद योरुप और अमरीका से चाय की मांग आरम्भ हुई। प्राय. एक शताब्दी से कुछ अधिक समय तक चीन इस मांग की पूर्ति करता रहा। १८८७ ई० तक संसार के समस्त चाय निर्यात का तीन-चौथाई भाग चीन से प्राप्त होता था। उसके पश्चात् उसमें लगातार कमी आती गई और अब समस्त विश्व के चाय निर्यात का केवल दसवां अंश चीन से प्राप्त होता है। इस प्रकार चीन के चाय के किसानों तथा व्यवसायिक उत्पादकों के हाथ से चाय का व्यवसाय तथा व्यापार जाता रहा। इसका मुख्य कारण यह है कि चीन में बहुत छोटे-छोटे खेतों में चाय के बगीचे हैं। वहां के किसान चाय की खेती उचित रूप से नहीं करते हैं। पौधों की देख-भाल मरम्मत आदि उचित ढङ्ग से नहीं होती है। पत्तियों की गोड़ाई, चुनाई, और उन्हें तैयार करने तथा छांटने का काम भी उचित भांति से नहीं किया जाता है। चाय की विभिन्न प्रकार की पत्तियां मिला कर एक कर दी जाती हैं। वहां की काली तथा हरी पत्ती के लिये जो बड़ी-बड़ी माँगें आती हैं उनकी पूर्ति नहीं की जा सकती है और फिर वहां की चाय भी अन्य स्थानों की चाय से घटिया प्रकार की होती है। यही कारण है कि वैज्ञानिक ढङ्ग पर चाय के उत्पादन करने वाले प्रदेशों के मुकाबले में चीन को चाय के व्यवसाय में मुँह की खानी पड़ी। इसके अलावा चीन तथा रूस के साथ काली चाय का जो व्यापार होता था वह भी समाप्त हो गया। आधुनिक काल में संसार की समस्त चाय का चार बटा पांच भाग राष्ट्र मण्डल और ब्रिटिश साम्राज्य वाले देशों में आयात किया जाता है। नीचे की तालिका से चाय के निर्यात का अच्छा ज्ञान प्राप्त होता है—

निर्यात मात्रा दस लाख पौंडों में दी गई है

वर्ष	भारतवर्ष	लङ्का	चीन		जावा	जापान
			कली हरी	मिली		
१८८७	६८	×	२००	८०	७	×
१८९७	१५०	११०	१६२	७६	६	४२
१९०७	२३६	१७१	१३०	७६	२७	३१
१९१७	२९३	२०८	१२०	७६	६८	४१
१९२७	३५७	२१७	६८	१२	१०५	२८
१९३१	३६४	२४२	८६	६	१३५	२१
१९३७	३४३	२१३	८३	६	११७	३६
१९३८	३६६	२१६	७६	१३	१२७	३९

१९२९ ई० में परचात् चाय के भाव में मंदी आ गई जिसके फलस्वरूप भारतवर्ष, लङ्का तथा पूर्वी द्वीप समूहों ने चाय के निर्यात पर रोक लगा दी। जापान तथा चीन ने रोक सम्बन्धी समझौते को स्वीकार नहीं किया इसलिये इन देशों का चाय का निर्यात कुछ बढ़ गया और इनके काली चाय के उत्पादन में भी किंचित वृद्धि हो गई। इस प्रकार भारतवर्ष, लङ्का तथा जावा की चाय के निर्यात में जो कमी आई है वह उत्पादन की कमी के कारण नहीं वरन् निर्यात रोक के सम्बन्ध में हुई है।

वैज्ञानिक रूप से चाय के उत्पादन में जो कार्य किया जाता है और चाय की पत्तियों का बहुधा चुनने तथा तोड़ने का काम किया जाता है और प्रत्येक चुनाई के परचात् जो पत्तियों की बड़ी मात्रा एकत्रित की जाती है उसके कारण कम मूल्य पर चाय का बड़ा स्टाक उपलब्ध हो जाता है। चूंकि चाय की फसल की ऋतु बहुत अधिक लम्बी होती है इसलिये पौधों की पत्तियों को तोड़ने तथा उनके तैयार करने में श्रम का विभाजन अधिक सुगमता के साथ हो जाता है और इसी कारण श्रम के व्यय में कमी हो जाती है। इसके साथ ही साथ चूंकि आधुनिक यातायात साधनों की विशेष सुविधा है इसलिये खर्च में और भी अधिक कमी आ जाती है। भारतवर्ष में चाय की कम्पनियों करोड़ों रुपये करके रूप में व्यय किये हैं जिसका उपयोग भारतीय चाय के प्रचार में भली भांति किया गया है। इसके अतिरिक्त दक्षिणी एशिया में चाय के क्षेत्रों का अधिकांश भाग योरुपीय लोगों के अधिकार में है जिनका राजनैतिक शासन सुदृढ़ है।

क़हवा की खेती

लगभग १२०० वर्ष पूर्व सबसे पहले कहवा की खोज अरब में हुई थी और वहां से उन्नीसवीं शताब्दी में यह पश्चिमी गोलार्द्ध में ले जाया गया वर्तमान युग में संसार में जितने कहवा की खपत होती है उसका चार बटा पांच भाग लैटिन अमरीका से आता है। ब्राजील देश में सबसे अधिक कहवा का उत्पादन होता है और वहां पर समस्त संसार की कहवा उपज का तिहाई भाग उत्पन्न होता है।

पूर्वी ब्राजील के पठारों मे कहवा का व्यवसाय

यद्यपि ब्राजील में सर्व प्रथम १७७४ ई० में कहवा का उत्पादन आरम्भ किया गया था परन्तु धीरे-धीरे करके इसके उत्पादन में वृद्धि हुई और जब १८८० ई० में इटली तथा अन्य देशों के लोग ब्राजील में पहुँचे और उन्होंने कहवा के बगीचों में काम करना आरम्भ किया तो इसकी महत्ता तथा प्रसिद्धता में वृद्धि हुई। कहवा के बगीचों को ब्राजील में फेजेंडा नाम से पुकारा जाता है।

ब्राजील के रिबीराओ प्रेटो नामक कहवा फेजेंडा में लगभग १८ गांव शामिल हैं। इन सभी गावों के ग्रामीण कहवा उत्पादन में ही लगे रहते हैं। इस क्षेत्र-से ७ मील की दूरी पर प्रधान रेल मार्ग है छोटी शाखा लाइनों द्वारा यह क्षेत्र मिला दिया गया है। यहां पर चारों ओर जहां तक दृष्टि जाती है कहवा के बगीचे ही बगीचे दृष्टि गोचर होते हैं। इन बगीचों में काम में आने वाले पशुओं के लिये निचले स्थानों पर चारागाहें कहवा के कारखानों तथा बगीचों में काम करने वाले कर्मचारियों तथा श्रमिकों के रहने के लिये निवास स्थान तथा क्वाटर बने हुये हैं।

सत्रहवीं सदी के आरम्भ काल में संसार की मांग का चार बटा पांच भाग ब्राजील के मध्यवर्ती पठार तथा पूर्वी भाग से आता था। ब्राजील में कहवा का इतना अधिक उत्पादन होने तथा व्यवसाय करने के कई एक कारण हैं।

कहवा की खेती और श्रम की पूर्ति—

चूंकि ब्राजील में बहुत बड़े-बड़े खेती के योग्य मैदान हैं इसलिये कहवा की उपज के लिये वहां सदैव नवीन भूमि की प्राप्ति हो सकती है। आरम्भ काल में भूमि पतियों ने कहवा के बगीचे लगाये, श्रमिकों के *रहने के लिये निवास स्थान बनाये और उनके काम* की सहायता के लिये औजार तथा पशुओं का प्रबन्ध किया और शाखा रेलवे लाइनों का निर्माण किया। उन्होंने अनेक इटेलियनों को फेजेंडों में आकर बसने के लिये आमंत्रित किया और उन्हें रहने के लिये मकान दिये, काम करने के लिये खेती के औजार तथा पशु दिये और उन्हें ठीके पर भूमि दी ताकि वह साफ करके वहां पर कहवा के बगीचे लगा[illegible] स्थानों पर जो लोग टिके उन्होंने कहवा के वृक्ष पत्तियों के मध्य अनाज, मटर, तथा प्रकार के न[illegible] की उपज की उन्होंने मुर्गियों और बतखों को भी पाले और इस प्रकार अपना जीवन निभाया। ५ वर्ष के भीतर ही बाहर से आकर बसने वाले किसानों ने जमीन के प्रारम्भिक मालिक को कहवा के बगीचे तैयार करके वापस कर दिया। उसके पश्चात् उन लोगों ने दूसरी भूमि ठीके पर ली और पुनः कहवा के बगीचे तैयार किया। इस प्रणाली से जमीन के मालिक तथा जमीन पर काम करने वाले बाहर से आये हुये किसानों दोनों को लाभ हुआ। इस प्रकार काम करने से थोड़े व्यय में कहवा के बगीचों वाले क्षेत्र की बहुत अधिक वृद्धि शीघ्रता के साथ हुई, श्रमिक किसान अपनी *ठीके वाली भूमि में जो उपज करते थे उसका कुछ* भाग वे जमीन के मालिक को भी देते थे जिससे उनका गुजारा भी होता था। इस प्रणाली के अन्तर्गत कहवा बगानो की वृद्धि हुई कि थोड़े समय के पश्चात् ही यह बात स्पष्ट हो गई कि संसार में कहवा की पूर्ति शीघ्रता के साथ बढ़ गई है जिससे बगीचों में काम करने वाले बहुतेरे श्रमिकों को काम से जवाब देना पड़ा। जब कि ब्राजील में एक ओर श्रमिकों की भर मार थी और वे कहवा की उपज में सहायता प्रदान कर रहे थे वहां दूसरी ओर ब्राजील के पठारों की

भौगोलिक परिस्थितियां और दशाएं भी अपना योग दान प्रदान कर रही थीं।

जमीन की प्राकृतिक दशा तथा मिट्टी

ब्राजील के ऊँचे पठार तथा स्थान जहां पर कहवा उगाया जाता है वहां पर लटकने हुये मैदान स्थित हैं जिनके मध्य सीधे खड़े ढाल वर्तमान हैं। इन खड़े ढालों तथा दीवारों में से प्रथम दीवार समुद्र तट के समीप स्थित है जिसके कारण उस भाग में पैदा होने वाले कहवा को समीप स्थित तट रेलवे मार्गों पर पहुँचाने में बाधा उपस्थित होती है। साओ पलो स्थान से सैन्टास स्थान तक जाने वाले रेलमार्ग से अधिकांश कहवा भेजा जाता है। चूंकि ढाल साधारण हैं इसलिये वहां पर न केवल पानी का प्रवाह सरल तौर पर होता रहता है वरन् वहां पर हवा का प्रवाह भी आसानी के साथ होता रहता है। चूंकि अधिकांश कहवा के बगीचे पहाड़ियों के सिरे तथा ढालों पर स्थित हैं इसलिये वे बरफ से जमने नहीं है जैसा कि वहां की घाटियों का साधारणतया हाल होता है। कहवा उगाने वाले क्षेत्र में पथरीली भूमि, वन से साफ की हुई धरती, कहवा के बगीचे प्रबन्धक का बङ्गला, कहवा गोदाम, पशुओं के बांधने के मकान, श्रमिकों के घर, कहवा सुखाने का चबूतरा, नीची घाटी, मध्य वर्ती ढालू मैदान, पहाड़ी दीवारें आदि सभी स्थित होती हैं। इसलिये कहवा की उपज में बड़ी सहायता मिलती है। ब्राजील के कहवा वाले क्षेत्रों की रेलवे लाइने संसार के अन्य स्थानों की भांति घाटियों में होकर नहीं वरन् पर्वतीय दीवारों के बगल होकर बनाई गई हैं। साधारण ढालों के होने के कारण वहां पर अच्छी सड़कों तथा रेलवे लाइनों का निर्माण करना सरल है और बगानों में मशीनों के प्रयोग में भी सहायता मिलती है। रेलवे लाइनों के निर्माण में अन्य स्थानों की अपेक्षाकृत कम व्यय पड़ता है।

ब्राजील के कहवा उगाने वाले पठार विभिन्न प्रकार की चट्टानों से मिलकर बने हैं। यद्यपि प्रत्येक भांति की चट्टानों पर कहवा उगाया जाता है फिर भी आग्नेय तथा भूरी चट्टानें कहवा की उपज के लिये अधिक अनुकूल हैं। योंकि इन चट्टानों पर लाल रङ्ग की मिट्टी पाई जाती है जिसमें कहवा खूब उगता है और उसका मजा भी अनोखा होता है। ऐसी भूमि पर उगाये जाने वाले कहवा 'साफ्ट' (हल्का) होता है और अन्य प्रकार की मिट्टी में उत्पन्न होने वाला कहवा 'हार्ड' (कड़ा) होती है। लाल मिट्टी में उपजने वाला कहवा सैन्टास के बन्दरगाह से और कड़ा कहवा रियोडी जैनिरो के बन्दरगाह से बाहर भेजा जाता है। लाल मिट्टी यद्यपि नाजों की उपज के लिये अनुकूल नहीं होती है फिर भी उसमें पौधों की जड़ें अधिक फैलती हैं तथा वे अपने पौधे के लिये भूमि से अधिक खुराक प्राप्त करती हैं। ऐसी भूमि का पानी साधारण रूप से सरलता के साथ बह जाता है और पानी में उगने वाले पौधे इसमें एक स्थान से दूसरे स्थान पर चलते-फिरते रहते हैं। यद्यपि वर्तमान समय में कहवा वाली भूमि को कम खाद दी जाती है फिर भी प्रयोग से यह बात सिद्ध हो गई है कि अधिक खाद देने से उत्पत्ति भी अधिक होगी। कहवा के वे वृक्ष जिनसे कम कहवा की प्राप्ति होती है उसका कारण यह नहीं है कि वे पुराने हो गये हैं वरन् वास्तविक बात यह है कि उन्हें पूरी तौर पर खुराक नहीं मिलती है और इसी कारण उनकी उपज में कमी आती जाती है।

गर्म वर्षा ऋतु—ब्राजील के कहवा वाले प्रदेश में ६५ से ६० इञ्च तक वर्षा होती है। इस वर्षा का चार बटा पांच भाग अक्टूबर से अप्रैल तक बरस जाता है। इस काल में मासिक तापमान ६५ से ७८ अंश तक होता है। यही मौसम होता है जब कि कहवा का पौधा सबसे अधिक उगता है और फल देता है। इसी समय उसे अधिक से अधिक नमी तथा गरमी की आवश्यकता होती है फिर भी अधिक ऊँचाई पर स्थित होने तथा ऊंचे अक्षांशों पर होने के कारण इन स्थानों का तापमान उतना अधिक ऊंचा नहीं होता है जितना कि चाय तथा रबर उत्पादन करने वाले क्षेत्रों तथा स्थानों का होता है। ब्राजील के पठार पर जो उष्ण कटिबन्ध के सिरे के समीप स्थित है वहां कहवा ८५० फुट की ऊँचाई से लेकर ३००० फुट की ऊँचाई तक पैदा होता है। परन्तु १८०० फुट से २५०० फुट की ऊँचाई तक स्थित लहरीदार मैदानों में अधिकांश कहवा उगाया जाता है। यह बात निस्सन्देह ही सत्य है

कि जो कहवा ऊँचे अक्षांशों पर उगाया जाता है उसका जायका बड़ा ही उत्तम होता है परन्तु इसका कारण क्या है यह नहीं बतलाया या समझाया जा सकता है। इस विशेष जायके का कारण जलवायु और मिट्टी ही हो सकती है। कहवा के पौधों को छाया की आवश्यकता नहीं है। केवल छोटे पौधों को ही छाया की आवश्यकता पड़ती है। इन स्थानों पर छायादार वृक्षों का उगाया जाना अधिक व्यय सङ्गत है। कभी-कभी वर्षा के फुहारे पड़ते हैं जिससे बहुधा धूप रहा करती है। दिसम्बर से फरवरी तक खूब वर्षा होती है परन्तु इस काल में भी धूप हुआ करती है। प्राय. उगने वाली ऋतु में रोजाना वर्षा हुआ करती है। वर्षा के पहले और पश्चात् भी रोजाना काम करना सम्भव होता है। पौधों के नीचे जो घास उगती हैं की कटाई में सुविधा होती है और बैरों को बाजार के लिये तैयार करने में बहुत अधिक सहायता मिलती है। फसल की ऋतु मई मास में आरम्भ होती है और अगस्त में समाप्त होती है। फसल के समय श्रमिकों की बहुत अधिक आवश्यकता पड़ती है। इस समय जितने अधिक परिश्रम की आवश्यकता होती है वह शुष्क शीत ऋतु में सरलता के साथ किया जा सकता है। इस ऋतु में ग्रीष्म ऋतु की भांति ही श्रमिक सख्त काम करना नहीं पसन्द करते हैं। इस ऋतु में परिवार के सभी लोग कहवा के फल चुनने, तोड़ने तथा उन्हें फेजेंडा केन्द्र में पहुँचाने में व्यस्त रहते हैं। कहवा को बाजार में बेचने के लिये मस्त धूप तथा गरमी की आवश्यकता है। कारखाने में कहवा के बैरों का छिलका मशीन द्वारा अलग कर दिया जाता
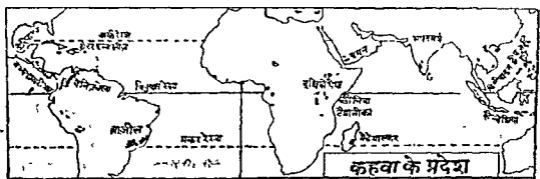
६—ससार के प्रमुख कहवा के प्रदेश

वह या तो हल से जोत दी जाती हैं और या उन्हें कुदाली तथा खुरपे से दो-तीन बार निरा दिया जाता है। वर्षा ऋतु के प्रारम्भ तथा अन्त में थोड़ी थोड़ी वर्षा होती है इससे कहवा के बौरने (फूल लगने) तथा फल लगने तथा पकने में यथेष्ठ सहायता मिलती है। भीषण वर्षा से फूल तथा पक्के फल भी झड़ जाते हैं जिससे उपज में बड़ी हानि होती है और फसल खराब हो जाती है।

ठंढी शुष्क ऋतु - यहां मई से लेकर अगस्त मास तक मासिक तापक्रम ५७ से ६१ अंश तक रहता है और इस ऋतु में प्रत्येक मास में साधारणतया २ इञ्च वर्षा होती है। न्यूनतापक्रम, कम वर्षा तथा अधिक खुरपीदाने के कारण ठीक तौर पर फलियां पकती हैं, फसल हैं और उसके बाद बड़ी सावधानी से बीज धोये तथा सुखाये जाते हैं। बीजों की धुलाई और सुखाई पर ही कहवा की अच्छाई बुराई निर्भर करती है। काफी को सुखाने के लिये काले रङ्ग से पोते हुये चबूतरों पर धूप में सुखाया जाता है। वर्षा के फुहारों से तथा रात में रहने से काफी के ऊपर एक प्रकार का पर्दा सा पड़ जाता है जिसके कारण सुखाते समय उसे बीच-बीच में किसी वस्तु से चला-चला कर सुखाना पड़ता है फिर भी काफी को सुखाने में एक या दो मास लग जाते हैं। कभी कभी वर्षा हो जाने से काफी सुखाने में और अधिक विलम्ब हो जाता है और तब काफी को सुरक्षित स्थान में रखना पड़ता है जिससे अतिरिक्त व्यय पड़ता है यद्यपि इसी प्रकार की खराबी नहीं

हो पाती है। यदि फसल के समय गहरी वर्षा होती है तो काफी को बनावटी गर्मी देकर सुखाया जाता है। बनावटी गर्मी से सुखाने का काम बहुधा लोग किया करते हैं। समस्त शुष्क ऋतु में साधारण वर्षा होती रहती है वह काफी के वृक्षों के लिये आवश्यक है क्यों कि काफी के पेड़ों को साल भर नमी की आवश्यकता होती है। उन्हें बीर लगने से लेकर फलों के तैयार होने तक नमी (अर्थात् १० मास) तक नमी की जरूरत रहती है। शुष्क शीत ऋतु में सूखे वृक्षों को काटा जाता है और वृक्षों की कटाई-छटाई होती है।

यहाँ पर चूंकि शुष्क ऋतु लम्बी होती है और काफी के पौधे झाड़ीदार नहीं होते हैं इसलिये उनके नीचे छाया नहीं रहती है। धूप के कारण वृक्षों में किसी प्रकार की बीमारियां नहीं पैदा होती हैं और न किसी प्रकार के कीड़े-मकोड़े ही पैदा होते हैं जैसे कि अन्य प्रदेशों में काफी के प्रदेशों में हुआ करता है। शीतकाल तथा बड़े बड़े नये विशाल मैदानों में होती होने के कारण काफी के पौधों को बीमारियां कम होती हैं। केवल फैलोडेरेस काफिये नामक कीड़ा ही ऐसा है जो काफी के पौधों को हानि पहुँचाता है। इसी कीड़े ने जावा और सुमात्रा में काफी की खेती को नष्ट किया था। ब्राजील में इस कीड़े की रोक थाम के लिये आरम्भ काल में काफी उगाने वालों तथा सरकार के द्वारा उचित समय पर कार्यवाही की गई जिससे नियंत्रण स्थापित किया जा सका। प्रतिवर्ष इस जन्तु से फसल तथा पौधों की रक्षा के लिये बहुत अधिक रुपया व्यय करना पड़ता है।

काफी के पौधों को अधिक शीत से हानि होती है। यदि बरफ जमने वाले बिन्दु से अधिक सरदी हो जाती है तो उससे काफी के पौधों को महामारी जैसी बीमारी भी हो जाती है। इस प्रकार की शीत ब्राजील में केवल कुछ ही पड़ते पड़ती है। इसी कारण घाटियों की तलहटी और २५०० फुट की ऊंचाई से ऊपर वाले स्थानों पर काफी की वाटिकाएँ नहीं लगाई जाती हैं। ब्राजील में १८७०, १८८६, १९०२ तथा १९१८ ई० में जो सर्द हवाओं की लहरें चली उनसे यह सिद्धान्त निकाला गया कि वहां पर हर सोलहवें वर्ष ठंडी हवाएं चलती हैं। परन्तु १९३४ ई० में वहां में वहां ठंडी हवाओं की लहर नहीं चली। १९०२ तथा १९१८ की सर्द हवाओं से ५ अरब पौधों की हानि हुई थी।

काफी के खेतों की स्थिति तथा यातायात

साधन—यद्यपि कहवा के बगीचे वाले क्षेत्र पहाड़ी खड़ी दीवारों द्वारा समुद्र से अलग हैं फिर भी वे समुद्रों के समीप स्थित हैं। प्रत्येक कहवा वाले जिलों को रेल मार्ग बनाये गये हैं और प्रत्येक कहवा स्टेटों की ब्रांच रेलवे लाइनें बनी हैं। कारखानों में कहवा को रेलवे लाइनें सैन्टास तथा रियोडीजेनेरो बन्दरगाहों पर पहुँचाती हैं। इन बन्दरगाहों पर रेलों के डिब्बों तथा गोदामों से जहाजों पर कहवा को लादने के लिये विशेष प्रकार की लादने वाली मशीनें बनाई गई हैं। चूंकि ब्राजील से बहुत अधिक कहवा का निर्यात होता है इसलिये यह सुविधायें उसके लिये बड़ी आवश्यक हैं।

ब्राजील कहवा की साहसी खेती—ब्राजील ने अपने कहवा के व्यवसाय को बनाये रखने के ध्यान से बहुत बड़ी मात्रा में अपने कहवा को जला कर राख कर डाला था। जितनी कहवा उसने जलाई थी उससे समस्त संसार की तीन वर्ष की मांग पूरी की जा सकती थी। आज ब्राजील में प्रति वर्ष निर्यात करने के बाद भी यथेष्ठ मात्रा में काफी बच जाती है इतना ही नहीं वहां पर प्रति वर्ष काफी की उपज बढ़ती जा रही है क्योंकि जिस समय कहवा का भाव महंगा था उस समय बहुत अधिक संख्या में कहवा के बगीचे लगाये गये थे और उन बगीचों से अब प्रतिवर्ष अधिक से अधिक उत्पादन मिल रहा है। काफी के सम्बन्ध में आशा की जाती थी कि उसकी बनावटी महँगी दर स्थायी बनाई रखी जा सकेगी परन्तु ऐसा सम्भव नहीं प्रतीत हो रहा है।

१९०६ ई० की भारी कहवा की फसल के पश्चात् साओ पौलो सरकार ने बची कहवा के ८५ लाख बोरों की खरीद की थी और फिर उसे ऊँची दर पर बेचा था यह कहवा के सम्बन्ध में प्रथम साहसी कार्य था। इसके बाद १९२० ई० तक जैसे जैसे कहवा की मांग बढ़ती गई वैसे-वैसे उसकी उपज भी बढ़ती गई।

१९१७ और १९२१ ई० में बची कहवा को फिर खरीदा गया। कहवा की दर को स्थायित्व प्रदान करने के ध्यान से १९२३ ई० में कहवा की स्थायी रक्षा के लिये एक इंसटीट्यूट स्थापित किया गया। इस संस्था के स्थापित करने का तत्कालीन कारण यह हुआ कि कहवा के मूल्यों में भारी कमी आ गई थी। मौसम की भिन्नता का कहवा की उपज पर भारी प्रभाव पड़ता है इतना ही नहीं जब कभी भी भीषण वर्षा होती है तो उसके पश्चात् दो या तीन कहवा वाली फसलें खराब हो जाती हैं, और कहवा कम पैदा होती है। जब फसल बड़ी हुई तो मूल्यों में इतनी कमी हो गई कि फसल पैदा करने वालों को बहुत कम लाभ हुआ और जब कहवा की पैदावार कम हुई तो भी दरों में मन्दी बनी रही क्योंकि ब्रिटिश, अमरीकी तथा जर्मन व्यापारियों के पास जो बची कहवा थी उसे वह बाजार में लाकर पूर्ति करते रहे। बगीचों के लगाने वाले मालिकों ने उस समय यह दलील पेश की कि यदि वे अधिक उपज वाली कहवा को अपने कारखानों में बचा रखेंगे तो कहवा के मूल्य को स्थायित्व प्रदान कर सकेंगे क्योंकि जब छोटी फसल होगी तो वे अपने कारखानों में रखी कहवा को निकाल कर बाजार में पूर्ति करेंगे और कारखानों से जो कहवा बाहर निकाली जायगी वह मूल्य के अनुसार ही निकाली जायगी। कहवा को रोकने का अर्थ यह था कि बगीचा लगाने वाले मालिकों के पास धन हो क्योंकि बिना धन के उनका काम नहीं चल सकता था, देश के भीतरी भाग में एकत्रित कहवा पर वह ऋण लेना चाहते थे सैंतोस तथा रियोडी जैनियरो के व्यापारियों ने उन्हें आन्तरिक प्रदेश में एकत्रित कहवा पर ऋण देने से इन्कार कर दिया क्योंकि वे अपनी इच्छानुसार उसकी बिक्री नहीं कर सकते थे। आखिरकार साओ पौलो के स्टेट बैंक ने रुपये का प्रबन्ध कर दिया। उसने विदेशों से इस कार्य के लिये ऋण लिया था। १९२१ से लेकर १९२६ तक काम भली भांति चलता रहा। इन वर्षों में उपज कम हुई। १९२७ ई० में कहवा की अच्छी पैदावार हुई फिर भी स्टेट बैंक बड़ी कठिनाई के साथ कहवा की दरों को स्थायी बनाये रख सका। १९२८ ई० में कहवा इंस्टीट्यूट को इस बात में सफलता प्राप्त हुई कि वह ब्राजील के अन्य कहवा के राज्यों को अपने साथ मिलाने में सफल हुआ। १९२९ ई० कहवा की फसल फिर बड़ी अच्छी हुई जिसका परिणाम यह हुआ कि संसार के एक साल के खर्च के बराबर कहवा बच गई। कहवा संस्था को विदेशों से ऋण नहीं मिल सका और १९२९ ई० में संसार में मूल्यों की कमी हो गई, इसके अतिरिक्त १९३१ ई० में पुनः कहवा की भारी उपज हुई इसलिये उसे कहवा की रक्षा की स्वीकृति करनी ही पड़ी। इसलिये कहवा संस्था ने इस बात की गवाही कर दी कि कहवा के वृक्ष न लगाये जांय, बची कहवा को जला दिया जाय और कहवा की खपत के लिये विदेशों में प्रचार कार्य किया जाय।

ब्राजील में कहवा नष्ट करने वाली जो नीति अपनाई गई वह आर्थिक दृष्टि से अनुचित थी क्योंकि कहवा को चुनना पड़ता था, साफ करना और सुखाना पड़ता था और उसके पश्चात् उसे नष्ट करने के लिये केन्द्रीय स्थानों पर लाना पड़ता था। इस नीति के अनुसार ब्राजील ने ६ करोड़ कहवा की बोरियों को जला कर नष्ट किया था। बची कहवा की खपत करना असम्भव सी बात प्रतीत होती है क्योंकि ब्राजील में प्रतिवर्ष इतनी अधिक कहवा की उपज हो जाती है जो संसार में खपाई नहीं जा सकती है। कहवा की उपज के लिये संसार के अन्य देशों में यथेष्ट भूमि है और वहां पर कम व्यय पर वैज्ञानिक रूप से कहवा उपजाई जाती है। ब्राजील में उपजाई कहवा का हवा संस्था द्वारा जो निम्नतम मूल्य निर्धारित किया गया था। वह अकुशल मजदूरों तथा कर्मचारियों द्वारा उपज की गई कहवा पर पड़े हुये व्यय पर आधारित था और वह बहुत ऊँची दर थी। इसलिये अन्य देशों ने इससे लाभ उठाया और कहवा की उपज में उन्नति कर गये। यदि ब्राजील में कहवा के मूल्य को स्थायित्व प्रदान करने के लिये साहसी कार्य न किया जाता तो क्या उस कहवा का व्यवसाय स्थायी न बना रहता ? आरम्भ काल में यही होता कि अकुशल कर्मचारियों तथा श्रमिकों को अलग करना पड़ता और उन स्थानों पर जहां का कहवा की उपज

हो पाती है। यदि फसल के समय गहरी वर्षा होती है तो काफी को बनावटी गर्मी देकर सुखाया जाता है। बनावटी गर्मी से सुखाने का काम बहुधा लोग किया करते हैं। समस्त शुष्क ऋतु में साधारण वर्षा होती रहती है वह काफी के वृक्षों के लिये आवश्यक है क्योंकि काफी के पेड़ों को साल भर नमी की आवश्यकता होती है। इन्हें बौर लगने से लेकर फलों के तैयार होने तक नमी (अर्थात् १० मास) तक नमी की जरूरत रहती है। शुष्क शीत ऋतु में सूखे वृक्षों को काटा जाता है और वृक्षों की कटाई-छंटाई होती है।

यहाँ पर चूंकि शुष्क ऋतु लम्बी होती है और काफी के पौधे झाड़ीदार नहीं होते हैं इसलिये उनके नीचे छाया नहीं रहती है। धूप के कारण वृक्षों में किसी प्रकार की बीमारियां नहीं पैदा होती हैं और न किसी प्रकार के कीड़े-मकोड़े ही पैदा होते हैं जैसे कि अन्य प्रदेशों में काफी के प्रदेशों में हुआ करता है। शीतकाल तथा बड़े बड़े नये विशाल मैदानों में खेती होने के कारण काफी के पौधों को बीमारियां कम होती हैं। केवल फैनोडेरेस काफिये नामक कीड़ा ही ऐसा है जो काफी के पौधों को हानि पहुँचाता है। इसी कीड़े ने जावा और सुमात्रा में काफी की खेती को नष्ट किया था। ब्राजील में इस कीड़े की रोक थाम के लिये आरम्भ काल में काफी उगाने वालों तथा सरकार के द्वारा उचित समय पर कार्यवाही की गई जिससे नियंत्रण स्थापित किया जा सका। प्रतिवर्ष इस जन्तु से फसल तथा पौधों की रक्षा के लिये बहुत अधिक रुपया व्यय करना पड़ता है।

काफी के पौधों को अधिक शीत से हानि होती है। यदि बरफ जमने वाले बिन्दु से अधिक सरदी हो जाती है तो उससे काफी के पौधों को महामारी जैसी बीमारी भी हो जाती है। इस प्रकार की शीत ब्राजील में केवल कुछ ही घंटे पड़ती है। इसी कारण घाटियों की तलहटी और २५०० फुट की ऊंचाई से ऊपर वाले स्थानों पर काफी की वाटिकाएं नहीं लगाई जाती हैं। ब्राजील में १८७०, १८८६, १९०२ तथा १९१८ ई० में जो सर्द हवाओं की लहरें चलीं उनसे यह सिद्धान्त निकाला गया कि यहां पर हर सोलहवें वर्ष ठंडी हवायें चलती हैं। परन्तु १९३४ ई० में यहां में यहां ठंडी हवाओं की लहर नहीं चली। १९०२ तथा १९१८ की सर्द हवाओं से ५ अरब पौधों की हानि हुई थी।

काफी के खेतों की स्थिति तथा यातायात

साधन—यद्यपि कहवा के बगीचे वाले क्षेत्र पहाड़ी खड़ी दीवारों द्वारा समुद्र से अलग हैं फिर भी वे समुद्रों के समीप स्थित हैं। प्रत्येक कहवा वाले जिलों को रेल मार्ग बनाये गये हैं और प्रत्येक कहवा स्टेटों को ब्रांच रेलवे लाइनें बनी हैं। कारखानों में कहवा को रेलवे लाइनें सैंटास तथा रियोडीजैनरो बन्दरगाहों पर पहुँचाती हैं। इन बन्दरगाहों पर रेलों के डिब्बों तथा गोदामों से जहाजों पर कहवा को लादने के लिये विशेष प्रकार की लादने वाली मशीनें बनाई गई हैं। चूंकि ब्राजील से बहुत अधिक कहवा का निर्यात होता है इसलिये यह सुविधायें उसके लिये बड़ी आवश्यक हैं।

ब्राजील कहवा की साहसी खेती—ब्राजील ने अपने कहवा के व्यवसाय को बनाये रखने के ध्यान से बहुत बड़ी मात्रा में अपने कहवा को जला कर राख कर डाला था। जितनी कहवा उसने जलाई थी उससे समस्त संसार की तीन वर्ष की मांग पूरी की जा सकती थी। आज ब्राजील में प्रति वर्ष निर्यात करने के बाद भी यथेष्ठ मात्रा में काफी बच जाती है इतना ही नहीं वहां पर प्रति वर्ष काफी की उपज बढ़ती जा रही है क्योंकि जिस समय कहवा का भाव महँगा था उस समय बहुत अधिक संख्या में कहवा के बगीचे लगाये गये थे और उन बगीचों से अब प्रतिवर्ष अधिक से अधिक उत्पादन मिल रहा है। काफी के सम्बन्ध में आशा की जाती थी कि उसकी बनावटी महँगी दर स्थायी बनाई रखी जा सकेगी परन्तु ऐसा सम्भव नहीं प्रतीत हो रहा है।

१९०६ ई० की भारी कहवा की फसल के पश्चात् साओ पोलो सरकार ने बची कहवा के ८५ लाख बोरों की खरीद की थी और फिर उसे ऊँची दर पर बेचा था यह कहवा के सम्बन्ध में प्रथम साहसी कार्य था। उसके बाद १९१० ई० तक जैसे जैसे कहवा की मांग बढ़ती गई वैसे-वैसे उसकी उपज भी बढ़ती गई।

हो पाती है। यदि फसल के समय गहरी वर्षा होती है तो काफी को बनावटी गर्मी देकर सुखाया जाता है। बनावटी गर्मी से सुखाने का काम बहुधा लोग किया करते हैं। समस्त शुष्क ऋतु में साधारण वर्षा होती रहती है यह काफी के वृक्षों के लिये आवश्यक है क्योंकि काफी के पेड़ों को साल भर नमी की आवश्यकता होती है। फूल बौर लगने से लेकर फलों के तैयार होने तक नमी (अर्थात् १० मास) तक नमी की जरूरत रहती है। शुष्क शीत ऋतु में सूखे वृक्षों को काटा जाता है और वृक्षों की कटाई-छटाई होती है।

यहाँ पर चूंकि शुष्क ऋतु लम्बी होती है और काफी के पौधे झाड़ीदार नहीं होते हैं इसलिये उनके नीचे छाया नहीं रहती है। धूप के कारण वृक्षों में किसी प्रकार की बीमारियां नहीं पैदा होती हैं और न किसी प्रकार के कीड़े-मकोड़े ही पैदा होते हैं जैसे कि अन्य प्रदेशों में काफी के प्रदेशों में हुआ करता है। शीतकाल तथा बड़े बड़े नये विशाल मैदानों में खेती होने के कारण काफी के पौधों को बीमारियां कम होती हैं। केवल फैनोडेरेस कापिये नामक कीड़ा ही ऐसा है जो काफी के पौधों को हानि पहुँचाता है। इसी कीड़े ने जावा और सुमात्रा में काफी की खेती को नष्ट किया था। ब्राजील में इस कीड़े की रोक थाम के लिये आरम्भ काल में काफी उगाने वालों तथा सरकार के द्वारा उचित समय पर कार्रवाही की गई जिससे नियंत्रण स्थापित किया जा सका। प्रतिवर्ष इस जन्तु से फसल तथा पौधों की रक्षा के लिये बहुत अधिक रुपया व्यय करना पड़ता है।

काफी के पौधों को अधिक शीत से हानि होती है। यदि बरफ जमने वाले बिन्दु से अधिक सरदी हो जाती है तो उससे काफी के पौधों को महामारी जैसी बीमारी सी हो जाती है। इस प्रकार की शीत ब्राजील में केवल कुछ ही घंटे पड़ती है। इसी कारण घाटियों की तलहटी और २५०० फुट की ऊंचाई से ऊपर वाले स्थानों पर काफी की वाटिकायें नहीं लगाई जाती हैं। ब्राजील में १८७०, १८८६, १९०२ तथा १९१८ ई० में जो सर्द हवाओं की लहरें चलीं उनसे यह सिद्धान्त निकाला गया कि यहाँ पर हर सोलहवें वर्ष ठंडी हवाएं चलती हैं। परन्तु १९३४ ई० में वहां में वहां ठंडी हवाओं की लहर नहीं चली। १९०२ तथा १९१८ की सर्द हवाओं से ५ अरब पौधों की हानि हुई थी।

काफी के खेतों की स्थिति तथा यातायात

साधन—यद्यपि कहवा के बगीचे वाले क्षेत्र पहाड़ी खड़ी दीवारों द्वारा समुद्र से अलग हैं फिर भी वे समुद्रों के समीप स्थित हैं। प्रत्येक कहवा वाले जिलों को रेल मार्ग बनाये गये हैं और प्रत्येक कहवा स्टेटों को शाख रेलवे लाइनें बनी हैं। कारखानों में कहवा को रेलवे लाइनें सैंटास तथा रियोडीजेनेरो बन्दरगाहों पर पहुँचाती हैं। इन बन्दरगाहों पर रेलों के डिब्बों तथा गोदामों से जहाजों पर कहवा को लादने के लिये विशेष प्रकार की लाइनें वाली मशीनें बनाई गई हैं। चूंकि ब्राजील से बहुत अधिक कहवा का निर्यात होता है इसलिये यह सुविधायें उसके लिये बड़ी आवश्यक हैं।

ब्राजील कहवा की साहसी खेती—ब्राजील ने अपने कहवा के व्यवसाय को बनाये रखने के ध्यान से बहुत बड़ी मात्रा में अपने कहवा को जला कर राख कर डाला था। जितनी कहवा उसने जलाई थी उससे समस्त संसार की तीन वर्ष की मांग पूरी की जा सकती थी। आज ब्राजील में प्रति वर्ष निर्यात करने के बाद भी यथेष्ठ मात्रा में काफी बच जाती है इतना ही नहीं वहां पर प्रति वर्ष काफी की उपज बढ़ती जा रही है क्योंकि जिस समय कहवा का भाव महंगा था उस समय बहुत अधिक संख्या में कहवा के बगीचे लगाये गये थे और उन बगीचों से अब प्रतिवर्ष अधिक से अधिक उत्पादन मिल रहा है। काफी के सम्बन्ध में आशा की जाती थी कि उसकी बनावटी महंगी दर स्थायी बनाई रखी जा सकेगी परन्तु ऐसा सम्भव नहीं प्रतीत हो रहा है।

१९०६ ई० की भारी कहवा की फसल के पश्चात् सामो पौलो सरकार ने बची कहवा के ८५ लाख बोरों की खरीद की थी और फिर उसे ऊंची दर पर बेचा था यह कहवा के सम्बन्ध में प्रथम साहसी कार्य था। उसके बाद १९१० ई० तक जैसे जैसे कहवा की मांग बढ़ती गई वैसे-वैसे उसकी उपज भी बढ़ती गई।

ऊँचाई तक स्थित हैं, उनमें कहवा की उपज के हेतु आदर्श प्राकृतिक दशाएं वर्तमान हैं। इन देशों की दूरी विषुवत रेखा से जितनी ही अधिक होती जाती है उतना ही कहवा वाली भूमि की ऊँचाई कम होती जाती है। इस प्रकार कोलम्बिया में समुद्र धरातल से ५ हजार फुट की ऊँचाई पर उत्तम प्रकार की कहवा उगाई जाती है। मैक्सिको और पोर्टोरीको में १२०० फुट की ऊँचाई पर कहवा के बगीचे हैं। इन स्थानों का साधारण ताप क्रम इनमें उत्पन्न होने वाली कहवा को विशेष प्रकार का जायका प्रदान करते हैं। कहवा के पौधों के लिये जितने बहाव की आवश्यकता है वह तो केरेबियन अमरीका के क्षेत्रों में उसे प्राप्त है परन्तु यहां पर ब्राजील की अपेक्षा जमीन को अधिक जोतने तथा गोड़ने की आवश्यकता पड़ती है। यहां लाल रङ्ग की गहरी मिट्टी वाले मैदान हैं जहाँ पर कहवा को अच्छी उपज होती है। कुछ भागों में और विशेष-तथा मध्य अमरीकी देशों में हल्की कहवा के लिये आग्नेय लावा वाली मिट्टी तथा राख वर्तमान है। इन क्षेत्रों में ४० से ८० इञ्च तक वर्षा होती है जिसका तीन-चौथाई भाग ग्रीष्म कालीन लम्बी वर्षा ऋतु में बरस जाता है। साल की शेष ऋतु ठंढी तथा शुष्क होती है जो कि कहवा की फसल तैयार करने तथा उसको बेचने योग्य बनाने के लिये बड़ी अनुकूल है। इन देशों में कहवा के पौधों की गोड़ाई कटाई-छटाई और खाद देने का काम बड़ी सावधानी के साथ होता है। अधिकांश बगानों में छायादार वृक्ष हैं जो कि सूर्य की कड़ी धूप से कहवा के पौधों की रक्षा करते हैं। घने प्रदेशों में इस व्यवसाय को चलाने के लिये श्रमिक लोग काफी संख्या में प्राप्त हो जाते हैं। साधारणतया केरेबियाई प्रदेश के कहवा की बगीचे ब्राजील के बगीचों से कहीं अधिक छोटे होते हैं। केरेबियाई आन्तरिक प्रदेशों की कहवा बगीचों से रेलवे स्टेशनों तथा नदियों के बन्दरगाहों पर मोटरों या खच्चरों द्वारा ले जाई जाती है। केरेबियाई प्रदेशों की कहवा अनुकूल वातावरण तथा जलवायु में उत्पन्न होने के कारण उत्तम मध्ययम श्रेणी वाली तैयार होती है जो कि ब्राजील की कहवा की अपेक्षा प्रति पौंड दुगने मूल्य पर बिकती है। ब्राजील के कहवा के साहसो कार्य के फलस्वरूप इन प्रदेशों की कहवा के उत्पादन में यथेष्ठ वृद्धि हुई है।

दक्षिणी एशिया—ब्राजील में कहवा के उत्पादन के पूर्व दक्षिण एशिया के देशों में कहवा का बहुत और अच्छा उत्पादन होता था और समस्त संसार को वहीं से कहवा की पूर्ति की जाती थी। परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में दक्षिणी एशिया के कहवा वाले प्रदेशों में पौधों की ऐसी बीमारी उत्पन्न हुई और उसमें ऐसे कीड़े लगे कि जिससे इन प्रदेशों का और खासकर लङ्का तथा पूर्वी द्वीप समूहों का सारा का सारा कहवा की व्यवसाय सत्यानाश हो गया। परन्तु जब से काफये रोबस्टा नामक कहवा का प्रचार हुआ तब से पूर्वी द्वीप समूहों में पुनः चाय की उपज होने लगी है। इस प्रकार के कहवा वाले पौधे अपनी बीमारियों का सामना करने की काफी शक्ति रखते हैं। जावा और सुमात्रा के ऊँचे स्थानों साधारण प्रकार की कहवा उगाई जाती है जिसका अधिकांश भाग मिलावट के काम में आता है। जावा में १००० फुट की ऊँचाई से लेकर ३००० फुट की ऊचाई तक में जहां अच्छी आग्नेय मिट्टी पाई जाती है उसमें कहवा की व्यवसायिक खेती है। ऐसे स्थानों पर साल में ८० इञ्च से अधिक वर्षा होती है और कहवा की फसल तैयार करने तथा सुखाने के लिये लम्बी शुष्क ऋतु होती है। सरकारी कार्यों, उत्पादन तथा कहवा की तैयारी के हेतु वहाँ घनी बस्ती होने के कारण सस्ते मजदूर मिलते हैं। जावा के पर्वतीय ढालों वाले कहवा के क्षेत्र समुद्र के समीप स्थित हैं।

पूर्वी अफ्रीका के ऊँचे प्रदेश—इथोपिया को कहवा का जन्म स्थान माना जाता है। परन्तु धीरे-धीरे वहां से कहवा की खेती समाप्त हो गई थी; अब पुनः वहां के लोगों के मध्य कहवा के व्यवसाय के सम्बन्ध में रुचि उत्पन्न हुई है। केन्या और टैंगानीका में भी अभी हाल के वर्षों में कहवा की खेती जोर पकड़ने लगी है। चूंकि इन प्रदेशों के मध्यम श्रेणी वाले ऊंचे पठारों तथा ढालों की जलवायु तथा मिट्टी कहवा की उपज के लिये अनुकूल है और वहां पर आदिवासी लोग बगीचों में काम करने के लिये काफी

संख्या में मिल जाते हैं, और वहां ऊँचे स्थानों से समुद्रों तक कहवा ले जाने के लिये पर्याप्त यातायात सुविधाएं प्राप्त हैं इसलिये आशा की जाती है कि कहवा का व्यवसाय वहां अच्छी उन्नति प्राप्त करेगा।

कहवा का विश्व व्यापी व्यापार—संसार का कहवा व्यवसाय एक बड़ा व्यावसाय है। प्रतिवर्ष कच्ची कहवा के लिये संसार को ५० करोड़ डालर व्यय करना पड़ता है। संसार में जितनी कहवा बेची जाती है उसका आधा भाग संयुक्त राष्ट्र अमरीका खरीदता है और पश्चिमी योरप लगभग दो बटा पांच भाग लेता है। ब्राजील तथा केरेबियाई प्रदेशों से प्राय: सारी कहवा संयुक्त राष्ट्र अमरीका जाती है। फ्रांस और इङ्गलैंड कहवा के सबसे बड़े योरपीय खरीदार हैं परन्तु इन देशों में प्रति व्यक्ति के पीछे नार्वे और स्वीडन से कम कहवा की खपत होती है। जिन देशों में चाय का प्रयोग अधिक होता है वहां कहवा का आयात कम होता है।

७–साओपालो के बगीचे में कहवा चुनने का दृश्य। यह काम मई महीनों में आरम्भ होता है।

८–कहवा की पत्ती और फल

९–कहवे की [illegible]
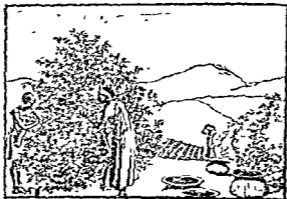
उष्ण कटिबंध तथा समशीतोष्ण कटिबंध में चीनी का उत्पादन

उष्ण कटिबंध के देशों में चीनी के उत्पादन व्यवसाय में बहुत अधिक उन्नति हुई है। चूंकि इन प्रदेशों में उत्पन्न होने वाली चीनी, गन्ने वाले देशों की चीनी तथा चुकन्दर वाले देशों की चीनी के साथ पूरी तौर पर स्पर्धा स्थापित किये हुये हैं इसलिये कई प्रकार की समस्याएं उठ खड़ी हुई हैं जो कि अन्य प्रकार के व्यवसायों से सर्वथा भिन्न हैं। गन्ने की उपज सब्ट्रापिक प्रदेशों में और चुकन्दर की समशीतोष्ण कटिबंध में होती है। विदेशी व्यापार में जो चीनी आती है वह उष्ण कटिबंध के व्यावसायिक खेती वाले देशों से ही आती है क्योंकि सब्ट्रापिक तथा समशीतोष्ण कटिबंध वाले देशों की चीनी प्रायः देशी उपयोग के लिये ही बनाई जाती है। परन्तु चूंकि इन स्थानों की सारी चीनी उत्पादन करने वाले स्थानीय क्षेत्रों में ही नहीं खप जाती है वरन् देशों के प्रसिद्ध व्यापारिक केन्द्रों को भेजी जाती है इसलिये उसका महत्व भी व्यवसायिक ही है।

गन्ने की व्यवसायिक खेती—यद्यपि गन्ने की उपज छोटे-छोटे क्षेत्रों तथा खेतों में की जाती है फिर भी गन्ने की व्यवसायिक खेती बहुत अधिक होती है। उष्ण कटिबंध तथा शीतोष्ण कटिबंध के अधिकांश देशों में जो चीनी तैयार की जाती है वह वहीं पर खप जाती है और जिन देशों में अपनी खपत से अधिक चीनी होती है वह विदेशी व्यापार में प्रवेश करती है।

क्यूबा - प्रायः पचास वर्षों से क्यूबा में इतना अधिक चीनी का उत्पादन होता चला आ रहा है कि वह अपना चीनी का निर्यात लगातार स्थापित किये हुये है। चूंकि क्यूबा का आर्थिक हित चीनी में ही सबसे अधिक है इसलिये चीनी के भाव में जो परिवर्तन संसार के बाजार में होते हैं उसका उसके आर्थिक जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। परन्तु इस कमजोरी के होते हुये भी चीनी के व्यवसाय के कारण क्यूबा का संसार के व्यापार में एक विशेष महत्व का स्थान है। यद्यपि क्यूबा के चीनी उत्पादन पर प्रतिबंधी नियंत्रण लगा हुआ है फिर भी क्यूबा संसार को उसकी खपत का पांचवां अंश देता है। क्यूबा में इतनी अधिक चीनी का उत्पादन के कई कारण हैं।

क्यूबा में गन्ने की काश्त के लिये उत्तम प्रकार की भूमि तथा जलवायु पाई जाती है। यह देश चीनी के उत्पादन में अपनी बराबरी नहीं रखता है। यह एक बड़ा द्वीप है और इसकी जनसंख्या बहुत कम है इसलिये यहां पर गन्ने की खेती के लिये बहुत अधिक भूमि वर्तमान है। चूंकि अल्प जन संख्या को अन्नोपार्जन के लिये अधिक धरती की आवश्यकता नहीं पड़ती है इसलिये गन्ने की खेती बहुत अधिक भूमि में करना सम्भव है।

अन्य द्वीपों की भांति क्यूबा की भूमि प्राकृतिक खामियों के कारण कम नहीं होती है। क्यूबा के धुर पश्चिम तथा धुर पूर्व में पर्वतीय श्रेणियां स्थित हैं, मध्य वर्ती भाग में ऊंची नीची पहाड़ियां वर्तमान हैं, समुद्री तट पर दलदली भूमि है और कुछ जिलों की भूमि कम उपजाऊ है। यह सारे मिल कर क्यूबा की प्रायः आधी जमीन घेरे हैं। अनुमान लगाया गया है कि इस आधे भाग को छोड़ कर शेष प्रायः आधे भाग में गन्ने की खेती होती है। साधारण मोड़दार मैदानों तथा चौरस घाटियों की धरती के नीचे चूने वाली चट्टान वर्तमान है और वहां पर पानी का यथेष्ठ बहाव है। उनकी मिट्टी उपजाऊ है और मशीन द्वारा खेती किये जाने के लिये सर्वोत्तम है। ऐसी भूमि में सड़क तथा रेल मार्ग बनाना बड़ा सरल तथा सस्ता है। चीनी उत्पादन के लिये रेल तथा सड़क मार्ग अत्यन्त आवश्यक हैं। क्यूबा की भूमि में पहले घास वर्तमान थी। वह बड़ी उपजाऊ तथा पानी के बहाव वाली भूमि है इसलिये वहां पर गन्ने की खेती के योग्य खेतों में परिणत करना अत्यन्त सरल कार्य है क्योंकि उस भूमि को केवल जोतने की ही आवश्यकता पड़ती है।

क्यूबा में साल भर में ४० इंच से लेकर ५० इंच तक वर्षा होती है, अप्रैल महीने से लेकर दिसम्बर

महीने तक वर्षा ऋतु रहती है। इस ऋतु में पौधों के तने तथा पत्तियाँ खूब बढ़ती हैं। दिसम्बर मास के आरम्भ से लेकर अप्रैल तक ठंडी शुष्क ऋतु रहती है जब कि गन्ना पकता है और उसमें काफी रस तथा मिठास उत्पन्न होती है। दिसम्बर मास से लेकर मार्च या अप्रैल मास तक में मिठास में ८ प्रतिशत से लेकर १५ प्रतिशत तक वृद्धि होती है। अर्थात् यदि दिसम्बर महीने में गन्ने की मिठास ८ प्रतिशत होती है तो उसी गन्ने में मार्च तथा अप्रैल मासों में चल कर मिठास की मात्रा बढ़कर १५ प्रतिशत हो जाती है। अप्रैल मास के शीघ्र पश्चात् ही वर्षा आरम्भ हो जाती है और तब गन्ने के पौधे हरे हो जाते हैं और मिठास में कमी उत्पन्न होकर ८ प्रतिशत रह जाती है। जब गरमी पड़ती रहती है और नमी होती है तो कटे गन्ने में खट्टापन २४ घटे में आ जाता है। शीत काल में २७ घंटे तक कटा हुआ गन्ना खराब नहीं होता है। शीत काल में किसान को गन्ना काटने तथा उसे कारखानों में पहुँचाने के लिये अधिक समय मिलता है क्योंकि खेतों का गन्ना काट कर वह अपनी बैलगाड़ियों में गन्ने को लाद कर वह रेलवे स्टेशन पर ले जाता है जहाँ से गन्ना सेंट्रेल्स (कारखानों) को भेजा जाता है। शुष्क ऋतु ही शीत काल है और इस ऋतु में व्यापारिक हवाएं चलती हैं जिससे फसल के समय का सख्त कम असह्य कर नहीं होता है। इसके अतिरिक्त यदि वर्षा होती हो तो फिर क्यूबा की भीगी भूमि में बैलगाड़ियों का चलना असम्भव कार्य है। बैलगाड़ियों पर ही खेतों से गन्ना ढोया जाता है। इसके अलावा शीत काल से लोगों में काम करने की और अधि शक्ति तथा स्फूर्ति आ जाती है जिससे लोग बिना किसी परेशानी के कृषि कार्य करते रहते हैं।

पर्याप्त वर्षा होने, ऊंचे तापक्रम और उपजाऊ भूमि के कारण क्यूबा के खेतों में एक बार गन्ने की बोआई करने के पश्चात् एक से आठ बार फसल तैयार की जाती है। पहली फसल तैयार होने के बाद जो फसलें तैयार होती हैं वह पेड़ी फसलें कही जाती हैं। एक बार की बोआई से जो चार से आठ फसलें तक तैयार की जाती है उस से बड़ा अधिक लाभ होता है क्योंकि खेती की जोताई बोआई और गोड़ाई तथा बीजों के दामों से बचत होती रहती है। गन्ने के खेतों की तैयारी में बहुत अधिक खर्च पड़ता है और एक खेत के बोने में उसकी उपज का १० से १५ प्रतिशत तक गन्ना लगता है इस प्रकार की सुविधा अन्य देशों को नहीं प्राप्त है। पोर्टो रीको केवल एक पेड़ी वाली फसल तैयार करता है। हवाई द्वीप में पेड़ी वाली दो फसलें, पेरू में पांच फसलें और जावा में भूमि का अधिक मूल्य होने के कारण मुश्किल से एक ही पेड़ी वाली फसल तैयार की जाती है। सब ट्रापिकल देशों में जैसे कि लूशियाना और अर्जेनटाइन में कुहरा तथा पाला के कारण गन्ने की फसल को पूर्ण रूप से पकने तथा तैयार होने के पूर्व ही काटना पड़ता है इसलिये गन्ने छोटे होते हैं और उसमें रस कम गाढ़ा निकलता है। लूशियाना में शायद ही कभी पेड़ी वाली फसल तैयार की जाती हो साधारणतया यह बात अवश्य होती है कि बोई हुई ईख की उपज पेड़ी वाली से कहीं अधिक उत्तम तथा अच्छी तैयार होती है।

क्यूबा में गन्ने तथा ईख की बोआई विभिन्न समयों पर होती है। जो गन्ना फरवरी से मार्च मास तक में बोया जाता है वह प्रायः एक साल के बाद काटा जाता है। अप्रैल या मई मास में बोया जाने वाला गन्ना दूसरे साल फरवरी मास में काटा जाता है और सितम्बर मास में बोया जाने वाला गन्ना १८ मास के पश्चात् काटा जाता है। साधारणतया जो गन्ना सितम्बर में बोया जाता है उसकी उपज अधिक होती है। इस प्रकार साल में तीन बार बोआई होने से आर्थिक लाभ होता है और काम का समानता के तौर पर विभाजन हो सकता है। श्रमिकों के प्राप्त करने में कठिनाई नहीं होती है और साल भर कृषि कार्य होता रहता है।

चूंकि क्यूबा एक लम्बा तथा सकरा द्वीप है इसलिये वहां यातायात साधनों की कठिनाई नहीं है और प्रायः सभी गन्ने वाले क्षेत्र तटों से केवल कुछ ही मील की दूरी पर स्थित हैं। द्वीप में अनेकों सुन्दर बन्दरगाह हैं जिनमें कम्पनियों ने गन्ना पेरने वाली मिलों के समीप अपने निजी समुद्री घाट बना रखे

हैं। कारखानों में तैयार होने के पश्चात् चीनी तटों पर लाकर जहाजों पर लादी जाती है। क्यूबा संयुक्त राज्य अमरीका के सामने तथा समीप स्थित है और संयुक्त राज्य अमरीका संसार का सबसे बड़ा चीनी का खरीदार है। क्यूबा उत्तरी पश्चिमी योरुप के समीप भी पड़ता है। जो खुले बाजार में चीनी की खरीद करने वाला दूसरा बड़ा क्षेत्र है। चूंकि क्यूबा पूर्व से पश्चिम तक फैला है इसलिये क्यूबा के सभी गन्ने वाले प्रदेशों की जलवायु एक जैसी है।

क्यूबा को जन संख्या की कमी के कारण लाभ और हानि दोनों हैं। श्रमिकों की कमी होने के कारण उसे अपनी फसल का एक बहुत बड़ा भाग निर्यात करना पड़ता है परन्तु इसी के साथ ही साथ अधिक ऊँची दर से मजदूरी पाते हैं। समीप वर्ती द्वीपों में बसे हुये निग्रो लोगों को अधिक काम के समय बुला लिया जाता है। उनमें से बहुतेरे क्यूबा में ही बिना अधिकार के ही बिना कानूनी ढङ्ग से रह जाते हैं।

स्पेनिश-अमरीकी युद्ध के पश्चात् क्यूबा का देश जब स्वतन्त्र हुआ तो उसे अपने देश की उन्नति के ध्यान से अपने चीनी के उत्पादन को बढ़ाने की ओर विशेष रूप से रुचि उत्पन्न हुई। प्लैट संशोधन के अनुसार क्यूबा को उसकी सुदृढ़ राजनीति के सम्बन्ध में विश्वास उत्पन्न हो गया और वहाँ चीनी के उत्पादन के लिये अमरीकी धन का बाहुल्य हो गया। यद्यपि उसके पश्चात् भी क्यूबा में राजनैतिक उथल-पुथल होती रही और लड़ाई-झगड़े चलते रहे परन्तु वे सभी झगड़े आर्थिक कठिनाइयों के कारण होते थे और ये कठिनाइयाँ चीनी दरों के कारण उत्पन्न होती थीं। यद्यपि राजनैतिक उथल-पुथल के कारण चीनी के मूल्यों में गिरावट नहीं हुई या चीनी के लिये आर्थिक कठिनाइयाँ नहीं उत्पन्न हुई परन्तु ऐसा करके क्युबा वालों ने अपनी कठिनाइयों को अपने लिये और अधिक जटिल बना लिया, ऐसा विचार अमरीका वालों का है। परन्तु वास्तविकता इससे परे है। अमरीकी लोग क्यूबा पर अपना नियन्त्रण सदैव के लिये स्थापित करना चाहते थे, उन्होंने क्यूबा से स्पेन वालों को अपने हित साधन के लिये ही निकाला था और फिर जब क्यूबा में अमरीकी धन चीनी व्यवसाय में लगा था तो फिर संयुक्त राज्य अमरीका उसकी चीनी महँगे भाव से क्यों खरीदता।

जावा—जावा में बहुत अधिक चीनी तैयार की जाती है। जावा चीनी के उत्पादन के लिये संसार में प्रसिद्ध है। १९३० ई० में जावा से ३० लाख टन चीनी का निर्यात हुआ था। १९३५ ई० में उसका निर्यात गिरकर ५ लाख टन हो गया। १९३७ ई० में अन्तर्राष्ट्रीय चीनी सम्मेलन ने उसे १० लाख टन से कुछ अधिक का कोटा निर्यात करने के लिये दिया था।

जावा द्वीप प्रायः क्यूबा के आकार का ही है और उतना ही बड़ा भी है। परन्तु अन्य बातों में वह क्यूबा से सर्वथा भिन्न है। जावा की जनसख्या ४ करोड़ से भी अधिक है। इतनी अधिक जनसख्या के पालन पोषण के लिये आवश्यक है कि उसके एक बड़े भू-भाग में अन्न उत्पादन करने के लिये खेती की जाय। जावा में धान की उपज विशेष तौर पर होती है। जनसख्या के अधिक होने के कारण जावा में सभी समयों पर सस्ती मजदूरी पर काम करने वाले प्राप्त हो सकते हैं। जावा के मजदूर अच्छे काम करने वाले होते हैं।

यदि क्युबा और जावा की चीनी उत्पादन की तुलना की जाय तो यह बात वास्तविक तौर पर कही जा सकती है कि जावा में क्यूबा की अपेक्षा कहीं अधिक चीनी का उत्पादन होता है। इसका मुख्य कारण यह है कि जावा में गन्ना तथा ईख के खेतों को बड़ी सावधानी के साथ जोता और कमाया जाता है। बोने के लिये उत्तम प्रकार के बीज का प्रयोग किया जाता है। खेतों को पांस और खाद दी जाती है तथा खेतों की सिंचाई की जाती है। जब कि जावा में सिंचाई नहीं की जाती है और खाद का भी प्रयोग कम किया जाता है। क्यूबा की भांति ही जावा में भी धरती सस्ती है। क्यूबा की प्रायः सारी चीनी संयुक्त राज्य अमरीका तथा उत्तरी पश्चिमी योरुप जाती है जब कि जावा अपनी चीनी दक्षिणी-पूर्वी एशिया तथा उत्तरी-पश्चिमी योरुप के हाथों बेचता है।

भारतवर्ष—भारतवर्ष चीनी की खान कहा जा सकता है। भारतवर्ष में चीनी की खपत बहुत अधिक है। भारत में अति प्राचीन काल से ही जिसे प्रागैतिहासिक काल कहा जा सकता है चीनी तथा मीठे का प्रयोग होता चला आया है और इसी कारण भारतवर्ष में सदैव से गन्ना तथा ईख की खेती होती रही है।

भारतवर्ष की जनसंख्या ३५ करोड़ है। इतनी बड़ी जनसंख्या को इस्तेमाल करने के लिये बहुत अधिक चीनी की जरूरत है और खास कर जब कि भारतवर्ष का प्रत्येक बच्चा, बूढ़ा, जवान और स्त्री सभी प्रति दिन मीठा सेवन करने के आदि हैं। संसार भर में भारतवर्ष ही केवल मात्र एक ऐसा देश है जहां पर विभिन्न प्रकार की मिठाइयां तैयार की जाती हैं और इनका नित्य-प्रति प्रयोग भारतीय लोग करते हैं। भारतीय परिवार में जितनी चीनी प्रयोग की जाती है उतनी संसार भर में किसी भी देश के परिवार में नहीं की जाती है। भारतवर्ष में गन्ना तथा ईख से गुड़, चीनी और शक्कर तथा राब तैयार की जाती है।

भारतवर्ष में उत्तर-प्रदेश, बिहार, उड़ीसा, मध्य प्रदेश तथा मद्रास राज्यों में चीनी का उत्पादन होता है। उत्तर प्रदेश, तो चीनी की खान ही कहा जा सकता है। भारतवर्ष में चीनी की इतनी अधिक खपत है कि यहां पर जितनी चीनी उत्पन्न होती है उतनी तो खप ही जाती है, इसके अतिरिक्त बाहर से भी मगाना पड़ता है। हालके वर्षों में भारतवर्ष ने अपनी समीपवर्ती सर्वी राष्ट्र से दोगुनी चीनी का उत्पादन किया है। भारतवर्ष में चीनी के उत्पादन के लिये अनुकूल वातावरण तथा दशायें वर्तमान हैं। चीनी के खेतों तथा कारखानों में भी काम करने वाले मजदूरों की कमी नहीं है। १९३९ ई० के महासमर के पूर्व भारतवर्ष चीनी बड़ी सस्ती थी। युद्ध काल में भारतीय चीनी सैनिक प्रयोग के लिये बाहर भेजी गई जिससे उसकी बड़ी कमी हो गई इसलिये सरकार ने चीनी पर नियंत्रण स्थापित कर दिया। युद्ध के पूर्व चीनी का भाव १० पैसे या ३ आने सेर था। उस समय गुड़ का भाव ३ पैसे सेर था जब चीनी पर प्रथम बार नियंत्रण स्थापित किया गया तो आठ आने सेर चीनी का मूल्य किया गया और फिर वह बदलते हुये १४ आना से तक हो गया फिर भी चीनी की मांग देश में इतनी अधिक थी कि लोग चीनी की चोरबाजारी करते थे और चोरबाजार में चीनी १ रुपया सेर से लेकर दो रुपया सेर तक बिकती थी। भारत की स्वतंत्रता के पश्चात् इस दशा में परिवर्तन हुआ और अब खुले बाजार में मनमानी मात्रा में चीनी प्राप्त हो सकती है।

गन्ना तथा ईख भारतवर्ष में साधारणतया छोटे-छोटे खेतों में निजी परिवार के भरण पोषण के लिये लिये उत्पन्न की जाती है। भारतवर्ष में बड़े पैमानों वाली ईख की खेती बहुत कम है। किसान लोग अपने साधारण छोटे खेतों में ईख उगाते हैं और फिर उसे तथा कारखानों में ले जाकर बेच देते हैं। जो लोग ईख कारखानों में नहीं ले जाते वरन् गुड़ तथा शक्कर तैयार करते हैं।

भारतवर्ष में जिस गन्ना तथा ईख की खेती होती है, वह तथा तैयार गुड़ और शक्कर स्थानीय स्थानों में ही नहीं खपत होता है, वरण उसका अधिकांश कारखाने वाले नगरों तथा केन्द्रों में भेजा जाता है, जहां पर चीनी और लाल रंग की शक्कर तैयार होती है। इस लिये भारतीय गन्ने की खेती को व्यवसायिक खेती कहा जा सकता है। भारतवर्ष में कई प्रकार की ईख बोई जाती है। देशी सरौती ईख के पौधे यद्यपि छोटे होते हैं परन्तु उसका गुड़ और चीनी खाने में विशेष तौर पर जायकेदार होते हैं। जवाखार अरब बड़ी होती है। इसके अतिरिक्त अधिकांश उपज करने के लिये बड़े तनों वाली ईख की खेती जाती है। ईख की भांति गन्ना भी छोटा, मोटा, सफेद तथा काला कई प्रकार का होता है। गन्ना विशेष कर चूसने तथा रस पीने के काम में ही प्रयोग किया जाता है। नगरों में फेरी वाली गन्ने की गंडेरियां छील और काटकर टोकरियों तथा हाथ गाड़ियों में लेकर बेचते हैं। गन्ने का ताजा रस बड़ा ही स्वादिष्ट और लाभदायी होता है।

ईख के खेतों की तैयारी में विशेष तौर पर परिश्रम करना पड़ता है। माघ के महीने से लेकर चैत्र के

महीने तक ईख बोई जाती है और दूसरे वर्ष पूस तथा माघ के महीने में यह फसल तैयार हो जाती है। खेतों को तैयार करने के पश्चात् ईख की गडेरियाँ गाँठ वाली काटी जाती हैं। गाँठदार गडेरियाँ ही बीज का काम देती हैं। इन्हीं गडेरियों को कुंडों में कुछ-कुछ दूरी पर बोया जाता है। जब पौधे उग जाते हैं तो उनकी गोड़ाई होती है और सिंचाई की जाती है। वैसाख और ज्येष्ठ मास की कड़ी धूप में गोड़ाई तथा सिंचाई होती है। गोड़ने का काम कुदाली द्वारा सम्पन्न होता है ताकि पौधों के कटने की आशंका न रहे। जब वर्षा ऋतु आ जाती है तो फिर ईख के खेतों में तकाई के अतिरिक्त और किसी प्रकार का काम नहीं करना पड़ता है। फसल के तैयार हो जाने पर उसकी कटाई में विशेष तौर पर परिश्रम की आवश्यकता पड़ती है क्योंकि प्रत्येक पौधे को काटना और छीलना पड़ता है। पौधों की कटाई और छिलाई के लिये स्थानीय प्रथाएं हैं जिनके अनुसार काम होता है। ग्रामीण किसान तथा मजदूर स्वयं खेतों में पहुँच जाते हैं और ईख काटते तथा छीलते हैं। वे काटने छीलने तथा खेत के मालिक के घर अथवा चरखी पर अपनी काटी ईख पहुँचा देते हैं और ईख की हरी पत्तियां जिसे अगाव कहते हैं तथा कुछ ईख अपनी मेहनत तथा मजदूरी के बदले ले जाते हैं। साधारणतया प्रति व्यक्ति ५ ईख से १० तक ले जाता है।

प्रत्येक गांव में ईख पेरने तथा उसका रस निकालने के लिये मौसम के समय चरखियां गाडी जाती हैं जिनमें ईख पेरकर उसका रस निकाला जाता है और फिर उसे कड़ाहों में डाल कर भट्टियों में रखकर पकाया जाता है और इस प्रकार गुड़ तैयार किया जाता है। गुड़ तैयार करने के मौसम में किसानों को रात-दिन काम करना पड़ता है। यूं तो कारखानों में ऋतु के समय ही तीन चार मास तक चीनी तैयार की जाती है परन्तु अनेकों कारखानों में साल भर चीनी तैयार करने का काम होता है। जिन कारखानों में साल भर चीनी तैयार की जाती है उनमें गुड़ द्वारा चीनी बनाई जाती है। चीनी मिलों में मजदूरों तथा व्यवसायी वर्गों के आपसी समझौते के अनुसार संस्थाएं बनी हुई हैं और श्रमिकों के अधिकारों के सम्बन्ध में सरकार ने अपने कानून बनाये जिसके अन्तर्गत उनके श्रम के घंटे तथा मजदूरी का नियन्त्रण होता है। भारतवर्ष में गन्ने की उपज तथा चीनी के के लिये अनुकूल वातावरण उपस्थित है। श्रमिकों की भी कमी नहीं है और सस्ती मजदूरी पर काम करने वाले उपलब्ध हो जाते हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् से भारत में चीनी का उत्पादन बहुत बढ़ गया है और अब भारतीय चीनी भी विदेशी बाजार में बेची जाने लगी है।

यद्यपि भारत के विभिन्न भागों में चीनी का उत्पादन होता है परन्तु गंगा की घाटी, मद्रास राज्य में इसका विशेष उत्पादन होता है।

हवाई द्वीप समूह में गन्ने की खेती—

हवाई द्वीप समूह की जनसंख्या कम है और वह सघन बसे संसार से दूर स्थित है तथा प्रशान्त महासागर के विशाल क्षेत्र द्वारा अमरीका और एशिया से अलग है इसलिये वहां श्रमिकों की अत्यन्त कमी है। इसके अतिरिक्त हवाई द्वीप में वर्षा भी पर्याप्त मात्रा में नहीं होती है। जिस मौसम में वहां का तापक्रम न्यूनतम होता है तभी वहां सबसे अधिक वर्षा होती है। इसके अतिरिक्त वहां भीषण शीत कालीन हवायें चलती हैं जिससे गन्ने के पौधों को अत्यन्त हानि पहुँचती है। चूंकि हवाई द्वीप पर संयुक्त राज्य अमरीका का अधिकार है और वहां पर उसी का शासन स्थापित है, वह उसी का उपनिवेश है इसलिये जो चीनी वहां से संयुक्त राज्य अमरीका में जाती है उस पर किसी प्रकार का कर नहीं लगाया जाता है। चूंकि हवाई के गन्ने की खेती में मशीनों का प्रयोग होता है और वहां पर पेड़ी वाली पांच या छः फसलें उगाई जाती हैं इसलिये चीनी के उत्पादन में खर्च कम पड़ता है, मजदूरों की भी अधिक आवश्यकता नहीं होती है और इसलिये मजदूरी पर भी कम व्यय होता है। १८ से २४ महीनों तक खेतों में ईख के पौधे खड़े हुये बढ़ते रहते हैं। चूंकि वैज्ञानिक रूप से खेती का काम किया जाता है और खाद का प्रयोग काफी होता है इसलिये प्रति एकड़ पेंड़े बहुत अच्छी उपज होती है और उसमें अच्छा रस निकलता है।

अन्य उत्पादक—इन देशों के अतिरिक्त उष्ण प्रदेश के अन्य देशों में चीनी उत्पादन देशी प्रयोग तथा निर्यात के हेतु होता है। चूंकि चीनी का उत्पादन गन्ने तथा चुकन्दर दोनों से होता है और दोनों ही की उपज सिंचाई से होती है इसलिये चीनी के उत्पादक क्षेत्रों का बाहुमूल्य है और वे सब कहीं उष्ण, शीतोष्ण तथा समशीतोष्ण कटिबन्धों में बिखरे हुये हैं।

ब्राजील में चीनी का उत्पादन भारतवर्ष की भांति ही होता है इसी कारण ब्राजील भी संसार के चीनी के व्यवसाय का एक आवश्यक सदस्य हो गया है और वह अपने घरेलू खर्च के लिये सारी चीनी पैदा कर लेता है। पहले ब्राजील में चीनी बाहर से आती थी। ब्राजील के उत्तरी पूर्वी भागों तथा पूर्वी तथा मध्यवर्ती ब्राजील के पठारों पर गन्ना उत्पादन कार्य होता है। इन प्रदेशों की भूमि उपजाऊ है और इनकी जलवायु तथा ऋतुएं गन्ने की उपज के लिये अत्यन्त उपयोगी है।

फिलीपाइन—देश पर भी अमरीका का अधिकार था इसलिये वहां की चीनी भी अमरीकी बाजार में ही जाती है। फिलीपाइन के पश्चिमी भाग में जो निचले मैदान हैं वहां पर गन्ने की खेती के लिये बहुत अधिक भूमि वर्तमान है। उपजाऊ भूमि, नम तथा शुष्क ऋतु, समुद्र के समीप स्थिति तथा श्रमिकों की बाहुल्यता और अमरीकी धन की अधिकता से फिलीपाइन के चीनी उत्पादन में बहुत अधिक सहायता प्राप्त हुई है और इन्हीं कारणों से उसके चीनी व्यवसाय की उन्नति सम्भव हो पाई है। फिलीपाइन के निर्यात में चीनी का विशेष स्थान तथा महत्व है। फिलीपाइन के पूर्ण स्वतंत्र हो जाने पर यह सम्भव नहीं हो सकेगा कि वहां की चीनी अमरीका में बिना कर के प्रवेश पास के और ऐसी दशा में फिलीपाइन को किञ्चित हानि पहुँचने की सम्भावना है। संयुक्त राज्य अमरीका में चुकन्दर की खेती से तथा हवाई और पोर्टो रीको के गन्ने के उत्पादकों के कारण फिलीपाइन के चीनी उत्पादकों को गहरा धक्का लगा है।

चूंकि पोर्टो रीको की चीनी संयुक्त राज्य अमरीका के बाजारों में बिना किसी कर के ही प्रवेश पाती है इसलिये चीनी का वहां उत्पादन विशेष रूप से होने लगा है और अब उसका वहां के निर्यात में विशेष स्थान है। चीनी के उत्पादन के पूर्व पोर्टो रीको में अपने देश के गुजारे के लिये ही खेतों में विभिन्न प्रकार का अन्न उपजाया जाता था और केवल तम्बाकू की खेती ही व्यवसाय तथा व्यापार के लिये की जाती थी। पोर्टो रीको के उत्तरी, पूर्वी तथा पश्चिमी भागों में गन्ने की खेती के लंदनांक मैदान स्थित हैं। दक्षिण का शुरना मैदान भी गन्ने की उपज के लिये बहुत उपयोगी है वहां पर सिंचाई द्वारा गन्ना उपजाया जाता है। चूंकि पोर्टो रीको में केवल एक ही पेड़ी वाली फसल होती है और वहां की भूमि एक दीर्घ काल तक गन्ने की काश्त में रहती है और गन्ने को सिंचाई करनी पड़ती है तथा खाद भी देनी पड़ती है इसलिये वहां की चीनी अन्य स्थानों से महंगी पड़ती है।

१६०३ ई० के पश्चात् के पेरू में गन्ने के उत्पादन में पर्याप्त मात्रा में उन्नति भी गई है। पेरू की प्राकृतिक दशा गन्ने की काश्त के लिये बड़ी सहायक सिद्ध हुई है। पेरू के खेतों की भूमि उपजाऊ तो है ही इसी के साथ ही साथ वहां प्रत्येक गन्ने के खेत में प्रति एकड़ के पीछे २०० पौंड मछली वाली खाद छोड़ी जाती है। समय समय पर सिंचाई की जाती है। पौधों को धूप तथा गरमी भी पर्याप्त मिलती है जिसके कारण वहां पर गन्ने की उपज भारी तथा अच्छी होती है और गन्नों में रस भी खूब होता है। पेरू में मछली से खाद तैयार करने का लाभ बहुत होता है परन्तु वह अपनी इस खाद का निर्यात नहीं करता है वरन् अपने यहां देश की खेती में ही उसका प्रयोग करता है। उसकी यह एक उत्तम आर्थिक नीति है। पेरू में ईख की फसल को तैयार होने में १८ से २२ मास तक लग जाते हैं। ईख की बोआई नवम्बर से अप्रैल मास तक बदियाल के मौसम में की जाती है। साधारणतया पेरू में पेड़ी से तीन फसलें तैयार जाती हैं परन्तु अच्छी भूमि वाले खेतों में ७ या आठ पेड़ी वाली फसलें तैयार होती हैं। शुष्क ऋतु होने के कारण साल भर बराबर फसल की कटाई और चीनी का उत्पादन हो सकता है इसलिये वहां फसल

काटने में जल्दी करने की आवश्यकता नहीं है. अतएव व्यय कम पड़ता है। गन्ने की फसल के सम्बन्ध में, पेरू ही संसार में केवल मात्र देश है जहां साल भर ईख काटी जा सकती है। इसलिये पेरू साल भर बराबर विदेशी बाजारों में चीनी की पूर्ति कर सकता है। पेरू की १५ तटीय घाटियों में गन्ने की खेती खास तौर पर की जाती है इसके अतिरिक्त अन्य स्थानों पर भी थोड़ी बहुत खेती होती है। पेरू को छोटे खुले बाजारों में ही अपनी चीनी के लिये अन्य देशों की चीनी का सामना करना पड़ता है।

चुकन्दर वाली चीनी का उत्पादन—

चुकन्दर वाली अधिकांश चीनी पश्चिमी मध्य योरुप तथा पश्चिमी मध्य संयुक्त राज्य अमरीका से आती है।

मध्य पश्चिमी यूरोप—चूंकि इस प्रदेश में चुकन्दर की खेती बहुत अधिक होती है इसलिये यहां पर चीनी की उत्पादन भी खूब होता है परन्तु गन्ने तथा चुकन्दर के उत्पादन में सर्वथा भिन्नता है उनकी चीनियां भी एक दूसरे से भिन्न प्रकार से तैयार की जाती हैं। चुकन्दर जड़ है और वह जमीन के भीतर उत्पन्न होती है। चूंकि चुकन्दर की खेती वैज्ञानिक रीति से की जाती है और उससे उत्पन्न चीनी का उनके घरों में काफी मांग तथा खपत है इसलिये इस प्रदेश की सरकारों ने चीनी के ऊपर काफी निर्यात कर रखा था और इसी कारण वहां का चीनी व्यवसाय खूब फला फूला। प्रथम महासमर काल में इस व्यवसाय को भारी धक्का लगा। युद्ध के पश्चात् यूरोप में राष्ट्रीयता की भावना की लहर जोरों से फैली जिससे चीनी का उत्पादन पुनः युद्ध पूर्व स्तर पर पहुंच गया यद्यपि अनुपातिक उत्पादन गिरा ही रहा। युद्ध के पूर्व यूरोप में संसार की आधी चीनी तैयार होती थी, वर्तमान समय में वहां केवल एक तिहाई का उत्पादन होता है।

चुकन्दर यूरोप की उपज है इस लिये चुकन्दर की उपज उन स्थानों पर होती है जहां की जलवायु नम तथा साधारण है और जहां की ग्रीष्म कालीन निम्न तापक्रम ६७ से ७२ अंश तक रहता है। चीनी के एकत्रित करने के लिये जैसी जलवायु की आवश्यकता है, उस प्रकार की जलवायु मध्य योरुप में सदैव नहीं नहीं वर्तमान रहती है। भारी मिट्टी में नमी अधिक ग्रहण करने की शक्ति वर्तमान होती है परन्तु उसे इतना अधिक गहरा होना चाहिये कि चुकन्दर को किसी प्रकार की हानि पहुँचने की आशंका न उत्पन्न हो सके। उत्तम फसल तैयार करने तथा अधिक उत्पादन करने लिये आवश्यक है कि खेतों में खाद काफी मात्रा में दी जाय। बारी बारी से यदि चुकन्दर की फसल खेतों में तैयार की जाय और उसे खाद दी जाय तो पैदावार काफी अच्छी होती है। चुकन्दर की उपज करने से बारी बारी से दूसरे प्रकार की फसलों के तैयार करने में सहायता मिलती है और चुकन्दर की खली पशुओं के चारे का काम देती है जिससे पशुओं को खाने की सामग्री प्राप्त हो जाती है और पशुओं से खाद की प्राप्ति होती है और वही खाद खेती में काम आती है। चुकन्दर की उपज के लिये तथा उसकी फसल काटने के लिये बहुत अधिक संख्या में मजदूरों की जरूरत पड़ती है इसलिये मजदूरों की मजदूरी कम होने की आवश्यकता है। वैज्ञानिक रीति से चुकन्दर की खेती करने तथा उसकी चीनी तैयार करने के कारण उत्पादन की मात्रा वृद्धि होती है।

संयुक्त राज्य अमरीका—संयुक्त राज्य अमरीका में पूर्वी मशीगन तथा उत्तरी-पश्चिमी ओहियो को छोड़कर पश्चिमी घाटियों की खेतिहर भूमि में सभी स्थानों पर चुकन्दर के खेती होती है। कोलोरेडो, उताह, वी ओमिंग, नेब्रास्का, इदाहो, कैलीफोर्निया तथा मोन्टाना राज्यों में चुकन्दर की अच्छी उपज होती है। संयुक्त राज्य अमरीका के राज्यों में चुकन्दर की अच्छी उपज होने लगी है जिससे इसकी गणना आवश्यक व्यवसाय में की जा सकती है। केवल जर्मनी और रूस में संयुक्त राज्य अमरीका से अधिक चुकन्दर वाली चीनी तैयार होती है। संयुक्त राज्य अमरीका में चुकन्दर वाली चीनी का व्यवसाय ऊँचे करों तथा सस्ते विदेशी मजदूरों के कारण ही सुरक्षित है। यहां मेक्सिको से मजदूर काम करने के लिये आते हैं।

चीनी सम्बन्धी साहसी योजनाएँ—चुकन्दर तथा ईख दोनों प्रकार की चीनियों के उत्पादन में जो

वृद्धि हुई है उसका मुख्य कारण यह है कि बीसवीं के सदी के आरम्भ काल में यूरोप, अमरीका तथा एशिया की जन संख्या में पर्याप्त संख्या में वृद्धि हुई है। एशिया, यूरोप तथा संयुक्त राज्य अमरीका में प्रति व्यक्ति के पीछे चीनी की खपत भी बढ़ी है। गन्ने की चीनी बनाने वालों को प्रथम तथा दूसरे महासमरों से भी विशेष रूप से लाभ हुआ है और चुकन्दर वाली चीनी के उत्पादकों को हानि हुई है क्योंकि चुकन्दर के उत्पादन करने वाले राष्ट्र युद्ध रत थे और उनमें उसकी खेती को यथेष्ट हानि पहुँची है। उत्पादन में बहुत बड़ी बाधा उत्पन्न हुई थी। यूरोपीय देशों में युद्ध काल में जब चीनी का उत्पादन कम हुआ और चीनी की मांग बढ़ी तो उन्होंने गन्ना उत्पन्न करने वाले देशों से ऊँची-ऊँची दरों पर चीनी के भारी भर कम स्टाकों की खरीद की। १६२० में यह खरीदी की गई।

इस प्रकार अपनी चीनी की मांग बढ़ते हुये देख कर और अधिक मूल्य प्राप्त करने की आशा से गन्ना उत्पन्न करने वाले देशों को बड़ा उत्साह प्राप्त हुआ। १६२६ ई० तक चुकन्दर वाली चीनी का उत्पादन पुन: अपने पुराने स्तर पर पहुँच गया और गन्ना वाली चीनी का उत्पादन पहले की अपेक्षा दो गुना हो गया। १६२६ ई० में जब गुड़ का भाव २½ सेंट प्रति पौंड के हिसाब से गिरा तो क्युबा ने अपने ऊपर रोकें लगा कर चीनी की दरों को बढ़ाने का प्रयास किया परन्तु उसे अपनी योजना में सफलता नहीं मिली आखिरकार उसे अपनी योजना को तिलांजलि देनी पड़ी।

जब यूरोप में चुकन्दर वाली चीनी काफी स्टाक जमा हो गया तो वहां वालों ने चीनी के उत्पादन पर विशेष तथा गन्ने वाली चीनी के उत्पादन पर रोक तथा नियन्त्रण लगाने की चिल्लाहट मचाई। जावा ने उसी समय एक नवीन प्रकार की ईख उत्पन्न करने में सफलता प्राप्त की थी जिसका उत्पादन बहुत अधिक होता था उसने योरुपीय लोगों की प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया क्योंकि वह जानता था कि वह अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा अधिक सस्ती चीनी तैयार कर सकता है और इसलिये उसकी चीनी के लिये बाजार मिल ही जायगा। जब जावा ने इस योजना में शामिल होने से इन्कार कर दिया तो क्यूबा भी उससे अलग हो गया।

१६२६ ई० में जब कि अन्य व्यवसायों में उन्नति हो रही थी तो चीनी के भाव में गिरावट हो रही थी और उस वर्ष चीनी की दर में पुन: २ सेंट प्रति पौंड के हिसाब से गिरी हुई। १६३० ई० में चाडबोर्न योजना अपनाई गई और उसमें चुकन्दर तथा गन्ने की चीनी के उत्पादक जो कि अपनी चीनी निर्यात करते थे शामिल किये गये। इस योजना में उत्पादन का पेचीदा कोटा निर्धारित किया गया था। इस योजना में क्यूबा, जावा, पीरू, जर्मनी, चेकोस्लोवेकिया, पोलैंड, हंगरी तथा बेल्जियम देश शामिल हुये। यह योजना आरम्भ काल ही से विभिन्न कारणों वश असफल होने को थी। कुछ देशों में प्रति व्यक्ति पीछे खपत होने वाली चीनी में कमी हो रही थी। संयुक्त राज्य अमरीका में जहां १६२८ ई० में प्रति व्यक्ति पीछे १२० पौंड चीनी का खर्च पड़ता था वहां वह १६३५ ई० में घट कर केवल ६४ पौंड हो गया। चुंगी की ऊँची ऊँची दीवारों के कारण चीनी स्वतन्त्रता पूर्वक संसार के बाजारों में नहीं पहुँच सकी। संसार में चारों ओर चीनी के व्यवसाय में मंदी हो गई इसके साथ ही साथ यह बात विशेष रूप से ध्यान में रखने की है कि इस योजना में बहुतेरे छोटे-मोटे उत्पादकों को सम्मिलित नहीं किया गया था। १६३० ई० में चाडबोर्न योजना लागू की गई। जो देश इस योजना में शामिल थे उनमें उस वर्ष समस्त संसार की चीनी का ४२ प्रतिशत भाग उत्पादन किया गया और जो देश शामिल नहीं थे उनमें ५८ प्रतिशत भाग का उत्पादन हुआ। इसके साथ ही साथ गुड़ का उत्पादन भी योजना के अन्तर्गत वाले देशों में कम ही होता रहा। १६३२ ई० में चीनी का भाव आधा सेंट प्रति पौंड के लगभग था। १६३४ ई० में चीनी का मूल्य १½ सेंट प्रति पौंड तक बढ़ा। १६३६ ई० में योजना के अन्तर्गत देशों में २२ प्रति० इस चीनी का उत्पादन हुआ जब कि योजना के बाहर वाले देशों में ७८ प्रतिशत चीनी पैदा की गई। इसी के साथ ही साथ योजना के आरम्भ काल की अपेक्षा १६३६ ई०

में संसार में चीनी का १० लाख टन उत्पादन बढ़ गया। १९३७ ई० में अन्तर्राष्ट्रीय चीनी सम्मेलन आयोजित किया गया और उसने अपने २२ सदस्यों को चीनी का निर्यात कोटा निर्धारित किया। इन २२ देशों में ससार के अधिक प्रसिद्ध निर्यात करने वाले व्यवसायी शामिल थे। इन व्यवसाइयों का सम्बन्ध केवल निर्यात के लिये उत्पन्न करने वाले देशों से ही था। इसलिये हवाई तथा पोर्टो रिको पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध उस समय तक न था जब तक कि वे अपनी चीनी संयुक्त राज्य अमरीका में बेचते रहें। भारतवर्ष जहां पर कि ससार के बड़े से बड़े चीनी के उत्पादक देश से दुगुनी से अधिक साय पर महत्व पूर्ण प्रभाव पड़ा। नियंत्रण के होते हुये भी १९२६ की अपेक्षा १९३७ ई० में चीनी की फसल ५० लाख टन अधिक उत्पन्न हुई। अनेक बड़े-बड़े उत्पादकों ने अपने उत्पादन में कमी कर दी। क्यूबा में १९२८ ई० में ५० लाख टन चीनी पैदा की गई थी उसने १९३६ ई० में उसे घटा कर केवल २५ लाख टन कर दिया और जावा ने २९ लाख टन से अपना उत्पादन घटा कर ५,६५००० टन कर दिया। इसके विपरीत अनेक चुकन्दर तथा गन्ना की चीनी तैयार करने वाले छोटे उत्पादकों ने अपना उत्पादन कई गुना बढ़ा लिया। योरुप जो कि प्रथम महासमर काल के समय चीनी का सबसे बड़ा बाजार था वहां

चीनी तैयार की जाती है उसे इस योजना में शामिल नहीं किया गया था। क्योंकि वहां पर बाहर से चीनी जाती थी और साथ ही साथ यह भी था कि अंग्रेज भारतीय चीनी व्यवसाय को उन्नति भी नहीं प्रदान करना चाहते थे। क्यूबा का सबसे बड़ा कोटा २८ लाख टन का दिया गया जिसमें से १८ लाख टन संयुक्त राज्य अमरीका ने खरीदा था। दूसरा बड़ा कोटा १० लाख टन का पूर्वी द्वीप समूह को दिया गया। डोमीनिकन रिपब्लिक पीरू, चेकोस्लोवेकिया, रूस, जर्मनी तथा पोलैंड को ४ लाख टन से लेकर १० लाख टन तक का कोटा दिया गया।

१९२६ ई० से १० वर्ष तक चीनी का जो नियंत्रण क्यूबा में रहा उसका ससार के चीनी व्यव- अभी हाल के एक वर्ष में ३,३०,००० टन चीनी आयात की गई है और यह चीनी पूर्वी द्वीप समूह तथा पश्चिमी द्वीप समूह से मगाई गई थी। योरुप ने उपनिवेशों में उत्पन्न होने वाली चीनी को योजना में नहीं शामिल किया था उनकी यह कार्यवाही बड़ी घातक सिद्ध हुई। योरुप में बड़ी-बड़ी चुगी की दीवारें खड़ी कर दी गईं और सरकारी सहायता प्रदान की गई योरुप का अधिकाश भाग चीनी के सम्बन्ध में आत्म निर्भर हो तो गया परन्तु वहां के निवासियों को विदेशी चीनी के अपेक्षा अपने देश की चीनी के लिये दुगुना तथा तिगुना दाम चुकाना पड़ता था। नियंत्रण योजना के अनुसार क्यूबा, जावा तथा अन्य देशों को अपना उत्पादन कम करना पड़ रहा था।

अधिक होती है। कपास की पट्टी की सीमा का निर्धारण जलवायु, भूमि की बनावट और मिट्टी से होता है।

इसकी उत्तरी सीमा उस प्रदेश से होकर जाती है जहां पर साल में २१० दिन कुहरा नहीं पड़ता है और ग्रीष्म ऋतु में वहां का न्यून तापक्रम ७७ अश रहता है। जब मींगुर कीड़ा का आगमन हुआ है तब से इस सीमा को और अधिक उत्तर की ओर हटाने का प्रयत्न किया गया है क्योंकि शीतल हवाओं में मींगुर मर जाते हैं। पश्चिमी टेक्सास में मींगुरों से पौधों को नष्ट होने का कम भय रहता है क्योंकि वहां पर बहुधा पानी बरसता रहता है और तापक्रम बहुधा बरफ जमने वाले बिन्दु से नीचा रहा करता है। कपास पट्टी की पश्चिमी सीमा उस प्रदेश में स्थित है जहां पर साल में २० इंच वर्षा होता है। परन्तु २० इञ्च वर्षा केवल उन्हीं स्थानों के लिये काफी होती है जहां पर मिट्टी अच्छी है और वर्षा ऋतु में ही वर्षा होने से खेती को लाभ होता है। कपास पट्टी की दक्षिणी सीमा उस प्रदेश हो कर जाती है जहां की पतझड़ की ऋतु में १० इञ्च वर्षा होती है। अधिक वर्षा होने से कपास खराब हो जाती है और कपास की चुनाई में बाधा पड़ती है। गरमी तथा वर्षा और नमी के कारण इस दक्षिणी भाग में मींगुरों की उपज अधिक होती है। इन तटीय निचले मैदानों में दक्षिणी लूसियाना तथा टेक्सास में धान, मिसीसिपी डेल्टा में गन्ना और दूसरे प्रदेशों के बलुहे प्रदेशों में फल तथा साग-भाजी की अच्छी उपज होती है। कपास की पट्टी की पूर्वी सीमा साधारणतया बाहरी तथा भीतरी तटीय मैदानों की सीमा रेखा पर स्थित है। बाहरी तटीय मैदानों की सीमा रेखा पर स्थित है। बाहरी तटीय मैदान की भूमि दलदली, ऊन उपजाऊ और बलु ही है। वहां पर पतझड़ की ऋतु में १० से :१२ इञ्च तक वर्षा होती है जिससे वहां पर कपास की खेती होने में बाधा पहुँचती है।

कपास पट्टी के भीतर कपास की खेती का केन्द्रीकरण—काटन बेल्ट या कपास की पट्टी के भीतर कुछ उन बड़े-बड़े मैदानों में मुख्य तथा कपास की खेती होती है जहां की भूमि तथा जलवायु कपास उगाने के लिये अत्यन्त उपयोगी है।

पुराने कपास वाले क्षेत्रों में, जो भीतरी तटीय मैदानों में स्थित हैं, पानी के बहाव के लिये अच्छी भूमि है। भीतरी तटीय मैदान की पीली बलुही मिट्टी कम उपजाऊ है परन्तु ऊँचे स्थानों वाली भूरी लाल बलुही मिट्टी कुछ अधिक उपजाऊ है। परन्तु यह दोनों प्रकार की मिट्टियां शीघ्र ही पिस जाती हैं इसलिये इनमें काम करना सरल है। इन क्षेत्रों को भूमि में पहले खेती इसलिये की गई थी क्योंकि इन्हीं में पहले-पहल बस्तियां बसी थीं। जब तक सस्ती भूमि मिलती रही तब तक खेती करने वाले एक स्थान को छोड़ कर दूसरे स्थान पर जा कर खेती करते हुये घूमते रहे। जब एक स्थान पर खेती करते-करते उपज कम हो जाती थी तो वह उस स्थान से हट कर दूसरे स्थान की सफाई करते थे और नवीन स्थान में खेती करने लग जाते थे। परन्तु जब कपास की खेती होने लगी और जहां एक बार उसकी खेती जम गई वहां फिर उस स्थान का छोड़ना कठिन हो गया। दक्षिणी अपलेशियन प्रदेश में जो सूती कारखाने उन्नति कर गये हैं उसका कारण यही है कि उन्हें अपने समीपवर्ती प्रदेश में कपास काफी, सस्ती और कम व्यय पर मिल जाती है। इन प्रदेशों में वैज्ञानिक रीति से खेतों की जोताई, पसाई तथा बोआई और चुनाई होती है जिससे इन क्षेत्रों में सम्पूर्ण कपास पट्टी से अधिक कपास उगती और पैदा होती है। खाद की अधिकता के कारण मिट्टी की उपजाऊ शक्ति में ह्रास नहीं उत्पन्न होता है और उसमें वैसी ही उर्वरा शक्ति बनी रहती है।

टेनीसी, मिसीसिपी, अर्कन्साय तथा लाल नदी की घाटियों की भूमि कछारी है इसलिये उनकी तलैहटियों में तथा नदियों की मध्यवर्ती भूमि में कपास की अच्छी उपज होती है। इन भूमि को पांस-खाद देने की भी आवश्यकता नहीं पड़ती है। ऊपर टेनीसी नदी की कछारी भूमि उतनी अधिक उपजाऊ नहीं होती है जितनी कि अन्य तीनों नदियों की होती है क्योंकि इन तीनों नदियों द्वारा प्रेरीज तथा बड़े मैदानों और ओज़ार्क के मैदानों की उपजाऊ कछारी मिट्टी बह कर आती रहती है। दक्षिणी इलीनोइस से मध्य लूसियाना नदी का प्रदेश स्थित है। प्रदेश में कपास की बहुत

अधिक उपज होती है और यहां के कपास के रेशे बहुत अधिक लम्बे होते हैं। इस प्रदेश में बाद वाले मैदानों की काली मिट्टी का प्रदेश तथा पहाड़ियों और समीपवर्ती मैदानों की भूरी मिट्टी वाली पट्टी का प्रदेश विशेष रूप से उपजाऊ है और उनमें बहुत अच्छी तथा अधिक मात्रा में कपास उगती है। मिसीसिपी नदी में बहुधा बाढ़ आती है जिससे इस प्रदेश की फसल बहुधा नष्ट हो जाया करती है और बाढ़ से जान और माल दोनों की हानि होती है। प्रत्येक बाढ़ कुछ न कुछ कछारी मिट्टी छोड़ जाता है जो सूखने पर हवाओं द्वारा समीपवर्ती भूमि में एकत्रित कर दी जाती है।

टेक्सास की कपास वाली सबसे अच्छी भूमि मध्यवर्ती तथा पश्चिमी भाग के घास वाले मैदानों में स्थित हैं। मध्यवर्ती भाग की मिट्टी लाल भूरी तथा काली मिट्टी है। इसकी गहराई काफी है और कंकरीली तथा नमकीन होने के कारण शीघ्र ही पिस जाती है। इसलिये इस भूमि का जोतना तथा तैयार करना सरल है। ऊँची-नीची तथा समतल दोनों प्रकार की भूमों में मशीनों द्वारा खेती हो सकती है और मिट्टी बहती खिसकती नहीं है। पश्चिमी टेक्सास की भूमि काली-भूरी है। वह शीघ्र ही पिसने वाली है और उसमें लोना तथा खार वर्तमान है। इन घास के मैदानों में वर्षा कम होती है और विभिन्न प्रकार की फसलों के उगाने का काम विस्तृत तौर पर होता है। इसी कारण यहां पर ऊपर वर्णित स्थानों की अपेक्षा प्रति एकड़ पीछे कम पैदावार होती है। यहां पर पौधों को झींगुरों का भय नहीं है क्योंकि यहां की जलवायु शुष्क है।

साल भर कपास की खेती—कपास की पट्टी का किसान प्रत्येक ऋतु में किसी न किसी काम में लगा रहता है। यहां पर शीत ऋतु छोटी और साधारण होती है। दक्षिणी भाग में केवल दो तीन मासों में कुहरा तथा पाला पड़ता है। शीत काल में वर्षा के फुहारे पड़ते हैं जो कि अन्य ऋतुओं से कम पड़ते हैं और कपास के पौधों का बढ़ने के लिये बड़े लाभ दायक होते हैं।

दक्षिणी भाग में पहली मार्च के बाद पाला तथा तुषार का भय समाप्त हो जाता है जब कि उत्तरी भाग में अप्रैल के अन्त तक तुषार पड़ता रहता है। बसन्त ऋतु साधारण होती है और उसमें साधारण रूप से वर्षा हो जाती है जिससे कपास के पौधों को बड़ा लाभ पहुँचता है। यदि बसन्त ऋतु में अधिक वर्षा हो जाती है तो बीजों के सड़ जाने का भय रहता है और नये पौधे लम्बे-लम्बे अखुए नहीं फोड़ते हैं और बाद में उन्हें नमी की कमी हो जाती है। प्रत्येक भाग कपास की बोआई ऐसे समय से की जाती है कि पौधों को झींगुरों से हानि न हो सके। बीजों को सघनता के साथ बोया जाता है ताकि पौधे समीप-समीप उग सकें। जब पौधे धरती के ऊपर अच्छी तरह से आ जाते हैं तो मजदूर उनकी निराई करते हैं और बढ़ने वाले पौधों को १० से १४ इञ्च की दूरी पर छोड़ते हुये सभी सघन पौधों को निकाल लेते हैं। भूमि की उर्वरा शक्ति के अनुसार पौधों को दूर या समीप रखा जाता है। यदि भूमि अधिक उपजाऊ होती है तो पौधों को अधिक दूरी पर रखा जाता है ताकि वे अधिक से अधिक बढ़ और फैल सकें। दूर दूर पर पौधों के होने से सूर्य का प्रकाश धरती पर पड़ता रहता है जिससे कीड़े मकोड़ों की उत्पत्ति नहीं होती है जिनसे कि पौधों को हानि पहुँचने की आशंका रहती है।

ग्रीष्म ऋतु में वर्षा होती है। साधारणतया वर्षा रात में ही होती है, दिन में कड़ी धूप होती है। लम्बी ग्रीष्म ऋतु में पौधों को बढ़ने में सहायता मिलती है और पौधे शीघ्रता के साथ बढ़ते और पनपते हैं। निरावन भी इस समय खूब उगती है। इसलिये कपास के पौधों की निराई तथा गोड़ाई कई बार करनी पड़ती है। यदि मौसम अच्छा रहता है और पौधों की उचित प्रकार से सेवा होती रहती है तो पौधों में खूब फल फूल लगते हैं और वह खूब बढ़ता है। जैसे ही कपास के फूल गिरने लगते हैं वैसे ही किसान झींगुरों को मारना आरम्भ कर देते हैं। किसान खेतों में पौधों के मध्य जाता है और झींगुरों को मारता हुआ जिन कपास की ढूँढियों में कीड़ों का असर हो जाता है उन्हें तोड़ता जाता है। साथ के झाड़ने से किसान लोग पौधों में जहर छितरा देते हैं और यदि खेत बड़े हुये तो जहरीला पाउडर वायुयानों द्वारा छितरा या जाता है।

कपास पट्टी के दक्षिणी भाग में कपास चुनने का

काम जुलाई मास में और उत्तरी भाग में २ मास के पश्चात् आरम्भ होता है। वर्षा के हो जाने से कपास की चुनाई में बाधा पहुँचती है और कपास का रंग खराब हो जाता है। कपास की फलियों या ढूँढियों में कीड़े लग जाते हैं जो कि कपास का सत्यानाश कर देते हैं। शीत पड़ने से पौधों की बढ़ने वाली शक्ति जाती रहती है। इसलिये जब अधिक शीत होती है तथा तुषार आदि पड़ता है तो पौधों का ऊपरी भाग तथा ऊपरी सिरे की फलियां सूख जाती हैं। कपास की चुनाई का काम कई बार करना पड़ता है क्योंकि कपास की सभी ढूँढियां एक साथ नहीं पकती हैं और कपास एक साथ पूर्ण रूप से नहीं फूटती है। कपास चुनने का काम बहुत बड़ा होता है और इसलिये इस कार्य में किसान परिवार के सभी लोगों को लग जाना पड़ता है। पूर्वी क्षेत्रों में चुनाई का काम हाथ से किया जाता है परन्तु पश्चिमी भागों में मशीनों का प्रयोग होता है। एक मशीन उतनी ही कपास चुनती है जितनी कि १०० आदमी चुनते हैं। साधारणतया कपास चुनने का काम दो-तीन महीने तक चलता है और कभी-कभी इससे भी अधिक समय तक चुनाई का काम होता है।

पतझड़ की ऋतु आने पर कपास के पुराने के पेड़ काट डाले जाते हैं और नया पेड़ों की जोताई कर दी जाती है। जोताई करने से पेड़ों में लगे हुये तथा खेत के सभी प्रकार के कीड़े मकोड़ों का नाश हो जाता है। कपास के कटे पेड़ों को खेतों में जला दिया जाता है। जोतने से यदि बसन्त ऋतु की वर्षा हो जाती है तो खेतों की मिट्टी अधिक नमी खींचती है और उससे नये पौधों को विशेष रूप से लाभ पहुँचता है।

कपास एक ऐसी वस्तु है जिसके द्वारा कभी कभी तो उत्पादकों को अधिक लाभ होता है, क्योंकि परन्तु साधारणतया इसकी बुनाई, कटाई, सफाई तथा देख-रेख और पैंचाई में परेशानी उठानी पड़ती है। कपास से उत्पादकों तथा किसानों को जल्दी ही रुपया मिल जाता है। इस पर लोगों को आसानी से ऋण मिल सकता है क्योंकि इसको खाया नहीं जा सकता है और खराब होने का भय नहीं रहता है तथा साथ ही साथ यह भी है कि बिना धुनाई किये हुये इसका प्रयोग भी नहीं किया जा सकता है। अमरीकी किसानों को कपास के उत्पादन में चार प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। उन्हें फसल की चुनाई प्रणाली का अनुसरण करना पड़ता है, कपास में लगने वाले कीड़े मकोड़ों का सामना करना पड़ता है, खेतों की मिट्टी को कट कर बहने से उन्हें रोकथाम करने का प्रयत्न करना पड़ता है और कभी-कभी मंदी आ जाने पर उन्हें कम मूल्य पर कपास बेचनी पड़ती है।

दास प्रणाली के समाप्त होने के पूर्व अमरीकी कपास वाले मैदानों में दास लोग काम करते थे। स्वतन्त्र हो जाने के पश्चात् भी वह खेतों में काम करने में ही लगे रहे और उन्हें उपज का एक अंश मिलता रहा। फिर वे खेतों के किसान या फसलों के भागीदार बन गये। ये किसान जिस भूमि पर खेती करते हैं उसका लगान नकद रुपयों के रूप में अदा करते हैं जो लोग नकदी लगान नहीं देते हैं वह अपनी फसल का आधा भाग लगान के तौर पर देते हैं। साझीदार किसानों को अमरीकी भूमि पतियों द्वारा खेती के औजार, १ सच्चर, बीज, खाद आदि सारी वस्तुएं दी जाती हैं और उसके परिवार वालों को तथा खच्चरों को खाद्य सामग्री भी भूमि पति देता है ताकि जब तक उपज न हो जाय तब तक किसान परिवार के लोग अपना गुजारा कर सकें और खेतों में काम करते रहें। अपने को प्राप्त इन सारी सुविधाओं के लिये किसान अपनी तैयार होने वाली फसल को तैयार होने के पूर्व ही गहन रख देता है और फसल के तैयार होने पर उसे बेच कर ऋण का रुपया चुकाता है। इस प्रकार की प्रणाली से किसान को लाभ और हानि दोनों हैं। लाभ तो यह है कि उसे सदैव गहन रखने वालों तथा ऋण देने वालों से रुपया मिलता रहता है और अपनी फसल के बल-बूते पर फसल तैयार होने के पूर्व ही किसी समय भी वह ऋण ले सकता है परन्तु हानि यह है कि उसे ऋण का ब्याज चुकाना पड़ता है और यदि फसल में गड़बड़ी हुई, उपज कम हुई या मूल्य कम मिले तो फिर उसका ऋण का बोझ बढ़ता ही चला जाता है। खेतों में ऐसे काम करने वाले किसानों की दशा बड़ी ही सोचनीय होती है। उनके रहने के

मकान खराब और गन्दे होते हैं, उनका सुधार नहीं नहीं हो पाता है, वह अत्यन्त गरीबी की दशा में अपना जीवन व्यतीत करते हैं। यदि अमरीकी भूमि में विभिन्न प्रकार की उपज न होती होती तो इन किसान परिवारों की और भी अधिक दुर्दशा होती परन्तु विभिन्न प्रकार की फसलों के होने से वे आपस में विभिन्न प्रकार की फसलों के नाज का अदला-बदली करते रहते हैं और इस प्रकार जीवन में काम आने वाले सभी प्रकार के नाज उसे उपलब्ध होते रहते हैं। फिर भी अमरीकी खेतों में ऐसे किसानों तथा साझीदारों की कमी नहीं है वरन् अधिकता ही है क्योंकि अमरीकी दस किसानों के मध्य शायद एक ही किसान ऐसा मिलेगा जो अपनी भूमि पर खेती करने वाला होगा। शेष सभी किसान ऐसे होंगे जो कि भूमि पतियों की भूमि लगान पर जोते होंगे और या खेतों के साझीदार होंगे।

१८०२ ई० में कपास में लगने वाले झींगुरों की बाढ़ मैक्सिको से संयुक्त राज्य अमरीका में आई थी। यह पतिंगे हवा के साथ साथ स्वतन्त्रता पूर्वक उड़ते हैं। ७५ वर्ष के भीतर ये पतिंगे सारी कपास वाली पट्टी में फैल गये और इन्होंने अरबों खरबों की फसल सत्यानाश कर दी। कैरोलीना तट की सारी कपास की खेती इन्होंने खराब कर डाली थी। इन पतिंगों से परेशान होकर अमरीकी किसानों को और अधिक सूखे स्थानों पर जा कर कपास की खेती करना पड़ा। कपास की फसल उपजाने के लिये भी ऋतुओं में परिवर्तन करना पड़ा। उन्हें ऐसे स्थानों पर खेती करनी पड़ी जहाँ पर तुषार, कुहरा तथा वर्षा की अधिकता थी और बरफ जमने वाले बिन्दु तक सरदी पड़ती थी क्योंकि ऐसी दशा में कपास में लगने वाले पतिंगे मर जाते हैं। इस प्रकार जहाँ एक ओर कपास में लगने वाले पतिंगों तथा झींगुरों से हानि हुई वहाँ अन्न जाने हुये उनसे यह लाभ भी हुआ है कि पुराने स्थानों को छोड़ कर नये स्थानों पर कपास उग ई जाने लगी है जिससे पहले की अपेक्षा कपास की उपज कहीं अधिक बढ़ गई है।

कपास की खेती करने वाले किसानों की सबसे जटिल समस्या यह है कि वे जिन लहरदार मैदानों में खेती करते हैं उसकी मिट्टी (भूमि) बह जाया करती है। संयुक्त राज्य अमरीका में चूंकि खेतों में कपास की लगातार फसलें तैयार की जाती हैं और उनमें बारी-बारी से दूसरे प्रकार की फसलें नहीं उगाई जाती हैं इसलिये उनकी उर्वरा शक्ति कम हो गई है और यही कारण है जो कि अमरीका में धनी हुई खाद का अधिकांश भाग अमरीका की कपास वाली पट्टी में ही इस्तेमाल हो जाता है। यदि खेतों को पांस न दी जाय तो फिर उनसे उपज करना कठिन हो जाय। यह बात खास तौर उन जिलों के सम्बन्ध में अधिक सत्य है जो कि पुराने हैं और जहां बस्तियां पहले बसीं। खाद के लगाने तथा बहती मिट्टी को रोकने के प्रयासों से उपज में कमी हो गई है और खर्च बढ़ गया है। चूंकि अमरीका एक धनी देश है इसलिये इसकी ये समस्याएं हल की जा सकती हैं अन्यथा यहां के किसानों की बड़ी दुर्दशा होती।

अन्य देशों में कपास की खपत कम हो जाने, कपास की उपज कम होने के कारण एक वर्ष ऐसा हुआ कि कपास का मूल्य कम हो गया जिससे अमरीकी किसानों को कम लाभ हुआ इसलिये उन्होंने १९२६ ई० में और अधिक खेतों को जोता और जिन स्थानों पर खेती नहीं करते थे उन पर भी खेती करने लगे और इस प्रकार अपनी उपज को बढ़ा कर अधिक मूल्य प्राप्त करने का प्रयास किया। परन्तु संसार के अन्य देशों में कपास की मांग कम होती ही गई और कपास के मूल्य में कमी होती ही गई। इसके परिणाम स्वरूप १९३३ ई० में एग्रीकल्चरल ऐडजस्टमेंट ऐडमिनिस्ट्रेशन योजना अपनाना पड़ा ताकि कपास की उपज में कमी की जाय और मूल्यों को बढ़ाया जा सके। यद्यपि बनावटी रूप से कपास के मूल्यों में तो वृद्धि हो गई है परन्तु फिर भी यह आशा नहीं की जा सकती है कि ऐसा करने से अमरीका का सदैव काम चलता रहेगा और वह कपास के मूल्यों को सदैव महगा बना रखा जा सकेगा। और यदि अमरीका चाहे कि उसकी कपास का संसार में पहले की भांति मान्य हो और वह मनमाने मूल्य प्राप्त करे तो इसमें बहुत अधिक संदेह है क्योंकि मूल्यों की वृद्धि के कारण कहवा तथा रबर की भांति

ही संसार के अन्य देश भी अपने यहां कपास की खेती करने लगेंगे और जहां पर कपास की उपज के लिये उपयोगी भूमि तथा वातावरण उपस्थित है वहां पर कपास की खेती में वृद्धि तथा उन्नति हो जायगी और इस प्रकार अमरीकी कपास का मूल्य अमरीका को मनमाना नहीं मिल सकेगा और परिणाम यही होगा कि उसे अपने गेहूँ की भांति ही कपास को भी जलाना पड़ेगा और जलाने तथा नष्ट करने पर भी उसकी समस्या सुलझ नहीं सकेगी। अमरीकी किसान इसी कारण कपास पट्टी में कपास की उपज के स्थान पर कपास वाले खेतों में अन्य प्रकार की फसलें उगाने लगे हैं तथा वहां पर पशुओं आदि का पालना आरम्भ कर दिया है।

कपास के किसानों को अन्य प्रकार की

खेती—यद्यपि कपास वाली पट्टी की खास उपज कपास ही है परन्तु वहाँ पर कपास के अतिरिक्त अन्य भांति का नाज तथा पशुओं का चारा उत्पन्न किया जाता है। अनाज उपज करने वाले क्षेत्रों का क्षेत्रफल कपास उगाने वाले क्षेत्रों के क्षेत्रफल के ही बराबर है। काउपी (मौफली) नामक नाज अनाज की अन्तिम फसल तैयार होने के पश्चात् बोया जाता है और यह सुअरों, बतखों तथा पशुओं की खाद्य सामग्री का काम देता है तथा इसके पांस भी तैयार की जाती है। जई और गेहूँ की खेती खूब होती है जिससे खाने के लिये अन्न और पशुओं के लिये चारा मिलता है। जई और गेहूँ की फसल मई या जून मास में काटी जाती है। कपास पट्टी के दक्षिणी भाग में अधिक नमी तथा गरमी के कारण गेहूँ की फसल अच्छी नहीं तैयार होती है परन्तु जई की उपज खूब और अच्छी होती है। गेहूँ तथा जई के बाद पीनट (Peanut) तथा वेलवेट बीन (Velvet Bean) बोये जाते हैं और वह पशुओं तथा सुअरों के चारे का काम देते हैं। शरदकालीन पौधों के पश्चात् लेस्पेडाजा (Lespedaza) नामक पौधा बोया जाता है और अन्य पौधों की भांति ही यह पौधा भी चारा और घास का काम देता है। इसके अतिरिक्त घरेलू प्रयोग में आने वाली अनेक भांति की साग भाजियों तथा फलों की खेती की जाती है।

कपास की पट्टी के किसानों का पशु

पालन—कपास वाली पट्टी में इतने अधिक खच्चर पाले जाते हैं कि वहां कपास के खेतों की गणना एकड़ों तथा बीघों में न हो कर खच्चरों में की जाती है और एक खच्चर वाला, दो खच्चर वाला तथा तीन खच्चर वाला खेत कह कर खेत का परिमाण जाना जाता है। चूंकि कपास की पट्टी में अन्यत्र दूर स्थानों से घी-दूध का मगाना कठिन होता है इसलिये गाय-भैंस भी पाली जाती हैं। परन्तु चूंकि वहां पर एक प्रकार का ऐसा ज्वर होता है जो पशुओं को मार डालता है, इसलिये पशुओं के पालने का काम कम है। चूंकि अमरीकी लोग बछड़ों का मांस खाने के अत्यधिक शौकीन हैं इसलिये वहां बैलों का अभाव सा है। सुअर तथा मुर्गी, बतख आदि अधिक संख्या में पाले जाते हैं।

अमरीकी किसानों का भविष्य—कपास की खेती करने वाले किसानों को अब यह आशा नहीं रह गई है कि देशी तथा विदेशी मिलों में उनकी कपास की खपत बढ़ेगी। इसलिये निराशा की दशा में वे कपास की एक ही फसल के स्थान पर खेतों में बारी-बारी से दूसरे प्रकार के अन्नों को उपजाने का काम करने लगे हैं। इसी के साथ ही साथ वह पशु पालन का काम भी बढ़ाते जा रहे हैं। गाय, खच्चर, सुअर तथा बतख और मुर्गियां अधिक पाली जाती हैं। पशु पालन से उन्हें अपनी भूमि को पांस पहुँचाने तथा उसे घटकर न रहने में सहायता मिलेगी। बारी-बारी से अन्य प्रकार की फसलों के उगाने से अमरीकी किसानों को साल भर बराबर खाद्य सामग्री मिलती रहेगी और इस प्रकार उन्हें खाने के लिये भोजन और पहिनने के लिये वस्त्र मिलता रहेगा और फिर अपनी बची फसल को बेच कर वह धन भी कमा सकेंगे और इस प्रकार अपनी गरीबी को दूर कर सकेंगे।

यूं तो न्यूयार्क तथा वाशिंगटन जैसे बड़े नगरों के नागरिकों की खुशहाली के मस्त समाचार में अमरीकी जनता के खुश हाल होने का संसार में ढिंढोरा पीटा जा रहा है परन्तु वास्तविकता इससे बहुत परे

है। अमरीका का साधारण किसान परिवार बड़ा ही निर्धन, गरीब और तङ्ग दस्त है। उसे अपने भोजन के लिये पर्याप्त मात्रा में अन्न तथा घी दूध नहीं मिलता है। वस्त्र भी वह भर पूर पहिनने को नहीं पाता है और कठिनाई के साथ अपने परिवार का पालन-पोषण कर सकता है।

अन्य देशों में कपास की खेती—यद्यपि कपास की साधारण खेती संसार के विभिन्न अनुकूल प्रदेशों में सब कहीं होती है परन्तु वास्तव में चार ही प्रदेश ऐसे हैं जहां से समस्त संसार की चार बटा पांच भाग की पूर्ति होती है। पूर्वी अफ्रीका (यूगांडा, सूडान, वेल्जियम कांगो, टैंगानीका) में कपास की विस्तृत खेती होती है जहां पर अकुशल मजदूरों से काम लिया जाता है। पीरू तथा मिस्र की नील की घाटी में कपास की अच्छी खेती होती है।

भारत तथा चीन के कपास वाले मैदान—

भारतवर्ष में दकन के मैदान में, गङ्गा की घाटी में तथा ऊपरी पञ्जाब में जो कि अब पाकिस्तान में है कपास की खेती होती है। चूंकि दकन के पठार की उत्तरी भूमि गहरी काली मिट्टी पाई जाती है और दक्षिणी भाग में पीली-लाल मिट्टी पाई जाती है जिसमें कि पानी सोखने की अधिक शक्ति पाई जाती है उसमें कपास की अच्छी और खूब उपज होती है। इन प्रदेशों में २० से ४० इञ्च तक वर्षा होती है। भारत के कुछ भागों में और विशेषतया दक्षिण में जून से सितम्बर मास के मध्य कपास बोई जाती है और जब फाल्गुन तथा चैत मास में सूखी ऋतु आती है तो कपास की चुनाई होती है। वर्षा के कम होने तथा गरमी के अधिक होने के कारण कपास की सिंचाई कुओं, तालाबों नहरों और नदियों से करनी पड़ती है। चूंकि कपास के खेत छोटे होते हैं इसलिये कपास की खेती का सारा काम हाथ से ही किया जाता है। कपास धुनाई और कताई का काम मशीनों द्वारा किया जाता है। मशीनों में धुनी जाने के बाद रुई से बड़े बड़े बण्डल बनाये जाते हैं। धुनी जाने के पहले उसी वस्तु को कपास कहते हैं और जब बिनौला निकाल जाता है तो उसे रुई कहते हैं। भारतवर्ष में उगाई जाने वाली कपास के रेशे छोटे तथा मध्यम श्रेणी के होते हैं इसलिये अमरीकी कपास की तुलना में उसकी गणना कम होती है। भारतवर्ष के अन्य भागों में कपास की खेती वैज्ञानिक रूप से की जाती है और वहां पर अच्छे प्रकार की कपास पैदा होती है।

पञ्जाब में अमरीकी कपास उपजाई जाती है जिसके रेशे बड़े और मुलायम होते हैं और उससे उत्तम प्रकार का कपड़ा तैयार होता है। यह बात सर्वदा गलत है कि भारतीय कपास से उत्तम वस्त्र तैयार नहीं होता है। यही भारतीय कपास है जिससे अंग्रेजों के आने के पूर्व अत्यन्त श्रेष्ठ प्रकार का कपड़ा तैयार किया जाता था। ढाका की मलमल संसार भर में प्रसिद्ध थी। आज भी भारतीय मिलों में बना कपड़ा तथा साड़ियां संसार के अन्य देशों में बने कपड़े से किसी भांति भी कम स्तर की नहीं होती हैं। हां यह बात अवश्य है कि अमरीकी कपास के रेशे चूंकि लम्बे तथा मुलायम होते हैं। इसलिये उसके कातने और सूत बनाने में कम मेहनत और व्यय पड़ता है।

भारतवर्ष में राजपूताना, उत्तरी पूर्वी उत्तर प्रदेश, उड़ीसा, और बङ्गाल के कुछ भागों को छोड़ कर सभी राज्यों में थोड़ी-बहुत कपास की खेती होती है। जिन स्थानों पर कपास मुख्यतः पैदा होती है उन्हें छोड़ कर अन्य सभी स्थानों पर कपास अन्य फसलों के साथ बोई जाती है। अरहर, ज्वार, रेंडी आदि के साथ कपास की खेती लोग करते हैं। असाढ़ के महीने में जब कि अगहनी फसल बोई जाती है तभी कपास भी बोई जाती है और पूस या माघ के महीने में इसकी चुनाई आरम्भ हो जाती है। चूंकि कपास में धीरे धीरे करके उसकी ढूंढ़ियां लगती हैं और धीरे-धीरे करके एक के बाद दूसरी पकती और फूटती है इसलिये उसकी चुनाई कई बार करनी पड़ती है।

१९१४ ई० के महासमर काल तक ब्रिटेन के सारे कारखाने भारतीय कपास के बल बूते पर ही चलते थे। इङ्गलैंड का भारत पर राज्य था। वह यहां की कपास ले जाकर अपने कारखानों की पूर्ति करता

था और वस्त्र तैयार करके भारतीय बाजारों में बेचता था परन्तु देशी आन्दोलनों ने धीरे-धीरे करके देशी कपड़ों की मिलों को जागृत कर दिया और भारत में सूती मिलों के, नागपुर, जबलपुर, कानपुर अहमदाबाद बम्बई, सूरत तथा शोलापुर आदि नगरों में सूती कारखाने खुल गये और उनमें भारतीय कपास का प्रयोग होने लगा। आज तो यह दशा हो गई है कि भारतवर्ष की सारी रुई भारतीय कारखानों में ही खप जाती है। स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय सरकार ने अपने सूती व्यवसाय को और अधिक प्रोत्साहन प्रदान किया है और भारतीय कारखानों का बना हुआ कपड़ा विदेशों को जाने लगा है। भारत में ब्रिटिश मिलों द्वारा तैयार किया हुआ कपड़ा जब खपना बन्द हो गया, और कपास भी वहाँ जानी कम हो गई तो वहां के लङ्काशायर आदि नगरों के कारखाने सदैव के लिये ठप हो गये।

भारत की भांति चीन में अति प्राचीन काल से कपास की खेती होती चली आई है। मध्य चीन तथा उत्तरी चीन में यांगटिसी क्यांग तथा ह्वांगहो और अन्य नदियों की तराई में तथा दक्षिण चीन के कुछ भागों में कपास की खेती होती है। चूंकि बढ़िया भूमि में अन्य प्रकार के खाद्यान्न उगाये जाते हैं और कपास की खेती कम अच्छे मैदानों में की जाती है तथा पुराने ढंग से खेती होती है। खाद का भी प्रयोग कम या नहीं के बराबर होता है इसलिये चीन में मध्यम श्रेणी की कपास उगाई जाती है परन्तु चूंकि चीन की जलवायु तथा वातावरण कपास की उपज के लिये अत्यन्त अनुकूल है इसलिये वहां पर कपास की अच्छी खेती होती है। चीनी कपास की खेती का सारा का सारा काम हाथ से किया जाता है क्योंकि वहां के खेत छोटे होते हैं जहां मशीनी खेती सम्भव नहीं है।

मिस्र तथा पीरू में कपास की खेती—

इन उष्ण तथा कड़ी धूप वाले प्रदेशों में किसान बढ़िया प्रकार की अच्छी कपास की उपज करते हैं। मिस्र में नील नदी अपनी कछारी भूमि लाकर पाटती रहती है जिससे उसकी भूमि सदैव नई तथा उर्वरा बनी रहती है और इसलिये वहां पर अच्छी प्रकार की कपास की अच्छी भारी उपज होती है। पीरू में कपास के खेतों में प्रति एकड़ भूमि में २०० पौंड के हिसाब से मछली की खाद डाली जाती है जिससे कपास खूब उगती और पैदा होती है।

इन प्रदेशों में धूप की अधिकता, उच्च तापक्रम कीड़े मकोड़ों तथा पतिंगों द्वारा फसल को कम हानि होने, शुष्क ऋतु होने, गहरी खेती करने तथा सिंचाई करने और समुद्र के समीप स्थित होने के कारण कपास की उपज भी खूब होती है और उससे लाभ भी खूब होता है। मिस्र में फार्म छोटे होते हैं। कपासी भूमि का नौ बटा दस भाग ऐसा है जिससे फार्म पूरकड़ या उससे भी कम वाले हैं। पीरू के फार्म बड़े हैं। इन प्रदेशों में अमरीका की कपास की पट्टी की उपज की अपेक्षा प्रति एकड़ में दोगुनी उपज होती है।

सोवियत संघ—संयुक्त सोवियत् रूस संघ के कपास उत्पादक प्रदेश तुर्किस्तान तथा ट्रांसकाकेशिया में स्थित है रूस में कपास की खेती में शीघ्रता पूर्वक वृद्धि होने का कारण यह है कि रूस में कपास की बहुत अधिक मांग हो गई और उस मांग की पूर्ति के लिये कपास की खेती सैनिकों द्वारा कराई गई। रूस एक ऐसा देश है जिसे जिस वस्तु की आवश्यकता होती है। उसे वह अपने देश में ही उत्पन्न करने का प्रयास करता है और उसके पीछे पड़ जाता है। नतीजा यह है कि वह अपने प्रयोग की प्रायः सारी वस्तुओं का उत्पादन अपने यहां कर लेता है। जब उसे अपने देश की वस्त्र पूर्ति के लिये आवश्यकता दिखाई पड़ी तो उसने आत्म निर्भर होने के ध्यान से अपने देश में कपास की खेती आरम्भ की और सेना की सहायता से खेती करना प्रारम्भ किया। वहां की कपास की खेती उसकी पंच वर्षीय योजनाओं के अनुसार शीघ्रता के साथ बढ़ी और आज वहां की दशा यह है कि कपास की उपज में रूस का संसार में चौथा स्थान है।

अन्य देशों में कपास की खेती—संसार में कितने ही अन्य भागों में कपास की खेती विभिन्न दशाओं तथा परिस्थितियों में होती है। उत्तरी पूर्वी ब्राजील में बहुत पहले से कपास की खेती होती चली

आई है अब पूर्वी ब्राजील के मध्यवर्ती पठार में भी खेती होने लगी है। पूर्वी ब्राजील में कपास की खेती संयुक्त राज्य अमरीका की भांति ही की जाती है। परन्तु ब्राजील के खेत अधिक बड़े हैं। चूंकि ब्राजील में कपास की उपज के लिये अत्यन्त सुन्दर प्राकृतिक दशायें वर्तमान हैं और कहवा की खेती के स्थान पर कपास की खेती होने लगी है इसलिये ब्राजील में कपास की खेती में अच्छी उन्नति हुई है। यहां पर परती पड़ी भूमि में कपास की अच्छी खेती की जा सकती है।

मैक्सिको में बहुत पहले से कपास बोई जाती है। केरेबियन सागर के देशों, एशियाई कोचक, अर्जेंटाइन, पूर्वी अफ्रीका, पूर्वी आस्ट्रेलिया आदि प्रदेशों में भी कपास की खेती होती है। इन स्थानों की जलवायु शुष्क अथवा अर्ध रेगिस्तानी है।

संसार का कपास व्यापार—संसार के व्यापार में कपास का स्थान न केवल रेशेदार वस्तुओं में सबसे अधिक आवश्यक तथा उपयोगी है वरण आन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में कृषि द्वारा पैदा होने वाली सभी वस्तुओं में इसका अग्रिम स्थान है। इसके अतिरिक्त रुई से जो सामान तथा सामग्री और वस्त्र तैयार किया जाता है उनका भी संसार के व्यापार में बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है। चूंकि सूती वस्त्र ऊनी या जूट (पाट) और केले के बने वस्त्रों की अपेक्षा जल्दी धोया तथा साफ किया जा सकता है और कीड़े मकोड़े इसको नष्ट नहीं कर सकते हैं इसलिये यह अन्य प्रकार के वस्त्रों से कहीं अधिक उपयोगी तथा लाभदायी है। संसार के अनेक भागों से सूती कपड़ा निर्यात किया जाता है परन्तु संयुक्त राज्य अमरीका, भारतवर्ष तथा मिस्र का सूती वस्त्र के निर्यात में अग्रिम स्थान है। चीन, रूस, मैक्सिको, मध्य अमरीका, दक्षिणी अमरीका का उत्तरी भाग और आस्ट्रेलिया में कपास की खेती अपने देश के वस्त्र के लिये की जाती है। पहले भारतवर्ष की कपास ब्रिटेन और जापान जाती थी। ब्राजील से कपास, देशी कार्यालयों से जो बचती है, वह बाहर भेजी जाती है। आशा की जाती है कि भविष्य में चलकर ब्राजील संयुक्त राज्य अमरीका तथा अन्य देशों का कपास के व्यापार में प्रति स्पर्धी बन जायगा क्योंकि वहां पर कपास के उत्पादन के लिये बहुत अधिक तथा अच्छी भूमि वर्तमान है। अर्जेनटाइन में भी अपनी आवश्यकता से अधिक कपास होती है। मिस्र, पीरू तथा पूर्वी अफ्रीका में कपास की खेती निर्यात के लिये की जाती है। जिन देशों में उत्तम श्रेणी का सूती वस्त्र तैयार किया जाता है वहां पर मिस्र तथा पीरू की कपास की सदैव खपत होती है और मांग बनी रहती है। उपनिवेशों में उत्पन्न होने वाली कपास उनके मालिक देशों में भेजी जाती है। चूंकि इन देशों में कपास की उपज के लिये सुन्दर वातावरण, जलवायु तथा भूमि है इसलिये इन देशों से उनके मालिक देशों को सस्ती और सुविधा पूर्वक कपास मिलती रहती है। इन देशों के व्यापारी पुराने तथा कुशल निर्यात करने वाले हैं।

रेशम का उत्पादन

रेशम का उत्पादन—रेशम की खेती की गणना गहरा खेतियों में से एक है। रेशम की खेती से यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि रेशम खेतों में उत्पादन किया जाता है वरण इसका तात्पर्य उन पौधों की खेती या बागबानी से है जिनकी पत्तियां रेशम के कीड़ों के पालने पोसने तथा खाने के काम आती है और जिन के ऊपर रेशम के कीड़े पाले-पोसे जाते हैं।

चीन को रेशम का जन्म स्थान कहा जा सकता है। चीन में अति प्राचीन काल से कई हजार वर्षों तक रेशम तैयार करने का भेद छिपा रखा गया था। उसके बाद वह जापान, भारतवर्ष को मालूम हुआ और धीरे-धीरे करके समस्त संसार को उसका पता चल गया। वर्तमान समय में रेशम तैयार करने का काम पूर्वी एशिया तथा दक्षिणी योरुप में होता है।

रेशम की खेती की गणना व्यवसायिक क्षेत्र में इस कारण होती है कि चीन, जापान और चोसेन को छोड़कर अन्य देशों में जो रेशम तैयार होता है वह अन्य देशों को कपड़ा तैयार करने के लिये भेजा जाता है। रेशम के गोलों को तैयार करने के लिये जिन कीड़ों को पाला जाता है उन्हें अंग्रेजी तथा पश्चिमी भाषा में बाम्बीक्स मोरी कहते हैं। मोरी से मूलबरी (शहतूत) वृक्ष का आभास मिलता है। रेशम से ही उन कीड़ों के नाम का उद्गम हुआ है

और इन्हें सिल्क वर्म या रेशम के कीड़े कहा जाता है। यद्यपि साधारणतया रेशम की कीड़े साधारणतया उन्हीं स्थानों पर पाये जाते हैं जहां पर कि शहतूत का वृक्ष उगता है परन्तु इसका मतलब यह कदापि नहीं है कि जहां पर शहतूत का वृक्ष उगता, बढ़ता और फलता फूलता है वहां पर वे कीड़े अवश्य ही पाये जांय। क्योंकि कीड़ों को पालने तथा रेशम के कातने के लिये बड़े धैर्य तथा कुशलता की आवश्यकता है और यही कारण है जो कि प्राचीन देशों में ही रेशम का व्यापार उन्नति किये हुये है क्योंकि वहां की जन संख्या सघन है तथा वहां पर सस्ते और कुशल मजदूर अधिक संख्या में वर्तमान हैं और भूमि महँगी है।

जापान में रेशम का उत्पादन—जापान रेशम उत्पादक देशों का राजा है और वहां पर समस्त संसार के रेशम निर्यात का प्रायः चार-छटा पांच भाग उत्पादन किया जाता है। उत्तरी होकाइडो प्रान्त से लेकर दक्षिणी क्युशू तक रेशम की खेती होती है। परन्तु मध्य होंशू प्रदेश में सबसे अधिक खेती होती है। इन स्थानों पर जहां धान की उपज के लिये भूमि अलग रखने के लिये कानून बना है वहां की तीन चौथाई जनता और शेष प्रदेशों की समस्तकिसान जनता रेशम के व्यवसाय में लगी है। जापान के सघन प्रदेश में शहतूत का पौधा खूब उगता तथा बढ़ता है। इन प्रदेशों में समतल ऊँची-नीची, पहाड़ी तटीय सभी प्रकार की भूमि पर शहतूत के बाग हैं। सघन बस्तियों से दूर होने तथा बायु के नीचा होने के कारण जापान की ८५ प्रतिशत भूमि में, जो कि अन्य फसलों के लिये उन उपयोगी है, वहां पर शहतूत का पौधा नहीं उगाया जा सकता है।

जापानी किसान परिवार के बच्चे तथा स्त्रियाँ रेशम तैयार करने के कठिन तथा उन उत्साही कार्य में लगे रहते हैं और उनके मर्द लोग धान के खेतों में काम करते रहते हैं। चूं कि रेशम के कीड़ों को खाने के लिये शहतूत की नई पत्तियाँ ही दी जाती हैं इसलिये कृषि वाली भूमि के पास ही शहतूत के बगीचों वाली भूमि पट्टी है। कहीं कहीं पर गांवों तक पहुँचने के लिये यह पट्टी चौड़ा हो जाती है। शहतूत प्रदेश की भूमि का लगान बहुत अधिक होता है। गांव के समीप शहतूत के बगीचों तथा खेतों का लगान २०० से ६०० प्रति एकड़ तक होता है जब कि गांव से दूर खेतों का लगान इसका दशांश होता है। इसलिये चहारदीवारियों तथा खराब भूमि में शहतूत के वृक्षों को लगाया जाता है। जापानी लोग अपने मकानों, बगीचों तथा भू-सम्पत्तियों की चहारदीवारियों पर तथा बेकार परती भूमि पर शहतूत के बगीचे लगाते हैं। शहतूत के पौधे जौ, मटर तथा ऊँचे धान के बिना जोते हुये खेतों और मैदानों में भी लगाये जाते हैं। इनके लगाने से फसलों को किसी प्रकार की हानि नहीं होती है क्योंकि इनकी जमीन के समीप वाली पत्तियां तथा टहनियां काट डाली जाती हैं और उन्हें बसन्त कालीन रेशम के कीड़ों को खिला दिया जाता है।

रेशम के उत्पादन में जलवायु का एक विशेष महत्व है। जापान के प्रधान रेशम उपजाने वाले प्रान्त में शहतूत के पौधों के उपजाने की ऋतु लम्बी होती है। ग्रीष्म ऋतु लम्बी होती है और तापक्रम बहुत ऊंचा रहता है। ग्रीष्म कालीन वर्षा से नई नई पत्तियां खूब निकलती हैं जिन्हें रेशम के कीड़ों को खिलाया जाता है।

जापान में १ करोड़ ५० लाख एकड़ भूमि में शहतूत के बाग लगाये जाते हैं फिर भी प्रत्येक परिवार के पीछे औसत से एक एकड़ भूमि से भी कम आती है। धान मैदानों और खेतों को छोड़ कर जापान की कृषक भूमि के ३० प्रतिशत भाग में शहतूत की खेती होती है।

जापान में तीन प्रकार के शहतूत उपजाये जाते हैं, नीचे, मध्य और ऊंचे छोटे प्रकार का शहतूत शीघ्र ही उगता और बढ़ता है उसमें जल्दी कोंपलें निकलती हैं। जापान में इसकी खेती ७५ प्रतिशत की जाती है। यह कम से कम अवधि में उगाया जा सकता है। यह इतना बड़ा नहीं होता कि अपनी छाया में अन्य पौधों को ढक सके। इसकी पत्तियों को मध्य तथा ऊंचे प्रकार वाले शहतूत से जल्दी चुना जा सकता है और पतझ के समय इसे पृथ्वी के धरातल के समीप से काटा भी जा सकता है और इसे किसी प्रकार की हानि भी नहीं होती है सर्द स्थानों

पर साल भर में पत्तियों की केवल एक ही फसल होती है परन्तु गर्म निचले प्रदेशों में दो बार पत्तियां तोड़ी जा सकती हैं। साधारणतया जापान में पत्तियों की दो फसलें होती हैं जिनमें दूसरी फसल छोटी होती है। छोटे पौधों में बड़े पौधों से २० प्रतिशत कम पत्तियां होती हैं। दक्षिणी चीन के उष्ण प्रदेशों से जापान की शहतूत की पत्तियों वाली फसल छोटी होती है।

शहतूत के पौधों को बड़ी सावधानी के साथ लगाया जाता है। उन्हें खाद दी जाती है। उन्हें निराया तथा गोड़ा जाता है और पतिंगो तथा कीड़े मकोड़ों के खाने से उनकी रक्षा की जाती है। जापान की जलवायु सम्बन्धी दशाएँ सदैव शहतूत के पौधों के लिये अनुकूल नहीं होती हैं। यदि जाड़े के मौसिम में अधिक तुषार पड़ता है तो पौधे मर जाते हैं। बसन्त कालीन तुषार में पत्तियां सूख जाती हैं और अप्रैल तथा मई मास में जो सर्द हवाएं चलती हैं उससे रेशम की कीड़े मर जाते हैं। ग्रीष्म कालीन नमी तथा गर्मी से रेशम के कीड़ों के मध्य बीमारी फैलने का भय होता है।

जापान में बसन्त, ग्रीष्म तथा पतझड़ की ऋतुओं में कीड़ों द्वारा रेशे तैयार कराया जाता है। ग्रीष्म कालीन ऋतु की लम्बाई तथा अच्छी तथा खराब पत्तियों की उपज से ही रेशम के कीड़ों के अंडों को आंका जाता है। बसन्त वाले न कीड़े केवल एक बार साल में अंडे देते हैं। बसन्त ऋतु में रेशम के कीड़े जो अंडे देते हैं वह अप्रैल या मई मास में तैयार होते हैं और उनसे रेशम का तागा या डोरा अच्छा मुलायम, मोटा, और बराबर होता है। इस मौसम वाले कोकूनों की संख्या तीन बटा पांच होती है। ग्रीष्म तथा पतझड़ के मास में जो कीड़े अंडा देते हैं उनके कोकून जून से अगस्त मास तक में तैयार होते हैं। कोकूनों पर मौसम का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। और अच्छे तथा खराब मौसम के अनुसार ही अच्छे तथा खराब प्रकार के कोकून तैयार होते हैं। यदि कोकूनों की एक से अधिक फसल होती है तो निश्चय ही यथेष्ट रूप से लाभ होता है। यूरोप के रेशम उत्पादक देशों अपेक्षा जापान को यही लाभ प्राप्त है कि जापान में एक की अपेक्षा दो फसलें हो सकती हैं। यदि तो रेशम के काम में लोग साल भर लगे रहते हैं। एक फसल के होने से उनका बहुत समय बेकार नष्ट होता है।

रेशम के कीड़ों को पालने में जितनी कठिनाई तथा परिश्रम की आवश्यकता है उसी के फल स्वरूप कच्चे रेशम का मूल्य भी अधिक मिलता है और इसी कारण रेशम पर पूर्वी एशिया का एकाधिकार स्थापित है। छोटे पेटू कीड़े अंडों से निकलने के पश्चात् शीघ्र ही खाने लग जाते हैं और चार-पांच सप्ताह तक लगातार खाते रहते हैं। अपनी केंचुल निकालते समय ही वे खाना बन्द करते हैं। वे जब तक अपना कोकून बनाना आरम्भ नहीं करते तब तक खाते ही रहते हैं। रेशम के कीड़ों को दिन में कई बार और रात में दो बार खाना देना पड़ता है। इसलिये जो लोग रेशम के कीड़ों को पालते हैं उन्हें किसी प्रकार की छुट्टी नहीं रहती है। एक पौंड रेशम प्राप्त करने के लिये १०० पौंड पत्तियों की आवश्यकता रहती है और उन्हें तोड़ कर बड़ी सावधानी के साथ टोकरियों में रखा जाता है। एक पौंड रेशम प्राप्त करने के लिये २१०० कोकूनों की आवश्यकता होती है। रेशम के कीड़ों को जरा भी उनके काम में बाधा नहीं डालनी चाहिये इसी कारण जिन घरों में रेशम के कीड़े पाले जाते हैं वहां लोग नंगे पैर चलते हैं। जिन बर्तनों में रेशम के कीड़ों को खिलाया जाता है उन्हें रोजाना साफ करने की आवश्यकता होती है। जिन कमरों में रेशम के कीड़े पाले जाते हैं उनमें कोई सिगरेट, बीड़ी नहीं पी सकता है या वहां भोजन नहीं बनाया जा सकता है क्योंकि धुएँ तथा चिंगारी से रेशम के कीड़ों को अपने काम में बाधा पहुँचती है। जैसे-जैसे रेशम के कीड़े बढ़ते हैं उन्हें अधिकाधिक स्थान की आवश्यकता होती है। कभी कभी ऐसा होता है कि घर का सारा का सारा भाग रेशम के कीड़े ही दखल किये रहते हैं और परिवार वालों को केवल एक कमरे में एकत्रित होकर रहना पड़ता है। रेशम के कीड़ों वाले कमरे का तापक्रम ६२ से ७८ अंश तक रखना पड़ता है और वहां पर हवा आने की पूरी व्यवस्था रखनी होती है।

यदि तापक्रम में अचानक परिवर्तन हो जाता है तो उससे कीड़ों को मर जाने की आशंका हो जाती है। शीत काल में तापक्रम बराबर बनाये रखने के लिये (लकड़ी का कोयला) जलाना पड़ता है। कीड़ों को जीवित रखने के लिये बहुत अधिक सफाई की आवश्यकता पड़ती है। जब रेशम का कीड़ा पूरा जवान हो जाता है तो उसे एक बर्तन या थाली में हटा दिया जाता है उसके बाद वह कोकून बनाना आरम्भ कर देता है। एक कोकून से ३००० फुट सूत प्राप्त होता है।

कोकूनों के तैयार हो जाने के पश्चात् रेशा तैयार करने का कठिन कार्य किया जाता है। कोकूनों के तैयार हो जाने पर उन्हें भाप या आग पर तपाया जाता है ताकि उसके भीतर के कीड़े मर जांय। रेशम को कातते समय कई एक सूतों को एक साथ काता जाता है ताकि रेशम का उत्तम सूत तैयार हो सके।

पहले रेशम के तागों की कताई का काम स्त्रियां और बच्चे करते थे परन्तु अब यह काम मशीनों द्वारा होने लग गया है। १९२३ से १९३३ ई० तक में रेशम के छोटे करघों में जो प्युनिया तैयार की गई उनकी संख्या २ लाख से घट कर ५० हजार हो गई। आज कल निर्यात के लिये सारा रेशम का सूत बिजली द्वारा काता जाता है यद्यपि घर के लिये अब भी हाथ से थोड़ी-बहुत कताई होती है। तैयार रेशम के कोयों को उचित प्रकार से रखने के लिये स्टोर बनाने पड़ते हैं। लड़कियां जो रेशम की कताई करती हैं उन्हें कातने के लिये मजदूरी दी जाती है। रेशम की कताई का काम दस महीने तक होता रहता है जब कि कोयों का उत्पादन मौसमी है इसलिये कताई की ओर उतना ध्यान नहीं दिया जाता जितना कि कोयों की तैयारी की ओर।

जापान की सरकार ने रेशमी व्यवसाय के प्रत्येक अङ्ग को उत्साहित तथा उन्नति प्रदान करने का प्रबन्ध किया है। जापान सरकार की ओर से राष्ट्रीय तथा स्थानीय प्रयोगात्मक स्टेशन स्थापित किये गये हैं जिनमें स्वस्थ्य, बीमारियों से मुक्त कीड़े तैयार किये जाते हैं और उनका वितरण किसानों के मध्य होता है। रेशम तैयार करने के लिये सरकार की ओर से स्कूल खुले हुये हैं। सरकार अपने नियंत्रण में रेशम की कताई का काम करती-कराती है और निर्यात होने वाले समस्त रेशम की सरकार के ओर से परीक्षा होती है ताकि उत्तम स्तर का ही रेशम विदेशों को भेजा जाय और उत्तम प्रकार के रेशम का स्तर न गिरे।

जापान में रेशमी व्यवसाय में काम करने वाले सभी वर्गों की संस्थाएँ बनी हैं। शहतूत के पौधों को लगाने वालों, रेशम के कीड़ों के अंडों को पालने वालों, कोयों के सेने वालों, कच्चा सूत कातने वालों, कच्चा सूत बेचने वालों, तथा रेशम के निर्यात करने वाले व्यापारियों की अपनी अपनी अलग अलग सगठित संस्थाएं हैं इन सभी सस्थाओं पर जापान की केन्द्रीय कच्चे रेशम सस्था का नियन्त्रण स्थापित है। पिछले बीस वर्षों से जापान की सरकार ने रेशम के उत्पादन और मूल्य को नियन्त्रन करने का प्रयास किया है ताकि जापानी मजदूरों तथा किसानों को सहायता प्राप्त हो सके।

१९१२ से १९२९ ई० के मध्य कच्चे रेशम के मूल्य में अत्यधिक वृद्धि हुई और इसी काल में अमरीका तथा जापान, के मध्य रेशमी व्यापार की भी वृद्धि हुई। जापान का अनुकूल जलवायु, काम करने वालों की अधिकता तथा सरकार की उन्नतशील नीति और वैज्ञानिक अनुसंधानों के फल स्वरूप जापान के लिये सम्भव हुआ कि उसने अपने उत्पादन में ८ गुना वृद्धि की है। यह वृद्धि पिछले पचास वर्षों के भीतर हुई है और यह जापानी निर्यात का ३६ प्रतिशत है। इस व्यवसाय में जापान के निवासियों का दो बटा पांच भाग लगा हुआ है। इसके अतिरिक्त रेशम की कताई में लगभग ५ लाख और दूसरे लोग लगे हैं। १९३४ ई० में रेशम का मूल्य ८० प्रतिशत घट गया था। हाल के वर्षों के आंकड़ों से पता चलता है कि जापान से जितने मूल्य का सामान निर्यात होता है उसका १५ प्रतिशत भाग रेशम का है।

शुद्ध रेशम के साथ ही साथ जिन देशों में रेशम नहीं होता है वहां बनावटी रेशम तैयार किया जाने लगा है। रायो नामक वस्तु का रेशम शुद्ध रेशम के साथ प्रतिस्पर्धा कर रहा है। केला, जूट पाट आदि वस्तुओं से बनावटी प्रकार का रेशम तैयार किया जाने लगा है जिससे शुद्ध रेशम का भाव गिर गया है।

युद्ध के पहले तो ऐसा प्रतीत होता था कि गोया रेशम का भाग कभी भी नहीं बढ़ सकेगा परन्तु युद्ध के कारण जो महँगी हुई है इससे जापानी रेशम उत्पादकों को काफी लाभ हुआ है। यूँ तो साधारणतया जापान का सारा रेशम अमरीका खरीद लेता था परन्तु जब जापान पर अमरीका का अधिकार हुआ है तब से जापान का सारा का सारा रेशम उसके अधिकार में आ गया है।

यद्यपि रेशम का उत्पादन पूर्वी संसार में होता है परन्तु उसका उपयोग पश्चिमी संसार में होता है। जब कच्चे रेशम का भाव बहुत महँगा था तो रेशम के जहाज चोरी से अपना सामान लेकर निर्धारित स्थानों को जाते थे। जापान से चल कर रेशम लादने वाले जहाज सीटल बन्दरगाह पर पहुँचते थे और फिर वहां से 'सिल्क' एक्सप्रेस गाड़ियों पर लाद कर उसे न्यूयार्क पहुँचाया जाता था। इन गाड़ियों के चलते समय पैसेंजर गाड़ियाँ रोक दी जाती थीं। रेशम के भावों में कमी आ जाने के पश्चात् रेशम पनामा मार्ग से संयुक्त राज्य अमरीका भेजा जाने लगा पर अब चूँकि जापान पर संयुक्त राज्य अमरीका के पश्चिमी तट हो कर जापानी माल संयुक्त राज्य अमरीका जाने लगा है।

रेशम का व्यवसाय जापान के आर्थिक जीवन पर विशेष महत्व का स्थान रखता है। यह ऐसा व्यवसाय है जो कि प्राकृतिक खनिज सम्पत्तियों पर आधारित नहीं है और न ऐसी वस्तु है जिसे कोई अन्य राष्ट्र जापानियों से छीन ही सके। यद्यपि बनावटी प्रकार का रेशम तैयार करके तथा उसका प्रयोग करके जापानी रेशम को नीचा दिखाने का भरसक प्रयास किया गया है परन्तु फिर भी प्रयास में सफलता नहीं मिली। बनावटी वस्तु बनावटी ही है और शुद्ध वस्तु असली ही है इसलिये संसार के कदरदान उपर्युक्त शुद्ध रेशम के ऊपर बनावटी रेशम को प्रयोग में लाना अच्छा नहीं समझते हैं। हां यह बात अवश्य ही है कि संसार जो लोग नकली और असली को पहचान नहीं रखते हैं तथा जो लोग कम मूल्य देकर ही रेशमी (बनावटी) कपड़ा पहिनने के शौकीन हैं वे ही बनावटी रेशम का प्रयोग करते हैं फिर भी बनावटी रेशम के कारण असली रेशम के मूल्यों में कमी आ ही गई है।

अन्य देशों में कच्चे रेशम का व्यवसाय--

यद्यपि कच्चे रेशम का व्यवसाय संसार के अनेकों देशों में किया जाता है परन्तु चोसेन (कोरिया) तथा इटली देशों को छोड़ कर किसी भी देश में जापान की भांति गहरे तौर पर इसके उत्पादन नहीं किया जाता है।

चोसेन (कोरिया)—कोरिया में अति प्राचीन काल से रेशम के उत्पादन कार्य होता चला आया है परन्तु जापानियों का जब कोरिया पर अधिकार हुआ तो रेशम के उत्पादन में बहुत अधिक वृद्धि की गई। यद्यपि समस्त कोरिया में रेशम के उत्पादन का कार्य होता है फिर भी कुछ चुने हुये भागों में इसका खास तौर पर उत्पादन तथा व्यवसाय होता है। कोरिया निवासियों का यह जीविकोपार्जन के लिये सहायक व्यवसाय है। सभी कोरियाई किसान अपने लिये ऊपर से धन कमाने के लिये रेशम का उत्पादन तथा व्यवसाय करते हैं। प्रत्येक कोरियाई किसान के घर के बच्चे तथा स्त्रियां इस कार्य को करती हैं और इससे धन कमा कर अपने घर की समृद्धता में हाथ बटाती हैं।

कोरिया की भूमि, मिट्टी तथा जलवायु ऐसी है कि वहां पर शहतूत का पौधा खूब उगता है तथा रेशम के कीड़ों के पालने में बड़ी सुविधा मिलती है। जिस समय कीड़ों को पत्तियां खिलाई जाती हैं वहां की उस ऋतु में जापान की भांति हवा अधिक आर्द्र तथा नम नहीं होती है और दक्षिणी चीन की भांति उसमें आर्द्रता की कमी ही रहती है। जापान की भांति यहां के किसान भी अपने खेतों के चारों ओर की ऊँची नीची भूमि तथा ढालों पर शहतूत के वृक्ष उगाते हैं और उनसे कीड़ों के खाने के लिये पत्तियां उत्पादन करते हैं। कोरिया के अनेक भागों में बसंत, ग्रीष्म तथा पतझड़ की ऋतुओं में रेशम के कीड़ों के अण्डों के सेने का काम किया जाता है। रेशम के व्यवसाय के बहुतेरे भागों पर कोरियाई सरकार नियन्त्रण स्थापित किये हुये है, रेशम के कीड़ों के अण्डों की बड़ी देख-भाल तथा चौकसी रखी जाती है

ताकि उनमें किसी प्रकार की बीमारी न उत्पन्न हो सके। वैज्ञानिक चुनाव तथा दोगली नसल की युक्ति का अनुसरण करके कोरिया में रेशम के कीड़े तथा शहतूत के वृक्षों की कई नसलें उत्पन्न की गई हैं। सरकार की ओर से अंडों के सेने, कीड़ों को खिलाने तथा रेशम की कताई के लिये शिक्षा प्रदान की जाती है। यह शिक्षा साधारणतया लड़कियों तथा स्त्रियों को प्रदान की जाती है। सरकारी नियंत्रण देश की अनुकूल प्राकृतिक दशा तथा कुशल मजदूरों के बाहुल्य के फल स्वरूप पिछले तीस वर्षों में कोरिया के भीतर इस व्यवसाय की बहुत अधिक उन्नति हुई है। रेशम के कोयों का उत्पादन चारगुना बढ़ गया है और घरेलू कच्चे रेशम की तैयारी में दोगुनी वृद्धि हुई है। कोरिया में जितने रेशम के कोयों का उत्पादन होता है उसका आधा भाग कोरिया के घरों में ही कात डाला जाता है और उससे कच्चा रेशम तैयार कर लिया जाता है। शेष आधा बचा हुआ भाग आधा-आधा कोरिया के रेशमी कारखानों तथा जापानी कारखानों में बट जाता है।

चीन—चीन में जितना रेशम उत्पन्न होता है उसके आंकड़ों का संसार को पता नहीं है। इसलिये जो लोग आंकड़े उपस्थित करते हैं उनमें बहुत भिन्नता होती है। कुछ लोगों का कथन है कि चीन में सभी देशों से अधिक रेशम का उत्पादन होता है। रेशम उत्पादन में जापान का स्थान चीन के बाद है।

चीन में यांगटिसी तथा सी क्यांग की घाटियों में और शाटंग प्रायः द्वीप पर अर्थात् मध्य और दक्षिणी चीन में रेशम के कीड़ों के पालने के व्यवसायिक केन्द्र हैं। शाटंग प्रायः द्वीप में शाहबलूत की पत्तियों पर कीड़े पाले जाते हैं। अतः यहां का रेशम घटिया होता है। चीन में रेशम के कीड़े पालने के धंधे में वैज्ञानिक विधियों से काम नहीं लिया जाता है। यूनान प्रांत में रेशम के व्यवसाय की शिक्षा देने के लिये एक कालेज खोला गया है।

चीन में सबसे प्रसिद्ध क्षेत्र टेहो' झील का निकटवर्ती भाग है जहां लगभग १०० वर्गमील के इलाके में रेशम के कीड़े पालना ही लोगों का मुख्य व्यवसाय है। यांगटिसी का डेल्टा प्रदेश भी रेशम के धंधे के लिये प्रसिद्ध है। शंघाई नगर संसार में रेशम के व्यवसाय का सर्व प्रमुख बाजार है। चीन का दूसरा बड़ा प्रसिद्ध बाजार कैन्टन है जो क्वांटङ्ग प्रांत के रेशम क्षेत्र में स्थित है।

रेशमी क्षेत्र में व्यवसायिक दृष्टि से चीन जापान से कहीं पीछे अब तक रहा है। यद्यपि कच्चे रेशम का व्यवसाय चीन में अनेकों भागों में होता है परन्तु इसका केन्द्री करण चार प्रधान भागों में है। (१) निचली तथा मध्य यांगटिसी घाटी तथा उसकी सहायक नदियां, (२) सीक्यांग घाटी (केंटन बेसिन); (३) मिन घाटी फूचोव बेसिन) और (४) शांतुंग प्राय द्वीप। शांतुंग प्राय द्वीप तथा उत्तर की ओर के अन्य जिलों में शाहबलूत की पत्तियों को रेशम के कीड़ों के खिलाकर जङ्गली रेशम तैयार किया जाता है। यह रेशा खुरदुरा मजबूत और न बराबर होता है और इसकी गोंद आसानी से नहीं छूटती है। इससे चीन का पांजी कपड़ा तैयार किया जाता है।

चीन के अन्य कच्चे रेशम के व्यवसायी भागों में शहतूत की खेती बड़ी सावधानी के साथ की जाती है। कुछ भाग तो ऐसे भी हैं जहां पर जोती हुई भूमि के एक तिहाई भाग में शहतूत के बाग लगाये जाते हैं। शहतूत का वृक्ष यदि स्वतंत्रता पूर्वक बढ़ने दिया जाय तो यह बढ़ कर पूरा बड़ा पेड़ हो जाय परन्तु प्रति वर्ष उसे धरती से तीन फुट की ऊँचाई पर काट दिया जाता है। काटने के बाद उसमें नये कनखे निकलते हैं जिनमें कोमल पत्तियां उत्पन्न होती हैं। धान के खेतों से जो भूमि ३ से ६ फुट तक ऊंची होती है और ढालों पर शहतूत के बाग लगाये जाते हैं। शहतूत के पौधे साधारणतया ६ फुट के अन्तर से लगाये जाते हैं। इन पौधों को पाखाना रेशम के कीड़ों के विष्टा तथा तालाबों और नहरों की सड़ी मिट्टी की खाद दी जाती है। यांगटिसी की घाटी के वृक्षों में तीन बार अंडों के सेने के लिये पत्ती होती है परन्तु सी क्यांग घाटी में अधिक वर्षा होने तथा अधिक लम्बी ग्रीष्म ऋतु होने के कारण पौधों में सात या आठ बार अंडों के सेने के लिये पत्तियां होती हैं। सीक्यांग घाटी में एक एकड़ पर वे में साल भर में ३ सौ पौंड पत्ती उत्पन्न होती है।

जापान की तुलना में चीन में अंडों के दिलाने, कीड़ों के सेने और रेशम तैयार करने का काम निम्न श्रेणी का होता है। साधारणतया व्यापारी लोग किसानोंसे अंडे खरीद लेतेहैं। फिर वे उन्हें दूसरेकिसानों के हाथ बेच देते हैं। बहुधा बीमार होते हैं जिसका नतीजा यह होता है कि जब वह पेट भर कर खाते हैं तो कोयों को कातने के पहले ही मर जाते हैं। चीन में एक औंस अंडों से निकले हुये कीड़ों से २५ पौंड कोये उत्पन्न करते हैं जब कि जापान तथा इटली में उतने ही अंडों से १०० से लेकर १२० पौंड तक कोये प्राप्त किये जाते हैं। इस प्रकार बिना बीमारी वाले कीड़ों द्वारा कई गुना अधिक रेशम प्राप्त किया जाता है।

चूंकि चीन चीनी किसान लापरवाही के साथ कीड़ों को खिलाते, पालते, अंडों को सेते तथा सूत कातते हैं इसलिये चीनी रेशम जापानी रेशम की अपेक्षा घटिया होता है। चीन की पहले वाली सरकारों ने रेशम उत्पादन में जनता को किसी प्रकार की सहायता नहीं की और न उन्हें किसी प्रकार की शिक्षा ही प्रदान किया। अब चीन में साम्यवादी सरकार की स्थापना के पश्चात् सभी अंगों में उन्नति की ओर पग उठाये जा रहे हैं इसलिये कच्चे रेशम के व्यवसाय में भी वह अग्रसर हो रही है और शहतूतों के नये बगीचों को लगाने, लगवाने, पौधों को खाद देने तथा स्वस्थ कीड़ों के तैयार और फिर उन्हें जनता के मध्य वितरण कराने आदि का काम पूरा कर रही है। अब सरकार की ओर से रेशम व्यवसाय के लिये लोगों को और खास तौर पर लड़कियों तथा स्त्रियों को शिक्षा प्रदान की जा रही है। इससे आशा की जाती है कि शीघ्र भविष्य में ही चीन में भी उत्तम श्रेणी का और संसार में सबसे अधिक रेशम का उत्पादन होने लग जायगा।

भारत में काश्मीर और मैसूर इस धंधे में प्रमुख हैं। गत महा युद्ध में भारत का रेशम उत्पादन प्रायः दूना हो गया है परन्तु संसार के रेशम व्यवसाय में भारत का स्थान अभी बहुत पीछे है।

यद्यपि भारत वर्ष में अति प्राचीन काल से ही रेशम का प्रयोग होता आ रहा है। रेशम भी प्राचीन समय से तैयार किया जाता रहा है परन्तु इसके व्यवसाय में कभी भी उन्नति नहीं हो पाई यह बात संसार के लोगों को किंचित आश्चर्य में डाल देती है। परन्तु इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं बात नहीं है। यह वास्तविकता है कि भारत धर्म का केन्द्र रहा है। यहां पर सारे कार्यों तथा व्यवसायों को केवल रुपयों से ही नहीं आंका जाता है परन्तु धर्म से भी आंका जाता है और चूंकि रेशम की तैयारी में कोयों के भीतर वाले कीड़ों की हत्या करनी पड़ती है इसलिये भारतीय लोगों को यह व्यवसाय रूचिकर नहीं जचा। जो लोग धन की लालच में पड़े और धर्म की चिन्ता नहीं की वे ही इस काम में लगे परन्तु उन लोगों की संख्या बहुत अधिक कम थी और है इसी कारण भारतवर्ष में इस व्यवसाय की उन्नति नहीं हुई। इसके अतिरिक्त चीन भारत का पड़ोसी देश है। भारत का चीन, जापान और कोरिया से सम्बन्ध रहा चला आया है और उसे इन देशों से रेशम प्राप्त होता रहता था इसलिये उसे इस दिशा में हत्या करके आगे बढ़ने की आवश्यकता भी प्रतीत नहीं हुई। विदेशी सरकार ने भी इस व्यवसाय को उन्नति देने के लिये कुछ नहीं किया।

अब जब से भारत स्वतंत्र हुआ है तब से भारतीय सरकार ने इस ओर भी अपना ध्यान दौड़ाया है और भारत में रेशम व्यवसाय को उन्नति प्रदान करने के लिये प्रयास किया जा रहा है। भारतवर्ष की धरती की बनावट, मिट्टी और जलवायु शहतूत के पौधों के उत्पादन के लिये तथा रेशम के कीड़ों को पलाने के लिये काफी महत्वपूर्ण तथा उपयोगी है। भारतवर्ष में श्रमिकों की भी कोई कमी नहीं है। यहां पर इस व्यवसाय में केवल शिक्षकों तथा कुशल कर्मचारियों की कमी है सो भारत सरकार की सहायता से वे भी शीघ्र भविष्य में सुलभ हो जायगे जिससे इस व्यवसाय को उन्नति प्रदान करना आसान बात हो जायगी। भारत सरकार रेशम के कीड़ों को पालने तथा उत्पन्न करने के लिये विभिन्न स्थानों पर केन्द्र खोलने का प्रयास कर रही है।

दक्षिणी योरुप—चूंकि पूर्व के प्राचीन देशों से योरुप के देशों को रेशम ले जाने में बहुत अधिक व्यय पड़ता था क्योंकि पुराने समय में काफी के

द्वारा या चोरी तथा पुराने जहाजों के द्वारा ही सामान योरुप ले जाया जाता था। इसलिये व्यय तथा परेशानियों से बचने के लिये दक्षिणी योरुप में यह व्यवसाय आरम्भ किया गया और वहां इसकी उन्नति भी हुई। एक समय ऐसा भी आया जब कि फ्रांस तथा इटली ने संसार के व्यवसायिक रेशम का आधे से अधिक भाग तैयार किया और संसार में उसकी खपत की। परन्तु बाद में यह देश पूर्वी संसार से इस व्यवसाय में टक्कर नहीं ले सके और पीछे रह गये।

बारहवीं सदी के अन्त में रेशम के व्यवसाय का काम इटली में यूनान तथा पश्चिमी एशिया से आया। अनेक प्रयत्नों के पश्चात् सत्रहवीं सदी में फ्रांस के अन्दर यह व्यवसाय स्थापित हो गया और शीघ्र ही लियोन्स तथा टौर्स नगरों के रेशमी कपड़े संसार में प्रसिद्ध हो गये। १८५३ ई० तक फ्रांस में इस व्यवसाय की उन्नति होती रही। परन्तु उसी वर्ष एक ऐसी बीमारी उत्पन्न हुई जिससे कि रेशम के कीड़े मरने लगे। १८६९ ई० तक यह दशा हो गई कि फ्रांस के रेशमी व्यवसाय में ९० प्रतिशत की कमी हो गई। यह दशा देख कर फ्रांस के राजा का ध्यान इस बीमारी के कीड़ों की ओर गया। उसने पाश्च्योर नामक व्यक्ति को बीमारी के कीड़ों के पता लगाने तथा उसके इलाज का खोज करने के लिये कहा। अन्त में पाश्च्योर ने बीमारी का पता लगा लिया और सूक्ष्म दर्शक यन्त्र की सहायता से उसने बीमार के कीड़ों को भी जान लेने की युक्ति निकालली। धीरे-धीरे करके रेशम व्यवसाय फ्रांस पुनः उन्नति करने लगा और बीसवीं सदी के आरम्भ तक यह फूलता-फलता रहा। यद्यपि फ्रांस में उत्तम श्रेणी का रेशम तैयार होता था तथापि वहां रेशम के व्यवसाय में लगे लोगों को अधिक मजदूरी देनी पड़ती थी और शहतूत के जो पौधे होते थे उनमें साल में केवल एक मौसम के कीड़ों को खाने के लिये ही पत्तियां होती थीं।

उत्तरी इटली में अन्य धान्यों तथा अनाजों के खेतों में ही शहतूत के पौधे लगाये जाते हैं। इटली में रेशम के व्यवसाय में प्राचीन देशों की स्पर्धा से अच्छी उन्नति हुई है। इटली में शहतूत के पौधों की पत्तियां शीघ्र ही चुन ली जाती हैं इसलिये उनकी छाया से अन्य अनाज के पौधों को हानि नहीं पहुँचती है।

इटली का रेशम के धंधे में तीसरा स्थान है। यहां पर संसार का लगभग ८ प्रतिशत रेशम उत्पन्न होता है। यहीं से योरुप का ६० प्रतिशत रेशम प्राप्त होता है। उत्तरी इटली में 'पो' नदी का बेसिन इस धंधे के लिये प्रसिद्ध है। मिलान नगर रेशम की प्रधान मंडी है। यहां पर रेशम के धंधे के उन्नति के तीन कारण हैं।।(१) जलवायु शहतूत के पौधे के लिये अनुकूल है। (२) श्रमिक सस्ते और काफी मिल जाते हैं। (३) जल विद्युत शक्ति की सुविधायें हैं।

फ्रांस में रोन नदी की घाटी जिसमें लियोंस स्थित है योरुप का प्रसिद्ध रेशम क्षेत्र है। सीरिया में दमिश्क नगर का निकटवर्ती क्षेत्र रेशम के लिये अत्यन्त प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त ईरान, स्विटजरलैंड, चेकोस्लोवाकिया, बल्गेरिया, स्पेन, यूनान, टर्की, ब्रह्मा में भी रेशम का धंधा प्रचलित है। परन्तु इन देशों का उत्पादन बहुत कम है।

रेशम के निर्यात में जापान अग्रगण्य है। इसके अतिरिक्त चीन, इटली फ्रांस आदि देश भी कच्चे रेशम का निर्यात करते हैं। आयात करने वाले देशों में प्रधान स्थान संयुक्त राज्य अमरीका का है जो जापान, चीन, इटली, फ्रांस आदि देशों से कच्चा रेशम मंगाता है। दूसरा स्थान ब्रिटेन का है। अन्य देशों का आयात बहुत कम है। भारत में भी कुछ रेशम बाहर से आता है।

जूट की खेती

यह सस्ता रेशा प्रदान करने वाला पौधा है। इसका पौधा आठ-दस फुट तक लम्बा होता है। पक जाने पर पौधों को काटकर पानी में कई सप्ताह तक सड़ाया जाता है और पौधों के डंठलों पर से रेशा उतार लिया जाता है। इसे स्वच्छ जल में धोकर साफ किया जाता है। इस रेशे का रङ्ग हल्का भूरा सा होता है। इसे सफेद नहीं किया जा सकता है किन्तु रङ्गा जा सकता है। इसके रेशे से बोरियां, टाट, रस्सियां तथा

रङ्गीले कपड़े बनाये जाते हैं। खेतिहर देशों में अनाज भरने के लिये बोरों की बड़ी मांग रहती है। सामान बांध कर भेजने में इसका बहुत प्रयोग होता है।

जूट को उगाने के लिये गर्म और नम जलवायु चाहिये। यह उष्णकटिबंधीय नम भागों का पौधा है। इसके लिये अत्यन्त उपजाऊ भूमि चाहिये। एक ही बार की फसल से भूमि अनुर्वर हो जाती है और कृत्रिम खाद दे कर उसे जूट के योग्य बनाया नहीं जा सकता है अतः ऐसे भागों में जूट उगाया जा सकता है जहां भूमि की ऊपरी तह प्रति वर्ष बदलती रहे। ऐसी स्वाभाविक प्रकृति तथा परिस्थित गङ्गा-ब्रह्मपुत्र के डेल्टा प्रदेश में प्राप्त होती है जहां प्रतिवर्ष बाढ़ द्वारा उपजाऊ काम की नई तह जम जाती है।

जूट और भारतवर्ष संसार के लिये समानार्थी हो गये थे क्यों कि देश के विभाजन के पूर्व भारत को जूट का एकाधिकार प्राप्त था किन्तु विभाजन के फल स्वरूप ऐसी विचित्र स्थिति पैदा हो गई है कि कच्चा जूट उत्पन्न करने वाले क्षेत्र का तीन-चौथाई भाग पूर्वी पाकिस्तान में सम्मिलित हो गया है और जूट समस्त कारखाने भारत में रह गये हैं। अतः जूट के कच्चा जूट उत्पन्न करने में पाकिस्तान का प्रथम स्थान है और भारत का द्वितीय। परन्तु पिछले चार या पांच वर्षों में भारतीय जूट के कारखानों को चालू करने के लिये भारतीय सरकार ने अपने देश में जूट के उत्पादन पर जो विशेष रूप से जोर दिया उसका परिणाम यह हो गया है कि भारतवर्ष में कच्चे जूट की उपज बहुत अधिक बढ़ गई है और अब यह स्थिति पैदा हो गई है कि यदि पाकिस्तान अपना जूट न भी दे तो भारतीय कारखाने आसानी के साथ चालू रह सकते हैं।

कच्चे रेशम के व्यवसाय की अपेक्षा जूट की खेती कहीं अधिक व्यवसायी है क्योंकि प्रायः जितना कुछ जूट का उत्पादन होता है वह सब का सब विदेशी व्यापार में चला जाता है। यह व्यवसाय अत्यन्त केन्द्रित है। यद्यपि संसार के विभिन्न भागों में जूट का उत्पादन किया जाता है परन्तु भारत और पाकिस्तान में संसार की पूर्ति का ९८ प्रतिशत जूट उत्पन्न किया जाता है।

जूट का पौधा, उसका रेशा और प्रयोग—

जूट का पौधा ५ से १२ फुट तक लम्बा होता है। पत्तियां तथा टहनियां इसके ऊपरी सिरे पर होती हैं। इसके शरीर या तना पर जो खाल होती है वही जूट का रेशा है। इसको काटने के बाद पानी में डाल कर सड़ाया जाता है ताकि रेशे डठलों से अलग हो जाय। सड़ जाने पर तालाबों तथा नदियों में यह स्वच्छ पानी में धोया और पछाड़ा जाता है धोते धोते इसकी मैल साफ हो जाती है और रेशे साफ-सुथरे हो कर चमक उठते हैं। उसके बाद रेशा को डठलों से अलग कर लिया जाता है

व्यवसायिक संसार में जूट सब से कम मूल्यवान रेशा है। चूंकि इसके उत्पादन में कम व्यय पड़ता है और प्रति एकड़ भूमि में इसकी उपज अधिक होता है तथा कारखानों में इसकी तैयारी होने के कारण इसका प्रयोग बहुत अधिक होता है। ऊन तथा कपास के बाद जूट का ही सबसे अधिक प्रयोग किया जाता है। चूंकि जूट का प्रयोग बोरों तथा सामानों के बांधने के लिये टाटों आदि के बनाने में ही होता है इसलिये जूट का मूल्य अधिक नहीं होता है गेहूँ, चावल, कपास, ऊन, फल और मजबूत मिट्टी आदि के बर्तन, धातुओं का माल और अन्य सामग्रियां भी टाटों में बांध कर और बोरों में भर कर निर्यात की जाती हैं। जूट का प्रयोग दरियों, कार्पेटों, कम्बलों, टट्टियों, चटाइयों आदि के बनाने में भी होता है इसके अतिरिक्त इसका प्रयोग अन्य रेशों के साथ मिला कर सूती कपड़ों के तैयार करने में भी प्रयोग किया जाता है।

भारतीय लोग जूट से रस्सियां, डोरियां, चटाइयां, बोरियां तथा पहिनने का कपड़ा तक बनाते हैं परन्तु आधुनिक युग के आरम्भ के पूर्व इसके महत्व का ज्ञान संसार को कम ही था परन्तु जब विभिन्न प्रकार की सामग्रियों को बांधने, बन्द करने तथा भरने आदि में इसकी बोरियों और टाटों का प्रयोग होने लगा तो इसका महत्व बहुत अधिक बढ़ गया।

गङ्गा तथा ब्रह्मपुत्र नदी के डेल्टा वाले प्रदेश में जहां की भूमि कछारी तथा समतल है और प्रतिवर्ष वहां की मिट्टी बहती रहती है और नई मिट्टी आकर हटती रहती है वहां पर जूट की अच्छी उपज होती है।

यह देखा गया कि २५ पौंड हरे जूट में से लगभग १ पौंड जूट का स्वच्छ-साफ रेशा निकलता है। साधारणतया एक एकड़ में १००० से १२०० पौंड तक स्वच्छ साफ किया हुआ जूट उत्पन्न होता है। इसका मतलब यह हुआ कि एक एकड़ खेत में १३ टन हरा जूट उत्पन्न होता है।

जिस क्षेत्र में जूट का उत्पादन होता है वहाँ पर साल में कम से कम ६५ इंच वर्षा होती है। यह जून से लेकर सितम्बर मास तक अधिक होती। वर्षा के आरम्भ काल में जूट बोया जाता है और फिर सितम्बर मास तक उगता और बढ़ता रहता है। इस मौसम में कम से कम मासिक तापक्रम ८० अंश रहता है और हवा में ८० से ९० प्रतिशत तक नमी रहती है। अधिक वर्षा की ऋतु में जब बाढ़ आ जाती है तो सहायक नदियों, तालाबों, गड्ढा तथा नीची भूमि में पानी भर जाता है जो जूट तैयार करने के लिये अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होता है। इन्हीं सहायक नदियों के मार्ग होकर कलकत्ता तथा चटगाव के बाजारों में जूट भेजा जाता है।

जूट उत्पादन क्षेत्र की जनसख्या बड़ी सघन है और वहाँ प्रतिवर्ग मील में १ हजार से १२०० तक व्यक्ति निवास करते हैं। इसलिये जूट के उत्पादन कार्य के लिये सस्ते कुशल मजदूर मिल जाते हैं। जूट के काम करने वाले लोगों खेतों में बने हुये बाड़ों तथा झोपड़ों आदि में निवास करते हैं। प्रत्येक किसान से ४ एकड़ भूमि तक में जूट की खेती करता है और उसके परिवार के सभी लोग खेतों के काम में लगे रहते हैं उन्हें किसी प्रकार के मजदूर की आवश्यकता नहीं होती है। गङ्गा तथा ब्रह्मपुत्र के डेल्टा की दो तिहाई भूमि में खेती होती है और उसके लगभग तीन चौथाई भाग में धान की फसल होती है। शेष हिस्से में जूट की खेती की जाती है। इस भाग के निवासियों के लिये जूट ही केवल मात्र ऐसी उपज है जिससे लोगों को पैसा प्राप्त हो सकता है। यहाँ के निवासी जूट की खेती तथा उसकी तैयारी में बड़े निपुण तथा प्रवीण हैं।

फरवरी तथा मार्च की साधारण वर्षा के पश्चात् ही देशी हलों से जूट के खेत जोते जाते हैं। जूट के खेत धान के खेतों से अधिक जोते जाते हैं। नीची भूमि वाले खेतों की जोताई तथा बोआई पहले की जाती है ताकि उनके पौधे उगकर इतने बड़े हो जाय पानी में सड़ न सकें। जूट का पौधा पानी से भरे में भी बढ़ता रहता है परन्तु यदि पौधे की ऊँचाई आधा से अधिक भाग पानी में डूब जाता है तो पौधा सड़ जाता है। एक एकड़ भूमि में ८ या पौंड बीज छींटा जाता और बीज छींटने के बाद को पुन. जोत दिया जाता है ताकि बीज मिट्टी में जाय। जूट के पौधों को पकने में चार-पांच महीने जाते हैं। फरवरी तथा मार्च के महीने में जो बोया जाता है वह जुलाई या अगस्त मास में जाता है। जो भूमि बढ़ियाल वाले स्तर से ऊपर है वहाँ पर अप्रैल तथा मई के महीने में जूट बो जाता है। इन भूमियों उत्तम श्रेणी का जूट तैयार है परन्तु यह जूट प्रति वर्ष नहीं काटा जाता है जूट के बाद अन्य प्रकार की फसल उगानी पड़ती है।

जूट के पौधों की बड़ी सेवा करनी पड़ती है। पौधे चार या पांच इंच के हो होते हैं तो उनकी निराई करनी पड़ती है। निराने समय गोड़ाई भी की जाती ताकि मिट्टी पोपली और मुलायम हो जाय और पौ को भूमि से अधिक खुराक मिल सके। पौधों पत्तियाँ और टहनियाँ भी तोड़ डाली जाती जितना ही अधिक डालियां तथा टहनियां तोड़ी जा हैं उतना ही अधिक वह उत्पन्न होती हैं। टहनियों होने से पौधे कम बढ़ते हैं और छोटे पौधों से छो रेशों वाला घटिया प्रकार का जूट प्राप्त होता है निराई करते समय यदि पौधे अधिक समीप सम होते हैं तो उखाड़ डाले जाते हैं। साधारणतया इंच की दूरी पर पौधे रखे जाते हैं। जूट के पौधों बढ़ने के लिये नित्य प्रति वर्षा की आवश्यकता हो है। हर एक दसवें दिन निराई, गोड़ाई तथा डालों तथा टहनियों के तोड़ने का काम करना पड़ता है और य काम तीन मास तक जारी रहता है।

जुलाई मास में जूट की कटाई आरम्भ की जात नीची भूमि तथा खेतों की फसल पहले काटी जाती क्योंकि पानी के भीतर पौधों का काटना बड़ा कठि होता है। पानी से भरे खेतों में हंसिये से न केव खड़े-खड़े वरन् कभी कभी गोता लगा कर भी पौधों

कटाई करनी पड़ती है। इसके अतिरिक्त सभी फसल की कटाई करने की व्यवस्था में बड़ी कठिनाई पड़ती है। कटाई के बाद ढुलाई करनी पड़ती है। हरे पौधे बड़े वजनी होते हैं। इन्हें काटने के बाद बडलों या बोझों में बांध कर पानी में सड़ाने के लिये डाल दिया जाता है। जहां कहीं समीप में नदी या सरोवर नहीं होता है वहां वर्षा तथा बाढ़ का पानी गड्ढों आदि में सन के सड़ाने के लिये एकत्रित किया जाता है।

सड़ने के पश्चात् उनको धोलाई का काम होता है। किसान परिवार के लोग तथा मजदूर घुटने भर जल में खड़े होकर सन को पछाड़ते तथा धोते हैं। वे इनके धोने में लकड़ी की थापियों तथा पिटनों का भी प्रयोग करते हैं। पछाड़ने के पश्चात् सन को भाग जूट पैदा होता था। यहां गङ्गा, ब्रह्मपुत्र डेल्टा की दलदली तथा उपजाऊ भूमि में जूट की खेती होती है। सुरमा और हुगली नदियों की कछारी भूमि में भी जूट की खेती खूब होती है। पाकिस्तानी-क्षेत्र से ही भारतीय मिलों को अधिकांश जूट प्राप्त होता है। यह देश ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमरीका, जर्मनी, फ्रांस, इटली इत्यादि देशों को भी कच्चा जूट भेजता है। जहां इसका प्रयोग विशेषतया कपड़ा बनाने के लिये किया जाता है। स्काटलैंड में डंडी नगर का कपड़ा-उद्योग पहले अविभाजित भारत के कच्चे जूट पर निर्भर था अब यहां पाकिस्तान से कच्चा जूट मंगाया जाता है। पाकिस्तान में भी जूट के कारखाने खोलने का प्रयत्न किया जा रहा है किन्तु हुगली क्षेत्र

११—जूट (पाट) की कटाई

सूखने के लिये बांसों के बाड़ों पर डाल दिया जाता है और ध्यान रखा जाता है कि उन पर सूर्य की सीधी किरणें न पड़ सकें। वर्षा होने पर सुखाई के कार्य में बाधा पहुँचती है और सन के खराब होने की आशंका हो जाती है।

पाकिस्तान—पूर्वी पाकिस्तान अर्थात् अविभाजित बङ्गाल के पूर्वी भाग में जूट की खेती की जाती है। इस क्षेत्र में अविभाजित भारत का तीन चौथाई की सी सुविधायें पाकिस्तानी भाग में प्राप्त नहीं हैं।

भारत—भारत में पश्चिमी बङ्गाल, आसाम, बिहार, उड़ीसा, मद्रास तथा उत्तर प्रदेश में जूट की खेती होती है। भारत के लिये जूट का उत्पादन बढ़ाना अत्यन्त आवश्यक हो गया है क्योंकि पक्के जूट के निर्यात व्यापार से देश को काफी धन मिलता है और अब जूट के कारखानों को पाकिस्तानी कच्चे माल पर निर्भर रहना पड़ रहा है जो भारतीय जूट

व्यवसाय के लिये वांछनीय स्थिति नहीं है। इस स्थिति से बचने के लिये भारत में जूट का उत्पादन बढ़ाने के बहुत प्रबल प्रयत्न किये जा रहे हैं। सन् १९४९-५० में भारत में जूट की खेती का क्षेत्रफल बढ़ कर १६ लाख एकड़ हो गया है जब कि अविभाजित भारत में ३२ लाख एकड़ भूमि में जूट बोया गया था जिसका करीब तीन-चौथाई भाग पाकिस्तान में चला गया है। अतः जूट का भारतीय क्षेत्र विभाजन बाद दो गुना तो अवश्य ही १-५० में बढ गया था। १९५० के पश्चात् भी यह क्षेत्र प्रति वर्ष बढ़ता ही रहा और अब तो इतना बढ़ गया है कि अपनी मिलों पर पड़ी रह गई और उसमें पाकिस्तान को बड़ी हानि हुई।

भारत का लगभग एक तिहाई जूट पश्चिमी बङ्गाल में और उतना ही आसाम राज्य में पैदा होता है। बिहार राज्य से भारत की जूट की उपज का २० प्रतिशत प्राप्त होता है। शेष भाग उड़ीसा, मद्रास तथा उत्तर प्रदेश में पैदा होता है।

भारत से कच्चे जूट का निर्यात नहीं किया जाता है वरन् अपनी मिलों के लिये बाहर से आयात होता है भारत की जूट मिलें हुगली क्षेत्र में हुगली नदी के दोनों ओर केन्द्रित हैं। इनमें बुना गया जूट

१२—तालाबों के अधिकता होने से बङ्गाल में जूट पाट धोने के लिये बड़ी सुविधा है।

की मांग की पूर्ति भारतीय क्षेत्र करने लग गया है। पाकिस्तान ने पहले भारतीय जूट मिलों को ठप करने तथा हानि पहुँचाने के ध्यान से कच्चा जूट देने से इन्कार कर दिया था जिससे भारतीय मिलें कुछ काल के लिये ठप भी हो गईं। परन्तु मिलों के संचालकों तथा भारतीय सरकार ने अत्यन्त धैर्य तथा साहस के साथ कार्य किया जिससे देश का उत्पादन बढ़ गया। उत्पादन बढ़ जाने से पाकिस्तान का जूट खरीदा ही नहीं गया जिसका परिणाम यह हुआ कि पाकिस्तान की लाखों जूट की गाठें बेकार बन्दरगाहों अर्थात बोरे बोरियां और टाट बाहर भेजे जाते हैं। भारतीय बोरों तथा बोरियों के ग्राहक आस्ट्रेलिया, अर्जेन्टाइना, मिश्र, दक्षिणी अफ्रीका इत्यादि देश हैं।

स्वयं भारतवर्ष देश में जूट का बहुत अधिक व्यय है। भारत एक कृषक देश है और इसलिये उसे टाट तथा रस्सियों और बोरों आदि की आवश्यकता प्रति घर में पड़ती है। बोरे और बोरियां तो कलकत्ते से मगाकर किसानों को दी जाती हैं परन्तु रस्सी और टाट देहात के गावों में बना लिये जाते हैं। प्रत्येक

किसान अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिये अपने अपने के खेतों में खरीफ फसल के साथ ही साथ खेतों की मेड़ों पर चारा और पटुआ तथा सनई बो देते हैं जो खरीफ फसल के साथ अश्विन या कार्तिक मास में कट लिया जाता है और फिर उसको सड़ाकर तथा सन और सनई प्राप्त करली जाती है। इस प्रकार भारतवर्ष में छोटे पैमाने पर तो जूट की बहुत अधिक उपज की जाती है। इतना होने पर भी भारत में जूट के उत्पादन को बढ़ाने की बहुत अधिक सम्भावना है।

मनीला पटुआ (मनीला हेम्प)—मनीला का पटुआ खासकर व्यवसायिक पदार्थ है। लगभग इसका समस्त उत्पादन निर्यात कर दिया जाता है। इस पटुये के पौधे को अबाका कहते हैं। अंग्रेजी भाषा में इसे मूसा टैक्सटिलिस (Musa Taxtilis) कहते हैं। आकार में यह केले की भांति होता है और ६ से १८ फुट तक लम्बा होता है। इसके रेशे पत्तियों की खाल से निकाले जाते हैं जिसकी लम्बाई ६ फुट तक होती है। चूंकि यह रेशे अधिक लम्बे, मजबूत तथा टिकाऊ होता है इसलिये जहाजों के लिये रस्सों के बनाने, रस्सियों के तैयार करने, चटाइयों के बनाने, हैट तैयार करने आदि में इसका उपयोग किया जाता है परन्तु जहाजों के रस्सों के बनाने में इसका बहुत अधिक उपयोग होता है। चूंकि इसकी उपज कम होती है और खर्च अधिक पड़ता है इसलिये यह प्रतिस्पर्धा में अधिक उत्पन्न नहीं किया जा सकता है।

इस बात की संसार के अनेकों भागों में चेष्टायें की गईं कि मनीला हेम्प का उत्पन्न किया जाय परन्तु सफलता नहीं प्राप्त हुई है। जावा द्वीप में इसके उत्पादन के लिये बहुत अधिक कोशिश की गई परन्तु कोई परिणाम नहीं हुआ। फिलीपाइन द्वीप में इस पौधे की खेती अति प्राचीन काल से ही होती चली आ रही है। वहां के लोग इसकी खेती करने तथा तैयार करने में बड़े कुशल हैं। इस पर फिलीपाइन का एकाधिकार स्थापित है। यह फिलीपाइन के पूर्वी भाग में बहुत होता है। वहां की प्राकृतिक दशा तथा जलवायु इसकी उपज के हेतु बड़ी अनुकूल हैं। वहां सस्ते मजदूर भी बहुत प्राप्त हैं।

अबाका का उत्पादन पूर्वी फिलीपाइन में चटाइयों के निर्माण, बोरों के बनाने, हैटों के बनाने स्लीपर तथा कपड़ा आदि तैयार करने के लिये एक दीर्घ काल से किया जाता था। वहां के निवासियों को इसकी उपज की तथा तैयारी की कला का ध्यान परम्परागत से ही प्राप्त होता चला आया है। इसके रेशों की तैयारी का काम बड़ा कठिन है, केवल कुशल काम करने वाले ही अच्छे रेशे तैयार कर सकते हैं। चूंकि संसार में चारों ओर जहाजी रस्सों के लिये इस रेशे की मांग बढ़ गई है इसलिये इसकी खेती की उन्नति सम्भव हो सकी है।

पूर्वी फिलीपाइन में दक्षिणी लूज़ोन से लेकर दक्षिणी मिंडानाओ तक की लहरदार पहाड़ियों की ढालों पर, कछारी नम भूमि में इसकी उपज की जाती है। इसके लिये अधिक बहाव वाली भूमि की आवश्यकता है क्योंकि कम बहाव वाली भूमि में यह पौधा कम उगता और बढ़ता है। इसकी फसल की कटाई के समय केवल १५ प्रतिशत हरा भाग हटाया जाता है। इसका शेष ८५ प्रतिशत भाग जमीन पर फेंक दिया है ताकि यह वहीं पर सड़-गलकर मिट्टी में मिल जाय। फिलीपाइन में लगातार ५० वर्षों तक अबाका प्रदेश की भूमि को न तो जोता गया और न साफ किया गया और न वहां पर कोई अन्य फसल ही उगाई गई फिर भी इसकी लगातार उपज प्राप्त की गई।

अबाका के पौधों को शीघ्रता के साथ बढ़ने के लिये अत्यन्त वर्षा तथा गरमी की आवश्यकता है। फिलीपाइन के पूर्वी भाग में ८० इंच से १४० इंच तक सालाना वर्षा होती है। वहां पर शुष्क ऋतु नहीं होती है वहां का वार्षिक तापक्रम लगभग ८० अंश रहता है। वहां पौधों को हानिकर वायु तथा आंधियां भी बहुत कम आया करती हैं।

अबाका की खेती के लिये मजदूरों की बहुत आवश्यकता पड़ती है। पूर्वी फिलीपाइन में मजदूरों की कमी नहीं है। वे कुशल तथा चतुर होते हैं। छोटे से छोटे खेतों से लेकर बड़े से बड़े व्यवसायिक खेतों में इसकी उपज की जाती है। किसान लोग अपने छोटे-मोटे खेतों में इसकी उपज अपने परिवार के लोगों की

सहायता करते हैं और इसके द्वारा अपने परिवार के लिये रुपया कमाते हैं।

नई भूमि साफ करने के पश्चात् अबाका के छोटे-छोटे पौधे उसमें १०-१० फुट की दूरी पर लगाये जाते हैं। पौधे पत्तियों में लगाये जाते हैं। प्रथम वर्षा में पौधों के समीप उगने वाली घासों की निराई करनी पड़ती है। जब पहली बार पौधों में फूल आते हैं तो उन्हें काट डाला जाता है पत्तियों के डंठलों से रेशों की प्राप्ति के लिये काट लिया जाता है। पहली फसल लगभग २४ मासों के पश्चात् तैयार होती है। सभी पौधे एक साथ नहीं तैयार होते हैं। पौधों के काटने के पश्चात् तने के चारों ओर अंकुर फूटते हैं और उनसे दूसरी फसल तैयार होती है। अच्छी भूमि में यदि किसी प्रकार की बीमारी न हुई तो एक बार पौधों के लगाने पर १५ वर्षों तक फसल तैयार की जा सकती है। इन दस या पद्रह वर्षों में भूमि को जोता नहीं जाता है। काटे हुये वृक्षों का सारा का भाग खेतों में सड़ने गलने के लिये ही छोड़ दिया जाता है। उसे साफ करने या निराने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। यदि अबाका की खेती के लिये अधिक उपयोगी युक्तियों का अनुशरण किया जाता है तो उपज में भी पर्याप्त वृद्धि होती है। महिलाओं पर जापानियों का जब अधिकार था तो खेती वाली भूमि को जोता जाता था और पौधों की गोड़ाई की जाती थी। १० या १५ साल तक फसल काटने के बाद भूमि में एक या दो वर्ष तक अन्य प्रकार की फसलें उगाई जाती थीं और उनके बाद पुनः उसमें अबाका के पौधे लगाये जाते थे। ऐसा करने से अबाका उत्पन्न करने वाले खेतों की भूमि भी अच्छी बनी रहती थी साथ ही साथ अन्य प्रकार से उपज की जाने वाली फसल से इस प्रकार की फसल में कई गुना उपज होती थी।

पौधों के पक जाने पर उसकी लम्बी लम्बी पत्तियां काटी जाती हैं चूंकि खेत में लगे हुये सारे पौधे एक समान तौर पर नहीं रहते है! इसलिये जैसे-जैसे पौधे तैयार होते हैं वैसे वैसे उनकी पत्तियों को काटा जाता है। इस प्रकार प्रत्येक खेत के सारे पौधों को काटने में ६ से आठ मास तक का समय लग जाता है। पत्तियों को काटने का बाद उनका छिलका हाथ से छीला तथा उधेड़ा जाता है। इन छिलकों के ऊपर जो पतला चिपचदार अंश होता है उसे एक काठ के ठीहे पर रखकर चाकू के द्वारा छील कर साफ कर दिया जाता है। इस प्रकार की छिलाई और सफाई में बड़ी कठिनाई होती है और बड़ा समय लगता है। एक कुशल मजदूर दिन भर में १२ पौंड रेशा तैयार कर लेता है। इसका सारा का सारा काम हाथ से ही करना पड़ता है। इस कार्य को सम्पन्न करने के लिये अनेकों प्रकार की मशीनों का प्रयोग किया गया परन्तु कोई भी मशीन उपयोगी नहीं सिद्ध हुई छीलने के पश्चात् *बांस के बाड़ों या रैकों* के ऊपर छिलकों को को शीघ्र ही सूखने के लिये डाल दिया जाता है। इन रेशों को सुखाने में बड़ी सावधानी रखनी पड़ती है। *छिलाई और सुखाई कार्य यदि उचित प्रकार से किया* गया तो रेशों की मजबूती और टिकाऊपन बढ़ जाता है। रेशे अधिक साफ और चमकदार होते हैं। सुखाने में कम से कम दो सप्ताह लगते हैं और इस बीच में रेशों को बार-बार उलटना-पलटना पड़ता है। शीघ्रता के साथ पूर्ण रूप से सुखाने से रेशों में स्थाई तौर पर रंग आ जाता है, रेशे सख्त तथा मजबूत हो जाते हैं और उनमें पीला पन आ जाता है।

सूख जाने पर रेशों के बंडल बनाये जाते हैं और बैल गाड़ियों या बोटों पर लाद कर समुद्र तट पर लाये जाते हैं जहां से स्टमरों द्वारा बंडल बन्दरगाह पर पहुँचाये जाते हैं और फिर वहां से विदेशों को निर्यात होते हैं। यहां का अधिक रेशा उत्तरी अमरीका तथा मध्य योरोप को भेजा जाता है। फिलीपाइन की प्राकृतिक की दशा, वातावरण तथा जलवायु और मजदूरों की अधिकता के कारण आशा की जाती है कि इस व्यवसाय में कोई अन्य देश उसकी स्पर्धा नहीं करेगा और आने वाले अनेकों वर्षों तक इस व्यवसाय पर उनका एकाधिकार बना रहेगा।

अन्य रेशे

उपर्युक्त वर्णित रेशों के अतिरिक्त अन्य प्रकार के अनेकों रेशों का उत्पादन संसार के विभिन्न देशों में विभिन्न प्रकार की दशाओं तथा परिस्थितियों में होता है। इन रेशों में से सन की गणना ऊन तथा कपास के पश्चात् है जिससे लिनन नामक कपड़ा तैयार किया जाता है। अनेकों खुरदरी वस्तुओं के निर्माण में हेम्प के स्थान पर पीले रङ्ग वाले पटुवे का होता है। इन रेशों से बण्डल बांधने के लिये सुतली, रस्सी तथा डोरियाँ तैयार की जाती हैं। रामी या चीनी घास बहुत बड़ी रेशे वाली होती है और उससे अच्छा सुन्दर तथा मोटा कपड़ा बनाया जाता है। विभिन्न प्रकार के वृक्षों में पाया जाने वाला रेशा अत्यन्त आवश्यक तथा उपयोगी वस्तु है। यह अधिकतर सेमल वृक्ष में होता है। इसका उपयोग गद्दे, तकियों, कुशनों आदि में भरने के लिये होता है।

इसके पूर्व कि अमरीका में कपास का पौधा उगाया जाय, पटुआ का पौधा ही अमरीका तथा योरुप के अधिकांश देशों में उगाया जाता था और उससे वस्त्र तैयार किये जाते थे परन्तु जब रुई का मूल्य घटा और अमरीका में कपास की उपज बहुत बड़ी मात्रा में होने लगी तो अमरीका तथा योरुप में पटुआ का उगाया जाना बन्द हो गया और धीरे-धीरे करके इसकी समाप्ति हो गई। फ्लैक्स या पटुआ का पौधा साधारणतः ४ या ५ फुट ऊँचा होता है। इस पौधे के सारे तने में इस रेशे की खाल वर्तमान होती है। यूं तो साधारणतया यह समस्त संसार में थोड़ी-बहुत मात्रा में उगा लिया जाता है परन्तु उत्तम श्रेणी का सन केवल कुछ ही भागों में उत्पन्न किया जाता है।

पटुआ (फ्लैक्स) के पौधे की उपज के लिये साधारण वर्षा की आवश्यकता होती है। इसके पैदा होने वाली समस्त ऋतु में सदैव थोड़ी बहुत वर्षा होती रहनी चाहिये। इसको गर्म तथा ग्रीष्म कालीन तापक्रम की आवश्यकता है। नमी भी इसको बहुत अधिक चाहिये। इस प्रकार की जलवायु पश्चिमी योरुप में और कुछ हद तक मध्य तथा पूर्व योरुप में पाई जाती है। यह पौधा अप्रैल के महीने में बोया जाता है। मई जून तथा जुलाई मासों में यह पौधा बढ़ता रहता है। भीषण वर्षा के कारण फसल को हानि हो सकती है। पटुआ की उपज के लिये ऐसी भूमि की आवश्यकता होती है जिसमें अधिक समय तक नमी बनी रह सके। इसलिये बलुही मिट्टी इसके लिये अधिक उपयोगी है। जिन स्थानों पर इसकी खेती होती है वहां पर इसके खेतों में दूसरी फसलें उगाई जाती हैं और खाद का भी प्रयोग किया जाता है।

पटुआ की खेती के लिये बहुत अधिक श्रम की आवश्यकता है। खेत को भली भाँति जोतने और हेंगा से हेंगने के बाद जब खेत की मिट्टी समतल हो जाती है तब इसे बोने का काम होता है। एक एकड़ भूमि में ८० से १६० पौंड तक बीज डाला जाता है। बोने के बाद भूमि को हेंगे से पुनः बराबर कर दिया जाता है। इस प्रकार बोने से पौधे अच्छी प्रकार उगते तथा बढ़ते हैं। चूंकि निराई जाने वाली घासों से इस पौधे की बड़ी हानि पहुँचती है इसलिये जैसे ही यह पौधा केवल कुछ ही इञ्चों का होता है वैसे ही इसकी निराई आरम्भ हो जाती है। निराई आरम्भ होने पर बच्चे तथा स्त्रियां पौधों के मध्य जाते हैं और प्रत्येक भांति की घासें उखाड़ या चुन लेते हैं। पटुआ के खेतों की दो या तीन बार निराई की जाती है। चूंकि समीप-समीप उगने तथा बढ़ने से इसका रेशा बड़ा ही सुन्दर उत्पन्न होता है इसलिये इस पौधे की छटाई नहीं होती है। जब इसकी फसल तैयार हो जाती है तो इसके पौधों को हंसिये से पृथ्वी के धरातल के समीप से काट लिया जाता है और या उखाड़ डाला जाता है और बोझ बांध कर सूखने के लिये फेंक दिया जाता है। सूखने के बाद इसे सरोवरों या तालाबों अथवा नदियों में ले जाकर पानी में सड़ने के लिये डाल दिया जाता है और ४ से १५ दिनों तक यह इसमें पड़ा हुआ सड़ता रहता है। कुछ स्थानों पर जैसे कि सोवियत् रूस तथा बाल्टिक रियासतों में ओस तथा तुषार में ही इसको मुलायम करने का काम किया जाता है। इस प्रकार रेशा तैयार

करने के लिये पौधों को नम भूमि में बराबर करके फैला दिया जाता है और उन्हें ओस, तुषार, वर्षा और पृथ्वी की नमी से मुलायम किया जाता है। इस प्रकार मुलायम करने में २ सप्ताह लग जाते हैं। इस अवधि के भीतर पौधों को अच्छी तरह से उलटना-पलटना पड़ता है। मुलायम होने के पश्चात् मशीन में दबा कर या पीस कर रेशों को डंठलों से अलग करने का काम होता है और फिर हाथ, चाकू या मशीन के सहारे रेशा अलग कर लिये जाते हैं। चूंकि फ्लेक्स तैयार करने का काम बड़ा ही जटिल तथा मेहनत का होता है इसलिये इसमें मजदूरों की बहुत आवश्यकता है। इसके उत्पादन का काम साधारणतया छोटे-छोटे किसानों द्वारा किया जाता है जो अपने-अपने छोटे खेतों में इसकी खेती करते हैं और इसे तैयार करने का काम अपने परिवार की सहायता से करते हैं।

फ्लेक्स की भांति ही हेम्प पौधा भी रेशे के लिये उगाया तथा उपजाया जाता है। यह पौधा ५ से १५ फुट तक बड़ा होता है। इसका तना पतला, सीधा होता है और सिरे पर टहनियां और पत्तियां होती हैं, इसके तने के बराबर इसके रेशे होते हैं। इसके रेशे में लम्बाई, मजबूती और टिकाऊपन पाया जाता है परन्तु इसमें लचीलापन और श्रेष्ठता नहीं पाई जाती है।

इसकी खेती साधारणतया छोटे छोटे खेतों में होती है और किसान परिवार के लोग ही इसके उत्पादन का काम करते हैं। इस पौधे को उगने तथा बढ़ने के लिये ११० दिन की आवश्यकता है जिसके भीतर जलवायु गर्म होनी चाहिये और नमी भी खूब चाहिये। इसका बीज छीट कर समीप-समीप बोया जाता है। सघन उपजने से इसके पौधों से अच्छे प्रकार का रेशा प्राप्त होता है। पटुआ की भांति ही यह पौधा भी काट कर सुखाया और फिर पानी में सड़ाया जाता है। पानी में धोने तथा साफ करने के बाद सुखा कर इसका रेशा अलग किया जाता है।

सीसल—सीसल तैयार करने का काम पटुआ, सनई आदि से भिन्न प्रकार से होता है। यद्यपि इसका पौधा प्रायः सौ वर्षों से उगाया जाता था परन्तु हाल के वर्षों में ही इसकी उपयोगिता बढ़ी है। सीसल के रेशे बंडल बांधने वाली सुतली तथा बट कर बनाई जाने वाली वस्तुओं के लिये बहुत अधिक उपयोगी है। यह सस्ता तथा मजबूत उत्तम रेशा है। यद्यपि स्थानीय प्रयोग के लिये यह अनेकों उष्ण प्रदेशों में होता है परन्तु यूकाटन, पश्चिमी द्वीप समूह, पूर्वी अफ्रीका, फिलीपाइन, जावा और भारतवर्ष में इसका उत्पादन व्यावसायिक रूप से होता है। उष्ण प्रदेशों में सीसल की व्यावसायिक खेती होती है जहां पर इसके रेशे को मशीनों के सहारे अलग किया जाता है। यूकाटन में इसका व्यवसाय अपनी शिखर पर पहुँच चुका है क्योंकि वहां पर इसकी उपज के वातावरण बहुत अधिक अनुकूल है और इसको तैयार करने के लिये वैज्ञानिक युक्तियों का अनुसरण होता है।

सीसल के पौधों को उगाने के लिये अधिक पानी की आवश्यकता नहीं है। यूकाटन में साल में २५ इञ्च वर्षा होती है जहां पर यह पौधा खूब उगता है। इस वर्षा का अधिकांश भाग जून से अक्तूबर तक बरसता है। इसका तना छोटा और मोटा होता है। इसकी पत्तियां इसे ५ इञ्च तक लम्बी मोटी, तलवार के आकार की कांटेदार होती हैं। पत्तियों के गूदे पर मोटी छाल रहती है। इसलिये वर्षा ऋतु का पानी उसमें सोख जाता है जो बाद के दिनों में काम देता रहता है। सीसल का पौधा बहुत धीरे-धीरे उगता तथा बढ़ता है। इसके तैयार होने के लिये ४ वर्ष की आवश्यकता है। उच्च ताप या गरमी से पौधा लगातार बढ़ता रहता है। इसकी उपज के लिये मोटी, पानी तथा पानी को अधिक समय तक अपने भीतर रखने वाली मिट्टी की आवश्यकता है। चूंकि जिस प्रकार की भूमि में सीसल का पौधा उगता है उसमें अन्य प्रकार के पौधे नहीं उगते हैं इसलिये सीसल की उपज के हेतु सस्ती जमीन प्राप्त हो जाती है।

जंगली प्रदेशों में झाड़ीदार पथरीली भूमों को साफ करके उसमें ६ फुट लम्बाई भूमि में यह पौधे पंक्तियों में लगाये जाते हैं। साल में केवल एक या दो बार इन पौधों की निराई करनी पड़ती है। इसकी विशेष देख भाल करने की आवश्यकता नहीं है। पौधे

के तने के चारों ओर पत्तियां बढ़कर गोलाकार स्थान ग्रहण कर लेती हैं। एक-एक पौधे में १२ से २० पत्तियां तक होती हैं। पत्तियों को तने के समीप से काटा जाता है। इस पौधे में कीड़े-मकोड़े के लगने की कोई आशका नहीं रहती है और प्रत्येक ६ मास के पश्चात् इसकी पत्तियों को काटा जा सकता है। एक बार लगाने के बाद १५ या २० वर्षों तक इसकी पत्तियां काटी जा सकती हैं। जब इसमें फूल निकल आता है तो समझ लेना चाहिये कि पौधे का जीवन समाप्त होने के समीप आ गया है। फूल निकलने के बाद पौधे मर जाते हैं। चूंकि पत्तियों के पकने का समय नियत नहीं है इसलिये पत्तियों के काटने का काम सालभर होता रहता है।

पत्तियों को काटने तथा कांटों को छीलने के पश्चात् पत्तियों के बंडल या बोझ बांधे जाते हैं और उन्हें मनुष्यों के सिर पर, बैलगाड़ी पर या मोटर आदि पर लादकर मिलों में पहुँचाया जाता है जहां पर मशीनों में पीसकर पत्तियों का रेशा अलग कर लिया जाता है। पूर्वी देशों में सीसल की तैयारी में मानव बल का ही प्रयोग होता है। रेशों को अलग करने के बाद उन्हें सुखाया जाता है और फिर बंडल बनाकर उन्हें जहाजों पर लादकर विदेशों को भेजा जाता है।

एक दीर्घ काल तक यूकाटन का सीसल की उपज पर एकाधिकार स्थापित रहा। जब अर्ध रेगिस्तानी प्रदेशों में छोटे दाने वाले अन्नों की उपज होने लगी तो उसके बांधने के लिये सीसल के रेशों के बने सामग्री की आवश्यकता हुई इसी कारण इसके व्यवसाय में उन्नति हुई। १६१४-१६१८ के युद्ध काल में इसकी खूब मांग हुई और इस बीच अनेकों प्रदेश में इसकी उपज होने लगी। इसका मूल्य भी इस बीच में खूब बढ़ गया। नतीजा यह हुआ कि पश्चिमी द्वीप समूह, अफ्रीका, दक्षिणी पूर्वी एशिया में इसकी उपज को गई और यूकाटन में उत्पन्न होने वाली सीसल को इन स्थानों की सीसल का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में डट कर सामना करना पड़ा। जब ऐसी मशीनों की आज्ञा हो हो गई जो काटने, दाने के निकाल आदि का एक साथ ही काम करने लगीं तो सीसल की उपयोगिता जाती रही जिससे यूकाटन का एकाधिकार टूट गया। चूंकि सीसल की मांग कम हो गई है इसलिये बटी हुई पतली डोरियां भी कम बनने लगी हैं। हो सकता है कि इसका प्रयोग अन्य प्रकार के कामों में हो सके। जहाज की रस्सियों के लिये भी इसका उपयोग हो सकता है परन्तु यह पदार्थ मनीला के सन की अपेक्षा कम मजबूत होता है।

रामी—इसका रेशा बड़ा ही अच्छा होता है। यह दो प्रकार के बिच्छू के पौधों द्वारा प्राप्त किया जाता है। सफेद रामी या चीनी घास अच्छे प्रकार की होती है। इसका पौधा ४ से ८ फुट तक ऊंचा होता है। सिरे के समीप इसमें टहनियां होती हैं। इसके रेशों पर वर्षा का असर नहीं पड़ता है। इसलिये इसका प्रयोग ऐसी वस्तुओं की तैयारी में किया जाता है, जिनका प्रयोग वर्षा ऋतु या पानी में होता है। परन्तु इसके रेशों को तथा इसके रेशों की बनी वस्तुओं का निर्माण चूंकि मशीनों के द्वारा नहीं हो सकता है इसलिये बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ रहा है।

रामी को उगने तथा बढ़ने के लिये ३५ इञ्च से अधिक सालाना वर्षा की आवश्यकता है। इसके लिये बलुही नमकीन मिट्टी की आवश्यकता है। इसका स्थान ऐसा होना चाहिये जहां पर पानी न जा सके। चूंकि इसके व्यवसाय खेती करने में बहुत अधिक श्रम की आवश्यकता है इसलिये इसकी व्यवसायिक खेती मध्य चीन, यांगटिसी घाटी, चोसेन (कोरिया) और तैवान (फारमूसा) में ही हो रही है। चूंकि इसके पौधों को खाद की बड़ी आवश्यकता है और लगातार इसकी देख-भाल करने की जरूरत है इसलिये इसकी खेती छोटे-छोटे खेतों में ही होती है और ऐसे स्थानों पर होती है जहां हवा से इसकी रक्षा हो सके। यह प्रायः घरों के समीप ही उगाई जाती है। किसान लोग अपनी जोत के एक चौथाई भाग में इसकी खेती करते हैं।

रामी का पौधा बीजों को बो कर तथा जड़ों को लगा कर उगाया जाता है। चीन में जड़ों को लगा कर इसकी खेती करते हैं। इसके पौधों के रोपने के पूर्व खेत को भली भांति जोत डाला जाता है और

दर ... जाती है। उसके बाद
करने ... कर उन गड्ढों में दो-
के ... मट्टी डाल दी जाती है।
... जड़ों के रोपने का काम
... पौधों के लगा देने से पांच
... ता रहता है। पहले और

दूसरे व... काटकर खेतों में गिरा दिया जाता है ताकि उसका तना और अधिक शाखें फोड़ सके, तथा काट कर गिराया हुआ भाग खाद का काम दे सके। पतझड़ की ऋतु में पौधों के घास, भूसा अथवा खाद-पांस से ढक दिया जाता है ताकि बरफ के जमने से वे खराब न हो जाय। तीसरे वर्ष के जून मास में पहली फसल तैयार होनी शुरू होती है। प्रति वर्ष तीन फसलें काटी जाती हैं और प्रत्येक फसल में प्रत्येक एकड़ के पीछे ४ टन रामी की प्राप्ति होती है। प्रथम फसल वाले तनों से ३० इञ्च लम्बा रेशा निकलता है। दूसरे में रेशों की लम्बाई ४५ इञ्च और तीसरे फसल की रामी मध्यम लम्बाई की होती है। प्रत्येक फसल के पश्चात् भूमि को जान दिया जाता है ताकि खराब घासें न उग सकें। समस्त ग्रीष्म ऋतु में फसल की कटाई का काम होता रहता है। जब तक फसल का अन्तिम अंश काटा जाता है तब तक में दूसरी फसल तैयार हो जाती है। तनों को काटने के बाद उन्हें दो-तीन घंटे तक पानी में भिगो दिया जाता है उसके बाद उन्हें मोटे फल वाले लोहे के चाकू या बांस के चाकुओं से हाथ के सहारे चीरा-फाड़ा जाता है। एक मजदूर १० या १५ पौंड तक रेशे प्रति दिन पछाड़ सकता है परन्तु केवल ४ पौंड रेशे चीर सकता है। चीरने, पछाड़ने तथा सुखाने आदि का सारा काम हाथ से ही किया जाता है। मशीन में प्रयोग किये जाने के पूर्व रामी का चिप-चिपा गोंद वाला पदार्थ अलग होना चाहिये। चीन के लोग उसे अलग करने का प्रयास नहीं करते हैं परन्तु अन्य देशों के लोग उसे सोडा डाल कर साफ कर डालते हैं।

यदि रामी का चिप-चिपा पदार्थ साफ कर दिया जाय तो उसका अच्छा उपयोग किया जा सकता है परन्तु चाहे जो भी किया जाय यह रेशा कपास या अन्य रेशों की बराबरी नहीं कर सकता है। अनुमान किया गया है कि चीन में जितना रामी का रेशा उत्पन्न होता है उसका एक तिहाई भाग चीन में ही उपयोग हो जाता है जो कुछ बचता है उसका आधा भाग जापान भेज दिया जाता है और शेष जर्मनी, इङ्गलैण्ड तथा संयुक्त राज्य अमरीका चला जाता है।

रुई
रेशम
ऊन
कपास
सन
जूट (पाट)
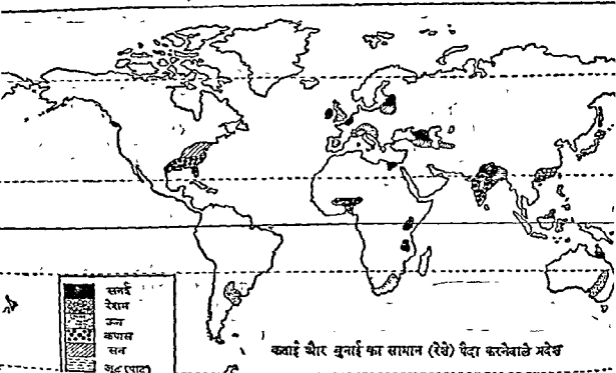
कताई और बुनाई का सामान (रेशे) पैदा करनेवाले प्रदेश

कोपक या सेम्हल की रुई

सेम्हल का वृक्ष दक्षिणी एशिया, पश्चिमी अफ्रीका और अमरीका के गर्म भागों में होता है। इसके वृक्ष को उष्ण जलवायु की आवश्यकता है। यह नीची या कम ऊँची भूमि में में बलुही नमकीन मिट्टी में उगता है। यद्यपि घूहे वाली रुई अनेकों देशों से आती है पर जावा, फिलोपाइन, भारतवर्ष से मुख्यतः इसकी पूर्ति की जाती है। जावा में छोटे-छोटे किसान इसके वृक्षों को पंक्तियों में अपने घरों तथा खेतों के चारों ओर उगाते हैं। छोटे-छोटे किसानों द्वारा इसका ३० प्रतिशत भाग उत्पन्न किया जाता है। कुछ ऐसे देश हैं जहां पर ६ हजार एकड़ भूमि में घूहे की रुई का उत्पादन होता है इसके अतिरिक्त २० हजार एकड़ भूमि में मिश्रित रूप से इसकी उपज की जाती है।

तीन चार वर्षों के पश्चात् ही सेम्हल के वृक्षों में बीजों की फलियां लगने लग जाते हैं परन्तु उपज कम होती है। छठवें साल जाकर उपज में वृद्धि होती है। जब ये फलियां पक जाते हैं तो पीले पड़ जाते हैं और फटने के बाद इनमें रेशमी भूहा या रुई निकलती है। इसकी रुई को कई बार चुनना पड़ता है जिसका परिणाम यह होता है कि इसकी पूरी रुई प्राप्त करने के लिये तीन मास का समय लग जाता है। बड़े-बड़े बागों में हुक लगा कर फलियों को तोड़ा जाता है। उसके पश्चात् उन्हें मिट्टी की फर्शों पर फैला दिया जाता है और जालों से ढक दिया जाता है ताकि हवा से उसकी रुई उड़ न सके। बीजों से रेशों को हाथ के सहारे स्त्रियां तथा बच्चे अलग करते हैं। उसके पश्चात् इसकी रुई बण्डलों में बांध कर योरुप तथा संयुक्त राज्य अमरीका को भेज दी जाती है। यह कपास की रुई की अपेक्षा ६ गुनी हलकी होती है। पानी पर यह अपने भार का ३५ गुना भार सम्भाल सकती है। जब कि कार्क केवल ५ गुना भार संभाल सकता है। इसमें पानी नहीं भेद सकता है। यह बड़ी हल्की होती है और बड़ी लचीली होती है इसी कारण इसको विभिन्न प्रकार के गद्दों, कुशनों तथा तकियों और मसनदों में भरा जाता है। चूंकि यह रेशा मुड़ता नहीं है और बहुत चिकना होता है इसलिये इसे काता नहीं जा सकता है। इस बात की बहुत कम सम्भावना है कि यह किसी अन्य रेशे की स्पर्धा कर सके।

मानसूनी प्रदेशों में गहरी खेती

कृषि मनुष्य के उन प्राथमिक उद्योगों में से है जिसमें मनुष्य द्वारा अपनी प्राकृतिक परिस्थितियों का बुद्धिमत्ता पूर्ण उपयोग किया जाता है। वह किस प्रकार उनको अपने अनुकूल बनाकर अपना भोजन, वस्त्र इत्यादि की आवश्यकतायें पूर्ण करता है इसका सर्व श्रेष्ठ उदाहरण कृषि व्यवसाय है। यह व्यवसाय मुख्यतः जलवायु तथा मिट्टी पर अवलम्बित है। धरातल का रूप भी इस धंधे को प्रभावित करता है। आजकल तो खपत के क्षेत्रों का प्रभाव भी खेती के ढंग तथा विकास पर काफी पड़ता है।

प्राथमिक व्यवसाय होने के कारण इस धंधे में में प्राकृतिक परिस्थिति तो महत्वपूर्ण है ही किन्तु अपनी सामर्थ्य और बुद्धि के अनुसार मनुष्य ने अपनी इन परिस्थितियों की असुविधाओं को दूर करने के प्रयत्न भी किये हैं। सिंचाई के साधन, विभिन्न प्रकार की खाद, तरह-तरह के परिष्कृत बीज उसके इन प्रयत्नों के प्रमाण हैं।

वर्तमान समय में वैज्ञानिक कृषि द्वारा खेती की जाती है। अनुर्वर भूमि को खाद के प्रयोग से उर्वरा बनाये रखना, वर्षा की कमी को सिंचाई की व्यवस्था द्वारा पूरा करना। परिष्कृत बीज बोकर फसल को कीड़ों से सुरक्षित रखना ही वैज्ञानिक खेती कहती है।

जन संख्या के बढ़ने पर जब भूमि से अधिकतम लाभ उठाने का भागीरथ प्रयत्न किया जाता है अर्थात् एक टुकड़े से वर्ष भर में कई एक फसल प्राप्त की जाती है तो ऐसी कृषि को गहरी खेती कहते हैं। जिन देशों में कृषि के लिये भूमि कम है वहां इस प्रकार की खेती होती है।

जिन प्रदेशों में भूमि अधिक है और जनसंख्या कम है वहां भूमि से अधिक फसलें प्राप्त करने की ओर कम ध्यान दिया जाता है। खेती की इस प्रणाली को विस्तृत खेती कहते हैं। इस प्रकार की खेती में विस्तृत फार्मों पर बड़े पैमाने पर खेती की जाती है।

खेती के साथ ही साथ पशु पालन तथा अन्य उद्योगों के करने को मिश्रित खेती कहते हैं। शुष्क प्रदेशों में जहां वर्षा जब तब होती है खेतों को जोतकर भूमि मुलायम कर ली जाती है। ताकि वर्षा होने पर अधिकांश जल मिट्टी सोख सके। इस प्रकार प्राप्त नमी को सुरक्षित रखने के लिये भूमि पर मिट्टी की परत जमा दी जाती है ताकि पानी भाप बन कर उड़ न सके। इस व्यवस्था द्वारा जब तब फसल प्राप्त कर ली जाती है। ऐसी कृषि को शुष्क कृषि कहते हैं।

जहां वर्षा औसत वर्षा से अधिक होती है और बिना सिंचाई के खेती होती है उसे आर्द्र कृषि कहते हैं। सिंचाई द्वारा की जाने वाली खेती को सिंचाई की खेती कहते हैं।

एशिया संसार का सबसे प्राचीन महाद्वीप है। इसके दक्षिणी पूर्वी भाग के देशों में आबादी बड़ी सघन है। भारतवर्ष, चीन, जापान, कोरिया, पूर्वी द्वीप समूह, हिन्द चीन, बरमा, स्याम आदि देशों में बहुत अधिक लोग निवास करते हैं। इन प्रदेशों को मानसूनी प्रदेश कहा जाता है। मानसूनी प्रदेश वे प्रदेश हैं। जहां पर उत्तरी-पूर्वी तथा दक्षिणी पूर्वी मानसूनों से वर्षा होती है। मानसूनी प्रदेश के सभी देशों का प्रधान धंधा खेती है। इन देशों में सबसे पहले कृषि कार्य आरम्भ किया गया था और इन देशों की तीन-चौथाई जनता का मुख्य उद्यम कृषि है। केवल जापान ही एक ऐसा देश है जहां की आधी जनता कृषि में तथा आधी जनता अन्य प्रकार के व्यवसायों में लगी है। चूंकि इन देशों में बस्ती तो बहुत अधिक है यानी कहीं-कहीं पर एक वर्ग मील में एक हजार से लेकर १५०० सौ तक लोग रहते हैं, और कृषि करने वाली भूमि कम है इसलिये इन देशों में अत्यन्त गहरी खेती की जाती है। एशिया के ये प्रदेश योरुप तथा अमरीका के सघन प्रदेशों की अपेक्षा अधिक कृषक हैं।

मानसूनी प्रदेशों में जो कृषि कार्य होता है वह संसार के अन्य सघन प्रदेशों के कृषि कार्य से सर्वथा भिन्न प्रकार का है। इन प्रदेशों की खेती निम्न भांति से की जाती है (१) यहां पर छोटे छोटे खेतों में जो कि एक-दूसरे के समीप नहीं होते हैं वरन् गांव की भूमि में विभिन्न स्थान पर बिखरे होते हैं खेती

की जाती है। (२) अधिकांश भागों में पुराने ढग से खेती की जाती है और और प्राचीन खेती वाले औजारों का ही प्रयोग होता है तथा हाथ से ही खेती का काम किया जाता है। (३) इन देशों में जीवन निर्वाह के लिये अत्यन्त गहरी खेती होती है और व्यवसायिक रूप से विस्तृत बड़े बड़े फार्मों में बड़े पैमाने पर खेती नहीं की जाती है। (४) यहां पर सब से अधिक धान की खेती होती है। (५) चूंकि इन देशों में शीत या शुष्क ऋतु भी पाई जाती है इसलिये गल्ले, फल और साग-भाजी की फसलें भी उगाई जाती हैं। (६) यहां पर दूध देने वाले पशुओं तथा मांस प्राप्त किये जाने वाले पशुओं, भेड़-बकरियों और घोड़ों का पालन अपेक्षाकृत कम होता है। यद्यपि कृषि कार्य में सहायता के लिये पशु पाले जाते हैं और गृहस्थी में दूध-घी के लिये गायें और भैंस भी पाली जाती हैं परन्तु व्यवसाय के लिये उनका पालन पोषण नहीं किया जाता है।

एक-दूसरे से दूर स्थित छोटे-छोटे खेत—

मानसूनी प्रदेशों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यहां पर छोटे-छोटे खेतों में खेती होती है जो कि विभिन्न प्रकार की पाई जाने वाली मिट्टी में एक-दूसरे से बिलग स्थित होते हैं। अधिकांश मानसूनी प्रदेशों में औसत से खेतों की भूमि ढाई एकड़ या उससे कम होती है। भारतवर्ष जैसे देशों में तो इस से कम भूमि किसान परिवारों के पास होती है। बहुतेरे किसान तो ऐसे मिलेंगे जिनके पास एक या दो बीघे भूमि है और वह उन्हीं में खेती करते हैं। कोरिया में औसत से खेती का क्षेत्र साढ़े तीन एकड़ है। चीन में यह औसत ३ एकड़ से कुछ अधिक का है, अधिकांश खेत बल्कि खेतों का ७५ प्रतिशत भाग ४ एकड़ से कम है। चूंकि दक्षिणी चीन की भूमि में उत्तरी चीन की अपेक्षा अधिक उपज होती है और वहां पर मौसम भी अधिक अनुकूल होता है इसलिये दक्षिणी चीन के खेत उत्तरी चीन से अधिक छोटे होते हैं। उत्तरी चीन में बसंत ऋतु में जो गेहूं उत्पन्न किया जाता है उसके खेतों की भूमि का औसत ८ एकड़ है, निचली यांगटिसी घाटी में यह औसत ३ एकड़ और दक्षिणी-पूर्वी चीन में यह औसत २ एकड़ या इससे भी कम होती है।

इन मानसूनी प्रदेशों में जितनी भूमि एक किसान परिवार खेती के लिये प्रयोग में आती है उतनी भूमि तो संयुक्त राज्य अमरीका में किसान परिवारों को एक गाय अथवा एक घोड़े के पालने के लिये आवश्यक है। पश्चिमी देशों के किसान दक्षिणी-पूर्वी एशिया के अनेक भागों को कृषक प्रदेश न समझ कर बगीचा ही समझते हैं। जिन स्थानों मिट्टी कम उपजाऊ, पथरीली तथा अनुर्वरा है वहां पर कछारी तथा उपजाऊ भूमि से खेत अधिक बड़े होते हैं। इन देशों में खेतों के छोटे होने के कारण ही देहातों में गरीबी अधिक है और किसान परिवार अधिक गरीब हैं। चूंकि खेती छोटे होते हैं, आबादी सघन है, खर्च के बाद बहुत कम अन्न बचता है, खेती अधिक होती है, लगान की दरें अधिक महँगी हैं इसलिये व्यक्तिगत किसान परिवार के लिये यह असम्भव है कि वह अपनी खेती के लिये अधिक भूमि प्राप्त कर सके।

जापान के अधिकांश खेतों की खेती खेत जोतने वाले करते हैं। कोरिया में लगभग आधे किसान खेत जोतने का काम करते हैं और उसके साथ ही एक तिहाई लोग ऐसे होते हैं जो अतिरिक्त साझीदार होते हैं। चीन में किसानों का एक तिहाई भाग जोतने वाला होता है और प्रायः एक-चौथाई भाग उन लोगों का होता है जो खेती का कोई काम नहीं करते हैं वरन् साझीदार होते हैं। काश्तकार लोगों की अधिकता है। किसानों के मध्य ब्याज तथा लगान की दरें बहुत अधिक हैं। लोग अपनी फसल उपजाने के लिये जो अनाज तथा धन लेते हैं उसपर ४० प्रति सालाना तक ब्याज चुकाना पड़ता है और यदि व्यक्तिगत रूप से कोई ऋण लिया जाता है तो ७० प्रतिशत तक साल में ब्याज चुकता करना पड़ता है। लगान उपज रूप में दिया जाता है जो कि खेत की उपज का प्रायः आधा होता है। खेती का अधिकांश काम किसान परिवार के लोग ही करते हैं। एक-एक परिवार में साधारणतया ४ से ७ व्यक्ति तक पाये जाते हैं। यद्यपि मनुष्य खेती का अधिकांश काम

करते हैं फिर भी परिवार की स्त्रियां तथा बच्चे भी, खेती का काम करते हैं।

भारतवर्ष में किसानों की समस्या बड़ी जटिल है। प्रत्येक किसान परिवार के पास औसत से ५ से लेकर सात या आठ बीघा खेती वाली भूमि है। यह भूमि छोटे छोटे खेतों या भागों में विभाजित है उनको गाटा के नाम से पुकारते हैं। अधिकांश खेत एक बीघा या उससे कम ही के होते हैं। जिनकी जोताई और कमाई में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। साधारण किसान परिवार के आदमी, स्त्रियां तथा बच्चे सभी खेती के काम में लगे रहते हैं। साल में साधारणतया दो फसलें उगाई जाती हैं। खरीफ की फसल असाढ़ महीने में बोई जाती है, और उसमें ज्वार, बाजरा मूंग, उर्द, अरहर, तिल, सनई, पटुआ, धान आदि बोये जाते हैं। यह सारी फसलें आश्विन से अगहन तक में काट ली जाती है।

दूसरी फसल को रबी की फसल कहते हैं। इसके लिये जो खेत सुरक्षित रखे जाते हैं वह चौमासे में परती रखे जाते हैं। चार महीने अर्थात् असाढ़, सावन, भादों और आश्विन मास तकउनमें जुताई तथा हेंगाई का काम होता रहता है। कार्तिक मास में जब वर्षा का अन्त हो जाता है और खेतों की मिट्टी अच्छी तरह से तैयार हो जाती है तो उसमें जौ, गेहूँ, चना, मटर, मसूर, सरसों अल्सी आदि बोये जाते हैं और चैत्र महीने में इनकी कटाई होती है। कटाई के बाद सारी फसल खलिहानों में एकत्रितकर ली जाती है जहां बैलों का दांय की सहायता से नाज मांड़ा तथा दायाँ जाता है और फिर हवा में टोकरियों से सूप उड़ाकर अनाज निकाल लिया जाता है।

इसके अतिरिक्त जायद पसल तैयार की जाती है। असाढ़ मास में सांवा, काकुन, खीरा, ककरी, आदि बोते हैं। टमाटर, भांटा, गोभी, मिर्चा, मूली गाजर, सकरकन्द आदि इसमें तैयार किये जाते हैं। आलू, मूंगफली गन्ना तथा ईख की खेती भी खूब होती है। अनुकूल भूमि में खासतौर पर कछारी भूमि में तरबूज और खरबूजा फल खूब पैदा किये जाते हैं। उत्तरी भारत में अनाज के खेतोंमें अमरूद के पौधे खूब लगाये जाते हैं। अमरूद के अतिरिक्त केला, सतरा, पपीता की फसलें भी तैयार की जाती हैं।

साधारण किसान अपनी खेती के बलबूते पर अपने परिवार का सारा भार नहीं वहन कर सकता है परिणाम यह होता है कि उसे बीज के लिये तथा खाने के लिये अनाज खेतों की फसल के लिये सवाई तथा डेढ़ी पर महाजनों से लेना पड़ता है। इसका मतलब यह कि फसल तैयार होने पर जितना अनाज वह लेता है उस पर २५ प्रतिशत से लेकर ५० प्रतिशत तक उसे ब्याज चुकता करना पड़ता है। यदि वह अपनी फसल पर इसका पूरा चुकता कर देता है तो अच्छा ही है यदि चुकता नहीं कर सकता है तो ब्याज का नाज मूलधन में जोड़ कर उसे मूलधन बना लिया जाता है और फिर उस पर डेढ़ी लगाई जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि साधारण किसान की कमाई का नाज स्थानी महाजनों के घर चला जाता है।

बड़े-बड़े खेतिहर तथा जमींदार वर्ग वाले खेतों के मालिक तो बने रहते हैं परन्तु अपने हाथों से खेती का काम बिल्कुल ही नहीं करते हैं। वह अपने खेत का काम छोटे-छोटे किसानों से करवाते हैं और उन्हें अपने अधिया तथा तिहाई प्रणाली की प्रथा के अनुसार दे देते हैं। छोटे किसान फसल तैयार करके उनको घर बैठे उपज का आधा भाग बांट देते हैं। यह अवश्य होता है कि खेती में खर्च की जो कमी पड़ती है उसमें खेतों के मालिक अपने किसानों की सहायता ऋण रूप में किया करते हैं और फसल तैयार होने पर उसे वसूल कर लेते हैं।

किसानों के काम में ग्रामीण मजदूरों से जोताई, बोआई, निराई तथा कटाई और दवाई आदि में काम लिया जाता है और उन्हें अनाज के रूप में तथा नकद रूप में मजदूरी दी जाती है। प्रत्येक कार्य के लिये मजदूरी अलग अलग निर्धारित होती है। फसल की कटाई वाली मजदूरी अपेक्षाकृत सब से अधिक होती है। सिंचाई का कार्य भी किया जाता है। जहां कहीं नहरें हैं वहां नहरों से सिंचाई होती है। जहां नहरें नहीं है वहां पर तालाबों और कुओं से सिंचाई का कार्य होता है। खेतों में खाद दी जाती है। साधारण

तथा खेतों में काम आने वाले पशुओं तथा गाय-भैंस भेड़-बकरी आदि के गोबर से खाद तैयार की जाती है और उसे खेतों में डाला जाता है। अब, तो फसल में कृत्रिम खाद का भी प्रयोग होने लग गया है। खेतों की जुताई के लिये बड़े बड़े फाल वाले हलों प्रयोग भी किया जाने लगा है। बैलों से हल तथा हेंगा के खीचने का काम लिया जाता है। बैलगाड़ी, गधे, खच्चर, ऊट आदि समान की ढुलाई काम देते हैं।

छोटे छोटे खेतों के चारों ओर मेंडे तथा डांड़ बने रहते हैं जो आने-जाने का मार्ग बनाते हैं और किसान उन्हीं पर चल कर अपना कृषि कार्य करते हैं। किसान लोग अपने पड़ोस वाले खेतों की जोताई आदि में एक दूसरे की सहायता करते हैं। बिलग-बिलग खेतो में खेती करने का सबसे बड़ा लाभ यह है कि जिन स्थानों की भूमि अच्छी होती है, उसे किसान चुन कर, खेत बना कर जोतता, बोता और फसल उगाता है और पथरीली, कम उपजाऊ भूमि को छोड़ देता है। झाड़ियों, परतियों में जो घास होती है उसका उपयोग पशुओं के चारे के लिये होता है। परती भूमि, वनों तथा जङ्गलों और घास के मैदानों में पशुओं को चराया जाता है। बारी बारी से एक ही खेत में विभिन्न प्रकार की फसलें उगाई जाती हैं जैसे कि धान उगाने के बाद उसमें गेहूँ, जौ, चना या मटर की उपज होती है। बाजरे के खेत में चना, मटर, गन्ना, आलू आदि की फसल उगाई जा सकती है। इसके अतिरिक्त बाजरे के साथ अरहर मूग, उर्द, तिल आदि बोये जाते हैं। इसी प्रकार ज्वार के साथ भी। ज्वार तथा बाजरा और धान के खेतों की मेंडों पर सनई और पटुआ बोया जाता है। रबी फसल वाले नाजों के साथ सरसों, अल्सी आदि तेलहन वाली वस्तुएं बोई जाती हैं। रबी की खेती में विभिन्न प्रकार के नाज एक साथ मिला कर बोये जाते हैं जैसे कि गेहूँ के साथ जौ तथा चना मिला कर बोते हैं। जौ के साथ चना या मटर मिलाकर बोते हैं। जौ और गेहूँ मिलाकर गोजई बनती है। गेहूँ तथा चना मिलकर गेहुँचनी बनाई जाती है। चना और जौ मिलकर बेर्रा बनता है। जौ और मटर मिलकर मटर बेर्रा बनती है।

किसानों का कहना है कि छोटे-छोटे, अलग-अलग खेतों से सबसे बड़ा लाभ यह है कि यदि खेती को कीड़े-मकोड़ों वर्षा, ओला तथा तुषार आदि हानि हुई तो सारी की सारी फसल की हानि एक साथ नहीं होती है। प्रत्येक दशा में खेती का कुछ न कुछ भाग बच ही जाता है।

धान की फसल दो प्रकार से उगाई जाती है। एक तो यह है कि खेतों में धान छींट कर बोया जाता है और उससे पौधे उगते तथा बढ़ते हैं। इस प्रकार धान की खेती को छिंटी खेती कहते हैं। दूसरे प्रकार की खेती को बियाढ़ी या लौया धान की खेती कहते हैं। इसमें छोटे-छोटे स्थानों में मिट्टी को अच्छी तरह से बना तथा तैयार करके उसमें धान के बीज खूब घने बो दिये जाते हैं जिसे बियाढ़ जमाना कहते हैं। जब वर्षा होती है और खेतों में पानी भर जाता है तो बियाढ़ के पौधे जो कि आठ अंगुल या इससे बड़े हो जाते हैं, उखाड़ कर पानी भरे धान के खेतों में लगाये जाते हैं। बियाढ़ लगाते समय ध्यान रखा जाता है कि धान के पौधों का ऊपरी सिरा पानी के ऊपर निकला रहे अन्य था पौधे सड़ जाते हैं। बियाढ़ की खेती वाले पौधे अधिक बड़े और भारी होते हैं। उनमें उपज भी अधिक होती है। बियाढ़ी फसल अगहन, पूस महीने में और छिंटी कुवार तथा कार्तिक मास में तैयार होती है।

विभिन्न प्रकार के अनाजों को एक साथ मिला कर बोने में बहुत अधिक लाभ होता है। यह प्राचीन देशों की परम्परागत खेती के प्रयोगों का ही परिणाम है। इस प्रकार की खेती में उपज अधिक होता है क्योंकि विभिन्न प्रकार के पौधे एक ही प्रकार की शक्ति धरती से नहीं खीचते हैं। इसके अतिरिक्त ये पौधे विभिन्न प्रकार की गैसें तथा शक्तियां अपनी जड़ों के द्वारा धरती में पहुँचाते रहते हैं जो कि उपज में सहायक हैं। ऐसा करने से धरती की उर्वरा शक्ति क्षीण नहीं होती वरन बढ़ती है। भारतवर्ष, चीन, कोरिया, बरमा जापान तथा पूर्वी द्वीप समूह आदि देशों के किसान पाश्चमी देशों के किसानों की अपेक्षा कृत कहीं चतुर, सुजान तथा कुशल हैं। कहने की बात कुछ और होती है और कर के दिखाने की कुछ और।

भारतीय किसान अपने १० बीघों की खेती में अपने ८ या १० आदमी के परिवार का साल भर भरण-पोषण, शादि-व्याह, लिखाई-पढ़ाई आदि का सारा प्रबन्ध करता है। यदि अमरीका तथा योरुप के देशों के किसानों को कह दिया जाय तो वे इतनी छोटी भूमि में कुछ भी नहीं कर सकेंगे और साल भर खाने के लिये अन्न भी उत्पन्न नहीं कर पायेंगे।

गहरी खेती, अधिक खाद पाँस देने, तथा सिंचाई करने के कारण उपज बहुत अधिक होती है। जापान तथा चीन में धान के खेतों में, प्रति एकड़ पीछे ६५ बुशल धान होता है। एक बुशल ६० पौंड के बराबर होता है। कोरिया तथा भारतवर्ष में एक एकड़ भूमि में लगभग ३० बुशल होता है। भारतवर्ष में अधिक अन्न उपजाओ के अन्तर्गत खेती में विशेष रूप से ध्यान दिया गया है और विशेष रूप से ध्यान देने वाले किसानों ने बिना मशीन की सहायता से एक एकड़ भूमि में ६० या ७० बुशल तक की उपज कर दिखलाई है। गेहूँ की उपज भी खूब बढ़ाई गई है। एक एकड़ भूमि में ५० से लेकर ६० मन तक की उपज की गई है। गेहूँ के साथ ही साथ सरसों और अलसी की उपज भी हुई है जसकी गणना गेहूँ की उपज में नहीं है वरन् अलग है।

संयुक्त राज्य अमरीका में, मशीनों के सहारे बड़े पैमाने पर जो विस्तृत खेती होती है और कृत्रिम खाद का प्रयोग किया जाता है तथा रोगों के नाश करने के लिये वायुयानों द्वारा दवाएं छोड़ी जाती हैं उससे प्रति एकड़ के पीछे ४५ बुशल धान उपजाया गया है। विस्तृत खेती की अपेक्षा दक्षिणी पूर्वी एशिया के खेतों में अधिक उपज होती है। छोटे खेतों में अधिक उपज करने के लिये बहुत अधिक श्रमिकों तथा खाद की आवश्यकता होती है। श्रमिकों की दक्षिण पूर्वी एशिया के देशों में कमी नहीं है वहां तो लाखों तथा करोड़ों श्रमिक सस्ती मजदूरी पर उपलब्ध हैं। खाद भी विभिन्न तरीकों से और विभिन्न वस्तुओं से प्राकृतिक साधनों द्वारा तैयार करली जाती है। पाखाना, पेशाब, गोबर, घर के कूड़े-करकट, वृक्षों की पत्तियों, मछलियों के बेकार तथा नष्ट प्रायः अंश, हरी खाद, सरोवरों तथा नदियों की मिट्टी, गढ़ों की सड़ी मिट्टी खार, लोना, जल वाले पौधों आदि से खाद तैयार की जाती है। साधारण प्राकृतिक रूप से जो बाढ़ आती है उससे उपज में सहायता मिलती रहती है। पशुओं के गोबर से अति उत्तम खाद बनाई जाती है। यद्यपि दक्षिणी पूर्वी एशिया के इन भागों में उपज बहुत अधिक की जाती है फिर भी प्रति व्यक्ति उपज कम ही होती है क्योंकि जनसंख्या बहुत सघन है इसी कारण अधिकांश जनता गरीब है। खाने वाले अधिक हैं और उनके लिये खाद्य सामग्री कम है।

चावल—मानसूनी प्रदेशों में धान की खेती ही सबसे अधिक प्रसिद्ध तथा आवश्यक है। धान की उपज की सफलता या असफलता पर करोड़ों प्राणियों का जीवन निर्भर करता है। चावल संसार की सबसे बड़ी तथा सबसे अधिक मूल्यवान फसल है। संसार के समस्त चावल का मूल्य उतना ही होता है जितना कि गेहूँ तथा अन्य अनाजों का मिलकर होता है। जापान में कृषि वाली भूमि के आधे से अधिक भाग में धान की खेती होती है। चीन तथा भारतवर्ष में कृषि वाली भूमि के एक-चौथाई भाग में अधिक भूमि में धान की उपज की जाती है। प्रत्येक स्थान पर जहां सिंचाई के साधन हैं, डेल्टों में, बाढ़ियाल वाले मैदानों में, तटीय प्रदेशों में, नदियों की तलहटी में, तालों तथा झीलों की भूमि में तथा अन्य नीची भूमि में जहां कहीं भी पानी की अधिकता है वहां पर धान की खेती होती है। अनेकों शुष्क पर्वतीय जिलों में चावल की उपज की जाती है यद्यपि ऐसे स्थानों पर नीची भूमि से आधा उपज होती है।

चूंकि दक्षिणी पूर्वी एशिया की आबादी बहुत घनी है इसलिये वहां पर गुजारे के लिये धान की फसल का होना आवश्यक है। धान एक ऐसा अन्न है कि वह जल्दी खराब नहीं होता है। उसके ऊपर एक प्रकार का मजबूत छिलका होता है जिसे निकालने के बाद उसमें चावल निकलता है। चूंकि इन प्रदेशों में गल्ले को रखने के लिये सुरक्षित कोषागार कम हैं इसलिये वर्षा तथा गरमी और सरदी से इस अन्न की विशेष रक्षा करने की आवश्यकता नहीं होती है और बोरों में भर कर यह घरों में या कोषागारों में

रख दिया जाता है। भारत वर्ष में तो घरों में यूँ ही धरती की फर्श पर साठी धान ज्यों का त्यों रखा रहता है। इसके अलावा बखारी तथा कोठों या गाड़ आदि में रखा जाता है और खराब नहीं होता है। जब कभी भी इसके प्रयोग की आवश्यकता पड़ी तभी इसे मूसल से कांड़ कर चावल भूसी से अलग कर लिया जाता है। अब तो चावल कूटने की चक्कियां भी प्रायः सभी स्थानों पर हो गई हैं। ढेकियों में भी चावल कूटने-कांड़ने का काम किया जाता है। चावल की भूसी जलने के बाद अच्छी खाद का काम देती है। इसमें जो कना निकलता है वह पशुओं को खिलाया जाता है। चावल की रोटी नहीं बनाई जा सकती है। इसको उबाल कर खाया जाता है। उबालने से इसकी मात्रा बहुत बढ़ जाती है जिससे खाने में यह अधिक टिकता है। गेहूँ की भांति यह अधिक शक्ति वर्धक तो नहीं होता है परन्तु टिकाऊ अधिक होता है।

धान कई प्रकार का होता है। भारतवर्ष में मसल मशहूर है कि धान-पान और ब्राह्मण की जातियों को नहीं पूछना चाहिये क्योंकि इनकी जातियां बहुत अधिक होती हैं और सारी की सारी जातियों का ज्ञान करना कठिन है। जहां पर जो धान होते हैं वहां के निवासियों को उनका ज्ञान भली भांति होता ही है। सभी प्रकार के धानों को अधिक तापक्रम, गरमी, पानी और वर्षा की आवश्यकता होती है। कुछ धान ऐसे होते हैं जो ६८ अंश ताप के नीचे वाले स्थानों नहीं पैदा होते हैं और उनके बढ़ने वाले काल में तापक्रम ऊंचा होना चाहिये! दक्षिण पूर्वी एशिया के क्षेत्रों में जहां पर धान की खेती के योग्य भूमि वर्तमान है वहाँ पर भीषण वर्षा के अभाव में धान की खेती केवल सीमित क्षेत्र में ही जाती है। धान की फसल के लिये साल में कम से कम ५० इञ्च वर्षा की आवश्यकता होती है और जब तक इसका पौधा बढ़ता रहता है तब तक प्रतिमास में कम से कम ५ इञ्च वर्षा होती रहनी चाहिये। नीची भूमि में उपजने वाले धान के लिये केवल धरती में ही पानी

गेहूँ
चावल
राई
मकई
ज्वार बाजरा

भोजन का प्रधान अन्न

नहीं चाहिये वरन् पौधे के ऊपर भी पानी की आवश्यकता होती है। इसी कारण बहुधा धान के खेतों में समीपवर्ती स्थानों के पानी से भर दिया जाता है। ऊंचे स्थानों पर धान की उपज करने के लिये अधिक वर्षा की आवश्यकता पड़ती है। यदि वर्षा में कमी हुई तो उपज की कोई आशा नहीं रहती है और पौधे सूख जाते हैं उनमें बालें नहीं आती हैं।

चावल उत्पन्न करने वाले देश प्रायः सघन जनसंख्या वाले देश होते हैं। इसके कई एक कारण हैं—

(१) चावल उगाने के काम में श्रमिकों की बड़ी संख्या में आवश्यकता पड़ती है क्योंकि इसके बोने, पौधे लगाने, खेत उगाने, काटने इत्यादि में हाथ से काम किया जाता है।

(२) प्रति एकड़ चावल की उपज अन्य अनाजों की अपेक्षा कई गुनी होती है इसलिये चावल द्वारा बोई हुई भूमि के प्रति एकड़ पर अपेक्षाकृत अधिक व्यक्ति निर्भर रह सकते हैं।

(३) एक ही खेत से वर्ष में दो से लेकर पांच फसलें उगाई जा सकती हैं।

(४) चावल में भोजन के आवश्यक तत्वों की प्रचुरता होती है और अपेक्षाकृत थोड़ी मात्रा ही मनुष्य के भोजन के लिये पर्याप्त होती है।

यों तो रङ्ग, आकार, स्वाद इत्यादि की विभिन्नता के आधार पर चावल की सैकड़ों जातियां हैं किन्तु मोटे तौर पर इसको दो कोटियों में विभाजित किया जा सकता है (१) दलदली अथवा मैदानी चावल, (२) पहाड़ी चावल। समार भर में उत्पन्न किये जाने वाले चावल का ७५ प्रतिशत पहले प्रकार का अर्थात् मैदानी चावल होता है। यह समतल भूमि पर जिस पर पानी भरा रहे अथवा बाढ़ आती हो बोया जाता है। खेतों के चारों ओर ऊंची डौल बना दी जाती है ताकि पानी बाहर न बह जावे। पहाड़ी चावल ऊंची भूमि पर अथवा पहाड़ी ढालों पर सीढ़ीदार खेत बना कर बोया जाता है। इन सीढ़ीदार खेतों में भी प्रत्येक क्यारी की डौल बना दी जाती है। साधारणतः ४००० फुट की ऊंचाई तक चावल की खेती की जाती है किन्तु हिमालय के ढालों पर तो ८००० फुट की ऊंचाई तक चावल बोया जाता है।

चावल उष्ण कटिबन्ध का पौधा है। यह दक्षिण-पूर्व एशिया में बहुत उगता है जहां काफी गर्मी तथा वर्षा प्राप्त होती है। मानसूनी प्रदेश चावल के लिये बड़े अनुकूल हैं।

चावल को उगने और बढ़ने के लिये औसत से ७० अंश गरमी चाहिये। जब पौधों में बाली निकल आती हैं तो पकने के लिये ८० अंश ताप की आवश्यकता होती है। उस समय नमी की आवश्यकता नहीं होती है। साधारणतः चावल को बढ़ने और पकने के लिये ४५ से ६५ इञ्च तक वर्षा की आवश्यकता है। कम वर्षा वाले स्थानों पर सिंचाई की जरूरत पड़ती है।

चावल के लिये पानी को अधिक समय तक धारण करने वाली धरती चाहिये अन्यथा जल जो पौधों का जीवन है भूमि के नीचे गहराई में पहुँच कर फसल के लिये प्राप्त न होगा। ऐसी धरती दलदली और चिकनी मिट्टी वाली होती है अतः नदियों के डेल्टा प्रदेश चावल की खेती के लिये आदर्श होते हैं। नदियों द्वारा लाई हुई मिट्टी भी चावल के लिये उपयुक्त होती है।

चावल उत्पन्न करने वाले देशों में दक्षिण-पूर्व एशिया का मानसूनी क्षेत्र प्रमुख है। यहां समार का ९५ प्रतिशत चावल उगाया जाता है। दक्षिण-पूर्व एशिया क्षेत्र में कुछ देश ऐसे हैं जहां बहुत चावल पैदा होता है किन्तु वहां की जन संख्या इतनी सघन है कि वहां की चावल की मांग की पूर्ति नहीं हो पाती। ऐसे देश चीन, जापान, भारत, लङ्का तथा मलाया हैं। इसी क्षेत्र में दूसरे प्रकार के देश वे हैं जहां चावल भारी पैदा होता है किन्तु जनसंख्या अपेक्षाकृत कम है इसलिये वहां से पड़ोसी देशों तथा दूरस्थ विदेशों को चावल भेजा जाता है। ऐसे देश ब्रह्मा, स्याम हिन्द चीन और पाकिस्तान आदि हैं।

प्राचीन औजारों की सहायता से लगातार भीषण परिश्रम करके तथा स के । और ध्यान के साथ धान के खेतों को जोता, बोया, उगाया और काटा जाता है। बसन्त ऋतु के आरम्भ में खेतों के चारों ओर

की मेंड़ों की मरम्मत की जाती है और उन्हें ऊंचा किया जाता है। जब प्रथम वर्षा होती है तो खेतों की जोताई होती है। जोताई का काम, भैंसों या बैलों द्वारा होता है। पहटा या हेंग द्वारा मिट्टी महीन तथा चूर की जाती है। अन्यत्र छोटे खेतों में इसी मध्य पौधे तैयार करली जाती हैं और जब पौधे के पौधे ६ इञ्च की ऊंचाई के हो जाते हैं तो उन्हें निकाल कर धान के खेतों में भीगी भूमि में एक-एक फुट की दूरी पर लगाया जाता है। उसके बाद खेत में पानी भर दिया जाता है। मौसम भर में तीन-चार बार खेतों में पानी भरा जाता है और खाद-पांस दी जाती है। पानी भरे खेतों को दो तीन बार निराया जाता है ताकि खराब घासें धरती की खूराक न खींच सकें। वर्षा के पानी के अभाव में तालाबों, नहरों या कुओं से खेतों को पानी से भर दिया जाता है। शुष्क ऋतु के आ जाने पर जैसे ही धान पकने लग जाते हैं तो खेतों से पानी निकाल दिया जाता है। ताकि जमीन सूख कर सख्त हो जाय। उसके बाद हंसियों से धान की कटाई होती है और बडलों में बांध कर उन्हें सूखने के लिये खलिहान में पहुँचाया जाता है।

खलिहान में उन्हें पीट कर धान निकाला जाता है। अनेकों स्थानों पर भैंसों तथा बैलों की दायों से दायां जाता है और इस प्रकार धान अलग कर लिया जाता है।

यांगटिसी जैसी घाटियों के ग्रीष्म ऋतु वाले प्रदेशों में धान की दो फसलें काटी जाती हैं। पहली फसल बसंत काल में बोई जाती है और जुलाई में उसे काटते हैं। दूसरी फसल जून जुलाई मास में प्रथम वर्षा होने पर बोई जाती है और नवम्बर मास में काटी जाती है। इस प्रकार दो फसल तैयार करली जाती हैं। दो या दो से अधिक फसलों के तैयार का काम उन्हीं क्षेत्रों में किया जाता है जहां पर अति प्राचीन कालीन वासी है।

वर्षा कालीन तथा शुष्क ऋतु वाले

अन्य क्षेत्र—गहरी खेती वाले मानसूनी प्रदेशों में यद्यपि धान की खेती अधिक होती है फिर भी दक्षिणी पूर्वी एशिया, चीन, मध्य तथा पश्चिमी भारत, पाकिस्तान आदि देशों के लोग चावल बहुत कम खाते हैं इसलिये चावल के अलावा यह अन्य प्रकार की फसलें तैयार करते हैं। साधारणतया सभी मानसूनी भागों में भारत वर्ष की भांति ही तीन फसलें उगाई जाती हैं। पहली फसल खरीफ वाली होती है, दूसरी रबी वाली और तीसरी जायदा या अधिक फसल कहलाती है।

खरीफ की फसल में वे फसलें तैयार की जाती हैं जिनके पौधों को बढ़ने के लिये, गरमी तथा वर्षा की जरूरत पड़ती है। इसलिये इस फसल में बाजरा, ज्वार, अरहर, उर्द मूंग, तिल, सकरकन्द, खीरा, ककड़ी, टमाटर, मूंगफली, साग भाजियां आदि बोये जाते हैं यह फसल अगहन (नवम्बर) के मास में काटी जाती है। केवल अरहर ही एक ऐसा पौधा है जो खरीफ के फसल के साथ बोया जाता है परन्तु रबी की फसल के साथ काटा जाता है।

रबी या बैसाखी फसल में उन फसलों को बोने तथा तैयार करने का काम होता है जिन्हें अधिक पानी की आवश्यकता नहीं है। उन्हें उगने तथा बढ़ने के लिये थोड़ी नमी चाहिये। शीत काल में ये पौधे बढ़ते हैं और जब बालें आ जाती हैं तो ग्रीष्म काल का आगमन हो जाता है। गरमी पाकर फसल पकती हैं और तब चैत मास में फसल काटी जाती है।

गेहूँ के लिये उगते समय ठंडी तथा नम जलवायु चाहिये पकते समय गर्म तथा शुष्क अर्थात्, मेघरहित वातावरण आवश्यक है। गेहूँ की फसल के लिये १५ से ३५ इञ्च तक वार्षिक वर्षा पर्याप्त होती है। अधिक वर्षा पौधे के लिये हानि कारक है। जहां बहुत कम वर्षा होती है वहाँ सिंचाई करके गेहूँ उगाया जाता है क्षेत्र विशेष के तापक्रम, वाष्पीकरण की रफ्तार इत्यादि के अनुसार गेहूँ के लिये न्यूनाधिक वर्षा की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिये भूमध्य सागरीय क्षेत्रों में १० इञ्च वार्षिक वर्षा ही गेहूँ के लिये पर्याप्त होती है तथा भारत जैसे उष्ण कटिबंधीय भागों में गेहूँ की खेती के लिये २० इञ्च से ४० इञ्च तक वार्षिक वर्षा की आवश्यकता है। गेहूँ के लिये उगते समय औसत तापक्रम ५० अंश होना चाहिये किन्तु पकने के समय ६० तथा ७० अंश तापक्रम होना चाहिये।

यदि अन्य सभी सुविधायें प्राप्त हों तो अनेक प्रकार की मिट्टियों में गेहूँ की खेती की जा सकती है किन्तु भारी दुमट तथा हल्की चिकनी मिट्टी गेहूँ के लिये आदर्श मिट्टियां हैं। काली या अधिक भूरी मिट्टी जो स्टेपी तथा प्रेरी प्रदेशों में मिलती हैं गेहूँ के लिये उत्तम होती है। भूमि समतल होनी चाहिये ताकि कृषि के औजारों में सुविधा प्राप्त हो परन्तु पानी के निकास के लिये समुचित ढाल होना चाहिये। गेहूँ की खेती से भूमि के नपजाऊ तत्वों का बड़ा व्यय होता है अतः खाद देने का उत्तम प्रबन्ध किया जाना चाहिये। शोरा तथा, अमोनियम सलफेट की रासायनिक खाद गेहूँ के लिये बहुत लाभ दायक है। फसलों के हेर-फेर की व्यवस्था की जानी चाहिये।

जौ—एक शीतोष्ण कटिबन्धीय अन्न है किन्तु यह गेहूँ की अपेक्षा अधिक विस्तृत क्षेत्र पर बोया जाता है। यह कम तापक्रम में भी उगते हैं और उष्ण क्षेत्रों में भी पैदा किया जाता है। इसलिये ७० अक्षांश से उष्ण कटिबंध में १० अक्षांश तक जौ के क्षेत्रों का विस्तार मिलता है। यह अधिक नमी में नहीं पक पाता है इसलिये अधिक वर्षा वाले भागों में नहीं उगाया जा सकता है। गेहूँ की अपेक्षा साधारण भूमि तथा शुष्क जलवायु में भी यह पौधा पैदा होता है। किसी भी प्रकार की मिट्टी में जौ की खेती की जा सकती है। क्षार-प्रधान भूमि में भी जौ पैदा हो जाता है किन्तु अच्छे निकास वाली भूमि में जहां की मिट्टी उपजाऊ हो खूब जौ पैदा होता है। गेहूँ की अपेक्षा जौ की उपज ५० प्रतिशत अधिक होती है और अपेक्षाकृत कम समय में पकता है। कम से कम ६० दिन में इसकी फसल तैयार हो जाती है।

रबी या वैसाखी फसल में गेहूँ, जौ, चना, मटर, मसूर अलसी, सरसों, आलू आदि फसलें उगाई जाती हैं। इसके अतिरिक्त तम्बाकू, कपास, गन्ना, ईख, तरबूज खरबूजा, मसाले, साग भाजियां तथा फल फलारी की भी खूब उपज की जाती है जिससे खाद्य सामग्री और नकद दाम दोनों की प्राप्ति होती है।

जापान, चीन, कोरिया तथा मध्य और उत्तरी भारत वर्ष में धान के अतिरिक्त अन्य प्रकार की उपज बहुत बड़ी मात्रा में की जाती हैं। उत्तरी भारत और पञ्जाब में नहरों का प्रयोग सिंचाई के लिये होता है जिससे खेती में बड़ी सुविधा मिलती है। भारत वर्ष में वर्षा के अधिक होने या न होने तथा वर्षा के असामयिक होने से बहुधा फसल खराब हो जाती है। दक्षिणी एशिया के देशों में गेहूँ की उपज अन्य प्रकार के अन्नों से कम की जाती है क्योंकि यहां की नमी तथा ताप इसकी उपज के लिये कम अनुकूल है। पञ्जाब, गङ्गा की ऊपरी घाटी में गेहूँ के उत्पादन वाले बड़े-बड़े क्षेत्र स्थित हैं। इन क्षेत्रों में प्रायः आधा गेहूँ सिंचाई द्वारा उगाया जाता है। जब मानसूनी वर्षा समाप्त हो जाती है तो अक्तूबर मास में गेहूँ बोया जाता है और पञ्जाब में अप्रल या मई महीने में काटा जाता है। अधिक दक्षिणी प्रदेशों में फरवरी या मार्च के महीने में इसकी कटाई होती है। दक्षिणी-पूर्वी एशिया में पञ्जाब ही केवल मात्र क्षेत्र है जहां पर गेहूँ व्यवसाय के लिये उत्पन्न किया जाता है। किसानों के मध्य कृषक भूमि की उपज में जौ का स्थान भी गेहूँ के जैसा ही है।

तम्बाकू

तम्बाकू—कोलम्बस ने नई दुनिया की खोज के समय रेड इंडियन लोगों को तम्बाकू का प्रयोग करते देखा था। वहां से इसका प्रचार योरुप तथा अन्य देशों में हुआ प्रारम्भ में पोप, पादड़ी और राजाओं ने इसके प्रयोग पर पाबन्दियां लगाई किन्तु इसका प्रचार आज समस्त सभ्य संसार और जङ्गली जातियों में है। इसकी पत्तियों का प्रयोग खाने धूम्रपान तथा सूंघने के लिये तो होता है, इस पौधे के अवशिष्ट भाग घोड़े मारने तथा खाद के काम भी आते हैं।

तम्बाकू एक व्यापारिक फसल है और इसके क्षेत्र का विस्तार इतना है जितना कदाचित किसी भी व्यापारिक फसल का न होगा। यूँ तो यह उष्ण कटिबन्ध का पौधा है किन्तु शीतोष्ण कटिबन्ध के भागों में भी पैदा हो जाता है। इसका जीवन काल बहुत छोटा है अतः शीतोष्ण कटिबन्ध की गरमी के मौसम में जब कि पाला न पड़े इसकी खेती की जाती है। ऐसे स्थानों में जहां पानी का निकास न हो इसकी खेती नहीं की जा सकती क्योंकि खड़ा हुआ पानी

भी इसका उतना ही घातक शत्रु है जितना पाला। इसके लिये जिस भूमि में पोटाश की मात्रा अधिक हो आदर्श भूमि होती है। इसके लिये पर्याप्त वर्षा और काफी गरमी चाहिये। भूमि, जलवायु तथा कृषि के ढङ्गों की विभिन्नता से तम्बाकू की अनेक जातियां प्रकार तथा श्रेणियां हैं। भारतवर्ष में भारतीय तथा चीन का उत्पादन प्रायः समान सा रहता है और संसार में इनका द्वितीय स्थान है। उत्तमता की दृष्टि से सुमात्रा तथा फिली पाइन की तम्बाकू श्रेष्ठ मानी जाती है।

भारतवर्ष में तम्बाकू की खेती लगभग १० लाख एकड़ भूमि में होती है और प्रति वर्ष करीब साढ़े

१५—तम्बाकू

जाति की तम्बाकू गरम लू और तेज धूप में होती है।

एशिया के उष्ण कटिबन्धीय भागों में पूर्वी द्वीप समूह तथा भारतवर्ष और शीतोष्ण प्रदेशों में, दक्षिणी चीन तथा जापान और फिलीपाइन द्वीप समूह तम्बाकू के उत्पादन में उल्लेखनीय हैं। दक्षिणी एशिया के सभी देश तम्बाकू उत्पन्न करते हैं। भारत तीन लाख टन तम्बाकू उत्पन्न की जाती है। तम्बाकू के उत्पादन में हमारे देश का द्वितीय स्थान है किन्तु कभी-कभी हमारा उत्पादन संयुक्त राज्य अमरीका के बराबर तक पहुंच जाता है। इतना अधिक उत्पादन होते हुये भी हमारे देश से तम्बाकू का निर्यात नहीं होता। जनसंख्या सघन है और प्रति व्यक्ति पीछे

केवल ३०८ पौंड तम्बाकू का औसत पड़ता है अतः तम्बाकू की सर्वप्रियता के कारण सब का सब देश में ही खप जाता है। यही नहीं विदेशों से सिगार तथा सिगरेट काफी आयात प्रति वर्ष किया जाता है। हमारे देश में दक्षिणी भारत तम्बाकू के लिये प्रसिद्ध है। यहां वर्जीनिया जाति की तम्बाकू उत्पन्न की जाती है। मदरास, बम्बई तथा बिहार राज्य तम्बाकू के उत्पादन में अग्रगण्य हैं। इनके अतिरिक्त मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, बङ्गाल, उड़ीसा, पञ्जाब इत्यादि राज्यों में भी तम्बाकू उत्पन्न की जाती है।

चीन देश में तम्बाकू दक्षिणी तथा मध्य भाग में पैदा की जाती है और यहां पर भारतवर्ष के लगभग बराबर ही उत्पादन होता है किन्तु चीन में तम्बाकू की खपत बहुत अधिक है इसलिये देश की मांग भी पूरी नहीं हो पाती।

फिलीपाइन द्वीप की तम्बाकू बहुत बढ़िया होती है। यहां उत्तरी भाग में लूजन प्रान्त में कागयान नदी की उपजाऊ घाटी में तम्बाकू पैदा की जाती है। मनीला नगर सिगार बनाने का केन्द्र है। यहां से तम्बाकू निर्यात की जाती है।

सुमात्रा में तम्बाकू उत्तम श्रेणी की उत्पन्न होती है। यहां की उत्पन्न तम्बाकू सिगारों के ऊपर लपेटने के लिये सर्वश्रेष्ठ गिनी जाती है। इस टापू पर पूर्वी द्वीप समूह के अन्य द्वीपों से तम्बाकू एम्सटर्डम नगर भेज दी जाती है जहां से डच कम्पनी इसका निर्यात अन्यान्य देशों को करती है। हालैंड का यह नगर तम्बाकू के व्यापार का इतना बड़ा केन्द्र हो गया है कि दक्षिणी-योरुप के देशों से भी तम्बाकू यहां भेज दी जाती है और यहां से फिर अन्य देशों को जाती है।

कृषि में पशुओं का स्थान

प्राचीन देशों में जहां पर गहरी खेती होती है वहां पर किसानों के मध्य पशु-पालन का कार्य बहुत कम संख्या में किया जाता है। पशु प्राकृतिक दशा में उसी प्रकार अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं जिस प्रकार कि वे सदियों पूर्व करते थे, उनकी ओर किसान को विशेष ध्यान देने का बहुत कम समय मिलता है। चूंकि वैज्ञानिक रूप से पशुओं को उत्पन्न करने तथा पालने के साधन कम हैं और पशु सम्बन्धी बीमारियां अधिक होती हैं इसलिये किसान पशु पालन का व्यवसाय बहुत नहीं करते हैं।

मानसूनी प्रदेशों की यह विशेषता है कि उनमें गोमांस दुग्धशाला के लिये पशु नहीं पाले जाते हैं। भेड़-बकरियों तथा घोड़ों को भी कम पालते हैं। भारतवर्ष में धार्मिक दृष्टि से मांस प्रयोग नहीं किया जाता है इसलिये मांस के लिये पशु नहीं पाले जाते है। चराई वाले स्थानों पर भेड़ बकरियों के पालने का काम होता है। यूँ तो दक्षिणी-पूर्वी एशिया के समस्त भागों में और विशेषतया भारतवर्ष में दूध और घी प्राप्त करने के लिये प्राय. सभी किसान परिवारों के मध्य गाय, भैंस, बकरी का पालन पोषण होता है। गाय से दूध और हल चलाने के लिये बैल मिलते हैं। भैंस से दूध घी मिलता है और हल चलाने के लिये भैंसा मिलता है। बकरी का पालन दूध तथा मांस के लिये किया जाता है। भेड़ों से ऊन प्राप्त होता है। भेड़ और बकरियां मांस और ऊन के हेतु पाली जाती है। घास के मैदानों में जहाँ चराई का अच्छा साधन है वहाँ पर भेड-बकरियां अधिक पाली जाती है परन्तु अन्य स्थानों पर इनका कम पालन-पोषण होता है। भारतवर्ष में प्राय: प्रत्येक गांव में गड़रिये जाति वाले लोग भेड़-बकरियां पालते हैं। इन पशुओं से वह ऊन, दूध और मांस प्राप्त करते हैं। पशुओं की खरीद-फरोख्त का भी काम करते हैं। खेतों को जोतते तथा तैयार करते समय वह खेतों में रात के समय अपने गल्लों को बैठाकर रात भर पालते हैं और किसानों से एक बीघा के पीछे तीन से छः रुपया प्रति रात के हिसाब से मूल्य प्राप्त करते हैं। गायों का दूध हल्का तथा विशेष रूप से लाभ दायी होता है इसलिये वह पीने और खाने में प्रयोग किया जाता है। भैंस का दूध गाढ़ा, भारी और भारी होता है। इसलिये उससे दही, पनीर, मट्ठा और घी तैयार किया जाता है।

गर्म तथा विशेष नम स्थानों पर, पर्वतीय स्थानों में तथा अन्य शुष्क प्रदेशों में और ग्रामीण क्षेत्रों में भेड़ बकरियां पाली जाती हैं। भारतवर्ष में समस्त संसार की बकरियों का एक-चौथाई भाग वर्तमान हैं। दक्षिणी पूर्वी एशिया में समस्त संसार की बकरियां का दो बटा पांच भाग पाया जाता है। बकरियों के पालन-पोषण तथा देख-भाल में अधिक मेहनत नहीं पड़ती है। व्यय भी कम पड़ता है। इनसे दूध तथा मांस प्राप्त होता है और खाद मिलती है।

भारतवर्ष में सुअर कम पाले जाते हैं। फिर भी गांवों में पाखाना खाने के ध्यान से सुअर पाले जाते हैं। दक्षिणी-पूर्वी एशिया में समस्त संसार का एक तिहाई सुअरों का भाग पाया जाता है। चीन में सुअर बहुत अधिक पाले जाते हैं। इनसे खाद-पांस, मांस आदि प्राप्त होता है। चीनी लोग सुअर का मांस बहुत पसंद करते हैं। वहां से मांस बाहर भी भेजा जाता है। ग्रामीण क्षेत्रों में सुअर गन्दगी वाले पदार्थों तथा पाखाना आदि को खाकर जीवित रहते हैं। चीनी किसान परिवार में तथा अन्य देशों में (भारत छोड़ कर) प्रति परिवार के पीछे पांच छ: सुअर घर के अपने प्रयोग के लिये पाले जाते हैं क्योंकि बाजार में इनकी बिक्री सम्भव नहीं है। चीन के शंघाई नगर में ३५ लाख की आबादी में १० लाख से ऊपर सुअरों की खपत होती है। सुअरों की खाद अन्य खादों से प्राचीन देशों में अधिक उपयोगी मानी जाती है। इसलिये इससे जो खाद बनती है वह बहुत मूल्यवान तथा उर्वरा शक्ति को बढ़ाने वाली मानी जाती है। सुअर की चर्बी अन्य पशुओं की चर्बी से अधिक सस्ती होती है इसलिये जो लोग सुअर का मांस खाते हैं वह घी के स्थान पर सुअरों की चर्बी का प्रयोग करते हैं। दक्षिणी-पूर्वी एशिया में सुअर मांस के लिये ही पाले जाते हैं, केवल जापान, भारत वर्ष तथा पाकिस्तान में सुअर का मांस नहीं खाया जाता है। भारतवर्ष में केवल पासी जाति के लोग

[illegible] हैं।

[illegible] हैं। [illegible] से जो [illegible] घरों में [illegible] भी भेजा [illegible] संयुक्त राज्य अमरीका भी [illegible] जाता है।

स्थायी खेती—हजारों तथा लाखों वर्षों से [illegible] निवासी [illegible] माता से अपनी [illegible] चले आ रहे हैं। जो उपज धरती [illegible] करते हैं, [illegible] कर उसे सारी की सारी [illegible] लेते हैं। खेती करने में [illegible] जैसे जैसे आबादी बढ़ी है इन देशों के निवासियों ने प्रत्येक ढङ्ग से उपज बढ़ाई है और जमीन से अधिक से अधिक उपज करके इन्होंने अपना जीवन निर्वाह किया है। उपज बढ़ाने के सम्बन्ध में इन्होंने कोई भी रास्ता नहीं छोड़ा है। अब इन देशों में अपनी को बनाये रखने तथा प्रकृति द्वारा जमीन की उपज को नष्ट न होने देने का भरसक प्रयास करते रहते हैं। इन प्रदेशों में चार मास तक वर्षा होती है। वर्षा भीषण रूप से होती है जिससे उपजाऊ धरातल को मिट्टी बह जाती है और गड्ढे तथा नालियां बन जाती हैं जिनको प्रति वर्ष बराबर करना तथा पाटना और घास-पात देना पड़ता है। बहुधा बाढ़ आती है जिससे उगी हुई सारी की सारी फसल नष्ट हो जाती है और गाँव के गाँव बह जाते हैं। बाढ़ में करोड़ों रुपयों की हानि होती है। हजारों और लाखों पशु बह तथा मर जाते हैं। हजारों की संख्या में लोग भूखों मरने लगते हैं और निर्धन हो जाते हैं। बाढ़ के समाप्त होने पर किसान पुनः उनकी जोताई करते हैं और उसमें नई फसलें बोते हैं। प्रत्येक बाढ़ के पश्चात् एक नई मुसीबत तथा समस्या किसानों के सामने आ खड़ी होती है। बाढ़ों से एक लाभ यह अवश्य ही होता है कि भूमि की मिट्टी बदल जाती है। धरती के धरातल पर जो बीमारी वाले कीड़े मकोड़े होते हैं उनका नाश हो जाता है। नई कछारी मिट्टी पड़ जाती है जिसमें फिर पहले से अधिक अच्छी उपज होती है। परम्परागत से मानसूनी प्रदेशों का निवासी अपने गुजारे के लिये अन्न जमीन से उत्पन्न करता चला आ रहा है।

तैयार करने का साधारण ढंग यह है कि उस खेत में कई बार हल से जोता जाता है यहां तक कि मिट्टी बहुत बारीक हो जाती है। कभी कभी तो किसान एक खेत में १५ बार तक हल से जोतता है किन्तु आठ या दस बार हल से जोतना काफी होता है। यह हल बरसात के दिनों में जोता जाता है। इसके बाद सितम्बर और अक्तूबर के महीने के बाद तो एक दो बार ही हल जोता जाता है। बरसात के पश्चात खेत में पटेला या हेंगा फेरा जाता है। यदि खेत सिंचाई वाली भूमि में होता है तो हल दो या तीन बार चलाने से ही काम चल जाता है इसके बाद ढीले फोड़ने के लिये पटेला चलाया जाता है।

जिन भागों में काली मिट्टी है जैसे मध्य भारत, बुन्देलखण्ड, मध्य प्रदेश और बम्बई वहां पर बिल्कुल दूसरे ढंग से खेत तैयार किये जाते हैं। खेत में तैयार करने के लिये हल के स्थान पर बखर काम में लाया जाता है। यह इन स्थानों के लिये ही काम में आता है। इसमें २० इञ्च लम्बा और ४ इञ्च चौड़ा फलक लगा होता है। इस फलक के दोनों सिरे एक तख्ते में लगे हुये होते हैं। यह पृथ्वी में करीब आठ इञ्च गहरा चला जाता है और मिट्टी को चूरा कर देता है। उसके बाद पटेला चलाने की जरूरत नहीं रहती है वह बराबर अप्रैल या मई के महीने में चलाया है। इसके बाद फिर एक-दो बार सितम्बर के महीने में चलाने की आवश्यकता पड़ती है। इसके बाद फिर बोने से पहले अक्तूबर में बखर और चलाया जाता है।

बोने का समय—बोने का समय प्रायः अक्तूबर से लेकर बीच नवम्बर तक है। उत्तरी-पश्चिमी प्रान्त तथा उसके पास के पंजाब के भाग में गेहूँ कुछ बाद मे बोया जाता है नहीं तो सारे भारतवर्ष में बोने का समय लगभग यही है।

खाद देने का समय—गरमी की ऋतु में खेतों के अन्दर खाद के ढेर लगा दिये जाते हैं। और वहीं पड़े रहते हैं। जब वर्षा होती है और खेत जोते जाते हैं और तीन-चार बार की जोताई हो जाती है तो सितम्बर मास में वर्षा के अन्त में खाद खेत भर में छींट दी जाती है और फिर खेत को जोत कर खाद को खेत की मिट्टी में मिला दिया जाता है। वर्षा के अन्त समय में खाद मिट्टी में देने का मुख्य कारण यह है कि खाद का अंश भीषण वर्षा से खेत से बह कर बाहर न जाय।

अब तो भारतवर्ष में भी लोग कृत्रिम खाद का प्रयोग करने लगे हैं। कृत्रिम खाद गेहूँ के पौधों को उगने के बाद जब पौधे प्रायः एक फुट के हो जाते हैं तो ५ सेर एक बीघे के हिसाब से छींटी जाती है। परन्तु यदि सिंचाई का साधन नहीं होता है या वर्षा नहीं होती तो इस खाद से पौधों के जल जाने का भय रहता है।

गेहूँ के बहुतेरे लोग वर्षा के आरम्भ काल में परदेशी मूंग या सनई खेत में बो देते हैं और फिर भादों की भीषण वर्षा होने पर, जब ये पौधे कुछ बड़े हो जाते हैं, तो इन्हें जोत कर मिट्टी में मिला दिया जाता है। ये पौधे जोत कर पानी के प्रभाव से मिट्टी में मिल जाते हैं और खाद का काम देते हैं।

बोने की विधि—गेहूँ तीन प्रकार से बोया जाता है—(१) बखेर या छींट कर, (२) हलकी लीक या कुड़ में डाल कर, (३) अधिक गहराई में डाल कर (१) बखेरने में बीज को हाथ से खेत में छींट दिया जाता है जिससे बीज उससे पूरी तरह ढक जाय। इस प्रकार बीज मिट्टी में एक गहराई तक नहीं रहता। कभी कभी बीज पृथ्वी के ऊपर ही पड़ा रहता है जहां पर वह जमता नहीं और प्रायः चिड़ियां उन्हें उठा कर खा जाती हैं। इसके अलावा बीज भी सारे खेत में एक सा नहीं रहता है। इस लिये इस विधि को बीज बोने के काम में नहीं लाना चाहिए। किन्तु फिर भी भारतवर्ष में जहां कहीं गहूँ उत्पन्न होता है यह विधि काम में लाई जाती है। साधारणतया इस प्रकार बीज उन्हीं स्थानों पर बोया जाता है जहां पर मिट्टी काफी नम होती है। नम मिट्टी में इस प्रकार बोने से हानि कम होती है। इस विधि से गेहूँ बोने के लिये प्रति एकड़ ४० से ५० सेर तक गेहूँ की आवश्यकता होती है।

(२) इस विधि से गेहूँ बोने में बीज को हल से बनी लीक में डाल दिया जाता है। बीज बोने वाला हल के पीछे-पीछे चलता। इस प्रकार बीज बोने का काम बच्चे या स्त्रियां करती हैं और आदमी हल चलाता है। यह विधि बीज छितराने वाली विधि से

तो अच्छी है लेकिन इसमें परिश्रम अधिक पड़ता है और एक दिन में एक हल से कम जमीन बोई जाती है। बीज बोने के बाद बीज ढकने के लिये पटेला फेरने की आवश्यकता हो जाती है, अधिकतर तो बीज बोने वाले के पैरों से ढाई गई मिट्टी से ही ढक जाता है। इस प्रकार बीज बोने के लिये प्रति एकड़ ३० से ४० सेर तक बीज की आवश्यकता पड़ती है। इस प्रकार से पंजाब के सिंचाई वाले भागों में तथा बम्बई प्रान्त सिंचाई वाले भागों में बीज बोया जाता है।

(३) गहराई तक बीज बोने की विधि भारत के भिन्न भागों में भिन्न प्रकार से है। उत्तर प्रदेश और पंजाब में इस विधि से बीज बोने के लिये बांस का एक नल का बना रहता है। इस नल के में बीज हाथ से डाला जाता है। वह बीज ठीक हल के नीचे के भाग के पास मिट्टी की बनी फाई में पड़ता है। बीज हल के चलने से गिरी मिट्टी से दब जाता है। इस प्रकार बीज बोने के लिये दो आदमियों की आवश्यकता पड़ती है। एक आदमी हल और बैल चलाता रहता है और दूसरा आदमी कीप में से बीज डालता रहता है। वह बीज नल के द्वारा ठीक स्थान पर गिरता है। बीज डालने का काम प्रायः स्त्रियां करती हैं। बांस के नल के ऊँचा नीचा करके यह ठीक किया जा सकता है कि बीज कितनी गहराई तक डाला जाय। इस प्रकार गेहूँ बोने में प्रति एकड़ २५ से ३० सेर तक बीज की आवश्य-

१६—धान, चाय गेहूँ और कहवा के पौधे

कता होती है। कहीं-कहीं इससे अधिक बीज डालते हैं।

मध्य प्रदेश तथा बरार में बीज बोने के लिये ३ छेद वाली नली काम में लाई जाती है। इसे वहां की भाषा तिफन कहते हैं। इसका मुंह तो चौड़ा कीप जैसा होता है किन्तु नीचे का नल का एक के स्थान पर तीन नलियों का बना रहता है। इस कीप में हाथ से बीज डाला जाता है और यह तीन नलियों में से गिरता है। इस प्रकार यह नल का एक बार में तीन लीकों में बीज डालता है। इस प्रकार बीज बोने के लिये प्रति एकड़ तीस सेर बीज काफी होता है।

अब तो बीज बोने के लिये पाश्चात्य देश की बनी मशीन काम में लाई जाने लगी है। नलों की शक्ति के अनुसार बड़ी या छोटी मशीन काम में लाई जा सकती है। बैलों के लिये जो मशीन प्रायः काम में लाई जाती है वह एक बार में पांच या छः पंक्ति को बो सकती है। यह मशीन बीज को भी बराबर गहराई तक एक सा फैलाती है किन्तु जो खेत बहुत अच्छे जुते हुए हों उन्हीं में यह ठीक-ठीक काम करती है।

इस प्रकार इन तीनों प्रकार की विधियों में नल के से बीज बोने की विधि सबसे उत्तम है। इस प्रकार बीज बोने से फसल अच्छी होती है। बीज लगभग एक गहराई तक पड़ता है, इसलिये सारे खेत में बीज एक साथ ही जमता है। इस विधि से बोने में प्रति एकड़ बीज भी कम खर्च होता है। बीज एक खास तथा नियत गहराई तक ही बोना चाहिये क्योंकि जड़ें मिट्टी में एक खास गहराई तक रहती हैं। बीज चाहे किसी तरह क्यों न बोया जाय यदि जड़ों के रहने की गहराई पर बीज डाला जायगा तो बीज की जड़ें आसानी से फैल सकेंगी। जब बीज जमता है तो तीन या इससे अधिक जड़ें निकलती हैं। प्रारम्भ में स्थायी जड़ें इन पहली निकली जड़ों से ऊपर फैलती हैं और ये मिट्टी के धरातल से लगभग एक या दो इञ्च नीचे रहती हैं। यदि बीज अधिक गहराई तक बोया जायगा तो जड़ों को इस स्थान तक आने में पर्याप्त कार्य करना पड़ेगा जिसके कारण फसल को हानि पहुँचेगी।

फसल की देखभाल—जो जमीन सिंचाई की नहीं है वहां पर फसल को बोने के बाद अधिक काम नहीं करना पड़ता लेकिन जहां जमीन सिंचाई की हैं वहां खेत में क्यारियां बनानी पड़ती हैं, पञ्जाब तथा उत्तर प्रदेश में बीज जमने से पहले ही क्यारियां बना दी जाती हैं। अब फसल में कितनी बार पानी देना चाहिये यह मौसम तथा जमीन पर निर्भर रहता है। पञ्जाब में बीज बोने के बाद दो या तीन बार सिंचाई जाती है। उत्तर प्रदेश में एक से तीन तक और राजस्थान में बहुत से भागों में छः बार तक सिंचाई की जाती है।

गेहूँ की फसल को निराने की अधिक आवश्यकता नहीं पड़ती, गेहूँ के खेत में निराने की चीज केवल बथुआ है। कभी-कभी फसल के पौधे सीधे न रह कर गिर जाते हैं। इसका कारण नल का कमजोर हो जाना या जड़ों का खराब हो जाता है। इससे उपज कम होती है। भारतवर्ष में कहावत प्रसिद्ध है। धान गिरे कमैते का और गेहूँ गिरे अभागे का, पौधों के गिरने का कारण अधिकतर मिट्टी के अधिक गीले रहने के कारण होता है। अगर फसलें प्रारम्भ में फसल गिर जाती है तो बाद में बाल के सीधा होने की की सम्भावना रहती है। यदि फसल पकने के समय गिरती है तो उसके सीधा होने की सम्भावना नहीं रहती। प्रायः जोर के मेंह आंधी या ओलों से इस प्रकार फसल गिर जाती है।

फसल काटना तथा गाहना—मध्य भारत तथा मध्य प्रदेश में मार्च से फसल काटनी शुरू होती है। उत्तर प्रदेश में मार्च के अन्त से होकर अप्रैल के मध्य तक, पञ्जाब में अप्रैल के मध्य से लेकर मई तक कटती है। उत्तरी पश्चिमी सीमा प्रान्त में फसल और देरी में काटी जाती है। प्रायः जून के प्रारम्भ से लेकर इस महीने के अन्त तक फसल काट ली जाती है।

फसल हंसिया से काटी जाती है। कटी हुई फसल के गट्ठर बांध कर स्थान पर जमा किये जाते हैं। उसके बाद गहाई शुरू होती है। गहाई बैलों को फसल पर चला कर की जाती है। बैलों के

बार बार चलने से उनके खुरों से भूसा तथा अनाज अलग हो जाता है इसके बाद हवा की दिशा की मुँह करके एक छाज में लेकर यह भूसा तथा अनाज उड़ाया जाता है भूसा अलग एक ढेर में इकट्ठा हो जाता है और अनाज अलग एक ढेर में।

इस प्रकार अनाज और भूसा अलग करने के बाद घर में लाकर रख दिया जाता है। पशुओं को खिलाने के काम आता है और गेहूँ घर की खपत में। जो लोग गेहूँ की व्यवसायिक खेती करते हैं वह अपने गेहूँ को बेच डालते हैं और अन्य प्रकार अन्नों को खाने में प्रयोग करते हैं।

अन्य भाँति की उपज—गेहूँ की भाँति ही भारत वर्ष में जौ, चना, मटर आदि बोये जाते हैं। जौ का खेत गेहूँ की भाँति ही तैयार किया जाता है और उसी प्रकार उसे भी बोते हैं। चना की भी बोआई गेहूँ की तरह ही होती है अन्तर केवल यही है कि चने के खेत की उतनी जुताई नहीं करनी पड़ती है जितना कि जौ या गेहूँ के खेत की। मटर अधिकतर हाथ से छीट कर बोई जाती है। चना और जौ मिला कर बेरी बनाया जाता है और उसका खेत भी गेहूँ की भाँति ६ या ७ बार कम से कम जोता जाता है और फिर हाथ से बो दिया जाता है। चना और गेहूँ मिला कर गेहूँ-चनी बनती है। बहुत से लोग गेहूँ, जौ तथा चना मिलाकर निफड़ा नाज बोते हैं। मटर और जौ मिलाकर मटर-बेरीं बनती है। पर यह सारे विभिन्न प्रकार वाले नाज केवल घर में खाने के लिये प्रयोग में आते हैं। मिश्रित नाजों की उत्पत्ति अच्छी होती है।

अलसी और सरसों भारतवर्ष में अधिकतर गेहूँ, जौ, चना तथा मटर के खेतों में ही बोई जाती हैं। सरसों का दाना अत्यन्त छोटा होता है और अनाज बोने के पहले ही सारे खेत में छीट दिया जाता है। यह एक एकड़ भूमि में लगभग एक सेर के पड़ता है। अलसी के कुंड बीच बीच में लगाये जाते हैं, यानी आठ या दस लीकों में अनाज बोने के बाद एक लीक या कुंड में अलसी बोई जाती है। अलसी का दाना छोटा होता है और बीज अधिक न पड़े इसलिये उसमें धान की भूसी या मिट्टी मिलाकर बोते हैं। इस प्रकार बोने के लिये एक एकड़ भूमि के लिये पाँच या छः सेर अलसी चाहिये।

अनेक प्रदेशों में जहाँ वर्षा कम होती है या मिट्टी राकड़ होती है वहाँ अलसी खाली भी खेतों में बोई जाती है और उसी प्रकार से जैसे चना सरसों भी कछारी भूमि या गीली भूमि खाली छींटी जाती है। जो सरसों पीली होती है उसे पियरा सरसों या पीली सरसों कहते हैं काली या भूरी और हल्की लाल सरसों को राई कहते हैं। एक छोटी राई भी होती है जिसके दाने सरसों से छोटे होते हैं। यह कछारी भूमि अकेली बोई जाती है और खूब होती है। इसका प्रयोग मसाले के काम में होता है।

फसल के काटने के लिये प्रत्येक स्थान पर विशेष मजदूरों की जरूरत होती है और ठीके तथा मजदूरी दोनों पर कटाई होती है। कटाई के समय मजदूरी अधिक देनी पड़ती है और मजदूरी अन्न रूप में ही चुकता की जाती है।

फसलों की हेर फेर प्रणाली—भारतवर्ष में कछारी वाली, अधिक पानी वाली, अधिक नीची या ऊँची, कम उपजाऊ और विशेष प्रकार की उपज वाले भागों को छोड़कर सब कहीं परिवर्तन प्रणाली के अनुसार ही मिश्रित गहरी खेती की जाती है जिस खेत में इस वर्ष गेहूँ बोया जाता है। उसमें दूसरे वर्ष बाजरा, ज्वार या अन्य खरीफ वाली फसल बोते हैं। अधिकतर ऐसा होता है कि जिन खेतों में एक साल खरीफ या अगहन की फसल बोई जाती है उनमें दूसरे वर्ष बैसाखी फसल बोई जाती है। बैसाखी फसल वाले खेत चार महीने बरसात में चौमासे रख जाते हैं और उन दिनों उन्हें जोता-बनाया जाता है। असाढ़ सावन तथा भादों मास तक उन्हें हवा पानी और धूप खाने दिया जाता है। भादों मास के अंत समय में उनकी जोताई विशेष तौर पर होने लगती है और मिट्टी को चूर करने के लिये पटेला चलाना पड़ता है। कुँआर मास में एक बार खेत जोत कर तीन चार बार पटेला चलाया जाता है। और कार्तिक मास लगते पर ही खेतों के बोने का काम जारी हो जाता है।

उत्तर प्रदेश तथा अन्य कुछ राज्यों में भी कुँआरी

धान की फसल काटने के बाद उन खेतों में चना या मटर बोया जाता है।

ज्वार बाजरा—जून मास में वर्षा होने के बाद धान तथा ज्वार की फसलें बोई जाती हैं। धान की फसल का अन्यत्र वर्णन हो चुका है। ज्वार के खेत को एक बार जोतकर बीज छींट दिया जाता है और फिर बीज मिलाने के लिये खेतो जोत दिया जाता है और या बीज छींटकर एक या दो बार खेत जोत दिया जाता है। ज्वार के साथ अरहर, कपास, मूंग, उरद और तिल मिलाकर बोया जाता है। एक बीघे खेत में एक या आध सेर ज्वार इतना ही उरद या मूंग, आध पाव तिल तथा ढाई सेर अरहर मिलाकर बोया जाता है। इन्हीं खेतों की मेंड़ों के साथ साथ पटुआ या सनई बोई जाती है।

बाजरे का खेत ज्वार के बाद बोया जाता है। अगस्त मास में इसकी बोआई होती है। इसके खेत को तीन या चार बार जोतना पड़ता है। उसके एक बीघे में १ सेर बाजरा के हिसाब से बाजरा बोया जाता है। यह भी छींट कर बोया जाता है और अरहर, उरद, मूंग तथा तिल इसमें भी मिलाया जाता है। सनई और पटुआ इनकी मेड़ों पर भी बोया जाता है। बाजरा ठीक ६० दिन में तैयार होता है। बाजरे के खेतों की निराई करनी पड़ती है। ज्वार के खेतों की निराई की आवश्यकता नहीं है। जब बाजरे की फसल तैयार होने पर आ जाती है तो उसकी रखवाली करनी पड़ती है ताकि चिड़ियाँ बालों को चुग न जांय या लोग बालें तोड़ न लें।

कार्तिक के महीने में बाजरा की फसल तैयार हो जाती है और उसे काट लिया जाता है। कहीं कहीं पर तो केवल इसकी बालें काटी जाती हैं और पेड़ को बाद में काटा जाता है। खलिहान में बालों की मड़ाई की जाती है और दाना निकाला जाता है। दाने निकलने के बाद जो बचता है वह पशुओं का चारा होता है।

ज्वार की फसल अगहन में तैयार होती है और तब उसके भुट्टे काटे जाते हैं और खलिहान में लाकर रखे जाते हैं और फिर उनकी मड़ाई होती है। दानों के निकालने के बाद भुट्टों की कूंची पशुओं के खिलाने के काम आती है।

ज्वार या बाजरा की फसल काटने के पहले या बाद में उरद मूंग तथा तिल काटे जाते हैं। बहुधा इनकी कटाई पहले ही हो जाती है। अरहर खेतों में पड़ी रहती है और वैसाखी फसल के साथ उसकी फसल तैयार होती है। उसी समय वह काटी जाती है।

कहीं-कहीं पर बाजरा और अरहर के साथ रेंड बोई जाती है। रेंडों या अरंड के पौधे बड़े होते हैं इसलिये एक बीघे के लिये १ सेर रेंडी काफी है। पूस के महीने में रेंडी के पेड़ों में बौर लगते हैं और घौर फलते हैं। एक घौर में सैकड़ों फलियां होती हैं और एक फली में चार रेंडियां होती हैं। एक पेड़ में एक सेर से लेकर पांच सेर तक रेंडी होती है।

माघ के महीने में रेंडी की फसल काटी जाती है और गुच्छों को एक स्थान पर इकट्ठा किया जाता है फिर उसमें से रेंडी अलग की जाती है। रेंडी का तेल बनाया जाता है। यह तेल जलाने, साबुन बनाने तथा मशीनों आदि में डालने के काम आता है। शुद्ध और साफ रेंडी का तेल औषधि में प्रयोग होता है। यह बड़ा गुणकारी होता है। अरंड के वृक्ष छाजन का काम देते हैं।

असाढ़ के महीने में मक्का बोई जाती है और दो मास के भीतर ही उसकी फसल तैयार हो जाती है। एक-एक पेड़ में कई-कई बालें अथवा भुट्टे लगते हैं और इसकी उपज खूब होती है। इसकी करबी पशुओं के चारे का काम देती है। बहुधा ज्वार, बाजरा, मक्का आदि के खेतों को साफ करके उन्हें जोत कर उनमें वैसाखी फसल की बोई जाती है और चना, मटर आदि दाने बोये जाते हैं।

पशुओं के लिये चारे की फसलें—यूं तो जितने प्रकार का अनाज होता है उन सब का दाना छोड़ कर सभी भाग भूसा या करबी के रूप में पशुओं के चारे का काम देता है परन्तु इनके अतिरिक्त बगीचों या परती वाली भूमि में घास बोई और रखाई जाती है जो पशुओं को चरने का काम देती है। ज्वार तथा बाजरा के बीजों को उसमें उरद, मूंग

मोथी, सेम आदि मिला कर या खाली अलग-अलग सघनता के साथ बोकर पशुओं के लिये हरा चारा तैयार किया जाता है। इसे चरी या हरी करबी कहते हैं। यह हरी दशा में ही पशुओं को काट कर खिलाई जाती है और इससे पशुओं को बड़ा लाभ होता है। जो खेत कार्तिक महीने तक चरी से खाली हो जाते हैं उनमें चना तथा मटर आदि अनाज बो दिये जाते हैं।

कार्तिक मास में चना, मटर, जई, चपरी तथा अकरा आदि अनाज कार्तिक मास में खेतों में मिला कर बो दिया जाता है और इस प्रकार हरा चारा तैयार करके पशुओं को सूखी करबी के साथ मिला-कर शीत काल में खिलाया जाता है। पशुओं को सूखी तथा हरी करबी के साथ-साथ चना, मटर, भूसी, खली, बिनौला, गुड़ का रस, प्याज तथा महुआ और मट्ठे की कांजी आदि वस्तुएं खिलाई जाती हैं।

पशुओं को दो प्रकार का चारा खिलाते हैं। एक तो सूखा और दूसरा पानी या कांजी मिला कर जिसे सानी कहते हैं। हौदे या किसी अन्य बड़े पात्र में चारा डाल दिया जाता है और फिर उसमें पानी डाल कर नमक, खली, बिनौला, भूसी, चूनी, आटा आदि डाल कर मिला दिया जाता है। भूखे पशु बड़े चाव के साथ खाते हैं और इससे पशुओं को बड़ा लाभ होता है। दूध देने वाले पशुओं को इस भांति अधिक खिलाया जाता है। जिन पशुओं को बेचना होता उन्हें भी इसी प्रकार खिलाया जाता है। बेचे जाने वाले पशुओं को हरी मटर की फसल भी खिलाते हैं और इससे वे बड़े मोटे होते हैं। धान, आलू, ईख, सकरकन्द, चना मटर, अरहर, जई आदि अनाज यदि फालतू होते हैं तो इन्हें भी पशुओं को खिलाते हैं।

जड़ वाली उपज—भारतवर्ष में शलजम, मूली, गाजर, आलू, सकरकन्द, मूंगफली आदि फसलें भी बोई जाती हैं। यह सारी फसलें जुलाई से लेकर नवम्बर मास तक में बोई जाती हैं। इनमें सबसे अधिक मेहनत आलू में पड़ती है। क्योंकि उसके कुलों में दो-तीन बार मिट्टी चढ़ाना पड़ता है और कई बार सिंचाई करनी पड़ती है। लोना मिट्टी और खाद भी उसमें डालनी पड़ती है। इन सभी जड़ों का प्रयोग भारतवर्ष में खाद्य सामग्री की भांति होता है। मनुष्यों से बचने पर ही पशुओं को खिलाया जाता है।

ईख तथा गन्ना—भारतवर्ष में माघ के महीने से लेकर चैत्र के महीने तक में ईख तथा गन्ना बोने का काम होता है। ईख तथा गन्ने के टुकड़े गांठों के पास से काटे जाते हैं। गांठ वाले टुकड़े हलों की लीकों में बोये जाते हैं। एक-एक बीते की दूरी पर यह रखे जाते हैं। इन्हीं गांठों में जड़ और पौधे के अंकुए निकलते हैं। पौधों के जमने के बाद खेत सींच दिये जाते हैं उसके बाद खेतों को कुदाली से गोड़ा जाता है। ग्रीष्म काल में इसी प्रकार चार-पांच बार किया जाता है। इसके बाद फिर बरसात में इनकी कोई देख-भाल करने की जरूरत नहीं पड़ती पूस-माघ में इनको काटा तथा चरखियों में पेर कर रस निकाला जाता है तथा रस से गुड़ तैयार किया जाता है। मिलों में ईख से चीनी तथा शक्कर तैयार की जाती है।

साग भाजियां—भारतवर्ष में आलू, भांटा, टमाटर, मूली, गोभी, करमकल्ला या पात गोभी, घिलाई, सेम, लौकी कुमड़ा, नेनुआ, भिंडी, तुरोई, सेम, लहसुन प्याज, अरुई, बड़ा, घीया बड़ा, शलजम, तथा अन्य प्रकार की सैकड़ों साग-भाजियों की फसलें साल भर तैयार की जाती हैं और घरों, गांवों तथा नगरों में उनका प्रयोग होता है।

फल—भारतवर्ष में आम, जामुन केला, अमरूद, नाशपाती, बैर, लीची, नारंगी, संतरा, अनार, नीबू आदि विभिन्न प्रकार के फलों की खेती होती है जो देश के प्रयोग में आती है। अमरूद तथा आम के लिये भारतवर्ष प्रसिद्ध है। आम फलों का राजा है और यह भारत की खास उपज है जो संसार के किसी अन्य देश को प्राप्त नहीं है। आम और अमरूद भारत से बाहर भेजे जाते हैं।

खीरा, ककड़ी, तरबूज खरबूजा, आदि भी उपजाये जाते हैं। तरबूज और खरबूजा कार्तिक से लेकर चैत तक बोये जाते हैं। जो कार्तिक में बोये जाते हैं वह चैत मास में तैयार हो जाते हैं,

बाद में बोये जाने वाले वैसाख और जेष्ठ में तैयार होते हैं।

पशु-पालन—भारतवर्ष में जिन स्थानों पर बड़े-बड़े चरागाह हैं वहां पर भेड़, बकरियां तथा गायें बड़ी संख्या में पाली और चराई जाती हैं। परन्तु अन्यत्र सब कहीं खेती के साथ ही साथ भेड़, बकरी, गाय, बैल, भैंस, घोड़ा, हाथी, ऊँट, खच्चर, कुत्ता, बिल्ली, बन्दर, विभिन्न प्रकार की चिड़ियां आदि पाले जाते हैं। कुछ खास लोग सुअर और गधा पालते हैं। पशुओं का पालन-पोषण दूध घी तथा ऊन प्राप्त करने और हल जोतने तथा सवारी के लिये प्रयोग करने और गाड़ी चलाने तथा बोझ ढोने के लिये प्रयोग होता है। मांस खाने वाले लोग भेड़-बकरी का मांस भी खाते हैं।

भारतवर्ष में उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, पूर्वी पञ्जाब, मद्रास राज्य के कुछ भाग, ट्रावनकोर-कोचीन राज्य, बम्बई राज्य के कुछ भाग, बिहार तथा हिमाचल प्रदेश आदि में इस प्रकार की कृषि प्रणाली प्रचलित है। योरुप तथा भारत की इस कृषि प्रणाली में केवल इतना ही अन्तर है कि यहां पर पशुओं का पालन केवल मांस प्राप्त करने के लिये होता है जब कि भारतवर्ष में दूध-घी और मक्खन आदि के लिये तथा खेती में काम आने के लिये पशु पाले जाते हैं। भारतीय किसान फल और साग भाजियों की उपज काफी करते हैं और यह सामग्रियां स्थानीय बाजारों तथा निकट वर्ती नगरों में खप जाती हैं और किसानों को इनसे नगद दाम मिल जाता है। केला, नाशपाती, अमरूद, आम, पपीता, बेर, नीबू, नारङ्गी, शरीफा, जामुन, महुआ आदि के बाग लगाये जाते हैं और उनके फलों को बाजारों में बेचा जाता है। मूली, शलजम, गाजर, भांटा, आलू, गोभी, टमाटर, चौराई, लौका, लौकी, तरोई, अरुई, सेम, लहसुन, प्याज, धनिया, मेथी, मिरचा, सौंफ, हल्दी, जीरा, राई, पुदीना, पालक, आदि विभिन्न प्रकार की साग भाजियां और मसालों की सामग्री की उपज किसान करते हैं और उनसे नगद दाम प्राप्त करते हैं।

भारतवर्ष में अन्य देशों की अपेक्षाकृत फूलों की बहुत अधिक खपत है। भारतवर्ष एक अत्यन्त प्राचीन सभ्यता तथा संस्कृति वाला देश है। यह धर्मों तथा सम्प्रदायों का केन्द्र स्थल है। यहां के निवासी मूर्ति पूजक हैं, तथा शक्ति उपासक हैं इसलिये मूर्तियों, मन्दिरों आदि पर नित्य प्रति पुष्प चढ़ाने के लिये तथा पूजा-पाठ करने के लिये फूलों की सदैव खपत रहती है। देव स्थानों, तीर्थ स्थानों और गङ्गा जैसी पवित्र नदियों के तटों पर फूल पत्तियों का व्यवहार प्रतिक्षण होता रहता है। इसलिये लोग फूलों की खेती करते हैं। यह खेती विशेष रूप से माली वर्ग के लोग करते हैं। जापानी स्त्रियों की भांति ही भारतीय ललनाएँ भी पुष्पों की बड़ी शौकीन होती हैं। युवक लोग अपने कोटों के बटनों में इन्हें लगाते हैं। आगुन्तकों तथा मेहमानों को पुष्प मालाएं अर्पित की जाती हैं। समाधियों तथा कब्रों पर पुष्प मालाएँ चढ़ाई जाती हैं। सभी स्थानों पर इसका व्यवहार होता है यही कारण है जो कि भारतवर्ष में प्रायः सभी वाटिकाओं पार्कों तथा घर के दरवाजों तथा आंगन की भूमि में फूल के पौधे तथा गमले मिलेंगे।

इसके अतिरिक्त भारत जैसे सांस्कृतिक तथा पुण्य देश में इत्र तथा सुगंधित तेल का बहुत अधिक व्यय है। भारतवर्ष पुराने समय से अपने इत्रों, पुष्पों तथा सुगंधित तेलों के लिये प्रसिद्ध रहा है। सुगंधित तेलों तथा इत्रों के बनाने के लिये उत्तरी भारत में लखनऊ, कन्नौज तथा जौनपुर जैसे केन्द्र हैं। इन तेलों के बनाने तथा इत्रों के खींचने में पुष्पों की आवश्यकता बड़ी मात्रा में होती है। इसलिये पुष्पों की उपज वाटिकाओं तथा खेतों में की जाती है। विभिन्न श्रेणी तथा प्रकार का गुलाब (लाल गुलाबी, पीला, सफेद, देशी विलायती इत्यादि) मोतिया, चमेली, केतकी, चम्पा, नरगिस, शब्बू, रामबांस, अनार, जूही, सूर्यमुखी, गेंदा, तुरैय्या, इन्द्रबेला, हरसिंगार आदि हजारों प्रकार के पुष्प भारतवर्ष में उगाये जाते हैं और इनसे किसानों को तत्काल नकद दाम मिलता है।

मोथी, सेम आदि मिला कर या खाली अलग-अलग सघनता के साथ बोकर पशुओं के लिये हरा चारा तैयार किया जाता है। इसे चरी या हरी करवी कहते हैं। यह हरी दशा में ही पशुओं को काट कर खिलाई जाती है और इससे पशुओं को बड़ा लाभ होता है। जो खेत कार्तिक महीने तक चरी से खाली हो जाते हैं उनमें चना तथा मटर आदि अनाज बो दिये जाते हैं।

कार्तिक मास में चना, मटर, जई, चपरी तथा अकरा आदि अनाज कार्तिक मास में खेतों में मिला कर बो दिया जाता है और इस प्रकार हरा चारा तैयार करके पशुओं को सूखी करवी के साथ मिला कर शीत काल में खिलाया जाता है। पशुओं को सूखी तथा हरी करवी के साथ-साथ चना, मटर, भूसी, खली, बेनौला, गुड़ या रस, प्याज तथा महुआ और मट्ठे की कांजी आदि वस्तुएं खिलाई जाती हैं।

पशुओं को दो प्रकार का चारा खिलाते हैं। एक तो सूखा और दूसरा पानी या कांजी मिला कर जिसे सानी कहते हैं। हौदे या किसी अन्य बड़े पात्र में चारा डाल दिया जाता है और फिर उसमें पानी डाल कर नमक, खली, बिनौला, भूसी, चूनी, आटा आदि डाल कर मिला दिया जाता है। भूखे पशु बड़े चाव के साथ खाते हैं और इससे पशुओं को बड़ा लाभ होता है। दूध देने वाले पशुओं को इस भांति अधिक खिलाया जाता है। जिन पशुओं को बेचना होता उन्हें भी इसी प्रकार खिलाया जाता है। बेचे जाने वाले पशुओं को हरी मटर की फसल भी खिलाते हैं और इससे वे बड़े मोटे होते हैं। धान, आलू, ईख, सकरकन्द, चना मटर, अरहर, जई आदि अनाज यदि फालतू होते हैं तो इन्हें भी पशुओं को खिलाते हैं।

जड़ वाली उपज—भारतवर्ष में शलजम, मूली, गाजर, आलू, सकरकन्द, मूंगफली आदि फसलें भी बोई जाती हैं। यह सारी फसलें जुलाई से लेकर नवम्बर मास तक में बोई जाती हैं। इनमें सबसे अधिक मेहनत आलू में पड़ती है। क्योंकि उसके कूलों में दो-तीन, चार मिट्टी चढ़ाना पड़ता है और कई बार सिंचाई करनी पड़ती है। लोना मिट्टी और खाद भी इसमें डालनी पड़ती है। इन सभी जड़ों का प्रयोग भारतवर्ष में खाद्य सामग्री की भांति होता है। मनुष्यों से बचने पर ही पशुओं को खिलाया जाता है।

ईख तथा गन्ना—भारतवर्ष में माघ के महीने से लेकर चैत के महीने तक में ईख तथा गन्ना बोने का काम होता है। ईख तथा गन्ने के टुकड़े गांठों के पास से काटे जाते हैं। गांठ वाले टुकड़े हल की लीकों में बोये जाते हैं। एक-एक बीते की दूरी पर यह रखे जाते हैं। इन्हीं गांठों में जड़ और पौधे के अखुए निकलते हैं। पौधों के जमने के बाद खेत सींच दिये जाते हैं इसके बाद खेतों को कुदाली से गोड़ा जाता है। ग्रीष्म काल में इसी प्रकार चार-पांच बार किया जाता है। उसके बाद फिर बरसात में इनकी कोई देख-भाल करने की जरूरत नहीं पड़ती पूस माघ में इनको काटा तथा चरखियों में पेर कर रस निकाला जाता है तथा रस से गुड़ तैयार किया जाता है। मिलों में ईख से चीनी तथा शक्कर तैयार की जाती है।

साग भाजियां—भारतवर्ष में आलू, भांटा, टमाटर, मूली, गोभी, करमकल्ला या पात गोभी, चौलाई, सेम, लौकी, कुमड़ा, नेनुआ, भिंडी, तुरोई, सेम, लहसुन प्याज, अरुई, बड़ा, घीहा बड़ा, शलजम, तथा अन्य प्रकार की सैकड़ों साग भाजियों की फसलें साल भर तैयार की जाती हैं और घरों, गांवों तथा नगरों में इनका प्रयोग होता है।

फल—भारतवर्ष में आम, जामुन केला, अमरूद, नाशपाती, बैर, लीची, नारंगी, संतरा, अनार, नीबू आदि विभिन्न प्रकार के फलों की खेती होती है जो देश के प्रयोग में आती है। अमरूद तथा आम के लिये भारतवर्ष प्रसिद्ध है। आम फलों का राजा है और यह भारत की खास उपज है जो संसार के किसी अन्य देश को प्राप्त नहीं है। आम और अमरूद भारत से बाहर भेजे जाते हैं।

खीरा, ककड़ी, तरबूज खरबूजा, आदि भी उपजाये जाते हैं। तरबूज और खरबूजा कार्तिक से लेकर चैत तक बोये जाते हैं। जो कार्तिक में बोये जाते हैं वह चैत मास में तैयार हो जाते हैं,

बाद में बोये जाने वाले बैसाख और जेष्ठ में तैयार होते हैं।

पशु-पालन—भारतवर्ष में जिन स्थानों पर बड़े-बड़े चरागाह हैं वहां पर भेड़, बकरियां तथा गायें बड़ी संख्या में पाली और चराई जाती हैं। परन्तु अन्यत्र सब कहीं खेती के साथ ही साथ भेड़, बकरी, गाय, बैल, भैंस, घोड़ा, हाथी, ऊँट, खच्चर, कुत्ता, बिल्ली, बन्दर, विभिन्न प्रकार की चिड़ियां आदि पाले जाते हैं। कुछ खास लोग सुअर और गधा पालते हैं। पशुओं का पालन-पोषण दूध घी तथा ऊन प्राप्त करने और हल जोतने तथा सवारी के लिये प्रयोग करने और गाड़ी चलाने तथा बोझ ढोने के लिये प्रयोग होता है। मांस खाने वाले लोग भेड़-बकरी का मांस भी खाते हैं।

भारतवर्ष में उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, पूर्वी पञ्जाब, मद्रास राज्य के कुछ भाग, ट्रावनकोर-कोचीन राज्य, बम्बई राज्य के कुछ भाग, बिहार तथा हिमाचल प्रदेश आदि में इस प्रकार की कृषि प्रणाली प्रचलित है। योरुप तथा भारत की इस कृषि प्रणाली में केवल इतना ही अन्तर है कि वहां पर पशुओं का पालन केवल मांस प्राप्त करने के लिये होता है जब कि भारतवर्ष में दूध-घी और मक्खन आदि के लिये तथा खेती में काम आने के लिये पशु पाले जाते हैं। भारतीय किसान फल और साग भाजियों की उपज काफी करते हैं और यह सामग्रियां स्थानीय बाजारों तथा निकट वर्ती नगरों में खप जाती हैं और किसानों को इनसे नगद दाम मिल जाता है। केला, नाशपाती, अमरूद, आम, पपीता, बेर, नीबू, नारङ्गी, शरीफा, जामुन, महुआ आदि के बाग लगाये जाते हैं और उनके फलों को बाजारों में बेचा जाता है। मूली, शलजम, गाजर, भांटा, आलू, गोभी, टमाटर, चौराई, लौका, लौकी, तरोई, अरुई, सेम, लहसुन, प्याज, धनिया, मेथी, मिरचा, सौंफ, हल्दी, जीरा, राई, पुदीना, पालक, आदि विभिन्न प्रकार की साग भाजियां और मसालों की सामग्री की उपज किसान करते हैं और उनसे नगद दाम प्राप्त करते हैं।

भारतवर्ष में अन्य देशों की अपेक्षाकृत फूलों की बहुत अधिक खपत है। भारतवर्ष एक अत्यन्त प्राचीन सभ्यता तथा संस्कृति वाला देश है। यह धर्मों तथा सम्प्रदायों का केन्द्र स्थल है। यहां के निवासी मूर्ति पूजक हैं, तथा शक्ति उपासक हैं इसलिये मूर्तियों, मन्दिरों आदि पर नित्य प्रति पुष्प चढ़ाने के लिये तथा पूजा पाठ करने के लिये फूलों की सदैव खपत रहती है। देव स्थानों, तीर्थ स्थानों और गङ्गा जैसी पवित्र नदियों के तटों पर फूल पत्तियों का व्यवहार प्रतिक्षण होता रहता है। इसलिये लोग फूलों की खेती करते हैं। यह खेती विशेष रूप से माली वर्ग के लोग करते हैं। जापानी स्त्रियों की भांति ही भारतीय ललनाएँ भी पुष्पों की बड़ी शौकीन होती हैं। युवक लोग अपने कोटों के बटनों में इन्हें लगाते हैं। आगुन्तकों तथा मेहमानों को पुष्प मालाएं अर्पित की जाती हैं। समाधियों तथा कब्रों पर पुष्प मालाएँ चढ़ाई जाती हैं। सभी स्थानों पर इसका व्यवहार होता है यही कारण है जो कि भारतवर्ष में प्रायः सभी वाटिकाओं पार्कों तथा घर के दरवाजों तथा आंगन की भूमि में फूल के पौधे तथा गमले मिलेंगे।

इसके अतिरिक्त भारत जैसे सांस्कृतिक तथा उष्ण देश में इत्र तथा सुगंधित तेल का बहुत अधिक व्यय है। भारतवर्ष पुराने समय से अपने इत्रों, पुष्पों तथा सुगंधित तेलों के लिये प्रसिद्ध रहा है। सुगंधित तेलों तथा इत्रों के बनाने के लिये उत्तरी भारत में लखनऊ, कन्नौज तथा जौनपुर जैसे केन्द्र हैं। इन तेलों के बनाने तथा इत्रों के खींचने में पुष्पों की आवश्यकता बड़ी मात्रा में होती है। इसलिये पुष्पों की उपज वाटिकाओं तथा खेतों में की जाती है। विभिन्न श्रेणी तथा प्रकार का गुलाब (लाल गुलाबी, पीला, सफेद, देशी विलायती इत्यादि) मोतिया, चमेली, बेलली, चम्पा, नशतरन, शब्बू, शमशाद, अनार, जूही, सूर्य मुखी, गेंदा, रयुरैय्या, इन्द्रबेला, हरसिंघार आदि हजारों प्रकार के पुष्प भारतवर्ष में उगाये जाते हैं और इनसे किसानों को तत्काल नकद दाम मिलता है।

भू-मध्यसागरीय खेती

यह प्रदेश महाद्वीपों के पश्चिमी तटों के निकट ३० और लगभग ४५ उत्तर और दक्षिण अक्षांशों के बीच स्थित है। इसके अन्तर्गत भू मध्य सागर की तटवर्ती देश अर्थात् पुर्तगाल, स्पेन, दक्षिणी फ्रांस, इटली का प्रायः द्वीप, यूगोस्लेविया, बलकान देशों के तटीय भाग, एशियाई कोचक, सीरिया, उत्तरी पश्चिमी अफ्रीका और केलीफोर्निया की घाटी, मध्य चिली, दक्षिणी-पश्चिमी केप प्रान्त, आस्ट्रेलिया तथा न्युजीलैंड के उत्तरी द्वीप का कुछ भाग सम्मिलित हैं।

इस प्रदेश की शीत ऋतु छोटी होती है और साधारण जाड़ा पड़ता है। सबसे ठंडे महीने का तापक्रम औसत से ४० से ५० अंश के लगभग रहता है। इसी ऋतु में वर्षा भी होती है। ग्रीष्म काल लम्बा, गर्म और शुष्क होता है। सबसे गर्म महीने का औसत तापक्रम ७० से ८० अंश तक रहता है। वार्षिक तापान्तर १५ से ३० अंश तक रहता है। जाड़ों में गर्म मरुस्थलों से आने वाली हवाओं (उदाहरणार्थ सिराको वायु) से शीत कुछ कम हो जाता है। चमकदार सूर्य किरणों से भी शीत कुछ घट जाता है। दैनिक औसत तापान्तर काफी रहता है। किन्तु शुष्क और गर्म महीनों में यह और भी अधिक हो जाता है।

यहाँ की वार्षिक वर्षा औसत से १५ इञ्च तक होती है। किन्तु स्थान स्थान की वर्षा की मात्रा स्थिति तथा धरातल की बनावट पर निर्भर होती है। ये भाग जो पश्चिमी जलवायु के सामने पड़ते हैं अधिक वर्षा प्राप्त करते हैं और पूर्व की ओर वर्षा कम होती जाती है।

वर्षा प्रधानतः शीत ऋतु में होती है और ग्रीष्म प्रायः शुष्क बीतती है। वायु भार की पेटियों के खिसकने के कारण शीत ऋतु में ये प्रदेश पछुआ हवा के प्रभाव में आ जाते हैं। शीतकाल में यहां चक्रवातों के कारण भी वर्षा हो जाती है। गर्मियों में ये प्रदेश शुष्क ट्रेड वायु के प्रभाव में रहते हैं। अत. वर्षा नहीं होती है।

इन प्रदेशों में समस्त वर्षा शीत काल में होती है किन्तु उन दिनों प्रति दिन वर्षा नहीं होती है केवल कुछ ही दिनों में मूसलाधार जल बरसने से वर्ष भर की समस्त वर्षा प्राप्त हो जाती है। अधिकांश स्थानों पर वर्षा अनिश्चित होती है। इसलिये सिंचाई के साधनों के बड़ी आवश्यकता रहती है।

इस प्रदेश में शुष्क सदा बहार वन मिलते हैं किन्तु जहां भूमि उपजाऊ है और वर्षा बहुत कम होती है। वहां केवल झाड़ियां उगती हैं। यहां साल भर में ऐसा समय कभी नहीं होता जब कि पौधों का जीवित रहना असम्भव हो। शीत ऋतु में तो वर्षा होती है शुष्क ग्रीष्म ऋतु में जीवित रहने के लिये यहां पेड़-पौधों ने अपने को इस वातावरण के अनुकूल बना लिया है। इन वृक्षों में से कुछ की जड़ें बहुत लम्बी होती हैं ताकि दूर से पानी खींच सकें जैसे अगूर की बेल, चैस्ट नट इत्यादि। कुछ के पत्ते मोटे और चिकने होते हैं ताकि वाष्पी करण की गति कम रहे जैसे सन्तरा, नीबू इत्यादि। कुछ की छाल मोटी और चिकनी होती है जैसे कार्क,ओक। कुछ वृक्षों की पत्तियों के रोयें मुलायम होने हैं जैसे जैतून कुछ पौधों की पत्तियों से रस निकल कर जमा होता है जिससे छेद बन्द हो जाते हैं और पानी का भाप बन कर उड़ना बन्द हो जाता है कुछ की पत्तियों पर कांटे होते हैं और पौधों में से बुरी गंध निकलती है जिससे हानि पहुँचाने वाले जन्तु दूर रहते हैं। इस प्रदेश के मुख्य वृक्ष जैतून, ओक, अंजीर, नीबू-नारङ्गी तथा शहतूत इत्यादि हैं। नुकीली पत्ती वाले वृक्षों में पाइन, फर, सीडर, साइप्रस, जेनीफर मुख्य हैं जो पहाड़ी भागों में उगते हैं। ठंडे तथा नम भागों में चौड़ी पत्ते वाले वृक्ष मिलते हैं जैसे ओक, वाल नट, चेस्टनट, हिकरी इत्यादि। दक्षिण अमरीका के चिली प्रदेश में पिनियन अथवा चिली पाइन तथा एरूपिनी वृक्ष भी उगते हैं। एरूपिनी वृक्ष की लकड़ी से बढ़िया कोयला बनाया जाता है। दक्षिणी-पश्चिमी आस्ट्रेलिया में यूकेलिपटस, कारी और जारा वृक्ष भी उत्पन्न होते हैं। इनसे इमारती लकड़ी मिलती है जो बहुत टिकाऊ तथा सुन्दर होती है। जारा की लकड़ी में दीमक नहीं लगती है।

भूमध्य सागर के तटीय देशों में 'माक्विस' केलीफोर्नियाँ में चेप रेल तथा आस्ट्रेलिया में माली नामक झाड़ियां होती हैं। इनके अतिरिक्त लेवेन्डर, थीम, होली, लारेल, छोटे ताड़ और केक्टस इत्यादि पौधे और झाड़ियां भी जहां-तहां उगते पाये जाते हैं।

इस प्रदेश में घास के प्रदेश नहीं मिलते क्योंकि जब वर्षा होती है तो तापक्रम कम होता है और जब गर्मी होती है तो वर्षा नहीं होती है।

यह रूम सागर तटवर्ती प्रदेश विकास के लिये अनुकूल स्थान माने गये हैं। यहां मनुष्य ने आशातीत उन्नति प्राप्त की है और ये देश संसार के प्राचीन देशों में गिने जाते हैं। इस प्रदेश के नये भाग भी अब उन्नति करते जा रहे हैं।

इन प्रदेशों के निवासी अनेक व्यवसायों में लगे हैं। खेती यहां का मुख्य व्यवसाय है। अनाज तथा फलों की उत्पत्ति की जाती है। इस प्रदेश की गर्मियों में सूर्य तीव्रता के साथ चमकता है ऐसा चमकीला वातावरण नीबू जाति के फलों के पकने के लिये अनुकूल होता है; इन दिनों पाला भी नहीं पड़ता है इसलिये नीबू, नारङ्गी, संतरा, अंगूर इत्यादि फल खूब पैदा होते हैं। किन्तु इनके लिये सिंचाई का प्रबन्ध करना आवश्यक है। इनके अतिरिक्त आड़ू, अनार, सेब, नाशपाती, खुबानी, चेरी, बेरी, बादाम, अखरोट, शहतूत, जैतून तथा अंजीर इत्यादि फल भी उत्पन्न किये जाते हैं। इन फलों का व्यापारिक महत्व अधिक है।

फलों की खेती के अतिरिक्त अनाज की खेती का भी यहां बहुत महत्व है। अनाज की फसलें बहुधा शीत काल में बोई जाती हैं, और गरमी आने से पहले काटली जाती है। इनके लिये सिंचाई की भी व्यवस्था की जाती है। मुख्य अनाज जौ, जई तथा गेहूं इत्यादि हैं। मक्का, तम्बाकू और सेम की फसलें गरमी के दिनों में उत्पन्न की जाती हैं। यहां अनेक प्रकार की तरकारियां और फूल वाले पौधे भी उगते हैं। बसन्त में पुष्पों की छटा देखने योग्य होती है। उत्तरी इटली और स्पेन में गरमी में भी कुछ वर्षा हो जाती है जिसके फल स्वरूप चावल भी उत्पन्न किया जाता है।

कृषि के अतिरिक्त पशु पालन भी इन प्रदेशों का महत्वपूर्ण व्यवसाय है। पशु तथा भेड़ बकरियां दूध, मांस और खालों के लिये पाली जाती हैं। शीत भंडार की प्रणाली से मांस और दुग्ध उद्योग में बड़ी उन्नति हो सकी है। वैज्ञानिक रीति से मांस, मक्खन इत्यादि को डिब्बों में भर कर बन्द करके निर्यात किया जाता है। पशु पालन में लगे व्यक्ति अपने पशुओं और भेड़-बकरियों को साथ लेकर गरमियों में पहाड़ों पर चले जाते हैं जहां बरफ के पिघलते हुये पानी की सहायता से घास उग जाती है जब कि मैदानों में घास के चिन्ह भी नहीं रहते।

रूम सागरीय प्रदेश उद्योग धंधों में भी काफी उन्नतिशील है। यहां के उद्योगों में फलों को सुखा कर सुरक्षित रखने का धंधा बहुत महत्वपूर्ण है। ग्रीष्म ऋतु का शुष्क वातावरण इस धंधे के लिये बहुत उपयुक्त है। अंगूरों के दाख और किशमिश बना कर विदेश भेजे जाते हैं। जैतून के तेल से साबुन बनाया जाता है। अंगूरों से शराब बनाई जाती है। शहतूत के पेड़ों पर रेशम की कीड़े पालकर कच्चा रेशम प्राप्त किया जाता है जिससे रेशमी कपड़ा बनाया जाता है। फलों को सत्व (Essence) निकाला जाता है। अनेक प्रकार के रङ्ग और इत्र भी तैयार किये जाते हैं। फलों के रस से स्वादिष्ट सिरका बनाया जाता है। पुर्तगाल तथा स्पेन में बोतलों की डाट बनती हैं। अफ्रीका तथा स्पेन में अलफा घास से टोकरियां रस्सियां तथा कागज बनाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त चमड़े का काम, चीनी का धंधा तथा आटा पीसने के धंधे भी इन प्रदेशों में होते हैं।

रूम सागर तटीय देश मनुष्य के रहन सहन के लिये बहुत उपयुक्त हैं क्योंकि जलवायु उत्तम है, भूमि उपजाऊ है तथा अनेक प्रकार की प्राकृतिक सम्पत्ति तथा विकास के साधन उपलब्ध हैं। सुगमता से जीविका प्राप्ति की सुविधायें होने के कारण प्राचीन युग में ही इन देशों की पर्याप्त सांस्कृतिक उन्नति हो गई थी। यूनान, रोम, मिस्र तथा सीरिया इत्यादि प्राचीन सभ्य देशों में गिने जाते हैं। इन देशों ने कला, विज्ञान तथा राजतंत्र के क्षेत्र में बहुमूल्य योग प्रदान किया और मानव जाति के इतिहास को बहुत

प्रभावित किया है। तटों के कटे-फटे होने तथा ज्वार विहीन सागर के कारण ये लोग अच्छे नाविक बन गये। यहां के मकान जलवायु के अनुकूल विशाल और शानदार होते हैं। इनमें छज्जे बनाने का रिवाज अधिक है।

भूमध्य सागरीय कृषि वाले प्रदेश मानसूनी प्रदेशों के कृषि वाले क्षेत्रों से कई बातों में मिलते जुलते हैं परन्तु उनके मध्य विशेष रूप से भिन्नता भी पाई जाती है। दोनों भागों में वर्षा तथा शुष्क ऋतु होती है और दोनों भागों में गहरी खेती का रिवाज है. दोनों में जनसंख्या सघन है। मानसूनी प्रदेशों से भूमध्य सागरी प्रदेशों में वर्षा कम होती है। भूमध्य सागरी प्रदेश में शीतकाल में वर्षा होती है और पर्वतीय भागों में बरफ जमती है। जलवायु तथा मिट्टी के ध्यान से इन अक्षांशों के प्रदेशों का बटवारा चार भागों में हो सकता है। पहला भाग वह है जो योरुपीय है और जिसका वर्णन ऊपर आ चुका है। दूसरा भाग उन प्रदेशों का है जहां की जलवायु चीन तुल्य है। तीसरा भाग वह है जहां की जलवायु तथा वातावरण तूरान तुल्य है। और चौथा भाग वह है जहां की जलवायु और वातावरण ईरान तुल्य है।

चीन के समान वाले प्रदेश—चीन तुल्य प्रदेश भूमध्य रेखा के उत्तर तथा दक्षिण ३० से ४५ अक्षांशों के मध्य महाद्वीपों के पूर्वी भागों में स्थित है। इसके अन्तर्गत मध्य तथा उत्तरी चीन, दक्षिणी जापान, आस्ट्रेलिया का दक्षिणी पूर्वी तटीय भाग, नैटाल (अफ्रीका), दक्षिणी-पूर्वी संयुक्त राज्य, यूरुग्वे और दक्षिणी-पूर्वी ब्रजील सम्मिलित हैं।

इस प्रदेश में स्थित भू भागों में जलवायु सर्वथा समान नहीं मिलती क्योंकि प्रत्येक भू भाग के धरातल की असमानताओं के कारण जलवायु में अन्तर मिलता है किन्तु वास्तव में इनकी जलवायु में कोई तात्विक भेद नहीं है। इसी से इन सब भू भागों को एक प्रदेश में शामिल किया जा सकता है। इस प्रदेश की जलवायु को विकराल कहा जा सकता है।

ग्रीष्म ऋतु में पर्याप्त गरमी पड़ती है और औसत तापक्रम ८० अंश होता है। शीत ऋतु में काफी सर्दी पड़ती है किन्तु उत्तरी गोलार्द्ध में स्थित इन भू-भागों में तापक्रम बहुत कम रहता है। उदाहरण के रूप में पेकिंग नगर का शीत कालीन औसत तापक्रम २३.५ अंश और सिडनी का ५५ अंश होता है। वार्षिक तापान्तर भी उत्तरी गोलार्द्ध में अधिक है। पेकिंग का वार्षिक तापान्तर ५५ अंश तथा सिडनी का केवल १९ अंश है। इसका प्रधान कारण यह है कि दक्षिणी गोलार्द्ध में समुद्री प्रभाव से शीतकालीन तापक्रम अपेक्षा कृत अधिक रहता है।

इस प्रदेश में पर्याप्त वर्षा होती है। वार्षिक औसत वर्षा ३० से ५० इञ्च तक है। स्थिति तथा धरातल की भिन्नता के कारण वर्षा भी न्यूनाधिक होती है यों तो वर्ष भर थोड़ी-बहुत वर्षा होती रहती है किन्तु अधिकांश वर्षा ग्रीष्म ऋतु में प्राप्त होती है। ग्रीष्म कालीन वर्षा चीन के अतिरिक्त सब भू भागों में व्यापारिक वायु से होती है किन्तु चीन में इन दिनों मानसूनी हवाएं वर्षा करती हैं। जाड़ों में चक्रवातों द्वारा भी वर्षा होती है। अमरीका तथा एशिया के इन भू भागों में बहुधा बड़े-बड़े तूफान तथा आंधियां आती हैं जिन्हें टारनेडो तथा टाइफून कहते हैं। दक्षिणी गोलार्द्ध के इन भू-भागों में जाड़ों में चक्रवातों के अतिरिक्त दक्षिणी-पूर्वी ट्रेड हवाओं से भी कुछ वर्षा होती है।

मध्य तथा उत्तरी चीन की जलवायु इस प्रदेश के अन्य भू-भागों से भिन्न है क्योंकि यहां मानसून हवाओं से वर्षा होती है। इस भू-भाग को उष्ण कटिबंधीय मानसून क्षेत्र में नहीं रखा जा सकता है क्योंकि यहां का तापक्रम मानसून क्षेत्र से बहुत कम रहता है। यहां शीत ऋतु में मैदानों तक में बरफ पड़ती है और उत्तरी चीन तो में बड़ी से बड़ी नदियां भी जम जाती हैं। वार्षिक तापान्तर बहुत अधिक होता है।

संयुक्त राज्य स्थित इस प्रदेश में वर्ष भर साधारण वर्षा होती है किन्तु ग्रीष्म काल के अन्तिम महीनों में कुछ अधिक होती है क्योंकि इन दिनों मेक्सिको की खाड़ी से जल सम्पृक्त ट्रेड वायु महाद्वीप के मध्य में स्थित न्यून भार के केन्द्र की ओर चलती हैं। वर्ष में २०० दिन ऐसे होते हैं जब कि पाला नहीं पड़ता है।

ग्रीष्म ऋतु में जल वर्षा होने के कारण इस प्रदेश

में वनस्पति की बहुलता है। किन्तु प्राकृतिक वनस्पति इतनी सघन नहीं है जितनी भूमध्य रेखीय प्रदेशों में क्योंकि इस प्रदेश का औसत तापक्रम तथा औसत वर्षा विषुवत रेखा वाले प्रदेश से कम है। यहां चौड़ी पत्ती वाले सदा बहार वन मिलते हैं जिनमें ओक, लारेल, मेपल, वालनट, केम्फर, मगनोलिया, साइप्रस, बीच तथा केमलिया मुख्य हैं। बांस, ताड़, शहतूत, सिनकोना, सीडर, साइकेमोर, इत्यादि सभी वृक्ष उगते हैं। चाय, काफी तथा अन्य अनेक सुन्दर पुष्पों वाली झाड़ियां भी उगती हैं। यर्बामाटी नामक पेड़ जिसकी पत्ती चाय की तरह प्रयुक्त होती है पेरेग्वे में पैदा होती है। चौड़ी पत्ती वाले वृक्षों के बीच मैदानों में सदा बहार वृक्ष तथा पर्वतों पर नुकीली पत्ते वाले वृक्ष भी मिलते हैं। आस्ट्रेलिया स्थित इस भू भाग में यूकेलिपटस के वृक्ष खूब उगते हैं। दक्षिणी ब्राजील में सीधे और पतले तने वाले तथा छतरीदार वृक्ष उगते हैं। चौड़ी पत्ती वाले वन प्रदेशों में वर्ष भर में एक बार पतझड़ भी होता है जिससे इस प्रदेश की भूमि बहुत उपजाऊ है। इस प्रदेश के उन्नत देशों में वनों को साफ करके इस उपजाऊ भूमि को खेती के काम में लाया जा रहा है और वन केवल पर्वतीय भागों में मिलते हैं।

यह प्रदेश भूमि तथा जलवायु की दृष्टि से कृषि के लिये बहुत उपयुक्त है। इसलिये पिछड़े हुये देशों के अतिरिक्त प्रायः इन सभी भू भागों में खेती का पर्याप्त विकास हो चुका है। इस प्रदेश की मुख्य उपज चावल, कपास, तम्बाकू, चाय, मक्का और गन्ना हैं। अन्य उपज सन, ज्वार-बाजरा, सोया बीन, गेहूँ, तेल तथा अफीम इत्यादि हैं।

संसार में सबसे अधिक कपास उत्पन्न करने वाला कपास का क्षेत्र संयुक्त राज्य अमरीका के इसी प्रदेश में है। यहां कपास के अतिरिक्त तम्बाकू, मक्का गन्ना और चावल भी पैदा होते हैं।

चीनकेइस भूभागमें संसार में सबसे अधिकचावल उत्पन्न होता है। कपास भी काफी पैदा होती। यहां कपास का रेशा चमकदार और मजबूत होता। उत्तरी चीन में ज्वार, बाजरा, सोया बीन और गेहू पैदा किया जाता है। चाय के उत्पादन में चीन का स्थान निस्संदेह ही प्रथम है यद्यपि आंकड़े उपलब्ध नहीं है।

ब्राजील में चावल, मक्का, गन्ना तथा गेहूं उत्पन्न किये जाते हैं। यहां संसार में सबसे अधिक कहवा उत्पन्न होता है। अकेला ब्राजील देश संसार का दो तिहाई कहवा उत्पन्न करता है।

नेटाल (अफरीक) में गन्ना, चावल तथा चाय उत्पन्न होते हैं। यहां इनकी खेती के लिये आदिम निवासी हबशियों द्वारा खेती कराई जाती है। कितने ही हिन्दू और चीनी श्रमिक भी यहां मिलते हैं।

आस्ट्रेलिया के न्युसाउथवेल्स और क्वींसलैण्ड राज्यों में मक्का, गेहूं तथा गन्ना की खेती होती है।

चीन में रेशम के कीड़े पालने का धंधा बहुत उन्नत है। दक्षिणी-पूर्वी आस्ट्रेलिया के तटीय भागों में पशुपालन का धंधा पर्याप्त विकास कर चुका है। ब्राजील और युरुग्वे में भी पशुपालन होता है। भीतरी भागों में भेड़ पाली जाती हैं। यहां संसार में सबसे अधिक ऊन प्राप्त होता है। युरुग्वे में भी भेड़ों को पालने का कार्य होता है। ब्राजील, संयुक्तराज्य अमरीका तथा चीन में सुअर भी पाले जाते हैं। ब्राजील में सुअर के मांस का धंधा काफी उन्नत है। संयुक्त राज्य अमरीका में सूती कपड़े का उद्योग बहुत महत्वपूर्ण है। इस प्रदेश के प्रायः सभी भूभागों में सघन जन संख्या मिलती है। चीन और जापान तो संसार के अत्यन्त सघन जन संख्या वाले देशों में से हैं। आस्ट्रेलिया के तटीय भाग में भी पर्याप्त जन संख्या है। नैटाल में अनेक देशों के निवासी आ बसे हैं। वहां पर भारतीयों की जन संख्या बहुत है। यह लोग वहां बागात उगाने का अच्छा व्यवसाय करते हैं।

यह प्रदेश संसार के उन्नत प्रदेशों में से है और इतना विकास हो चुका है कि यहां जीविकोपार्जन के साधन बहुत सुलभ हैं।

तूरान तुल्य प्रदेश—यह प्रदेश गर्म शीतोष्ण कटिबंध में महा द्वीपों के भीतरी भागों में स्थित है। मध्य एशिया का वह भाग जो मध्यवर्ती पर्वत माला से पश्चिम की ओर कास्पियन सागर तक फैला है उस प्रदेश का सबसे विस्तृत भाग है। रूस का दक्षिणी-पूर्वी भाग इसी प्रदेश में है। उत्तरी अमरीका में मिसीसिपी नदी का बेसिन, दक्षिणी अमरीका में लप्लाटा

का बेसिन तथा आस्ट्रेलिया में मरे डार्लिंग का बेसिन बेसिन इस प्रदेश में सम्मिलित हैं।

इस प्रदेश की जलवायु स्थलीय है। क्योंकि महाद्वीपों के भीतरी भागों में स्थित होने के कारण ये समुद्र के समकारी प्रभाव से वंचित रहते हैं। जलवायु अत्यन्त कड़ी है। ग्रीष्म ऋतु में बहुत गरमी पड़ती है। गरमी का औसत तापक्रम तो लगभग ८० अंश ही है किन्तु अत्यन्त गरमी के दिनों में तापक्रम ११० तक पहुँच जाता है। शीत ऋतु में कड़ाके का जाड़ा पड़ता है। सबसे अधिक शीत वाले महीने में प्रायः सभी स्थानों पर तापक्रम हिमविन्दु या इससे भी नीचे गिर जाता है। दक्षिणी गोलार्द्ध वाले इन भू-भागों में जलवायु इतनी विषम नहीं होती और वार्षिक तापक्रम उत्तरी भागों से कम रहता है क्योंकि यहां प्रभाव विशेष रहता है।

इस प्रदेश की स्थिति ऐसी है कि वर्षा यहां बहुत कम हो पाती है। गरमियों में जब महा द्वीपों के विस्तृत भूखण्ड पर कम भार होता है तो समुद्री वायु इस प्रदेश की ओर चलती है, किन्तु समुद्र तट से प्रायः बहुत दूर स्थित होने के कारण यहां बहुत कम वर्षा हो पाती है किन्तु जो कुछ वर्षा होती है वह गरमियों में ही होती है। गरमियों में कुछ वर्षा हवा में वाहनिक धाराएं उत्पन्न हो जाने से भी हो जाया करती है। जाड़े शुष्क बीतते हैं। क्योंकि इन दिनों स्थल पर अधिक भार होता है और हवाएं स्थल से जल की ओर चलती हैं। उत्तरी अमरीका तथा दक्षिणी अमरीका के इन भूखण्डों में अपेक्षा कृत अधिक वर्षा हो जाती है। यहां की वार्षिक औसत वर्षा २५ इञ्च है। इसका कारण यह है कि ये भूभाग समुद्री हवाओं के मार्गों में पड़ते हैं अतः वे सीधी भीतर तक पहुँच कर काफी वर्षा कर देती हैं। जब एशिया और आस्ट्रेलिया के ये प्रदेश पर्वतों के पीछे पड़ जाने अथवा तट से बहुत दूर होने के कारण शुष्क रहते हैं और वार्षिक वर्षा का औसत लग भग ७ इञ्च है।

इस प्रदेश में इतनी कम वर्षा होती है और तापक्रम भी इतना कम रहता है कि पेड़ नहीं उग पाते। एशिया का यह प्रदेश अर्थात् तूरान तो सर्वथा वृक्षोंसे शून्य है। केवल घास और कटीली झाड़ियां उग सकती हैं। यूरेशिया के स्टेप का दक्षिणी भाग, अमरीका के प्रेरीज का दक्षिणी भाग, दक्षिणी अमरीका के पैम्पास, आस्ट्रेलिया के डार्लिंग डाउन्स इस प्रदेश के अंग हैं।

इस प्रदेश में इतनी कम वर्षा होती है कि बिना सिंचाई की व्यवस्था किये खेती नहीं की जा सकती है। यहां सिंचाई की सहायता से ही गेहूँ और मक्का उत्पन्न किये जाते हैं। उत्तरी और दक्षिणी अमरीका में ये प्रदेश काफी उन्नत हो चुके हैं और यहां गेहूँ, जौ और मक्का की कृषि खूब होती है। इन भागों में वर्षा भी अपेक्षाकृत अधिक होती है और सिंचाई का प्रबन्ध भी अच्छा है। पशु पालन का धंधा तो प्रायः इन सभी भू भागों में होता है किन्तु मध्य एशिया वाले इस प्रदेश में तो पशु पालन ही मुख्य धंधा है। यहां के निवासी खिरगीज कहलाते हैं। ये घूमने-फिरने वाली जाति के हैं। अपने पशुओं, भेड़ बकरियों के समूहों को लिये ये लोग एक चरागाह से दूसरे चरागाह को घूमा करते हैं। ये डेरों में रहते हैं और स्थायी रूप से कहीं निवास नहीं करते। इनके डेरे गोलाकार होते हैं। नदियों के किनारे उगने वाले दलदली पौधों की शाखाओं के ढांचों से ये डेरे बनाये जाते हैं। इस ढांचे पर नमदा या खाल मढ़ दी जाती है। आवश्यकतानुसार इन डेरों को उखाड़ कर दूसरे स्थान पर पुनः फैलाया जा सकता है। इन डेरों को यर्ट कहते हैं। इनकी घरेलू सामग्री हल्की और टिकाऊ वस्तुओं की बनी होती है। इन लोगों का जीवन घूमने-फिरने वालों का अवश्य है किन्तु शीतकाल में ये किसी जलाशय के समीप सुरक्षित घाटी में अपने पक्के मकान बनाते हैं। पशुओं के लिये उन्हें पशु शालायें भी बनानी होती हैं क्योंकि जाड़ों में बड़ी ठंड पड़ती है। मध्य एशिया का अधिकांश भाग मरु प्रदेश है अतः केवल नदियों की घाटियों में सिंचाई द्वारा कुछ कपास, मक्का तम्बाकू और गेहूँ पैदा कर लेते हैं। ऐसे क्षेत्र सर और आमू नदियों की घाटियां हैं।

अमरीका में चरागाहों को साफ करके कृषि की जाती है और गेहूँ मक्का खूब पैदा किया जाता है। सन का बीज, गेहूं और मक्का के व्यापार में अर्जेन्टाइना का प्रमुख भाग रहता है। यहां कृषि के ढङ्गों में अभी काफी विकास किया जा सकता है। इन प्रदेशों

में पशुपालन भी विकसित अवस्था में है। उत्तरी अमरीका के इस भू भाग से तो दूध, मक्खन, पनीर तथा मांस डिब्बों में बन्द करके बाहर भेजे जाते हैं। अर्जेन्टाइना में पशुपालन का धंधा इतना उन्नत नहीं है। यहां के चरवाहे गाचो नाम से विख्यात हैं। और मांस तथा ऊन का व्यवसाय करते हैं। ब्यूनाआयर्स इस व्यवसाय का बहुत बड़ा केन्द्र और मण्डी है।

आस्ट्रेलिया के इस भू-भाग में गेहूँ की खेती होती है और भेड़ पालने का धंधा बहुत होता है। आस्ट्रेलिया के ऊनी व्यवसाय में इस भाग का प्रमुख हाथ है।

दक्षिणी रूस में भेड़ों के पालने का मुख्य उद्यम है। यहां इतनी भेड़ें पाली जाती हैं कि भेड़ों की संख्या के विचार से रूस का संसार में प्रथम स्थान है। भेड़ों से दूध, ऊन और मांस तथा चमड़ा मिलता है।

रूस और उत्तरी अमरीका के इस प्रदेश में मिट्टी का तेल निकाला जाता है। नई दुनिया वाले इन प्रदेशों का पर्याप्त विकास हो चुका है। किन्तु अन्य प्रदेश अभी पिछड़े हुये हैं। रूसी भाग भी काफी उन्नत है।

ईरान तुल्य प्रदेश—यह प्रदेश महाद्वीप के भीतरी भागों में स्थित पठारों का प्रदेश है। किनारे किनारे पर्वतमालाओं से घिरे होने के कारण ये समुद्री प्रभाव से वंचित है। ईरान, अफगानिस्तान बिलोचिस्तान, आरमीनिया, तरीमबेसिन, एशियाई कोचक, मेक्सिको का भीतरी भाग, दक्षिणी मध्य संयुक्त राज्य अमरीका तथा दक्षिणी अमरीका के भीतरी उच्च प्रदेश इसके अन्तर्गत आते हैं।

यह उष्ण रेगिस्तान तथा भू मध्य सागरी जलवायु वाले प्रदेशों के मध्य जलवायु वाला प्रदेश है। ग्रीष्म ऋतु में बहुत अधिक गरमी पड़ती है। आकाश स्वच्छ रहता है। वर्षा बिलकुल नहीं होती है। धूप असह्य होती है। तापक्रम ११० अंश तक पहुँच जाता है। शीतकाल में बहुत अधिक सरदी पड़ती है। तापक्रम हिम बिन्दु से भी गिर जाता है। रात्रि को बहुत अधिक पाला पड़ता है। तेहरान नगर का जनवरी का औसत तापक्रम हिम बिन्दु से कुछ ही ऊपर अर्थात् ३४ अंश होता है। ईरान और उसके निकटवर्ती भागों में वर्षा शीतकाल में होती है। बहुधा जल वर्षा के स्थान पर हिम गिरा करती है। वर्षा का औसत पठारी भागों में १५ अंश के लगभग है। अन्य भागों में गरमी में वर्षा होती है और वर्षा का औसत इससे अधिक होता है। ऐसे प्रदेश मेक्सिको और दक्षिणी अफ्रीका के भू भाग हैं। इस प्रदेश में वर्षा की कमी का कारण यह है कि ये प्रदेश समुद्र से दूर हैं अथवा पहाड़ी श्रेणियों की ओट में हैं।

इस प्रदेश के निवासियों का प्रधान व्यवसाय पशु-चराना तथा पशुपालन है। यहां की प्राकृतिक वनस्पति घास है। यहां के निवासी ऊँट, घोड़े, भेड़ तथा बकरियों के समूहों को लेकर इधर-उधर चराते फिरा करते हैं। ये डेरों में जीवन बिताते हैं। भेड़ों से ऊन प्राप्त की जाती है तथा बकरियों के मुलायम बाल भी ऊन की तरह काम में आते हैं। एशियाई कोचक की अंगोरा नामक बकरी इसके लिये प्रसिद्ध है। इनके बालों से कम्बल और नमदे बनाये जाते हैं। ईरान में ऊनी गलीचों का व्यवसाय प्राचीन समय से होता है और ये गलीचे संसार भर में प्रसिद्ध हैं। दक्षिणी अफ्रीका के इस भू-भाग में काफी ऊन प्राप्त होती है। अफगानिस्तान की दुम्बा भेड़ों से अच्छी ऊन मिलती है।

कृषि की दृष्टि से इस प्रदेश का महत्व बहुत कम है। यहां के निवासी खेती बहुत कम करते हैं। यहां पर वर्षा बहुत कम होती है और भूमि भी बहुत कम उपजाऊ है। इसी कारण कृषि नहीं हो पाती है। नदियों की घाटियों में जहां पर सिंचाई के साधन वर्तमान हैं और सिंचाई हो जाती है वहीं पर खेती की जाती है। खेती में गेहूं मक्का, कपास तथा तम्बाकू इत्यादि फसलें उगाई जाती हैं। मेक्सिको प्रदेश मुख्यतः मक्का की उपज के लिये प्रसिद्ध है।

उपज तथा आर्थिक साधन—भू-मध्य सागरी प्रदेशोंमें यद्यपि सभी खेतों में व्यवसायिक तथा जीवन निर्वाह करने वाली खेती सम्भव नहीं है फिर भी दोनों प्रकार की खेती की जाती है। यह दोनों प्रकार की खेती विभिन्न परिस्थितियों पर निर्भर करती हैं।

यदि वर्षा पर्याप्त होती है, शहरी प्रदेशों में उपज जाने की सुविधा होती है, किसान चतुर, कुशल होते हैं और सरकार चुंगी लगा कर तथा खेती के कार्यों में बीज, धन और सिंचाई के साधन आदि प्रदान करके सहायता प्रदान करती है तो व्यवसायिक खेती होनी सम्भव हो जाती है। उत्तरी अफ्रीका जिसमें मरक्को, अल्जीरिया तथा ट्यूनिस भी शामिल हैं, वहां पर वर्षा कम होती है और इन स्थानों के निवासी जौ, शराब तथा जैतून के तेल का उत्पादन करते हैं। मान जो वाक्विन घाटी में भी कम वर्षा होती है और वहां के निवासी दाख, किशमिश तथा साग भाजियों की उपज करते हैं। यूनान में खासकर दाख तथा किश-मिश और शराब तैयार की जाती हैं। स्पेन में संतरा, नरङ्गी जैतून का तेल और शराब का उत्पादन होता है। दक्षिणी कैलेफोर्निया सिंचाई की सहायता से शीत काल में नारङ्गियों तथा साग भाजियों की उपज करता है। चूंकि इटली में गेहूँ की मांग अधिक है, सरकार की ओर से सहायता भी प्राप्त है और परम्परा भी बनी आई है इसलिये वहां पर गेहूँ की काफी उपज हो जाती है। मध्य चिली देश में जो कि शहरी बाजारों से अधिक दूर स्थित है वहां पर भूमध्य सागरीय प्रदेश की अधिक उपज होती है जो कि देश के भीतर ही खप जाती है। दक्षिणी अफ्रीका जो कि योरुपीय बाजारों से बहुत दूर स्थित है वहां पर संतरा आदि सिटरस फल खूब होता है। आस्ट्रेलिया में विभिन्न प्रकार का अनाज होता है। वहां चराई का व्यवसाय खूब होता है और किशमिश भी खूब होती है। चराई वाले स्थानों को छोड़ कर अन्य सभी स्थानों पर गहरी खेती की जाती है। परन्तु बारी-बारी से फसलों के उत्पादन का काम कम होता है। मिश्रित कृषि तो पर्याप्त मात्रा में की जाती है। सिंचाई वाले स्थानों में भी विशेष प्रकार की उपज को जाने के कारण एक ही खेत में बारी-बारी से फसलों के उत्पादन का काम नहीं होता है। यद्यपि इन प्रदेशों की मिट्टी में खनिज पदार्थों का बाहुल्य है फिर भी पशुओं द्वारा प्राप्त तथा व्यवसायिक खाद का विशेष प्रयोग होता है।

भू-मध्य सागरी प्रदेश में साधारण नम शीतकाल, गरम तथा शुष्क ग्रीष्म काल तथा पर्वतों की समीपता, निचले मैदानों, तथा घाटियों की अलग अलग स्थिति के फल स्वरूप चार प्रकार के उत्पादन क्षेत्रों का विकास हो गया है जो कि जोताई-बोआई तथा पशुपालन के स्थान से एक-दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध रखते हैं (१) मौसमी वर्षा की सहायता से अनाज तथा साग-भाजियों को उत्पन्न करने वाले प्रदेश। (२) जैतून, अञ्जीर, खजूर, अंगूर के बगीचों वाला प्रदेश; (३) सिंचाई द्वारा ग्रीष्म कालीन फलों, साग-भाजी तथा मवेशियों के चारे के लिये उत्पादन करने वाले प्रदेश।

उपर्युक्त विभाजित प्रणाली के कारण उपज अच्छी होती है। उपज करने का सारा काम हाथ के सहारे किया जाता है। भूमध्य सागर का बेसिन, मध्य चिली तथा दक्षिणी अफ्रीका में हाथ के द्वारा ही कृषि कार्य किया जाता है; केलीफोर्निया और आस्ट्रेलिया में किसान लोग जोताई, बोआई और कटाई में मशीनों का प्रयोग करते हैं। परन्तु पौधों के लगाने, सींचने तथा फलों की कटाई आदि का सारा काम हाथ से होता है। अब ऐसी मशीनों का आविष्कार नहीं हो पाया है कि पौधों का लगाना तथा फलों और साग-भाजियों की फसल की कटाई का काम मशीन द्वारा किया जा सके। भूमध्य सागरी प्रदेश की फसलों को समस्त संसार के बाजार में खपत करने के लिये सहकारी समितियों तथा सरकारी निरिक्षिणों की सहायता प्राप्त होती है।

मौसमी वर्षा तथा नमी की सहायता से

गल्ले तथा साग-भाजी की उपज—भूमध्य सागरीय प्रदेशों में मौसमी नमी तथा वर्षा की सहायता से पतझड़, शीतकाल और बसंत ऋतु में उपज की जाती है। भूमध्य सागरीय क्षेत्रों की खास उपज जौ तथा गेहूँ है। दक्षिणी केलीफोर्निया में गेहूँ होता है। पतझड़ ऋतु में प्रथम वर्षा होने पर अच्छी तरह से तैयार किये हुए खेतों में गेहूँ तथा जौ बोया जाता है। चार इनकी फसलें सरदी के महीनों में उगती और बढ़ती हैं। बसंत ऋतु में इनमें शाखें निकलती हैं और बालें आती हैं इसके पश्चात् शुष्क ऋतु आने पर फसलें पकने लग जाती हैं। गरमी का मौसम आते ही फसल

पक जाती है और कटाई होती है। पहाड़ी भूमि तथा सूखी भूमि में जौ तथा गेहूँ की फसलें बहुत अच्छी तैयार होती हैं।

इटली में खेतिहर भूमि के ५३ प्रतिशत भाग में जौ, गेहूँ तथा मक्का की खेती होती है। अल्जीरिया में कृषक भूमि के ९२ प्रतिशत भाग में अनाज की उपज होती है जिसमें ४६ प्रतिशत भूमि में गेहूँ और जौ की फसल बराबर-बराबर होती है। यूनान की कृषि वाली भूमि के ७५ प्रतिशत भाग में अनाज की उपज की जाती है जिसमें ५० प्रतिशत भूमि में गेहूँ और जौ बोया जाता है। पानी तथा नमी की कमी से इन भागों में जैतून तथा राई की उपज कम होती है।

समस्त भू मध्य सागरी प्रदेश में शुष्क खेती होती है। शुष्क कृषि के लिये फसल तैयार करने के लिये अन्तर से भूमि को एक वर्ष के लिये परती रखना पड़ता है। जिस खेत में एक साल फसल उगाई जाती है उसे दूसरे वर्ष परती रखा जाता है और फिर तीसरे साल उसमें फसल उगाई जाती है। इसी प्रकार एक वर्ष का अन्तर रख कर फसलों की उपज की जाती है। खेतों को भली भांति जोतना और हेंगे से उसकी मिट्टी को समतल करना पड़ता है। परती रखने से भूमि में नमी आ जाती है और उसकी उर्वरा शक्ति बढ़ जाती है परती वाली भूमि को पतझड़ शीतकाल तथा वसंत काल में वर्षा होने पर तीन बार जोता जाता है ताकि जमीन पानी सोखती रहे। गरमी के दिनों में चौथी बार जोत कर हेंगे से भूमि समतल कर दी जाती है ताकि गरमी से नमी न सूख सके। यदि दो वर्ष तक लगातार वर्षा का अभाव या कमी हो जाती है तो यहां के किसान नष्ट हो जाते हैं। केलीफोर्निया तथा दक्षिणी गोलार्द्ध के भू मध्य सागरी प्रदेशों में खेतों के बड़े बड़े फार्म होते हैं और खेती विस्तृत रूप से की जाती है जिसमें मजदूरों की आवश्यकता कम पड़ती है। भू-मध्य सागरी देशों में साग-भाजी की उपज खूब होती है और उसका निर्यात भी खूब किया जाता है। केलीफोर्निया से संयुक्त राज्य अमरीका को साग-भाजियां भेजी जाती हैं। बाजारों में ताजी साग भाजी की पूर्ति के लिये साल भर लगातार इनकी उपज की जाती है। यदि ताजी साग-भाजियां नहीं भेजी जा सकतीं और उनका स्टाक अधिक होता है। तो उन्हें सुखा कर रख लिया जाता है। साधारणतः साग-भाजियों की उपज मानव श्रम से छोटे-छोटे खेतों में की जाती है परन्तु केलीफोर्निया में इसकी उपज मशीन के सहारे की जाती है।

ढालों और झरनों पर बगीचों की खेती—

भूमध्य सागरीय जलवायु वाले प्रदेशों में बहुतेरे क्षेत्रों में ढालों तथा झरनों पर जैतून, अञ्जीर खजूर और अंगूर के बगीचे लगाये जाते हैं और सिंचाई के अभाव में ही उनकी उपज की जाती है। वसंत ऋतु के आगमन पर इन बगीचों के वृक्षों तथा पौधों में बौर लगते हैं या फूल आते हैं और पतझड़ या ग्रीष्म ऋतु में फल आते हैं।

भूमध्य सागर के प्रदेश में जैतून का पौधा खूब उगता है। यह इस प्रदेश में अति प्राचीन काल से उगता चला आ रहा है। यद्यपि यहां से संसार के अन्य भागों में यह उगाया जाने लगा है, परन्तु फिर भी संसार में जितनी भूमि में जैतून के बाग हैं उसका ९० प्रतिशत भाग भूमध्य बेसिन में ही स्थित है और इस क्षेत्र से समस्त संसार को जैतून का निर्यात किया जाता है। जैतून की खेती में विशेष मेहनत की आवश्यकता नहीं पड़ती है। शीतकाल में जैतून के पौधों को काट छांट दिया जाता है। उसके बाद खाद दे दी जाती है और पौधों के चारों ओर की भूमि को जोत दिया जाता है। जोतने के पश्चात् हेंगे से मिट्टी बराबर कर दी जाती है। इन पौधों के मध्य स्थित भूमि में शीतकालीन अन्न, साग-भाजी तथा अंगूर आदि की फसलें उगाई जाती हैं।

अंजीर भी भूमध्य सागर के बेसिन का पौधा है। इसकी जड़ें बहुत फैलती हैं और डालें कम होती हैं। आस्ट्रेलिया, दक्षिणी अफ्रीका, चिली और केलीफोर्निया में भी अंजीर के कुछ बाग लगाये जाते हैं। संयुक्त राज्य अमरीका की अञ्जीर वाली खपत का तिहाई भाग केलीफोर्निया से आता है। जैतून की भांति ही अञ्जीर के पौधे को भी विशेष तौर से जोतना और कमाना नहीं पड़ता है। घरेलू भूमि में जो अञ्जीर के वृक्ष लगाये जाते हैं उनके फलों को वर्ष प्रदेश का

१७—संसार के सन, रबर और अंगूर (शराब) उत्पन्न करने वाले क्षेत्र

१८—संसार के पशु सुअर

भय रहता है। इन वृक्षों के मध्य भी अन्य प्रकार की फसलें उगाई जा सकती हैं।

अधिक शुष्क तथा गर्म भागों में खजूर के बाग लगाये जाते हैं। इस पौधे को गरमी की विशेष रूप से आवश्यकता है।

भूमध्य सागर से जिन स्थानों पर साल में १४ इञ्च या इससे अधिक वर्षा होती है वहां पर अंगूर के बगीचों की खेती की जाती है। भूमध्य सागर के बेसिन, आस्ट्रेलिया, दक्षिणी अफ्रीका और चिली में अंगूरी खेती शुष्क कृषि प्रणाली द्वारा की जाती है। विभिन्न प्रकार की भूमि में तथा विभिन्न प्रकार की भूमि में तथा विभिन्न प्रकार की जलवायु तथा वातावरण में विभिन्न प्रकार के अंगूरों के बगीचे लगाये जाते हैं जिनसे दाख, किशमिश और मदिरा तैयार किया जाता है। यद्यपि समस्त भूमध्य सागरीय जलवायु वाले प्रदेशों में दाख, किशमिश तथा मदिरा के लिये अंगूर का उत्पादन होता है, परन्तु इन तीनों प्रकार की वस्तुओं के लिये विशेष रूप से अलग-अलग क्षेत्र स्थापित नहीं किये गये हैं। केवल कुछ ही भाग ऐसे हैं जहां पर खास तौर की वस्तु तैयार करने के लिये इसकी उपज की जाती है, उदाहरण के रूप में स्पेन के मलाका जिले में किशमिश तैयार करने के लिये अंगूर की उपज की जाती है और उत्तरी पुर्तगाल में अंगूरों की उपज की जाती है।

अंगूर के पौधे कई-कई फुट की दूरी पर लगाये जाते हैं ताकि वह अपने लिये अधिक विस्तृत भूमि से खुराक प्राप्त करते हैं पतझड़ की ऋतु तक अंगूर नहीं पकते हैं और उस समय तक अंगूरों के वृक्षों को विभिन्न प्रकार की जलवायु सम्बन्धी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। प्रत्येक फसल कटने के पश्चात् तथा पत्तियों के झड़ने के बाद अंगूरों की बेल छांट दी जाती है। छांटने से उनमें नई कोंपलें निकलती हैं। वर्षा होने पर उनके बागों को जोत दिया जाता है ताकि उनकी भूमि पानी सोखले। गरमी की ऋतु में पुनः उन्हें जोतकर हेंगे से भूमि समतल कर दी जाती है ताकि मिट्टी की नमी न सूखे। छांटे गये पौधों से जो नई टहनियां निकलती हैं वे अपने नीचे छाया कर लेती हैं और इस प्रकार उनके नीचे की भूमि सूखने नहीं पाती है। यद्यपि अंगूरों के पौधों को ग्रीष्म काल की भीषण गरमी तथा वर्षा का सामना करना पड़ता है। फिर भी गरमी, शुष्क वायु तथा सूर्य के प्रकाश से अंगूरों के भीतर मिठास की मात्रा एकत्रित होती है। जिन स्थानों पर अंगूर के बागों में अन्य फसलें उगाई जाती हैं वहां पर अंगूर की उपज उन स्थानों की अपेक्षा कुछ कम होती है जहां पर अंगूर के बगीचों में और दूसरी फसलें नहीं उगाई जाती हैं। स्पेन में अंगूरों की १५ प्रतिशत भूमि में और इटली की ७० प्रतिशत अंगूरी भूमि में मिश्रित खेती की जाती है।

सिंचाई द्वारा उत्पन्न किये जाने वाले फल साग-भाजियां और चारा

सिंचाई द्वारा उत्पन्न किये जाने वाले फल साग-भाजियां और चारा—भूमध्य सागरी खेतों में गहरी खेती को विशेष स्थान प्राप्त है। चूंकि भूमध्य सागरीय प्रदेशों में पर्वतों की अधिकता है इसलिये इन पर्वतों पर शीत काल में जो बरफ पड़ती है वह बसन्त तथा ग्रीष्म काल में धीरे-धीरे पिघल कर नदियों और झरनों के द्वारा पानी के रूप में बहकर घाटियों तथा मैदानों में आती और सिंचाई के साधन उपलब्ध करती है। चूंकि इन प्रदेशों में साधारण ढालू वाली भूमि है इसलिये सब कहीं समान रूप से सिंचाई हो सकती है। सिंचाई के लिये कुएं भी खोदे जाते हैं। सिंचाई वाले पानी से न तो बाढ़ का भय रहता है और न उससे निरादन वाली घासें ही उगती हैं। चूंकि ग्रीष्म ऋतु में वर्षा होती है, धूप खूब रहती है और गरमी भी काफी होती इसलिये फलों, साग भाजी तथा चारों की उपज गहरी कृषि प्रणाली के अनुसार किया जाता है।

केलीफोर्निया का देश सिंचाई के ध्यान से समस्त भू-मध्यसागरीय प्रदेश से भिन्न है। वहां पर सिंचाई साधन विशेष हैं और सिंचाई द्वारा वहां की ६० लाख एकड़ भूमि का दो तिहाई भाग सींचा जाता है। केलीफोर्निया में शुष्क खेती को निरुत्साहित किया जाता है जैसा कि अन्य भू-मध्यसागरीय प्रदेशों में नहीं है। यद्यपि भू मध्यसागरीय प्रदेशों में सब कहीं अंगूरों की उपज शुष्क कृषि प्रणाली के अनुसार की जाती है परन्तु केलीफोर्निया में इसके विपरीत सिंचाई द्वारा अंगूरों का उत्पादन किया जाता है। केलीफोर्निया की विभिन्न प्रकार की भूमि में विभिन्न प्रकार के अंगूर उत्पन्न किये जाते हैं।

संयुक्त राज्य के अंगूरी बगीचों का तीन-चौथाई भाग केलीफोर्निया में स्थित है। वहां के अधिकांश बगीचों की सिंचाई होती है परन्तु खाद नहीं दी जाती है। शीतकाल में वर्षा होती है। परन्तु उस समय अंगूर के पौधे सुषुप्त अवस्था में रहते हैं। इसी ऋतु में पहाड़ों पर बरफ गिरती है जो वसंत तथा ग्रीष्म ऋतु में सिंचाई के लिये पानी देती है। यद्यपि बीच बीच में पाला पड़ता रहता है परन्तु उससे अंगूरों को कोई हानि नहीं होती है। अंगूरों की कलियों के निकलने के बाद पाले का भय रहता है परन्तु। चूंकि शीतकाल में ही बेलों की काट छांट होती है इसलिये कलियों के निकलने वाला समय पाले वाली ऋतु में नहीं पड़ता है।

जब अप्रैल महीने में अंगूरों में कलियां निकलने लग जाती हैं तो सिंचाई की जाती है। मौसम भर में केवल दो या तीन बार सिंचाई की जाती है। गर्म तथा कड़ी धूप वाले दिनों से अंगूर बढ़ते हैं। इनके नीचे जो घास उगती हैं, उन्हें जोताई तथा हंगाई करके नष्ट कर दिया जाता है।

जुलाई महीने में सिंचाई बन्द कर दी जाती है और इस प्रकार अंगूरों के तैयार होने वाली फसल अगस्त मास से अक्तूबर मास को ढाल दी जाती है। गरमी की ऋतु से अंगूर बढ़ते हैं और उनमें खूब रस तथा मिठास उत्पन्न होती है। अगस्त से सितम्बर तक खूब गरमी पड़ती है जिससे बहुत अच्छा अंगूर तैयार होता है। वर्षा से खराबी उत्पन्न होती है। एक तो खेतों में घास उग आती हैं जो खुराक खींच लेती है दूसरे यह कि वर्षा से अंगूरों की मिठास में कमी आ जाती है और कीड़े-मकोड़ों का भी भय हो जाता है। परन्तु सौभाग्य से वर्षा इस काल में बहुत कम होती है जो कि नहीं के बराबर ही है।

अगस्त मास के अन्तिम दिनों में अंगूरों की फसल की चुनाई आरम्भ की जाती है, और सितम्बर तक होती रहती है। यह समय काम में बहुत अधिक व्यस्त रहने का समय होता है क्योंकि इस समय अंगूरों में खूब रस रहता है और इसी समय उनकी चुनाई पूरी हो जानी चाहिये। अंगूरों की चुनाई के लिये अधिक मजदूरों की आवश्यकता होती है और इसीलिये अन्य भागों से अंगूर की फसल तैयार होने के समय मजदूर आ जाते हैं।

अंगूरों को सुखाकर किशमिश तैयार करने में तीन सप्ताह का समय लगता है। इस अवधि में पानी बिल्कुल नहीं बरसना चाहिये। यदि अभाग्य से पानी का थोड़ा भी फुहारा पड़ गया तो बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है और कभी-कभी तो वर्षा हो जाने से सारी किशमिश की फसल सत्यानाश हो जाती है।

मानसूनी प्रदेशों से भू-मध्यसागरीय प्रदेश में चकोतरा तथा सिटरस फलों को लाकर लगाया गया था। इन फलों को अधिक वर्षा तथा गरमी की आवश्यकता होती है। इसी कारण भू-मध्यसागरीय प्रदेशों में इनके बगीचे अपेक्षाकृत कम हैं फिर भी यह फल काफी बड़ी संख्या में उत्पन्न और निर्यात किये जाते हैं। जब इनकी फसल तैयार हो जाती है तो इनको हाथ से तोड़ा जाता है और फिर निर्यात करने वाले स्थानों को भेजा जाता है जहां पर इनको धोकर साफ किया जाता है और फिर श्रेणियों में छांट कर इन्हें जहाजों पर लादा जाता है।

सिटरस की भांति ही मानसूनी प्रदेश के सभी प्रकार के फल तथा साग भाजियां भू-मध्यसागरीय प्रदेश में उगाये जाते हैं। साग-भाजियों के बगीचे भू-मध्य सागर में सभी स्थानों पर देखने को मिलते हैं। साग-भाजी के पौधों को अच्छी तरह से जोता-बोया तथा सींचा और खाद दिया जाता है। स्थानीय बड़े बड़े नगरों में साग भाजियों की काफी मांग रहती है जिसकी पूर्ति की जाती है। इसके अतिरिक्त यह विदेशों को भेजी जाती है।

फलों तथा साग-भाजियों के अतिरिक्त सभी मानसूनी प्रदेशों में पशुओं के लिये घासें तथा अन्य प्रकार के चारों की उपज की जाती हैं। चारे की आवश्यकता इसलिये होती है कि इन प्रदेशों में पशुपालन का धंधा व्यवसायिक तौर पर किया जाता है। चराई वाली भूमि में तथा चरागाहों में भेड़-बकरियों के गल्ले पाले जाते हैं। पशुओं से दूध, मक्खन, पनीर, और मांस तथा चमड़ा प्राप्त होता है।

अर्ध मरुस्थल-प्रदेशों में व्यवसायिक खेती

अर्ध मरुस्थलों में अभी हाल ही कृषि व्यवसाय की उन्नति हुई है और वह विस्तृत तथा मशीन वाली दोनों ही है। पहले इन प्रदेशों में घूमने फिरने वाली जातियों के लोग तथा गल्ला बानी और पशुपालन करने वाली जातियां निवास करती थी और वे ही वहां की कृषि वाली भूमि का प्रयोग करती थीं। ये प्रदेश नम तथा मरुस्थलों के मध्य स्थित हैं और समुद्र से दूर स्थित हैं। उन्नीसवी शताब्दी के मध्य काल के लगभग जब रेल-मार्गों का इन प्रदेशों में प्रसार हुआ तो इन क्षेत्रों में स्वय चालित फौलादी हलों की खेती जानी आरम्भ की गई और मशीनों द्वारा फसल काटने का काम आरम्भ किया गया। इसका मतलब यह था कि जब योरुप के उन्नतिशील साम्राज्यवादी लोग इन प्रदेशों में पहुंचे तो उन्होंने इन प्रदेशों में अपना राज्य स्थापित किया और अपने उपनिवेश स्थापित करने के ध्यान से तथा अपने लाभ और हित में यहां मशीनों द्वारा खेती का संचालन किया। चूंकि इन प्रदेशों में श्रमिकों की कमी थी और जो थे भी वह शासक वर्ग के प्रतिकूल थे। इसलिये मशीनों द्वारा ही खेती का काम उन्होंने आरम्भ किया। उपनिवेशों के बसाने वालों को मशीनों द्वारा खेती करने के लिये इन स्थानों पर अपनी एक बहुत बड़ी पूंजी लगानी पड़ी क्योंकि इन प्रदेशों में खेती का जो कार्य आरम्भ किया गया था वह आत्म-निर्भरता के लिये तो किया नहीं गया था वरन् व्यवसाय के ध्यान से किया गया था। इसलिये सारी की सारी मशीनी व्यवस्था तथा वैज्ञानिक कृषि के सभी साधनों को उपलब्ध करना पड़ा और उन पर हजारों डालर पूंजी लगानी पड़ी। यहां पर जो लोग खेती करने के शौकीन होते हैं उन्हें सामानों काम में आने वाले पशुओं, खासकर घोड़ों या ट्रेक्टरों पर ३ हजार डालर से अधिक की लागत लगानी पड़ती है। इसके साथ ही साथ कृषि सामग्री की मरम्मत उस पर पड़ने वाला दैनिक व्यय तथा मशीनों की बदलाई आदि का व्यय सहन करने के पश्चात् भी यदि साल-दो-साल की फसल खराब हो गई तो बड़ी हानि होती है इसलिये इन प्रदेशों में खेती करना बड़ा साहसी कार्य है और केवल धनी व्यापारी या व्यवसायी अथवा उपनिवेशों के बसाने वाले ही इस कार्य में लग सकते हैं। यदि यहां के बड़े पैमाने पर खेती करने वाले किसानों की फसल खराब हुई, जो कि बहुधा इन प्रदेशों में होती है, तो फिर उन्हें बहुत बड़ा घाटा होता है क्योंकि न केवल उनका समय नष्ट होता है वरन् उसे बहुत अधिक नकदी रूप के में हानि उठानी पड़ती है क्योंकि उसे खर्च का हिसाब तो चुकता करना ही पड़ता है चाहे फसल हो या न हो। चूंकि मशीन वाली खेती में प्रति वर्ष फार्मों के बनाने तथा जमीन को तैयार करने में निर्धारित व्यय करना ही पड़ता है इसलिये यदि इन प्रदेशों के किसानों के पास अच्छी फसल के सालों का कुछ बचा हुआ शेष रहता भी है तो वह समाप्त हो जाता है।

इन प्रदेशों में संसार के गेहूँ और धान दोनों सर्वोत्तम अनाजों की उत्पत्ति सबसे अधिक की जाती है। अर्ध मरुस्थली प्रदेशों में की जाने वाली विस्तृत खेती का सबसे उत्तम उदाहरण गेहूँ की खेती में और मानसूनी प्रदेशों में की जाने वाली गहरी खेती में सबसे उत्तम उदाहरण धान की खेती है। गेहूँ की खेती सस्ती भूमि तथा महँगे श्रम तथा बहुत ही कम बसे प्रदेशों में की जाती है जब कि चावल की खेती महँगी भूमि तथा सघन बस्ती वाले प्रदेशों में सस्ते श्रम के वातावरण में की जाती है। गेहूँ बड़े-बड़े फार्मों में जिनका क्षेत्रफल बहुधा १०० एकड़ होता है, उगाया जाता है। चावल की खेती छोटे-छोटे खेतों में की जाती है जो कि एक-दूसरे के समीप नहीं स्थित होते हैं। गेहूँ की उपज प्रति व्यक्ति पीछे ऊँची तथा अधिक परन्तु प्रति एकड़ पीछे कम होती है और धान की खेती प्रति व्यक्ति पीछे कम और प्रति एकड़ भूमि पीछे अधिक होती है। गेहूँ की उपज मशीनों द्वारा होती है और चावल की उपज हाथों के सहारे की जाती है। गेहूँ की बिक्री बाजारों में नकदी रुपयों के लिये की जाती है जब कि चावल उत्पादकों के घरों में ही खप जाता है। गेहूँ की गणना संसार के अन्तर्राष्ट्रीय

व्यापार में सबसे अधिक है जब कि चावल की गणना अपेक्षाकृत बहुत कम है।

संयुक्त राज्य अमरीका, कनाडा, अर्जेन्टाइना, आस्ट्रेलिया और रूस द्वारा अर्ध मरुस्थलों में व्यवसायिक गल्लों की खेती की जाती है। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य देशों में भी थोड़ी बहुत कम मात्रा में की जाती है। यद्यपि अर्ध मरुस्थलों की कृषक भूमि में उपजाई जाने वाली फसल में गेहूँ की फसल ही सबसे अधिक प्रसिद्ध है परन्तु इसके अतिरिक्त इन प्रदेशों में जैतून, राई, जौ, मक्का, सन, जंगली तथा घरेलू घास, कम पाई जाने वाली तरकारियाँ तथा फल आदि भी पर्याप्त मात्रा में उगाये हैं जाते हैं।

उत्तरी अमरीका के अर्ध मरुस्थलों में गल्ले की खेती—उत्तरी अमरीका में अर्ध मरुस्थली भूमि में जो व्यवसायिक खेती होती है उसमें मध्य संयुक्त राज्य अमरीका तथा कनाडा की बसन्त कालीन गेहूँ की फसल, मध्य संयुक्त राज्य अमरीका तथा कोलम्बिया के पठार की शीत कालीन गेहूँ की फसल सबसे प्रसिद्ध हैं।

उत्तरी अमरीका के वसंत कालीन गेहूँ के प्रदेश

उत्तरी अमरीका में वसंत ऋतु में गेहूँ की फसल विशेष रूप से संयुक्त राज्य अमरीका के चार राज्यों ,उत्तरी डाकोटा, दक्षिणी डाकोटा, मान्टाना, और मिनेसोटा तथा कनाडा के तीन प्रान्तों मैनीटोबा, सस्क्यवान और अल्बर्टा में होती है। उत्तरी अमरीका की वसंत कालीन गेहूँ वाली पट्टी की गणना संसार में व्यवसायिक अन्न की उपज में सबसे अधिक है। अर्ध मरु स्थली भूमि में मशीनों द्वारा व्यवसायिक खेती की यह एक प्रसिद्ध मिसाल है।

इन प्रदेशों की भूमि में विशाल लम्बे चौड़े मैदान स्थित हैं जहां की धरती या तो चपटी है और या साधारण लहरदार मैदान हैं जिनमें पत्थर की शिलाओं के शिलाओं के रोड़े वर्तमान नहीं है, उनमें बड़ी-बड़ी मशीनें सरलता पूर्वक चल सकती हैं। बसन्त कालीन गेहूँ का पश्चिमी प्रदेश पहले छोटी-छोटी घासों का मैदान था और इसका पूर्वी भाग प्रेरी लम्बी घासों का विशाल मैदान था। कनाडा के इन मैदानों में १२ इञ्च तथा संयुक्त राज्य अमरीका के मैदानों में लगभग ३० इञ्च वर्षा होती थी जिसके फलस्वरूप उनमें घास उगती थी। कनाडा में जो यह अल्प वर्षा होती है वह अन्न की उपज के लिये पर्याप्त हो जाती है क्योंकि वहां पर मौसिमों का विभाजन अति उत्तम है और ग्रीष्म ऋतु में ठंडक पड़ती है जिससे नमी भाप बनाकर कम उड़ती है। फिर भी यदि वहां पर वर्षा में किंचित मात्र भी कमी हो जाय तो फसल समूची की समूची नष्ट हो सकती है। यद्यपि उत्तरी भागों में गेहूँ उगाने की ऋतु छोटी होती है जो कि केवल ६० दिन की होती है फिर भी इस ऋतु में तुषार आदि से बहुधा हानि नहीं होती है। कनाडा में वसंत ऋतु के आरम्भ में बरफ गलने लग जाती है और पौधे जोरों के साथ बढ़ने लगते हैं। इस ऋतु में वहां १५ से १८ घटे का दिन होता है।

चूंकि ग्रीष्म काल में अल्प वर्षा होती है और लम्बे शीत काल में भूमि बरफ से जमी रहती है इस लिये वहां की भूमि की मिट्टी संसार भर में सर्वोत्तम है। इन मैदानों में काली से लेकर भूरी तक समस्त प्रकार की मिट्टियां वर्तमान हैं। मिट्टी अधिक गहराई तक वर्तमान है और उनकी जोताई-बोआई बड़ी-बड़ी मशीनों द्वारा सरलता पूर्वक हो सकती है। यदि यहां की भूमि उपजाऊ होती तो बिना खाद-पांस के इतने वर्षों तक कभी भी खेती नहीं की जा सकती थी। अनेक खेतों में लगातार २० वर्षों तक बिना खाद-पांस दिये हुये तथा खेती बिना परिवर्तन किये हुये ही गेहूँ की फसलें काटी गई हैं।

वसंत कालीन गेहूँ वाले प्रदेशों की खेती का मौसमी दशाओं के साथ गहरा सम्बन्ध होता है। इन विशाल प्रदेशों के फार्मों में लम्बे शीत काल की सर्दी से रक्षा करने के लिये अच्छे मकानों के बनाने की आवश्यकता होती है और गरमी प्राप्त करने के लिये कोयला तथा लकड़ी अथवा जलाने वाली वस्तु की आवश्यकता होती है। यहां पर वृक्षों का नाम तक नहीं है। सारी सामग्री बाहर से लानी पड़ती है। इस लिये इन फार्मों में काम करने वालों तथा रहने वालों को समीपवर्ती नगरों में जाकर कोयला या लकड़ी का प्रबन्ध करना पड़ता है। फार्मों में मकानों के बनाने,

खलिहानों तथा खत्तियों के निर्माण करने, अन्न-भंडारों के बनाने और मशीनों के लिये शेड बनाने में कई वर्षों की फसल का लाभांश व्यय करना पड़ता है। यद्यपि शीतकाल में कोई उपज नहीं की जाती है फिर भी किसानों को जिस प्रकार की बरफ गिरती है उससे भविष्यत फसल का आभास तथा अनुमान प्राप्त होता है। यदि बरफ पर्याप्त मात्रा में पड़ जाती है तो उससे धरती पूरी तौर पर नम हो जाती है और उससे जो फसल उगाई जाती है उसके पौधे शीघ्र ही उगते और बढ़ते हैं और यदि बसन्त कालीन वर्षा देर से भी हुई तो भी कोई हानि नहीं होती है। परन्तु इन प्रदेशों में ऐसी बरफीली आँधियाँ आती हैं कि ऐसी अवस्था बहुधा नहीं उत्पन्न होती है। साधारणतया उत्तरी पूर्वी हवा से बरफ गिरती है। परन्तु बरफीली आंधी के अन्त में हवा का भाग बढ़ जाता है और वह उत्तर-पश्चिम की ओर तेजी के साथ जाती है और तब तापक्रम शीघ्रता के साथ गिर जाता है। इसलिये हवा ऊँचे आड़ वाले स्थानों तथा गड्ढों में सूखी बरफ को ले जाकर जमा कर देती है। इसलिये बसन्त ऋतु की बरफ से पिघला हुआ बहुत कम जल खेतों को प्राप्त होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि हवा के तेज झोंको से बरफ उड़कर हवा की आड़ वाले स्थानों तथा गड्ढों में जमा हो जाती है और खेतों में बहुत कम शेष रहती है। जो खेत ढालों पर नहीं होते हैं उन्हीं में कुछ बरफ जमी रहती है। यदि बरफ पड़ने के पश्चात् थोड़ी गरमी पड़ जाती है और तेज हवा नहीं चलती है तो बरफ का ऊपरी भाग पिघल जाता है और उससे समतल बरफीले धरातल पर ऊची-नीची बरफ की चोटियाँ बन जाती हैं तो फिर उस पर जो बरफ गिरती है वह तेज से तेज आंधी द्वारा हटाई नहीं जा सकती है।

नीचा ताप होने तथा मामूली बरफीली सतह के कारण तुषार साधारणतया ३ फुट की गहराई तक चला जाता है और बसन्त का काम करने लगता है। ऐसी दशा में जब तक ८ इञ्च तक की गहराई की बरफ गल नहीं जाती है तब तक जोताई नहीं की जाती है और चूकि धरती के नीचे की जमीन सरदी से जमी रहती है इसलिये साधारण रूप से जो बहाव होता है उससे जोताई कठिन हो जाती है। जो मशीनें जमीन में केवल कुछ इञ्च की गहराई तक जा सकती हैं उनसे जोताई नहीं हो सकती है। यदि कोई फसल देर से बोई जाती है तो ग्रीष्म कालीन वर्षा से उसे हानि हो सकती है उसमें कीड़े-मकोड़े लग जाते हैं और यदि जल्दी तुषार या पाला पड़ता है तो उससे भी फसल जल जाती है।

बसन्त ऋतु में बीजों को जमने के लिये पर्याप्त वर्षा आवश्यक है। परन्तु ऐसी दशा में ताप अल्प समय के लिये पर्याप्त नीचा होना चाहिये ताकि पौधों में एक या दो अखुये निकल आवें। यदि जमीन अधिक नम तथा गरम होती है तो पौधा बहुत शीघ्र उगता और बढ़ता है, उसकी जड़ें कम फैलती हैं। इस लिये जब शुष्क ऋतु पौधों के उगने तथा बढ़ने वाले काल में आती है तो जड़ें पौधे को खुराक नहीं पहुँचा सकतीं।

समस्त संसार में व्यवसायिक कृषि-प्रदेशों तथा चरागाहों के लिये वर्षा अत्यन्त आवश्यक है और वर्षा की अधिकता तथा अभाव का उन पर विशेष प्रभाव पड़ता है। १६३४ ई० में संयुक्त राज्य अमरीका में बहुत दीर्घ समय तक वर्षा होती रही। यह वर्षा मुख्यतः घास के मैदानों तथा गेहूँ के मैदानों में हुई उस वर्ष संयुक्त राज्य अमरीका की ६ करोड़ ४० लाख एकड़ भूमि की फसल खराब हो गई थी। १६३० से १६३५ ई० तक लगातार सूखा पड़ा, वर्षा नहीं हुई। तेज हवा चलती रही। जिससे लाखों एकड़ भूमि की फसल खराब हो गई। गणना के अनुसार इस काल में १५०,००० के लगभग लोग तबाह हो गये। अधड़ों तथा वर्षा के अभाव से लोग परेशान होकर अपने-अपनी फार्मों की सारी सामग्रियां मशीन आदि छोड़ कर अपनी अपनी जानें लेकर संयुक्त राज्य अमरीका के अन्य भागों को भाग गये जहां पर बड़ी कठिनाई से उन्हें रहने के लिये स्थान प्राप्त हो सके।

संयुक्त राज्य अमरीका के ६५ प्रतिशत नकदी दाम देने वाली फसलें उन प्रदेशों में होती हैं जहां पर पहले घास के मैदान थे। और अब वहां पर बड़े पैमाने पर मशीनों से खेती हो सकती है। संयुक्त राज्य अमरीका

अच्छी नहीं होती है इसलिये इन प्रदेशों में बसंत कालीन गेहूँ वाले क्षेत्रों से कम बारी-बारी से विभिन्न प्रकार की फसलों का उत्पादन किया जाता है। यहां ढालू स्थानों पर जो गेहूँ बोया है, वह जाता है, उगता और कुछ बढ़ता है उसके बाद उसका बढ़ना शीत काल में रुक जाता है और जब फिर गरम बसंत ऋतु आ जाती है तो वह शीघ्रता के साथ बढ़ता है और ग्रीष्म ऋतु के आरम्भ में काट लिया जाता है। इस सघन बस्ती वाले प्रदेश में जो खेत हैं वह बसंत कालीन गेहूँ वाले क्षेत्रों की अपेक्षाकृत क्षेत्रफल में आधे के बराबर होते हैं। इस प्रदेश में मशीनों द्वारा विस्तृत खेती की जाती है और बसंत कालीन गेहूँ की भांति ही विषम शीत कालीन गेहूँ का अधिकाश भाग आटा पीसने वाले केन्द्रों को भेज दिया जाता है और वहां से पूर्वी तथा विदेशी उपयोक्ताओं के पास पहुँचाया जाता है।

कोलम्बियाई पठार का गेहूँ प्रदेश—

कोलम्बिया के पठारों की भूमि आग्नेय पर्वतों की लावा तथा राख की बनी हुई है और बहुत अधिक उपजाऊ है। यह प्रदेश संसार के प्रसिद्ध गेहूँ उत्पादक क्षेत्रों में से गिना जाता है। पहले इस पठार पर छोटी-छोटी घासों वाला मैदान स्थित था। यहां पर वर्षा कम होती है। यहां की भूमि न केवल बनावट में अच्छी है वरन् यहां की मिट्टी में उपज शक्ति वाले खनिज भी वर्तमान हैं और पौधों की भोजन सामग्री वर्तमान है। इस पठार की भूमि ऊँची नीची तथा ढालों वाली बनी है। वायु की ओर जो ढाल होते हैं उनमें मशीनों द्वारा खेती होनी कठिन होती है और ऐसी हवा के कारण इतनी खराब हो जाती है कि उनका प्रयोग खेती के लिये होना कठिन हो जाता है। ऐसे स्थानों पर कटूर कृषि प्रणाली द्वारा खेती का काम मशीनों के द्वारा किया जाता है। यद्यपि इस पठार की अधिकाश भूमि लावा मिट्टी की गहरी तह से पटी है फिर भी पुरानी नदियों के स्रोतों वाली भूमि की मिट्टी कट-गई है और कट कर आग्नेय शिलाओं तक पहुँच गई है। इस प्रदेश में अधिकांश रूप से केवल एक फसल उगाई जाती है। यहाँ पर शीत तथा बसंत कालीन दो फसलें नहीं होती हैं। चूंकि इस प्रदेश में वर्षा कम होती है और शुष्क कृषि प्रणाली द्वारा खेती की जाती है और दो या तीन वर्षों में केवल एक ही बार फसल उगाई जाती है इसलिये यहां की भूमि आज भी अच्छी बनी हुई है। यदि यहां पर लगातार ४० वर्ष कृषि की गई होती तो यहां की भूमि ऐसी कदापि नहीं बनी रह सकती थी। चूंकि दो तीन वर्षों से भूमि में नमी जमा रहती है और हवाओं के झोंके से मिट्टी आ-आकर पड़ी रहती है इसलिये जमीन की मिट्टी उपज करने के लिये अच्छी होती है। यहां पर अनेक स्थानों पर साल भर में केवल १० इञ्च वर्षा होती है। वर्षा की कमी की पूर्ति नीचे वाष्पक्रम तथा साधारण गरमी से होती है। चूंकि वर्षा कम होती है और जमीन की मिट्टी को बार-बार जोत कर तैयार किया जाता है इसलिये मिट्टी की नमी नहीं निकलने पाती है और उसमें जो फसल उगाई जाती है उसे बीमारियों तथा कीड़े-मकोड़ों आदि का कम भय रहता है। निरावन वाली घासें भी कम उपजती हैं। इस प्रदेश में चाहे बसंत कालीन फसल हो और चाहे शीत कालीन गेहूँ के ऐसे बीजों की उन्नति करली गई है जिनकी फसल अधिक समय तक खड़ी रह सकती है और उन्हें व्यय बचाने के लिये कम्बाइन मशीनों द्वारा काटा जाता है। इस प्रदेश में गेहूँ के खेतों तथा मैदानों से जो मार्ग नीचे रेल मार्गों वाली घाटियों को जाते हैं वे इतने अधिक गहरे हैं कि गेहूँ के बोरों को तारों द्वारा रेलवे लाइन पर चलने वाली मोटर गाड़ियों या ट्रकों पर उतारा जाता है। इस प्रदेश का अधिकाश गेहूँ रेलों के द्वारा पश्चिम की ओर सियाटिल या पोर्ट लैण्ड स्थानों को भेजा जाता है।

संयुक्त राज्य अमरीका तथा कनाडा में चूंकि बहुत अधिक संख्या में गेहूँ की उपज होती है। इसलिये वहां की स्थानीय खपत से जो गेहूँ बच जाता है वह रेल, झील, नदी तथा सड़कों के मार्गों से गल्ले की मंडियों को भेजा जाता है और फिर उन केन्द्रों से से बन्दरगाहों तथा विभिन्न नगरों को पहुँचाया जाता है। पोर्ट चर्चिल गेहूँ की एक बड़ी मंडी है और वह ट्रांसमार्ग पर स्थित है। प्रिंस अलबर्ट से पोर्ट चर्चिल की दूरी हडसन की खाड़ी वाला मार्ग बहुत थोड़े समय

१९—संसार के पशु—भेड़
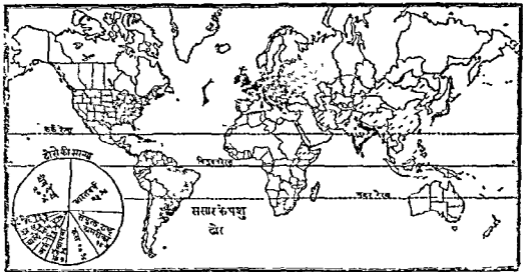
२०—संसार के पशु—ढोर

तक ही खुला रहता है। संसार के अग्रगण्य गेहूँ की उपज करने वाले क्षेत्रों की अपेक्षा संयुक्त राज्य अमरीका तथा उत्तरी अमरीका के गेहूँ उत्पादक प्रदेश अधिक भीतर की ओर स्थित हैं और वे समुद्र से अधिक दूर पड़ते हैं। इसलिये अमरीकी किसान को ट्रकों पर १० या १५ मील लेजाने में उतना ही व्यय पड़ता है जितना कि रेल मार्गों द्वारा ५०० मील लेजाने या जहाज द्वारा ३००० मील ले जाने में पड़ता है।

अन्य प्रदेशों में अर्द्ध मरुस्थली गल्ले की खेती—

दक्षिणी गोलार्द्ध के कितने ही ऐसे प्रदेश हैं जहां पर बड़े पैमाने पर व्यवसायिक खेती करने तथा गेहूँ को अच्छे लाभ पर निर्यात करने के लिये अति उत्तम दशायें तथा साधन वर्तमान हैं।

अर्जेन्टाइना का गेहूँ का प्रदेश—अर्जेन्टाइना का गेहूँ वाला विशाल प्रदेश ६०० मील लम्बा है। इस प्रदेश की धुर पश्चिमी सीमा पर लगभग १६ इञ्च सालाना वर्षा होती है। इस विशाल क्षेत्र की धुर पूर्वी सीमा पर फसल के समय वर्षा होती है, जमीन नीची तथा दलदली है और खेती का काम विस्तृत रूप से होता है। यद्यपि अर्जेन्टाइना के इस अर्धचन्द्राकार विशाल प्रदेश में खास तौर पर गेहूँ की फसल उगाई जाती है, परन्तु यहां पर अन्य प्रकार के व्यवसाय भी होते हैं। प्रायः प्रत्येक स्थान अल्फा पर घास उगाई जाती है और मांस के लिये गौ पालन का व्यवसाय होता है। उत्तरी गर्म भागों में मक्का और सन की उपज की जाती है और दक्षिणी ठंडे भागों में जैतून तथा जौ की फसलें उगाई जाती हैं। साधारण शीतकाल तथा बसन्त कालीन नमी से गेहूँ के पौधों को उगने, और बढ़ने में विशेष रूप से सहायता मिलती है और उसके बाद जब बालें निकल आती हैं तो शुष्क तथा धूप के मौसम में बालों के पकने तथा गेहूँ को कड़ा और सख्त बनाने में विशेष रूप से सहायता मिलती है।

अर्जेन्टाइना में भूमि की बनावट, मिट्टी के धरातल, जलवायु तथा वर्षा के अनुकूल विभिन्न प्रकार के गेहूँ की उन्नति की गई है। गेहूँ की फसल अधिक समय तक खड़ी रहती है और उसमें किसी प्रकार की बीमारी नहीं लगती है। कीड़े-मकोड़ों से कोई हानि नहीं पहुँचती है तथा कड़ी धूप और तेज हवा में बालों से गेहूँ नहीं झड़ता है। बालें भी टूट कर नहीं गिरती हैं। यहां के गेहूँ के अधिकांश भाग की तुलना संयुक्त राज्य अमरीका तथा कनाडा में उपजने वाले सख्त गेहूँ से भली भांति की जा सकती है। अर्जेन्टाइना के गेहूँ वाले प्रदेशों में काली भूरी मिट्टी से लेकर बलुई नमकीन तथा लोने वाली मिट्टी तक पाई जाती है जिसमें पानी को सोखने की बड़ी शक्ति वर्तमान रहती है और बड़ी अच्छी तथा भारी उपज होती है। अर्जेन्टाइना में औसत से प्रति एकड़ भूमि में १२ बुशल गेहूँ पैदा होता है जब कि संयुक्त राज्य अमरीका में एक एकड़ में १४ बुशल की पैदावार होती है। यद्यपि प्रति एकड़ के पीछे उपज कम है परन्तु जिस कुशलता के साथ गेहूँ की फसल उपजाई जाती है उससे प्रति बुशल के पीछे कम व्यय होता है और प्रति व्यक्ति के पीछे अधिक उपज होती है।

फसल काटने के समय अर्जेन्टाइना में चूंकि शुष्क ऋतु होती है और खेतों की भूमि समतल है इस लिये फसल के समय बड़ी बड़ी मशीनों का प्रयोग हो सकता है। दिसम्बर मास के आरम्भ काल से जनवरी मास के आरम्भ काल तक फसलों के काटने, ढोने तथा मांड़ने का काम मशीनों द्वारा किया जाता है। २ पहिये वाली बड़ी-बड़ी गाड़ियों तथा ४ पहिये वाली ट्रकों पर बोरों में भर कर गेहूँ स्थानीय रेलवे स्टेशनों पर भेजा जाता है जहां पर वह बड़े बड़े ढेरों के रूप में बोरों की तहों पर तहें जमा कर एकत्रित किया जाता है और पतझड़ कालीन वर्षा से उनकी रक्षा कनवस से ढक कर की जाती है। इसके पश्चात् वहां से रेल-मार्गों द्वारा वह गेहूँ समुद्री बन्दरगाहों पर भेजा जाता है। अर्जेन्टाइना के बन्दरगाह आज के भंडारों से अधिक से अधिक ३६१ मील की दूरी पर स्थित हैं।

आस्ट्रेलिया में गेहूँ का उत्पादन— आस्ट्रेलिया में खासकर दो भागों में गेहूँ की उपज की जाती है। इनमें से सब से अधिक प्रसिद्ध तथा उपयोगी मरे-डार्लिंग नदी का बेसिन है। इस बेसिन में अर्ध मरुस्थली मैदान स्थित हैं और दूसरा क्षेत्र देश के दक्षिणी-पश्चिमी भाग में भूमध्य सागरीय प्रदेश का है।

यहां की जमीन की बनावट, आर्थिक दशायें तथा खेती करने के साधन अर्जेन्टाइना के भांति ही हैं। अर्जेन्टाइना और आस्ट्रेलिया दोनों ही देशों में किसी किसी वर्ष बहुत अधिक सूखा पड़ जाता है और किसी किसी वर्ष फसल के समय अधिक वर्षा हो जाती है जिससे फसल को भीषण हानि पहुँचती है और उत्पादन में बहुत अन्तर पड़ जाता है। चूंकि आस्ट्रेलिया राष्ट्र मंडली देश है इसलिये उसके गेहूँकी खपत राष्ट्र मंडली देशों मेंहोती है और उसके गेहूँ को अन्य देशों के गेहूँ से विशेष सुविधाएं प्राप्त हैं।

सोवियत संघ में गेहूँ का उत्पादन—१६१७ ई० की रूसी क्रान्ति तथा उसके पश्चात् देश में गड़बड़ी होने के कारण और क्रान्ति के पश्चात् वहां पर जो सरकार स्थापित की गई संसार के साम्राज्य वादी तथा पूँजी वादी देशों से उपेक्षा करने के नाते सोवियत् संघ के गेहूँ उत्पादन के व्यवसाय को गहरा धक्का लगा था और उसका गेहूँ संसार के बाजारों में कम खरीदा जाता था। परन्तु १६३६ ई० के महासमर के पश्चात् जब रूस विजयी होकर निकला तो उसकी धाक संसार में जम गई और अनेक राष्ट्र उसके मित्र हो गये जिससे रूसी गेहूँ की मांग पहले की अपेक्षा कुछ बढ़ गई है।

रूस की साम्यवादी सरकार ने अपनी चतुर्मुखी पंच वर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत अपने समस्त उत्पादनों में बहुत अधिक उन्नति प्राप्त की है। गेहूँ के उत्पादन में भी उसने आशा से अधिक उन्नति की है। रूस में सारा कृषि कार्य बड़ी-बड़ी मशीनों के द्वारा किया जाने लगा है। यूराल प्रदेश तथा साइबेरियाई प्रदेश और उत्तर के विशाल रूसी मैदानों में कृषि द्वारा गेहूँ का उत्पादन किया जाने लगा है।

रूस की कृषि भूमि की बनावट, प्राकृतिक दशायें, जलवायु और वर्षा प्रायः वैसी हैं जैसी कि संयुक्त राज्य अमरीका की है। रूस में कैस्पियन सागर के समीप तथा उत्तर-पश्चिम की ओर बहुत अधिक गेहूँ पैदा होता है। रूस में दक्षिणी पश्चिमी रूस से लेकर साइबेरिया के मध्यवर्ती भाग तक एक विशाल कृषि क्षेत्र फैला हुआ है। इस समस्त प्रदेश में न केवल गेहूँ ही की उपज की जाती है वरन् अन्य प्रकार की फसलें भी उगाई जाती हैं। रूस के इन विशाल मैदानों में मशीनों की सहायता से सामूहिक तथा सहकारी समितियों के आधार पर विस्तृत रूप से खेती की जाती है। अब रूस के विभिन्न क्षेत्रों को रेलों और सड़कों द्वारा मिला दिया गया है जिससे खेती में बड़ी सहायता मिलती है। चूंकि रूस की सरकार अपने सभी प्रदेशों तथा भागों को प्रत्येक दृष्टि से आत्म निर्भर बनाने में दृढ़ है इस लिये रूस के सभी प्रदेशों में गेहूँ की खेती मशीनों द्वारा सामूहिक तथा विस्तृत तौर पर की जाती है।

यूराल से बैकाल झील तक प्रेयरी के सामान मिट्टी पाई जाती है। जो गेहूँ की खेती के लिये अत्यन्त उपयुक्त है। ट्रांस साइबेरियन रेल द्वारा यातायात की सुविधा बढ़ जाने से गेहूँ की कृषि में बड़ी उन्नति हुई है। भविष्य में भी यहां गेहूँ की उपज बढ़ाने के लिये पूर्ण रूप से सम्भावना है।

गेहूँ का विश्व व्यापार और भविष्यत पूर्ति—यद्यपि गेहूँ की खपत करने वाले अधिकांश देशों में गेहूँ की उपज की जाती है परन्तु कुछ ही ऐसे देश तथा क्षेत्र हैं जहां की उपज वहां की खपत के समान है। संसार के विभिन्न देशों से प्रायः २० करोड़ टन गेहूँ का निर्यात होता है। यह मात्रा कोयले से नीचे तथा अन्य सभी वस्तुओं से बढ़ कर है। गेहूँ के इस बड़े विश्व व्यापार के दो मुख्य कारण हैं पहला कारण तो यह है कि गेहूँ अन्य धान्यों की अपेक्षा कुछ अधिक मजबूत होता है और खाने में अधिक स्वादिष्ट तथा शक्ति वर्धक होता है। दूसरे यह कि गेहूँ की उपज प्रायः अधिक तर अर्ध मरुस्थली प्रदेशों में होती है जहां पर बहुत कम बस्ती है और वहां पर जो उपज होती है उसकी वहां पर बहुत कम खपत होती है परिणाम स्वरूप वहां का अधिकांश गेहूँ उन प्रदेशों को निर्यात किया जाता है जहां की जन संख्या सघन है और खाद्य सामग्री की मांग अधिक है। इसके अलावा कुछ ऐसे भागों में भी गेहूँ की मशीनों की सहायता से विस्तृत खेती की जाती है जहां पर उपज के साधनों का अभाव है। उन स्थानों पर उपज के सारे साधन ऋण के आधार पर उपलब्ध किये जाते हैं। इसलिये ऋण का मूलधन और उसका ब्याज चुकता करने

दूसरी बात यह है कि तीन वर्षों तक लगातार कृत्रिम खाद देने के पश्चात, उर्वरा शक्ति में स्वयं ह्रास आ जाता है और फिर उपज बढ़ाने के लिये जमीन को परती रखने तथा पशुओं के गोबर की खाद का ही आश्रय लेना पड़ता है।

इसी के साथ-साथ अनुभव यह भी बतलाता है कि मशीनी खेती तथा कृत्रिम खाद द्वारा की जाने वाली खेती में कुछ ही वर्षों के पश्चात् विभिन्न प्रकार की बीमारियाँ होने लग जाती हैं और कीड़े-मकोड़े पैदा होने लग जाते हैं जिससे फसल को प्रति वर्ष हानि होने लगती है। फिर भी मानवजाति को अपने प्राण-रक्षा तथा शरीर-पालन के लिये अधिक से अधिक अन्न उपजाने की आवश्यकता है।
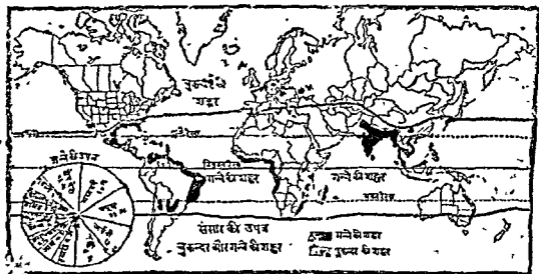
१२—संसार की उपज चुकन्दर और गन्ने की शक्कर

मिश्रित खेती

कृषि व्यवसाय का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। पशु पालन भी इसी का अंग माना गया है। जब फसल उत्पन्न करने साथ-साथ कृषक पशु पालन सम्बन्धी कार्य उदाहरणार्थ दुग्ध-उद्योग, मुर्गी पालना, भेड़ बकरियां पालना, रेशम के कीड़े पालना इत्यादि कार्य करता है तो ऐसी कृषि को मिश्रित खेती के नाम से पुकारते हैं। कुछ अशों में इस प्रकार की कृषिप्रणाली अर्ध मरुस्थली व्यवसायिक कृषिप्रणाली से मिलती जुलती है क्योंकि यह व्यवसायिक तथा मशीन वाली है। इस प्रकार की कृषि में विभिन्न प्रकार के अनाजों की उपज होती है। खेतों में मक्का, गेहूँ, जैतून, सोया बीन तथा चारे वाली विभिन्न प्रकार की फसल उगाई जाती है। भारतवर्ष, तथा मानसूनी प्रदेशों में गेहूं, जौ, चना, ज्वार बाजरा, मक्का, रेंडी, अरहर उरद, मूंग, मटर, मसूर, तिल, अलसी, सरसों, मूंगफली, शकरकन्द, आलू, गन्ना आदि विभिन्न प्रकार की फसलें उत्पन्न की जाती हैं। मिश्रित कृषि-प्रणाली के कृषक के पास यदि फसल अधिक हो जाती है और फसल का अनाज व्यय से बच जाता है तो उसे भी वह बेच देते हैं। परन्तु नगदी धन पैदा करने के लिये वे पशु, सुअर, मुर्गियों, भेड़-बकरियां इत्यादि पालते हैं। भारतवर्ष, ईरान, चीन, जापान, पूर्वी द्वीप समूह, लंका, बरमा, पाकिस्तान आदि देशों में घोड़े, गधे गाय, भैंसे, बैल पक्षियां इत्यादि सभी पशु पाले जाते हैं। पश्चिमी देशों में जो पक्षी तथा पशु पाले जाते हैं वे केवल मांस प्राप्त करने के लिये पाले जाते हैं। पश्चिमी देशों जैसे अमरीका में आदमियों के पास यदि ८० से १६० एकड़ तक भूमि होती है तो उपज काफी हो जाती है। इस प्रकार के फार्मों में मशीन का प्रयोग खेती करने के लिये किया जाता है। बीजों के चुनाव, खेतों की जोताई तथा तैयारी, बोआई और पौधों के चुनने आदि में विशेष रूप से ध्यान दिया जाता है। मिट्टी में अच्छी तरह से सेया जाता है तथा रखवाली की जाती है और पशुओं के पालन-पोषण का का विशेष रूप से ध्यान दिया जाता है। इन फार्मों के किसान तथा किसान-परिवार के लोग ही अपने खेतों का सारा काम करते हैं। केवल खेतों की जोताई, बोआई तथा कटाई के समय ही अतिरिक्त मजदूरों की आवश्यकता पड़ती है इस प्रणाली के अन्तर्गत कृषि करने वाला किसान अन्य प्रणालियों के अनुसार काम करने वाले किसान से कहीं अधिक उन्नति शील तथा ऊँचे जीवन-स्तर वाला होता है। इस प्रकार की खेती करने वाला प्रत्येक प्रदेश का किसान अपने फार्म या खेत में ही निवास करता है। चूंकि खेत तथा फार्म बहुत बड़े नहीं होते हैं इसलिये फार्मों के किसान एक-दूसरे से बहुत दूर नहीं रहते हैं और उनके समीप ही बाजार वाले नगर स्थित होते हैं और सख्या में बहुत अधिक होते हैं। यद्यपि इस प्रकार की खेती समस्त संसार के भागों में पाई जाती है, परन्तु संयुक्त राज्य अमरीका में इसका बाहुल्य है।

मक्का की पट्टी—संयुक्त राज्य अमरीका में जिस भाग में मक्का की खेती की जाती है वहां के किसान अन्य प्रकार की खेती वाले किसानों से कहीं अधिक उन्नतिशील तथा कर्म योगी हैं। उनका रहन-सहन तथा जीवन स्तर औरों की अपेक्षा कहीं अधिक ऊंचा है। वहां की जमीन की बनावट, जलवायु, वातावरण, वर्षा मक्का के उपज के लिये इतनी अनुकूल है कि मक्का के नाम पर ही उसका नाम कान बेल्ट या मक्का की पट्टी हो गया है। यद्यपि इस पट्टी में संयुक्त राज्य अमरीका की ८ प्रतिशत भूमि स्थित है परन्तु यहां पर संयुक्त राज्य अमरीका की उपज का २५ प्रतिशत भाग उत्पन्न होता है। साधारणतया इस मक्का की पट्टी में औसत से एक वर्ग मील भूमि में ५,००० बुशल मक्का, २५०० बुशल जैतून, १००० बुशल गेहूँ और १५० टन घास उत्पन्न होती है और भूमि का चौथाई भाग चराइ के लिये सुरक्षित रहता है। इस समस्त उपज का जो मूल्य होता है वह इतनी भूमि में अन्य प्रदेशों में होने वाली उपज के मूल्य से कहीं अधिक होता है। इस पट्टी में संयुक्त राज्य अमरीका का ५० प्रतिशत मक्का तथा जैतून, २५ प्रतिशत गेहूँ तथा घास, उत्पन्न होती है और यहां पर

राज्य का एक पांचवां भाग पशुओं का, चौथाई भाग घोड़ों तथा मुर्गियों का और प्रायः आधा भाग सुअरों का होता है।

भूमि की यह पट्टी ६०० मील लम्बी तथा १५० से ३०० मील तक चौड़ी है। श्वेत वर्ण वालों की बस्ती के पूर्व इस प्रदेश के पूर्वी भाग में वन थे तथा पश्चिमी भाग में घास के मैदान स्थित थे। यहां की जमीन प्रेरी है।

प्रेरी तुल्य प्रदेश—यह प्रदेश ४५ से ६० उत्तरी अक्षांशों के मध्य महाद्वीपों के मध्य भागों में केवल उत्तरी गोलार्द्ध में मिलता है क्योंकि दक्षिणी गोलार्द्ध के महाद्वीपों का विस्तार इन अक्षांशों में है ही नहीं। दक्षिणी अमरीका की केवल पतली सी दक्षिणी नोक का विस्तार इन अक्षांशों में है। किन्तु उसमें इस प्रकार के भीतरी भाग नहीं मिलते। इस भूखंड के अन्तर्गत पश्चिमी साइबेरिया, मध्य योरूपीय रूस, पोलैंड, हंगारी, रोमानिया तथा जर्मनी के कुछ भाग और दक्षिणी मध्य कनाडा और उत्तरी मध्य संयुक्त राज्य सम्मिलित हैं।

इसी प्रदेश की जलवायु स्थलीय है। इसलिये बहुत कड़ी है। वार्षिक तापान्तर बहुत कम रहता है। शीत ऋतु में कड़ाके की सरदी पड़ती है, बर्फीली तेज हवाएं चलती हैं। जनवरी का औसत तापक्रम हिमबिन्दु से भी नीचे होता है। ग्रीष्म ऋतु में गरमी पड़ती है और जुलाई का औसत तापक्रम लगभग ७० अंश रहता है।

वर्षा बहुत कम होती है। वार्षिक वर्षा का औसत १०" से २०" तक रहता है। उत्तरी अमरीका वाले भूखंड में वर्षा का औसत अपेक्षाकृत अधिक होता है। यों तो वर्ष भर कुछ न कुछ वर्षा होती ही रहती है, किन्तु मई, जून तथा जुलाई के महीनों में अधिक वर्षा हो जाती है। इन तीन महीनों में बड़े जोर की वर्षा हो जाती है और पानी वेग से बहकर जलाशयों में भर जाता है। इन दिनों यहां हवा की अनिश्चित धाराओं से भी वर्षा होती है क्योंकि स्थल के अत्यधिक तप जाने से हवाएं गर्म हो कर ऊपर उठती हैं और ऊपर की हवाएं नीचे की ओर आती हैं। ऊपर जा कर गर्म हवाएं ठंडी हो जाती हैं और इस प्रकार वर्षा प्राप्त हो जाती है। एशिया के इस भूखंड में वर्षा पश्चिम से पूर्व को कम होती जाती है, पूर्वी योरुप में वर्षा का औसत २० इञ्च तथा पश्चिमी साइबेरिया में केवल १० इञ्च है क्योंकि यहां पछुआ हवाओं को रोकने के लिये पश्चिम की ओर कोई पर्वत नहीं हैं। अमरीका में पूर्व से पश्चिम को वर्षा कम होती जाती है क्योंकि पश्चिम का भाग तो राकी पर्वतों की वृष्टि-छाया के प्रदेशों में आ जाता है और पूर्व के भाग में खाड़ी के चक्रवातों से वर्षा प्राप्त हो जाती है। अतः यहां वर्षा का वार्षिक औसत २० इञ्च से कुछ अधिक होता है। शीत ऋतु की वर्षा हिम-वर्षा के रूप में होती है और इन दिनों पाला भी बेहद पड़ता है।

इस प्रदेश में वर्षा कम होती है और जो कुछ होती है उसका अधिकांश गर्मी ऋतु में होता है जब कि वाष्पीकरण अधिक होता है। इन भागों की मिट्टी छिद्रमयी होती है। अतः तेज हवाओं के समय वृक्षों को भली भांति सम्हाले नहीं रख सकती। इस प्रदेश की मुख्य वनस्पति घास है। इन घास के मैदानों में वृक्षों का चिन्ह तक नहीं मिलता है। घास भी उष्ण घास के मैदानों की तरह लम्बी नहीं हो पाती। इन घास के मैदानों को उत्तरी अमरीका में प्रेरी और यूरेशिया में स्टेप कहते हैं।

इस प्रदेश का प्रधान व्यवसाय खेती के साथ ही साथ पशुपालन है। यहां के निवासी गाय, भैंस, घोड़े, भेड़ें इत्यादि पालते हैं। इस प्रदेश के साइबेरिया वाले भू भाग की घास मीठी तथा विशेष पोषक होती है और यहां के घास के मैदान बड़े विस्तृत हैं। अतः यहां पशु पालन तथा दुग्ध-घी उद्योग के लिये पर्याप्त विकास की गुञ्जाइश है। इन घास के मैदानों में अनेक जङ्गली जीव मिलते हैं। वर्षा के अभाव के कारण यह प्रदेश कृषि के अनुकूल तो नहीं है किन्तु सिंचाई की व्यवस्था कर के मिश्रित कृषि का आश्रय लेकर विकास किया गया है और अनेक खाद्यान्न बोये जाते हैं जिनमें गेहूँ मुख्य है। यहां की नम बसन्त ऋतु गेहूँ उगाने के लिये तथा ग्रीष्म काल के अन्तिम गर्म और शुष्क महीने इसके पकने के लिये अनुकूल होते हैं। गेहूँ के बाद जौ, जई, राई इत्यादि का स्थान

है। गर्म भागों में जहां गर्मी के अंतिम महीनों में कुछ वर्षा हो जाती है। मक्का की खेती की जाती है। यद्यपि इस प्रदेश में कृषि का विकास हुये अधिक समय नहीं हुआ किन्तु यहां की खाद्यान्न उत्पत्ति इतनी अधिक हो गई है कि ये भाग विश्व के खाद्यान्न भंडार कहलाते हैं और संसार के औद्योगिक देशों को अन्न भेजते हैं।

उत्तरी अमरीका के इस प्रदेश में यूरेशिया की अपेक्षा अधिक विकास हो चुका है। यहां पर कृषि के क्षेत्र में बड़ी प्रगति हुई है। वैज्ञानिक विधियों द्वारा ही सारे कृषि कार्य किये जाते हैं। जिसका फल यह हुआ है कि संयुक्त राज्य और कनाडा संसार के दो प्रमुख गेहूँ उत्पादक बन गये हैं।

योरुपीय रूस ने भी जब से वह साम्यवादी प्रभाव में आया है आशातीत विकास प्राप्त किया है। यहां सरकार द्वारा सामूहिक कृषि व्यवस्था का आयोजन किया गया है। अब यह देश जई, जौ, सन इत्यादि कई पदार्थों की उत्पत्ति में अग्रणी गिना जाता है। गेहूँ तथा चुकन्दर के उत्पादन में भी रूस का प्रमुख स्थान है। कपास भी पर्याप्त मात्रा में उगाई जाती है।

साइबेरिया वाले प्रदेश में यातायात की असुविधाओं के कारण विकास की गति रुकी हुई थी। किन्तु ट्रांस साइबेरियन रेलवे लाइन के बन जाने के बाद यहां भी काफी विकास हो चला है। सोवियत प्रभाव से यहां कृषि के विकास की गति तीव्र हो गई है। इस भू-खंड को भविष्य का अन्न-भंडार कहा जाता है।

मक्का के उत्पादक क्षेत्र—इस अनाज को अमरीका में 'कार्न', इङ्गलैंड में 'इंडियन कार्न', तथा अफ्रीका में मीलीज कहते हैं। भारतवर्ष में इसको मक्का या मकई कहते हैं। यह नई दुनिया का आदि निवासी पौधा है। अमरीका से यह कोलम्बस द्वारा योरुप लाया गया था। अमरीका में इसे सुअरों और पशुओं को खिलाया जाता है। इससे माँड़ी, ग्लूकोज इत्यादि भी तैयार होते हैं। इसकी हरी पत्तियों से साइलेज चारा बनाया जाता है। कुछ देशों में इसके सूखे पौधों से कागज बनता है। छप्पर बनाने के लिये भी इसके सूखे पौधों का प्रयोग होता है।

मक्का उपोष्ण कटिबंधीय पौधा है। इसके लिये साधारण गर्म तथा पर्याप्त नम जलवायु चाहिये। पाला इसके लिये हानिकारक होता है। इसलिये पाला पड़ना आरम्भ होने के पहले ही इसकी फसल कट जानी चाहिये। भारतवर्ष में बोई जाने वाली मक्का की फसल साठ से अस्सी दिन में तैयार हो जाती हैं। लेकिन अमरीका और योरुप में इसकी फसल के तैयार होने में पूरा समय लगता है। इसलिये लम्बी ग्रीष्म ऋतु वाले प्रदेशों में ही इसकी खेती की जाती है। ७५ से ८० तक तापक्रम तथा २० इञ्च से ४० इञ्च तक वर्षा चाहिये। निश्चित विक्षेप के साथ इसे वर्षा प्राप्त होती रहनी चाहिये। जहां वर्षा कम है वहां सिंचाई की उत्तम व्यवस्था की जानी आवश्यक है। सूडान तुल्य प्रदेश मक्का की कृषि के लिये आदर्श क्षेत्र हैं। उष्ण कटिबन्ध के पहाड़ी भाग में मक्का की पैदावार प्रति एकड़ काफी अधिक है। शीतोष्ण प्रदेशों के गर्म भाग तो मक्का के लिये अनुकूल होते हैं किन्तु ठंडे प्रदेशों में इसकी खेती नहीं की जा सकती है। कम तापक्रम होने के कारण इङ्गलैंड में मक्का नहीं पैदा होती। रूम सागरीय जलवायु वाले प्रदेश गर्म शीतोष्ण भागों में स्थित होते हैं किन्तु वहां की गर्मियां शुष्क होती हैं। इसलिये इन प्रदेशों में भी मक्का उत्पन्न नहीं होती।

विभिन्न प्रकार की मिट्टियों में मक्का की खेती की जा सकती है। किन्तु उपजाऊ दोमट इसके लिये बहुत अनुकूल है पानी के निकास का भी प्रबन्ध होना जरूरी है।

संयुक्त राज्य का स्थान मक्का की उपज में सर्वप्रथम है। यहां संसार की प्राय. ६० प्रतिशत मक्का होती है। मक्का उत्पन्न करने वाला क्षेत्र उत्तर में कनाडा की सीमा से दक्षिण में सेंट लुई तक तथा पूर्व में ओहाइयो से पश्चिम में नेब्रास्का तक फैला है। इस क्षेत्र में संयुक्त राज्य अमरीका की मध्यवर्ती रियासतें उदाहरणार्थ ओहाइयो, इंडियाना, इलीनोइस, विसकंसन, आयोवा, मिसूरी, कन्सास तथा नेब्रास्का सम्मिलित हैं। इस क्षेत्र की भूमि उपजाऊ काली मिट्टी वाली है जिसमें जीवांश की मात्रा अधिक है। पानी के अच्छे निकास के लिये भूमि साधारण तथा

ढालू है। वहां की जलवायु गर्म तथा नम है। गरमी की ऋतु स्वच्छ और उज्ज्वल होती है। वहां यन्त्रों का पर्याप्त प्रयोग किया जाता है। पशुपालन के प्रचार के कारण यहां मक्का की मांग भी काफी रहती है। इन उपर्युक्त कारणों से यह प्रदेश मक्का उत्पादन करने के लिये प्रसिद्ध है। इस क्षेत्र के अतिरिक्त दक्षिणी रियासतों में भी मक्का पैदा होती है।

संयुक्त राज्य अमरीका के फार्मों की सम्पत्ति का मूल्य लगभग ६० अरब डालर के लगभग है। संयुक्त राज्य अमरीका के फार्मों में ४० लाख आटमोबील हैं। यह आटमोबील मक्का पट्टी, डेयरी फार्मिंग प्रदेश, कपास के मुख्य प्रदेशों तथा प्रशान्त महासागर की तटीय घाटियों में स्थित हैं। यद्यपि व्यवसायिक फार्मों के प्रत्येक किसान के पास आटमोबील हैं परन्तु वहां की आबादी कम है।

मिश्रित कृषिप्रणाली में फसल के सम्पूर्ण रूप से नष्ट होने की सम्भावना नहीं होती है। यदि मौसम अत्यन्त सर्द तथा नम होता है तो उसमें गेहूं और मक्का की अच्छी उपज होती है और जई की उपज भी खूब होती है, और यदि मौसम गर्म तथा नम होता है तो मक्का की उपज बहुत अधिक होती है तो जई की उपज साधारण होती है और गेहूं की उपज कम होती है। शुष्क ऋतु के होने से मक्का की खेती को हानि हो सकती है। परन्तु उत्तम श्रेणी का गेहूं पैदा होता है। और चूंकि उपज अच्छी होती है इसलिये किसानों को पशुओं आदि के पालने में सरलता होती है।

जिस वर्ष अनाज की महंगी होती है और उपज अधिक होती है तो जो अधिक खेती से लाभ होता है उस लाभ का का प्रयोग फार्मों के मकानों की मरम्मत सुधार तथा खेती में काम आने वाले मशीनों आदि के सुधार काय में लगता है। रेडियो, टेलीफोन आदि की सुविधाओं की व्यवस्था की जाती है। चूंकि गमना गमन साधनों की पूरी तरह से सुविधा होती है इसलिये किसान परिवारों की स्त्रियां को नगर निवासियों की भांति ही आराम प्राप्त होता है।

अन्य देशों में मक्का की मिश्रित खेती—

डैन्यूब नदी के निचले प्रदेश, दक्षिणी पश्चिमी रूस रोडेशिया तथा दक्षिणी अफ्रीका यूनियन के पठार तथा पूर्वी आस्ट्रेलिया में भी मक्का के साथ अन्य अनाजों की मिश्रित खेती होती है।

संयुक्त राज्य अमरीका तथा अर्जेन्टाइना के प्रदेशों में मक्का की उपज बड़ी कुशलता के साथ की जाती है। फिर भी इन प्रदेशों के अतिरिक्त संसार के अन्य भागों में भी जहां मक्का के लिये अनुकूल भूमि तथा वातावरण नहीं हैं वहां भी अन्य अनाजों की अपेक्षा मक्का की उपज अधिक होती है। यद्यपि पन्द्रहवीं सदी तक श्वेत वर्ण वालों को मक्का का पता न था फिर भी आज समस्त प्रदेशों में मक्का की उपज की जाती है। अमरीका तथा अफ्रीका महाद्वीपों के उष्ण भागों में निचले सघन प्रदेशों तथा पर्वतीय नम बसे भागों में मक्का का प्रयोग भोजन के निमित्त किया जाता है। दक्षिणी पूर्वी एशिया में जहां पर चावल उपज करने वाले पानी की बाढ़ वाले प्रदेश नहीं हैं वहां पर भी मक्का का प्रयोग भोजन के लिये किया जाता है। यूगोस्लैविया, इटली, स्पेन, पुर्तगाल तथा भूमध्यसागरीय प्रदेशों में मक्का का प्रयोग मनुष्य के भोजन तथा पशुओं के चारे के लिये किया जाता है। इन प्रदेशों में मक्का की मदिरा भी तैयारी की जाती है।

चूंकि इन प्रदेशों की प्राकृतिक दशायें मक्का की उपज के लिये अनुकूल हैं, इसलिये इसकी खूब उपज होती है। इन प्रदेशों में खेती में मशीनों का प्रयोग बहुत कम होता है, फसलों की उपज बारी-बारी से की जाती है और है मक्का का खाने के लिये विशेष तौर पर प्रयोग किया जाता है। रूमानिया, हंगारी, यूगोस्लैविया, सोवियत संघ, दक्षिणी अमरीका यूनियन आदि से भी पर्याप्त मात्रा में मक्का का निर्यात होता है।

अर्जेन्टाइना में व्यवसायिक मक्का की खेती

अर्जेन्टाइना का मक्का-प्रदेश पम्पाज प्रदेश के उत्तरी भाग में स्थित है जहां पर २८ इञ्च से लेकर ४० इञ्च तक सालाना वर्षा होती है जिससे मक्का की अच्छी उपज होती है। नवम्बर मास से जनवरी मास तक ग्रीष्म कालीन वर्षा ६ इञ्च से १२ इञ्च तक हो जाती है जिससे मक्का के खेत तैयार किये जाते हैं और उसकी बोआई की जाती है। उसके बाद जब

मक्का के पकने तथा कटने का समय होता है तो मार्च तथा अप्रैल मासों में दूसरी बार वर्षा अधिकांश तौर पर होती है। इस समय तापक्रम साधारण रहता है। वर्षा के कारण तथा तापक्रम कम होने से मक्का का एक खास भाग खेतों में और खेतों से समुद्रों तक निर्यात करने के ले जाने में खराब हो जाता है। वर्षा के भीषण रूप धारण करने से भी फसल को हानि कम हो जाता है। उत्तर की ओर यदि वर्षा की कमी होती है तो टिड्डियां उठती हैं और मक्का की हरी फसलों पर आ गिरती हैं और उसका सत्यानाश कर डालती हैं। मक्का प्रदेश का ग्रीष्म कालीन तापक्रम ७२ से ७५ अंश तक रहता है। नवम्बर मास से अप्रैल मास तक मक्का की फसल के उगने तथा बढ़ने का समय रहता है। शीतकाल साधारण होता है। इस लिये सब कहीं खेतों की जोताई काम किया जाता है। भूमि काली मिट्टी की बनी हैं और उसमें उर्वरा शक्ति वर्तमान है जिससे उपज अच्छी होती है। यदि जल वायु तथा वर्षा भी अनुकूल हो जाती है तो यहां भी संयुक्त राज्य अमरीका की भांति मक्का की उपज पर व्यय कम पड़ता है।

अर्जेन्टाइना के सभी प्रदेशों से अधिक मक्का वाले प्रदेश में उन सभी प्रकार के अन्न तथा वस्तुओं की उपज होती है जो कि अर्जेन्टाइना के लिये आवश्यक हैं। वहां पर मक्का, गेहूँ, सन, जई, फ्लैक्स, पशु, सुअर आदि होते हैं परन्तु मक्का की उपज का बाहुल्य है। पराना नदी के ५० मील पश्चिम की ओर जो प्रदेश स्थित है वहां पर प्रायः दो-तिहाई भाग में मक्का की उपज की जाती है। अर्जेन्टाइना के मक्के का दाना छोटा होता है, उसमें नमी कम होती है इस लिये उसका मूल्य भी कम मिलता है और वह उत्तरी-पश्चिमी योरुप में खरीदा जाता है तथा पशुओं के खिलाने का काम देता है। चूं कि अर्जेन्टाइना के मक्का का प्रदेश समुद्र के निकट स्थित है इसलिये वहां की मक्का योरुपीय तथा पूर्वी संयुक्त राज्य अमरीका के प्रदेशों की सस्ते मूल्य पर भेजी जाती है।

यद्यपि अर्जेन्टाइना तथा संयुक्त राज्य अमरीका की मक्का वाली पट्टी की भौगोलिक दशाएं समान तौर पर हैं, परन्तु दोनों स्थानों की आर्थिक प्रणाली में भिन्नता है क्योंकि अर्जेन्टाइना में जो उपज की जाती है वह समस्त की समस्त निर्यात की जाती है। पम्पाज प्रदेश में जो पशु पाले जाते हैं वह अल्फा घास को ही खाते हैं और खूब मोटे तथा स्वस्थ होते हैं, उन्हें मक्का नहीं खिलाई जाती है। अर्जेन्टाइना में संयुक्त राज्य अमरीका से अपेक्षाकृत कम सुअर पाले जाते हैं यद्यपि वहां पर सुअरों के पालने लिये अधिक उपयुक्त जलवायु तथा भूमि है सुअरों के पालने में अधिक की आवश्यकता पड़ती है और बाड़ों के निर्माण करने में भी विशेष व्यय पड़ता है जिसके लिये सामग्री बाहर से मंगानी पड़ती है। अर्जेन्टाइना में सुअर के मांस की खपत भी कम होती है। जिन स्थानों पर सुअरों को खरीद माल तैयार करने के लिये होती है वहां पर जब अर्जेन्टाइना के सुअर जाते हैं तो बीमारी के कारण उनको लेने से इंकार कर दिया जाता है और बीमार पशुओं को छांट कर अलग कर दिया जाता है इस प्रकार की छटाई में ५ से ५० प्रतिशत तक सुअर अलग कर दिये जाते हैं। फिर भी अर्जेन्टाइना में सुअरों के पालने में दिन-प्रति दिन वृद्धि हो रही है। वहां के किसान उन्नति-शील हैं और इसलिये आशा की जाती है कि वे मिश्रित खेती विशेष रूप से उन्नति करेंगे।

दक्षिणी अमरीका में दक्षिणी-पूर्वी ब्राजील तथा पूर्वी अर्जेन्टाइना में मक्का की खेती विशेष रूप से की जाती है। यदि दक्षिणी अमरीका की मक्का की फसल खराब हो जाती है तो उससे संयुक्त राज्य अमरीका के मक्का के किसानों को विशेष रूप से लाभ होता है।

मक्का की उपज तथा व्यापार—यद्यपि गेहूँ से मक्का की उपज संसार में अधिक होती है फिर भी गेहूँ का व्यापार मक्का का तीन गुना है। इसके दो मुख्य कारण हैं। (१) मक्का का मूल्य प्रति इकाई के हिसाब से गेहूँ की अपेक्षा कहीं कम होता है इसलिये उसके यातायात साधन में जो व्यय पड़ता है उसे सहन नहीं किया जा सकता है। (२) मक्का पशुओं को खिलाया जा सकता है परन्तु गेहूँ मानव प्राणी का ही भोजन है और उसे पशुओं को नहीं दिया जा सकता है। मक्का के भोजन से जो पशु पाले जाते

हैं उन्हें बाजारों में बेचा जाता है और उनके यातायात साधनों द्वारा भेजने में अपेक्षाकृत कम व्यय पड़ता है। इसके अतिरिक्त चूंकि अधिकांश मक्का नम होती है इसलिये जहाजों द्वारा बाहर भेजे जाते समय यदि उसे सूखा न रखा जाय तो खराब हो जाती है। संयुक्त राज्य अमरीका के मक्का उत्पादक प्रदेश समुद्र से बहुत दूर स्थित हैं इसलिये उनके निर्यात करने में बहुत अधिक व्यय पड़ता है। समस्त संसार में जितनी मक्का का निर्यात होता है उसका दो तिहाई अर्जेन्टाइना से होता है शेष भाग की पूर्ति दक्षिणी पूर्वी योरुप तथा दक्षिणी अफ्रीका यूनियन करता है।

भारतवर्ष तथा अन्य ऐसे देशों को छोड़कर जहां पर सुअर का मांस नहीं खाया जाता है शेष समस्त संसार में सघन बस्ती तथा सुअरों के पालने-पोसने में बहुत कुछ समानता है। अर्थात् जहां की बस्ती जितनी अधिक घनी है वहां पर उतने ही अधिक सुअर पाले जाते हैं। सुअरों को चारे के लिये जो भोजन दिया जाता है वह विभिन्न स्थानों पर विभिन्न प्रकार है। संयुक्त राज्य अमरीका में सुअरों को मक्का खिलाई जाती है। कनाडा में सुअरों को जड़ें तथा मक्खन निकला हुआ दूध खिलाया जाता है। पश्चिमी मध्य योरुप के देशों में सुअरों को आलू तथा अन्य प्रकार के जड़ों वाले पदार्थ, मक्खन निकला हुआ दूध तथा नष्ट प्रायः वस्तुएं आदि खिला जाता है। दक्षिणी योरुप में सुअर वनों में चरते हैं और जड़ें खोद-खोद कर खाते हैं वह मैली कुचैली वस्तुएँ भी खाते हैं। दक्षिणी तथा पूर्वी एशिया में सुअर मैला तथा अन्य प्रकार की खराब वस्तुएं खाते हैं।

उत्तरी-पश्चिमी योरुप में मिश्रित खेती—

संयुक्त राज्य अमरीका की भांति ही उत्तरी-पश्चिमी योरुप में भी मिश्रित खेती की जाती है। उत्तरी-पश्चिमी योरुप में संयुक्त राज्य अमरीका से अपेक्षाकृत प्रति एकड़ पीछे अधिक उत्पादन होता है परन्तु चूंकि बस्ती सघन है इसलिये संयुक्त राज्य अमरीका की अपेक्षा प्रति व्यक्ति के पीछे उपज कम पड़ती है। यद्यपि इन प्रदेशों की भूमि कम उपजाऊ है फिर भी यहां के किसान अपनी कुशलता तथा निपुणता के फलस्वरूप अधिक उपज करते हैं। समस्त उत्तरी-पश्चिमी योरुपीय देशों में कृषि प्रणाली ऐसी प्रचलित है कि खेतों में जड़ वाली वस्तुओं जैसे आलू, चुकन्दर तथा शकरकन्द, गाजर, मूली, शलजम आदि, गल्ला, घास और मांस वाले पशुओं का उत्पादन कार्य होता है। यद्यपि इन प्रदेशों के किसान जो उपज करते हैं उसका एक बड़ा भाग खपत कर डालते हैं फिर भी यहां के किसान व्यवसायिक तौर पर अनाज का तथा पशुओं का उत्पादन करते हैं। खाने-पीने से जो अनाज बचता है वह बेचा जाता है। परन्तु नकद रुपया प्राप्त करने के लिये ही पशु पालन कार्य होता है। पशुओं का पालन-पोषण का लक्ष्य केवल मात्र धन प्राप्त करना ही है। गाय, बैल, बछड़ा, भैंस, बकरियां, भेड़, सुअर और सुगियां तथा बतखें आदि व्यवसाय की दृष्टि से पाली जाती हैं। परन्तु बैलों और घोड़ों का उत्पादन तथा पालन खेती के कार्य के हेतु किया जाता है। कृषि भूमि के अधिकांश भाग में फसलों की उपज की जाती है और फार्मों में पशुओं के उत्पादन की संख्या भी बहुत अधिक है। समस्त पशुओं का दो-तिहाई भाग केवल मांस प्राप्त करने के लिये प्रयोग में आता है। यद्यपि समस्त उत्तरी-पश्चिमी प्रदेश में मिश्रित प्रकार की खेती का रिवाज है, परन्तु विभिन्न जिलों तथा प्रदेशों में विशेष प्रकार की उपज ही की जाती है। कितने ही जिलों में तो केवल डेयरी फार्मिंग का काम विशेष रूप से किया जाता है। शहरी बस्तियों के निकटवर्ती भू भागों में नगरों के लिये फलों तथा साग-भाजियों के बड़े-बड़े बगीचे उगाये जाते हैं जहां पर कृषि कार्य किया जाता है। फल तथा फूल के अनुकूल प्रदेशों में इनकी वाटिकाएं विशेष तौर पर लगाई जाती हैं। उदाहरण के रूप में नेदरलैंड में डेयरी तथा मिश्रित खेती के साथ ही साथ विशेष प्रकार के फलों तथा विभिन्न प्रकार के फूलों की वाटिकाएँ लगाई जाती हैं और उनसे काफी धन कमाया जाता है। नेदरलैंड की कृषि भूमि का १४ प्रतिशत भाग छोटे छोटे खेतों का है और उनमें विशेष प्रकार के फलों तरकारियों और फूलों का उत्पादन होता है।

उत्तरी पश्चिमी योरुप के अधिकतर भाग में इस

प्रकार की व्यवसायिक खेती होनी इसलिये सम्भव हो सकी है कि वहां पर देहाती तथा नगरी क्षेत्रों की बस्ती बड़ी सघन है। दक्षिणी-पूर्वी एशियाई प्रदेशों को छोड़ कर संसार के सभी भागों से इस प्रदेश की बस्ती सघन है। यहां की यह कृषि प्रणाली, यहां का व्यवसाय, कारखानों का उत्पादन तथा व्यापार आदि पूर्वी योरुप तथा दक्षिणी गोलार्द्ध और दक्षिणी-पूर्वी एशिया पर निर्भर है क्योंकि इन प्रदेशों में यद्यपि इस प्रदेश की भांति ही दशाएं वर्तमान है। आबादी सघन है। परन्तु वहां पर इस प्रकार की प्रणाली प्रचलित नहीं है जिससे यहां के उत्पादन की खपत उन क्षेत्रों में होती है। ओंटारियो प्रायः द्वीप, सेंट लारेंस निचले प्रदेश और कनाडा की सामुद्रिक घाटियों में इस प्रकार की कृषि-प्रणाली उन्नतिशील है। संयुक्त राज्य अमरीका में मक्का की पट्टी तथा डेयरी पट्टी की पट्टी और कपास की पट्टी के मध्य इस प्रकार की कृषि प्रणाली प्रचलित है।

उत्तरी-पश्चिमी योरुप कृषि क्षेत्र में गहरी मिश्रित कृषि प्रणाली से बहुत अधिक उत्पादन किया जाता है इसका कारण यह है कि इस प्रदेश के किसान कुशल हैं, उन्हें कृषि करने का अच्छा ज्ञान है, यहां पर वर्षा तथा मौसम पर भरोसा किया जा सकता है, यहां यातायात के साधन सुगम हैं समीप में बाजार स्थित हैं और फसलों के बोने तथा काटने के समय कारखानों में काम करने वाले परिवारों से अधिक संख्या में श्रमिक मिल जाते हैं। इसके अतिरिक्त उत्तरी-पश्चिमी योरुप छोटे-छोटे भागों में विभाजित है जिससे गहराई की मात्रा बढ़ जाती है क्योंकि उनकी सरकारें अपने देश के उत्पादन बढ़ाने तथा आत्म निर्भरता के लिये कोटा और विभिन्न प्रकार के चुंगी वाले करों का अनुसरण करके विदेशी माल को देश के भीतर प्रवेश पाने से रोकते हैं। ऐसी दशाओं में इन देशों के निवासी अपने देश में उत्पन्न वस्तु को विदेशी वस्तु की अपेक्षा अधिक महत्व देते हैं खरीद कर उसका उपयोग करते हैं। यद्यपि इस प्रकार लोगों को अपने जीवन निर्वाह वाली वस्तुओं पर विशेष रूप से अधिक खर्च तो करना पड़ता है परन्तु इसमें सबसे बड़ा लाभ यह है कि अपने देश का धन अपने देश ही में रहता है और साथ ही साथ देश की आत्म निर्भरता वाली शक्ति को प्रोत्साहन मिलता है और वह बढ़ती है। इतना होने पर भी इन देशों को खाद्य सामग्री का आयात अपने देशों में करना ही पड़ता है ताकि वह अपनी जनता तथा पशुओं का भरण-पोषण भली प्रकार से कर सकें।

दोनों प्रकार के फार्मों में कृषि करने के उपाय—

उत्तरी-पश्चिमी योरुप के विभिन्न देशों तथा एक ही देश के विभिन्न जिलों में विभिन्न तरीकों से मिश्रित खेती की जाती है। यह भिन्नता पृथक-पृथक कार्यों तथा कार्य प्रणालियों में देखने को मिलती है। एक प्रदेश या जिले में भूमि की प्राकृतिक दशा, जलवायु तथा वर्षा और बाजार तथा माग और खपत के अनुसार एक प्रकार की या मिश्रित प्रकार की विशेष रूप से खेती की जाती है और दूसरे प्रदेश या जिले में दूसरे प्रकार की। यह भिन्नता स्काटलैंड के निचले मैदानों और इङ्गलैंड के पूर्वी मैदानों की कृषि प्रणाली को देखने से भली भांति समझी जा सकती है। यद्यपि यह उदाहरण एक छोटे से प्रदेश का है परन्तु समस्त उत्तरी-पश्चिमी योरुप में वर्तमान भिन्नता का इससे भली भांति आभास किया जा सकता है।

स्काटलैंड के मध्यवर्ती प्रदेश की उत्तरी सीमा में ग्लेन कजोव में बढ़ाइट हिलाक का फार्म स्थित है। इस फार्म की भांति ही समस्त प्रदेश में फार्म स्थित हैं। यहां की भूमि बड़ी ऊंची नीची है, समतल भूमि कम है और फसलों की उपज का मौसम छोटा होता है। यहां पर जो मासिक वर्षा तथा कुहरा, ओस या पाला आदि पड़ता है उसका यहां की उपज तथा पशुपालन के व्यवसाय पर गहरा प्रभाव पड़ता है और उसी के अनुसार साल भर कृषक लोग अपना खेती का कार्य करते हैं।

ह्वइट हिलाक फार्म की भूमि ५२५ एकड़ है जिसका ७२ प्रतिशत भाग अर्थात् ३८०.५ एकड़ भूमि स्थायी तौर पर चरागाह बने रहते हैं। इस भूमि का अधिकांश भाग शीतल दलदली है जिनमें पतली पथरीली हिमानी मिट्टी पाई जाती है। इसके ऊपर प्राकृतिक रूप से घास, सेवार तथा अन्य जलीय पौधे उगे हुये हैं। फार्म का २२ प्रतिशत भाग अर्थात्

११४ एकड़ भूमि ऐसी है जहां पर खेती होती है और बारी-बारी से उसे परती रखकर चरागाह बना दिया जाता है। लगभग साढ़े पांच एकड़ भूमि में मकान आदि बने हैं तथा प्रायः २० एकड़ भूमि में वन हैं। इस फार्म में जमीन का जिस रूप में विभाजन किया गया है वह समस्त स्काटलैंड के प्रदेश पर लागू है। अभी हाल ही तक स्काटलैण्ड की कृषि तथा चराई वाली भूमि का ५० प्रतिशत भाग चराई वाली भूमि थी और केवल २० प्रतिशत भूमि में फसल उगाई जाती थी। इस फार्म की १७ प्रतिशत भूमि में जड़ों वाली फसलें उगाई जाती हैं। समस्त स्काटलैण्ड की १५ प्रतिशत भूमि में जड़ों वाली फसलों की खेती होती है। इस फार्म की ३५ प्रतिशत भूमि में जई की खेती होती है और समस्त स्काटलैण्ड की ३१ प्रतिशत भूमि में विभिन्न प्रकार का अनाज तथा घास की उपज की जाती है।

चूंकि स्काटलैण्ड में ग्रीष्म ऋतु में पर्याप्त सर्दी पड़ती है इसलिये यहां जई की उपज खूब होती है परन्तु गेहूं आदि की उपज कम होती है। फार्म की कृषि भूमि में अन्न की उपज के पश्चात् बारी बारी से घास बोने वाली भूमि का क्षेत्रफल ४४ प्रतिशत है और समस्त स्काटलैण्ड की कृषि भूमि में यह प्रतिशत ४६ का है। इन खेतों की घास ग्रीष्म ऋतु में काट ली जाती है उसके पश्चात् उसमें पशु चराये जाते हैं। इस फार्म में तीन एकड़ भूमि में आलू बोया जाता है जो कि परिवार तथा किराये में काम करने वालों को दिया जाता है। फार्म के घर के समीप तरकारियों, बेरों तथा अन्य प्रकार के फलों के बाग हैं।

इस फार्म का किसान फार्म में वैज्ञानिक तौर पर गहरी खेती करता है। वह जड़ वाली तथा अनाज वाली फसलें उगाता है और पशुओं तथा भेड़ों को चराता और खिलाता है। फसलों की देखभाल तथा पशुओं के पालन पोषण के लिये वह चार मर्द तथा दो औरतों को नौकर रखे हुये है। वह जोताई, फसलों की रोपाई, फसल की कटाई और मड़ाई में चार घोड़ों वाले हल तथा मशीन का प्रयोग करता है। फार्म में ५० पशु तथा ढाई-तीन सौ भेड़ें हैं। वहां अंडों के लिये मुर्गियां हैं जिनका सारा अंडा फार्म में ही खप जाता है। फार्म में जो घी दूध लगता है वह भी फार्म के पशुओं से ही प्राप्त हो जाता है। फार्म का किसान अपने मजदूरों के साथ समस्त साल काम में व्यस्त रहता है। बसंत ऋतु के आरम्भ में वह खेतों में पांस डालता है और उन्हें बोने के लिये तैयार करता है। वह मार्च के महीने में आलू, अप्रैल के महीने में जई और मई मास में शलजम बोता है। बसंत ऋतु में पशुओं तथा भेड़ों के बच्चों की विशेष रूप से रक्षा करनी पड़ती है। इसी समय वह अपनी भेड़ों की ऊन कतरता है और उसे बेचता है। ग्रीष्म ऋतु के मध्य काल में वह घास की कटाई और सुखाई करता है। चूंकि इस मौसम में वर्षा होती है इसलिये उसे काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। सितम्बर के महीने में वह अपनी जई की फसल काटता माड़ता और अक्तूबर के महीने में अपना आलू खोदता है और गोदाम में रखता है। पतझड़ और शीत काल में वह अपने पशुओं तथा भेड़ों को जई, शलजम, चुकंदर तथा घास खिला कर मोटा तगड़ा करता है और फिर उनको बाजारों में बेचता है। शीतकाल में वह भेड़ों को चरागाहों तथा परती भूमि में चराता है और वन से लकड़ी काट कर एकत्रित करता है। गोमांस, भेड़ के बच्चों के मांस और ऊन से उसको पर्याप्त आय हो जाती है।

अपने खेतों की उर्वरा शक्ति को बनाये रखने के लिये इस फार्म का किसान खेतों को बहुधा खाद-पांस देता रहता है और ६ वर्ष के अन्तर से बारी-बारी करके फसलें उपजाता है। पहले वर्ष वह जई फसल पैदा करता है, दूसरे वर्ष शलजम या आलू बोता है, तीसरे वर्ष जई बोता है, चौथे वर्ष घास तथा चरागाह रखता है और पांचवें साल घास लगाता है और छठवें साल भी चरागाह रखता है और घास उगाता है और सातवें वर्ष पुनः जई बोता है। वह अपनी देशी घासों की उपज फार्म में करता है। इस फार्म का किसान अपने समस्त खेतों में समान रूप से विभिन्न प्रकार की फसलें उगाता है। जई की खेती वह अधिक करता है और ७ वर्ष के भीतर उसे दो बार बोता है जब कि अन्य फसलें केवल

एक बार ही होती है। इसका कारण यह है कि जई के लिये भूमि तथा मौसमी दशायें अनुकूल हैं। इसके अतिरिक्त जई की फसल हरी भी काटी जाती है और चारे का काम देती है। इस फार्म के देखने से पता चलता है कि मिश्रित खेती वाले स्थानों पर पशुओं के चारे के लिये विशेष भूमि की आवश्यकता पड़ती है। खेतों में घास उगाने तथा चरागाह बनाने से खेतों की उर्वरा शक्ति में वृद्धि होती है। पशुओं के चरने से उनके गोबर की खाद खेत में पड़ती है और उसमें जो घास उगती है उससे उसकी उर्वरा शक्ति बढ़ती है।

इङ्गलैंड के नारफोक स्थान का वेस्टवुड फार्म—

यह फार्म इङ्गलैंड के पूर्वी मैदान में स्थित है और यह उत्तरी पश्चिमी योरुप के सबसे गहरी खेती वाले प्रदेश में स्थित है। व्हाइट हिलाक के फार्म की अपेक्षा यह फार्म समतल तथा साधारण ढालू भूमि पर स्थित है। इसलिये इस फार्म की दो-तिहाई भूमि जोती जाती है और इसके केवल एक पाचवें भाग में स्थायी चराई वाली भूमि रहा करती है जिसका कुछ भाग आवश्यकता पड़ने पर जोता जा सकता है परन्तु चूंकि भूमि ऊंची-नीची है इसलिये पानी के बहाव की आवश्यकता पड़ती है। अत: यह जोती कम जाती है। यहां पर कुछ वन हैं जो कि पतली पहाड़ियों पर स्थित हैं और फसल उगाने योग्य नहीं हैं। चूंकि फार्म की भूमि उपजाऊ लम्बी-चौड़ी है, वर्षा भी पर्याप्त हो जाती है और इसके समीप बड़े-बड़े बाजार स्थित हैं, इसलिये इसका किसान इसमें विभिन्न प्रकार की फसलें उगाता है और बेचता है। साथ ही साथ फार्म के भीतर रहने वाले प्राणियों को भोजन देता है।

इस फार्म का क्षेत्रफल ५२० एकड़ है। इसकी १० एकड़ भूमि में मकानात तथा भंडार आदि हैं, ५३ एकड़ भूमि में वन हैं, १०७ एकड़ भूमि में स्थायी चरागाह हैं और ३५० एकड़ भूमि में खेती की जाती है। यहां पर गहरी व्यवसायिक खेती होती है और पशुओं के लिये चारे की उपज की जाती है। कृषि भूमि के ५६ प्रतिशत भाग में अनाज की उपज की जाती है जिसमें गेहूँ, जौ, तथा जई की फसलें उगाई जाती हैं। गेहूँ और आधे जौ की उपज बेचने के लिये की जाती है। साग-भाजी तथा जड़ों वाली जो फसलें उगाई जाती हैं उनका कुछ भाग भी बेचा जाता है। इसके अलावा कृषि भूमि के दो-तिहाई से अधिक भूमि में देसी फसलें उगाई जाती हैं जिनको पशुओं, भेड़ों, सुअरों तथा मुर्गियों और घोड़ों आदि को खिलाया जाता है।

इस फार्म का किसान प्रति वर्ष ३५० मोटे भेड़ के मेमनों को १०० गोमांस वाले पशुओं को, ४०० मोटे सुअरों को, कई सौ मुर्गियों को तथा २६० भेड़ों की ऊन को और ३०० मुर्गियों के अडों को और ३० गायों के दूध को प्रति वर्ष बेचने की योजना रखता है। यह इङ्गलैण्ड तथा स्काटलैण्ड से भेड़ें और आयरलैण्ड से पशु खरीदता है। यह सुअरों को मोटा बनाने के लिये पड़ोसी किसानों से खरीदता है।

फार्म में काम करने के लिये किसान १६ घोड़े, एक ट्रैक्टर, अन्य औजार, भूसा तथा दाना साफ करने की मशीन तथा जानवरों को दाना पीसने वाली मशीन अपने पास रखता है। वह अपने काम में सहायता के लिये २१ वर्ष से ऊपर अवस्था वाले २१ मजदूर और २१ साल के भीतर अवस्था वाले ८ मजदूर रखता है। इस फार्म के प्रबन्ध के लिये खेती करने, पशुओं को पालने, खेती की फसल को बेचने तथा पशुओं की खरीद-फरोख्त करने तथा अन्य सामग्रियों के बेचने आदि के सम्बन्ध में कुशल ज्ञान रखने वाले व्यक्ति की आवश्यकता है।

फार्म का प्रत्येक मौसम व्यस्त होता है। परन्तु कुछ ऐसे समय हैं जब कि मजदूरों की अत्यन्त आवश्यकता होती है। बसंत काल में भेड़ों के मेमनों का पालन-पोषण करना पड़ता है। फरवरी तथा मार्च महीने में भेड़ें बच्चे देती हैं और जब कोई भेड़ बच्चा होने को होती है तो उसके समीप एक गड़रिये को समस्त रात रहना पड़ता है। बसंत काल में फार्म के किसान को मेमनों, सुअरों, पशुओं आदि को खूब खिला-पिलाकर तथा सेवा करके स्वस्थ बनाना पड़ता है और फिर उन्हें बाजार में ले जा कर बेचना पड़ता है। पशुओं के घेरा देने वाले स्थानों की सफाई करनी पड़ती है। खाद को फैलाना पड़ता है। कृषि वाली भूमि को तैयार करना पड़ता है और जौ, जई, मटर,

और मेहनत खराब होती है और साथ ही साथ हेर-फेर की फसलों के क्रमानुसार उगाने में बाधा उत्पन्न होती है। बहुतेरे क्षेत्रों के किसान अपनी भूमि एक स्थान पर सङ्गठित रूप से बनाने के विरुद्ध हैं क्योंकि बहुत कम किसान अपना घर तथा पड़ोस छोड़ना पसन्द करते हैं और साथ ही साथ उन्हें कानूनी कठिनाइयों का भी सामना करना पड़ेगा क्योंकि यदि वह अपने खेतों को सङ्गठित रूप से एक स्थान पर करना चाहेंगे तो उन्हें आपस में एक दूसरे के साथ भूमि परिवर्तन करना पड़ेगा। कुछ भी हो योरुप के विभिन्न भागों में कृषि सम्बन्धी यह पुरानी फार्म प्रणाली तथा प्रबन्ध का अन्त हो गया है और खेतों को एकत्रित तथा सङ्गठित करके बड़ी-बड़ी इकाइयां बना दी गई हैं जिससे किसानों को लाभ पहुँचा है। जर्मनी, चेकोस्लोवेकिया, आस्ट्रिया, हंगारी, पोलैण्ड, नार्वे, स्वीडन, हालैण्ड आदि देशों में इस प्रकार खेतों का सङ्गठन करके उनकी बड़ी-बड़ी यूनिटें बना दी गई हैं। खेतों के मध्य जो सीमाएँ तथा बिना जोती हुई भूमि थी उनको चूंकि खेतों में मिला लिया गया है इसलिये खेतों की भूमि में वृद्धि हो गई है। अब खेतों का आकार और प्रकार बड़ा और मशीनों के प्रयोग के अनुकूल हो गया है और अब हेर-फेर की फसलें भी भली भांति बारी-बारी से उगाई जा सकती हैं और इन खेतों में अब पहले की अपेक्षा अधिक पशुओं का पालन-पोषण तथा उत्पादन हो सकता है।

योरुप के अनेक देशों में परम्परागत से जमींदारी तथा तालुकेदारी प्रथा चली आ रही है जो अपने रूप की अनोखी है। ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी, हंगारी, रूमानिया तथा अन्य देशों में ऐसे सामन्तशाही रियासतें बहुत हैं।

ग्रेट ब्रिटेन में बहुत से छोटी-छोटी फार्म इकाइयां हैं। परन्तु १०० एकड़ तथा इससे अधिक भूमि वाले फार्मों की संख्या वहां के समस्त फार्मों की संख्या का २० प्रतिशत है और उसमें फार्मों की ६७ प्रतिशत भूमि वर्तमान है। ऐसे सामन्त शाही रियासतों के मालिक तथा उसके परिवार के लोग रियासतों में साल में एक-दो बार देखने को जाते हैं। उनकी ओर से उनके प्रबन्ध के लिये ओवर सियर हैं जो कि मजदूरों या किसानों की सहायता से फार्मों का काम चलाते हैं और खेती करते हैं।

उत्तरी पश्चिमी योरुप की कृषि में सुधार उत्पन्न करने में जमींदारी तथा तालुकेदारी प्रथा ने बहुत बड़ा योगदान किया है। जब तक संसार के अर्ध मरुस्थली क्षेत्रों से योरुप के इन प्रदेशों को गल्ला तथा अन्य खाद्य सामग्री नहीं आती थी तब तक इसी ही बड़ी-बड़ी जमींदारी तथा रियासतों वाली भूमि से ही अन्न पैदा कर के योरुप के इस क्षेत्र को दिया जाता था। जब उत्तरी-पश्चिमी योरुप में कारखानों की उन्नति हुई और प्राचीन कृषि-प्रणाली के अन्तर्गत उपज में कमी हुई और विदेशों से खाद्यान्नों का आयात बढ़ा तो इन फार्मों के मालिकों को भी प्रोत्साहन मिला और उन्होंने भी अपनी कृषि-प्रणाली में अन्तर उत्पन्न किया और मिश्रित कृषि प्रणाली करने लगे ताकि अपने फार्मों में वे गहरी व्यवसायिक खेती कर सकें या फसलें उगा सकें अथवा बड़ी-बड़ी डेयरियां स्थापित कर सकें या फल तथा साग-भाजियों की खेती कर सकें। कुछ भूमि पतियों ने मिलकर एक बड़ी पूंजी एकत्रित की और उस पूंजी से यह सम्भव हो सका कि इन फार्मों में आधुनिक वैज्ञानिक रूप से मशीनों के सहारे से खेती होने लगी तथा अच्छे प्रकार के पशु पाले जाने लगे और अच्छे प्रकार की फसलें उगाई जाने लगीं। वर्तमान समय में प्रायः प्रत्येक स्थान पर इस बात की लगन पाई जाती है कि बड़ी-बड़ी रियासतों को तोड़ दिया जाय और उनके स्थान पर छोटे-छोटे खेत बनाये जायं और उनके जो मालिक हैं, वे ही उनको जोतें तथा बोयें। डेनमार्क तथा रूस में अब बड़ी बड़ी जमींदारियां नहीं रह गई हैं। द्वितीय महासमर के पश्चात् पोलैंड में जो पोलैंड का विभाजन हुआ है उससे वहां पर भी जमींदारी तथा सामन्तशाही प्रथा का अन्त हो गया है। यह कार्य उस भाग में विशेष रूप से हुआ है जो भाग रूस के अधिकार में है। इसके विपरीत इन योरुपीय राज्यों में छोटे-छोटे छितराये खेतों की भूमि को सङ्गठित करने तथा सामूहिक रूप देने का बहुत ही कम प्रयास किया गया है।

फसलें और पशु-पालन—योरुप के उस विशाल प्रदेश में, जिसके उत्तर की ओर वन, टुंड्रा प्रदेश स्थित हैं तथा दक्षिण की ओर भूमध्य सागरी जलवायु वाले प्रदेश हैं, पशुपालन तथा फसलों के उगाने का व्यवसाय किया जाता है। डेयरी फार्मों, बाग वानी वाले प्रदेशों, तरकारी की उपज करने वाले स्थानों, गन्ना तथा चुकन्दर की काश्त करने वाले स्थानों, तथा चराई का पेशा करने वाले भागों की गणना इस प्रदेश में नहीं है। यहां तक कि जिन प्रदेशों में इस प्रकार की कृषि प्रणाली का प्रभाव है वहां भी प्रत्येक प्रदेश की उपज तथा पशुओं में भिन्नता वर्तमान है फिर भी सभी स्थानों पर व्यवसायिक पशुपालन तथा कृषि के धंधे समान रूप से वर्तमान पाये जाते हैं। परन्तु संयुक्त राज्य अमरीका की भांति उत्तरी-पश्चिमी योरुप में मिश्रित कृषि वाले प्रदेश में मक्का की उपज कम है। इस विशाल मैदानी पट्टी के केवल दक्षिणी भाग में दक्षिणी पश्चिमी फ्रांस से लेकर रूमानिया तक फसलों के मिश्रण में मक्का की कुछ गणना की जाती है अर्थात् मक्का की उपज होती है। शेष सभी स्थानों पर विभिन्न प्रकार के अन्न, घास, जड़ों वाले पौधों की खेती होती है और चरागाह हैं।

उत्तरी-पश्चिमी योरुप तुल्य प्रदेशों में मिश्रित खेती—यह दोनों गोलार्द्धों में महाद्वीपों के पश्चिमी तटों पर ४५ अक्षांश से लेकर ६० अक्षांशों तक फैला है। इसमें उत्तरी-पश्चिमी योरुप, उत्तरी-पश्चिमी संयुक्त राज्य की ब्रिटिश कोलम्बिया रियासत, दक्षिणी चिली, न्यूजीलैण्ड का दक्षिणी टापू तथा टस्मानिया द्वीप शामिल हैं। उत्तरी-पश्चिमी योरुप में स्पेन का उत्तरी भाग, उत्तरी पश्चिमी फ्रांस, बेल्जियम, हालैंड, डेनमार्क, पश्चिमी, जर्मनी उत्तरी नार्वे तथा ब्रिटिश द्वीप समूह सम्मिलित हैं।

यहां की जलवायु को ठंडी शीतोष्ण जलवायु कह सकते हैं। कम वार्षिक तापान्तर और वर्ष भर वर्षा इस जलवायु की प्रमुख विशेताएं हैं। यही लक्षण भूमध्य रेखीय जलवायु के भी हैं किन्तु इस प्रदेश का तापक्रम भूमध्य रेखा प्रदेश से कम रहता है और वर्षा पछुआ हवाओं से होती है तथा अपेक्षाकृत बहुत कम होती है जब कि भूमध्य रेखा वाले भाग में भारी संवाहन वर्षा होती है। उत्तरी अटलांटिक में गल्फस्ट्रिम नाम की गर्म धारा के प्रवाह से उत्तरी पश्चिमी योरुप तथा ब्रिटिश द्वीप समूहों के समुद्र तट जाड़े में नहीं जमते हैं और इस प्रदेश का विस्तार योरुप में उच्च अक्षांशों तक है। शीत ऋतु का औसत तापक्रम सबसे ठंडे महीनों में ६० है। अतः कहना चाहिये कि गर्मियां प्रायः पड़ती ही नहीं क्योंकि अधिकतर तापक्रम लगभग ६५ अंश रहता है।

यह प्रदेश साल भर पछुआ हवाओं की पेटी में रहता है अतः सारे साल वर्षा होती रहती है। पतझड़ ऋतु में जब चक्रवात चलते हैं तो और अधिक वर्षा प्राप्त हो जाती है। पश्चिम से ज्यों-ज्यों पूर्व को चलते हैं वर्षा कम और तापान्तर अधिक होता जाता है। भाग में पड़ने वाले पर्वतों के पश्चिमी ढालों पर तो १०० इंच तक वर्षा हो जाती है। तटीय भागों में पतझड़ वाली ऋतु में अपेक्षाकृत अधिक वर्षा होती है जब कि भीतरी भागों में गर्मी में अधिक होती है।

इस प्रदेश में चौड़ी पत्ती वाले वन मिलते हैं। इनमें ओक, बीच, बर्च, एश, एल्म, आस्पेन, वालनट, चेस्टनट, मेपिल इत्यादि वृक्ष उगते हैं। शीत ऋतु इनके लिये विश्राम का समय होता है जब कि शीत काल में ठंड से रक्षा करने के लिये ये वृक्ष अपनी पत्तियां गिरा देते हैं। इस प्रदेश में ऊंचे भागों में जहां शीत अधिक रहता है नुकीली पत्ती वाले वृक्ष भी मिलते हैं। उत्तरी अमरीका वाले इस प्रदेश में इस प्रकार के वन अधिक हैं। इनमें चीड़, फर, बालसम, हेमलाक, स्प्रूस, तथा लार्च वृक्ष मिलते हैं। आस्ट्रेलिया के टस्मेनिया द्वीप में चौड़ी पत्ती वाले वनों के बीच-बीच यूकेलिप्टस का सदा बहार वृक्ष भी मिलता है।

इस प्रदेश के वनों में लकड़ी काटने का काम प्राचीन काल से होता आया है। वनों में शिकार करना और फल इकट्ठा करना भी यहां के प्राचीन धंधे हैं।

इस प्रदेश के अधिकतर भागों में वनों को साफ करके कृषि योग्य भूमि प्राप्त करली गई है जहां कृषि का इतना विकास किया जा चुका है कि वैज्ञानिक विधियों द्वारा गहरी खेती करने की प्रथा प्रायः सर्वत्र मिलती है। जौ, राई, मक्का, आलू, चुकन्दर, सन

इत्यादि उगाये जाते हैं। फलों की भी खेती होती है। सेव, नाशपाती इत्यादि खूब उगाये जाते हैं। टस्मेनिया द्वीप का मुख्य व्यवसाय फलों की खेती पर ही अवलम्बित है।

योरुपीय भाग में उत्तरी सागर के उथले तटों पर खेती के साथ ही साथ मछलियों के पकड़ने का उद्यम उन्नति शील है। नार्वे, इङ्गलैण्ड डेनमार्क फ्रान्स इत्यादि देशों के निवासी इस व्यवसाय में प्राचीन काल से ही निपुण हैं। यहां का डागर बैंक क्षेत्र मछलियों के लिये बहुत नामी है। काड, बरजन, हेरिंग इत्यादि मछलियां बहुत मिलती हैं। नदियों में सामन मछली अधिक होती है। नार्वे देश मछलियों के व्यवसाय में अग्रसर है। यहां की मछलियां सुखाकर लकड़ी के सन्दूकों में भर कर बाहर भेजी जाती हैं। न्यूइङ्गलैण्ड प्रदेश में भी सामन मछली खूब होती है। न्युजीलैण्ड में भी मछली पकड़ने का व्यवसाय होता है।

इस प्रदेश में मांस तथा दुग्ध-पदार्थों के लिये पशु-पालन और मांस के लिये तथा ऊन के लिये भेड़ पालने के धंधे भी मिश्रित प्रकार की खेती के साथ साथ किये जाते हैं। डेनमार्क देश के किसान पशु-पालन तथा दुग्ध उद्योग में अग्रसर हैं। यहां से मक्खन, पनीर और सुखाया हुआ दूध बाहर भेजा जाता है। इङ्गलैंड के मिश्रित खेती करने वाले किसान पशु-पालन व्यवसाय विकसित दशा में करते हैं। स्काटलैंड, दक्षिणी चिली, टस्मेनिया, न्युजीलैंड इत्यादि देशों के किसान अपनी खेती की फसल उगाने के साथ ही साथ भेड़ पालने का धंधा करते हैं और उनकी ऊन तथा मांस निर्यात करते हैं। भेड़ों का मांस हिम निर्मित डिब्बों में भर कर बाहर भेजा जाता है।

सेंट लारेंस तुल्य प्रदेश—उत्तरी-पश्चिमी योरुप तुल्य प्रदेशों वाले अक्षांशों में महाद्वीपों के पूर्वी तटों पर यह प्रदेश विस्तृत है। एशिया में मंचूरिया, पूर्वी कोरिया, उत्तरी जापान और सखालीन, उत्तरी अमरीका में सेंट लारेंस बेसिन, लेब्राडार का पठार, न्यु इङ्गलैंड राज्य न्युफाउंड लैंड और दक्षिणी अमरीका में दक्षिणी अर्जेन्टाइना इस प्रदेश के अन्तर्गत आते हैं।

इस प्रदेश की जलवायु बहुत विषम है। गर्मियां गर्म तथा जाड़े बहुत ठंडे होते हैं। वर्षा बहुत कम होती है। किन्तु वर्ष भर हर ऋतु में होती रहती है। गर्मी में अपेक्षाकृत अधिक होती है। जाड़ों में शीत इतना होता है कि किसानों को अपने खेतों में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है और बन्दरगाहों पर बरफ जम जाती है। तापक्रम हिम बिन्दु से भी नीचे गिर जाता है। नदियां जम जाती है। गर्मियों में तापक्रम ६५ अंश रहता है। वार्षिक तापान्तर ४५ से ५० अंश तक रहता है। जाड़ों में पछुआ हवाएं स्थल से जल की ओर चलती हैं और तटों से निकट क्युराइल धारा, लेब्राडार धारा तथा फाकलैंड धारा नामक ठंडी धारायें चलती हैं।

वर्षा का वार्षिक औसत १५ से ४० इञ्च तक है। किन्तु कहीं बहुत कम और कहीं बहुत अधिक वर्षा होती है। एशिया के इस भू भाग में जाड़ों में चक्रवातों से वर्षा होती है। किन्तु गर्मी में मानसूनी हवाएं ६० अंश उत्तरी अक्षांश तक आकर पानी बरसा देती है। अतः जापान के पूर्वी भाग में गर्मी में और पश्चिमी भाग में जाड़ों में अधिक वर्षा होती है क्योंकि झीलों पर होकर आने में पछुआ हवाओं में नमी अधिक हो जाती है और वे वर्षा कर सकती हैं। जाड़ों में चक्रवातों से काफी वर्षा होती है। सेंट लारेंस नदी के मुहाने के निकटतम भाग में वर्ष भर काफी वर्षा होती है। दक्षिणी अमरीका के इस भू-भाग में केवल १० इञ्च ही वार्षिक वर्षा होती है। पश्चिम की ओर यह उच्च एंडीज पर्वत माला की ओट में आ जाते हैं।

यहां उत्तरी भागों में चौड़ी पत्ती वाले वन मिलते हैं जिनमें शीत काल आने से पहले पतझड़ हो जाता है इन वनों के दक्षिणी किनारों पर कोण धारी वन मिलते हैं। दक्षिणी अमरीका के इस भू भाग में वर्षा अत्यन्त कम होने के कारण केवल घास और झाड़ियां ही उगती हैं। चौड़ी पत्ती वाले पतझड़ वनों में ओक, बीच, बर्च, एश, एल्म, वालनट, मेपिल इत्यादि वृक्ष उगते हैं। उत्तर में चीड़, फर तथा स्प्रूस के वृक्ष भी मिलते हैं।

लकड़ी काटना इस प्रदेश का प्राचीन व्यवसाय

है। एशिया के इस भूखण्ड में अब भी लकड़ी काटने का धंधा काफी प्रचलित है उत्तरी जापान, सखालिन, पूर्वी कोरिया आदि के निवासी मिश्रित रूप से खेती का व्यवसाय करते हैं और समूर वाले पशुओं का शिकार करते हैं। उत्तरी अमरीका के इस भूखण्ड में काफी विकास हो चुका है। अधिकांश वनों को साफ करके खेती की जाने लगी है। गेहूँ, जौ, जई तथा आलू उगाये जाते हैं। खेती का काम बड़े पैमाने पर मशीनों द्वारा किया जाता है। चूंकि फार्म अधिक बड़े हैं और काम करने वालों की कमी है, इसलिये खेती का सारा काम मशीन से होता है। मिश्रित खेती की जाती है। इसलिये पशु भी पाले जाते हैं। गाय, बड़े, भेड़े, घोड़े इत्यादि पशु पाले जाते जाते हैं। मुर्गियां भी पाली जाती हैं। पशुओं से मांस, दूध तथा ऊन प्राप्त किया जाता है। एशिया के इस प्रदेश में जापान में भी बड़ी उन्नति की है। लकड़ी काटने और लकड़ी का सामान बनाने के अतिरिक्त वहां कृषि में भी पर्याप्त उन्नति हो गई है। जापान में भी मिश्रित प्रणाली के आधार पर ही खेती होती है और किसान लोग सोया बीन, मक्का, ज्वार बाजरा गेहूँ, चावल तथा चाय पैदा करते हैं। रेशम के कीड़ों के पालने, शहतूत के बाग लगाने और कच्चा रेशम तैयार करने का व्यवसाय किया जाता है।

मंचूरिया में भी विकास की गति तीव्र हो चली है क्योंकि जापानियों ने वहां जाकर उसे सजग कर दिया है। मंचूरिया के लोग अप ी मिश्रित खेती से अपने लिये पर्याप्त मात्रा में खाद्यान्न, साग-भाजी तथा फल आदि उत्पन्न कर लेते हैं। यहां पर किसान लोग सोयाबीन तथा मोटे अन्नों की उपज खास तौर पर करते हैं। अब मशीनों की सहायता से गेहूँ भी उपजाया जाने लगा है।

दक्षिणी कोरिया का यह भाग नितान्त उजाड़, शुष्क और ठंडा मरुस्थल है जहां विकास कार्य अत्यन्त कठिन है फिर भी वहां के निवासी अपने गुजारे के लिये अन्न उत्पन्न करते, पशु पालने तथा समूर वाले पशुओं का शिकार करते हैं।

पशु-पालन में कनाडा तथा संयुक्त राज्य अमरीका काफी उन्नति पर हैं। यहां गाय, भेड़, सुअर और मुर्गियां पाली जाती हैं जापान में पशुओं की कमी है क्योंकि वहां चरागाहों का अभाव है। जापान में मांस भी नहीं खाया जाता। अतः सुअर, मुर्गी तथा भेड़ पालने का काम भी बहुत कम होता है और नहीं के बराबर है। दक्षिणी अमरीका के इस भूखण्ड में भेड़ों के पालने का काम बहुत होता है। भेड़ का मांस यहां से विदेशों को भेजा जाता है।

अल्टाई तुल्य प्रदेश में कृषि—मध्य एशिया, मध्य योरुप, उत्तरी तथा दक्षिणी अमरीका के उच्च पर्वतीय भाग जो शीतोष्ण कटिबन्धीय भागों में स्थित हैं इस प्रदेश के अन्तर्गत सम्मिलित हैं।

इन भू भागों में तापक्रम बहुत कम रहता है क्योंकि ऊंचाई के अनुसार प्रति ३०० फुट पर १ अंश की कमी हो जाती है। यहां का तापक्रम प्रायः ध्रुव प्रदेशीय भागों के समान रहता है किन्तु गरमी की ऋतु में अपेक्षाकृत कम तापक्रम और जाड़ों में अपेक्षाकृत अधिक तापक्रम रहता है। वार्षिक तथा दैनिक तापान्तर समस्त भू भागों में एक सा नहीं है। ऊंचाई के अनुसार यह न्यूनाधिक होता है। ऊंचे भागों में तापान्तर अपेक्षाकृत कम है। एशिया वाले भू भाग में इस प्रदेश के अन्य भू भागों की अपेक्षा तापान्तर कुछ अधिक होता है क्योंकि ये समुद्र से अपेक्षाकृत अधिक दूर स्थित हैं। ऊंचाई के अतिरिक्त अन्य बातों का भी तापान्तर पर प्रभाव पड़ता है। उदाहरणार्थ उन पर्वतीय ढालों पर जो सूर्य के सामने पड़ते हैं अधिक तापक्रम मिलता है तथा घाटियों में दिन में अन्य भागों की अपेक्षा अधिक तथा रात में कम तापक्रम रहता है।

इस प्रदेश की वर्षा ऊंचाई, स्थिति और ऋतु पर निर्भर है। पर्वतों से टकरा कर हवाएं ऊपर उठती हैं और जलवर्षा तथा हिमवर्षा करती हैं। अधिक ऊंची पर्वतीय श्रेणियों पर तो केवल हिम वर्षा ही होती है। पर्वतों के वे ढाल जो हवाओं के सामने पड़ते हैं नम तथा विपरीत ढाल शुष्क रहते हैं इसलिये अल्टाई पर्वत-माला के उत्तरी ढालों पर, हिमालय के दक्षिणी ढालों पर, योरुप में आल्प्स के दक्षिणी ढालों पर तथा अमरीका के राकी और एंडीज पर्वत मालाओं के पश्चिमी ढालों पर अधिक वर्षा

होती है। दक्षिणी अमरीका में दक्षिणी एंडीज पर्वतों के पूर्वी ढालों पर भी कुछ वर्षा होती है क्योंकि ये पर्वत अपेक्षाकृत कुछ कम ऊंचे हैं।

ऊंचाई और स्थिति के अनुसार इस-प्रदेश के भू-भागों की वनस्पति में अन्तर मिलता है। सब पर्वतीय ढालों पर वनस्पति के प्रकारों का वही क्रम चलता है जो भूमध्य रेखा से ध्रुव प्रदेशों तक महाद्वीपों के पूर्वी भागों में मिलता है अर्थात् उष्ण-कटिबन्धीय नम वन, गर्म शीतोष्ण सदा बहार वन, शीतोष्ण चौड़ी पत्ती वाले वन, कोणधारी शीत प्रदेशीय वन तथा टुन्ड्रा तुल्य वनस्पति पाई जाती है।

इस प्रदेश का प्रधान व्यवसाय लकड़ी काटना और चीरना है। वनों पर आश्रित अन्य प्रकार के धंधे भी किये जाते हैं। चूंकि यहां भी मिश्रित खेती होती है। पर्वतीय घाटियों तथा निचले ढालों पर लोग खेती करते हैं और राई, जई, गेहूं, तथा आलू की फसलें पैदा करते हैं। हिमालय के दक्षिणी ढालों पर चाय उगाई जाती है। कहीं-कहीं पर जौ की खेती भी होती है। इन प्रदेशों के निवासी शीत काल में घाटी में उतर आते हैं और मवेशियों को चराते हैं परन्तु ग्रीष्म ऋतु में पहाड़ों पर मवेशियों के साथ चले जाते हैं जहां उनके पशुओं के लिये घास मिल है। रूस अपने अल्टाई प्रदेश में गेहूं उगाने का प्रयास कर रहा है।

तिब्बत तुल्य प्रदेशों की खेती—यह प्रदेश गर्म शीतोष्ण कटिबन्ध में स्थित है। इसकी जलवायु शीत शीतोष्ण कटिबन्ध जैसी है। इसके अन्तर्गत एशिया में तिब्बत का पठार और पामीर का पठार तथा दक्षिणी अमरीका में पीरू और बोलविया के पठार शामिल हैं। ये सभी पठार समुद्र-तल से १२,००० फुट से अधिक ऊंचाई पर स्थित हैं और सब ओर से ऊंचे पर्वतों द्वारा घिरे हैं।

इस प्रदेश का दैनिक तथा वार्षिक तापान्तर बहुत अधिक है। रात में अत्यन्त सर्द हवाएं चलती हैं और बहुत पाला पड़ता है जब कि दिन में कड़ी धूप और छाया के तापक्रम में भी पर्याप्त अन्तर रहता है। तापक्रम के इस प्रकार बढ़ने-घटने से चट्टानें अधिक टूटती-फूटती हैं। तिब्बत के पठार में गर्मियों का मौसम छोटा तथा गर्म होता है। इस ऋतु में प्रायः रोज कुहरा छाया रहता है। यहां के जाड़े का मौसम बड़ा ठंडा होता है और औसत ताप ४० अंश रहता है। पाला प्रायः रोजाना पड़ता है। दक्षिणी अमरीका वाले इन भू-भागों में जलवायु इतनी कड़ी नहीं होती है जितनी तिब्बत में क्योंकि ये प्रदेश भूमध्य रेखा के अपेक्षाकृत निकट हैं और इन अक्षांशों में दक्षिणी अमरीका का विस्तार कम है। यहां का वार्षिक तापान्तर भी अपेक्षाकृत कम है।

तिब्बत का पठार प्रायः शुष्क रहता है। केवल दक्षिणी पूर्वी भाग में मानसून द्वारा वर्षा हो जाती है। ल्हासा नगर में लगभग ४० इंच वर्षा होती है। इसके पश्चिमी भाग में भी शीत कालीन चक्रवातों द्वारा कुछ वर्षा हो जाती है। पीरू और बोलीविया के पठारों पर तिब्बत की अपेक्षा कुछ अधिक वर्षा होती है। यहां प्रायः गर्मियों में वर्षा होती है।

तिब्बत में मिश्रित प्रकार की खेती की जाती है। इस प्रदेश में पानी का निकास अच्छा नहीं है और नदियां प्रायः भीतरी भागों की ओर बहती हैं जिसके कारण नमकीन और क्षार प्रधान मिट्टी के क्षेत्र अधिक हैं। यहां वर्षा बहुत कम होती है इसी कारण यहां खेती भी कम उगाई जाती है। यहां पर छोटी-छोटी घास ही मिलती है। पेड़ तो दिखाई ही नहीं पड़ते।

यहां के निवासी खास तौर पर पशु पालन का व्यवसाय करते हैं। लोग याक, भेड़ तथा बकरियां पालते हैं। याक बोझा ढोने के काम आता है। तथा याक, भेड़ बकरियों से तथा ऊन दूध मिलता है। उत्तरी तिब्बत प्रायः बिल्कुल उजाड़ तथा निर्जन है किन्तु दक्षिणी भाग में लोग निवास करते हैं और मिश्रित प्रकार की खेती करते हैं। इस भाग में सांपू नदी की घाटी में पशु-पालन के साथ ही साथ खेती भी की जाती है। इसी कारण यहां पर जनसंख्या भी अपेक्षाकृत अधिक है। यहां जौ, थोड़ा गेहूं, थोड़ा चना, दाल तथा आड़ू और खुबानी आदि फलों की उपज की जाती है।

चरागाह तथा पशुओं को खिलाई जाने वाली फसलें—उत्तरी पश्चिमी योरुपीय प्रदेशों की ग्रीष्म ऋतु सर्द तथा नम और अपेक्षाकृत साधारण

होती है। इन प्रदेशों में नम जाड़ों के मौसम के कारण घास वाली फसलें उगती हैं। रोटेशन हेर फेर वाली घासों के काटने के परचात् इनमें स्थायी रूप से रहने वाली घास ग्रीष्म काल के अन्त समय तक नहीं सूखती है। जिन निचली भूमि तथा पर्वतीय भागों में खेती नहीं की जा सकती है वे चरागाहों का काम देती हैं और वहां पर भेड़ों तथा पशुओं के बड़े-बड़े गल्ले चराये जाते हैं।

परिचमी योरुप के कुछ देशों में कृषि भूमि के तीन चौथाई भाग में स्थायी रूप से चरागाह तथा सेवार आदि घास रहती हैं। नीचे की तालिका से योरुप के चुने देशों में चरागाह वाली भूमि तथा फसलों वाली भूमि का अच्छा ज्ञान प्राप्त होता है—

देश का नाम	कृषि भूमि में स्थायी रूप से चरागाहों तथा ममतल घास वाले मैदानों का प्रतिशत	रोटेशन के अनुसार चरागाहों अन्य पशुओं को खिलाई जाने वाली फसलों का प्रतिशत	अन्नों की उपज वाली भूमि का प्रतिशत	खाद्य सम्बन्धी फसलों का प्रतिशत	कारखाने वाली फसलों का प्रतिशत
बेल्जियम	३६	२१	५५	१५	८
डेनमार्क	१३	४२	५०	३	१
फ्रांस	३६	२७	५०	११	२
जर्मनी	५३	१६	५६	१६	३
ग्रेट ब्रिटेन	७४	४२	३३	७	३
हंगारी	२३	१५	७३	७	२
आयरलैंड	७२	५८	२१	११	२
हालैंड	५७	१२	५५	२१	१०
नार्वे	१८	६८	२२	८	×
स्वीडन	२०	४७	४१	४	१
स्विटजरलैंड	७६	६४	२४	१०	०.६

कारखाने वाली फसलों में चुकन्दर, पटुआ (सन), हेम्प (पटुआ) तथा तम्बाकू आदि प्रधान हैं। इन फसलों का उत्पादन व्यवसायिक रूप से होता है। उत्तर-परिचमी योरुपीय देशों में चुकन्दर की उपज का विशेष स्थान है। इससे चीनी काफी मात्रा में बनाई जाती है और लोगों की चीनी की मांग की पूर्ति होती है। इसको पशुओं को खिलाने में प्रयोग किया जाता है। इसका ऊपरी सिरा और जड़ों का रस निकालने के परचात् नष्ट भाग प्रायः पशुओं के चारे का काम देता है। कुछ भागों में तो चुकन्दर की उपज का प्रायः आधा भाग पशुओं को खिला दिया जाता है। खाद्य वाली वस्तुओं का जो तालिका में कालम है उसमें आलू तथा विभिन्न प्रकार की साग-भाजियों की भी गणना है। परन्तु इसमें अनाजों की गणना नहीं

है। इसमें झाड़ियों तथा वृक्षों वाले फलों की गणना नहीं है। इसलिये इस कालम के आंकड़ों के समझने में भूल नहीं करनी चाहिये। अंगूरों और कुछ वृक्षों तथा झाड़ियों वाले फलों की आंकड़ों में गणना नहीं की गई है।

इन देशों में सुखाकर रक्खी जाने वाली घासों और चारागाहों वाली भूमि का भाग काफी अधिक है। डेनमार्क में २५ प्रतिशत, स्वीडन में ४२ प्रतिशत, आयरलैण्ड में ५९ प्रतिशत, स्विटजरलैण्ड में ६१ प्रतिशत और नार्वे में ६३ प्रतिशत भाग में घासें उगाई जाती हैं और चरागाह हैं। इन देशों को छोड़ कर संसार के किसी अन्य क्षेत्र या प्रदेश में अल्फा जैसी घास इतने अधिक समय तक नहीं टिक सकती है और नहीं रह सकती है। यदि रक्खा जाता है तो खराब हो जाती है। इन स्थानों पर घास भी अधिक मात्रा में और अधिक उपज के साथ उत्पन्न होती है।

उपर्युक्त आंकड़ों में घास वाले मैदानों तथा चरागाहों के जो आंकड़े प्रस्तुत किये गये हैं उनसे यह बात सिद्ध तथा स्पष्ट होती है कि मिश्रित खेती में यहां पर खाद्यान्नों तथा चरागाहों की कृषि और उपज में कितना गहरा सम्बन्ध है तथा पशुपालन व्यवसाय कितनी संख्या में किया जाता है। यद्यपि रोटेशन (हेर फेर) वाली घासों के खेतों की संख्या अधिक है फिर जड़ों वाली उपज तथा चुकन्दर की फसलों वाली भूमि का स्थान भी काफी है और कपास के स्थान पर इन्हीं की योरुप में उपज होती है। जड़ों वाली फसलों में आलू की फसल भी तैयार करके कुछ देशों में पशुओं को खिलाने के लिये रक्खी जाती है। कृषि वाली भूमि के ५ से १० प्रतिशत भूमि में जड़ वाली फसलें बोई जाती हैं। जर्मनी में जहां कि आलू का प्रयोग पशुओं को खिलाने में किया जाता है और कृषि वाली भूमि के १५ प्रतिशत भाग में इसकी उपज की जाती है वहां पर भी ५ प्रतिशत भूमि में शलजम तथा अन्य प्रकार की घासें ८ प्रतिशत कृषि भूमि में में बोई जाती हैं। यह वस्तुएं सर्द तथा नम जलवायु और चतुरी भूमि में खूब उगती तथा पनपती हैं। इसी के साथ ही साथ इन देशों में फसलों के पौधों को लगाने, पौधों की काट-छांट करने, निराने, फसलों को काटने आदि के लिये इन देशों में काफी संख्या में श्रमिक मिल जाते हैं। जड़ वाली फसलों के ऊपरी भागों को ग्रीष्म ऋतु में भेड़ों तथा पशुओं से चरा लिया जाता है और इनकी जड़ों जो कि मूल्य में अनाजों से अधिक होती हैं इनको शीतकाल में गाय, बैलों, बछड़ों, मेमनों, सुअरों इनके बच्चों, दूध देने वाली गायों तथा घोड़ों को खिलाया जाता है। इन देशों के अतिरिक्त उत्तरी-पश्चिमी योरुप के अन्य देशों में भी उपर्युक्त पशुओं को खिलाने तथा चारे वाली फसलों के उगाने का काम कृषि भूमि के ५ से १० प्रतिशत भाग में किया जाता है।

खाद्यानों की फसलें—यद्यपि उत्तरी-पश्चिमी योरुपीय देशों में कृषि भूमि में बोई जाने वाली पशुओं के खिलाई जाने वाली वस्तुओं तथा रोटेशन (हेर-फेर) से खाद्यानों वाली फसलों की भूमि में बहुत अधिक तौर पर भिन्नता पाई जाती है फिर भी प्रत्येक स्थान पर गेहूं को भोजन के लिये और जई को पशुओं को खिलाने के लिये प्रयोग किया जाता है। जौ को पशुओं को खिलाते हैं और राई पशुओं तथा मनुष्यों दोनों के भोजन का काम देती है। खाद्यानों वाली सारी वस्तुएं गेहूं को छोड़ कर सभी जब हरी रहती हैं तो पशुओं को काट कर खिलाई जाती हैं। परन्तु इनका अधिकतर भाग पकने पर ही काटा जाता है ताकि खाने के लिये अन्न भी उपज हो।

इन देशों में जहां वर्षा कम होती है और भूमि और अधिक अच्छी तथा उपजाऊ है वहां उन अच्छी तथा उपजाऊ भूमि में गेहूं बोया जाता है। पेरिसकी प्रास, उत्तरी फ्रांस, दक्षिणी पूर्वी बेल्जियम, पूर्वी इङ्गलैण्ड और मध्य जर्मनी में गेहूं बोया जाता है। रोटेशन (हेर-फेर) प्रथा, खाद-पास अधिक प्रयोग करने और चुने हुये अच्छे प्रकार के बीजों के प्रयोग करने के फलस्वरूप उत्तरी-पश्चिमी योरुप के निवासी गेहूं की बड़ी अच्छी फसलें उगाते हैं। यद्यपि हालैण्ड और डेनमार्क में भूमि की कम मात्रा में गेहूं की फसल बोई जाती है फिर भी इन देशों में प्रति एकड़ पीछे ४० बुशल गेहूं की उपज होती है। बेल्जियम में प्रति

एकड़ पीछे ३८ बुशल, ग्रेट ब्रिटेन में प्रति एकड़ पीछे ३५ बुशल, जर्मनी में २६ बुशल और फ्रांस में २० बुशल की उपज होती है। यह उपज संसार के अर्ध मरुस्थली प्रदेशों की उपज की अपेक्षा कहीं अधिक है। फ्रांस देश में गेहूँ की उपज करने वाले किसानों की रक्षा वहाँ की सरकार कर रही है और अर्ध मरुस्थलों से आने वाले सस्ते गेहूँ पर ऊँची चुंगी लगाती है, आटा पीसने वाली मिलों पर विदेशी गेहूँ पर कर लगाती है, कोटा प्रणाली का प्रयोग करती है। इन कारणों से वहाँ अन्य देशों की अपेक्षा गेहूँ अधिक भूमि में बोया जाता है और गेहूँ की फसलों वाली भूमि, घास को छोड़ अन्य
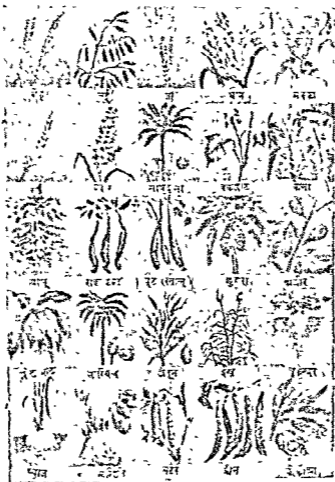
२२—मानवोपयोगी पृथिवी के पच्चीस पौधे

प्रकार की उपज करने वाली भूमि से अधिक है। फ्रांस में कृषि भूमि के २८ प्रतिशत भाग में गेहूँ की फसल बोई जाती है।

जिन देशों की भूमि ऊँची-नीची है, मिट्टी उपजाऊ कम है, शीतकाल अधिक भीषण होता है वहाँ पर आलू की भाँति राई की उपज बहुत अधिक होती है और उससे बहुत अधिक लाभ होता है। योरुप के बड़े विशाल मैदान में जो कि उत्तरी सागर से लेकर

यूराल पर्वतों तक फैला हुआ है वहां पर राई की सब कहीं अधिक प्रचुर मात्रा में राई की उपज की जाती है और कृषि वाली भूमि के एक पांचवें भाग से लेकर एक-तिहाई भाग तक में इसकी उपज की जाती है वहां पर केवल राई की उपज का एक तिहाई भाग भोजन के लिये प्रयोग होता है जब कि योरुपीय देशों में इसका अधिक भाग भोजन के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसकी रोटी बना कर खाई जाती है।

उत्तरी-पश्चिमी योरुपीय देशों में जई की फसल भी लोगों के लिये बड़ी लाभ दायी है। इसकी उपज भी विशेष रूप से की जाती है क्योंकि यह शीतल, नम जलवायु तथा अपेक्षाकृत कम उपजाऊ भूमि में उपजती है। स्काटलैण्ड जैसे अनेकों देशों में जई का प्रयोग भोजन के लिये होता है परन्तु अन्य देशों में इसे पशुओं को खिलाने के लिये प्रयोग किया जाता है। फिनलैण्ड, स्कैंडीनेविया के देशों, ग्रेट ब्रिटेन, आयरलैण्ड आदि देशों में सुखा कर रक्खी जाने वाली घास के अतिरिक्त सभी वस्तुओं से अधिक जई की उपज की जाती है। फ्रांस में जई की खेती का नम्बर गेहूँ के बाद और जर्मनी में राई के बाद है।

उत्तरी-पश्चिमी योरुप में जौ की उपज का विशेष रूप से महत्व है क्योंकि एक तो जौ की फसल जल्दी तैयार होती है, दूसरे इसकी पैदावार प्रति एकड़ पीछे अधिक होती है. तीसरे रोटेशन (हेर-फेर) प्रथा में यह पैदा होता है और चौथे यह कि इसका भूसा पशुओं को खाने के लिये बहुत अच्छा होता है। इङ्गलैंड और डेनमार्क देशों में बहुत अधिक मात्रा में जौ पशुओं को खिलाया जाता है इसके अलावा सभी स्थानों पर इससे शराब बनाई जाती है।

भोजन वाले पदार्थों की फसलें और मिश्रित खेती–

उत्तरी-पश्चिमी योरुप में अधिकांश फार्मों में विभिन्न प्रकार की साग भाजियां तैयार की जाती हैं जिनका प्रयोग घरों में किया जाता है और समीपवर्ती शहरी बाजारों में इन्हें बेचा जाता है। यद्यपि समस्त उत्तरी-पश्चिमी योरुप में सब कहीं गेहूँ की उपज होती है परन्तु जिन स्थानों की मिट्टी उपजाऊ है और वर्षा कम होती है वहां पर इसकी उपज अधिक होती है। उत्तरी-पश्चिमी योरुप में मुलायम प्रकार का गेहूँ उत्पन्न होता है और इसकी उपज इतनी अधिक नहीं होती है कि मांग की पूर्ति कर सके। मध्य तथा पूर्वी योरुप में गेहूँ वाले प्रदेशों के उत्तर की ओर राई की उपज करने वाले मैदान स्थित हैं। खाने में प्रयोग होने वाली वस्तुओं की सूची में आलू का सबसे अधिक महत्वपूर्ण स्थान है और यह अपने प्रकार की सभी फसलों के बराबर भूमि में बोया जाता है। संयुक्त राज्य अमरीका में यह ३५ लाख एकड़ भूमि में बोया जाता है जो कि कृषि वाली भूमि का एक प्रतिशत है। जर्मनी जहां पर कि संयुक्त राज्य अमरीका की कृषि भूमि के सातवें भाग के बराबर कृषि भूमि है वहां पर ७० लाख एकड़ भूमि में आलू की उपज की जाती है जो कि उसकी कृषि भूमि का १५ प्रतिशत भाग है। यह समस्त संसार में आलू की भूमि का एक चौथाई है। समस्त योरुप में समस्त संसार का चार बटा पांच भाग आलू की उपज होती है। शीतोष्ण कटिबन्ध में आलू की उपज अधिक होती है। आलू में गेहूँ की अपेक्षाकृत एक चौथाई भाग पोषण शक्ति है परन्तु इसकी उपज गेहूँ की अपेक्षा प्रति एकड़ पीछे पांच से दस गुनी तक होती है। इसलिये सघन योरुप के निवासियों के लिये यह अत्यन्त लाभदायी वस्तु है। आलू की उपज करने में विशेष मेहनत पड़ती है और यह ठंडे देशों में अधिक होता है। संयुक्त राज्य अमरीका में मैन नामक राज्य में यह एक एकड़ भूमि में २५० बुशल होता है और वहां औसत से प्रति एकड़ भूमि में ११० बुशल आलू की उपज होती है। योरुप के वे स्थान जहां की आबादी अधिक सघन है वह मैन से कहीं उत्तर स्थित हैं जो आलू की उपज के लिये अत्यन्त उपयुक्त हैं। बलुही भूमि पर आलू की उपज करने के लिये अधिक मात्रा में खाद की आवश्यकता है। परन्तु खाद की मात्रा अधिक देना इस ध्यान से न्याय सङ्गत तथा उचित है कि अन्य वस्तुओं से इसकी उपज अधिक होती है। आलू में अधिक श्रम की आवश्यकता है और यह इतना भारी होता है कि इसको जहाजों द्वारा बाहर भेजने में अधिक खर्च पड़ता है और लाभ नहीं होता है। उत्तरी पश्चिमी योरुप में सस्ते मजदूर बहुत अधिक हैं और फार्मों में काफी लोग

निवास करते हैं, बड़े बड़े नगरों की संख्या भी अधिक है। इसी कारण जर्मनी में प्रति व्यक्ति के ऊपर २४ बुशल आलू पैदा किया जाता है जो संयुक्त राज्य अमरीका से अपेक्षाकृत ६ गुना है। जर्मन लोग आलू अधिक खाते हैं। परन्तु फिर भी जितना आलू वहां पैदा होता है उसके एक तिहाई से भी कम भाग की वहां खपत होती है। आलू पशुओं को और विशेष तौर पर सुअरों को खिलाया जाता है। इसकी एक बड़ी मात्रा मदिरा, स्टार्च (चर्बी) तथा आटा बनाने में लगाई जाती है।

पशु - चूंकि उत्तरी-पश्चिमी योरुप में घास, अन्य भांति के चारों तथा जड़ वाली वस्तुओं की बहुत अधिक उपज होती है इसलिये वहां पर बहुत अधिक संख्या में किसान लोग पशुपालन का काम करते हैं। वहाँ पर पशुओं के बेचने के लिये भी बहुत से बाजार हैं और बड़ी सुविधा है। इसी कारण संसार के सभी भागों से वहाँ अपेक्षाकृत पशु वर्तमान हैं। आयरलैण्ड में प्रतिवर्ग मील में १४०, डेनमार्क में १६० पशु, २१० सुअर, भेड़ तथा घोड़े मिल कर हैं। प्राय: उत्तरी-पश्चिमी योरुप में ही गोमांस वाले पशुओं, गायों तथा भेड़ों की उत्तम से उत्तम श्रेणियों की उन्नति हुई है। यद्यपि डेनमार्क में अन्य पशुओं की अपेक्षाकृत गायों की संख्या अधिक है। हालैण्ड, स्विजरलैण्ड तथा डेयरी फार्मिंग वाले अन्य जिलों में गोमांस वाले पशुओं की ही अधिकता है। ऊन तथा मांस वाली भेड़ें, सुअर, मुर्गियां तथा खेती के घोड़ों का योरुपीय देशों में विशेष स्थान तथा महत्व है। स्थायी घास के मैदानों में ही भेड़ें पाली जाती हैं केवल शीतकाल में ही उन्हें स्थान को धारा दिया जाता है। इसके विपरीत भेड़ों बकरियों के बच्चों, गोमांस वाले पशुओं को ग्रीष्म काल में चरागाहों में चरा कर तथा बिनौला खिला कर और विभिन्न प्रकार के उपजें खिला कर मोटा किया जाता है और या शीत काल में जड़ों का मिश्रण, सूखी घास, अनाज तथा अन्य प्रकार के चारे खिला कर मोटा किया जाता है। उन्हें खिलाने के लिये अन्न तथा खली का आयात किया जाता है। सुअरों को मोटा करने के लिये अलसी, चुकन्दर की खोई, शलजम, आलू, जौ, मक्खन निकाला दूध आदि खिलाया जाता है। प्राय: योरुप के सभी स्थानों पर वैज्ञानिक तौर पर पशुओं को खिलाया पिलाया तथा नसलें तैयार की जाती हैं। अधिकतर प्रदेशों में घरेलू प्रयोग के लिये पशु-पालन का कार्य होता है परन्तु अनेक देशों में इनका निर्यात भी बहुत अधिक संख्या में होता है। डेनमार्क का सुअर का मांस संसार भर में सबसे अधिक प्रसिद्ध है। वहां से जितने रुपये का सामान निर्यात होता है उसका एक तिहाई भाग सुअर का मांस है। मक्खन भी वहां के निर्यात का एक तिहाई भाग संसार में भेजा जाता है। आयरलैण्ड के निर्यात का एक तिहाई भाग पशुओं का है जो जहाजों द्वारा इंगलैंड आदि देशों को भेजे जाते हैं। चूंकि उत्तरी पश्चिमी योरुप में विभिन्न प्रकार के पशु पाले जाते हैं और उनके खाने के लिये भी विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ उगाई जाती हैं। इसलिये वहां पर संसार के अन्य स्थानों की अपेक्षाकृत मिश्रित खेती को विशेष रूप से स्थायी स्थान प्राप्त है।

उत्तरी-पश्चिमी योरुप की उर्वरा शक्ति तथा कृषक संतुलन—उत्तरी- पश्चिमी योरुप के जो किसान मिश्रित तथा विशेष प्रकार की व्यवसायिक खेती करते हैं उन्हें इस प्रकार की खेती तथा व्यवसाय करने वाले संसार के किसानों की अपेक्षाकृत कहीं अधिक प्रति एकड़ पीछे अनाज, घास और पशुओं की उत्पत्ति प्राप्त होती है। यद्यपि विभिन्न भागों के उत्पादन में भी भिन्नता है फिर भी साधारणतया एक एकड़ भूमि में ढाई से तीन टन तक सूखी घास, २० से २५ टन तक पशुओं को खिलाई जाने वाली जड़ें, १० से १५ टन तक आलू, ३० से ५० बुशल तक गेहूँ और जौ तथा ७० से ६० बुशल तक जई होती है। जिन स्थानों पर बहुत अधिक काल से खेती होती आ रही है वहां पर उत्तम प्रकार की रोटेशन (हेर फेर) प्रथा के प्रयोग करने, पांसने तथा खाद देने और वैज्ञानिक रूप से खेती तथा पशु पालन करने ही से इतना अधिक उत्पादन होता है। साधारणतया उपज अधिक होती है। चूंकि वर्षा समय पर और ठीक तौर पर होती है। खेती गहरी की जाती है तथा वैज्ञानिक रूप से खेती और पशु पालन कार्य किया जाता है इसलिये वहां पर फसलों के तथा पशुओं के उत्पादन पर सदैव निश्चय तौर पर भरोसा किया जा सकता है। अपनी उपज के भरोसे ही वहां के किसान अपना उच्च जीवन स्तर स्थापित किये हुये हैं और प्रति वर्ष थोड़ी बहुत बचत भी कर लेते हैं। योरुप के किसानों के

विपरीत संसार के अन्य भागों के किसानों की दशा यह होती है जिस वर्ष उन्हें अच्छी तथा भारी उपज प्राप्त होती है उस वर्ष या तो वे नाजायज रूप से खर्च करते हैं और या अपने ऋण को चुकाते हैं और जब फसल खराब होती है तो फिर ऋण लेकर अपना काम चलाते हैं।

गहरी खेती करते हुये तथा अधिक उपज की मात्रा होते हुये भी उत्तरी पश्चिमी योरुप के किसान आत्म-निर्भर नहीं हैं। सभी प्रकार की खाने वाली सामग्रियों को ध्यान में रखते हुये फ्रांस में अपनी खपत का ६५ प्रतिशत भाग की, जर्मनी में ८० प्रतिशत भाग की उपज होती है। इङ्गलैंड में अपनी खपत की केवल एक तिहाई खाद्य सामग्री उत्पन्न की जाती है, दो तिहाई भाग बाहर से मंगाया जाता है। अनेक देशों में यदि एक वस्तु अपनी खपत से अधिक होती है तो दूसरी उसे बाहर से मंगानी पड़ती है। उत्तरी फ्रांस, स्विजरलैंड, स्वीडन तक और बाल्टिक देशों में दूध, मक्खन तथा पनीर आदि का अधिक उत्पादन है और देश की खपत से ये सामग्रियां अधिक बच जाती हैं और निर्यात होती हैं। इङ्गलैंड में चूंकि कारखाने वाली जनता की विशेषता है इसलिये वहां खाद्य सामग्री की सदैव कमी बनी रहती है। डेनमार्क और आयरलैंड को छोड़कर प्रायः समस्त उत्तरी-पश्चिमी योरुपीय देशों में मांस अपनी खपत से अधिक नहीं होता है। उत्तरी पश्चिमी योरुप को नारंगी, नींबू, सतरा, केला, मदिरा, वेजीटेबुल, तेल आदि बाहर से मंगाना पड़ता है। इस प्रदेश में गेहूँ, विभिन्न प्रकार का अन्न, रुई, गोमांस, भेड़ का मांस, सुअर के बच्चे का मांस, मछली, मक्खन और पनीर आदि बाहर से प्रचुर मात्रा में मंगाया जाता है।

संसार की खेती के योग्य जमीन
विषुवत रेखा का औसत पैमाना १. २८,२०,००,०००

हंगारी
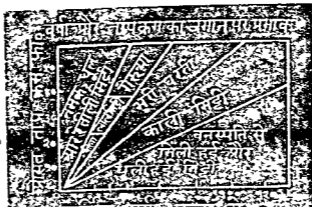
हङ्गारी देश कार्पेथियन के दक्षिणी ढालों पर स्थित है। यह अधिकतर चपटा है। हङ्गारी के मैदान को डेन्यूब, थेस और उनकी सहायक नदियां सींचती हैं। अधिकांश लोग कृषि से जीविका उपार्जन करते हैं। इस देश में ८६,८८,००० मनुष्य रहते हैं। इसमें प्रायः ५२ प्रतिशत मनुष्य खेती पर निभर हैं। देश की समस्त भूमि ९३,०७,००० हेक्टर है। इस में ५६,४०० हेक्टर भूमि में खेती होती है। शेष में चरागाह और ऊसर है।

१६ वीं शताब्दी में तारतारों के आक्रमण और तुर्कों के शासन में हङ्गारी की कृषि प्राय. नष्ट हो गई। तुर्कों के आधिपत्य में सुन्दर कृषि योग्य भूमि स्टेपी चरागाहों अथवा दलदलों में परिणत हो गई थी। १८६७ में हङ्गारी का विधान बनने के बाद हङ्गारी की कृषि में सुधार हुआ।

पहली बड़ी लड़ाई के अन्त में स्वाधीन होने पर भी यह एक अर्द्ध उपनिवेश के समान एक कृषक देश था। यहां ब्रिटेन, फ्रांस आदि पश्चिमी योरुप के कारबारी देशों का प्रभुत्व था। बड़े-बड़े जागीर दारों का बोल बाला था। एक जागीरदार (प्रिन्स एस्टर हेजी) के पास दो लाख एकड़ भूमि थी। इस प्रकार हङ्गारी में भूमि का वितरण बहुत विषम था।

पहली बड़ी लड़ाई के बाद कुछ सुधार हुआ। ६,००,००० हेक्टर भूमि छोटे-छोटे किसानों को बांट दी गई। १९३७ ई० के सुधारों ने बड़ी-बड़ी जागीरों का क्षेत्रफल कुछ और घटा दिया।

दूसरी बड़ी लड़ाई में रूसी प्रभुत्व बढ़ने पर १९४४ ई० में जर्मन भगा दिये गये। जिन लोगों ने जर्मनों का साथ दिया था और जो नाजी दल के थे उनकी भूमि बिना मुआ़विज़ा दिये ही छीन ली गई। जो जागीर ५८० हेक्टर से अधिक बड़ी थीं वे मुआ़विज़ा देकर ले ली गईं।

वन प्रदेश सरकारी सम्पत्ति हो गये। चरागाहों का प्रबन्ध देहाती समितियां करने लगीं। कृषि योग्य भूमि का फिर से वितरण हुआ।

इस बार इस बात का ध्यान रक्खा गया कि किसान को उतना ही खेत मिले जिसे वह स्वय जोत बो सके। ८०७ हेक्टर खेत और चरागाह १७ हेक्टर बगीचों का आयत निश्चित किया गया। भूमि के नये स्वामियों को वार्षिक उपज का बीस गुना अधिक मूल्य देना पड़ता था। यह मूल्य नगद या उपज के रूप में दिया जा सकता था। छोटे किसानों को १० प्रतिशत एकदम और शेष ६ किश्तों में ६ वर्ष देने का निश्चय हुआ। पर यह किसान १० वर्ष तक अपनी भूमि नहीं बेचसकते थे। ३,२७७ गावों में २९,४८,००० हेक्टर भूमि सरकार ने छीन ली थी। यह ६६००० फार्मों और २,२५,००० कृषि-मजदूरों और लगभग २ लाख छोटे किसानों को बांट दी गई।

यूगोस्लेविया

१९१४ में सर्विया का जो छोटा राज्य था वही इस युद्ध के अन्त में यूगोस्लेविया के बड़े राज्य में बदल गया। इस में बाल्कन प्रदेश के सर्ब, क्रोट और स्लोवीन लोग सम्मिलित हो गये। पांचवीं शताब्दी में जब हूणों का साम्राज्य छिन्न भिन्न होने लगा तब विश्चुला के निकट रहने वाले स्लैव लोग बाल्कन प्रदेश में आ गये। उन्हीं दक्षिणी स्लैव या यूगोस्लैव की चार शाखायें (सर्ब, क्रोट, स्लोवीन और बलगर) बनीं। इन लोगों ने अपनी भाषा और रहन सहन को सुरक्षित रक्खा। ये कृषि कार्य में लगे रहे।

१९२१ में बल्गारिया तो प्रथक्-राज्य बना रहा पर सर्ब क्रोट और स्लोवीन लोगों ने मिल कर यूगोस्लेविया का राज्य बना था। यूगोस्लेविया की जनसंख्या प्राय १ करोड़ ५७ लाख है। यह जनसंख्या लगातार बढ़ रही है।

इस देश का प्रधान पेशा खेती है। कृषि से ही यहां के लोगों को भोजन मिलता है और विदेशी व्यापार चलता है। ७७ प्रतिशत लोग खेती में लगे हैं। केवल २२ प्रतिशत दूसरे कारबार व्यापार आदि कार्यों में लगे हैं। अधिकतर खेत छोटे हैं। इन छोटे खेतों का क्षेत्रफल ५ हेक्टर से कम है। किसान और उसके परिवार का पोषण करने के बाद बहुत कम उपज शेष बचती है। बहुत से किसानों का भरण पोषण अकेले खेती से नहीं हो पाता है। वे पशु भी पालते हैं।

विपरीत ससार के अन्य भागों के किसानों की दशा यह होती है जिस वर्ष उन्हें अच्छी तथा भारी उपज प्राप्त होती है उस वर्ष या तो वे नाजायज रूप से खर्च करते हैं और या अपने ऋण को चुकाते हैं और जब फसल खराब होती है तो फिर ऋण लेकर अपना काम चलाते हैं।

गहरी खेती करते हुये तथा अधिक उपज की मात्रा होते हुये भी उत्तरी पश्चिमी योरुप के किसान आत्म निर्भर नहीं हैं। सभी प्रकार की खाने वाली सामग्रियों को ध्यान में रखते हुये फ्रांस में अपनी खपत के ८५ प्रतिशत भाग की, जर्मनी में ८० प्रतिशत भाग की उपज होती है। इंगलैंड में अपनी खपत की केवल एक तिहाई खाद्य सामग्री उत्पन्न की जाती है, दो तिहाई भाग बाहर से मंगाया जाता है। अनेक देशों में यदि एक वस्तु अपनी खपत से अधिक होती है तो दूसरी उसे बाहर से मंगानी पड़ती है। उत्तरी फ्रांस, स्विजरलैंड, स्वीडन तक और बाल्टिक देशों में दूध, मक्खन तथा पनीर आदि का अधिक उत्पादन है और देश की खपत से ये सामग्रियां अधिक बच जाती हैं और निर्यात होती हैं। इंगलैंड में चूंकि कारखाने वाली जनता की विशेषता है इसलिये वहां खाद्य सामग्री की सदैव कमी बनी रहती है। डेनमार्क और आयरलैंड को छोड़कर प्राय: समस्त उत्तरी-पश्चिमी योरुपीय देशों में मांस अपनी खपत से अधिक नहीं होता है। उत्तरी पश्चिमी योरुप को नारंगी, नींबू, सन्तरा, केला, मदिरा, वेजीटेबुल, तेल आदि बाहर से मंगाना पड़ता है। इस प्रदेश में गेहूँ, विभिन्न प्रकार का अन्न, जई, गोमांस, भेड़ का मांस, सुअर के बच्चे का मांस, मछली, मक्खन और पनीर आदि बाहर से प्रचुर मात्रा में मंगाया जाता है।

हंगारी

हङ्गारी देश कार्पेथियन के दक्षिणी ढालों पर स्थित है। यह अधिकतर चपटा है। हङ्गारी के मैदान को डेन्यूब, थेस और उनकी सहायक नदियाँ सींचती हैं। अधिकांश लोग कृषि से जीविका उपार्जन करते हैं। इस देश में ८६,८८,००० मनुष्य रहते हैं। इसमें प्रायः ५२ प्रतिशत मनुष्य खेती पर निर्भर हैं। देश की समस्त भूमि ६३,०७,००० हेक्टर है। इस में ५६,४०० हेक्टर भूमि में खेती होती है। शेष में चरागाह और ऊसर है।

१६ वीं शताब्दी में तातारों के आक्रमण और तुर्कों के शासन में हङ्गारी की कृषि प्रायः नष्ट हो गई। तुर्कों के आधिपत्य में सुन्दर कृषि योग्य भूमि स्टेपी चरागाहों अथवा दलदलों में परिणत हो गई थी। १८६७ में हङ्गारी का विधान बनने के बाद हङ्गारी की कृषि में सुधार हुआ।

पहली बड़ी लड़ाई के अन्त में स्वाधीन होने पर भी यह एक अर्द्ध उपनिवेश के समान एक कृषक देश था। यहां ब्रिटेन, फ्रांस आदि पश्चिमी योरुप के कारबारी देशों का प्रभुत्व था। बड़े-बड़े जागीर दारों का बोल बाला था। एक जागीरदार (प्रिन्स एस्टर हेज़ी) के पास दो लाख एकड़ भूमि थी। इस प्रकार हङ्गारी में भूमि का वितरण बहुत विषम था।

पहली बड़ी लड़ाई के बाद कुछ सुधार हुआ। ६,००,००० हेक्टर भूमि छोटे-छोटे किसानों को बांट दी गई। १६३७ ई० के सुधारों ने बड़ी-बड़ी जागीरों का क्षेत्रफल कुछ और घटा दिया।

दूसरी बड़ी लड़ाई में रूसी प्रभुत्व बढ़ने पर १६४४ ई० में जर्मन भगा दिये गये। जिन लोगों ने जर्मनों का साथ दिया था और जो नाज़ी दल के थे उनकी भूमि बिना मुआ़विज़ा दिये ही छीन ली गई। जो जागीर ५८० हेक्टर से अधिक बड़ी थीं वे मुआ़विज़ा देकर ले ली गईं।

वन प्रदेश सरकारी सम्पत्ति हो गये। चरागाहों का प्रबन्ध देहाती समितियां करने लगीं। कृषि योग्य भूमि का फिर से वितरण हुआ।

इस बार इस बात का ध्यान रक्खा गया कि किसान को उतना ही खेत मिले जिसे वह स्वयं जोत बो सके। ८०७ हेक्टर खेत और चरागाह १७ हेक्टर बगीचों का आयतन निश्चित किया गया। भूमि के नये स्वामियों को वार्षिक उपज का बीस गुना अधिक मूल्य देना पड़ता था। यह मूल्य नगद या उपज के रूप में दिया जा सकता था। छोटे किसानों को १० प्रतिशत एकदम और शेष ६ किस्तों में ६ वर्ष देने का निश्चय हुआ। पर यह किसान १० वर्ष तक अपनी भूमि नहीं बेच सकते थे। ३,२५५ गांवों में ~२,४८,००० हेक्टर भूमि सरकार ने छीन ली थी। यह ६६००० फार्मों और २,२५,००० कृषि-मजदूरों और लगभग २ लाख छोटे किसानों को बांट दी गई।

यूगोस्लेविया

१६१४ में सर्विया का जो छोटा राज्य था वही इस युद्ध के अन्त में यूगोस्लेविया के बड़े राज्य में बदल गया। इस में बाल्कन प्रदेश के सर्व, क्रोट और स्लोवीन लोग सम्मिलित हो गये। पांचवीं शताब्दी में जब हूणों का साम्राज्य छिन्न भिन्न होने लगा तब विश्चुला के निकट रहने वाले स्लैव लोग बाल्कन प्रदेश में आ गये। उन्ही दक्षिणी स्लैव या यूगोस्लैव की चार शाखायें (सर्व, क्रोट, स्लोवीन और बल्गर) बनीं। इन लोगों ने अपनी भाषा और रहन सहन को सुरक्षित रक्खा। ये कृषि कार्य में लगे रहे।

१६२१ में बलगरिया तो पृथक राज्य बना रहा पर सर्व क्रोट और स्लोवीन लोगों ने मिल कर यूगोस्लेविया का राज्य बना था। यूगोस्लेविया की जनसंख्या प्रायः १ करोड़ ५७ लाख है। यह जनसंख्या लगातार बढ़ रही है।

इस देश का प्रधान पेशा खेती है। कृषि से ही यहां के लोगों को भोजन मिलता है और विदेशी व्यापार चलता है। ७७ प्रतिशत लोग खेती में लगे हैं। केवल २२ प्रतिशत दूसरे कारबार व्यापार आदि कार्यों में लगे हैं। अधिकतर खेत छोटे हैं। इन छोटे खेतों का क्षेत्रफल ५ हेक्टर से कम है। किसान और उसके परिवार का पोषण करने के बाद बहुत कम उपज शेष बचती है। बहुत से किसानों का भरण पोषण अकेले खेती से नहीं हो पाता है। वे पशु भी पालते हैं।

१६१६ में यहां कृषि में कई सुधार हुये। जो लोग अपने आप खेती नहीं करते थे, उनसे खेत ले लिये गये। बड़ी जागीरों को भी सरकार ने मूल्य देकर मोल ले लिया। वह भूमि मजदूरों और छोटे किसानों में बांट दी गई। वन भी सरकार ने सर्व साधारण के उपयोग के लिये अपने अधिकार में कर लिया।

आज कल जो खेती करते हैं उन्हीं का भूमि पर अधिकार है। कोई व्यक्ति बड़ी-बड़ी जागीरें नहीं रख सकता है। एक व्यक्ति अधिक से अधिक कितनी भूमि रक्खे इसके नियम बन गये हैं। सरकार इस प्रकार टैक्स लगाती है कि निर्धन और मध्यम वर्ग के लोगों को सहायता मिले। जो जागीरें ४५ हेक्टर से अधिक बड़ी थीं वे ले ली गईं। बैंकों और कम्पनियों से भी भूमि ले ली गई। जिन धार्मिक संस्थाओं के पास १० हेक्टर से अधिक भूमि थी वह भी ले ली गई। केवल विशेष अवस्था में ६० हेक्टर तक छोड़ी गई। जिन व्यक्तियों का प्रधान पेशा खेती नहीं है उनके पास २ हेक्टर से अधिक भूमि नहीं छोड़ी गई। जो भूमि युद्ध के कारण खाली हो गई उस पर सरकारी अधिकार हो गया। किसानों को उनके परिवार की संख्या के अनुसार छोटे या बड़े खेत मिले हैं। पर खेत प्रायः २५ हेक्टर से अधिक बड़े नहीं हैं। सरकार की ओर से दी हुई भूमि को किसान बेच नहीं सकता है। जिन जमींदारों ने युद्ध के समय जर्मनों का साथ नहीं दिया था उन्हें मुआवजा दिया गया।

बल्गेरिया

बल्गेरिया देश का क्षेत्रफल १,०३१४६ वर्ग किलो मीटर और जनसंख्या ६४ लाख है। प्रति वर्ग किलो मीटर में प्रायः ६३ मनुष्य रहते हैं। बल्गेरिया प्रायः कृषि प्रधान देश है। ८२ प्रतिशत लोग गांवों में रहते हैं। वे गेहूं, राई, जौ, जई और मक्का उगाते हैं। इस देश की भूमि अच्छी नहीं है। सब लोगों का निर्वाह खेती से नहीं हो पाता है। इस लिये कुछ लोग अमरीका को चले जाते हैं। कुछ रूमानिया, हङ्गारी आस्ट्रिया आदि पड़ोसी देशों में चले गये। पर कुछ ढाई लाख लोग ग्रीस, टर्की आदि से आकर यहां भी बस गये।

यद्यपि अधिकांश लोग खेती पर निर्भर हैं तथापि अधिक तर (प्रायः ६१ प्रतिशत) भूमि ऊसर पड़ी है। इस में खेती नहीं हो सकती है। ३६ प्रतिशत भूमि खेती के योग्य है। जो भूमि खेती के काम आती है उसमें ७६ प्रतिशत अन्न उगाने के काम आती है। ७ प्रतिशत में अंगूर, गुलाब या शहतूत के बगीचे हैं। शेष में चरागाह है। बल्गेरिया में खेत छोटे हैं और दूर दूर बिखरे हुये हैं।

बल्गेरिया में अधिकतर खेत छोटे हैं। फिर भी राज्य सरकार ने वन, चरागाह और कुछ जागीर दारों से ४,२६,५०० हेक्टर भूमि एकत्र की। इसमें १,६३,००० शरणार्थी बसाये गये। कुछ भूमि किसानों को बांट दी गई। कुछ संस्थाओं को दी गई।

दूसरी बड़ी लड़ाई में बाद साम्यवादी ढङ्ग से यहां भूमि का पुनः वितरण करने में मौलिक सुधार हुये।

चेकोस्लोवेकिया

पहली बड़ी लड़ाई के बाद चेकोस्लोवेकिया का स्वतन्त्र देश बना। इस देश का क्षेत्रफल १ करोड़ ४० लाख हेक्टर है। इसमें ४३ प्रतिशत भूमि खेती के योग्य है। इसकी जनसंख्या प्राय डेढ़ करोड़ है। इसमें ३६ प्रतिशत लोग खेती में लगे हैं।

इस नये राज्य में अधिकतर भूमि उन लोगों के हाथों थी जो स्वयं खेती नहीं करते थे। मजदूर शहरों में आ गये थे। मजदूर जीविका की खोज में विदेशों में चले गये। रूमानिया से आने वाले मजदूर यहां खेतों में लगाये जाते थे। कुछ जागीर दारों के हाथ में अधिकांश भूमि थी। ५० प्रतिशत किसानों के पास औसत से ½ हेक्टर से कम भूमि थी।

१६१६ के सुधार के अनुसार जिन लोगों के पास १५० हेक्टर से अधिक भूमि थी उनको • म सरकार ने अपने अधिकार में ले ली। केवल विशेष अवस्थाओं में स्वामी ५०० हेक्टर तक भूमि रख सकता था।

छोटी छोटी जागीरें उनके स्वामियों के पास बनी रहीं। पर उनके अधिकार सीमित कर दिये गये। वह राजकीय भूमि-कार्यालय की आज्ञा लिये बिना अपनी भूमि को बांट या दे नहीं सकता था। एक नियम के अनुसार राज्य व्यक्तिगत भूमि को सार्वजनिक संस्था के लिये ले सकता था। जिसकी भूमि

ले ली जाती थी उसे सरकार प्रचलित बाजार के मूल्य पर कृषि मन्त्री बेचने के लिये बाध्य कर सकता था।

किसानों की समितियों को आदेश था कि वे ऐसे जमींदारों की सूचना कृषि विभाग में दें जो अपनी भूमि को बेकार पड़ा रखते थे। उनकी भूमि राज्य ले सकता था।

जो भूमि सरकार लेती थी उसका वह-मूल्य देती थी। १०० एकड़ तक मूल्य १६१३-१४ के अनुसार पूरा दिया जाता था। बड़ी जागीरों का मूल्य कुछ घटा दिया जाता था। पर ३० प्रतिशत से अधिक नहीं घटाया जाता था। अधिक मूल्य होने पर २५ प्रतिशत तुरन्त दिया जाता था। शेष धीरे-धीरे दिया जाता था। जो भूमि विदेशियों के हाथ में थी उन्हें कोई मूल्य नहीं दिया जाता था। जो भूमि सरकार लेती थी उसे वह छोटे-छोटे किसानों, कारीगरों, भूमि हीन मजदूरों, युद्ध में सहायता देने वाले सिपाहियों वन और खेत के मजदूरों में बाँट देती थी। लेकिन इस बात का ध्यान रक्खा जाता था कि किसी को इतनी अधिक भूमि न दी जावे कि उसे वह स्वयं जोत बो न सके।

जिन्हें भूमि दी जाती थी उन्हें भूमि के मूल्य के अतिरिक्त भूमि-कार्यालय के कर्मचारियों का कुछ खर्च भी देना पड़ता था। मूल्य तुरन्त दिया जा सकता था अथवा कुछ ठहर कर जो मूल्य ठहर कर दिया जाता था उस पर ४ प्रतिशत ब्याज देना पड़ता था।

दूसरी बड़ी लड़ाई के बाद जो भूमि जर्मन या बलोरियन लोगों के हाथ में थी वह बिना मूल्य दिये ही छीन ली गई। जिन चेकोस्लोवेकियन लोगों ने जर्मन आक्रमणकारियों का साथ दिया था, उनकी भूमि भी ले ली गई। राज्य इस बात का भी ध्यान रखती है किसान को खेती के साधन भी सुविधा पूर्वक मिल सकें। किसानों को कृषि यन्त्र और मशीनें सस्ते दाम में दी गई। कृषि की उपज बेचने के लिये और शहरी आवश्यक सामान मोल लेने के लिये किसानों की सहकारी समितियाँ बन गईं।

पोलैंड

पहली बड़ी लड़ाई के बाद जब पोलैंड का देश बना तो उसका क्षेत्र फल ३,८८,६३४ किलो मीटर था। जर्मनी के आक्रमण से पूर्व १६३६ के सितम्बर मास में पोलैंड में १,८०,००,००० हेक्टर भूमि खेती के योग्य थी। ६ करोड़ ४० लाख हेक्टर में चरागाह था। ८० लाख हेक्टर भूमि वन से घिरी थी। शेष भूमि दलदली थी अथवा अन्य कारण से कृषि योग्य न थी। पोलैंड की जन संख्या साढ़े तीन करोड़ थी। इस में ६० प्रतिशत लोग खेती करते थे। खेती योग्य भूमि प्रायः ४० लाख छोटे छोटे खेतों में बटी थी। कुछ बड़े बड़े जमींदारों के अधिकार में बड़े बड़े खेत थे। इन्हीं के अधिकार में अधिकांश वन प्रदेश था। ३० प्रतिशत जनता के पास भूमि न थी। बड़े बड़े जागीरदारों की संख्या ½ प्रतिशत से भी कम थी। फिर भी देश की ३० प्रतिशत से अधिक भूमि इन्हीं बड़े बड़े जमींदारों के हाथ में थी। बड़ी लड़ाई से पूर्व जार सरकार ने जागीरदारों को विशेष अधिकार प्रदान किये थे। इन्होंने किसानों को प्रायः दास बना लिया था। प्रजातन्त्र की स्थापना हो जाने पर भी भूमि वितरण में कुछ सुधार हुआ। सरकार और संस्थाओं की कुछ भूमि किसानों को मिल गई। फिर भी देश के १७ बड़े परिवारों के हाथ में बड़ी बड़ी जागीरें बनी रहीं। ये किसानों से काम कराते थे और मजदूरों का शोषण करते थे। इन्हीं बड़े बड़े जागीरदारों ने आक्रमणकारी जर्मनों का साथ दिया था।

१६४४ के बाद पोलैंड फिर मुक्त हो गया। यहां रूसी प्रभाव बढ़ गया था। धार्मिक संस्थाओं की भूमि को छोड़ कर देश की सब भूमि किसानों को बाट दी गई। कृषि यन्त्रों और पशुओं पर भी किसानों का अधिकार हो गया। बड़ी बड़ी जागीरों की भूमि उन लोगों में बांट दी गई जो भूमि हीन थे। इनके पशु, और कृषि यन्त्र भी इन्हीं में बांट दिये गये। प्रत्येक खेत ५ हेक्टर से अधिक बड़ा नहीं होता था। बगीचा तो २ हेक्टर का ही होता था। यह खेत न बेचे जा सकते थे न लगान पर उठाये जा सकते थे। इनके नये मालिकों को नाम मात्र का मूल्य भी देना पड़ा। एक वर्ष की जो उपज थी वही इनका मूल्य रक्खा गया। १० प्रतिशत मूल्य एक साथ दिया गया। शेष २० वर्षों में। जिन जागीरदारों की भूमि छीनी गई उन्हें जागीर के बाहर भूमि देने का प्रबन्ध किया गया। जिन्होंने इससे लाभ नहीं उठाया उन्हें मालिक ने वेतन दिया।

इस सुधार से जो भूमि ४० लाख एकड़ की ८८३२ जागीरें ३,०२,८६३ भूमि हीन और निर्धन कृषक परिवारों को बाँट दी गई।

रूमानिया एक कृषि प्रधान देश है। इसका क्षेत्र-फल २ करोड़ ३७ लाख हेक्टर है। इसमें ६७ लाख हेक्टर भूमि में खेती हो सकती है। ३६ लाख हेक्टर भूमि से सूखी घास इकट्ठी की जाती है अथवा चरवाही के काम आती है। ७ लाख हेक्टर भूमि में अंगूरों के बगीचे हैं। लाख हेक्टर भूमि में अन्य फलों के बगीचे हैं। ६० लाख हेक्टर भूमि में वन हैं। ४० लाख हेक्टर भूमि परती पड़ी है।

पहले रूमानिया में जागीरदारी की प्रथा थी। किसानों को बहुत कुछ बेगार करनी पड़ती थी। इससे यहां समय समय विद्रोह हुये। फिर भी किसानों की दशा में कोई विशेष परिवर्तन न हुआ।

१० हेक्टर तक भूमि जोतने वालों के हाथ में थी। १० से १०० हेक्टर तक अधिकारी १०.८ प्रतिशत भूमि घेरे हुये थे। १०० हेक्टर से अधिक भूमि पर शेष का अधिकार था। यह अनुमान लगाया गया है कि ६ प्रतिशत जनता ४७ प्रतिशत भूमि घेरे थे। ९९०४ प्रतिशत लोगों के पास केवल ५२ प्रतिशत भूमि थी।

जार कालीन रूस संसार का सबसे अधिक पिछड़ा हुआ देश था। १६ करोड़ ७० लाख एकड़ उपजाऊ भूमि २८,००० बड़े बड़े जागीरदारों के हाथ में थी। औसत से हर जागीरदार के पास ६००० एकड़ उपजाऊ भूमि थी। ५०० जागीरदार इतने बड़े थे कि उनमें प्रत्येक के पास ८१,२५० एकड़ उपजाऊ भूमि थी। इसके साथ साथ १ करोड़ रूसी कृषक परिवार ऐसे थे जिन सबके पास केवल १६ करोड़ ५० लाख एकड़ भूमि थी। सो भी अच्छी न थी। रूस में हल घोड़ों से जोते थे। पर ३० प्रतिशत किसान ऐसे निर्धन थे कि उनके पास घोड़े न थे। ३४ प्रतिशत के पास हल न थे। १५ प्रतिशत किसानों के पास भूमि न थी। जिन निर्धन किसानों के पास भूमि थी वह थोड़ी थी और गाँवों से दूर थी। खेत बहुत छोटे थे। किसानों को भूमि का लगान बहुत अधिक देना पड़ता था। इससे वे सदा जमींदारों के कर्ज से लदे रहते थे। बड़े बड़े जागीरदार स्वयं तो खेती नहीं करते थे, वे प्रायः आधा बटाई पर किसानों को भूमि उठा देते थे। कुछ जागीरदारों की भूमि पर किसान बिना मजदूरी लिये ही काम करते थे। किसानों को भर पेट भोजन नहीं मिलता था। प्रायः अकाल पड़ते थे। कभी कभी किसान विद्रोह भी कर बैठते थे। पर जारशाही इस विद्रोह को बड़ी निर्दयता से दबाती थी।

१९१४ की पहली बड़ी लड़ाई में अच्छे तगड़े लोग लड़ाई में भरती कर लिये गये। घोड़े भी लड़ाई पर चले गये। इस लिये इस समय केवल एक चौथाई भूमि में खेती हो सकी। शेष तीन चौथाई भूमि परती पड़ी रही। भुखमरी बहुत बढ़ गई। अन्त में पेट्रोग्रेड की भूखी स्त्रियों ने रोटी की बन्द दुकानों की खिड़कियों में पत्थर फेंक कर विद्रोह आरम्भ किया।

विद्रोह के अन्त में किसानों ने जबरदस्ती जागीरदारों की भूमि छीन ली। फौजों के सिपाही और कारखानों के मजदूर भी अपने अपने गांवों में पहुँच गये। इन लोगों ने भी अपने हिस्से की भूमि ले ली। जागीरदारों को अपार कष्ट हुआ। पर नई सरकार इस अराजकता को रोकने में असमर्थ थी। इस लिये विद्रोह के नेता लेनिन ने घोषित किया कि भूमि पर सभी लोगों का अधिकार है। किसानों की जो समितियां बनी उन्होंने जार, उस के सम्बन्धियों और जागीरदारों की भूमि को आपस में लिया। गिरजा घरों की भूमि भी बाँट ली गई।

इस समय रूस को अपने जीवन के लाले पड़े थे। भीतरी गृह कलह तो बढ़ ही गई थी। बाहर से ब्रिटेन, फ्रांस, संयुक्त राज्य अमरीका, इटली और जापान की सेनायें उसे कुचलने आ गई थीं। रण क्षेत्र में सेना को भोजन पहुँचाना आवश्यक था। अतः किसानों से लगान का नगद रुपया लेने में बदले खेत की उपज का एक भाग लिया जाने लगा। सङ्गठन लाने के लिये किसानों की सहकारी समितियों को प्रोत्साहन दिया गया फिर भी १० वर्ष तक उपज में कोई विशेष वृद्धि न हुई।

१९२७ ई० में सम्मिलित खेती का आरम्भ हुआ। छोटे किसान सरकारी खेतों में मजदूरी कर सकते थे। अथवा सम्मिलित खेत (कोल्खोज) साझी दार हो सकते थे। सम्मिलित खेत का क्षेत्रफल औसत से ४०० हेक्टर होता था; पर कोल्खोज अथवा सम्मिलित खेतों का विकास एकदम शान्तिपूर्ण न था। कुछ किसानों ने विद्रोह किया। वे अपने गांवों से दूर के

भागों में भेज दिये गये। कहीं खेत बिना बोये पड़े रह गये। कहीं फसल बिना कटे खेतों में खड़ी रह गई।

पर अन्त में यह प्रथा प्रचलित हो गई। सम्मिलित खेतों की सहायता के लिये मशीन और ट्रैक्टर स्टेशनें स्थान पर स्थापित हो गईं। लाखों किसानों की आय बढ़ गई। जर्मन आक्रमण के समय देश की उपज घट गई थी। इस जर्मन अधिकृत प्रदेश में १,०७,००० सम्मिलित खेत और ३००० मशीन और ट्रैक्टर स्टेशन थे। इस प्रदेश में देश भर के ४४ प्रतिशत घोड़े, ३८ प्रतिशत ढोर, २८ प्रतिशत भेड़ बकरी और ५६ प्रतिशत सुअर थे। जर्मनों ने सम्मिलित खेत तोड़ दिये भूमि ध्वस्त कर ली और किसानों के अपने लिये काम करने के लिये बाध्य किया। लाखों किसान मार डाले गये अथवा दास बना कर जर्मनी पहुँचा दिये गये। मुक्त होने पर रूसी सरकार ने पहला काम यह किया कि सम्मिलित खेत फिर स्थापित कर दिये। इस से देश की उपज बढ़ गई।

कोलखोज अथवा सम्मिलित खेत की प्रथा भूमि, श्रम, मशीन, पशु, कृषिभवन पर अधिकार रहता है। पर तरकारी के बगीचे गाय आदि निजी सम्पत्ति रहती है। सरकार की ओर सम्मिलित खेत सदा के लिये किसानों के अधिकार में रहते हैं। पर इन्हें सरकारी योजना के अनुसार उपज में वृद्धि करनी पड़ती है। प्रत्येक किसान को अपने श्रम की कोटि और मात्रा के अनुसार लाभ का भाग मिलता है।

पेलेस्टाइन अथवा इस्रायल राज्य के सम्प्रदायिक सहकारी खेत

जो प्रथम यहूदी यहां आकर बसे उन्होंने खेत पट्टे पर ले लिये और छोटे-छोटे घर बना लिये। इस प्रकार के कई खेतों और घरों के मिलने से गाँव बन गया। इन नवान्तुकों में कुछ तो अच्छे किसान थे। पर अधिकतर लोगों को खेती का अनुभव न था। इन लोगों ने मिलजुल कर भोजन आदि सभी कार्यों का प्रबन्ध सहकारिता के ढङ्ग पर किया।

कुबुत्जा यहूदियों के साम्प्रदायिक सम्मिलित खेत को कहते हैं। भोजनालय में प्रत्येक सायंकाल को दूसरे दिन का कार्यक्रम लटका दिया जाता है। किस को कपड़ा धोना है। किसे भोजन बनाना है। किसे खेत पर जाना है किसे भोजन परोसना है। इत्यादि कार्य बहुमत से निश्चित होते हैं। भीतरी मामलों में यह स्वतन्त्र संस्था है। अब यह प्रायः स्वावलम्बी हो गई हैं। यहां सदस्यों को भोजन वस्त्र आदि मिलता है। व्यक्तिगत लाभ का ध्यान नहीं रक्खा गया है।

मेक्सिको के सम्मिलित खेत

१६१५ में मेक्सिको में नये कृषि सुधार हुये। पुरानी जागीरों को वितरण करके अथवा ऊसर भूमि को काम में लाकर एजीदो अथवा नये भूमि सुधार किये गये। एजीदो खेतों में सम्मिलित ढङ्ग से खेती की जाने लगी। मेक्सिको देश के ५० लाख श्रम जीवियों में ३६ लाख खेतों में काम करते थे। इनमें २५ लाख के पास भूमि न थी। १६३४ में विद्रोह हुआ। १६३६ में २०१ एजीदो बन गये। १६४० में १५००० एजीदो बन गये। इनमें ६,२४ लाख एकड़ भूमि १४ लाख किसानों को दे दी गई। इनमें ५००० सम्मिलित खेत हैं। पर सभी अवस्थाओं में भूमि का अधिकार समुदाय के हाथ में है। कम से कम २० किसान मिल कर एक समुदाय बनाते हैं। सरकार इस समुदाय को भूमि प्रदान करती है। फिर यह समुदाय सम्मिलित रूप से अथवा व्यक्तिगत किसानों को भूमि बांट देता है। एजीदो के सदस्यों से किसी प्रकार की फीस नहीं ली जाती है। सदस्यों द्वारा चुनी हुई एक समिति एजीदो का प्रबन्ध करती है। समिति का एक प्रधान होता है। समिति यह देखती है कि भूमि और भूमि की सम्पत्ति (खच्चर, मशीन आदि) का सहकारी ढङ्ग से ठीक उपयोग होता है कि नहीं। कार्य-नायक प्रत्येक सदस्य के लिये कार्य निर्धारित करता है। यह दैनिक कार्य का भी निरीक्षण करता है। जो लाभ होता है वह सदस्यों में उनके कार्य के अनुपात से बांट दिया जाता है।

सदस्य केवल काम करने में सम्मिलित हो जाते हैं। वैसे वे अलग-अलग रहते हैं अलग-अलग भोजन करते हैं। फिर भी इन के प्रयत्न से देश में शिक्षा, स्वास्थ्य आदि में भारी सुधार हुआ है।

के अंडों, चावल तथा सुअर के मांस बेचने से जो थोड़ा-बहुत रुपया प्राप्त होता है उसे वे शीघ्र ही किसी गुप्त स्थान में ले जाकर रखता है। उस गुप्त स्थान तथा धन-राशि का ज्ञान केवल घर के मालिक-मलकिन और घर के बड़े लड़के को ही होता है। चीनी किसान बड़े परिश्रमी, चतुर और मितव्ययी होते हैं।

आधुनिक चीन में अब लड़कियों के पैर नहीं बाधे जाते हैं। अब उन्हें घर के बाहर, खेतों तथा गाँवों के मध्य घूमने की स्वतन्त्रता होती है। अब वे परिवार के मध्य पीछे भाग में भी नहीं बैठती हैं। नवीन चीन में प्रत्येक वस्तु पर नवीनता छा रही है। अब वहाँ की स्त्रियों में भी नवीनता छा रही है। उनमें इतना परिवर्तन दिखलाई पड़ रहा है कि वर्तमान तथा प्राचीन चीन में जमीन-आसमान का अन्तर प्रतीत होता है। अब चीनी स्त्रियों को पुरुषों के बराबर सारे राजकाजी अधिकार प्राप्त हो गये हैं। वह किसी मैदान में भी पुरुषों से पीछे नहीं रह गई हैं। गाँवों में स्त्रियां मुख्य सरकारी नौकरियों तथा पदों पर अधिकार जमाये हुई हैं और जन-हित के कार्यों में जोरों के साथ संलग्न हैं। सामन्तशाही काल में स्त्रियों की दशा पशुओं से भी गई गुजरी थी। आज जमीन का जो नया सुधार हुआ है उसका परिणाम यह हुआ है कि वहां के सारे पुराने रीति-रिवाज समाप्त से हो रहे हैं।

आज समस्त चीन में जन सभाओं में लगभग एक तिहाई संख्या स्त्रियों की है। बहुत सी स्त्रियां पार्लियामेंट में बैठी हुई हैं। दिन दिन प्रबन्ध कारिणी विभागों में, सरकारी नौकरियों में स्त्रियों की संख्या बढ़ रही है। गाँव में स्त्रियां मुखिया हैं, जिलों में जिला अफसर तथा शहरों में मेयर हैं। प्रत्येक स्थान उनके लिये खुले हैं और प्रत्येक स्थान पर वह पहुँच रही हैं। केन्द्रीय सरकार में मन्त्री पद पर भी हैं। इस समय तीन स्त्रियां मन्त्री मंडल में भी शामिल हैं। इन लोगों ने जन-सेवा का बहुत सुन्दर परिचय दिया है। अब स्त्रियां काम करने में मर्दों से पीछे नहीं हैं। स्त्री का काम पुरुष के बराबर समझा जाता है और दोनों को बराबर की मजदूरी मिलती है। उन्हें बच्चा पैदा होने की दशा में विशेष प्रकार की छुट्टी मिलती है और दवा का भी प्रबन्ध होता है। अन्य प्रकार की रियायतें भी उन्हें प्राप्त हैं।

चीनी स्त्रियां ट्राम, ड्राइवरी, पोस्टमैनी, रेलगाड़ी में कन्डक्टरी जैसे कार्य भी करने लग गई हैं। जो कार्य प्राचीन काल में उनके लिये मना थे वे अब उनके लिये खुले हैं। महिलाएँ इञ्जीनियर भी खूब हो रही हैं।

चीन में जो समाज-सुधार हुये हैं उनमें स्त्रियों के सम्बन्ध में होने वाले सुधार खास हैं। चीनी स्त्रियां को जो किसी काल में मनुष्य की जागीर समझी जाती थीं, बराबर के अधिकार प्रदान किये गये हैं। शादी के सम्बन्ध में नया कानून बनाया गया है और उनके अनुसार एक से अधिक पत्नी घर में रखने की मनाही कर दी गई है। अब लड़कों की भांति लड़कियां स्कूल में पढ़ने जाती हैं। अब वे टीचर हैं और टीचरों की संस्था की सदस्य भी हैं। अब चीनी घरों की स्त्रियां अपने घर के प्राणियों को स्वयं शिक्षा प्रदान करने लग गई हैं।

चीनी किसान परिवारों में भारतवर्ष की भांति ही ज्येष्ठ पुत्री को घरेलू कार्यों में विशेष रूप से हाथ बटाना पड़ता है। छोटी लड़कियां अन्य छोटे बच्चों को खिलाने आदि का काम करती हैं। अब तो किसान परिवारों की लड़कियां बड़ी बड़ी शिक्षाएँ प्राप्त करती हैं और पंडिता बनती हैं। अधिकांश लड़कियां कला-कौशल के स्कूल और कालेजों में जाती हैं और उनमें निपुणता प्राप्त करती हैं।

परिवार के लड़के या तो शिक्षा प्राप्त करते हैं अथवा नगरों में जा कर कारखानों में काम सीखते हैं। रेशमी कारखानों में रेशम की कताई-बुनाई के काम में योग्यता प्राप्त करते हैं। उसके पश्चात् वह कारखानों में नौकरी करके घर की सहायता करते हैं।

चीनी किसान का मस्तिष्क बड़ा ही कार्य कुशल होता है। वह जीवन के नवीन उपायों की खोज करने में भय भीत नहीं होता है। वह एक व्यवसायी व्यक्ति होता है। वह विदेशी फर्मों को अंडे तथा सुअर की पूर्ति करता है। वह अपने समीपवर्ती गाँवों से अंडे तथा सुअर आदि एकत्रित करके विदेशियों के हाथ बेचता है और इस प्रकार धनोपार्जन करता है।

है। चीनी लोग विदेशी वस्त्रों का भी चाव रखते हैं। अपनी विशेष कमाई से वे उसे खरीदते हैं। विदेशी लोगों के प्रभाव में आकर अब चीनी किसान भी विदेशी वस्तुओं का प्रयोग करने लगे हैं। विदेशी लालटेनों का प्रयोग समस्त साधारण घरों में होने लग गया है।

चीनी किसान शहतूत के बाग लगाते हैं और उनकी पत्तियों को खिला कर रेशम के कीड़े पालते हैं और उनसे रेशम तैयार करते हैं। चीन में बहुत अधिक रेशम तैयार होता है परन्तु वह अन्य स्थानों (जापान आदि) की अपेक्षा घटिया होता है। विदेशियों के कहने पर गरीब किसान ऋण लेकर उत्तम प्रकार के रेशम तैयार करने के जोखिम में पड़ने का साहस करने लग गये हैं। बहुधा गरीब किसानों को ऐसा करने में विशेष कठिनाई का सामना करना पड़ता है।

गरीब किसान परिवार की लड़कियां रेशम के कारखानों में काम करके अपनी जीविका कमाती हैं। उन्हें १२ घंटे काम करना पड़ता है जिससे बहुतेरों का स्वास्थ्य बचपन में ही खराब हो जाता है। परन्तु चूंकि परिवार के लिये धन की पूर्ति आवश्यक होती है इसलिये मजबूरन गांव वालों को नगरों में जा कर कारखानों में काम करना ही पड़ता है। चाय के बगीचों में चाय की पत्तियों को चुनने और फिर उन्हें कारखानों में तैयार करने का काम भी चीनी लोग करते हैं। चीन में चाय बहुत अधिक प्रयोग की जाती है। चीनी लोग चाय की पत्ती के बगैर पानी कभी भी नहीं पीते हैं। शीतल जल पीना तो वह जानते ही नहीं हैं। वह सदैव हरी चाय की पत्ती डाल कर पानी उबाल कर ही पीते हैं।

चीनी परिवार में भारतीय परिवारों की भांति बालक के जन्म के अवसर पर बड़ी खुशी मनाई जाती है क्योंकि लड़कों के नाम पर ही परिवार का नाम चलता है और वे ही पूर्वजों तथा पितरों के सेवक होते हैं। लड़कियां भारतवर्ष की भांति शादी होने के पश्चात् अपने पति के परिवार में जा कर मिल जाती हैं। चीनी किसानों का कहना है—"यदि मेरे लड़के नहीं हों तो कौन मेरी खेती बाड़ी का काम देखे और कौन बुढ़ापे में मेरी रक्षा करे।" इस ध्यान से एक परिवार में कम से कम एक पुत्र का होना तो अत्यन्त ही आवश्यक है। यदि एक से अधिक हों तो बहुत ही अच्छा है। यही कारण है जो कि लड़कों के जन्म के समय बड़ी खुशी तथा उत्सव मनाया जाता है।

यदि किसी परिवार में कई एक लड़के होते हैं और उस परिवार की भूमि उनके गुजारे के लिये नहीं काफी होती है तो उस परिवार के लड़कों को नगरों में जा कर या अन्य परिवारों में जाकर नौकरी करनी पड़ती है और वह धन कमा कर घर ले आते हैं। धनोपार्जन की दृष्टि से ही लड़कों की उत्पत्ति बड़ी खुशी का कारण बनती है। उनकी वर्षगांठ बड़ी चाव तथा उत्सव के साथ मनाई जाती है। जब लड़का पूरा एक वर्ष का हो जाता है तो वर्ष दिन के अवसर पर उसे सुन्दर गोटे-पट्टे वाला लाल कोट पहनाया जाता है और कामदार टोपी दी जाती है और उसे एक मेज पर बैठा दिया जाता है। उसके सामने कलम, धान की बाल तथा विभिन्न प्रकार के औजार रख दिये जाते हैं। बच्चा जिस वस्तु पर सर्व प्रथम हाथ रखता है उसी से उसके भाग्य निर्णय की पहचान की जाती है। जैसे कि यदि उसका हाथ कलम पर पड़ा तो माना जाता है कि वह पढ़ाई लिखाई में ही निपुणता प्राप्त करेगा।

विवाह—भारतवर्ष की भांति चीन में भी लड़कों के विवाह का निश्चय और निर्णय माता-पिता ही करते हैं। यदा कदा नगरों में शिक्षित लोग ही अपनी इच्छानुसार शादी करते हैं। शादी में पर्याप्त धन का खर्च होता है। लड़की की सुन्दरता तथा योग्यता के अनुसार दहेज की रकम देनी पड़ती है। बहुधा अधिक दहेज देने तथा शादी के बड़े भोज के व्यय करने के फलस्वरूप किसी किसी परिवार की दशा बड़ी शोचनीय हो जाती है। अपनी सामाजिक परिस्थिति के अनुसार ही लोगों को अपने ब्याह के अवसर पर व्यय करना पड़ता है।

जन्म तथा ब्याह की भांति ही मृत्यु के अवसर पर भी जो रीत रिवाज बरते जाते हैं, वे अत्यन्त आवश्यक स्वीकार किये जाते हैं। चीन में वृद्ध लोग अपने अन्तिम संस्कार की भली भांति पूर्ति करने के

संसार में चीन का आर्थिक स्थान
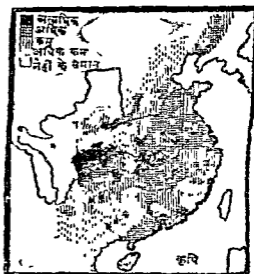
संसार की एक प्रसिद्ध बात है।
गया ध्यान के पयाल के झोपड़े ही हुआ

दानों की भांति ही चीनी मैदानों की
गा है। भारत के गङ्गा और पाकिस्तान
ान की भांति चीन के बृहत मैदान भी
ग और यांगटिसीक्यांग की लाई हुई
गये हैं। अतः ये भी उन्हीं की भांति
उपजाऊ पाये जाते हैं। भारत की
नों में भी विशेष कर ह्वांगहो, में हमारे
की सी बाढ़ आ जाया करती है,
भी जन और धन दोनों की बड़ी हानि
। जलवायु भी भारत से बहुत कुछ
पाई जाती है। इसके भी उत्तरी भाग
ग की भांति जाड़े के दिनों में अधिक
करते हैं और दक्षिणी भाग हमारे यहां
तों की भांति गरम रहा करते हैं, इस
क दशा, जल वृष्टि और जलवायु एक
रण पैदावार भी एक सी ही पाई जाती
ों में चावल, अफीम, कपास, ज्वार,
ा, नारङ्गी और आलू आदि की खेती
हमारे यहां के आसाम प्रदेश की
भांति यहां भी कई एक पहाड़ियां पाई
नमें चाय के पेड़ खूब लगाये जाते हैं।
क तराइयों में शहतूत के भी पेड़ खूब
जिनमें रेशम के कीड़े पाल कर रेशम
है।

ानी लोग बुद्ध धर्म के अनुयायी माने
इनके भीतर हमारे यहां की सी ही
ावा पाई जाती है। इनकी वेश भूषा
जापानियों से मिलती-जुलती हुआ
नी आर्थिक और सामाजिक उन्नति में
ये लोग यद्यपि भारत वासियों से कुछ अच्छे पाये
जाते हैं तो भी उतने समुन्नत नहीं हैं जितना कि एक
स्वतंत्र देश के निवासियों को होना चाहिये। इसका
मुख्य कारण यहां की राजनैतिक व्यवस्था ही कही
जा सकती है क्योंकि प्राचीन भारत की भांति यह
भी आपस की दल बन्दी और लड़ाई बहुत ही अधिक
पाई जाती है।

चीन के मल्लाह अपनी मेहनत और कारीगरी के
लिये दुनिया भर में प्रसिद्ध हैं। एक मल्लाह का
गीत है—

दक्षिण से बादल उठ रहे हैं,
नौका को समुद्र से निकाल लो।
× × ×
उत्तर से बादल उमड़े,
उनका पानी घरों में अवश्य घुसेगा।
× × ×
पूर्व से बादल आये,
तूफान से बचने को तैयार हो जाओ।
× × ×
पश्चिम से बादल उठे,
मेघों की देवी वर्षा के कपड़े पहन रही है।

चीनी लोग अफीमची के नाम से प्रसिद्ध हैं परन्तु
वास्तव में ऐसा नहीं है। अफीम चीन की वस्तु नहीं
है। विदेशियों ने इसका प्रचार चीन में किया और
उससे देश की बड़ी हानि की। इसके सम्बन्ध में चीनियों
का एक गीत है—

अफीम किसी दूसरे देश से यहां आई,
चारों ओर से वह हमारी हत्या कर रही है।
मौत से पहले हम मौत के मुँह में समा रहे हैं,
अफीमचियों का दिया ठीक ऐसा लगता है—
जैसा कि कब्र के पास जला करता है,
हमारे पास, हाय! अन्न तक न बचा।
कपड़े न रहे,
और न कोई सच्चा साथी ही रहा।

संसार में चीन का आर्थिक स्थान

संसार की एक प्रसिद्ध बात है।
इया धान के पयाल के झोपड़े ही हुआ

रानों की भांति ही चीनी मैदानों की
ता है। भारत के गङ्गा और पाकिस्तान
ान की भांति चीन के वृहत मैदान भी
ाग और यांगटिसीक्यांग की लाई हुई
गये हैं। अतः ये भी उन्हीं की भांति
उपजाऊ पाये जाते हैं। भारत की
नों में भी विशेष कर ह्वांगहो, में हमारे
ी की सी याद आ जाया करती है,
भी जन और धन दोनों की बड़ी हानि
। जलवायु भी भारत से बहुत कुछ
पाई जाती है। इसके भी उत्तरी भाग
य की भांति जाड़े के दिनों में अधिक
करते हैं और दक्षिणी भाग हमारे यहां
तों की भांति गरम रहा करते हैं, इस
ह दशा, जल वृष्टि और जलवायु एक
रण पैदावार भी एक सी ही पाई जाती
ीं में चावल, अफीम, कपास, ज्वार,
ा, नारङ्गी और आलू आदि की खेती
हमारे यहां के आसाम प्रदेश की
भांति यहां भी कई एक पहाड़ियां पाई
नमें चाय के पेड़ खूब लगाये जाते हैं।
ह तराइयों में शहतूत के भी पेड़ खूब
! जिनमें रेशम के कीड़े पाल कर रेशम
है।

ीनी लोग बुद्ध धर्म के अनुयायी माने
इनके भीतर हमारे यहां की सी ही
ता पाई जाती है। इनकी वेष भूषा
जापानियों से मिलती-जुलती हुआ
नी आर्थिक और सामाजिक उन्नति में
ये लोग यद्यपि भारत वासियों से कुछ अच्छे पाये
जाते हैं तो भी उतने समुन्नत नहीं हैं जितना कि एक
स्वतन्त्र देश के निवासियों को होना चाहिये। इसका
मुख्य कारण यहां की राजनैतिक व्यवस्था ही कही
जा सकती है क्योंकि प्राचीन भारत की भांति यह
भी आपस की दल बन्दी और लड़ाई बहुत ही अधिक
पाई जाती है।

चीन के मल्लाह अपनी मेहनत और कारीगरी के
लिये दुनिया भर में प्रसिद्ध हैं। एक मल्लाह का
गीत है—

दक्षिण से बादल उठ रहे हैं,
नौका को समुद्र से निकाल लो।
× × ×
उत्तर से बादल उमड़े,
उनका पानी घरों में अवश्य घुसेगा।
× × ×
पूर्व से बादल आये,
तूफान से बचने को तैयार हो जाओ।
× × ×
पश्चिम से बादल उठे,
मेघों की देवी वर्षा के कपड़े पहन रही है।

चीनी लोग अफीमची के नाम से प्रसिद्ध हैं परन्तु
वास्तव में ऐसा नहीं है। अफीम चीन की वस्तु नहीं
है। विदेशियों ने इसका प्रचार चीन में किया और
उससे देश को बड़ी हानि की। इसके सम्बन्ध में चीनियों
का एक गीत है—

अफीम किसी दूसरे देश से यहां आई,
चारों ओर से यह हमारी हत्या कर रही है।
मौत से पहले हम मौत के मुँह में समा रहे हैं,
अफीमचियों का दिया ठीक ऐसा लगता है—
जैसा कि कब्र के पास जला करता है,
हमारे पास, हाय! अन्न तक न बचा।
कपड़े न रहे,
और न कोई सच्चा साथी ही रहा।

२१—चीन का आनह्वे प्रान्त

आस्ट्रेलिया के गड़रिये किसान

आस्ट्रेलिया के डाउन्स—आस्ट्रेलिया के डाउन्स घास वे शीतोष्ण मैदान हैं जो ग्रेट डिवाइडिंग रेंज के पश्चिम में मरे डार्लिंग बेसिन तथा दक्षिणी पश्चिमी किनारे पर पाये जाते हैं। इनकी प्राकृतिक दशा और जलवायु प्रेरीज की सी पाई जाती है। इसलिये यहां के लोगों का जीवन भी यहां के लोगों से बहुत कुछ मिलता-जुलता पाया जाता है। यहां के आदि निवासी या तो नये अमेरिकन आगुन्तुकों के द्वारा मार डाल गये या महाद्वीप के अधिक उजाड़ भागों की ओर भगा दिये गये हैं। अब आजकल इन मैदानों में अमेजों के ही वंशज अधिक पाये जाते हैं जिनके मुख्य पेशे चरागाही, खेती और खान खोदना है। रिवरनी यानी मरे और डार्लिंग के मध्यवर्ती प्रदेश में गेहूँ की खेती की अच्छी उन्नति की जा रही है। जैसे-जैसे हम लोग पश्चिम की ओर जाते हैं, वैसे ही वैसे जलवायु अधिक सूखी मिलती जाती है। यही कारण है कि उधर खेती और चरवाही भी कम होती जाती है। पूर्वी भाग में पानी की कमी है पाताल तोड़ कुओं (आर्टीजियन वेल) और नहरों के द्वारा सिंचाई की जाती है, तब भी किसी-किसी वर्ष करोड़ों भेड़े मर जाया करती हैं। सिडनी इस प्रदेश का मुख्य बन्दरगाह है जो ऊन, गोश्त, और चमड़े आदि की निकासी का केन्द्र है।

आस्ट्रेलिया के डाउन्स की भांति न्यूजीलेंड के दक्षिणी द्वीप के पूर्वी भाग में कैन्टरबरी के मैदान हैं जिनमें चरागाह का काम खूब किया जाता है।

आस्ट्रेलिया निवासियों के मध्य उच्च कोटि के जीवन स्तर से लेकर निम्न कोटि के जीवन स्तर तक के लोग पाये जाते हैं। आस्ट्रेलिया निवासियों में ९८ प्रतिशत निवासी ब्रिटिश जाति के हैं जिससे ८४ प्रतिशत आस्ट्रेलिया में ही जन्मे हैं। शेष लोग वहां की मूलजातियों के लोग हैं। आस्ट्रेलिया के गड़रिये संसार में बहुत प्रसिद्ध हैं।

१७९२ ई० में यहां भेड़ों की चराई का काम १०५ भेड़ों से आरम्भ किया गया था और आज यहां १२ करोड़ ५०.लाख भेड़े पाई जाती हैं। भेड़ें आस्ट्रेलिया के लगभग ५ लाख वर्गमील के भारी मैदानों में घूम-फिर कर चरा करती हैं। इन भेड़ों से संसार का सर्वोत्तम ऊन प्राप्त होती है। आस्ट्रेलिया से प्रति वर्ष ६ करोड़ पौंड की ऊन संसार को मिलती है। आस्ट्रेलिया में प्रति वर्ष १ अरब पौंड ऊन प्राप्त होती है। ऊन के उत्पादन में आस्ट्रेलिया का संसार में सर्व प्रथम स्थान है। एक मसल प्रसिद्ध है कि 'आस्ट्रेलिया की सम्पन्नता भेड़ों की पीठ पर है।'

न्यूसाउथ वेल्स में भेड़ों की गल्ले वानी का सबसे बड़ा केन्द्र ५,२०,००० एकड़ भूमि में स्थित है। यहां साल में २० इञ्च वर्षा होती है जो कि वहां की भेड़ों के लिए पर्याप्त घास उगा देती है। यहां की भेड़ों के स्टेशन तक पहुँचने के लिये इस प्रदेश के बड़े नगर से सड़क हो कर यात्रा करनी पड़ती है। भेड़ों को सुरक्षित रखने के लिये तारों से घेरे हुये मीलों लम्बे बाड़े बनाये गये हैं। इन स्थानों पर वास्तव में नदी के बराबर है केवल चरवाहे अपने सुन्दर भवनों में रहते हैं। उनके सुन्दर सुसज्जित भवनों में बिजली की बत्तियां लगा रहती हैं और रेडियो यन्त्रों से उन्हें समस्त संसार का समाचार मिला करता है। प्रत्येक तीसरे चौथे दिन वहां मोटर द्वारा डाक पहुँचती है। चरवाहों के मकान नदियों के किनारे बने हैं। मकानों में टेलीफोन की भी व्यवस्था है।

आस्ट्रेलिया के गड़रिये कमीज और वेस्टकोट पहिनते हैं। वे लोग समीपवर्ती नगरों में सामान खरीदने के लिये सप्ताह में दो बार बाजार करने जाते हैं। नगरों में जाते समय ऐसा प्रतीत होता है कि मानों वे लोग भेड़ों से ऊब से गये हैं। नगरों में जा कर चरवाहे अपना दिल बहलाते हैं और सिनेमा, थियेटर आदि का मजा लेते हैं, कार्निवाल का भी मजा उठते हैं।

भेड़ों की देख-रेख—भेड़ों की देख-रेख तथा पालन-पोषण में चरवाहों को अपना सारा समय लगाना पड़ता है। उन्हें स्थान-स्थान पर घूम कर

भेड़ों को चराना पड़ता है और पानी के स्थान पर भेड़ों को ले जाकर पानी पिलाना पड़ता है। जो भेड़ें बच्चा देती हैं उनकी तथा उनके बच्चों की देख-भाल करनी पड़ती है। बीमार तथा कमजोर और चोट खाई भेड़ों की सेवा तथा तीमारदारी करनी पड़ती है। वर्ष भर में एक बार आस्ट्रेलिया के चरवाहे छुट्टी लेते हैं और अपनी श्रेष्ठतम भेड़ों को लेकर अपने परिवार के साथ राज्य के एग्रीकल्चर शो कृषिप्रदर्शिनी में भाग लेने के लिये जाते हैं। इस शो में सर्वोत्तम भेड़ों के ऊपर प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय श्रेणी के इनाम दिये जाते हैं।

आस्ट्रेलिया के गड़रियों के बच्चे जब १४ वर्ष के हो जाते हैं तो वे अनिवार्य प्राथमिक पाठशाला में पढ़ने के लिये भेजे जाते हैं। यह बच्चे अपने खच्चरों, बाइसिकलों या कम्युनिटी ट्रक पर पढ़ने के लिये जाते हैं। पाठशाला उनके निवास स्थान से लगभग १० मील की दूरी पर स्थित होती है। इनकी पाठशालाएँ बहुत बड़ी नहीं होतीं हैं। किसी-किसी पाठशाले में तो केवल १० कक्षार्थी ही होते हैं। प्रारम्भिक पाठशाला से निकल कर यह बच्चे हाई स्कूल या 'टेक' में शिक्षा प्राप्त करने के लिये जाते हैं। यह स्कूल समीपवर्ती नगरों में स्थित होते हैं। नगरों में जो प्राइवेट कालेज तथा स्कूल होते हैं उनमें बहुत अधिक फीस लगती है। स्कूल तथा कालेजों में साल भर की पढ़ाई का विभाजन तीन टर्म में किया जाता है। गर्म बड़े दिन के अवसर पर ६ सप्ताह की छुट्टी होती है जो जनवरी के अंतिम सप्ताह तक चलती है। इस अवसर पर नगर निवासी देहात और देहात निवासी नगर में चले जाते हैं। इस समय वहां का तापमान १०० अंश होता है।

बड़े दिन के दिन सभी लोग एक साथ मिलकर भोज में सम्मिलित होते हैं। छोटे-बड़े सबों को एक प्रकार का ही भोजन करना पड़ता है। यदि बच्चों से पूछा जाय कि उन्हें बड़ों की भांति ही क्यों भोजन करना पड़ता है तो वे उसे समझा नहीं सकते हैं। आस्ट्रेलिया की जनसंख्या ७० लाख के लगभग है। इसमें से लगभग ४० लाख लोग नगरों में निवास करते हैं। आस्ट्रेलिया में इङ्गलैंड की भांति ही बड़े दिन का उत्सव मनाया जाता है।

ऊन की कतराई— ऊन की कतराई का समय गड़रियों के लिये बड़ा ही व्यस्त रहने का समय होता है। ऊन कतरने वाले तगड़े, मजबूत लोग भेड़ों के स्टेशन पर अपने औजार लेकर पहुँचते हैं और शीघ्रता पूर्वक अपने कार्य को समाप्त करते हैं। एक स्टेशन पर ऊन कतरने के पश्चात् वह दूसरे स्थान कोरवाना हो जाते हैं। कतरने के बाद ऊन की छटाई होती है और फिर यह बेलों में बाधी जाती है। एक बेल या गांठ में ३०० पौंड ऊन रक्खी जाती है। सड़क मार्ग होकर यह सारी ऊन रेलवे स्टेशन पर पहुँचायी जाती है। यह स्टेशन बहुधा सौ-सौ मील की दूरी पर स्थित होते हैं। पहले ऊन को स्टेशन तक पहुँचाने के लिये २०० बैलों को छकड़ा गाड़ी चला करती थी जिससे ऊन को स्टेशन तक पहुँचाने में बड़ी कठिनाई होती थी और बहुत समय लग जाता था पर अब यह सारा काम मोटर-ट्रकों द्वारा होता है। यदि गड़रिये के पास अपनी ट्रक नहीं होती है तो वह जनता की ट्रकों का प्रयोग करता है और उन्हें ठीके पर लेकर अपना ऊन स्टेशन ले जाता है। राजधानी वाले नगर में कम्पनियों द्वारा ऊन को कुशल व्यक्तियों द्वारा श्रेणी के अनुसार छटाया जाता है और फिर उसे बेचने के लिये सजाया जाता है। विदेशों के खरीदार लोग ऊन खरीदने के लिये 'मेड हाउस' में ऊन के नीलाम के लिये एकत्रित होते हैं। ऊन नीलाम द्वारा ही बेची जाती है। नीलाम द्वारा खरीद कर फिर वह बन्दरगाह पर पहुँचा दी जाती है और वहां से विदेशों को जहाजों में भर कर भेजी जाती है। आस्ट्रेलिया की सभी ऊन बाहर नहीं चली जाती है वरन् अपने देश की खपत के लिये भी रख ली जाती है।

आस्ट्रेलिया के गड़रियों को केवल ऊन के उत्पादन में ही रुचि नहीं होती है। उन्हें भेड़ों के मांस उत्पादन में भी विशेष रुचि होती है क्योंकि आस्ट्रेलिया में काफी मांस की खपत है। आस्ट्रेलिया में प्रति वर्ष प्रत्येक व्यक्ति पीछे २१५ पौंड भेड़-बकरियों का मांस लगता है जब कि इङ्गलैंड में १४१ तथा अमरीका

में १३१ पौंड लगता है। इसी कारण आस्ट्रेलिया के गड़रियों को प्रतिवर्ष २ करोड़ ५० लाख भेड़ों को हलाल करना पड़ता है। आस्ट्रेलिया से यह मांस बाहर भी भेजा जाता है।

आस्ट्रेलिया निवासियों को कहा जाता है कि वे घर के बाहर का जीवन पसंद करते हैं। परन्तु बड़े आश्चर्य की बात है कि आस्ट्रेलिया की जनसंख्या का प्रायः आधा भाग वहां के ६ राजधानीवाले नगरों में निवास करता है। सिडनी नगर की जनसंख्या १३ लाख, मेलबोर्न की ११ लाख है। आस्ट्रेलियन लोगों का विश्वास है कि नगर में जो सुविधाएँ प्राप्त हैं और वहां पर जीवन के आनन्द के लिये जो वस्तुएँ प्राप्त हैं उनके लालच के कारण आस्ट्रेलिया की देहाती आबादी कभी भी नहीं बढ़ सकती है। उनका विश्वास है कि वहां केवल गेहूँ, ऊन और डेअरी के सामान वाले केन्द्रों में ही कुछ आबादी हो सकती है अन्यथा विशेष आबादी कारखाने वाले नगरों में ही केन्द्रित होती रहेगी। गेहूँ, ऊन तथा डेअरी वाले क्षेत्र जनसंख्या के ध्यान से कभी भी कारखाने वाले नगरों की तुलना नहीं कर सकेंगे। आस्ट्रेलिया की सरकार अपने देहातों की जनसंख्या बढ़ाने के लिये अपना भरसक प्रयास कर रही है। वह देहाती केन्द्रों में छोटे-बड़े कारखाने स्थापित कर रही है ताकि वहां की उपज की खपत वहीं पर कर दी जाय। परन्तु न्यूसाउथ वेल्स के सिडनी के लोहे के कारखाने को छोड़ कर और कोई भी कारखाना उन्नत नहीं कर सका है। सिडनी नगर न्यू साउथ वेल्स के कोयले की खानों से १०० मील की दूरी पर स्थित है। सिडनी का लोहे का कारखाना ब्रिटिश साम्राज्य के भीतर एक बड़ा कारखाना माना जाता है। आस्ट्रेलिया के बन्दरगाहों में ही आस्ट्रेलिया के अधिकांश उत्पादन करने वाले कारखाने स्थित हैं।

आस्ट्रेलिया के कारखानों की उन्नति दोनों महासमरों के मध्य हुई है और आज उन कारखानों में ७ लाख ५० हजार मजदूर काम करते हैं। आस्ट्रेलिया में कुल २७ हजार कारखाने हैं। इन कारखानों से १ अरब २० करोड़ पौंड की आय होती है जो कि वहां की राष्ट्रीय आय का दो-तिहाई होता है। आस्ट्रेलिया के कारखानों में दिया सलाई, बिसकुट, साबुन आदि तैयार होता है। नगरों में प्रयोग करने के लिये भोजन सामग्री भी इन कारखानों में तैयार की जाती है। आस्ट्रेलिया के जहाज बनाने वाले कारखानों में १० हजार टन वाले जहाज भी बनाये जाते हैं और चार इञ्जन वाले वायुयान भी तैयार किये जाते हैं। अनेक ब्रिटिश तथा विदेशी लोगों ने आस्ट्रेलिया में अपने कारखानों की शाखाएँ स्थापित की हैं।

आस्ट्रेलिया के नगरों के कारखाने वाले क्षेत्रों की परिभाषा कानून द्वारा की गई है और नगरों को धुआं-धक्कड़ से बचाने तथा साफ रखने के लिये उन्हें बिजली द्वारा चलाया जाता है। यह बिजली नगरों से सैकड़ों मील की दूरी पर स्थित देहाती प्लाटों से आती है। अधिकांश कारखाने बिलकुल नवीन आधुनिक ढङ्ग पर स्थापित किये गये हैं और उन्हें सड़कों तथा रेलों और प्लाटों से सुसज्जित किया गया है। उनमें लान तथा बगीचे आदि भी बनाये गये हैं और कारखाने में काम करने वाले श्रमिकों के लिये लिये निवास स्थान बनाये गये हैं। उनके तथा उनके बच्चों के लिये अन्य प्रकार की सुविधायें भी प्रदान की गई हैं।

चूंकि आस्ट्रेलिया के नगर एक-दूसरे से बहुत अधिक दूरी स्थित हैं और एक नगर से दूसरे नगर में सामान पहुँचाने में कठिनाई तथा अधिक व्यय पड़ता है, इसलिये वह पर्याप्त मात्रा में अपनी आवश्यकताओं के लिये आत्मनिर्भर हो गये हैं। उदाहरण के रूप में सिडनी में मेलबोर्न नगर का बिस्कुट मुश्किल से देखने को मिलेगा और मेलबोर्न में कठिनाई से सिडनी की दियासलाई प्राप्त हो सकेगी। आस्ट्रेलिया के विभिन्न राज्यों के मध्य व्यापार समुद्री मार्गों द्वारा होता है। स्टीमरों द्वारा सामान एक राज्य से दूसरे राज्य को ले जाया जाता है। आन्तरिक राज्यों के व्यापार का ८८ प्रतिशत व्यापार स्टीमरों द्वारा ही होता है। राज्यों के प्रयोग में आने वाला सामान ही केवल रेलों द्वारा आता-जाता है।

चरवाहों का जीवन—संसार के चरवाहों का जीवन शिकारी जातियों की अपेक्षा श्रेष्ठ और

सुव्यवस्थित पाया जाता है। कारण इसका यह है कि इन लोगों के पास अपनी आवश्यकताओं से अधिक सामान हुआ करता है। इनके पशुओं के गल्लों में हमेशा बढ़ती होती जाती है जिससे इनकी सम्पत्ति भी बढ़ती जाती है। इस प्रकार चरवाहे लोग एक प्रकार के धनी या महाजन हुआ करते हैं। किन्तु इसके साथ ही साथ इनका भी जीवन बिल्कुल निश्चित नहीं हुआ करता है। इन्हें भी हमेशा अनावृष्टि और अकाल का भय लगा रहता है क्योंकि इससे इनके हजारों पशु मर जाया करते हैं और कभी-कभी इन्हें बिल्कुल निर्धन हो जाना पड़ा करता है।

चरवाहों का जीवन पशुओं का जीवन हुआ करता है। नये नये चरागाहों की प्राप्ति ही इनके गल्लों की वृद्धि और उनकी कुशलता का कारण हुआ करती है। इन लोगों के पास बोझा ढोने वाले जानवर भी पाये जाते हैं जैसे टुन्ड्रा में रेनडियर, स्टेप में घोड़ा और ओसिस में ऊँट। आस्ट्रेलिया के चरवाहे घोड़ों पर चढ़ कर ही अपने मवेशियों को चराते तथा पानी पिलाने और बाड़ों में बन्द करते तथा बाहर निकालते हैं। ये चरवाहे बड़े अच्छे घुड़सवार होते हैं और इन्हें घोड़ों के पालने का बड़ा शौक होता है। यह लोग हास रेस में भी भाग लेते हैं। इन्हीं सवारियों के कारण चरवाहों को शिकारी जातियों की अपेक्षा आने-जाने में अधिक सुविधा होती है। यही नहीं इस सुविधा के कारण यह लोग अपने पास गृहस्थी का सामान भी इकट्ठा कर लिया करते हैं जिससे इनकी भूमि उन शिकारी लोगों या यों कहिये कि शिकारी जानवरों से क्योंकि वास्तव में शिकारी लोग अपने आस-पास के जङ्गली जानवरों से कुछ ही अधिक अच्छे होते हैं। कुछ तो अधिक अच्छी होती है। चरवाहा शिकारी की अपेक्षा अधिक शांत और सुखमय होता है। उसके पशु उनके संचित धन का काम करते हैं और इन्हीं के ऊपर उनका मानापमान निर्भर हुआ करता है। चरागाहों में खेती करने की भांति भूमि को छोटे-छोटे भागों में नहीं बांटा जाता है क्योंकि ऐसा करने से कष्ट अधिक होता है। इसके विपरीत यहां जमीन के बड़े-बड़े टुकड़े एक ही कुटुम्ब वालों के अधीन रहा करते हैं। यही हाल पशुओं और भेड़ों के गल्लों का भी पाया जाता है। गृहस्थी का सामान जैसे टेंटें, चटाई, कम्बल और भेड़ें बासनादि तो प्रत्येक कुटुम्ब के सबसे बूढ़े आदमी का ही माना जाता है।

आस्ट्रेलिया के कोई भी दो नगर एक प्रकार के नहीं हैं। इसका मुख्य कारण वहां की जलवायु, प्राकृतिक दशा तथा विशेष योजना है। केवल भवनों की ऊंचाई में ही सभी नगर एक जैसे हैं क्योंकि कानून ऐसा करने के लिये मजबूर किया गया है। मेलबोर्न नगर के भवन १३२ फुट तक और सिडनी नगर के भवन १५० फुट नगर के भीतर और १०० फुट नगर के समीपवर्ती प्रदेश में हैं। सिडनी नगर एक चट्टान पर बसा है। सिडनी नगर का अधिकांश भाग ऊँची चट्टान पर बसा हुआ है बिसबेन नगर लकड़ी की कुर्सियों के ऊपर बनाया गया है ताकि उसकी रक्षा दीमकों से की जा सके। इनके अलावा अन्य नगरों के मकान ईंटों के बने हुये हैं और उनके चारों ओर सुन्दर खुले स्थान, अहाते और बगीचे बने हुये हैं। इन नगरों के भवनों के चारों ओर काफी स्थान है ताकि नगर की बढ़ती हो सके। कारण यह है कि भवन अधिक ऊंचे बनाने की मनाही है। ब्रिसबेन नगर की जनसंख्या लगभग ३ लाख के है परन्तु उसका क्षेत्रफल ग्रेटर लन्दन के बराबर है। सिडनी और मेलबोर्न में अधिकतर लोग नीचे के भागों में ही निवास करते हैं।

इङ्गलेंड जैसे देशों की भांति आस्ट्रेलिया के निवासी नगर और देहात दोनों स्थानों पर अपने घर बना कर रहने के आदी नहीं हैं। केवल छुट्टी के दिनों में या भ्रमण करने के लिये ही आस्ट्रेलिया वाले, कुछ समय के लिये नगर को छोड़ कर देहात में जाते हैं।

आमोदप्रमोद—आस्ट्रेलिया के निवासी सिनेमा देखने में विशेष रुचि नहीं रखते हैं। वहां साल भर में केवल सिनेमा घरों में १३ करोड़ व्यक्ति युद्धों के पूर्व सिनेमा देखने के लिये गये थे। दोनों युद्धों के मध्य यह संख्या घट कर केवल ५० लाख ही गई थी परन्तु अब इसमें पुनः वृद्धि होने लगी है। आस्ट्रेलिया के निवासी गाना सुनने के बड़े शौकीन होते हैं।

२५—विक्टोरिया प्रान्त (आस्ट्रेलिया) में नेरीज़विजी के पास टेवर्री नदी का दृश्य ।

२६—विक्टोरिया प्रान्त के किसानों को कृषि सुधारने के लिये रेलगाड़ी से व्याख्यान दिया जा रहा है ।

सिडनी के निवासी सध्या समय बोटेनिकल गार्डन में गाना सुनने के लिये अधिक मात्रा में घास के मैदानों के ऊपर एकत्रित होते हैं। आस्ट्रेलिया के गायक समस्त संसार में प्रसिद्ध हैं। गायकों को ट्रेनिंग प्राप्त करने के लिये जनता द्वारा चन्दा करके सहायता प्रदान की जाती है।

आस्ट्रेलिया के निवासी अपने द्वारों पर घंटियां रखने के शौकीन नहीं है कि लोग उनके द्वार पर आकर उन्हें घंटी बजा कर बुलावें। उनके यहां घंटी का उत्तर देने के लिये वहां के मूल निवासी नौकर भी नहीं हैं। आस्ट्रेलिया के मूल निवासी बड़े बुद्धिमान प्रतीत होते हैं। वे बड़े अच्छे स्टाकमैन होते हैं और पशु स्टेशनों पर स्टाकमैनी का बड़ा सुन्दर काम करते हैं। मूल निवासियों की कुछ स्त्रियां घरों में सेविका का काम करती हैं। परन्तु बड़े दुःख की बात है तथा आश्चर्य का विषय है कि अभी तक वे सभ्य नहीं बन पाये हैं। इसका मुख्य कारण यही प्रतीत होता है कि आस्ट्रेलिया के गोरे निवासी शायद उनके साथ समानता का बर्ताव नहीं करते हैं और उन्हें सभ्य बनाने की चेष्टा नहीं करते हैं। मध्यवर्ती तथा उत्तरी आस्ट्रेलिया के अर्ध रेगिस्तानों में वहां के मूल निवासी पाये जाते हैं जो अब केवल ५२००० बचे हैं। यह लोग अब भी चमड़े के वस्त्र पहिन कर रहते हैं और कपड़ा नहीं पहिनते हैं। अपने भालों तथा पुराने प्रकार के औजारों से वे शिकार करते हैं तथा जड़ी-बूटियों को खोद कर भोजन प्राप्त करते हैं। वे समूहों में एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमा करते हैं। उनकी संख्या में वृद्धि नहीं होती है। एक परिवार में तीन-चार बच्चों से अधिक होते ही नहीं हैं। आस्ट्रेलिया के मूल निवासी आकार प्रकार में भारत मलय आदि के मूल निवासियों से मिलते जुलते हैं।

आस्ट्रेलिया के मूल निवासी बड़े ही अच्छे शिकारी होते हैं। वे कई दिनों तक शिकार का पीछा करते रहते हैं और उसका पता लगा कर उसे मार डालते हैं। वे शिकार की गंध से उसका पता लगाते हैं। आस्ट्रेलिया की पुलीस दोषियों के पता लगाने में उनकी सहायता लेती है। यूं तो कुत्ते गंध से दोषियों का पता लगाने में प्रसिद्ध हैं। परन्तु जब कुत्ते भी असफल हो जाते हैं तो यह मूल निवासी उसका पता लगाने में सफल होते हैं। मूल निवासी लोग प्राकृतिक आत्माओं में विश्वास करते हैं और जादूगरी का काम भी करते हैं। यह बात देखी गई है कि मूल निवासी ५०० मील की दूरी पर स्थित अपने सम्बन्धी की मृत्यु के समय रोने लगे हैं और बाद में पता लगाने पर निश्चय रूप से पता चला है कि वास्तव में उसके सम्बन्धी इन्हीं क्षणों में मरे हैं जब कि वे दुखित अवस्था में विलाप कर रहे थे। यह भी देखा गया है कि वे दो अपराधी को दूरस्थ स्थान से बिना देखे हुये ही भाले द्वारा मारते हैं और उसे चोट लगती है। कभी-कभी तो सैकड़ों मील की दूरी से ऐसा किया जाता है और अपराधी उस चोट से घायल होकर कराहता और मर जाता है। आस्ट्रेलिया की सरकार मूल निवासियों का सर्वनाश होने से के लिये शरण-स्थान बना कर प्रयत्न शील है। परन्तु फिर भी सन्देहजनक है कि यह जाति जीवित रह सके।

आस्ट्रेलिया का देश जनसंख्या को छोड़ कर अन्य किसी बात में छोटा नहीं है। इस देश की उन्नति तथा उत्थान की बड़ी-बड़ी आशाएं हैं। नये मालूम किये गये देशों में यह अन्तिम देश है और अभी इसका पूरा उत्थान होना शेष है। आस्ट्रेलिया निवासी बड़े हंस मुख तथा अतिथिसत्कारी होते हैं। उन्हें अपने देश तथा अपने ऊपर पूरा भरोसा है कि प्रशान्त सागर में उनका देश बहुत बड़ा भाग लेगा। आस्ट्रेलिया १५ वर्षों में अपनी संख्या २ करोड़ करना चाहता है। यदि ऐसा हो जाता है तो निश्चय ही आस्ट्रेलिया का देश बड़ा सुखी तथा उच्च जीवन स्तर वाला देश हो जायगा।

मकर रेखा
१९२७से–
टस्मेनिया
होबार्ट

पुर्तगाली किसान

ऐंजो पुर्तगाल देश का बड़ा प्रान्त तथा अन्न (भंडार) माना जाता है। यह प्रान्त निचले प्रदेश में (है)। इंगलैण्ड के जून मास की भांति इस प्रान्त (में फ)रवरी मास में गर्मी पड़ती है जब कि यहां पर (बसन्)त ऋतु होती है। यहां की घाटियों में कार्क के (वन) हैं। बसन्त ऋतु में यहां वनों को जलाया जाता है इसलिये उनके जलने से और जंगली वृक्षों के पुष्पों (की) भीनी भीनी सुगन्धित वायु चला करती है।

लिस्बन नगर पुर्तगाल की राजधानी है। यहां (क)र बड़े-बड़े व्यापारी निवास करते हैं। इन व्यापा(रि)यों के पास बड़े-बड़े वन तथा बगीचे हैं। वे लोग अपने कार्क के वनों की रक्षा करते हैं और उसकी (ल)कड़ी का व्यापार करते हैं। जिस समय का वर्णन (हो) रहा है वह जनवरी का महीना है। लिस्बन नगर (के) एक कार्क व्यापारी ने समीप वर्ती स्थानों से ३० लड़कियों को अपनी भूमि की निराई के लिये नौकर रख रखा है। यह लड़कियां देखने में बड़ी हंसमुख हैं और अपने हाथों में हंसिया तथा खुपियां लिये हुये हैं। ये लड़कियां स्कर्ट पहिनती हैं और सुन्दर लाल, नीले, पीले रूमाल अपने सीने तथा गलों में बांधे हुये हैं। वे गाती हुई अपने अपने काम में जुटी हुई हैं।

देखिये ये लड़कियां प्यासी हो गई। उनमें से एक लड़की पंक्ति से निकलकर एक घड़ा लेकर पानी लाने जा रही है। वह देखिये पानी लेकर वापस आ गई। सभों ने पानी पी लिया और फिर अपने कामों में लग गई हैं। दोपहर के समय इन लड़कियों को दोपहर के भोजन करने के लिये काफी समय की छुट्टी मिलती है। दोपहर वाले भोजन को पुर्तगाल में अल्म्भों को कहते हैं। दोपहर के समय ये लड़कियां मटर या चावल पकाती हैं। और उसी का भोजन करती हैं।

ऊंचे ढालों पर जहां पर कार्क के वृक्ष अधिक सघन उगते और बढ़ते हैं, वे एक दूसरे से लपटे हुये होते हैं। वहां पर कुल्हाड़ियों द्वारा उनकी कटाई की जाती है। नये साल के साथ ही साथ इन वनों में भी-जीवन आ जाता है और इसी कारण इनकी कटाई छंटाई होने लगती है। वृक्षों की छंटाई का काम कुशल मजदूरों द्वारा किया जाता है जिनके पिता तथा पितामहाओं ने उन वनों में काम किया है। छंटाई के लिये मजदूर स्थानीय स्थानों से नहीं भरती किये जाते हैं वरन् अल्गेव से आते हैं जो कि पुर्तगाल का सबसे दक्षिणी प्रान्त है। कटाई का कार्य करने वाले इन लोगों का मेट पुराना खुर्राट होता है जिसे वन का पूरा ज्ञान प्राप्त होता है। अनाज काटने तथा जैतून की फसल काटने के लिये मजदूर बाहर से नहीं बुलाये जाते हैं वरन् स्थानीय स्थानों से ही बुलाये जाते हैं। वनों की छटाई करने वाले मजदूर भेड़ की खाल की बिना अस्तीन वाली जैकट पहिनते हैं। यही उनके प्रान्त का पहिनावा है। अपने मेट या फोरमैन की आहट पा कर वृक्षों की छंटाई करने वाले मजदूर बन्दरों की भांति वृक्षों पर चढ़ जाते हैं और डालों में लटककर कुल्हाड़ियों से टहनियों की छटाई करते हैं। और यही लोग टहनियों की छिलाई का काम भी करेंगे मजदूर को टिराडेर कहते हैं और मेट को मैओरल कहते हैं। छालों की छिलाई का काम बड़ी चतुराई के साथ करना पडता है ताकि वृक्ष के तने को किसी प्रकार की भी हानि न हो सके। टिराडोर को अपनी कुल्हाड़ी बड़ी चतुरता के साथ चलानी पड़ती है। उसे चीड़-फाड़ करने वाले डाक्टर की भांति ही काम करना पड़ता है।

सूर्यास्त के समय वृक्षों की छाया लम्बी होने लगती है और धीरे-धीरे करके वह लुप्त हो जाती है। सध्या समय लड़कियां अपने कामों से लौट कर गांव में स्थित घरों को जाती हैं और पुरुष मजदूर भी अपने अपने अस्थाई घरों को जाते हैं दूसरे दिन प्रातः काल फिर सभी लोग अपने-अपने कामों पर वापस आवेंगे। आज की कटाई की हुई टहनियों के ढेर दूसरे दिन जला दिये जाते हैं। सवेरे पहुंचते ही पहले पहल जलाने का ही काम किया जाता है।

पुर्तगाल के वनों या खेतो वाले मैदानों में ही

जीवन दिखलाई पड़ता है। ये लोग वहां पर आनन्द पूर्वक काम करते, गाते-चिल्लाते हुये दिखाई पड़ते हैं। पुर्तगालियों ने प्रकृति के प्रभाव से अपना जीवन भी उसी के अनुसार बना लिया है।

पुर्तगाल का देश मुख्यतः एक कृषक देश है। वहां पर कोई बड़े कारखाने नहीं हैं। वहां का साधारण आदमी या तो कारीगर होता है और किसान। यों तो उसके पास अपनी छोटी भूमि खेती करने के लिये होती है और या वह किसी लोराढोर (जमीदार) के यहां मजदूरी का काम करता है। किसी भी दशा में उसका जीवन बड़ा ही सीधा सादा होता है। विलासता की तो उसके भीतर बू तक नहीं पाई जाती है। उसकी स्त्री उसके साथ खेत में काम करती है। उसके परिवार में बहुत से व्यक्ति होते हैं। बच्चों की परिवार में अधिकता रहती है और शीघ्र ही वह कार्य में सहायक होने लगते हैं। लड़के छोटेपन में ही चरवाहे बन जाते हैं और अपनी भेड़-बकरियों के समूहों को लेकर तमाम दिन खुशी के साथ चराई का काम करते रहते हैं। यदि कोई विदेशी ऐसे किसी चरवाहे बच्चे के पास जाता है और उसकी फोटो अपने कैमरे से खींचना चाहता है तो वह बच्चा पीठमार कर भागता और रोने लगता है।

पुर्तगाली किसान मछली, सूखी काड मछली (जिसे वह बकाल हो कहते हैं), चावल, मटर, दाल मक्का की रोटी, जैतून का तेल, फल और साग भाजी खाते हैं। किसानों को दोपहर का भोजन खेतों में कार्क के बने बर्तनमें ले जाया जाता है। घर में भोजन चारकोल के चूल्हों पर मिट्टी के बर्तनों में बनाया जाता है। नगरों में फलों का प्रयोग भोजन में किया जाता है। भोज तथा उत्सव के दिनों में मांस, अंडा, मुर्गी तथा पक्षी आदि के मांस का प्रयोग होता है अन्यथा यह वस्तुएं बाजार में बेची जाती हैं। पुर्तगाल में मदिरा का बड़ा प्रचलन है और यहां मदिरा खूब तथा सस्ती मिलती है। परन्तु मदिरा पी कर लोग पागल तथा मदमस्त नहीं बनते हैं।

किसानों की कला—पश्चिमी यूरोपीय देशों में पुर्तगाल किसान ही सबसे कम शिक्षित होते हैं। परन्तु वे बड़े कलापूर्ण होते हैं। उनकी कला का संकेत उनकी हाथ की बनी वस्तुओं तथा मिट्टी के बने बर्तनों तथा वस्तुओं से मिलता है। पुर्तगाल के अनेक भागों में मिट्टी के बड़े ही सुन्दर पात्र तथा वस्तुएं बनाई जाती हैं। छोटे छोटे घरों में इन वस्तुओं के बनाने का कार्य किया जाता है। बीरा आल्टा और काल्डासडा रैराहा की मिट्टी की वस्तुएं प्रसिद्ध हैं। बीरा आल्टा में काली मिट्टी का सामान तैयार किया जाता है। लोग सुन्दर कैबिनेट तैयार करते हैं तथा लकड़ी पर सुन्दर खोदाई का काम करते हैं। स्त्रियां अच्छे प्रकार के बेल बूटे तथा गोटा तैयार करती हैं। कपड़े पर फूल-पत्तियों के काढ़ने का काम स्त्रियां बड़े सुन्दर प्रकार का करती हैं। लिस्बन तथा ओपोर्टो के चांदी-सोने के काम करने वाले सोनार अच्छे प्रकार के आभूषण तथा चांदी सोने के सामान तैयार करते हैं। उनकी कला में मूरों का प्रभाव पाया जाता है। वह हाथ के बड़े ही सुन्दर हार तैयार करते हैं। पुर्तगाली स्त्रियां आभूषण की बड़ी ही शौकीन होती हैं। शादी के पश्चात् जब दुलहिन अपने पति के घर जाती है तो वह सुन्दर आभूषणों का एक बड़ा उपहार दाहेज के रूप में अपने साथ ले जाती है। पुर्तगाली स्त्रियां कान, नाक सिर, गले, हाथ आदि में बड़े-बड़े आभूषण धारण करती हैं। दुलहिन अपने सुहागरात के लिये बड़ी ही सुन्दर चादरें गोटे-पट्टेदार तथा फूल-पत्तियों से सजी हुई तैयार करती है। चादरें सूती हो या रेशमी महगी से महगी तैयार की जाती है।

पुर्तगाली लोग अंध विश्वासी होते हैं। जादू-टोने आदि में वे विश्वास करते हैं। जन्म, ब्याह और मृत्यु के समय अजीब प्रकार के रीतरिवाज बरते जाते हैं।

ग्रीष्म काल में भारतवर्ष की भांति पुर्तगाल में भी भोज आदि बहुत दिये जाते हैं। इसी समय शादी-ब्याह आदि होते हैं और त्योहारों की भीड़ होती है। पेनहा लोंगा में एक बड़ा मेला होता है। वहां पर लोग देव स्थान का दर्शन करने के लिये जाते हैं। वहां पर सेनहोरा डे सांडे (स्वास्थ्य देवी) का मन्दिर है जो सिन्तरा की हरी पहाड़ियों पर स्थित है। बैल गाड़ियों को सजाकर बड़े ही सुन्दर जुलूस निकाले जाते हैं और गाड़ियों पर खूब गाना-बजाना होता है। मेले में

बहुत से पंडित होते हैं जो लोगों के भाग्य के सम्बन्ध बतलाने के लिये बैठे रहते हैं। लोग उनके पास जाकर अपने अपने भाग्य के बारे में पूछते हैं और पंडितों को उपहार देते हैं। ऐसे पंडितों के पास बड़ी भीड़ लगी रहती है। वहां पर विभिन्न प्रकार की मिठाइयां बेची जाती हैं। इसके अतिरिक्त और भी मिट्टी के बर्तन तथा सुन्दर वस्तुएं की बिक्री वहां की जाती है।

पुर्तगाल में अब भी रीत रिवाजों में बड़ी सजावट तथा व्यय किया जाता है और प्राचीन रीत रिवाज अब भी जैसे के तैसे प्रचलित हैं। इन रीत रिवाजों से पता चलता है कि आधुनिक संसार के निर्माण करने में पुर्तगाल ने कितना बड़ा हाथ बटाया है। उनके रीत-रिवाजों के पीछे एक बड़ा इतिहास छिपा हुआ है। पुर्तगाल एक छोटा तथा गरीब देश है। परन्तु उसका इतिहास बहुत बड़ा है। उसका तट केवल ५०० मील लम्बा है जो अटलांटिक सागर पर स्थित है। परन्तु उसका किनारा बड़ा हीं कटा फटा है जो मल्लाही कार्य के लिये बहुत अधिक उपयोगी है। इस पुर्तगाली तट ने बड़े-बड़े अन्वेषक मल्लाह उत्पन्न किये हैं जिन्होंने संसार में बड़ी बड़ी खोजें की हैं। आज भी यहां साहसी मल्लाहों की उत्पत्ति होती है। पुर्तगाल ने सब से पहले अपना साम्राज्य संसार में स्थापित किया और आज भी संसार के एक बड़े भाग में उसकी बस्तियां हैं। इस ऐतिहासिक देश के निवासी काली स्टाकिंग टोपी लगाते हैं।

संसार के अन्य तटस्थ देशों की भांति युद्ध काल में पुर्तगाल में भी समृद्धि आयी। परन्तु उसका सुख भोग केवल सीमित समूहों ने ही किया, गरीब लोगों को उससे कोई विशेष लाभ नहीं हुआ है। पुर्तगाल की वोलफ्राम (Wolfram) जैसी वस्तुएं युद्ध के लिये बड़ी आवश्यक थीं। इसलिये उसका विदेशों में बहुत अधिक प्रयोग किया गया। चूंकि इन वस्तुओं के द्वारा देश में रुपया काफी हो गया और जीवन में उपयोग आने वाली वस्तुओं की कमी हो गई इसलिये वस्तुओं के मूल्य बहुत अधिक हो गये, जीवन व्यय बहुत ही अधिक हो गया। यातायात साधनों की कठिनाइयों के फलस्वरूप पेट्रोल और कोयले की बड़ी कमी हो गई। इसलिये युद्ध के अंतिम वर्षों में जैतून के तेल, आलू तथा चारकोल जैसी वस्तुओं की अत्यन्त कमी हो गई। याद रखना चाहिये कि लकड़ी के कोयले से ही पुर्तगाल में भोजन तैयार किया जाता है। इसलिये जनता के मध्य बड़ी बेचैनी हो गई। इसलिये एक समय वह आ गया जब कि रोटी की राशनिंग करनी पड़ी। मकानों की भी बड़ी कमी हो गई। इसलिये पुर्तगाल की गरीब जनता को बड़ी परेशानी का सामना करना पड़ा जिसका परिणाम यह हुआ कि वहां अनेक नगरों के बड़े कारखाना में हड़तालें हो गई।

युद्ध काल में पुर्तगाल की जो वस्तुएं बाहर गईं और उनसे जो उसे लाभ तथा ख्याति मिली उसके कारण यह बात आवश्यक तथा निश्चित हो गई कि वहां पर ऐसे-ऐसे नये कारखानों तथा व्यवसायों की स्थापना होगी जिनका वहां पर कभी नाम भी न था। जलविद्युत के कारखाने पुर्तगाल में न थे। युद्ध के पश्चात इनकी स्थापना आवश्यक हो गई। यह कारखाने पुर्तगाल में कोयले तथा पेट्रोल की कमी के कारण पहले स्थापित नहीं हो सकते थे। चूंकि अमरीका ने पुर्तगाल से युद्ध में काम आने वाली वस्तुएं खरीदी थीं और अमरीकी लोगों का ध्यान पुर्तगाल की ओर आकृष्ट हुआ था। इसलिये अपनी खरीदी वस्तुओं के स्थान अमरीका ने पेट्रोल तथा कोयला पुर्तगाल में भेजना आरम्भ कर दिया। इसके अतिरिक्त पश्चिमी योरुप की ओर से जब उसे धुरी राष्ट्रों के देशों में विजय करने के लिये प्रवेश करना पड़ा और उन राष्ट्रों के युद्ध पोतों की निकासी रोकनी पड़ी तो पुर्तगाल का देश अमरीका को अत्यन्त आवश्यक प्रतीत हुआ। इसी का कारण है कि अमरीका आज भी पुर्तगाल में विशेष रूप से रुचि ले रहा है और वहां पर अपने युद्ध केन्द्र स्थापित कर रहा है।

अमरीकी रुचि होने के कारण तथा अमरीका से सहायता मिलने के कारण पुर्तगाल में अमरीकी धन से शिक्षा, आयुर्वेद, यातायात साधन तथा अन्य क्षेत्रों में विशेष रूप से उन्नति होने लग गई है। इसी के साथ ही साथ समस्त पुर्तगाल में अतिथि गृहों की भी स्थापना की गई है। अब वहां की सरकार अपने

विभिन्न प्रदेशों में स्थित अतिथि घरों को स्थानीय रूप-रङ्गों से अच्छी प्रकार सुसज्जित करने की व्यवस्था कर दी है।

यद्यपि पुर्तगाल के नगर प्राचीन कालीन सभ्यता का दिग दर्शन कराते हैं फिर भी लिस्बन जैसे नगरों के महलों तथा बगलों में प्राचीन सजावट के साथ ही साथ अब आधुनिक सजावट के सामान भी एकत्रित कर दिये गये हैं जिससे उनकी सुन्दरता और अधिक बढ़ गई है।

आज पुर्तगाल का भ्रमण किया जाय तो वहां पर रङ्ग-बिरङ्गे लोग विभिन्न प्रकार के कार्यों में व्यस्त दिखलाई पड़ेंगे। वहां के अंगूरों के बगीचों में वहां के साधारण कार्यकर्ता तथा मजदूर रङ्ग-बिरङ्गे कपड़े पहने हुये गाते तथा चिल्लाते हुये नजर आयेंगे। मदिरा तैयार करने वाले स्थानों पर टंकियों में वह अंगूर का रस निकालते हुये दिखलाई पड़ेंगे। इन टंकियों में अंगूर डाल दिये जाते हैं और लोग घुटने भर गहराई में अंगूरों के मध्य चलकर उन्हें कुचल कर उनका रस निकालते हैं। अपना कार्य करते हुये मजदूर बराबर चिल्लाते और गाते जाते हैं। वहां के सुन्दर कैम्पिनहोज (चरवाहे) अपनी लाल, हरी स्टाकिंग टोपियां लगाये, गहरी लाल वेस्टकोटें धारण किये और काली मीचों को पहने हुये अपने पशुओं को आगे किये हुये इधर-उधर कूदते तथा छलांगें भरते हुये दिखलाई पड़ेंगे। कहीं-कहीं पर धूप में फैलाये हुये अंगूर को कोई वृद्ध या उसकी स्त्री अंगूरों को पलटाती और मुस्काती हुई दिखलाई पड़ेगी। जैतून के तेल के कारखानों में लोग सफेद रङ्ग के कोट पहने हुये काम करते दिखलाई पड़ेंगे। लिस्बन जैसे नगरों में वहां के मल्लाहों की स्त्रियां मछली की टोकरियां अपने सिर पर रखे हुये नंगे पैर इधर-उधर गलियों में भागती हुई दिखाई पड़ेंगी। यह घर-घर जाकर मछलियां बेचती हैं। यह स्त्रियां हैट भी लगाती हैं और म्युनिसिपैलटी की आज्ञानुसार विशेष प्रकार के जूते धारण करती हैं। हैट के ऊपर ही यह अपनी बेचने वाली मछलियों की टोकरियां लेकर चलती हैं। इस प्रकार का देश है पुर्तगाल और इस प्रकार के हैं वहां के निवासी।

रेगिस्तान और उसके निवासी

साधारणतया लोग गरम, उजाड़ और रेतीले मैदानों को ही रेगिस्तान कहा करते हैं। किन्तु यह बहुत कम लोग जान पाते हैं कि संसार में बर्फीले रेगिस्तान भी हुआ करते हैं। वास्तव में भौगोलिक परिभाषा के अनुसार रेगिस्तान, मरुभूमि अथवा उजाड़खण्ड पृथ्वी के वे मैदानी भाग कहे जाते हैं जहां पर उपज बहुत कम या बिल्कुल नहीं हुआ करती है, दूसरे पेड़-पौधे, जीव जन्तु और मनुष्य बहुत ही कम या बिल्कुल ही नहीं पाये जाते हैं।

रेगिस्तान किस प्रकार बनते हैं—अब यदि उपर्युक्त दोनों दशाओं पर विचार करें तो हमको स्पष्ट रूप से प्रकट हो जायगा कि दूसरी शर्त पहली के ऊपर ही निर्भर है। इसका कारण यह है कि मनुष्यों, जीव, जन्तुओं के रहने के लिये और चीजों की अपेक्षा उनके खाने के लिये उपज का होना तो अत्यन्त आवश्यक है। अब हमें यह देखना है कि उपज के लिये किन किन बातों की आवश्यकता हुआ करती है। भौगोलिक सिद्धान्तों के अनुसार अच्छी उपज के लिये आवश्यक है कि जमीन उपजाऊ हो, अच्छी जल वृष्टि हो और जलवायु भी अच्छी हो। अब यदि संसार के किसी भी भाग में इन तीनों अथवा इन तीनों में से किसी भी एक चीज की कमी पाई जायगी तो वह स्थान अवश्य रेगिस्तान हो जायगा।

गरम रेगिस्तान—पानी का बहुत ही कम या बिलकुल न बरसना और जलवायु का अत्यन्त सर्द या गरम होना ही रेगिस्तान के बन जाने के कारण हैं। हम इस बात को सिद्ध करने का प्रयास करेंगे कि जमीन के अत्यन्त उपजाऊ होते हुये भी जल-वृष्टि की कमी और जलवायु के अत्यन्त गरम होने के कारण किस प्रकार संसार का एक बहुत बड़ा भाग रेतीले रेगिस्तान में परिणत हो गया है और वहां के लोग किस प्रकार अपने जीवन-निर्वाह को समस्याओं को हल किया करते हैं।

गरम रेगिस्तान का विस्तार—जिस प्रकार संसार के बर्फीले रेगिस्तान प्रायः दोनों ध्रुवों के आस पास पाये जाते हैं उसी प्रकार संसार के प्रायः सभी गरम रेगिस्तान कर्क या मकर रेखाओं के आस पास पाये जाते हैं। पृथ्वी के उत्तरार्ध में गोबी (चीन), तकला मकान (चीनी तुर्किस्तान), थार (राजस्थान भारत), नमक का रेगिस्तान (फारस), अरब, सहारा (अफ्रीका), कोलोरेडो, एरीजोना और मेक्सिको के रेगिस्तान तथा दक्षिण में आस्ट्रेलिया को बड़ा रेगिस्तान, कालाहारी (दक्षिणी अफ्रीका) और अटाकामा (दक्षिणी अमरीका) रेगिस्तान पाये जाते हैं। विस्तार के अनुसार पृथ्वी के उत्तरार्ध में रेगिस्तान अधिक इसलिये पाये जाते हैं कि इस भाग में पानी की अपेक्षा भूमि पाई जाती है जिसके कारण बहुत से भागों में जल-वृष्टि की अत्यन्त कमी होने के कारण पृथ्वी के धरातल पर गर्मी का जोर और प्रभाव बहुत ही अधिक रहा करता है।

इस प्रकार से प्रकट हो गया कि उष्ण-कटिबन्ध के निकट होने के कारण इन स्थानों में गर्मी तो बहुत अधिक पड़ा करती है किन्तु पानी बहुत कम या बिलकुल ही नहीं बरसा करता है। इसलिये इन स्थानों का रेगिस्तान हो जाना साधारण बात है। यही नहीं उपर्युक्त तीनों कारणों के साथ एक कारण और भी है और वह यह कि इन स्थानों की जलवायु में रात और दिन तथा गरमी और सरदी की ऋतुओं में, हवा की गर्मी में एक विशेष अन्तर और परिवर्तन हो जाता है। इन रेगिस्तानों में दिन के समय हवा की गरमी १२० अंश तक हो जाया करती है। किन्तु रात में वह घट कर ५० या ६० अंश तक आ जाया करती है। इसलिये इसका परिणाम यह हुआ करता है कि यहां पाये जाने वाली पहाड़ी चट्टानें दिन की गरमी से तो फैल जाती हैं और रात की अत्यन्त सरदी के कारण फिर यकायक सिमट जाती हैं। इसका फल यह हुआ करता है कि इनके फैलने और सिकुड़ने में ये चट्टानें टूट जाया करती हैं। धीरे-धीरे पत्थरों के बड़े बड़े टुकड़े छोटे हो जाया करते हैं, फिर वे ही हवा के कारण टूट और रगड़ कर बालू में परिवर्तित हो

जाया करते हैं। संसार में जितने भी गरम रेगिस्तान पाये जाते हैं वे सब इसी प्रकार बन गये हैं और अब भी बनते जाते हैं।

रेगिस्तान की प्राकृतिक दशा—रेगिस्तान की प्राकृतिक दशा के बारे में बहुत से लोगों की यही धारणा है कि ये रेगिस्तान बालू के ही मैदान हैं जिनमें बालू के सिवा और कुछ भी नहीं पाया जाता। किन्तु वर्तमान अनुसंधानों ने यह प्रकट कर दिखाया है कि रेगिस्तान में केवल बालू ही बालू नहीं पाई जाती। सहारा, अरब और आस्ट्रेलिया आदि के रेगिस्तानों में गहरे रेत के अतिरिक्त पथरीली पहाड़ियां, बालू के टीले और कहीं-कहीं ऊँचे पर्वत भी पाये जाते हैं। सहारा में ट्युनिस के आस-पास पहाड़ी टीलों की ओर पश्चिमी भाग में छोटे-मोटे पहाड़ों की खूब भर मार है। यही नहीं, इनके बीच-बीच में घाटियां और नमकीन झीलें भी पाई जाती हैं। छोटी-मोटी नदियों की भी कमी नहीं है। परन्तु ये नदियां थोड़े दिनों तक ही बहा करती हैं। रेगिस्तानी झीलों में सहारा की चाड अधिक प्रसिद्ध है। झीलों और घाटियों के अतिरिक्त इन रेगिस्तानों में बहुत से स्थान काफी हरे-भरे पाये जाते हैं जिन्हें ओसिस कहा जाता है। ये रेगिस्तानों के बीच में पानी वाले गड्ढे हैं जिनके आस-पास खजूरों के कुञ्ज पाये जाते हैं और इनके निकट गेहूँ, चावल और दूसरे अनाजों की खेती भी की जा सकती है। ओसिस रेगिस्तानी रास्ता के मिलने के खास स्थान भी हुआ करते हैं। आज कल अल्जीरिया के दक्षिण में फ्रांसीसियों के द्वारा खोदे गये आर्टीजियन कुओं के आस पास ये ओसिस अधिक सख्या में पाये जाते हैं।

सहारा और दूसरे रेगिस्तानों का प्राकृतिक सौंदर्य हरियाली की कमी के कारण कुछ उजाड़ सा ही रहा करता है। यहां की सब से अधिक सुन्दरता यहां के रङ्गों में पाई जाती है। आकाश बादलों से रहित नीले रङ्ग का, हवा बहुत ही स्वच्छ और साफ, इसके साथ ही साथ सूर्य की किरणों से चमकती हुई सुनहली बालू देखने में बहुत ही भली मालूम हुआ करती है। यहां पर बहुत अधिक सन्नाटा रहा करता है। दोपहर के समय जलती धूप में चमकती हुई बालू और ऊपर उठती हुई मरीचिका के सिवा कुछ भी दिखाई नहीं देता। रात के समय छिटके हुये तारों के बीच, चांदनी की शोभा देखने ही योग्य हुआ करती है। यहां का सब से सुहावना समय सूर्यास्त और सूर्योदय हुआ करता है।

प्राय: समस्त रेगिस्तानों की उपज दो भागों में विभाजित की जा सकती है। पहली रेगिस्तानी और दूसरी ओसिसों की। रेगिस्तानी पौधों में थूहर, नागफनी और कुछ कांटेदार झाड़ियां ही अधिक पाई जाती हैं क्योंकि यहां की विकट गर्मी में ऐसे ही पौधे जीवित रह सकते हैं। कहीं-कहीं छोटी और मोटी घास भी उगा करती है। ओसिसों की उपज में खजूर, गेहूँ, चावल, मक्का और कई प्रकार के दूसरे गरम प्रदेश वाले फल और अनाज अधिक उपयोगी माने जाते हैं। किसी-किसी ओसिस के आस-पास अंगूर, केला, ईख और कपास आदि की भी अच्छी उपज भी हुआ करती है। मिस्र जो सहारा रेगिस्तान का ही एक भाग है, नील नदी के कारण उपर्युक्त वस्तुओं की उपज के लिये बहुत प्रसिद्ध है। आज कल अल्जीरिया के दक्षिणी भाग में फ्रांसीसियों ने खजूर की खेती को भी एक बहुत ही अच्छी दशा पर पहुँचा रखा है। अरब, थार, और आस्ट्रेलिया के रेगिस्तान इतने उजाड़ न होने के कारण चरागाही के काम में भी लाये जाते हैं।

इनके अतिरिक्त बहुत से रेगिस्तान खनिज पदार्थों से परिपूर्ण हैं। दक्षिणी अमरीका के अटेकामा रेगिस्तान में शोरे की, फारस के रेगिस्तान में नमक की और आस्ट्रेलिया तथा कालाहारी के रेगिस्तान में सोने और हीरे आदि की भी अच्छी प्राप्ति हुआ करती है।

पशुओं के विचार से ऊँट रेगिस्तान का सबसे प्रसिद्ध पशु माना जाता है। इसे रेगिस्तान का जहाज भी कहा करते हैं। यह जानवर यहां के लोगों के लिये बड़े काम का है। गमनागमन के काम में आने के अतिरिक्त यह पशु यहां के लोगों को दूध और मांस भी दिया करता है। ओसिसों के आस-पास और कुछ घास वाले प्रदेशों में भेंड़, घोड़े और अन्य

जानवर भी पाले जाते हैं। छोटे-मोटे जीवों में सैकड़ों प्रकार के कीड़े-मकोड़े पाये जाते हैं।

जीवन निर्वाह की सामग्रियों के अत्यन्त कम होने के कारण रेगिस्तानों में स्वाभाविक तौर से बहुत कम लोग रहा करते हैं। सहारा में, जो क्षेत्रफल में योरुप के बराबर ही है वहां की जनसंख्या लगभग २० लाख ही है। इन लोगों में बद्दू और बरबर लोगों की संख्या विशेष पाई जाती है। सहारा के अन्य निवासियों में "तौरेग" और "तीबू" लोग अधिक प्रसिद्ध हैं। संसार के अन्य रेगिस्तानों में रहने वाले अपने आस-पास वाली जातियों के वंशज माने जाते हैं।

जीवन-निर्वाह के विचार से ये लोग दो भागों में बांटे जा सकते हैं। एक तो वे लोग जो अपना जीवन जानवरों की भांति इधर-उधर घूम-फिर कर बिताया करते हैं। ऐसे लोग प्रायः अपने सब सामान को ऊंटों पर लादे हुये खाने और चारे की खोज में इधर-उधर घूमा करते हैं। ये लोग कहीं-कहीं दो-चार दिन के लिये घास के झोंपड़े डाल कर या अपने खेमे गाड़ कर भले ही टिक जाय, नहीं तो ऊंटों के कारवां लिये हुये घूमने-फिरने में ही मस्त रहा करते हैं। इस प्रकार ये लोग अपना जीवन निर्वाह करते हैं, ये डाका भी डालते हैं। इनके खेमे चमड़े घास और लकड़ियों के बने होते हैं जो आसानी के साथ गाड़े या उखाड़े जा सकते हैं।

एक स्थान पर जम कर रहने वाले लोग अधिकतर ओसिसों के पास ही पाये जाते हैं क्योंकि वहीं ये लोग खजूर, चावल, ईख, कपास और फलों आदि की खेती करते हुये थोड़ा-बहुत व्यापार भी करते हैं। इनके रहने के स्थान खेमे या घास फूस और ताड़ के पत्तों के झोंपड़े ही हुआ करते हैं।

अरब के रहने वाले बद्दू भी प्रायः इसी प्रकार रहा करते हैं। अन्तर केवल यह है कि ये लोग ऊंटों के स्थान पर घोड़ों से अधिक काम लेते हैं। चोरी तथा डकैती आदि में बद्दू लोग अधिक प्रवीण हुआ करते हैं। इन लोगों का एक मुख्य काम मक्का और मदीने के यात्रियों को यात्रा कराना है क्योंकि रेगिस्तान में इनके सिवा दूसरा और कोई आदमी रास्ता नहीं बता सकता है। अपने इस काम में बहुत कुछ सचाई दिखाते हुये भी कभी ये लोग यात्रियों पर डाका डाल ही दिया करते हैं।

घूमने फिरने वाली जातियों के अतिरिक्त बड़े ओसिसों के आस पास कुछ सभ्य और शिक्षित लोग भी पाये जाते हैं जो लकड़ी, मिट्टी, और पत्थरों की छोटी-मोटी अन्धेरी कोठरियां भी बना लेते हैं और भेड़ों तथा ऊंटों के बालों से कम्बल और गलीचे आदि भी बुन लिया करते हैं। वहां हमें एकाध मसजिद भी दिखाई पड़ जाती है। वहां के लोग खजूर, नमक और अन्य उपजों के व्यापार भी किया करते हैं। इन विचारों के अनुसार 'ताफिलल' का ओसिस सबसे अधिक प्रसिद्ध माना जाता है। धर्म के विचार से अधिकांश लोग इस्लाम के अनुयायी हैं।

'आहर' के आस-पास रहने वाले 'तौरेग' लोगों के बारे में एक लेखक का कहना है कि सभी बनजारों की भांति ये लोग भी मौका मिलने पर चोरी कर सकते और डाका डाल सकते हैं। यद्यपि ये लोग संसार के सबसे अधिक गरीब लोग माने जाते हैं तो भी शरीर से काफी हट्टे-कट्टे और मजबूत हुआ करते हैं। ऊंटों पर एक दिन मे १२० मील तक चलते हैं और मार्ग में सब प्रकार की कठिनाइयों को सरलता पूर्वक झेल लेते हैं। ये लोग ढीले पायजामें के ऊपर एक ढीला सूती चोगा भी पहनते हैं। यदि अनाज मिल जाय तो बहुत अच्छा, नहीं तो ऊंट और बकरी का दूध और उसी से बनी हुई पनीर जिसमें जंगली घास के बीज पड़े रहते हैं, भोजन की खास सामग्री मानी जाती है। कभी कभी स्वाद बदलने के लिये टमाटर और प्याज का भी प्रयोग किया जाता है। और चाय काफी का मिल जाना तो मानो भाग्य का ही खुल जाना है। ये लोग हमेशा ही खुशदिल रहा करते हैं और गुस्सा तो इन्हें कभी भूले भटके ही आया करता है। इन लोगों में किसी भी प्रकार के नशे-पानी की बुरी आदत नहीं पाई जाती है। तम्बाकू सूंघना और ठाट बाट के साथ रहना ही इनकी बुराइयां मानी जाती हैं। स्त्रियों का ये लोग काफी आदर किया करते हैं। लड़कों और जानवरों के साथ प्रेम और दया का बर्ताव करते हैं।

सहारा में आने जाने के लिये ऊंट सबसे आवश्यक वस्तु है। इसके बिना तो यहां काम ही नहीं चल सकता है। इसमें खास बात यह होती है कि यह बालू के ऊपर बड़ी सरलता से चल-फिर सकता है और जरूरत पड़ने पर कई रोज बिना चारे और पानी के भी चलता जाता है। आजकल इसके स्थान पर मोटरों और रेलगाड़ियों का अधिक प्रयोग होता जाता है। ये चीजें इन स्थानों में काम देने के लिये खास प्रकार की बनाई जाती हैं।

साइनाई, लिबियन और भारत के उत्तरी-पश्चिमी रेगिस्तान सहारा के ही पूर्वी विस्तार हैं। अरब का रेगिस्तान अधिकतर पठारी है जो लाल सागर की ओर ऊँचा और फारस की खाड़ी की ओर नीचा होता जाता है। मध्य और दक्षिण-पश्चिमी के ऊंचे भागों में कुछ जल वृष्टि भी हो जाया करती है। इसलिये यहां पर घोड़े, भेड़-बकरियां भी चराई जा सकती हैं। परन्तु इसका शेष सूखा भाग उजाड़ ही है। बीच में नज्द का पठार कई एक ओसिसों के लिये प्रसिद्ध है और इसी कारण यहां पर घोड़ों की चराई खूब जोरों के साथ की जाती है। दक्षिण-पश्चिम में अमन का प्रायः द्वीप और पठार गेहूँ और फल आदि की खेती के लिये काफी प्रसिद्ध है। मोचा और होदेदा इसके मुख्य बन्दरगाह हैं। इनके अतिरिक्त मक्का, मदीना, अदन और जद्दा इस रेगिस्तान के अन्य प्रसिद्ध स्थान हैं।

अरब के उत्तर-पूर्व ईरान, अफगानिस्तान, बिलोचिस्तान के पठार पाये जाते हैं जिनका अधिकांश भाग रेगिस्तानी है। परन्तु यह उतना गरम नहीं है जितना कि सहारा और अरब यहां के भी बाजारों और ओसिसों में रहने वालों का जीवन सहारा वालों से बहुत कुछ मिलता-जुलता पाया जाता है। ईरान और अरब के मध्य में मैसोपोटामिया या इराक का छोटा सा प्रदेश है जो सहारा के मिस्र देश की भांति दजला तथा फरात नदियों के द्वारा उजाड़ रेगिस्तान से हरे-भरे देश में परिवर्तित कर दिया गया है। इन स्थानों के लोग ससार के अन्य सभ्य और सुशिक्षित लोगों की भांति रहा करते हैं।

पामीर के पठार को पार कर तिब्बत के उत्तर-पूर्व तरीम और मंगोलिया के रेगिस्तान पाये जाते हैं। इनकी प्राकृतिक दशा और यहां के रहने वालों का जीवन बहुत अंशों में सहारा और अरब से मिलता-जुलता है।

उत्तरी अमरीका के कोलिरैडो रेगिस्तान में भी सहारा कीसी दशायें पाई जाती हैं। बनजारों के अतिरिक्त यहां पर कारखानों में काम करने के लिये गोरे लोग भी रहा करते हैं जहां से उनके लिये पानी बहुत दूर से लाया जाता है। इस रेगिस्तान की प्राकृतिक दशा में सबसे अधिक प्रसिद्ध वस्तु कोलोरेडो नदी के अत्यन्त ऊंचे और सपाट किनारे (करारे) हैं जिनके बीच में कहीं कहीं तो यह नदी ६००० फुट नीचे बहती हुई पाई जाती है। यहां का पठार कहीं-कहीं तो ८००० फुट से भी अधिक ऊँचा पाया जाता है। वास्तव में इन प्रदेश की प्राकृतिक सुन्दरता संसार के एक आश्चर्यों में मानी जाती है।

दक्षिणी अमरीका के पीरू तथा एटेकामा रेगिस्तान भी बहुत अशों में सहारा से ही मिलते-जुलते पाये जाते हैं। इनमें से एटेकामा रेगिस्तान शोरे की उपज के लिये संसार भर में प्रसिद्ध है।

दक्षिण अफ्रीका का कालाहारी रेगिस्तान समुद्र के किनारे की एक पतली पट्टी है जिसकी चौड़ाई ३० से ८० मील तक ही पाई जाती है। यह रेगिस्तान हीरों और तांबे की खानों के लिए प्रसिद्ध है। यही कारण है कि यहां गोरे लोग भी अच्छी संख्या में पाये जाते हैं। इसका सबसे प्रसिद्ध नगर वाल्फिश है।

पश्चिमी आस्ट्रेलिया का रेगिस्तान कालाहारी से बहुत कुछ मिलता-जुलता पाया जाता है। यहां पर बिल्कुल सूखे और उजाड़ रेगिस्तान का भाग थोड़ा है क्योंकि इसके लगभग सभी भाग में थोड़ा-बहुत पानी बरस जाता है। हां, यह अवश्य है कि यह पानी बहुत ही कम और अत्यन्त अनिश्चित हुआ करता है। इस रेगिस्तान की सबसे प्रसिद्ध वस्तु वहां की सोने की खानें हैं। जिनके कारण यह रेगिस्तान संसार के और रेगिस्तानों की अपेक्षा अधिक प्रसिद्ध माना जाता है। इनमें कूल गारडी और कार गूरली बहुत प्रसिद्ध हैं।

वर्तमान समय में अरब का देश ६ भागों में बंटा

है। (१) सौदी अरब, (२) यमन, (३) ओमन तथा कुवैत, (४) ब्रिटिश क्राउन कालोनी, (५) अदन, (६) बहरिन द्वीप समूह। इनमें सौदी अरब सब से अधिक प्रसिद्ध है जिसका शासन इब्न सऊद के हाथों में है। इब्न सऊद नज्द और हेजाज का बादशाह है। वह बहाबियों का वर्तमान नेता है और मुहम्मद साहब के वचन पर चलने वाले नवीन अन्दोलन का अगुवा है। इस अन्दोलन के सदस्य इख्वान (भाई) कहलाते हैं। यह लोग हजरत के शब्दों का कड़ाई के साथ पालन करते हैं।

इब्न सऊद एक अच्छा शासक है। वह अपनी जाति को उन्नति की ओर ले जाने में सफल हो रहा है। उसने अपनी जाति के लोगों को एक सूत्र में बांध दिया है। उसके राज्य में आक्रमण करने की मनाही हो गई है। अब वहां के एक समूह वाले दूसरे समूह पर आक्रमण नहीं कर सकते हैं। अभी वहां पर लोग शिक्षित नहीं है। केवल मसजिदों में ही मकतब खुले हैं। परन्तु इसका अर्थ यह कदापि नहीं समझना चाहिये कि अशिक्षित अरब सभ्य संस्कृति वाले नहीं हैं। नज्द अरब जाति का केन्द्र स्थान है और वहां पर शुद्ध अरबी भाषा का प्रयोग किया जाता है।

सौदी अरब राज्य में आधुनिक दवाइयों का प्रयोग होने लगा है। परन्तु चूंकि बस्ती बहुत दूर-दूर पर स्थित है इसलिये वहां के निवासी वह जड़ी बूटियों पर ही निर्भर करते हैं। ऐसपरीन तथा कुनैन दवाएँ पीने में प्रयोग की जाती हैं।

यदि बीच में नील नदी तथा लाल सागर स्थित न होते तो अरब और सहारा के रेगिस्तान एक ही होते। इन रेगिस्तानी लोगों के मध्य बहुत कुछ समानता पाई जाती है।

अरब निवासी स्वयं अपने रेगिस्तान की भांति अपरिवर्तित तथा बिना फैशन वाला है। वह बालू के उन्हीं कणों की भांति अपरिवर्तनशील है जिसके भीतर से उसकी उत्पत्ति हुई है और जिनके मध्य उसकी मृत्यु होगी। अरब निवासी एक असहाय परम भक्त सेवक की भांति प्रकृति के साम्राज्य में अपने जीवन की समस्त कठिनाइयों का सामना करता चला आ रहा है। वह प्रकृति देवी के सामने निराधार तथा असहाय दशा में अपना सिर नीचा किये हुये है। वह रेगिस्तान में शीतल जाड़े के दिनों में, ग्रीष्म की कड़ी धूप तथा गरमी में और बालू के तूफानों में और लगातार वर्षा में इधर-उधर चक्कर लगाता ही रहता है। इसी चक्कर में उसका जीवन समाप्त होता है क्योंकि उसकी जाति ही घूमने-फिरने वाली है।

अरब निवासी सदियों से अपने ऊंट तथा बकरी की खाल के बने हुये खीमें वाले घर में रहता चला आ रहा है। और एक चरागाह से दूसरे चरागाह में घूमता फिरता रहा है। उनका यह तम्बू आयताकार होता है और उसकी एक भुजा मरुस्थल की ओर खुली रहती है। वह अपने खीमें पूर्व की ओर सामना करके लगाते हैं और प्रातः काल पूर्व की ओर वाली तम्बू की दीवारों को गिरा देते हैं। दोपहर के बाद और सन्ध्या के समय पश्चिम की दीवारें गिराई जाती हैं। रात के समय खीमे की सारी दीवारें खड़ी कर दी जाती हैं। अरबी लोग खीमों के भीतर ही सोते हैं।

अरबी लोगों के पास बहुत कम सामान तथा गृहस्थी की सम्पत्ति रहती है। उसके पास तम्बू, कम्बल, दो कड़ाहियां (जिसमें वह चावल तथा मांस पकाते हैं) और कुछ अन्य बर्तन रहते हैं। अरबी के पास पहिनने के कपड़े भी बहुत कम होते हैं। वह गरमी और सरदी से बचने के लिये केवल आवश्यक वस्त्र ही रखता है जिसमें उसका एक लम्बा चोगा होता है जिसे वह कमर में अपनी पेटी से कसे रखता है। इसके अलावा ऊंट के बालों का बना हुआ एक लबादा उसके पास रहता है। सिर पर वह रेशमी या सूती पगड़ी बांधे रहता है जिसे वह काफ्रीयह कहता है।

अरब स्त्रियों के वस्त्र भी बड़े साधारण प्रकार के होते हैं। वे काले रङ्ग के कपड़े तथा बुर्के पहिनती हैं जो सिर से लेकर पैर तक भारी तथा लम्बा होता है। धनी स्त्रियां रेशमी कपड़े भी रखती हैं और उनके पास मक्का, मदीना, दमिश्क तथा बगदाद के बने आभूषण भी होते हैं। अरबी लोगों के सभी ऊनी वस्त्र स्वयं अपने हाथों से कात कर बुने हुये होते हैं।

मिस्री किसान

इराक मिस्र देश का बहुत बड़ा भाग वीरान है। केवल नील नदी के बेसिन और उसके मुहाने की भूमि ही उपजाऊ है। उसके किनारे किनारे यह उपजाऊ पट्टी लगभग १० मील चौड़ी पाई जाती है।

नील नदी में प्रत्येक वर्ष बाढ़ आया करती है। उस बाढ़ के साथ बहुत सी नई मिट्टी जिसे कपुआ कहते हैं जल में आती है। जब बाढ़ का जल घटने लगता है तो यह मिट्टी धरातल पर जम जाती है। यह भूमि बड़ी उपजाऊ होती है।

वहां इतना जाड़ा कभी नहीं पड़ता कि ओले जम जाय। गर्मी के दिनों में बहुत गर्मी पड़ती है। जाड़े के दिनों में वहां बहुत कम जाड़ा पड़ता है। उस जाड़े से शरीर को दुःख नहीं मिलता। उससे सुख ही मिलता है। ओढ़ने के लिए एक हलका सा कम्बल काफी होता है। बहुत से विदेशी लोग अपने देश की बड़ी कठिन सर्दी से बचने के लिए मिस्र जाते हैं। वहां उनको बड़ा आराम मिलता है। उनके शरीर को वहां कुछ गर्माहट भी मिलती है।

वहां पूरे वर्ष भर उन खेतिहर प्रान्तों में जुताई होती रहती है। उसका कारण यह है कि नदी के बेसिन की भूमि होने के कारण उसमें कुछ तरी बनी रहती है और जाड़ा भी इतना नहीं पड़ता कि काम करने में बाधा पहुंचे। इसके अतिरिक्त भूमि तो उपजाऊ है ही। इस प्रकार प्रत्येक भूमि के टुकड़ों से प्रति वर्ष तीन फसलें पैदा की जा सकती हैं।

गर्मी के दिनों में अप्रैल से अगस्त तक मुख्य फसलें रुई गन्ना, मकाई और चावल पैदा की जाती हैं। जाड़े में गेहूं, जौ, मटर आदि तैयार की जाती हैं।

वहां जिस ढंग से जुताई होती है वह बहुत पुराने ढङ्ग का होता है। कई शताब्दियों से उसमें कुछ परिवर्तन नहीं हुआ है। मिस्र के लोगों ने अपने आराम करने के दिनों में हल में सुधार करने का कुछ प्रयत्न किया है।

खेती में जो पहला औजार काम में लाया जाता था वह छड़ी होती थी। फिर किसी प्रकार किसी ने यह पता लगा लिया की छड़ी के समान पर यदि जमीन को खोदने के लिए कुदाली का प्रयोग किया जाय तो जुताई का काम बड़ा सरल हो जायगा।

शायद पहली कुदाली हिरनों के सींगों की बनायी गयी होगी अथवा लकड़ियों के टुकड़ों के एक सिरे पर एक कोण सा बनाता हुआ सींग के टुकड़े को लगा दिया जाता था।

करीब-करीब आधुनिक काल में भी स्वीडन में ऐसी कुदाली का प्रयोग किया जाता था। ऐसे औजार प्रशान्त महासागर में प्राप्त हुए द्वीप 'निव कैलिडोनिया' में काम में लाए जाते हैं।

लोगों ने कुदाली के प्रयोग से अधिक सुविधा खुर्पी में देखी। कुदाली से बढ़ कर खुर्पी तक पहुँचने में उनको बड़ा समय नहीं लगा। खुर्पियां आमतौर से पत्थर अथवा धातु की बनती हैं। किन्तु उस समय ये हड्डी अथवा लकड़ी की बनाई गई होंगी। मिट्टी को तैयार करने में खुर्पी ने बड़ी सहायता की। इसमें केवल एक असुविधा यह थी कि भूमि की ऊपरी पर्त ही केवल उलटी जा सकती थी इसके आविष्कार हो जाने से भूमि की जुताई में बड़ी तेजी से उन्नति हुई। खुर्पी अब भी योरुप, एशिया और अफ्रीका में प्रयोग की जाती है। इसका इतना प्रयोग संसार के दूसरे देशों में नहीं होता।

प्राचीन काल में जब खुर्पी का प्रयोग चल रहा था तो उससे अधिक सुविधा प्राप्त करने के लिए उसके आकार को बड़ा करके हल का रूप दिया गया था। उसमें दो बैल जोत कर उसी प्रकार लोग काम करते थे जिस प्रकार आज कल हमारे देश के हल से काम किया जाता है। इस प्रकार का हल अफ्रीका में भी काम में लाया जाता है। यह हल योरुप के एक या दो हिस्से में थोड़ा सा परिवर्तन करके काम में लाया जाता है। वहां के हल में भूमि खोदने वाला भाग लोहे का रहता है। वह अन्य लकड़ी वाले भाग में लगा हुआ होता है। बहुत साधारण ढङ्ग के जैसे हल हल अभी बहुत समय नहीं बीते हैं हेब्रेडीज़ द्वीप समूह में प्रयोग में लाए जाते थे वैसे ही मिस्र में

अब भी प्रयोग किए जाते हैं। यह हल पूरा का पूरा लकड़ी का बना होता है। मिस्र के इन हलों से जो पतली सी नाली बनती चलती है वह गहरी नहीं होती और भद्दी होती है। यह वहां के लिए एक बड़ी अच्छी बात है। यदि खेतों की जुताई गहराई से की जाय और वह साफ हो तो चमकते हुए सूर्य की गर्मी और बड़ा जाड़ा, रात्रि में चलने वाली रेगिस्तानी सूखी हवा के प्रभाव से मिट्टी इतनी कड़ी हो जाय जितनी पक्की ईंट होती है।

बाढ़ के हट जाने से जमीन काफी उपजाऊ हो जाती है और जलवायु शीतल रहती है। इसलिए वहां भोजन की वस्तुओं की कभी कमी नहीं होती। यदि वहां पानी की कठिनाई न हो तो इसकी कमी कभी होनी भी नहीं चाहिए। किसान लोग अपने खेतों को सींचने के लिए नदियों से पानी खींचते हैं। यह कोई सरल काम नहीं है। शरद काल के प्रारंभिक दिनों में जब नदियों में बाढ़ आ जाती है तब वह गर्मी के प्रारंभ तक बराबर चलता रहता है। इस समय तक बाढ़ घट जाती है और पानी बहुत कम रह जाता है।

यह जान लेना बहुत महत्वपूर्ण है कि जल की पूर्ति की कठिनाइयों को दूर करने के लिए भूत और वर्तमान काल में क्या किया गया है। जब बाढ़ आ जाती है तब पानी को चारों ओर खेतों में भी बहने दिया जाता है। इस जल के साथ उपजाऊ मिट्टी भी बह कर आया करती है। किसान खेतों को मेड़ों से घेरे रहते हैं। जब पानी वहां पहुँच जाता है तो उसे रोक लिया जाता है। जब पानी की पूरी मिट्टी धरातल पर जम जाती है और पानी खेत में जितना सूख सकता है सूख जाता है तो शेष पानी बाहर निकाल दिया जाता है, लगभग छः हफ्ते के बाद मेड़ तोड़ दी जाती है और पानी नदी में वापस चला जाता है।

जब नदी में जल बहुत कम हो जाता है तब वह किनारों से तीस या चालीस फुट नीचे हो जाता है। यदि किसान इसका प्रयोग करना चाहता है तो उसे जल ऊपर उठाना पड़ता है।

वह जल को कभी-कभी शादूफ अथवा ढेकुली से ऊपर उठाता है। एक लम्बी लकड़ी के एक सिर पर चमड़े की मोरी टंगी रहती है और दूसरी तरफ भारी मात्रा में किनारे की मिट्टी चिपका देते हैं। मोरी को रस्सी द्वारा उसी लकड़ी से लटका दी जाती है। उसको हाथ से दबा कर नीचे की ओर जाने देते हैं। वह पानी में पहुंच कर डूब जाती है। इसमें पानी भर जाता है। तब रस्सी छोड़ देने से दूसरी ओर की मिट्टी के वजन से वह मोरी आप से आप ऊपर आ जाती है। उसका जल वहीं हौज में उड़ेल देते हैं। यदि बहुत ऊँचा होता है तो पानी खेत तक पहुँचाने के लिए एक से अधिक चार तक ढेकुली या शादूफ का प्रयोग एक के ऊपर एक करना पड़ता है। यह क्रिया ठीक उसी प्रकार होती है जैसे नीचे तालाब से पानी दुगला के द्वारा यहां खेतों तक पहुँचाने के लिए कई रास्ते बनाने पड़ते हैं। इतने परिश्रम के बाद पानी उस प्यासी भूमि को कहीं मिल पाता है।

कभी कभी सकियह का प्रयोग किया जाता है। यह दांते दार एक पहिया होता है। यह बैल, ऊँट और अन्य जानवर से घुमाया जाता है इसमें मिट्टी के बर्तन एक दूसरे में जोड़ कर लटकाये जाते हैं। जैसे जैसे पहिया घूमता जाता है वैसे वैसे ये नीचे वाले भरे घड़े घूम कर आते जाते हैं और पानी गिरता जाता है। यह क्रिया वर्तमान काल की रहट की भांति होती है।

प्राचीन काल में जब बाढ़ का पानी समाप्त हो जाता था। तब किसान असहाय हो जाते थे। बहुत से खेत सूख जाते थे। उनमें तब तक कुछ नहीं होता था जब तक दूसरे वर्ष फिर बाढ़ का जल नहीं मिल जाता था। कई वर्ष पूर्व एक स्थान पर नदी में एक बांध बांधा गया है। उससे बाढ़ का पानी पूरा बहने नहीं पाता। पानी रोक लिया जाता है। उस बांध में दरवाजे लगे हुए हैं। गर्मी के दिनों में जब खेतों को पानी की जरूरत पड़ती है तब वे दरवाजे खोल दिये जाते हैं। उन दरवाजों से लगी हुई नहरें बनाई गई हैं। जल नहरों के द्वारा खेतों में पहुँच जाता है। इस प्रकार खेती का चक्र पूरे वर्ष भर चलता रहता है।

सन् १६०० और १६०५ ई० के बीच में और भी कई बांध बनवाये गये। इस कार्य को अंग्रेजों ने किया। इनमें सबसे बड़ा बांध अस्वान में बना०

हुआ है। यह ठोस चट्टानों के टुकड़ों से बाँधा गया है इसकी लम्बाई एक मील से भी अधिक है। इस बाँध के कारण नदी में लगभग २०० मील तक पानी बराबर भरा रहता है। इसका पानी भी जब आवश्यकता पड़ती है तब नहरों में डाल दिया जाता है। यह पानी खेतों तक पहुँच जाता है। वहाँ बड़ी नहरें लगभग ८,५०० मील की लम्बाई में बनाई गई हैं। छोटी नहरों और नालियों की लम्बाई लगभग ४५,००० मील है।

खेती के लिये सबसे महत्वपूर्ण जो बात की गई वह खेतों के सींचने के ढंग की खोज है।

मिस्र उन देशों में से एक देश है जो प्रारम्भिक काल में भी सभ्य थे। वहाँ के किसानों की अब भी वही दशा है जो दशा हजारों वर्ष पूर्व थी। एक छोटी सी झोपड़ी ही उनका मकान है। वे मिट्टी से तैयार किए जाते हैं। उनकी छतें चौरस होती हैं। उनमें ढाल बनाने की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती क्योंकि वहाँ वर्षा बहुत कम होती है। इसको पहले नरकुल से पाटते हैं ऊपर से मिट्टी लगा देते हैं। उनमें खिड़कियाँ नहीं होती जिससे भीतरी भाग में भी ढंडक पहुँच सके।

उनके घरों में वर्सी (जिसमें आग रक्खी जाती है) पानी के घड़े, कुछ थोड़े से बर्तन और मिट्टी अथवा ताँबे के लोटे और एक या दो चटाई अथवा स्टूल के अलावा और सामान नहीं दिखाई पड़ता।

घरों के अन्दर अधिकतर जानवर भी उसी प्रकार रहते हैं जिस प्रकार मनुष्य। दोनों एक ही घर में रहते हैं। उनके जानवरों में गधा बकरी, भेड़, मुर्गा, और कबूतर होते हैं।

नदी के दहाने पर ये किनारे एक दूसरे से मिला कर बनाये गये हैं जिससे एक गाँव बन जाता है। इस प्रकार वहाँ की उपजाऊ जमीन को बचाया गया है। तङ्ग घाटियों में रेगिस्तानी बालू को उपजाऊ भूमि से अलग रखने के लिये घरों को एक पंक्ति में बनाया गया है।

कृषि और सभ्यता का सम्बन्ध

जैसा पहले बताया जा चुका है प्रति वर्ष नील नदी में बाढ़ आया करती है। जल के साथ उपजाऊ मिट्टी भी बहुत आया करती है। जलवायु गर्म रहती है। इस लिए यहाँ अनाज की बहुत सी किस्में बहुतायत से पैदा की जा सकती है थीं। भोजन की वस्तुओं की कमी नहीं थी।

मिस्र में जितने लोग निवास करते थे उनकी आवश्यकता से अधिक भोजन पैदा होता था। इस लिये भोजन की वस्तुओं को देश के बाहर भेजा था। इन भोजन की वस्तुओं के बदले में और दूसरी चीजें विदेशों से मगाई जाती थीं। इस प्रकार वहाँ भोजन का व्यापार होता था।

इस व्यापार का लाभ वहाँ के राजाओं को होता था। इससे वे बहुत धनवान हो गए। उनको काफी अवकाश मिलता था। अवकाश के दिनों में वे कला-कौशल सीखते थे।

कला-कौशल की उन्नति के लिए देश को दुश्मनों के आक्रमणों से बचाना बहुत आवश्यक था मिस्र के पूर्व और पश्चिम बहुत बड़ा रेगिस्तान और समुद्र है। इससे बहुत से दुश्मनों से स्वयं नील की रक्षा हो जाती थी। वहाँ बहुत लम्बे अर्से तक शान्ति बनी रही। उन देशों में जहाँ कृषि और सिंचाई होती है, शान्ति खास तौर से आवश्यक है। जिन धाराओं से पानी मिलता है यदि उनको कुछ नष्ट कर दिया गया तो पानी मिलना कठिन हो जायगा और सारी फसल नष्ट हो जायगी। इससे भोजन की सामग्री में कमी आ जायगी। यदि शत्रुओं ने एक बार आकर उन्हें नष्ट कर दिया तो फिर उनको ढंग पर लाने के लिए तथा नहरों और बांध को बनाने के लिये वर्षों लग जाते हैं। इस प्रकार एक आक्रमण का प्रभाव कई वर्षों तक बना रहता है।

जब नील नदी में बाढ़ ज्यादा आ जाती है तो वह फूलकर किनारों के ऊपर भी आ जाती है। इससे किनारों के पास रहने वाले मनुष्यों, जानवरों तथा उनके घरों के नष्ट हो जाने का बड़ा डर रहता है। इस समय वह नदी झील के समान दिखाई पड़ती है। इन बाढ़ों पर भी प्रतिबन्ध करना आवश्यक था। बड़े बांधों का बनाना तथा नहरों को निकालना आवश्यक था। इस कार्य के लिए बड़ी संख्या में मनुष्यों की आवश्यकता थी। कोई व्यक्ति अकेला इस काम को कर नहीं सकता था। जनता को भी एक दूसरे के साथ मिलकर काम करने ढंग सिखाना आवश्यक था। इस प्रकार वहाँ सहयोगिता बढ़ी।

जब तक बाढ़ घटती थी तब एक खेती का अंत होता था और दूसरी खेती का प्रारंभ होता था। वहाँ झाड़ियाँ न थीं। तार न थे। वृक्ष न थे। इसलिए खेत की सीमा बनाना सम्भव न था। कौन सा खेत किस का है? इसका पता लगाना कठिन था। इसलिए उन खेतों के नक्शे तैयार किए गए। इस प्रकार मिस्र वासियों ने भूमि की नाप और मानचित्र का आविष्कार किया। इस कार्य को सफल बनाने के लिये उनको ज्यामिति का आविष्कार करना पड़ा।

बाढ़ से पूरा लाभ उठाने के लिये और उससे भय से बचाने के लिये उनके लिये यह जानना आवश्यक था कि अधिक बाढ़ की सम्भावना कब है। उनमें से कुछ विद्वानों ने देखा कि जब इस प्रकार की बाढ़ आई तो आसमान में ये तारे निकले हुये थे। इसलिये उन्होंने तारों का अध्ययन किया। ज्योतिष विद्या का आगमन हुआ। पूरा वर्ष ३६५ दिनों में बांट दिया गया। कैलेन्डर तैयार कर दिया गया।

उन लोगों को जिन्होंने तारों को भली प्रकार समझ लिया, लोग बहुत बुद्धिमान समझने लगे। लोगों ने उनके अन्दर एक विचित्र शक्ति देखी। वे पुरोहित कहे जाने लगे। उन लोगों ने ऐसे भवन की आवश्यकता प्रकट की जहाँ से वे तारों को साफ साफ देख सकें। अतः मन्दिर बनाये गए। ये मन्दिर पत्थरों के थे। संसार में मिस्र की भवन-निर्माणकला एक ऐसी चीज थी जिससे भवन का निर्माता भी एक विद्वान बन गया।

नक्शों और तारों की सहायता से समुद्रों को पार करना भी सरल हो गया। ईसा मसीह के जन्म के

६०० वर्ष पूर्व ही एक मिस्री जहाजी बेड़ा अफ्रीका के चारों ओर घूम चुका था। मिस्र वासी अच्छे मल्लाह थे।

नदी की बाढ़ का प्रबन्ध करने के लिये लोगों को एक दूसरे के साथ मिलना पड़ा। किन्तु जब लोग इकट्ठा हो जाते हैं तो नेता की आवश्यकता पड़ती है। उनका काम केवल यही नहीं था कि वे देखते रहें की जल अधिक बेकार न हो जाय बल्कि यह भी था कि सभी लोग अपना उचित भाग भी पा जांय। किसी को न तो बहुत अधिक मिल जाय और न किसी को बहुत कम। इन लोगों को कुछ नियम स्वीकार करना पड़ा। कानून के साथ रहने के भी नियम होने हैं। नेता का कर्त्तव्य था कि वह देखता रहे कि इन नियमों का उल्लङ्घन तो नहीं होता। पहले प्रत्येक क्षेत्र में जो नदी का भाग पड़ता था वह उनका समझा जाता था। फिर शासक पैदा हुये। उन्होंने घाटी तथा डेल्टा के अधिक से अधिक भाग पर अपना अधिकार जमाना प्रारम्भ किया औ बादशाह बन बैठे। एक समय वहां दो बादशाह थे। एक घाटी के लिये, दूसरा डेल्टा के लिये। दोनों के सहयोग से अंत में एक ही राजसत्ता थी। इस प्रकार सर्व-शक्तिमान बादशाह की कल्पना का फैलाव पहले मिस्र में हुआ।

इस समय तक समाज का काम बहुत बढ़ चुका था। बांधों और नहरों की मरम्मत आवश्यक थी। काम में लगे हुये मजदूरों को मजदूरी चुकाना था। शासक समाज में व्यवस्था रखता था। लोगों को देना था। इन सब कामों के लिये शासक के भी लिये कुछ धन देना सभी लोगों का कर्त्तव्य था। इस प्रकार प्राचीन मिस्र में लोगों ने सरकार को कर चुकाना सीखा था।

बादशाह अपनी इच्छाओं को सभी मनुष्यों से बताने के लिए सदेश भेजता था। मिस्र वासियों ने कुछ अक्षर बना लिये। उन्ही के अनुसार उन्होंने पढ़ना और लिखना सीखा। जो लोग पढ़ और लिख सकते थे वे सभ्य हो गये। किन्तु, लिखित सन्देश भेजने के लिये कुछ ऐसी चीज चाहिये जिस पर वह लिखा जा सके। मिस्र वालों ने कागज का आविष्कार किया। इसको उन्होंने नील नदी के किनारे उगने वाले नरकुल की लुग्दी से बनाया। इराक में सूखी मिट्टी की तख्तियों पर लोग लिखते थे। सदेशों को मिट्टी के खोलो में बन्द कर दिया जाता था।

वहां भोजन की पूर्ति का बराबर होते रहना निश्चित था। इस लिये लोगों ने अपना बचा हुआ समय औजार छोटे छोटे सामान और कपड़ा की तैयारी में लगाना शुरू किया इस प्रकार एक आदमी और लोगों की अपेक्षा अच्छा लुहार हो गया। इस लिये उसने जुताई बन्द कर दी और हल बनाना शुरू कर दिया। इस प्रकार के मार्ग पर चलकर समाज में श्रम का विभाजन बड़ी सख्या में हो गया। कुम्हारों, लकड़ी काटने वालों, जेवर बनाने वालों, घर बनाने वालो में समाज बट गया। ठीक उसी प्रकार इस में ऐसे लोग भी हो गये जो बादशाह, सरदार, पुरोहित, सिपाही, और सौदागर बन गये। इन मनुष्यों को खेती का काम करना आवश्यक नहीं था। ये शहरों में इकट्ठा होकर बस गये।

सबसे महत्व पूर्ण नगर वहां की राजधानी थी। वर्तमान राजधानी, काहरा, वहीं स्थित है जहां घाटी और डेल्टा एक दूसरे से मिलते हैं। जब घाटी और डेल्टा का बादशाह एक ही होता था तो यही नगर सदा से राजधानी था।

भोजन की वस्तुए ऊँट के काफिलों पर रेगिस्तान के पार भेजी जाती थीं। समुद्र के उस पार माल जहाजों के द्वारा भेजे जाते थे। इतना बड़ा व्यापार अदला-बदली के ढंग पर चलाना बड़ा कठिन हो गया था। इसलिए मिस्र के निवासियों ने सिक्कों का प्रबन्ध किया।

सारांश यह है कि सभ्यता का प्रारम्भ प्राचीन समय में ही मिस्र में हुआ। इराक में दो घाटियां और हैं। वे दजला और फरात के नाम से पुकारी जाती हैं। उनमें भी इस प्रकार गांव बन गए।

व्यापार का प्रारम्भ

खेती के लिये जब हल और सिंचाई की खोज हो चुकी तब उसमें सैकड़ों वर्षों तक धीरे धीरे सुधार होता रहा है। उन्नति की गति बहुत धीमी रही। खेती बड़े पैमाने पर नहीं की जाती थी। इसकी कोई जरूरत भी नहीं थी। अधिकांश देशों में लोग केवल अपनी जरूरत की चीजें ही पैदा करते थे। वे पैदा करते थे, उसे प्रयोग कर डालते थे। जो चीज बाहरी देशों से आती थीं (जैसे मसाला, चाय तथा रुई और कुछ प्रकार के फल) वे बहुत महंगी हो रही थीं।

आज कल हजारों जहाजों में भोजन की चीजें जैसे, शहतीर और लकड़ियां भर कर एक देश से दूसरे देश को भेजे जाते हैं। समुद्र के तल पर जहाज तैरते ही रहते हैं। जो चीज जिस देश में नहीं पैदा होती वह चीज वहां पहुँचाई जाती है। अपनी जरूरत की चीजें जिस देश में वे पैदा होती हैं वहां से मगाई जाती हैं। ये जरूरतें किस प्रकार पैदा हुई? यह प्रश्न इस पाठ से बाहर है। यहां यही बताने की आवश्यकता है कि जब तक बड़े पैमाने की खेती नहीं हो सकती, किसी भी फसल का बड़ा व्यापार तब तक नहीं हो सकता जब तक नीचे लिखी हुई चीजें हो नहीं जाती हैं।—

(१) कुछ लोग अपनी जरूरत से ज्यादा पैदा करें। उनके पास कुछ वस्तुएं बच जाय जिनको वह बेच सके। बचत का होना बहुत जरूरी है। अब भी लाखों आदमी ऐसे हैं, जो केवल उतना ही पैदा करते हैं जितनी उसकी जरूरत होती है।

(२) कुछ व्यक्तियों को इस बचत की चीजों की जरूरत होनी चाहिये। उदाहरण के लिये, इङ्गलैण्ड में मनुष्यों की संख्या इतनी तेजी से बढ़ी कि वे अपने खाने पीने की पूरी चीजें तैयार न कर सके। उनकी मांस और फल की मांग बढ़ गई। उनको चाय, कहवा और नारियल की भी जरूरत पड़ गई। मशीनों और कारखानों की बढ़ती हुई। उनको कच्ची रुई, रबर, रेशम, और बहुत सी दूसरी चीजों के लिये दूसरे देश का मुंह ताकना पड़ा। ये चीजें ब्रिटेन में पैदा नहीं की जा सकती। वहां की जलवायु इनके अनुकूल नहीं है। सारांश यह है कि ऐसे मनुष्यों का होना बहुत जरूरी है जो उन बचत की चीजों को खरीद सकें।

(३) जब मनुष्य मशीनों का प्रयोग नहीं कर सकता और उनको बना सकता तब बड़े पैमाने पर खेती नहीं हो सकती। जब भाप की खोज नहीं हुई तब तक ऐसी मशीनें तैयार हो सकती थीं। इङ्गलैण्ड में, उदाहरण के लिये, कोई भाप की मशीन का हल नहीं था। अब भी वहां कुछ भागों में हलों को घोड़े या बैल खींचते हैं। किन्तु जो किसान अब मशीन चाहे ले सकता है। ये मशीनें या तो भाप से या पेट्रोल से चलाई जाती हैं। इन मशीनों से खेत जोता जा सकता है। उनसे खेत की बुआई हो सकती है। उन्हीं मशीनों के द्वारा फसल मांड़ी भी जा सकती है। किसान अब मोटरों का प्रयोग कर सकता है। उस पर चढ़कर वह खेत के एक हिस्से से दूसरे हिस्से तक जा सकता है। वह अपनी बचत का माल उस मोटर पर लाद कर उसे बाजार ले जा सकता है। वह उससे अपनी फसल ले जा सकता है। आज उसकी सुविधा के लिये टेलीफोन है। वह उस पर बैठे बातें कर सकता है। इस प्रकार वह आसानी से अपना सौदा तै कर सकता है। उसकी सुविधा के लिए आज बेतार का तार है। वह उससे मौसमों के परिवर्तन का हाल जान सकता है।

आज के युग में शहरों में रहने वाले भोजन की चीजें पैदा नहीं करते। वे दफ्तरों, कारखानों में काम करते हैं। किसान मशीनों की मदद से उनके लिये भी भोजन की चीजें पैदा कर सकता है। चीनी लोग बगीचे में अधिकतर अपने कुटुम्ब के लिये भोजन ही पैदा करते हैं। किन्तु प्रेरी और रोच के किसान संसार के लिये भोजन पैदा करते हैं। गर्म देशों के करोड़ों किसानों के पास अब भी बोने और मांड़ने की मशीनें नहीं हैं। उनको मोटर लारी, टेलीफोन, या बेतार के तार की सुविधा नहीं मिली है।

(४) विज्ञान की उन्नति से किसानों को बड़ी मदद मिली है। जब तक रसायन शास्त्र की पढ़ाई शुरू नहीं हुई तब तक नई खादों की खोज नहीं हुई। किसी

को यह नहीं मालूम था कि किस पौदे को किस भोजन की जरूरत है। कुछ लोग अब भी ऐसे हैं जो पेड़ों और पौदों को जलाकर उनकी राख को ही खेतों में बिखराते हैं। इसके अलावा और कुछ नहीं करते।

(५) फालतू उपज को ले जाने के लिये साधन होना चाहिये। इस लिये सड़कों में सुधार करना जरूरी था। रेलों तथा भाप के जहाजों की खोज जरूरी थी। आजकल माल ले आने ले जाने का काम मोटरों से आसानी से और तेज़ी से हो जाता है।

(६) बहुत सी चीजें ऐसी होती हैं जो बहुत दूर नहीं भेजी जा सकतीं। क्योंकि वे जल्द नष्ट हो जाती हैं। उदाहरण के लिए कुछ (जैसे अंगूर, अंजीर) सूख सकती हैं। वे ताजी नहीं रह सकतीं। न्यूजीलैंड और अर्जेन्टाइना से इंग्लैंड में ताजा मांस नहीं पहुँच सकता था। इस कठिनाई को दूर करने के लिए 'कोल्ड स्टोरेज' और फलों, तरकारियों तथा मांस के लिए कैनिंग की खोज की गई। अब हम हजारों मील दूर पैदा होने वाली चीज को बिल्कुल उसके ताजे रूप में प्रयोग कर सकते हैं।

हर प्रकार की खेती, मिट्टी, जलवायु और मनुष्यों की सफलता पर निर्भर है। हम यहां मिट्टी के गुणों पर भी कुछ कहना नहीं चाहते क्योंकि मिट्टी हर जगह उपजाऊ होती है। रेगिस्तान में भी ऐसी मिट्टी मिलती है।

जलवायु बहुत जरूरी है। जलवायु का अर्थ किसी विशेष जगह के तापमान और वर्षा से होता है। तापमान के विचार से कुछ देश बहुत गर्म, कुछ कम गर्म, कुछ साधारण ठंडे और कुछ बहुत ठंडे होते हैं। तापमान के कारण पौदों में बड़ा अन्तर मिलता है। कुछ देश ऐसे हैं जहां इतनी ठंड पड़ती है कि केला नहीं पैदा हो सकता। कुछ देश इतने गर्म हैं कि वहां सेब नहीं पैदा हो सकता।

किसानों के लिए मिट्टी और तापमान से ज्यादा महत्व वर्षा का होता है। बहुत सी मिट्टियों और बहुत से तापमान में कुछ प्रकार के पौदे पैदा हो सकते हैं। किन्तु पानी के बिना कोई चीज पैदा नहीं हो सकती। निस्सन्देह किसान कभी कभी कुओं से या नदियों से पानी ले सकता है, किन्तु यह पानी भी वर्षा से ही मिलता है। वर्षा कहीं कहीं ही होती है। कितनी वर्षा कहां होती है, यह बड़े महत्व का विषय है। पृथ्वी के कुछ भाग में बहुत कम वर्षा होती है। वर्षा किस समय होती है? इसका भी बड़ा महत्व है। कुछ देशों में गर्मी में वर्षा होती है। दूसरे देशों में यह वर्षा जाड़े में होती है। कुछ देश ऐसे हैं जहां हर समय वर्षा होती रहती है।

वर्षा और तापमान के विचार से संसार को कई भागों में बांटा जा सकता है जिनको हम प्राकृतिक कटिबन्ध कहते हैं। इस प्रकार हम गर्म और तर देश, गर्म और शुष्क, एक गर्म देश जहां गर्मी में वर्षा होती है, एक ठंडा देश जहां जाड़े में वर्षा होती है और इसी प्रकार अन्य देशों को भी पाते हैं। इन भूखों में प्रत्येक में अपनी अलग जलवायु है। यह जलवायु कुछ प्रकार के ही पौदों और जानवरों के योग्य होती है। इस प्रकार के बटवारे से जो देश हजारों मील की दूरी पर हैं, यदि उनकी जलवायु सम है तो वही वनस्पति तथा जानवरों को वे पैदा कर सकते अथवा पाल सकते हैं। उदाहरण के लिए नारंगी दक्षिणी योरुप से कैलिफोर्निया दक्षिणी अफ्रीका और आस्ट्रेलिया में ले जाई गई। क्योंकि वहां की जलवायु एक समान है। वहां भी अब वह बड़ी मात्रा में पैदा होने लगी है।

जिन देशों में खेती बड़ी मात्रा में की जाती उनमें हम नीचे लिखी चार बातों में एक या अधिक बातें अवश्य पाते हैं। वे ये हैं:—

(१) जानवरों और भेड़ों का पालना। इसे स्टाक की खेती कहते हैं। जो लोग इस पेशे को करते हैं वे ग्वाले कहे जाते हैं।

(२) डेयरी फार्मिंग—यह एक विशेष प्रकार का पशु पालना है। यहां जो जानवर पाले जाते हैं वे दूध के लिए होते हैं। उनका मांस नहीं खाया जाता। वे केवल चमड़े के लिए नहीं पाले जाते।

(३) फसल की खेती—इस खेती में लोग बड़ी मात्रा में अनाज पैदा करते हैं। यह खेती केवल घर की जरूरतों को पूरा करने के लिए ही नहीं की जाती। यहां संसार के बाजारों के लिए भी चीजें तैयार की जाती हैं। फसलें ऐसी हो सकती हैं जो भोजन के काम-

में लाई जाती है जैसे गेहूँ। कुछ ऐसी भी हो सकती हैं जो कपड़े के लिए काम में लाई जाती हैं जैसे कपास।

(४) मिश्रित खेती—इस प्रकार की खेती में किसान लोग सैकड़ों प्रकार की फसलें पैदा करते हैं। वे कई प्रकार के जानवर भी पालते हैं। इस प्रकार की खेती घनी आबादी वाले देशों के लिए बड़े लाभ की होती है। ऐसे देशों में इङ्गलैंड, योरुप के कुछ देश और कनाडा, तथा आस्ट्रेलिया के कुछ भागों का नाम लिया जा सकता है। यहाँ लोग बहुत घनी बस्तियों में रहते हैं।

ब्रिटेन की खेती

अधिकतर लोग यह सोचते हैं कि ब्रिटेन खेतिहर देश नहीं है। फिर भी वहाँ खेती एक बड़े महत्व का धन्धा है। किन्तु वहाँ इतना भोजन पैदा नहीं होता कि सब के लिए पूरा पड़ जाय।

ब्रिटेन बहुत छोटा देश है। किन्तु यहाँ जलवायु और मिट्टी में बड़ा फर्क है। वहाँ बड़े बड़े शहरों में भी बहुत दूरी नहीं है। उन शहरों में फसल को सरलता से बेचा सकता है। ब्रिटिश द्वीप समूह में पश्चिमी भाग जल से तर रहता है। यहाँ गेहूँ नहीं पैदा होता। वहाँ घास खूब पैदा होती है। इस भाग में जाड़ा कुछ कम पड़ता है। इसलिए पश्चिमी भाग में बहुत से किसान जानवर पालते हैं। अपने खाने के लिए वे जड़ वाले पौधे तैयार करते हैं। देश के मध्य भाग और पश्चिमी भाग में जानवरों का मांस और दूध खूब पैदा किया जाता है। देश भर में इन जगहों से मांस और दूध की पूर्ति की जाती है। जिन दिनों में आने जाने के लिए तेज सवारियाँ नहीं थीं तब इस दूध का मक्खन बना लिया जाता था। अब बड़े-बड़े शहरों में दूध ही भेज दिया जाता है।

ब्रिटिश द्वीपों में जो सूखे भाग हैं वे इतने सूखे और गर्म हैं कि वहाँ भी गेहूँ पैदा नहीं हो सकता है। यह भाग पूर्व में है। किन्तु पूर्वी इङ्गलैंड की भूमि खासकर केन्ट और ईस्ट ऐंगलिया में बड़ी उपजाऊ है। यही स्थान है जहाँ देश का अधिकांश गेहूँ पैदा होता है।

ब्रिटेन में गेहूँ पैदा करने वाले किसानों को दो प्रधान बातों पर ध्यान रखना पड़ता है:—

(१) वहाँ का मौसम बड़ा अनिश्चित है। इसलिए एक किसान अपने सभी खेतों में एक ही फसल पैदा करने की हिम्मत नहीं करता। यदि वह सब खेतों में एक ही फसल बो दे और मौसम खराब हो गया तो वह बर्बाद हो जायगा। यही कारण है कि वह सैकड़ों प्रकार की फसलों को उगाता है। यदि गर्मी के दिनों में वर्षा अधिक हो गयी तो अनाज तो नष्ट ही हो जायगा, किन्तु गायों के लिए घास खूब उगेगी। यदि गर्मी के दिनों में वर्षा अधिक हो गई तो अनाज तो नष्ट हो ही जायगा, किन्तु गायों के लिये घास खूब उगेगी। यदि सूखे मौसम के कारण घास नष्ट हो जाती है तो गेहूँ की फसल बहुत अच्छी तैयार होती है।

(२) एक ही खेत में एक ही फसल अच्छी तरह से पैदा नहीं हो सकती। इसका कारण यह है कि यह फसल उस भूमि से अपनी सारी खूराक खींच लेती है। जिन देशों में किसानों के पास बहुत सी भूमि है वे एक खेत को छोड़ कर दूसरे खेत पर चले जाते हैं। एक सभ्य किसान अपने खेतों में ऋतु ऋतु पर फसल बदलता रहता है। इस बदलने के काम को 'फसल का चक्र' कहते हैं। प्रत्येक किसान अपनी योजना रखता है। किन्तु जो सब किसान करते हैं वह यह है:—

पहले वर्ष—गेहूँ

दूसरे वर्ष—जड़ के पौधे जैसे चुकन्दर आदि

तीसरे वर्ष—जौ, जई

चौथे वर्ष—मटर, सेम

इस प्रकार हम देखते हैं कि ब्रिटेन का किसान मिश्रित खेती करता है। वह जौ शराब बनाने के लिए पैदा करता है। जानवरों को भी जौ खिलाया जाता है

जड़े, रुई, और दूसरी घास आदि भी जानवरों को खिलाई जाती है। वह गेहूं की रोटी खाता है।

खेती का साल अक्टूबर से शुरू होता है। उस समय से पिछले साल की फसलों को खलिहानों में इकट्ठा किया जाता है। केवल जड़ वाले पौदे अब तक तैयार नहीं हो पाते। इन्हीं दिनों में फसल की मड़ाई होती है। इस प्रकार किसान एक ऋतु को समाप्त करता है और दूसरी ऋतु का स्वागत करने लिये तैयार रहता है।

नये वर्ष की तैयारी में उसको जो पहला काम करना पड़ता है वह है खेतों को खुराक पहुँचाना। खाद खेतों में पहुँचाई जाती है। वहां वह बिखरा दी जाती है। इसके बाद खेत जोते जाते हैं। जुताई के बाद खेत को बराबर करने के लिये पटेला चलाया जाता है। तब उसे बोया जाता है।

थोड़े ही दिनों में घास की पत्ती की तरह गेहूँ के पौदे उगते हुये दिखाई पड़ते हैं। जाड़ा आने के पहले वे कुछ ही इञ्च बड़े हो पाते हैं। फिर वसंत ऋतु तक उनका बढ़ना रुक जाता है।

जड़ वाले पौदे नवम्बर में तैयार हो जाते हैं। वे हाथों से उखाड़ लिये जाते हैं। उनको गाड़ी पर लाद दिया जाता है। तब वे खेत के एक कोने में ले जाये जाते हैं। यहां वे इकट्ठे कर दिये जाते हैं। उन्हें कुहरा और वर्षा से बचाने के लिये भूसा से ढक दिया जाता है। इस प्रकार जड़े ताजी बनी रहती हैं। उन्हें प्रयोग में लाया जा सकता है। जाड़े में जब घास नष्ट हो जाती है तब उन जड़ों को जानवरों और भेड़ों को खिलाया जाता है।

जिन खेतों से जड़ें उखाड़ ली जाती हैं, वे वसंत ऋतु तक फिर जौ, जई बोने के लायक हो जाते हैं। जब जड़ वाले पौदे उग आते हैं तो लगभग तीन हफ्ते में उनको निराना पड़ता है। जङ्गली वनस्पतियाँ उखाड़ ली जाती हैं इससे इन जड़ों को पूरी खुराक मिलती है।

जून में किसान अपनी पहली फसल काटता है। यह फसल काटने की मशीन से काटी जाती है। उसे काट कर जमीन पर छोड़ दिया जाता है। जब वे सूख जाती हैं तब गाड़ियों में भर कर उसे ढेर की जगह पर ले जाते हैं। यहां उनको एक ढेर में रख दिया जाता है। उसके थोड़े ही दिनों बाद सूखी घास की फसल तैयार हो जाती है। उसे भी काट लिया जाता है, सुखाया जाता है और फिर ढेर में रख दिया जाता है।

अगस्त में गेहूँ पक कर तैयार हो जाता है। उसे अामतौर से किसान मशीनों से ही काटते हैं। यह मशीन पौदे को जड़ के पास से काटती है। खेत के मजदूर उसका बोझ बांधते जाते हैं। एक हफ्ते के बाद गेहूं बिल्कुल सूख जाता है। उसे अब माड़ा जा सकता है। कुछ किसान इनको उठा कर यों ही रखते हैं और कई महीनों तक वह रखा रह जाता है। किन्तु बहुत से इसे माड़ लेते हैं। माड़ने की मशीन में दाना भूसा से अलग हो जाता है। फिर छाँटकर उसकी तीन श्रेणी बना दी जाती है।

किसान को केवल खेती करने और जानवर पालने का ही काम नहीं है। उसे फसल को बेचने के लिये ग्राहक भी ढूंढ़ना पड़ता है। इसके लिये बाजार लगते हैं। ये बाजार, आमतौर से हफ्ते में एक ही बार लगते हैं। ऐसे बाजार खेतिहर प्रान्तों के शहरों में होते हैं। जानवरों के भी बाजार साथ साथ होते हैं। जानवर बाहर घेरे में खड़े किये जाते हैं। वहां जाकर कोई भी उन्हें देख सकता है और अपना सौदा तय कर सकता है। बाजार में एक बड़ा कमरा होता है। उसमें बेचने वाले अपने माल का नमूना रखते हैं। खरीदने वाले इन चीजों को देखते हैं और जिसे वे पसन्द करते हैं खरीद लेते हैं। अपना कीमत भी यहीं तय कर ली जाती है। तब एक नीलाम करने वाला आता है और जिससे कीमत सबसे ज्यादा मिलती है उसे वह बेच देता है।

अनाज पैदा करने वाले और जानवर पालने वाले किसानों के अलावा फल पैदा करने वाले तथा बाजार में फल बेचने वाले भी होते हैं।

बाजार में फल बेचने वाले बड़े बड़े शहरों के नजदीक रहते हैं। वे तरकारियां भी शहर वालों के लिये पैदा करते हैं। तरकारियों की मांग सुबह होती है। वे ताजी होनी चाहिये। इसलिये वे रात से पहले ही बाजारों में भेज दी जाती हैं। जब दूसरे लोग

विस्तर पर आराम करते हैं और पूरा शहर सोया हुआ रहता है, तब गोभी, शलगम, मटर की फली, सेम और दूसरी तरकारियां शान्ति से शहर में आती हैं। प्रत्येक शहर में फल, फूल और तरकारियों की मंडी होती हैं। इस मंडी में बड़े सवेरे ही बड़ी भीड़ इकट्ठी हो जाती हैं। ब्रिटेन में सबसे बड़ा बाजार लंदन में है। उसका नाम कवेन्ट गार्डेन है।

खजूर

कुछ गर्म देशों में वर्षा इतनी कम होती है कि वहां की जमीन रेगिस्तान बन गई है। पूरे वर्ष में केवल वर्षा की बूंदों की फुहारों की आशा की जा सकती है। जब यह नाम मात्र की वर्षा समाप्त हो जाती है तो चमकता हुआ सूरज फिर तेजी से जमीन और पत्तियों को सुखा देता है। भूमि प्यासी हो जाती है। वह वीरान हो जाती है।

झाड़ियों में रहने वाले, शिकारी तथा अरब के बद्दू लोग बिना खेती किये हुये किसी प्रकार अपना जीवन बिताते ही हैं। जहां वर्षा कम होती है वहां पहले तो यह मालूम होता है कि खेती नहीं हो सकती है। किन्तु बात यह होती है कि जहां पानी बरसता है वहां से वह छन-छन कर रेगिस्तानी जमीन में भी नीचे नीचे आने लगता है। लोगों को पता लग गया कि कुआं खोदने पर हमको पानी मिल सकेगा। सवाल यह था कि पेड़ की जड़ों को यह पानी आप से आप मिल जायगा कि उसे उठाकर उन्हें सींचना पड़ेगा। उन जगहों में जहां पानी मिलता है, बड़ी हरियाली रहती है। यह स्थान बालू के बीच समुद्र में हरा द्वीप सा लगता है। उन्हें लोग ओसिस या नखलिस्तान कहते हैं। ये नखलिस्तान छोटे भी होते हैं कुछ बड़े भी। कुछ तो बहुत छोटे होते हैं। कुछ मीलों तक फैले हुये हैं। उनमें गांव और नगर बसे हैं। इन नखलिस्तानों का मुख्य वृक्ष खजूर है। वहां खरबूजा, गेहूं, जौ आदि फसलें भी तैयार की जाती हैं। जहां घास काफी होती है वहां, ऊंट, भेड़ बकरियां पाली जाती हैं।

इराक में संसार में सबसे अधिक खजूर की पैदावार होती है। दजला और फरात की नीची भूमि इसके लिये बहुत ही अनुकूल है। ये दोनों नदी बसरा को पार करके मिल जाती हैं। इसके बाद फिर एक ही धारा बहती है। उसका नाम शत्तल अरब पड़ गया है! यह २०० मील से भी अधिक दूर तक बहती है। यह जाकर फारस की खाड़ी में गिरती है। इस लम्बे दौरान में यह खजूर के कुंजों के बीच मचलती और इठलाती हुई चलती है।

इराक, सचमुच, एक बहुत बड़ा नखलिस्तान है। नील नदी की घाटी की तरह यहां भी पानी नदी से लिया जाता है। बड़ी बड़ी नहरें निकाली गई हैं। उनसे नालियां निकली हुई हैं। इनके द्वारा पानी पेड़ों और खेतों तक पहुँचाया जाता है। कहीं कहीं पानी ऊपर उठाना भी पड़ जाता है। पानी चढ़ाने का ढंग मिस्र की तरह है। यहां भी 'शादूफ' को ही काम में लाया है। कभी कभी पेट्रोल-पम्प से भी पानी ऊपर उठाकर खेतों तथा बगीचों में पहुँचाया जाता है।

खजूर का वृक्ष एक विचित्र वृक्ष है। यह प्यासा रहता है। उसे सदैव पानी चाहिये। फिर भी यदि वर्षा होती है तो उसे हानि होती है। इस फल का लगना रुक जाता है। यह वृक्ष नदी में स्नान करने वाले एक यात्री की तरह है। जैसे यात्री पानी में घुस जाता है किन्तु सिर को जल में डुबाने से घबड़ाता है उसी प्रकार यह वृक्ष भी चाहता है। इसीलिये अरब वाले कहते हैं कि 'इस की जड़ में पानी और ऊपर आग होना चाहिये।' रेगिस्तान में सूरज ही आग का काम करता है। इराक में इन वृक्षों को कतार में लगाया जाता है। इस प्रकार इसका बगीचा तैयार किया जाता है। कतारों की बीच की भूमि में किसान लोग गेहूँ और जौ पैदा करते हैं। भेड़ें और बकरी को पालने के लिये घास भी रखाई जाती है।

खजूर के कुंजों में अभी बहुत कुछ काम करना शेष है। प्रति वर्ष पुरानी पत्तियां सूख जाती हैं। उन्हें काट देना चाहिये। इस काम को करने के लिये अरब

वाले हँसिया लेकर पेड़ों पर चढ़ते हैं। यह हँसिया एक आरी की तरह होता है। उसी से पत्तियों का मोटा डंठल काट लिया जाता है। वह इन लम्बे वृक्षों पर चमड़े की पट्टियों के सहारे चढ़ता है।

प्रति वर्ष कुंजों के नीचे की जमीन खोदी जाती है। इसकी गहराई एक फुट होती है कुल जमीन के चौथाई भाग को ४ फुट गहरा खोदा जाता है। उसे खाद से पूरा भर दिया जाता है। उस क्षेत्र में पानी ले जाने के लिये नालियों का जाल सा बिछा रहता है। इसलिये हल से जुताई नहीं हो सकती।

वहां अगस्त से दिसम्बर तक फसलें तैयार हो जाती हैं। इसलिये ये दिन खलिहान के दिन हैं। अरब वाले फलों को तोड़ने के लिये एक बार फिर वृक्षों पर चढ़ते हैं। चढ़ने वाला चढ़ते समय वही हँसिया और रस्सी साथ लिये रहता है। यह रस्सी उन्हीं पत्तों के रेशों से बनती है। वह पके गुच्छों को काट लेता है। उसे रस्सी के सिरे में बांध देता है। फिर उसे धीरे धीरे जमीन पर उतार देता है।

इन तीन महीनों में इराक में बीस लाख मन से भी अधिक फल चुन कर इकट्ठा किया जाता है। इस काम में मदद देने के लिये तट और रेगिस्तान से सैकड़ों अरबी वाले आते हैं। बगीचों का मालिक उनके रहने, खाने का प्रबन्ध करता है। घर बनाये जाते हैं। यह घर सूखी मिट्टी से नहीं बनाया जाता है। इसको नरकुलों से इकट्ठा किया जाता है। ये नरकुल नदियों के किनारे किनारे पैदा होते हैं। वे २० फुट तक ऊँचे होते हैं।

अरब के लोग स्वयं इस पूरी फसल का काफी बड़ा भाग खा डालते हैं। किन्तु हजारों टन देश के बाहर भेजा जाता है। वह माल जो पूर्व की ओर भेजा जाता है, या तो बकरियों के चमड़े में या डलियों में भर कर भेजा जाता है। ये डलियां खजूर के डंठलों और पत्तों से बनाई जाती हैं। वह माल जो पश्चिम की ओर योरुप में भेजा जाता है उसे काठ के बक्सों में भर कर भेजा जाता है। इन सदूकों के लिये लकड़ी के पल्ले स्कैंडोनेविया से आते हैं। वहां केवल उनको जोड़ कर तैयार कर लेना पड़ता है।

अंगूर और नारंगी

संसार में कुछ भाग ऐसे हैं जो रेगिस्तान की तरह गर्म और सूखे हैं। किन्तु वे बहुत ज्यादा गर्म नहीं हैं, क्योंकि वे विषवत् रेखा से बहुत दूर हैं। जाड़े के दिन तर रहते हैं। वर्षा की बूंदें पड़ती हैं। फिर भी सूर्य की रोशनी काफी मिलती रहती है। यह सभी भूमि महाद्वीप के पश्चिमी तट पर मिलती है। इस प्रकार की जलवायु भूमध्य सागर के चारों ओर देशों में मिलती है। इस लिये संसार में जहां कहीं इस तरह की जलवायु पाई जाती है उसको 'भूमध्य सागरीय जलवायु' कहते हैं।

ऐसी जलवायु फलों को पैदा करने, उनको बढ़ाने और पकाने में बड़ी सहायक है। इन्हीं 'भूमध्यसागरीय' देशों में ही लगभग पूरी नारंगी, मुनक्का, किशमिश, सूखा बेर, अंजीर, लीची और अंगूर पैदा होते हैं। ऐसी जलवायु जहां कहीं मिलेगी वहां कोई अन्तर न मिलेगा। इसलिये एक स्थान में पैदा होने वाला फल संसार में उसी जलवायु वाले देश में कहीं भी पैदा किया जा सकता है। जो फल स्पेन में पैदा होता है उसे लेजा कर दक्षिणी अफ्रीका, कैलीफोर्निया और आस्ट्रेलिया में पैदा किया जा सकता है। अंगूर के बन्डल को देखो। तुम उसके कागज को देखते ही पहचान जाओगे कि यह किस देश से आ रहा है।

नारंगी

नारङ्गी पैदा करने के लिये उनके बगीचे लगाये गये हैं। यहां पेड़ एक कतारमें लगाये जाते हैं। दो वृक्षों का फासला लगभग २० फुट का होता है। एक बड़े आश्चर्य की बात यह है कि अधिकतर नारंगियां नीबू के पेड़ों में पैदा की जाती हैं। नीबू के बीज पहले बरतनों या सदूकों में बोये जाते हैं। लगभग चार साल के बाद पौदों को बगीचों में लगाया जाता है। चार साल के बाद उनका कलम कर दिया जाता है। यह कलम किसी सुन्दर नारंगी के वृक्ष की डाल से बांध दिया जाता है। कुछ समय में वे जुड़ जाते हैं फिर उस डाल को उस वृक्ष से अलग कर देते हैं। इस प्रकार नारंगी वाला भाग आगे बढ़कर फूलता फलता है।

योरुप में नारंगी के बगीचों में मार्च में काम शुरू होता है। इस समय तक वे लोग अपने खेतों में अथवा बगीचों में कुछ किस्म की खाद छोड़ देते हैं। यह मिट्टी में मिल भी जाती है। जब पेड़ छोटे रहते हैं तब इतना काम छोटे हलों से कर दिया जाता है। जब ये वृक्ष ८ या १० फुट के हो जाते हैं तब घोड़े, बैल कतारों के बीच से नहीं जा सकते। इसलिये उस समय भूमि की खुदाई फावड़े से की जाती है। उसी समय तमाम क्यारियां बना दी जाती है। प्रत्येक वृक्ष अपने थाले में खड़ा रहता है।

मौसम सूखा रहता है। इसलिये वृक्षों को सींचना पड़ता है। पहाड़ियों से बहुत सी नदियां बहकर आती हैं। इन नदियों से ही सिचाई के लिये, पानी लिया जाता है। इसके लिये नहरें और नालियां खोदी जाती हैं। गर्मी के दिनों में प्रति दसवें दिन इन बगीचों को पानी से भर दिया जाता है। गर्मी के प्रारंभ में वृक्षों की छंटाई की जाती है। उनमें से काफी लकड़ी काट ली जाती है। इससे सूर्य की रोशनी डालों के बीच से छनकर भूमि तक पहुँच जाती है। फल जाड़े के दिनों में पक कर तैयार होते हैं। उस समय फल के भार से शाखाएं झुक कर जमीन चूमने लगती हैं। एक अच्छे पेड़ में लगभग १००० फल लगते हैं। सभी वृक्षों में ऐसा मालूम होता है कि उतने ही फल लगे हैं जितनी उसमें पत्तियां हैं। फल जब वृक्षों में ही लटकते रहते हैं तभी उन्हें सौदागरों के हाथ बेच दिया जाता है। खरीदने वाला तब उन फलों को तोड़ने के लिए स्त्रियों, पुरुषों और बच्चों को भेजता है। फलों को तोड़ कर प्रत्येक वृक्ष के नीचे एक ढेर लगा दिया जाता है। तब लड़के उन्हें इकठ्ठा करते हैं। इसके बाद गधों अथवा खच्चर की गाड़ियों में भर कर उन्हें शहर के भण्डार घर में लाते हैं। यहां फलों को टिश्यू कागज में बांध दिया जाता है। इन बंडलोंको काठ के बक्सों में भर कर बन्द कर दिया जाता है। इसके बाद बन्दरगाहों से उन्हें जहाजों में भर कर बाहर भेज दिया जाता है।

अंगूर

अंगूर का प्रयोग तीन प्रकार से किया जाता है। इसको लोग ताजा खाना पसन्द करते हैं। इसको सुखाकर किशमिश बनाई जाती है। इससे शराब बनाई जाती है। इसकी लता की जड़ बहुत गहराई तक जाती है। यह इतना नीचे जाती है कि सूखे और गर्म मौसम में भी वह जमीन की नमी से अपनी प्यास बुझा लेती है। जहां भूमध्यसागरीय जलवायु मिलती है या गर्मी में नमी और जाड़े में वर्षा की फुहार मिलती है वहां हर जगह अंगूर पैदा होता है। अंगूर की उपज के लिए स्पेन और पुर्तगाल बहुत ही प्रसिद्ध हैं। यहां की पूरी उपज का लगभग दसवां भाग शराब में बदल दिया जाता है।

अंगूर की लताएँ कतारों में लगाई जाती हैं। लताओं के बीच में किसान लोग सेम, आलू और जैतून के पेड़ लगाते हैं। वे कुछ क्यारियां बनाते हैं। उनमें गेहूँ पैदा किया जाता है। इसके मजदूर बहुत गरीबी के दिन काटते हैं। उनके घर बहुत गरीबों की तरह होते हैं। वे केवल इतना कपड़ा पहनते हैं कि जिससे कुहरा के दिनों में भी उनके शरीर की गर्मी बनी रहे। उनका भोजन भी बहुत साधारण है। पुर्तगाली मजदूर तट पर पाई गई मछलियों का जल पान करते हैं। उनके भोजन में सेम, आलू और उनका रम चावल के भोजन में शामिल रहता है। उसके साथ-साथ जैतून का तेल और शराब भी शामिल रहता है।

अंगूर की खेती में किसानों के लिए पूरी वर्ष भर बड़ा काम रहता है। वे दिन भर लताओं के बीच में काम करते हैं। केवल गर्मी के दिनों में उनको कुछ थोड़ा सा आराम मिलता है। भूमि को गोड़ने की जरूरत पड़ती है। खुर्पी अथवा कुदाली से यह काम किया जाता है। जनवरी के महीने में लताएँ छांटी जाती हैं। गर्मी के दिनों में उसकी सैकड़ों शाखाएँ निकलती हैं। ये सभी छंटाई के समय छांट दी जाती हैं। केवल दो शाखाएँ बढ़ने के लिए छोड़ दी जाती हैं। जो कुछ छांटने पर लकड़ी मिलती है उसे जलाने के काम में लाया जाता है। जब लताओं की शाखाएं बढ़ती हैं तब वे तार से मिला दी जाती हैं। इस प्रकार अंगूर के गुच्छे को हवा और प्रकाश बराबर मिलता रहता है। लताओं पर बराबर फुहार किया जाता है जिससे वह बीमारी से बचा रहे। दिसम्बर के महीने में किसान लोग जैतून को तोड़ने और उसको पीसकर जैतून का तेल निकालने में लगे रहते हैं।

अंगूर अक्टूबर के महीने में तोड़ने लायक हो जाते हैं। उस समय सभी लोग इसको तोड़ने में लगते हैं। इस काम में सहायता देने के लिए पड़ोस के जिले से भी मजदूर आते हैं। इस समय औरतें रङ्ग बिरंगी पोशाक पहनकर अंगूरों को काटने आती हैं। पुरुष उन गुच्छों को शराब बनाने के कमरे में पहुँचाते हैं। यहां बड़ी खुशी छाई रहती है। अंगूर एक बड़े पत्थर के हौज में निचोड़े जाते हैं। पुरुष और स्त्रियां इसको पाकर मस्त हो जाते हैं। वे गाते हैं, नाचते हैं। वे एक दूसरे के मीठे गान सुनकर, उनका नृत्य देखकर प्रसन्न होते हैं। फिर घुटने टेक कर उसका रस गले की नीचे उतारते हैं। यह देखने लायक होता है। आजकल रस को निचोड़ने के लिए कहीं-कहीं मशीनों का भी प्रयोग होता है। किन्तु अधिकतर अब भी अंगूरों को पैर से ही दबा कर रस निकाला जाता है।

रसों को नलों के द्वारा चुआया जाता है। यह शराब तैयार हो जाती है। फिर इनको बैलगाड़ियों में भरकर नाव पर पहुँचाया जाता है। यह बन्दरगाह पहुँच कर बाहर भेज दिया जाता है।

अंगूरों के जो छिलके शेष रह जाते हैं वे फेंके नहीं जाते हैं। किसान उन्हें रख लेते हैं। उन्हें मुर्गियों और अन्य जानवरों को खिलाया जाता है।

सेब और सोयाबीन

सेब

इङ्गलैंड की तरह ठंडे देशों में सेब की तरह कुछ मुख्य फलों के बगीचे लगाए जाते हैं। सेब के अलावा वहां नाशपाती बेर और कई प्रकार की बेरियां पैदा होती हैं। इङ्गलैंड में सेब बड़ी मात्रा में पैदा होता है। किन्तु इतना ज्यादा नहीं होता कि सब मनुष्यों की जरूरत उससे पूरी हो सके। इसलिए बहुत सा भाग बाहर से मङ्गाना पड़ता है। प्रति वर्ष सेब की पचास हजार टोकरियां अटलांटिक महासागर के पार कनाडा के नोवास्कोशिया से मङ्गाई जाती हैं।

नोवास्कोशिया के पश्चिम की उपजाऊ घाटी में सेब के प्रधान बगीचे लगाए गए हैं। यह घाटी लम्बी और तङ्ग है। यह घाटी फन्डी की खाड़ी के समानान्तर है। दूसरी ओर पर्वतों की दीवाल सी बनी हुई है। इससे उन बगीचों की रक्षा हो जाती है। वहां के किसान अंग्रेजों की ही सन्तान हैं। इसलिए वे बहुत कुछ ब्रिटिश किसानों की भांति ही रहते हैं। उसी प्रकार काम भी करते हैं। जलवायु में अन्तर है। यहां जाड़ा काफी दिनों तक पड़ता है. वे दिन बहुत ठंडे होते हैं। लगभग तीन महीने जमीन पर बर्फ जमी रहती है। यहां किसान लकड़ी के बङ्गलों में रहते हैं। ये मकान बहुत कुछ कनाडा के मकानों से मिलते जुलते हैं। ये मकान गर्म पानी के नलों और रेडियेटर से गर्म किए जाते हैं। यहां गर्मी भी पड़ती है। इस समय कुटुम्ब के लोग घर के बाहर हवादार और छायादार बरामदे में बैठते हैं।

सेब अधिकतर छोटे होते हैं। ये प्रेरीज के बड़े बड़े गेहूं के खेतों के बिलकुल विपरीत हैं। उन खेतों में किसान कनाड़ी को पैदा करता है। अपने प्रयोग के लिए गाय और मुर्गियां भी वे रखते हैं। उनका मुख्य पेशा सेब पैदा करना है। वे सेब को विदेशों में भेजते हैं। यदि बगीचा बड़ा हुआ तो उसमें किसानों को पूरे वर्ष भर काम रहता है।

जाड़े के दिनों में पुरुष सीढ़ियों पर चढ़ कर पेड़ों की भीतरी डालें छांट देते हैं। इससे भीतर तक हवा और रोशनी पहुँचती है।

बसन्त ऋतु में बर्फ गल जाती है। जमीन पर खाद बिखरा दी जाती है। फिर पेड़ों की कतारों के बीच की जमीन को जोता जाता है। इससे जमीन पलट जाती है। इस प्रकार नमी और हवा जड़ तक पहुँच जाती है। जब जमीन की जुताई अच्छी तरह हो जाती है, तब घास बो दी जाती है। इससे मिट्टी उपजाऊ बनती है। इसके फूल से मधुमक्खियां शहद इकट्ठा करती हैं। किसान कुछ शहद की मक्खियों को पालते भी हैं। ये मक्खियां एक सेब के फूल का रस ले जाकर दूसरे पर डालती हैं। इससे फलों की अच्छी पैदावार होती है।

बसन्त ऋतु में भी पेड़ों पर फुहार की जाती है। यह फुहार एक दवा की होती है। इससे हानि पहुँचाने वाले कीड़े मर जाते हैं। एक बगीचे में सैकड़ों पेड़ों पर फुहार करने में बड़ा समय लगता है। इस काम को और सरल बनाने के लिए मोटर पम्प का प्रयोग किया जाता है। यह दृश्य विचित्र है। यह फुहार गर्मी के दिनों में भी दी जाती है।

मई के महीने में पेड़ों में फूल लग जाते हैं। बगीचा बहुत सुन्दर लगने लगता है। किसान लोग ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि वह मौसम को सुन्दर बनावे।

सितम्बर के महीने में सेब पक कर तैयार हो जाते हैं। तब किसानों का बड़ा काम पड़ता है। इस समय बहुत से मछुए समुद्र तट छोड़ देते हैं। वे घाटी में चले आते हैं। स्कूलों में लड़कों को लम्बी छुट्टी मिल जाती है। इससे वे भी काम में बड़ी सहायता कर देते हैं। फलों को तोड़ने के लिए शाखाओं में सीढ़ियां लगा दी जाती हैं। फल तोड़नेवाले इन सीढ़ियों पर चढ़ कर फल तोड़ते हैं। वे फलों को बटोरते हैं और उन्हें टोकरियों में भरते हैं। प्रत्येक टोकरी में खास भीट फल भरा जा सकता है। जब टोकरियां भर जाती हैं तब तोड़नेवाले नीचे उतरते हैं। उन टोकरियों को वे गाड़ी में रख देते हैं। जब

गाड़ियाँ भर जाती हैं तब छाँटने वाले उन्हें घर में पहुँचा देते हैं। वहाँ प्रत्येक सेब की जाँच की जाती है। जो फल खराब होते हैं वे फेंक दिए जाते हैं। अच्छे फलों को हाथ से या मशीन से तीन ढेरों में छाँट लिया जाता है। वे अलग-अलग बरतनों में भर दिए जाते हैं। इस राशि का काम लगभग दो महीने तक चलता रहता है। नये वर्ष के शुरू में भी काम करने वाले फलों को छाँटते, बाँधते और उन्हें होशियारी से पैक करते रहते हैं।

पैकिंग घर से वे भरे हुए बक्स हैली फाक्स लाए जाते हैं। यह नोवास्कोशिया का मुख्य बन्दरगाह है। वहाँ उनको जहाजों में भरकर लिवरपूल लन्दन, या साउथम्पटन के लिए रवाना कर दिया जाता है।

सोयाबीन

एशिया के पूर्व में एक देश है। इसे मचूकिओ (मचूरिया) कहते हैं। यह विषुवत रेखा से इतना दूर है जितना नोवास्कोशिया है। इसकी जलवायु भी उसी के समान है। गर्मी के दिनों में गर्मी और वर्षा होती है। जाड़े के दिनों में बड़ी सर्दी पड़ती है। यहाँ लगभग ५ महीने बर्फ की एक पतली परत पड़ी रहती है। नदियों में दो या दो से ज्यादा फुट मोटी बर्फ पड़ जाती है।

मंचूकियो का बड़ा भाग पहाड़ी है। फिर भी वहाँ बहुत उपजाऊ जमीन है। इससे वह देश खेतिहर बन जाता है। मुख्य फसल ज्वार है। दालों में सोयाबीन यहाँ बहुत पैदा की जाती है। यहाँ के किसान अधिकतर चीनी लोग हैं। वे चीन से आकर मचूकियो में बस गये हैं।

चीन की जनसंख्या बहुत घनी है। किसानों को देश की भीतरी लड़ाइयों और बदमाशों से बड़ा कष्ट होता है। इसलिये बहुत से किसान परेशान होकर उत्तर को चले गये। वे मचूकियो का उपजाऊ मैदान देखकर वहीं बस गये। वे सब घास के मैदानों में जाकर बसे। धीरे-धीरे उनको तोड़ कर उन्होंने खेत बना लिया। उनको खेत दिया गया। उनके रहने के लिये गाँवों की जगह बता दी गई। पहले वर्ष में उनको काफी सुविधा दी गई। प्रायः सभी जरूरत की चीजें उन्हें दी गई थीं। किन्तु अपना घर उनको खुद बनवाना था। उन्होंने ईंटे बनाई। सूर... की गई। शहतीर की लकड़ियाँ... उन्होंने घर का बाकी भाग पूरा... लकड़ी के हल और उसको खींच... खच्चर या बैल दिये गये।

ज्वार भोजन के लिये बड़ी मात्रा... जाती है। पौधे बरबाद नहीं किये... लम्बी पत्तियों से चटाइयाँ या बोरे... हैं। डंठल खेतों के चारों ओर या छ... दिये जाते हैं। जड़ों को उखाड़ लिया जा... जलाया जाता है।

सबसे महत्व की फसल सोयाबीन है... खाना पकाने और जलाने के लिये कीमती तेल... किया जाता है। इससे खाद भी तैयार होती है... खाद जापान में बड़ी संख्या में भेज दी जाती... दूसरे देशों में इसे पीस कर आटा बना लिया जा... है। इससे रोटी तैयार की जाती है। या तो उ... भून लिया जाता है और कहवा के बीज की तरह बेचा जाता है। इसका तेल मशीनों में भी काम आता है। यह रंगाई स्याही, साबुन और वाटरप्रूफ में भी काम में लाया जाता है। प्रति वर्ष हजारों टन सोयाबीन बाहर भेजा जाता है।

किसानों के पास खेत बहुत छोटे हैं। उनमें लोग हाथों से ही काम करते हैं।

बसंत ऋतु में जब बर्फ गल जाती है तब किसान भूमि को जोतना शुरू करते हैं। जुताई समाप्त होने पर एक आदमी आगे हल चलाता है और पीछे एक आदमी बीज बोता है। उसके पीछे एक आदमी खाद की डलिया लिये रहता है। उसे बीज के चारों ओर डालता चलता है। जब बुआई खतम हो जाती है तब पत्थर के बेलन से मिट्टी को दबा दिया जाता है। यहाँ चीनियों ने अपनी-अपनी खेती बड़ी होशियारी से करना शुरू किया।

गर्मी के आखिर तक इस दाल के पेड़ लगभग दो फुट बढ़ जाते थे। अब तक उसमें फली लग जाती हैं। प्रत्येक फली में दो या तीन दाने लगते हैं। जब इन फलियों में गर्मी लगती है तब वे खुल जाती हैं। तब किसान पौधों को उखाड़ लेता है। उनका गट्ठर

बना लेता है। फिर उन्हें खलिहान में ले जाता है। खलिहान किसी कड़ी ज़मीन को बराबर करके लगाया जाता है। यहां फसल को पीट लिया जाता है। फली के टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं। दाने फलियों से निकल कर इकट्ठे हो जाते हैं। डंठलों को इकट्ठा कर लिया जाता है। वह जाड़े में जलाने के काम आता है। दानों को बोरे में भर कर घर में पहुंचा दिया जाता है।

किसान स्वयं इस बीज को कई प्रकार से बड़ी मात्रा में खा डालता है। वह उन्हें उबाल कर या दाल बना कर खाता है। उससे शराब भी चुआई जाती है। उसका दही भी बनाया जाता है। यह क्रीम की पनीर का तरह दिखाई पड़ता है। अधिकांश फसल बाहर भेज दी जाती है।

दानों को गाड़ियों में भर कर रेलवे स्टेशन तक पहुँचाया जाता है। सड़क बहुत खराब है। इसलिये यह काम बड़ा कठिन है। गर्मी के दिनों में गाड़ी खींचने वाले घोड़ों को दलदल में डूब जाने का डर रहता है। जाड़े में यात्रा करना सरल है। इस समय बर्फ के कारण सड़कें बहुत कड़ी रहती हैं। प्रत्येक गाड़ी में ज्वार के बोरे, कुत्तों के चमड़े ज्वार के डंठल के बोझ और सोयाबीन के बोरे लदे रहते हैं। सब सामान को पत्तियों की चटाई से ढक दिया जाता है। गाड़ी के दोनों ओर दो सुअर भी बांध दिये जाते हैं।

रेल्वे स्टेशन पर दाल को रेल में भर दिया जाता है। फिर वह डेरियन के बन्दरगाह पर पहुँचाय जाता है। यहां बहुत सा बीज मिलों में पेर दिया जाता है। उसका तेल निकल आता है। तेल को ले जाने वाले विशेष जहाज होते हैं। उनमें वह भर कर बाहर भेजा जाता है। इस समय डेरियन का दृश्य बड़ा सुन्दर हो जाता है। कई एकड़ भूमि में बीज के बोरे ही दिखाई पड़ते हैं। गिरे हुये बीज एक बड़ी टोकरी में भर लिये जाते हैं। उस फली की रोटियां बनाई जाती हैं। ये रोटियां इतनी बड़ी होती हैं जितना मोटरकार का पहिया। जहाजों में यह सब भर कर योरुप भेज दिया जाता है। वहां फली चक्की में पेर डाली जाती है। रोटियों को जानवरों को खिलाया जाता है। तेल का प्रयोग साबुन बनाने में किया जाता है।

नारियल

नारियल के वृक्ष जहां पैदा होता है वहां के लिये बहुत लाभदायक होता है। वृक्ष के तने घर बनाने के काम आते हैं। इसकी पत्तियां छत पाटने के काम आती हैं। पत्तियों के बीच का डंठल घेरा बनाने और आग में जलाने के काम आता है। नारियल के चारों ओर जो रेशे लगे होते हैं वे रस्सी बनाने के काम आते है। फल के बाहर की जो खोपड़ी निकलती है उससे प्याले, कप बनाये जाते हैं या उन्हें जला दिया जाता है। उसके भीतर दूध भरा रहता है। उसे लोग पी लेते हैं। उसका गूदा खाने के काम आता है।

नारियल का तेल बड़ा लाभदायक है। इस तेल से नारियल का मक्खन साबुन, मोमबत्ती और स्नो आदि बनाया जाता है।

नारियल पैदा करने वाले मुख्य देशों में लंका का नाम सबसे पहले लिया जाता है। उसके बहुत से भाग में उसके अनुकूल जलवायु पाई जाती है। उसके बगीचे देश के दक्षिणी पश्चिमी भाग में हैं। यह प्रदेश सबसे अधिक तर है। वर्षा बराबर होती रहती है। *उसके वृक्ष फलों से पैदा होते हैं।* वे जब छः सात साल के हो जाते हैं तब फल देने लगते हैं। ये वृक्ष ८० वर्ष से लेकर १०० वर्ष तक फल देते रहते हैं। इसके बाद सूख जाते हैं। जब वे छोटे रहते हैं तब उनकी बड़ी रक्षा की जाती है जमीन गोड़ी जाती है। विभिन्न प्रकार की खाद उनमें डाली जाती है। जङ्गली पौधों को निकाल कर बाहर कर दिया जाता है।

बगीचे का मुख्य काम फलों को काटने के समय होता है। *यह काम फल के पकने से पहले करना पड़ता* है। काटने वाले पेड़ पर चढ़ते हैं। वे पेड़ के चारों ओर घूम कर देख लेते हैं कि कोई काम बाकी तो नहीं बच गया है। फलों को जब तोड़ लिया जाता है तब उन्हें कुल्हाड़ी से काटा जाता है। काटने के बाद खोपड़ी के ऊपर के रेशे हाथ से नोच लिये जाते हैं।

फलों को काट कर गूदा निकाल लिया जाता है। उन्हें धूप में या आग में सेंक कर सुखाया जाता है। उससे तेल निकालने के लिये गूदे को कोल्हू में पेरा जाता है। इस प्रकार तेल निचोड़ा जाता है। गूदे को गरी कहते हैं। गरी को बोरों में भर कर विदेश भेजा जाता है। किन्तु बहुत कुछ भाग लङ्का के कारखानों में ही पेर डाला जाता है। जो उसकी खली निकलती है उसे जानवरों को खिलाया जाता है। उससे खाद भी बनाई जाती है। उसकी पाव रोटियां बना कर विदेशों में भेज दी जाती हैं। ये रोटियां जानवरों को खिलाई जाती हैं।

लङ्का वाले सभ्य हैं। उन्हें सिंघली कहते हैं। उनके पास लिखने पढ़ने की भाषा है। उनके पूजा के लिये सुन्दर मन्दिर हैं। वे धातुओं के काम भी जानते हैं। इसका कारण यह है कि वे पश्चिमी अफ्रीका वालों से अच्छे [illegible] हैं। नारियल के बगीचे छोटे होते हैं। इसलिये उनके मालिकों को अपना पेट पालने के लिये दूसरा धन्धा करना पड़ता है। कुछ लोग मछली मारते हैं, कुछ चावल की खेती करते हैं कुछ लोग रेलवे में काम करते हैं, या यदि पढ़े लिखे हुये तब वे क्लर्क, डाक्टर या वकील होते हैं। *इन नारियल के बगीचों के अलावा उनके पास* फुलवाड़ी भी होती है। उनमें केला के पेड़ अधिक दिखाई पड़ते हैं।

बगीचों के पास ही घर बने होते हैं। सड़क उनसे नजदीक ही रहती है। सबसे साधारण घर एक एक दर्जे के बराबर ऊंचा होगा। उसके चारों ओर सफेदी पुती रहेगी। *उसकी छतें नारियल के पत्तों की* बनी होंगी। किन्तु मकान मालिक अधिकतर घटिया की छत बनाना पसन्द करते हैं। उसके बाहर की ओर एक बरामदा होता है। यहां लोग बैठते उठते हैं। *यहीं लोग खाना भी खाते हैं।* जो बहुत गरीब होते हैं उनके बच्चे भी यहीं सोते हैं। भीतर की ओर कम से कम दो कमरे होते हैं। एक कमरे में खाना बनाया जाता है। उसी में सारा सामान भी रखा रहता है। दूसरे में लोग सोया करते हैं। उनके पास लकड़ी के सामान बहुत कम होते हैं। इसका कारण यह है कि अधिकतर लकड़ियों को कुछ कीड़े खा जाया करते हैं। मां और बच्चा एक बिस्तर पर सोते हैं। *शेष कुटुम्ब के लोग पत्तियों की चटाई को जमीन* पर बिछा कर सोते हैं

जहां नारियल के बगीचे लगाये जाते हैं वहां बहुत सी जनसंख्या रहती है। इसलिये बहुत से नगर और ग्राम पाये जाते हैं। प्रधान सड़क पर दुकान सजाई जाती हैं।

अधिकांश बगीचों में सिंघली लोग स्वयं काम करते हैं उनका प्रबन्ध गोरे लोग नहीं करते जैसा वे जमैका में केले के बगीचों का करते हैं। किन्तु उन्होंने नारियल का बाजार खोज दिया है। वे गरी खरीदते हैं।

ब्रिटिश-गायना के इन्डियन

अभी तक हम उन देशों पर विचार करते आये हैं जहां खेती के कारण ही सभ्यता पैदा हुई और बढ़ आगे बढ़ी। वहां पहले मिट्टी खोदने वाले ही सभ्य बने। अब हम उन देशों पर भी विचार करें जहां का प्रारम्भिक पेशा खेती ही था, किन्तु वे अब भी बहुत गरीब हैं और अपनी जिन्दगी बहुत गिरी हुई दशा में बिताते हैं। इसका कारण यह हो सकता है कि वहां की जलवायु या मिट्टी अच्छी फसल को पैदा नहीं कर सकती। इसलिये वे फसलें व्यापारियों और अन्य वर्ग के लोगों से दूर ही रहीं जिससे किसान उनके सम्पर्क में न आ सके।

उदाहरण के लिये ब्रिटिश गायना के जङ्गलों में बहुत से लाल वर्ण वाले 'रेड इंडियनों' के कुटुम्ब रहते हैं। वे जिस प्रकार शिकार खेलते हैं और मछली पकड़ते हैं उसी प्रकार खेती भी करते हैं। फिर भी वे बहुत पिछड़े हुये हैं। वहां की जलवायु गर्म और तर है। वे लोग वर्ष के बहुत समय तक जङ्गलों और तटीय दलदलों के कारण शेष संसार से बिल्कुल अलग रहते हैं।

वहां उनके विषय में कुछ बातें जान लेना जरूरी हैं:—

(१) वे लोग अब पूरे शिकारी और मछुये हैं। वे अन्य शिकारियों की भांति अपना भोजन पकड़ लेने में बड़े होशियार हैं। वे कुत्तों को पालते हैं। उन्हें खूब सिखाते हैं। उन दक्ष कुत्तों की सहायता से जङ्गली सुअरों, हिरनों को पकड़ लेते हैं। वे अपने तीर कमान से उनका अन्त कर देते हैं। ये मछलियों को जालों से पकड़ते हैं। इन जालों को ये ताड़ की पत्तियों के रेशों से बनाते हैं। मछलियों को भी तीर कमान से ही मारते हैं। कभी-कभी वे सारे जल में इतना जहर मिला देते हैं कि मछलियां व्याकुल हो कर जल के ऊपर आ जाती हैं।

वास्तव में वे इतने चतुर हैं कि कभी-कभी वे एक सप्ताह का भोजन इकट्ठा करके घर वापस आते हैं। जो चीजें उनके खाने से बच जाती हैं उनको वे आग के धुएं में सेंक लेते हैं। इस प्रकार वे चीजें रखने के लायक बन जाती हैं। जब वे शिकार नहीं करते हैं तब वे अपने समय को लेट कर हुक्का पीते हुये और बातें करते हुये बिताते हैं।

२. औरतें भूमि को जोतती हैं।—पुरुष भी उनकी कुछ सहायता कर देते हैं। वहां की भूमि पर जङ्गल हैं। खेती करने के पहले उन जङ्गलों को साफ करना पड़ता है। यह कार्य औरतों के लिये बहुत कठिन है। पुरुष ही कुल्हाड़ियों और छुरों से पेड़ों तथा झाड़ियों को काट कर गिराते हैं। इस प्रकार भूमि साफ करते हैं। संसार का यह एक व्यापक नियम है कि मेहनत वाले कामों को पुरुष ही करते हैं।

जब पेड़ों को गिरा दिया जाता है तब उनको काट कर इकट्ठा किया जाता है। उस ढेर को वे जला देते हैं। वे लकड़ी के दो टुकड़ों को रगड़ कर आग पैदा कर लेते हैं। उस आग से पत्तियों और सूखी टहनियों को जला देते हैं। झाड़ियों और पेड़ों की छोटी शाखाओं को वे पूरी तरह जला देते हैं। राख को भूमि पर बिछा देते हैं। उनसे पौदे को अच्छी खुराक मिल जाती है।

(३) उनका एक मात्र औजार एक खोदने की छड़ी होती है।—यह अन्य औजारों में सबसे अधिक साधारण औजार है। इस औजार को बहुत साधारण लोग जैसे आस्ट्रेलिया के 'झाड़ियों के आदमी' और दूसरे काम में लाते हैं। यह छड़ी नुकीली होती है। इसी नोक से वे लोग जड़ें खोद कर खाते हैं। हम यह अंदाज लगा सकते हैं कि जब औरतों ने खेती करना शुरू किया तो उन्होंने इन छड़ियों को ही प्रयोग किया है। इसी से वे पौदों को खोदती हैं और सूराख बना कर जड़ों को गाड़ती हैं।

(४) वे पौदों की बेड़ को लगाते हैं।

यह वास्तव में बहुत काहिली का काम है। वे छोटे पौदों को लगा देते हैं। इसके बाद उनकी परवाह नहीं की जाती है।

ब्रिटिश गायना के इन्डियनों के भोजन के पौदों

में सबसे महत्वपूर्ण मैनिओक या कैसेवा हैं। यह एक जड़ है। इसको काट लेने पर यह फिर पनप उठता है। इसकी देख भाल की कोई जरूरत नहीं पड़ती है। वर्षा ऋतु के शुरू में औरतें इसे लगाने आती हैं। तब तक भूमि पर बिछाई हुई राख मिट्टी में मिल जाती है। वे मैनिओक झाड़ी के कल्ले काट लेती हैं। उन्हें एक टोकरी में भर कर उठा लाती हैं। वे छड़ी से खोद कर मिट्टी नरम कर देती हैं। जङ्गली पौदों को हाथ से उखाड़ कर फेंक देती हैं। एक सूराख में वे दो या तीन मैनिओक के कल्लों को डाल देती हैं। उन कल्लों को जड़ पकड़ने और जीने में एक या दो सप्ताह लग जाते हैं। इस बीच में उनको अपने खुराक के लिये अन्य जङ्गली पौदों से लड़ना पड़ता है। क्योंकि ये जङ्गली पौदे जल्दी से उग आते हैं और उसकी खुराक बटा लेते हैं।

औरतें अपनी फसलों की ज्यादा मदद नहीं करतीं। वे बड़े-बड़े जङ्गली पौदों को केवल काट देती हैं। लगभग छः या आठ महीने में मैनिओक की नई झाड़ियों में दाने लग जाते हैं। उस समय उसकी जड़ उखाड़ लेने के योग्य हो जाती है। औरतें झाड़ियों को काट लेती हैं। अपनी खोदने वाली छड़ी से एक बार फिर वे भूमि को खोद देती हैं। इस प्रकार जड़ों को निकाल लेती हैं। इन जड़ों को खाने की जरूरत उनको प्रति दिन पड़ा करती है।

दो तीन ऋतुओं तक उनका यह पौदे का भोजन काम में लाया जाता है। तब कुटुम्ब उस स्थान को छोड़ देता है और नया जङ्गल साफ करने चला जाता है। इसका अर्थ यह है कि एक उचित घर रहने के लिये नहीं बनाया जा सकता। उनका घर केवल शाखाओं और पत्तियों से बना हुआ होता है। उस पर एक छत होती है जो इन्हें वर्षा और धूप से बचाती है। हवा से बचने के लिये वे ताड़ वृक्ष की पत्तियों से एक मोटी दीवार बना लेते हैं। यह दीवार उसी तरफ रहती है जिस तरफ से हवा आती है। इस झोपड़े के अन्दर खटोले, लकड़ी के स्टूल, शिकार करने के औजार ताड़ की पत्तियों से बनाई हुई टोकरियाँ, भोजन पकाने के बर्तन और मिट्टी की मटकियाँ देखने को मिलती हैं।

औरतों ने भोजन की चीजों को रखने की टोकरियों को भी बनाना सीखा है। शिकारी लोग चमड़ों में पानी भरते हैं। वे सींगों को गिलास की तरह काम में लाते हैं। उनके पास बर्तन नहीं होते हैं। जो लोग बर्तन बनाते हैं वे पहले के किसान होते हैं।

ब्रिटिश गायना के ये इंडियन बहुत साधारण हैं। ये खाना पकाना जानते हैं। मैनिओक को पका कर तैयार करना सरल काम नहीं है। क्योंकि मैनिओक में काफी जहर भी मिला होता है। वे जड़ को पहले छील कर उसका छिलका निकाल देते हैं। फिर एक तख्ते पर जिस पर पत्थरों के बहुत छोटे टुकड़े होते हैं, उसको वे रगड़ते हैं। इससे उसके बहुत बारीक टुकड़े हो जाते हैं। वह लगभग एक प्रकार लुग्दी सी बन जाती है। तब उसको उठा कर टोकरी में रखते हैं। उसका रस इस पर निचोड़ दिया जाता है। इस प्रकार उसका जहर निकल जाता है। तब उसकी रोटियाँ बना कर आग पर रखे हुये एक पत्थर के टुकड़े पर रख देते हैं। रोटियाँ पक कर तैयार हो जाती हैं।

मिट्टी के बर्तन में मैनिओक के रस में मछलियाँ और माँस पकाया जाता है। इस रस को जब उबाल लिया जाता है तब इसका जहर दूर हो जाता है। नमक भी उन लोगों का बहुत प्रिय भोजन है। उसे बच्चे मिठाई की तरह मुँह में डाला कर चूसते रहते हैं।

यह बात केवल इन्हीं इंडियनों के बारे में कही जा सकती है। यद्यपि उनका प्रधान पेशा शिकार है, किन्तु खेती के कारण उनके घरों में कुछ खाने की चीजें पड़ी रहती हैं। उसे वे समय पर खा सकते हैं। यदि वे अन्य पौदों के बारे में भी कुछ जान लें तो उन्हें और अधिक खाने को मिल सकता है। वे कहवा, चावल, नारियल और अन्य फल भी पैदा कर सकते हैं। फसलों को भी वे अच्छी तरह पैदा कर सकते हैं। किन्तु उन्होंने अभी तक इन चीजों को सीखा नहीं है। वे अपने मांस, मछली और मैनिओक से ही संतुष्ट हैं॥

वे अन्न पैदा करने वाले किसानों से बहुत दूर हैं। किन्तु वे प्रारंभिक काल के पाषाण काल के लोगों से

ज्यादा अच्छे हैं। यह सत्य है कि वे अब भी कुछ कामों में पत्थरों को काम में लाते हैं। ये बहुत कम कपड़े पहनते हैं। उनके घर एक प्रकार के निम्न कोटि के पनाह घर हैं। किन्तु उनके पास बर्तन और टोकरियां हैं, लकड़ी के स्टूल हैं। उस पर वे बैठते हैं, सोने के लिये खटोले हैं। वे रोटियां और शोरबा बनाते हैं। वे कच्चा मांस नहीं खाते हैं।

पापुआ में कुदाल की खुदाई और शिकार

पहले बताया जा चुका है कि खेती के लिये जो पहला औजार काम में लाया गया है वह छड़ी है। इसके बाद लोहे की नुकीली छड़ी और तब कुदाल का प्रयोग हुआ। कुदाली का प्रयोग पूरे योरुप, एशिया और अफ्रीका में होता है। अभी हम लोगों ने यही बात ब्रिटिश गायना के इण्डियनों के विषय में पाई। वहां पुरुष शिकार खेलते हैं, मछलियां पकड़ते हैं। स्त्रियां कुदालियों अथवा छड़ियों से मिट्टी खोदती हैं।

न्यूगिनी आस्ट्रेलिया के उत्तर के द्वीपों में सबसे बड़ा एक द्वीप है। इसके पूर्व का भाग अंग्रेजी राज्य में है। उसे ही पापुआ कहते हैं। इस भाग में एक मुख्य नदी है। उसका नाम 'फ्लाई नदी' अथवा बढ़ाकू नदी है। इसके मुहाने के पास ही एक छोटा सा द्वीप है। वहां पापुओं का एक कुटुम्ब रहता है। इस पाठ का विषय यही कुटुम्ब है। सभी पापुओं की तरह ये लम्बे, और काले हैं। उनके बाल ऊन की तरह होते हैं।

ये लोग अपना पेट पालने के लिये शिकार खेलते हैं और मछली पकड़ते हैं। उनका मुख्य भोजन जङ्गली सुअर का मांस है। ये सुअर जङ्गलों में घूमा करते हैं। वे भोजन की खोज में बस्ती में भी घुस आते हैं। उनको ये लोग बर्छियों और जहर से बुझे हुये तीर-कमानों से मारते हैं। वे अपना धनुष बांस की फट्टियों से बनाते हैं। बांस के रेशों की रस्सियां बना कर वे उस धनुष को कसते हैं। बहुत प्रकार के तीर काम में लाये जाते हैं। किन्तु साधारण तथा सभी तीरों के सिरों पर हड्डी की नोक बनी रहती है। यह वहां मछलियों और मगरों को भी मारने के लिये काम में लाई जाती है। छोटी मछलियां जालों में फंसाई जाती हैं।

पापुआ विषुवत् रेखा के पास है। इसलिये वहां की जलवायु गर्म और तर रहती है। भूमि जङ्गलों से भरी हुई है। खेती करने के लिये जङ्गलों को साफ करना बहुत जरूरी हो जाता है। पुरुष जाति के पापुआ ही, गायना के इण्डियनों की तरह इस कठिन काम को करते हैं। बरसात भरे मौसमों में वे पानी को बाहर निकालने के लिये नालियां बनाते हैं। वे लकड़ी की छड़ी से मिट्टी खोदते हैं और उसे हाथ से फेंकते हैं।

जब पुरुष लोग खेती के काम को पूरा कर लेते हैं, तब स्त्रियां अपना काम करने के लिये आती हैं। नवम्बर में, जब वर्षा ऋतु शुरू होती है तब वे केला, सकरकन्द नारियल, और अरुई लगाते हैं। केले तो पौदों से होते हैं। नारियल के पेड़ एक दूसरे नारियल से होते हैं और अरुई काट कर उगाई जाती है। इन सब चीजों को साधारण रूप से जमीन में गाड़ दिया जाता है। अरुई के पैदा करने में मैनिओक से कुछ अधिक मेहनत करनी पड़ती है।

अरुई मिट्टी के अन्दर ही आलू की तरह बढ़ती है। कभी-कभी यह आलू से बड़ी नहीं होती है। किन्तु यह एक नवजात शिशु की तरह भी हो सकती है। जब ये किल्ले जमीन से बाहर अच्छी तरह निकल आते हैं तब हर एक के पास वे एक बेंत गाड़ देते हैं। इसमें से उस कल्ले को बांध देते हैं। समय समय पर उनके बीच से जङ्गली पौदों को उखाड़ दिया जाता है। इस प्रकार उनकी खुराक की पूरी रक्षा की जाती है। यह काम छड़ी से नहीं किया जाता बल्कि इसको कुदाल से किया जाता है। कुदाल की धार किसी जड़ के सख्त ढकने से बनी होती है। कभी-कभी यह एक बहुत बड़ी मछली सी दिखाई पड़ती है। कुदाल का हत्था लकड़ी का बना होता है। उसमें सुअर के नुकीले दांत से वे एक छेद करते हैं। उसमें वह धार वाली हड्डी डाल देते हैं। उसको कसने के लिये लकड़ी के टुकड़े भी गाड़ दिये जाते हैं।

मई में जब अरुई खाने के लायक हो जाती है तब जमीन के ऊपरी हिस्से को हड्डी के चाकू से काट देते हैं। इसके बाद जैसे-जैसे जरूरत पड़ती है उसको खोदते जाते हैं। वे उन्हें टोकरी में भरते हैं और फिर उन्हें घर लाते हैं।

उनका मकान वास्तव में सुन्दर नहीं होता है। इसको यदि झोपड़ा कहा जाय तो ज्यादा अच्छा होगा। झोपड़ा बनाना एक कठिन काम है। इसलिये इस काम को पुरुष ही करते हैं। वृक्षों को वे पत्थर से बनी हुई कुल्हाड़ी से काटते हैं। इस नये पाषाण युग के ढङ्ग पर वे उसे चिकना और तेज बनाते हैं। उसको बड़ा सुन्दर रूप वे ही देते हैं। उस कुल्हाड़ी में लकड़ी का एक छोटा सा हत्था लगा होता है।

ऐसे औजार से एक पेड़ को काट कर गिरा देना कोई आसान काम नहीं है। काम को आसान बनाने के लिये उसको जलाया जाता है। तने के चारों ओर आग जला दी जाती है। यह उसके बाहरी तल को जला देती है। तब उसे उस कुल्हाड़ी से आसानी से काट दिया जाता है। जब तक पेड़ गिर नहीं जाता है तब तक उसे आग से जलाना और फिर काटने का क्रम जारी रहता है। डालियाँ और उनके सिरे आरे से काट दिये जाते हैं। यह आरा बांस की धारियों को एक दूसरे से एक रस्सी की तरह एंठ कर बनाया जाता है। एक धार दार हड्डी के ढक्कने से (जैसे सीप) रन्दे का काम लिया जाता है। मछली के सूखे चमड़े से वस्त्र सीने का काम लिया जाता है।

आजकल पापुओं ने नये औजारों को काम में लाना शुरू कर दिया है। वे इन्हें व्यापारियों से खरीदते हैं।

उनके घर लट्ठों पर बनाये जाते हैं। इसका कारण यह है कि बरसात में जमीन पर तमाम पानी ही पानी हो जाता है। बाढ़ आने पर कठिनाई और भी बढ़ जाती है। ऊपर फर्श बनाने के लिये लकड़ी के तनों का प्रयोग होता है। छत ताम की पत्तियों के एक छप्पर के रूप में बनाई जाती है। छप्पर ढालू होते हैं जिससे वर्षा का पानी सब खिसक जाता है। पानी लगभग २ फुट दूर जा कर गिरता है। उस झोपड़े के दो तरफ तख्तों को जोड़ कर दीवाल बनाई जाती है। यह दीवार मजबूत और ठोस होती है। आम तौर से उसके दो रास्ते होते हैं। ये दोनों झोपड़े के दो तरफ होते हैं। इस पर चढ़ने के लिये सीढ़ी बनी होती है। यह सीढ़ी पेड़ के तने में कोटर बना कर बनाई जाती है।

पापुओं का झोपड़ा बड़ा होता है। इनमें से कुछ तो १५० गज तक लम्बे होते हैं। नियम के अनुसार दो प्रकार के ऐसे घर मिले रहते हैं। एक उन मनुष्यों के लिये जो विवाहित नहीं होते और दूसरा विवाहित पुरुषों और बच्चों के लिये होता है।

घरों का भीतरी भाग अंधेरा रहता है। उस लम्बे घर में कहीं-कहीं आग का प्रकाश टिमटिमाता रहता है। प्रत्येक कुटुम्ब के लिये एक अलग कमरा होता है। किन्तु एक को दूसरे से अलग करने के दीवारें नहीं होती। एक कुटुम्ब के लोग एक आग की मिट्टी की अङ्गीठी के पास जुट कर बैठते हैं। किन्तु जब उनको आपस में कुछ बातें करनी होती है तब वे मुख्य द्वार पर जलती हुई सार्वजनिक अङ्गीठी के पास आकर बैठते हैं।

इस प्रकार एक साथ रहने का एक कारण यह है कि इससे शुत्रुओं से रक्षा हो सके। जब लोग चुरा कर कोई चीज रख लेते हैं तो लड़ाई छिड़ जाती है।

कपड़े की बहुत कमी है। औरतें केला या साबूदाना के ताड़ की पत्तियों के रेशों से अंचला बना कर पहनती हैं। उनके गहनों में बाजू और माला (जो सीप के बने होते हैं) और चिड़ियों के परों के विचित्र सिर के आभूषण होते हैं। *कभी कभी वे नाक में बड़ी बुलाें* भी पहनती हैं।

पापुआ लोग गायना के इंडियनों से कुछ ही अच्छे हैं। उनके औजार और हथियार अब वही हैं जो पाषाण काल में थे। उनका यह समय 'नया पाषाण काल' के नाम से पुकारा जा सकता है, क्योंकि वे एक नई चीज कुदाल का प्रयोग करते हैं। एक विचार से वे बहुत पिछड़े हुये हैं। क्योंकि उन्होंने बर्तन बनाना नहीं सीखा है। वे अपना भोजन एक बड़े सीप के ढक्कन में पकाते हैं। वे मांस या तो आग में ही भून लेते हैं या जमीन में गाड़ कर पका लेते हैं।

दक्षिणी अफ्रीका में कुदाल की खुदाई और पशु पालन

काफिर

ब्रिटिश गायना के इंडियन और न्यू गिनी के पापुआ लोग अपना पेट शिकार करके भरते हैं। वे कुछ पौदों की खेती भी करते हैं। खेती के कारण उनके झोंपड़ों में कुछ खाने की चीज रखी रहती है।

अब हम लोग जरा दक्षिणी अफ्रीका चल कर वहां के काफिरों की दशा को देखें कि वे अपना जीवन किस प्रकार बिताते हैं। वे अपनी भूख मिटाने के लिये शिकार नहीं करते। अपना भोजन प्रति दिन इकट्ठा नहीं करते। वे पशुओं के पालने का ढङ्ग सीख चुके हैं। वे अपने भोजन के लिये अनाज भी पैदा कर लेते हैं। किन्तु उसका जीवन अब भी बहुत नीचे दर्जे का है। वे अपने भोजन की आवश्यकता को पूरी करके ही सतुष्ट हो जाते हैं। उन्होंने अब तक यह प्रयत्न किया कि अनाज इतना पैदा करें कि यह भोजन से बच जाय। उसे वे बेच सकें और अपनी अन्य आवश्यकता भी पूरी कर सकें।

वहां काफिर लोग रहते है। उनके कई कुटुम्ब हैं। वे सभी एक ही तरह नहीं रहते। उनके रहन सहन में कुछ अन्तर मिलता है। यहां हम जिन निवासियों के विषय में बताते हैं वे लिम्पोपो नदी के दक्षिण में टोगो लैंड में रहते हैं।

काफिरों के पास तमाम पशु हैं, अनाज है तथा जमीन है। इसलिये ये शिकारियों की तरह घूमते नहीं फिरते। ये घरों में रहते हैं। उससे उनके जीवन में बड़ा परिवर्तन है। इसका मतलब यह है कि उनमें काम का बटवारा है। उनमें प्राचीन पापाण काल में भी स्त्री और पुरुष में काम बटा हुआ था। उससे भी ज्यादा काम का बाटवारा नये पापाण काल में था। वहां अब भी काफिरों के बीच ऐसा ही बटवारा चला आ रहा है जब कि ये केवल पशु पालते है और भूमि जोतते हैं।

जानवरों की देख भाल का काम पुरुष और बच्चे करते हैं। बड़े सवेरे पुरुष गायों को दुहते हैं। गाए केवल दूध के लिये पाली जाती हैं। मांस खाने के लिये उनका वध नहीं के बराबर होता है। जब दूध के दुहने का काम समाप्त हो जाता है तब लड़के उनको बाड़े के बाहर ले जाते हैं। जहां घास के मैदान होते हैं वहां ये दिन भर घास चरती हैं।

भूमि खोदने का काम औरतें करती हैं। यह काम कुदाली से किया जाता है। कुदाल बना कर तैयार करना पुरुषों का काम है। ये लकड़ी का सीधा और चिकना हत्था बनाते हैं। कुदाल की धार लोहे की होती है। इसे ये दुकानों से खरीदते हैं। पुरुष लोग ही औजारों को अब भी बनाया करते है जैसे ये पापाण काल में थे।

कुदाल में जो लोहे की धार बनी होती है वह फावड़े की शक्ल की होती है। जिस प्रकार हम लोग पांच नोक वाले पाचा या फरुहा का प्रयोग करते है उसी प्रकार ये उस कुदाल का प्रयोग करते हैं। औरतें उसे जमीन में लगा कर खीचती हैं। यह मिट्टी को पलटती जाती हैं। जङ्गली वनस्पति और झाड़ियों की जड़ों को बीन कर फेंकती जाती हैं।

भूमि तैयार हो जाने के बाद बुआई का नम्बर आता है। औरतें केवल पौदों को लगाती ही नहीं बल्कि बीज भी बोती हैं। बीज से फसल तैयार करने का मतलब यह है कि उन्हें परिश्रम बहुत करना पड़ता है। उसके लिये सोचने विचारने की भी जरूरत बहुत पड़ती है। इससे किसानों को शिक्षा मिलती है।

वह ज्वार बाजरा, खजूर, मटर, तम्बाकू और बहुत सी चीजे बोते हैं। किन्तु सबसे महत्व की फसल मक्का है। यह उनका मुख्य भोजन है। मक्का अमेरिका की एक फसल है। यदि अमेरिका ने इसकी खोज न की होती तो काफिर इसे कभी पैदा नहीं कर सकते थे।

यदि किसी का खेत बड़ा होता है तो वह काफिर स्त्री अपनी मदद के लिये अपने पड़ोसिनों को बुला लेती है। इस काम को ये बड़ी खुशी से करती है। क्योंकि ये जानती हैं कि एक या दो दिन में जब उनका काम पड़ेगा तब यह भी उसके बदले में उनकी मदद कर देगी। इस प्रकार वे एक दूसरे की मदद

करती हैं। इस प्रकार की सहयोगिता किसानों में हर जगह देखने को मिलेगी।

बोने वाली स्त्रियां खेत के एक ओर एक लकीर खींच देती हैं और फिर दूसरी ओर काम करती हैं। वे कुदाल से खरोंचती जाती हैं, बोती जाती हैं और साथ-साथ गाती जाती हैं। वे अपना काम बड़े सबेरे शुरू कर देती हैं। वे काम को सूरज डूबने से पहले समाप्त कर देने के लिये कठिन मेहनत करती हैं।

बुआई से कमर में दर्द होने लगता है। हर एक स्त्री अपनी कुदाल से जमीन खोदती है। कुदाल भर मिट्टी उठा कर अलग करती है। वह एक सूराख में मक्का के कुछ बीज डालती है। उसे मिट्टी से ढक देती है।

जब फसल उगती है तब खेत को अन्य जङ्गली पौदों से साफ करना पड़ता है। इस काम को भी औरतें ही करती हैं। जब फसल पकने लगती है। तब चिड़ियां खेतों पर धावा बोलती हैं। चिड़ियों को उड़ाने के लिये स्त्री बच्चों को साथ लेकर खेत में झोपड़ी बना कर रहती है। इन झोपड़ों को तैयार करना पुरुषों का काम है। सुबह से शाम तक औरतें और बच्चे चिल्ला कर चिड़ियों को डरा कर भगाती रहती हैं। कभी-कभी डोरी में घोंघों को बांध कर खेत के आर-पार बांध दिया जाता है। औरतें छाया में बैठती हैं। वे डोरी खींच लेती हैं तब एक विचित्र आवाज होती है और चिड़ियां उड़ जाती हैं।

जब मक्का पूरी तरह पक जाती है तब उसके भुट्टे तोड़ लिये जाते हैं। उनके बाहर लिपटी हुई हुई पत्तियों को नोच कर फेंक देती हैं। उन्हें वे टोकरी में भरती हैं। उन्हें वे ले जा कर रखने के घर में उन्हें रख देती हैं।

मक्के के दानों में भी, ज्वार और गेहूं की तरह कुछ भूसी होती है। उसे छुड़ाने के लिये उसको माड़ना पड़ता है। काफिरों के माड़ने का स्थान खेत के हिस्से ही होते हैं। खेत को साफ करके उसे वे लीप देती हैं। दाने उस चिकनी और सख्त भूमि पर इकट्ठे किये जाते हैं। औरतें उसे डंडे से पीट कर दाने निकाल लेती हैं।

काफिर लोग पशु-पालक हैं, किसान हैं। इसलिये उनको इधर उधर घूमने की जरूरत नहीं पड़ती वास्तव में वे घर बना कर रहते हैं और पूरे गृहस्थ हैं। उनका घर गोलाकार एक मोरेंड़े की शक्ल का होता है। उसका कुछ भाग पुरुष और कुछ भाग स्त्रियां बनाती हैं।

पुरुष लट्ठों से दीवाल बनाते हैं। छत के लिये धन्नियां काटते हैं। वे घास का छप्पर डालते हैं। औरतें गारा इकट्ठा करती हैं और उसको लीप देती हैं। यह लिपाई केवल दीवार के बाहरी भाग की ही ओर की जाती है। वे मकान के बीच में मिट्टी की आग जलाने की अङ्गीठी बनाती हैं। यहीं भोजन तैयार किया जाता है।

इस अङ्गीठी पर वह दिन रात में केवल एक बार खाना पकाती है। मुख्य भोजन ज्वार या मकई की मोटी रोटी होती है। रोटी के साथ खाने के लिये खजूर या मटर की फली की चटनी बनाई जाती है। कुछ काफिरों के कुटुम्ब अच्छे खाते पीते हैं। क्योंकि वे दूध देने वाले जानवरों के अलावा, भेड़, बकरी, सुअर, मुर्गियां, बतख, हंस और पेरू पालते हैं। भोजन का बहुत कुछ भाग मिट्टी के बर्तन में पकाया जाता है। झोपड़े में धुआं निकलने का कोई रास्ता नहीं होता है। काम समाप्त करने के बाद भोजन, शाम को खाया जाता है। जब कुछ खाना बच जाता है तब उसे सुबह के कलेवा के लिये रख दिया जाता है।

जैसे-जैसे फसल की पैदावार बढ़ती गई वैसे ही वैसे गांवों, झोपड़ों और घरों की संख्या भी बढ़ती गई। शिकारी मनुष्य, जङ्गल से फूल, फल इकट्ठा करने वाले घर नहीं बनाते हैं। इसका कारण यह है कि यदि वे इकट्ठा रहने लगें तो जङ्गल का भोजन बड़ी जल्दी समाप्त हो जाय। किन्तु जब से भूमि से भोजन पैदा करने का ढङ्ग निकला तब से लोग एक साथ रहने लगे।

संसार के देशों की कृषि सम्पत्ति

अफगानिस्तान

अफगानिस्तान की चौड़ाई उत्तर-पूर्व से दक्षिण-पश्चिम तक लगभग ७०० मील और लम्बाई हिरात की सीमा से खैबर दर्रे तक ६०० मील है। इसका क्षेत्र फल २,५०,००० वर्ग मील है। यहां की जनसंख्या १,१०,००,००० और १,२०,००,००० के बीच में है। अनाज की खेती यहां के उपजाऊ मैदानों और घाटियों में होती है। यहां पर फलों के भी अधिक बाग हैं। यहां के निवासी फलों को रोटी के साथ भी खाते हैं। यह प्रदेश रूई की उपज के लिये भी प्रसिद्ध है। यहां पर पशु भी पाले जाते हैं जिस में दुम्बा भेड़ अधिक प्रसिद्ध है यहां पर दियासलाई, लकड़ी के सामान और रूई के कपड़े बनाने के भी हाल में कारखाने हैं।

अल्बेनिया

अल्बेनिया का क्षेत्र फल १०,६२९ वर्ग मील है। इसकी जनसंख्या ११,५०,०००है। यहां की मुख्य उपज मकाई, गेहूँ और तम्बाकू है। यहां पर ३० प्रति- शत भाग में झाड़ियां और स्थायी चरागाह और ६० प्रतिशत में जंगल और दल दल हैं। जंगली भागों में फर (समूर) वाले जानवर अधिक हैं। यहां की जनसंख्या के ४० प्रतिशत लोग खेती में और ५५ प्रतिशत लोग पशु पालन में लगे रहते हैं। खेती ६७,५०,००० एकड़ में होती है। ५८ प्रतिशत में मकाई और १८ प्रतिशत में गेहूँ की खेती होती है। यहां पर ५०,००० घोड़े, ४०,००० गदहे १०,००० खच्चर, ३,४५,००० गाय बैल, १५,४८,००० भेड़, ८,५४,००० बकरी और २५,००० सुअर हैं। यहां के जंगलों में बलूत,सनोबर अखरोट, ओक आदि के पेड़ अधिक हैं। जैतून से तेल निकालने, मक्खन बनाने और आटा पीसने के कारखाने हैं।

अर्जेन्टाइन

अर्जेन्टाइना का क्षेत्रफल २७,७८,४१२ वर्ग किलोमीटर है। जनसंख्या १,७१,८०,००० है। यहां ६३,०२,५१,००० एकड़ भूमि है जिसके ४१ प्रतिशत में चरागाह, ३२ प्रतिशत में जंगल और ११ प्रतिशत में खेती होती है। कृषि योग्य भूमि ७,३७,३०,००० एकड़ है। ४,६८,४०,००० एकड़ भूमि में केवल अनाज की उपज होती है। यहां की वार्षिक उपज का ब्योरा निम्नलिखित प्रकार से है। २,५०० एकड़ भूमि में १,००० मेट्रिक टन की उपज होती है :—

फसलों का नाम	वार्षिक उपज, १९३५-४०		१९४९-५१		१९५०-५१	
	क्षेत्र	उपज	क्षेत्र	उपज	क्षेत्र	उपज
गेहूँ	७,५५३	६,५०५	५,६९३	५,१४४	६,५५४	५,७९६
अलसी	२,९६१	१,३५५	१,०७७	६७६	१,०८५	५६०
मकाई	६,५५७	६,५५४	२,१५६	८३६	२,४४०	२,७५८
ओट (जई)	१,४४४	७७३	१,२३०	५४०	१,२०५	६९२
जौ	७७०	५२५	८०३	३९५	८५७	७६०
राई (विलायती बाजरा)	१,०१६	२९१	१,८६३	२७७	२,१७९	४१३
सूरजमुखी का बीज	२९८	३०३	१,४९१	७१२	१,६२०	९०३
जोड़	२०,४५५	१६,२१४	१४,३१२	८,५८५	१६,०९०	१६,८८२

इस के अतिरिक्तयहां पर रुई, चावल, चाय, फल गन्ना और आलू की उपज होती है। १९५० ई० में गन्नों की उपज ६.१३,१०० टन हुई थी। ४१ गन्ने से चीनी बनाने वाले और १ चुकन्दर से चीनी बनाने वाले कारखाने हैं। आलू की उपज १५,००,००० मेट्रिक टन हुई थी। ५६.८०० एकड़ में तम्बाकू की खेती होती है जिसमें ५,११,००० पौंड आलू की उपज हुई थी। रुई की उपज १९५० ई० में ३४,५०० मेट्रिक टन हुई थी। यहां पर ५२,३८००० जैतून के पेड़ और ४,१२,६८,४७० गाय बैल ७२,३७,६६३ घोड़े, ३,३८,-३०० खच्चर १,६३,००० गदहे, ४९.३३ बकरे, ५,०८,५६,५५६ भेड़ और३२९,८१,४०६ सुअर हैं।

अदन का रक्षित राज्य

इस राज्य का क्षेत्रफल लगभग ७१,००० वर्ग मील है। यह राज्य अदन उपनिवेश के पूर्व और उत्तर पश्चिम में स्थित है। इस राज्य की जनगणना भी कभी नहीं हुई है किन्तु जनसंख्या का अनुमान लगभग ६,००,००० लगाया गया है। यहा की मुख्य उपज खजूर है। यहां पर गाय बैल, बकरे और भेड़ों की संख्या अधिक हैं। यहां के लोगों का मुख्य व्यवसाय पशुओं और ढोरों का चराना है।

अदन

अदन का क्षेत्रफल ७५ वर्ग मील है। यहां की जनसंख्या ८०,५१६ है जिसमे पुरुषों की संख्या ५०,५८९ और स्त्रियों की संख्या २९,२७ है।

आस्ट्रिया

आस्ट्रिया का क्षेत्रफल ८३,८५० वर्ग किलोमीटर है। यहां की जन संख्या ६९,१८,९५९ है। ४९,२८,-८२३ एकड भूमि में खेती होती है। यहा की प्रधान उपज गेहूँ, विलायती बाजरा, जई, और जौ आलू है। इसकी उपज की तालिका निम्नलिखित प्रकार से है :—

	१९४८		१९४९		१९५०	
फसल	क्षेत्र फल हेक्टर में	उपज	क्षेत्र फल हेक्टर।	उपज	क्षेत्र फल हेक्टर में	उपज
गेहूँ	२,०३,२७७	२,६०,९७१	२,०७,४६२	३,५०,४५२	२,१७,५७७	३,८३,९२४
बाजरा	२,३८,६००	२,८९,३३१	२,४०,६६५	३,६५,३८६	२,४९,४४८	३,८७,७४८
जौ	१,०८,००२	१,२४,५४८	१,१८,०२१	१,९८,६५५	१,२३,६२६	२,१९,९०८
जई	२,००,३१७	२,२४,६१२	२,०५,०३१	२,८५,६५७	२,०८,१५०	२,२२,५५२
आलू	१,७४,६८३	२०,६८,९६४	१,७७,५४३	२०,०८,२०५	१,८३,७८२	२५,४७,७०६

सन् १९४६ ई० में २५.४०८, १९४७ ई० में ४२,१९६,- सन् १९४८ ई०में ५४,७२८, सन् १९४९ई०मे ६६,७०० और १९५० ई० मे १.१५.८५६ मेट्रिक टन कच्ची चीनी हुई थी। यहा पर गाय बैलर२, ८३,८५९, सुअर २४,४८,२६२, भेड़ ३,३१, ८४७, बकरे ३,०९,८४२ और घोड़े २,७५,६४६ हैं।

आयरलैण्ड

इस देश का क्षेत्रफल १,०३,००० वर्ग किलोमीटर है। यहां की जनसंख्या २,४४,२६३ है। १६५० ई० में ४०,६०२ मनुष्य नगरों में, और १,०३,२६० मनुष्य ग्रामों में रहते थे। इस ठंडे देश के केवल २५ प्रतिशत भाग में खेती होती है। यहां की मुख्य उपज आलू है। १६४६ ई० में आलू की फसल ५,६३५ मेट्रिक टन थी। यहां पर घास भी अधिक पैदा होती है जो पशुओं को खिलाई जाती है। यहां पर ४२ ००० घोड़े, ४२,००० गाय-बैल, ४,०२००० भेड़ और २६० बकरियां हैं।

उत्तरी आयरलैण्ड

यहां का क्षेत्रफल ३२,५२,२५१ एकड़ है। यहां की जनसंख्या १३,७०,७०६ है। इस आबादी में ६,६७,८५४ मर्द और ७,०१,८५२ औरतें सम्मिलित हैं। इस देश का सबसे बड़ा व्यवसाय खेती है। यहां के खेत छोटे छोटे होते हैं। इन की संख्या लगभग ६०,००० है। १६५१ ई० में यहां पर गेहूँ १,२६८ एकड़ में, जई ३,१६,४१८ एकड़ में, जौ २,९१६ एकड़ में और मिला हुआ अनाज ४४०६ एकड़ में बोया गया था। १,४४,०६१ एकड़ में आलू, २०,८५१ एकड़ में फ्लैक्स और ४,३७,६५२ एकड़ में घास की उपज हुई थी। १६५१ ई० में जई की उपज २,८३,-१६४, टन, आलू की उपज ११,६६,५०६ टन, फ्लैक्स की उपज २,७०० टन, घास की उपज १,२५२ टन और मिले हुये अनाज की उपज ४,१६३ टन थी। यहां पर ६,३०,७५५ गाय बैल, ४०,१७८ घोड़े, ६,७२ २१८ भेड़, ६,८४,६४८ सुअर और १,७८,३७,६२६ मुर्गियां हैं।

आइरिश प्रजातन्त्र राज्य

इस देश का क्षेत्र फल २६,६००० वर्ग मील है। यहां की जनसंख्या २९,५८,८७८ है। सन् १९५० ई० में ६३,२६३ बच्चे पैदा हुए और ३७,८३५ मनुष्य मरे थे। यहां पर १,७०,२४,११६ एकड़ भूमि खेती योग्य है। १,१५,८५,०४१ एकड़ भूमि में चरागाह और खेत हैं। २,९२,९२८ एकड़ भूमि में जंगल और फल आदि के पेड़ हैं। ५१,४६,१४७ एकड़ में अन्य प्रकार की भूमि है जिस में पहाड़ों के चरागाह आदि सम्मिलित हैं। फसलों की उपज उनके क्षेत्र सहित निम्नलिखित तालिका में दी हुई है —

फसलों का नाम	क्षेत्र (एकड़ में)			उपज (टन में)		
	१९४८	१९४९	१९५०	१९४८	१९४९	१९५०
गेहूँ	५,१८,३८३	३,६२,८०५	३,६६,०१२	४,०५,५२३	३,६०,९९१	३,२७,५८१
ओट (जई)	८,८०,०८३	६,८६,२२०	६,१४,३६३	७,९२,०७५	५,५५,२६९	५,२८,३५२
जौ	१,१९,७९३	१,५७,०२७	१,२३,२४१	१,००,६२६	१,५९,३८२	१,१८,९२८
राई	६,३१८	४,६५२	३,९६८	४,७०१	३,५६१	३,२१४
आलू	३,८५,४३०	३,५९,८८६	३,३६,७१२	३२,७५,८०३	२६,९२,२८६	२८,७४,१२३
चुकन्दर	६६,३८१	५९,८९८	६०,००२	६,१०,६१३	६,४२,५५८	५,८८,०२०
गोभी	१३,७८५	१२,०९३	१२,७०२	२,५३,७९५	१,७४,४०५	१,३५,०००
फ्लैक्स	२०,६२४	१५,२८२	१०,८९७	३,६०६	२,१०६	१,४०५

यहां पर ४३,२१,५८२ गाय बैल, २३,८२,६३५ भेड़ें, ७६,८४,५१४ सुअर और २,११,३१,६४४ मुर्गियां हैं।

आस्ट्रेलिया

इस महाद्वीप का क्षेत्रफल २६,७४,५८१ वर्ग मील है। यहां की जनसंख्या ८४,३७,३८१ है (४२,५६,५५७ पुरुष और ४१,७१,६२४ स्त्रियां हैं।, यहां की औसत आबादी प्रति १०० वर्ग मील में २८३ है। ६६,४६,६६,००० एकड़ भूमि (जो आस्ट्रेलिया महाद्वीप के कुल भूमि के क्षेत्र का ३६,५ प्रतिशत है) या तो बेकार पड़ी हुई थी या सरकार के अधिकार में थी। केवल ७.७ प्रतिशत भूमि (१४,६४,५५,००० एकड़) कृषि आदि के लिये दूसरों को दी गई थी। और १.८ प्रतिशत भूमि (८,४५,१३,००० एकड़) खेती के लिये दूसरों को दी जाने वाली थी। ५४०० प्रतिशत भूमि पर (१,०२,५५,६८,००० एकड़) में लोगों का अधिकार लीज या लाइसेन्स द्वारा था। यहां की मुख्य उपज गेहूं, जई, जौ, मक्का, आलू, गन्ना और फल हैं। १९५०-५१ ई० की उपज निम्नलिखित तालिका में दी गई है :—

फसलों का नाम	भूमि का क्षेत्र (१००० एकड़)	कुल उपज (बुशल में)	उपज प्रति एकड़ में (बुशल में)
गेहूं	११,६६३	१,८४,२४४	१५.८०
जई	१,७५७	२५,१२८	१४.३०
जौ	१,०५९	२२,८४१	२१.१७
मक्का	१६९	४,७२९	२७.९३
सूखी घास	१,३६७	(१००० टन में)	(१००० टन में)
आलू	१२७	२,०६३	१.५०
अंगूर की लतरें	१३७	४३९	३.३६

इसका क्षेत्रफल ६११ वर्ग मील है। यहां की जनसंख्या २५,३६६ है (१३,०८३ पुरुष और ११,२८३ स्त्रियां हैं)। यह देश अपने चरागाहों के लिये प्रसिद्ध है। यहां पर ८५६ घोड़े, ११,४६१, गाय-बैल, २,७३,२६३ भेड़ और ४६१ सुअर हैं।

उत्तरी आस्ट्रेलिया

इसका क्षेत्रफल ५,२३,६२० वर्ग मील है। यहां की जनसंख्या १६,४२२ है (१०,७९५ पुरुष और ६,२२७ स्त्रियां हैं) यहां की पैदावार, आलू, टमाटर और फल है। यहां पर १,०२२,६७२ गाय-बैल २६,२६६ घोड़े, २६,६२८ भेड़, १२,२८६ बकरे, ७,९८१ भैंस, १,१२२ सुअर, ६०३ और ऊंट, ९९८ खच्चर, हैं।

दक्षिणी आस्ट्रेलिया

इस का क्षेत्र फल ३,८०,०७० वर्ग मील है। यहां की जनसंख्या ७,२०,००० है। दक्षिणी आस्ट्रेलिया में कुल भूमि २४,३२.४४.८०० एकड़ है। ९,२०,००,००० एकड़ भूमि ऊसर है। १५,१०,००,००० एकड़ भूमि में से कुछ भूमि लोगों को मुफ्त और कुछ भूमि पट्टा द्वारा (लीज) मिली हुई है। इस के केवल ६०,००,००० एकड़ भूमि में खेती होती है। यहां की

मुख्य उपज गेहूँ, जौ, जई और फल हैं। ५३,६०० एकड़ भूमि में फसलें सिंचाई द्वारा होती हैं। इस में ७,८५० एकड़ भूमि तरकारी की उपज के लिये, २८,-५०० भूमि अंगूर की लतरों के लिये, १३,०५० एकड़ भूमि फलों के लिये, २,६५० एकड़ भूमि हरे चारावाली फसलों के लिये और १,५५० एकड़ भूमि अन्य फसलों की उपज के लिये रहती है। यहां पर फलों की उपज बहुत होती है। यहां हर साल लगभग ३,५०,००० हंड्रेडवेट सूखा फल, ३०,००,००० हंड्रेडवेट हरा फल और २,२०,००,००० गेलन शराब (अंगूर से) पैदा होती है। निम्नलिखित तालिका में फसलों की उपज और उनका क्षेत्र दिया गया है :—

	१९४९-५०		१९५०-५१	
फसलों का नाम	एकड़	उपज	एकड़	उपज
गेहूँ	१८,९६,७१५	७,८३,५७,२६० बुशल	१८,४५,९९०	३,०९,३५,८५९बुशल
जौ	६,९५,९८७	१,२७,२५,२४० „	७,४६,९९३	१,६७,१८,९८५ „
जई	२,६१,२२२	३४,६३,९०७ „	२,७१,०९८	३५,३१,७५९ „
सूखी घास	२,९१,५६३	३,८४,६०४ टन	२,६१,१५०	३,६३,३०४ टन

यहां पर ७१,००० घोड़े, ४,३३,००० गाय बैल ७१,०१,६५,००० भेड़ें और ६८,००० सुअर हैं।

पश्चिमी आस्ट्रेलिया

इस का क्षेत्र फल ९,७५,९२० वर्ग मील है। यहां की जनसंख्या ५,८१,४८६ है (२,९९,०५३ पुरुष और २,८२,३५३ स्त्रियां हैं।) १९,६८,८१,४१४ एकड़ भूमि में चरागाह और ३५,२७,४३८ एकड़ भूमि में जंगल हैं। ५२,२६,१०८ एकड़ भूमि में सरकारी जंगल हैं। ७२,००० एकड़ में सिंचाई द्वारा खेती होती है। निम्न-लिखित तालिका में मुख्य फसलें और उनकी उपज का क्षेत्र दिया गया है —

फसलों का नाम	१९४९-५०		१९५०-५१	
	एकड़		एकड़	
गेहूँ	२८,९४,०२०	३,८५,००,००० बुशल	३१,८९,३८९	४,९९,००,००० बुशल
जई	५,८४,६०३	७२,६७,९६५ „	५,८५,७०१	७९,१३,९७३ „
जौ	६८,९६५	९,६७,८१५ „	५९,११४	९,२४,७८१ „
सूखी घास	२,१६,३२०	२,७२,०५२ टन	१,७६,९९०	२,२६,७०३ टन
आलू	६,८९५	३९,४५९ „	६,५८०	४३,८८७ „
तम्बाकू	६६१	५,६३२ हं०	९६७	८,६५७ हं०
फलों के बाग	२२,७४४	११,१६,८८६ हं०	२२,०१३	१२,२५,६३९ हं०

यहां पर ५५,३४० घोड़े, ८,४१,२०४ गाय बैल, १,१३,६१,९०८ भेड़ और ८९,९१० सुअर हैं।

न्यूसाउथवेल्स

इस देश का क्षेत्रफल ३,०६,४३३ वर्ग मील है। यहा की जनसंख्या १५,८४,८३० है। यहां की औसत जनसंख्या प्रति वर्ग मील में १०५६ है। १९५० ई० में ६,५७,१५,६८२ एकड़ भूमि सरकार से अलग कर दी गई। ८,२३,०१,१५१ एकड़ भूमि का प्रबन्ध सरकार पट्टा (लीज) द्वारा करती थी। १,५७,७६,-५८१ एकड़ भूमि सड़कों या प्रजा के अन्य हितों के लिये हैं। यहां की मुख्य उपज गेहूं, मकई, जौ, जई, आलू, तम्बाकू और चावल है। १९४९ ई० में ५७,११३६०,१९५० ई० में ५६,७०,२६४ और १९५१ ई० में ४७,६४,८५३ एकड़ भूमि में खेती होती थी। १९४९ ई० में ५,३८,७,००० और १९५० ई० में ५,८४,६७,००० फार्मों में सब प्रकार की फसलें बोई जाती थीं। इस देश के तीन वर्षों की उपज निम्नलिखित तालिका में दी गई है :—

मुख्य फसलों के नाम	क्षेत्र एकड़ में	उपज	क्षेत्र एकड़ मे	उपज	क्षेत्र एकड़ में	उपज
गेहूँ	४०,३४,४४७	६,४७,०३,५५४ बु०	४०,११,७४४	८,१९,३९,००० बु०	३३,२८,४९०	४,३२,७२,९०
सूखी घास	१,६०,६९२	१,८७,३३२ टन	१,२२,२२९५	१,६२,९३५ टन	७८,८०५	९१,६६२ ट
मकई	७७,८८०	२४,७५,९५४ बु०	७२,८७२	२४,०८,१३९ बु०	५२,६७४	१५,११,६९३
जौ	१९,०३०	३,२१,८८५ टन	१२,८१५	२,६४,९९५ टन	८,३०२	१,२९,१७७
सूखी घास	५३३	७३४ बुशेल	६५७	८४० बुशल	११८	१०० बुशल
जई	२,७८,२५७	५७,७९,२३९ टन	३,७३,०२९	६०,१५,७४६ टन	३,३२,१५८	३९,९१,०७७
सूखी घास	१,२०,९७५	१,२९,६९२	१,१३,३१४	१,४२,४१०	७४,५१२	८१,६७२
आलू	१८,८०१	६१,२६५	२३,३६९	६९,३९५	१८,३७५	४३,१०२
तम्बाकू	४२८	३,५९० ह०	२२७	२,६६९ ह०	३४२	१,६२९ ह०
चावल	३२,६८९	२७,३८,९७० बु०	३७,५४०	३७,८३,२०० बु०	४१,०००	४१,६०,०००

१९५०-५० ई० में ३२,४०१ एकड़ भूमि में फलों के पेड़ लगे थे। इनमें अधिकतर शतरों के पेड़ थे। २७,४३३ एकड़ फलों के पेड़ों से ४३,०८,४२१ बुशल फल मिले थे। ३७,४६२ एकड़ भूमि में अन्य प्रकार के फलों के बाग थे। २०,६८० एकड़ में फलों की उपज २७,६२,४२१ बुशल थी। इसके अलावा केला के पेड़ भी २०,१०५ एकड़ में लगे थे। १७,६४३ एकड़ से २५,३६,३२८ बुशेल केला मिला था। १,४०६ एकड़ भूमि में अनन्नास आदि के बाग लगे थे। १९५०-५१ ई० में ८,२०७ एकड़ भूमि के गन्नों से ३,५६,८४६ टन उपज मिली थी। अंगूर की लतरें १६,६१७ एकड़ भूमि में लगी थी। इन से अंगूर ३,६६४ टन मिला था। यहां पर जङ्गल १,१०,००,००० एकड़ भूमि में फैले हुये हैं। ५१,२६,७८२ एकड़ भूमि में सरकारी और १२,०१,६१७ एकड़ भूमि में इमारती लकड़ी वाले जङ्गल हैं। यहा पर ५,४१,११००० भेड़, ३७,०२,८४८ गाय-बैल, ३,२८,४२८ घोड़े और ३,१६,८२३ सुअर हैं।

विक्टोरिया

इस का क्षेत्रफल ८७,८८४ वर्ग मील है। यहां की जनसंख्या २३,३१,२५५ है (११,१६,६६२ पुरुष और ११,१४,२६३ स्त्रियां है) यहां की औसत जनसंख्या प्रति वर्ग मील में २५.४ है। १,२६,७२० एकड़ भूमि खेती योग्य है। ५७,५६,७०० एकड़ भूमि में चरागाह है। ७७,८५० एकड़ भूमि का सदा पट्टा (लीज) रहता है। ४६,६०० एकड़ भूमि अन्य प्रकार के पट्टों में रहती है। ६४,०५,४३० एकड़ में जङ्गल आदि हैं। ४,५०,१४० एकड़ भूमि उपजाऊ है। ८८,३६,१०० एकड़ भूमि अन्य प्रकार की है। यहां की मुख्य पैदावार गेहूं, जई, जौ, आलू और सूखी घास है। निम्नलिखित तालिका में मुख्य फसलें और उनकी उपज का क्षेत्र दिया गया है:—

वर्ष	कुल बोया हुआ क्षेत्र	गेहूं		जई		जौ		आलू		सूखी घास	
	१०००	१०००	१०००	१०००	१०००	१०००	१०००	१०००	१०००	१०००	१०००
	एकड़ में	एकड़ में	बुशल में	एकड़ में	बुशल में	एकड़ में	बुशल में	एकड़ में	टन में	एकड़ में	टन में
१९४६-४७	७,५६२	३,५०१	४८,५०१	४५१	६,५०१	१३८	३,३७२	५६	२२४	६७८	९८५
१९४७-४८	७,५५०	३,३२७	४६,९२	६५०	१५,३८१	१६४	३,५७७	५५	१८५	६५७	१,०४२
१९४८-४९	६,९८९	२,९६९	४९,०६४	५४०	७,५९०	१५६	३,५४८	४६	१६६	५९१	९३४
१९४९-५०	६,९१०	२,८२८	५७,५३४	४३८	८,७१८	२३६	४,८७६	५१	१६८	६०७	१,००१
१९५०-५१	६,५०७	२,३५५	५१,२३६	५२७	५,०३४	२१७	४,५१०	५२	१३९	५५७	८५५

१९४९-५० ई० में ४५,३८६ एकड़ में अंगूर की लतें लगी हुई थीं। इन से २२,२०,७७६ गैलन शराब और ४६,९२४ टन मुनक्का मिला था। ४४,६२८ एकड़ भूमि में हरा चारा पशुओं के खिलाने के लिये और १,०६,६०७ एकड़ भूमि में तम्बाकू आदि थी। ५१,१६,५८३ एकड़ भूमि में जङ्गल स्थित है। यहां पर १,८६,४१५ घोड़े, २२,१६,० २५३ गाय-बैल, २,००,१२,९३३ भेड़ें और २,३७,१२७ सूअर हैं।

फिनलैंड

इस का क्षेत्रफल १,५७,५०० वर्ग मील है। यहां की जनसंख्या ४१,९१,२४५ है (१,८५,६६६ पुरुष और २,८९,५७९ स्त्रियां हैं।) १९५०-५१ ई० में फसलें ३०,६४,०१० एकड़ भूमि में बोई गई थीं। ८३,१९० एकड़ भूमि की फसलें सिंचाई द्वारा पैदा की गई थीं। सिंचाई द्वारा होने वाली फसलों में तम्बाकू, गन्ना, तरकारियां और चारा वाली फसलें थीं। इस देश के अधिकतर क्षेत्र में चरागाह पाये जाते हैं। २८,२६३७,५२० एकड़ भूमि पट्टा द्वारा (लीज) केवल चराई के लिये दी जाती है। ८,२५,६२,६८४ एकड़ भूमि में चरागाह स्थित है। इस देश का अधिकतर क्षेत्र जंगलों से ढका हुआ है। इन में अच्छी लकड़ियों के पेड़ मिलते हैं जिनका व्यापार भी होता है। १९४९-५० ई० में ११,१०,७८,००० घन फुट चराई गुड लकड़ी जंगलों से मिली थी। इसके अलावा अन्य प्रकार की इमारती लकड़ी भी ४,३४,२०,००० फुट मिली थी। १९५०

ई० में ७३,०५,४७३ एकड़ में सुरक्षित जंगल थे। यहां की मुख्य उपज गन्ना, गेहूँ, मकई, जौ, जई आलू तम्बाकू, कपास और फल आदि है। निम्नलिखित तालिका में मुख्य फसलें और उनकी उपज क्षेत्र दिया गया है:—

फसलों का नाम	एकड़		उपज	
	१९४९-५०	१९५०-५१	१९४९-५०	१९५०-५१
गन्ना	२,७२,८१२	२,६३,६६६	६५,१८,०४२ टन	६६,९१,७०६ टन
गेहूँ	६,००,०१३	५,५८,७८०	१,१७,७८,४९५ बुशल	८७,८५,२५४ बुशल
मकई	१,१५,५५०	१,१२,४६७	३६,८०,८१७ ,,	३०,२८,८९९ ,,
जौ	२५,०७४	२६,०९९	५,७८,१९३ ,,	४,८९,०५५ ,,
जई	२०,४५६	१६,९९८	३,३७,५६६ ,,	२,२१,२०२ ,,
आलू	११,६२४	१०,७८३	३०,६८१ टन	२४,७२५ टन
टमाटर	५,५८९	६,०६९	६,४३,२४६ बुशल	६,१४,९१४ बुशल
कपास	२,६८८	२,८५२	७,१८,५१३ पौंड	११,०२,४८२ पौंड
तम्बाकू	२,६५७	४,१४२	२५,३९,५९२ ,,	२१,४४,२७८ ,,
अरारोट	६२१	६९९	७,५०६ टन	७,८४९ टन
सेब	४,५८९	४,७४०	५,३६,७४२ बुशल	४,४८,१२९ बुशल
अंगूर	२,६५१	२,५४३	५३,८९,९६७ पौंड	५४,०७,३२८ पौंड
खट्टे फल	४,२९६	४,३५५	४,९४,६४० बुशल	५,९७,२१२ बुशल
केला	५,७३४	५,२४०	५,३३,९६० ,,	५,४८,०५६ ,,
अनन्नास	६,८०७	६,९५०	२३,७४,७७८ ,,	२५,०७,३९१ ,,
हरी चारा वाली फसलें	५,८१,८११	५,८३,३०४	—	—
सब प्रकार की सूखी घास	५५,१८०	४४,९३४	१,१६,४१२ टन	१,०१,३१९ टन

यहां पर ३,०७,२२५ घोड़े, ६७,३३,५५८ गाय बैल, १,७४,७०,५७८ भेड़ और ३,७४,९९१ सुअर हैं।

टस्मेनिया

इस का क्षेत्रफल २६,२१५ वर्ग मील है। यहां की जनसंख्या २,९१,४६९ है (१,४९,४३१ पुरुष और १,४२,०३८ स्त्रियां हैं।) टस्मेनिया का कुल क्षेत्र १,६७,७८,००० एकड़ है। इसके अधिक भाग में जंगल हैं। यहां की मुख्य उपज गेहूँ, जई और फल हैं जो *निम्नलिखित तालिका में दी गई है:—*

फसलों का नाम	एकड़	उपज	फसलों का नाम	एकड़	उपज
गेहूँ	५,४७३	१,२७,२९४	सूखी घास	९१,३३५	१,५५,६५३
जई	२२,८१२	५,७७,४४२	सेब	१८,९३१	४४,०४,०००
आलू	३४,११०	१,२२,०००			

१९४९-५० ई० में ५,९२५ टन मक्खन और ४२१ टन पनीर मिला था। यहां पर ३०,७५६ घोड़े, २,७१,८४ गाय-बैल, ३१,८१,५१६ भेड़ और ४५,४४६ सुअर हैं।

न्यूज़ीलैंड

इसका क्षेत्रफल १,०३,७३६ वर्ग मील है। यहां की जनसंख्या ११,८४,६७२ है। इसका दो तिहाई भाग खेती और चराई के योग्य है। १,२४,००,००० एकड़ भूमि जंगलों से ढकी हुई है। १९५९ ई० में २,०२,२८,४३४ एकड़ भूमि में खेती होती थी। यहां की मुख्य उपज गेहूँ, जई और जौ है। यहां पर १,९४,८४६ घोड़े, ४९,४८,८०९ गाय-बैल, ३,३८,५६,५५८ भेड़ और ५,५२,२७२ सुअर हैं।

संयुक्त राज्य अमरीका

इस राज्य का क्षेत्रफल ३५,५६,४२८ वर्ग मील है। यहां की जनसंख्या १५,०६,६१,००० है (७,४६,२२,००० पुरुष और ७,६०,६४,००० स्त्रियों हैं)। इस देश की कृषि पर विश्व की पहली लड़ाई का भी अधिक असर पड़ा है। भूमि के सामान्य उपजाऊ पन में कमी हो गई है। इस कमी का अनुमान ४० से ५० प्रतिशत तक लगाया गया है। चरागाह वाली भूमि के तीन चौथाई भागों का कोई उपयोग नहीं हो रहा है। यहां के फार्मों की उपज में भी कमी हो गई है। फिर भी यहां के निवासी खाद आदि के द्वारा उपज बढ़ाने का प्रयत्न कर रहे हैं। इस देश की जो औसत उपज १९३५-३९ थी उसमें १९५२ ई० तक प्रतिशत की वृद्धि हुई है। यहां के फार्म तीन भागों में बटे हुये हैं:—(१) बड़े फार्म जो अधिक उपजाऊ हैं। इस प्रकार के फार्मों की उपज कुल उपज का २० प्रतिशत है। (२) वाणिज्य और परिवार सम्बन्धित फार्म-इस प्रकार के फार्म कुल फार्मों के ५५ प्रतिशत है। (३) छोटे फार्म—इनकी संख्या २५,००,००० है। इन फार्मों की उपज कुल फार्मों की उपज की अपेक्षा ८ प्रतिशत कम है। १९४५ ई० में फार्मों की संख्या ५८,५९,१६९ और १९५० ई० में ५३,८४,००० थी। १९४५ ई० के फार्मों का क्षेत्र १,१४,१६,१५,२६४ एकड़ और १९५० ई० के फार्मों का क्षेत्र १,१३,२४,१८,००० एकड़ था। १९४५ ई० में ३५,२८,५६,७६५ एकड़ और १९५० ई० में ३३,६३,४९,००० एकड़ भूमि में फसलों की खेती हुई थी। १९४५ ई० में ४०,००,७४८ और १९५० ई० में ३९,५५,००० फार्मों के लोग स्वयम् मालिक थे। साझेदार मालिक फार्मों की संख्या १९४५ ई० में ६,६०,५०२ और १९५० ई० में ७,९७,०० थी। साझीदार खेतिहरों के फार्मों की

संख्या १९४५ ई० में ४,४६,५५६, और १९५० ई० में ३,५६,००० थी। क्राप्टों के फार्मों की संख्या १९४५ ई० में १८,५८,४२१ और १९५० ई० में १४,३६,००० रही। गोरी जाति वालों के अधिकार में १९४५ ई० में ५१,६६,६५४ और १९५० ई० में ४८,०२,००० फार्म थे। जो लोग सफेद जाति के न थे उनके अधिकार में १९४५ ई० में ३,८४,२१५ और १९५० ई० में ५,८२,००० फार्म थे। १९४० ई० में १० एकड़ वाले फार्मों की संख्या ५,०६,४०२, १९४५ ई० में ५,९४,५६१ और १९५० ई० में ५,११,००० थी। ३० एकड़ वाले फार्मों की संख्या १९५० ई० में १५,४०,१६६ और १९५० ई० में ९३,७६,००० थी। १,००० या इससे अधिक एकड़ वाले फार्मों की संख्या १९४० ई० में १,००,५३१, १९४५ ई० में १,१२,८९९ और १९५० ई० में १,१६,००० थी। १९४५ ई० में १८,६६,१०९ और १९५० ई० में २०,४७,००० फार्मों में टेलीफोन लगे हुये थे। १९४५ ई० में २७,८७,६२४ और १९५० ई० में ४१,६०,०० फार्मों में बिजली भी लगी हुई थी। १९४५ ई० में १२,९९,३५० फार्मों के पास १४,६०,२०० मोटर ट्रक और १९५० ई० में १७,९६,००० फार्मों के पास २१,५६,००० मोटर ट्रक थीं। १९४५ ई० में २०,०२,६६२ फार्मों के पास २४,२१,७४७ ट्रैक्टर और १९५० ई० में २४,६४,००० फार्मों के पास ३५,६६,००० ट्रैक्टर थे। ये ट्रैक्टर खेतों को जोतने और बोने के लिये थे। १९४४ ई० में २,०५,३९,४७० एकड़ भूमि (२,८८,१९५ फार्म) में खेती सिंचाई द्वारा होती थी। यहां की उपज अनाज, गेहूँ, जई, विलायती बाजरा, जौं, सेम, फ्लैक्स, चावल, आलू, रुई और तम्बाकू है। फसलों की उपज और उन का क्षेत्र निम्नलिखित तालिका में दिया हुआ है :—

फसलों का नाम	१९३८-४७ की औसत उपज			१९४८			१९४९		
	१,००० एकड़	१,००० बुशल	बुशल प्रति एकड़	१,००० एकड़	१,००० बुशल	बुशल प्रति एकड	१,००० एकड़	१,००० बुशल	बुशल प्रति एकड़
अनाज	८८,६१७	२७,८७,६२०	३१.५	८६,०६७	३६,८१,७९३	४२ ८	८६,७३५	३,३,७७,७९०	३८ ९
गेहूँ	५९,५८४	९,११,९५०	१६.६	७३,०१७	१३,१३,५३४	१८.०	७६,७५१	११,४६,४६३	१४.९
जई	३८,३४७	१२,३४,०८२	३२.१	४०,१९८	१४,९३,३०४	३७.१	४०,५६०	१३,२२,९२४	३२.६
जौ	१२,७२०	३,०४,७४१	२४ ०	११,९८७	३,१५,८९४	२६.४	९,८७९	२,३८,१०४	२५.१
सेम	८,०२५	१,४८,३८१	१८.०	१०,४३०	२,२३,००६	२१ ४	९,९१२	२,२२,३०५	२२ ४
फ्लैक्स	३,२४८	३०,१०२	९ २	४,८५९	५४,५२९	११.२	४,८८०	४३,६६४	८.९
चावल	१,३५७	६२,९५४	४६.६	१,७८१	८५,०५६	४७.८	१,८२१	८९,१४१	४९.
आलू	२,७३०	३,९३,४०३	१४५.५	२,१०९	४,५२,६५४	२१५.५	१,९०१	४,०१,९६२	२११.४
सकर कन्द	७११	६३,६२६	८९.७	५१५	५०,२०४	९७.४	५४२	५४,२३२	१००.१
विलायती बाजरा	२,८७४	३५,१०९	१२.१	२,०९६	२६,४४९	१२ ६	१,५५८	१८,६५७	१२ ०

अल्बामा

इसका क्षेत्रफल ५१,६०९ वर्ग मील है। यहा की जनसख्या ३० ६१.७४३ है। औसत जनसंख्या प्रति वर्ग मील मे ५९.९ है। यह एक खेतिहर देश है। १९५० ई०मे फार्मो की सख्या २,११.५१२ थी। इनका क्षेत्र २.०८,८८,७८४ एकड़ था। ५७,२९,२९ ४२१ एकड़ भूमि मे फसल बोई गई थी। ३७,७९१ फार्म ट्रैक्टरों द्वारा जोते जाते थे। यहां की मुख्य उपज मक्का, जई, आलू, रुई और गन्ना है। १९४९ ई० मे १८,१०.००० एकड़ भूमि से रुई की ८,६५,००० गांठें मिली थी। २४,२५.७४५ एकड़ भूमि में जङ्गल पाये जाते हैं। यहा पर ५६,००० घोड़े. १,९०,००० खच्चर, ४.३०,००० दूध देने वाली गायें, १३,३०,००० गाय-बैल, २२.००० भेड़ और १२,७५,००० सुअर हैं।

आरीज़ोना

इसका चेत्रफल १,१३,९०८ वर्ग मील है। यहां की जनसख्या ६,४९,५८७ है। यहां की जनसख्या का औसत प्रति वर्ग मील मे ६.६ है। इस देश का क्षेत्र ७,२६,९७,२०० एकड़ है। इस देश की भूमि खेती योग्य है। यहां पर खेती सिंचाई द्वारा होती है। १०,३८,९०० एकड़ भूमि नहरो द्वारा सींची जाती है। यहां पर चरागाह भी हैं जिनमे गाय-बैल और भेड़े आदि चराई जाती है। इन चरागाहों का कुल क्षेत्र ३,९९,१६,४४० एकड़ है जो इस देश के कुल भूमि के क्षेत्र का ५४.९ प्रतिशत है। १९५० ई० मे कुल फार्मों की सख्या १०,४१२ थी। वाणिज्य वाले फार्मों की संख्या ६,७२४ थी। १,२६१ कपास वाले फार्म थे। १९५० ई० मे २,७३,००० एकड़ भूमि से कपास की ९,६३,५६० गांठें मिली थीं। ११४९ ई० मे कुल ७,८२८ फार्म सींचे गये थे। यहां की मुख्य उपज जौ, कपास, जई और फल हैं। यहा पर ६२,००० घोडे, ५,००० खच्चर, ८,८३,०५० गाय-बैल, ५०,००० दूध देने वाली गायें, ३,६१,००० भेड़ और २४,००० सुअर हैं। १,३७,५९,०१८ एकड़ भूमि मे जगल स्थित हैं।

अर्कांसास

इसका चेत्रफल ५३,१०३ वर्ग मील है। यहा की जनसख्या १९,०९,५११ है। औसत जनसख्या प्रति वर्ग मील में ३६.२ है। यह खेती वाला देश है। १९५० ई० यहा पर कुल फार्मों की सख्या १,८२,४२९ थी। इनका क्षेत्र १,८८,७१,२४४ एकड़ था। यहां की मुख्य उपज मक्का, जई, कपास, आलू, और चारा वाली फसलें हैं। १९४९ ई० मे २४,५०,००० एकड़ भूमि से १६,६,०२० कपास की गाठें मिली थीं। यहा पर १,२५,००० घोड़े, १,२५,००० खच्चर १२,०९,००० गाय-बैल, ४,४४,००० दूध देने वाली गायें, ५१,००० भेड़ और ९,७४,००० सुअर हैं।

कैलफोर्निया

इसका क्षेत्रफल १,५८,६९३ वर्ग मील है (१,८९० वर्ग मील के क्षेत्र मे पानी है)। यहा की आबादी १,०५,८६,२२३ है। जनसख्या का औसत प्रति वर्ग मील मे ६७५ है। १,६३,७०,८६१ एकड़ भूमि में पहाड़ और रेगिस्तान हैं। कुल भूमि का क्षेत्र ९,९६,३४,६५२ एकड़ है। ८५,७६,८०७ भूमि मे फार्म बने हुये हैं। यहा पर खेती प्राय सिंचाई द्वारा होती है। यहां की मुख्य उपज गेहूँ, जौ, चावल, कपास, हाप्स, फल, आलू, चुकन्दर और अलफोल्फा है। १९५१ ई० मे कपास की उपज १८,००,००० गाठें, गेहूँ की उपज ९९,६२,००० बुशल, चावल की उपज १,०३,२९,००० बुशल, जौ की उपज ४,०३,३८,००० बुशल, आलू की उपज ३,४६,८५,००० बुशल और चुकन्दर की उपज २६,६०,००० टन थी। यहां पर १,०५,००० घोड़े, ९,००० खच्चर, १४,८०,००० दूध देने वाली गायें, २८,७२,०००० गाय-बैल, १८,६७,००० भेड़ और ८,३५,००० सुअर हैं। १,९९,०९,९९९ एकड़ भूमि मे जगल हैं।

कोलोरेडो

इसका क्षेत्रफल १,०४,२०७ वर्ग मील है (२८० वर्ग मील के क्षेत्र मे पानी है।) यहां की जनसख्या १३,२५,०८९ है। जनसख्या का औसत प्रति वर्ग मील मे १२.७ है। १९५० ई० मे फार्मों की सख्या ४५,५७८ थी। इन फार्मों का कुल क्षेत्र ३,७९,५३,०९९ था। यह कुल भूमि के क्षेत्र का ५७.१ प्रतिशत भाग था। ६८,९२,९०४ एकड़ भूमि मे फसलें बोई गई थीं। वाणिज्य वाले फार्मों की सख्या ३६,४३१ थी। ४,८१४ फार्मों में केवल चुकन्दर की खेती होती है।

इन फार्मों का कुल क्षेत्र लगभग १,१६,००० एकड़ भूमि है। २७,१२१ फार्मों या २८,७२,३८८ एकड़ भूमि में खेती सिंचाई द्वारा होती है। इस देश की कुल भूमि का क्षेत्र ६,६७,१८,०८ एकड़ है जिसके १९.४ प्रतिशत में जंगल और पहाड़ आदि हैं। यहां की मुख्य उपज चुकन्दर, मक्का, आलू, जौ, गेहूँ, सेम, और फल है। १९५१ ई० में मक्का की उपज १,४८,९९,००० बुशल, गेहूँ की उपज ३,१७,०८,००० बुशल, जौ की उपज १,०७,२८,००० बुशल, आलू की उपज १,११६०,००० बुशल और चुकन्दर की उपज १६,५३,०० टन हुई थी। यहां पर १,०३,००० घोड़े, ४,००० खच्चर, १,६८,००० भेड़े और ३,१६,००० सुअर हैं। १,२६,७८,०६० एकड़ भूमि में जङ्गल हैं।

कनेक्टीकट

इसका क्षेत्रफल ५,००६ वर्ग मील है (११० वर्ग मील के क्षेत्र में पानी है।) यहां की जनसंख्या २०,०७,२८० है। जनसंख्या का औसत प्रति वर्ग मील में ४०६.७ है। १९५० ई० में फार्मों की संख्या १५,६१५ थी। इन फार्मों का क्षेत्र १२,७२,३५२ एकड़ था। जो कुल भूमि के क्षेत्र का ४०.६ प्रतिशत भाग था। यहां का मुख्य उपज गेहूँ, जौ, जई और तम्बाकू आदि है।

डेलावेर

इसका क्षेत्रफल २३,६६,०२ वर्ग मील है (४३७.५ वर्ग मील के क्षेत्र में पानी है।) यहां की जनसंख्या ३,१८,०८५ है। यहां की मुख्य उपज मक्का और गेहूं है।

कोलम्बिया

इसका क्षेत्रफल ६६,२३५ वर्ग मील है ८ वर्ग मील के क्षेत्र में पानी है।) यहां की जनसंख्या ८,०२,१७८ है। आबादी का औसत प्रति वर्ग मील में १८,०६७.८ है। यहां के लोगों का मुख्य व्यवसाय कारखानों में काम करना है।

फ्लारिडा

इसका क्षेत्रफल ५८,५६० वर्ग मील है (४,२६८ वर्ग मील के क्षेत्र में पानी है।) यहां की जनसंख्या २७,७१,३०१ है। आबादी का औसत प्रति वर्ग मील में ५१.० है। १९५० ई० में फार्मों की संख्या ५६६२१ थी। इन फार्मों का क्षेत्र १,६५,११,५३६ एकड़ था। यहां की मुख्य उपज गन्ना, तम्बाकू, चावल, मक्का, तम्बाकू, कपास, जई और फल है। १९४९ ई० में तम्बाकू की उपज २,५०,६१,००० पौंड, गन्ना की उपज १०,६१,००० टन, कपास की उपज १८,००० गांठ और चावल, मक्का और जई आदि की उपज २१,२१,५०,००० पौंड थी। यहां पर २८,००० घोड़े, २८,००० खच्चर, १३,००० भेड़ें, १,५२००० दूध देने वाली गाय, ६,१६,००० सुअर और १२,६२,००० गाय बैल हैं। यहां पर १२,४१,६९९ एकड़ में जङ्गल हैं।

जार्जिया

इसका क्षेत्रफल ५८,८७६ वर्ग मील है। ३५८ वर्ग मील के क्षेत्र में पानी है। यहां की जनसंख्या ३४,४४,५७८ है। आबादी का औसत प्रति वर्ग मील में ५८.०८ है। १९५० ई० में फार्मों की संख्या १,६८,१६१ थी। इन फार्मों का क्षेत्र २,५०,४१,०५५ एकड़ है। यहां की मुख्य उपज कपास, तम्बाकू, आलू, चावल और फल है। १९४९ ई० में कपास की उपज ६,१०,००० गांठ, मक्का की उपज ५,६४,००,००० बुशल, चावल और आलू की उपज ६०,३०,००० बुशल थी। यहां पर ३४,००० घोड़े, २२,४०,००० खच्चर, ४,०६,००० दूध देने वाली गाय, १८,००० भेड़े, १२,००००० गाय बैल और २,८४,००० सुअर हैं। १९४९ ई० में तम्बाकू की उपज १, ६५,६०,००० पौंड था।

इडाहो

इसका क्षेत्रफल ८८,४४० वर्ग मील है। ७४९ वर्ग मील के क्षेत्र में पानी है। यहां की ५,८८,६३७ है। जनसंख्या का औसत प्रति वर्ग मील में ७.१ है। इस देश का अधिकतर भाग सूखा है। खेती सिंचाई द्वारा होती है। सिंचाई वाले फार्मों की संख्या २६,४०६ है। इनका क्षेत्र २१,३७,३३७ एकड़ है। इस देश के कुल फार्मों की संख्या ४०,२८४ है। इन का क्षेत्र १,३३ २४,१६२ एकड़ है। यहां की मुख्य उपज गेहूँ, आलू, जौ, जई, चुकन्दर और फल है।

१९४९ ई० में गेहूँ की उपज ३,८१,०१,००० बुशल, आलू की उपज ३,४५,६०,००० बुशल, चुकन्दर की उपज १०,१२,००० टन थी। २,१५,७२,३९४ एकड़ भूमि जङ्गलों से ढकी हुई है। यहां पर ८६,००० घोड़े, ३,००० खच्चर १०,६५,००० भेड़े, २,२२,००० दूध देने वाली गायें, २,०६,००० सुअर और ६,३९,००० गाय-बैल हैं।

इलीनोइस

इसका क्षेत्रफल ५६,४०० वर्ग मील है। ४५३ वर्ग मील के क्षेत्र में पानी है। यहां की जनसंख्या ८७,१२,१७६ है। आबादी का औसत प्रति वर्ग मील में १५५.७ है। यह एक खेतिहर देश है। १९५० ई० में फार्मों की संख्या १,९५,२६८ थी। इन फार्मों का क्षेत्र ३,०६,७८,४९५ एकड़ था। २,०२,६४,४८९ एकड़ भूमि में खेती होती थी। १९५० ई० में १,४२,१२१ फार्मों के पास २,२५,२६३ ट्रैक्टर थे। यहां की मुख्य उपज मक्का, गेहूँ, जई, आलू, जौ, विलायती बाजरा, सेम और फल हैं। १९५० ई० में गेहूँ की उपज २,७५.३८,००० बुशल, जई की उपज १६,६२,१८,००० बुशल और सेम की उपज ९,४७,५२,००० बुशल थी। इस देश में मक्का और सेम की पैदावार मुख्यतः अधिक होती है, १९५० ई० में कुल उपज ४१,९९,२४,००० बुशल थी। प्रति एकड़ की उपज ५१०० बुशल थी। यहां पर १,५५,००० घोड़े, १५००० खच्चर, ३३,१७,००० गाय-बैल, ९,७२,००० दूध देने वाली गायें, ६,२१,००० भेड़ और ६९,६,००० सुअर है। ४,१२,६५४ एकड़ भूमि जङ्गलों से ढकी हुई है।

इंडियाना

इसका क्षेत्रफल ३६,२९१ वर्ग मील है। ८६ वर्ग मील के क्षेत्र में पानी है। यहां की जनसंख्या ३९,३४,२२४ है। आबादी का औसत प्रति वर्ग मील में १०८.६ है। यह एक खेतिहर देश है। कुल क्षेत्र के ८५ प्रतिशत भाग में खेती होती है। १९५० ई० में फार्मों की संख्या १,६६,६२७ थी। इन फार्मों का क्षेत्र २,३१,७१,२०० एकड़ था। यहां की मुख्य उपज मक्का, गेहूँ, जई, विलायती बाजरा, सेम, तम्बाकू, और टमाटर है। १९५० ई० मे गेहूँ की उपज २१,२७,९०,००० बुशल, जई की उपज ५,२५,७७००० बुशल और तम्बाकू की उपज १,३३,२८,००० पौंड थी। यहां पर १८,४८,००० गाय बैल, ९,००० खच्चर, ९४,००० घोड़े, ७,२१,००० दूध देने वाली गायें, ३,८८,००० भेड़ें और ४९,३४,००० सुअर हैं।

आयोवा

इसका क्षेत्रफल ५६,२८० वर्ग मील है। २४ वर्ग मील के क्षेत्र में पानी है। यहां की जनसंख्या २६,२१,०७३ है। जनसंख्या का औसत प्रति वर्ग मील में ४६.५ है। यह एक कृषि-प्रधान देश है। इसका ९५.५ प्रतिशत भाग खेती योग्य है। १९५० ई० मे फार्मों की संख्या २,०३,१५९ थी। इन का क्षेत्र ३,५८,६८,८००० एकड़ था। २,२५,४७,३२७ एकड़ भूमि में खेत होती थी। १९५० ई० में वाणिज्य वाले फार्मों की संख्या १,८७१७ थी। कुल फार्मों के ८१ प्रतिशत भाग में टेलीफोन और ९० प्रतिशत भाग मे बिजली लगी हुई है। यहां जई की पैदावार बहुत अधिक होती है। इसकी औसत उपज प्रति एकड़ में ४२.८ बुशल है। यहां की मुख्य उपज मक्का, जई, गेहूँ, जौ, राई, सेम, और आलू हैं। १९५० ई० में मक्का की उपज ४७,०२,३१,००० बुशल और जई की उपज २६,४८,२३,३९८ बुशल, थी। यहां पर २,०५,००० घोड़े, ५००० खच्चर, ११,५८,००० दूध देने वाली गायें, ५,००० सुअर, ५२,०८,००० गाय बैल और १०,२१,००० भेड़ें हैं।

कान्सास

इसका क्षेत्रफल ८२,२७६ वर्ग मील है। १६३ वर्ग मील के क्षेत्र में पानी है। यहां की जनसंख्या १९,०५,२९९ है। जनसंख्या का औसत प्रति वर्ग मील में २३.२ है। कान्सास एक कृषि प्रधान देश है किन्तु कभी-कभी यहां की फसलों को वर्षा की कमी के कारण हानि भी हो जाती है। १९५० ई० में फार्मों की संख्या १,३१,३९४ थी। इन फार्मों का क्षेत्र ४,८९,११,२६६ एकड़ है। यहां की मुख्य उपज गेहूँ, मक्का, जई, जौ, राई, आलू और फ्लैक्स है। ५०,००० से ७०,००० एकड़ मे केवल गेहूँ की खेती होती है। १९५० ई० मे मक्का की उपज ९,३१,८८,००० बुशल

और जई की उपज २,११,२०,००० बुशल, थी। यहां पर घोड़े २,०६,००० दूध देने वाली गायें ६,२८,००० खच्चर, १४,०००, गाय-बैल ३६,२७,००० भेड़े ३,३६,००० और १२,५३,००० सुअर हैं।

केन्टकी

इसका क्षेत्रफल ४०,३९५ वर्ग मील है। २८६ वर्ग मील के क्षेत्र में पानी है। यहां की जनसंख्या २९,४४,८०६ है। आबादी का औसत प्रति वर्ग मील ७३.५ है। यह एक खेतिहर देश है। १९५० ई० में फार्मों की संख्या २,१८,४७६ थी इन फार्मों का क्षेत्र १,९४,४१,७७१ एकड़ है। यहा की मुख्य उपज मक्का, गेहूँ, आलू, हेम्प, कपास, और तम्बाकू है। यह देश पशु-पालन के लिये भी प्रसिद्ध है। यहा पर १,७७,२०० घोड़े, १६,०८,००० गाय-बैल, १,३६,००० खच्चर, ६,२४,००० दूध देने वाली गाये, ७,००,००० भेड़ और ६,५०,००० सुअर हैं १३,९३,५२४ एकड़ मे जगल पाये जाते हैं।

लूसियाना

इसका क्षेत्रफल ४८,५२२ वर्ग मील है। ३,३४६ वर्ग मील के क्षेत्र मे पानी हैं। यहा की जनसख्या २६,८३,५१६ है। आबादी का औसत प्रति वर्ग मील मे ५९ ४ है। यहा के लोगो का मुख्य व्यवसाय खेती करना है। १९५० ई० मे फार्मों की सख्या १,२४,१८१ थी। इनका क्षेत्रफल १,१२,०२,२७८ एकड़ था। यहा की मुख्य उपज गन्ना, मक्का, चावल, आलू, और कपास है। १९४९ ई० मे मक्का की उपज १,८४,४६,००० बुशल, आलू की उपज ८३,२०,००० बुशल और चावल की उपज २,४५,९९,००० बुशल थी। यहा पर १,०९,००० घोडे, और ३,३१,००० दूध देने वाली गाये,१४,२९,००० गाय-बैल और ९,३१,००० सुअर हैं। १२७८,९७७ एकड़ भूमि मे जगल है।

मैन

इसका क्षेत्रफल ३३,२१५ वर्ग मील है। २,१७५ वर्ग मील के क्षेत्र मे पानी है। यहा की जनसख्या ९१,१३,७७४ है। आबादी का औसत प्रति वर्ग मील मे २९.४ है। इस देश का कुल क्षेत्र १,९८,६५६०० एकड़ है। इसके ८५ प्रतिशत भाग मे जंगल पाये जाते है। १९५० ई० मे यहा पर ३०,३५८ फार्म थे। इनका क्षेत्रफल ४१,८१,६१३ एकड़ था। ९,३८,०२८ एकड मे खेती होती थी। यहां की मुख्य उपज जई, राई, फल और आलू है। १९४९ ई० मे आलू की उपज ७,३३,४०,००० बुशल थी। यहां पर २२,००० घोड़े, १,०२,००० दूध देने वाली गायें, २,०४,००० गाय-बैल, २३,००० भेड़ें और २८,००० सुअर हैं।

मेरीलैंड

इसका क्षेत्रफल १०,५७७ वर्ग मील है। ६९० वर्ग मील के क्षेत्र मे पानी है। यहां की आबादी २३,४३,००१ है। आबादी का औसत प्रति वर्ग मील २३६.९ है। यहा के लोगो का मुख्य व्यवसाय खेती है। १९५० ई० मे कुल फार्मों की संख्या ३६,१०७ थी। इनका क्षेत्र ४०,५५,५२९ एकड़ था। जो कुल भूमि के क्षेत्र का ६४.१ प्रतिशत भाग था। यहा की मुख्य उपज गेहूँ, मक्का, आलू तम्बाकू और टमाटर है। यहा पर ४१,००० घोडे, ८,००० खच्चर २,४५,००० दूध देने वाली गाये, ४७,००० भेड़ें, ४,४९,००० गाय-बैल और २,७०,००० सुअर हैं।

मैसाचुसेट्स

इसका क्षेत्रफल ८,२५७ वग मील है। ३५० वर्ग मील के क्षेत्र मे पानी है। यहां की जनसंख्या ४६,९०,५१४ है। आबादी का औसत प्रति वर्ग मील में ५९३.२ है। १९५० ई० में फार्मों की सख्या २२,२२० थी। इनका क्षेत्र १६६०,२८६ एकड़ था जो कुल क्षेत्र का ३३ प्रतिशत भाग था। यहां की मुख्य उपज टमाटर, गेहूँ, मक्का, आलू, और तम्बाकू है। १९४८ ई० में आलू की उपज २८,५०,००० बुशल और तम्बाकू की उपज १,२६,२४,००० पौंड थी। यहा पर १,१३,३४२ दूध देने वाली गायें और १,७६,८०४ गाय-बैल हैं।

मिशीगन

इसका क्षेत्रफल ६६,७२० वर्ग मील है। १६,६६८ वर्ग मील के क्षेत्र में पानी है। यहां की जनसख्या ६३,७१,७६६ है। आबादी का औसत प्रति वर्ग मील में १११.७ था। पहले यह एक खेतिहर देश था किन्तु अब यह अपने व्यवसायिक कारबार के लिये प्रसिद्ध है। १९५० ई० में फार्मों की सख्या

१,५५,२८६ थी। इनका क्षेत्र १,७२,६६,९९ एकड़ था; वाणिज्य वाले फार्मों की संख्या १,०६,८२४ थी। यहां की मुख्य उपज जई, मक्का, गेहूँ, चुकन्दर, फल, सेम, और आलू है। १९५१ ई० में गेहूँ की उपज ३,१७,४१,००० बुशल, चुकन्दर की उपज ५,५०,००० टन, जई की उपज ६,०२,९५,००० बुशल और मक्का की उपज ७,०८,७४,००० बुशल थी। यहां पर ४,२८,००० भेड़ें, ८०,००० घोड़े, १०,२६,००० दूध देने वाली गायें, १०,०१,००० सुअर और १६,६१,००० गाय-बैल हैं। २३,९९,४१५ एकड़ भूमि में जङ्गल हैं।

मेनीसोटा

इसका क्षेत्रफल ८४,०६८ वर्ग मील है। ४,६३८ वर्ग मील के क्षेत्र में पानी है। यहां की जनसंख्या २९,८२,४८३ है। आबादी का औसत प्रति वर्ग मील में ३७.९ है। यह एक ऐतिहासिक देश है। १९५० ई० में यहां पर फार्मों की संख्या १,७९,१०१ थी। इनका क्षेत्र ३,२८,८३,१६३ एकड़ था। जो कुल भूमि के क्षेत्र का ६४.२ प्रतिशत भाग था। वाणिज्य वाले फार्मों की संख्या १,५७,०२१ एकड़ थी। कुल फार्मों के ५९ प्रतिशत में टेलीफोन और ८४ प्रतिशत में बिजली लगी हुई है। यहाँ की मुख्य उपज फ्लैक्स, गेहूँ, मक्का, जई, जौ, सेम, और राई है। १९५१ ई० में फ्लैक्स की उपज १,०८,४५,००० बुशल, मक्खन २५,१३,८९,००० पौंड, गेहूँ की उपज २,००,२२,००० बुशल, मक्का की उपज ५०,५६,१८,००० बुशल, जई की उपज २१,२७,४६ बुशल और जौ, राई और सेम आदि की उपज १,८८,४८,००० बुशल थी। ५०,४१,३२४ एकड़ भूमि में जङ्गल हैं। यहां पर १४,२१,००० दूध देने वाली गायें, २,२७,००० घोड़े, ३३,४२,००० गाय-बैल, ६,१७,००० भेड़ें और ३८,१३,००० सुअर हैं।

मिसीसिपी

इसका क्षेत्रफल ४७,७१६ वर्ग मील है। ३९६ वर्ग मील के क्षेत्र में पानी है। यहां की जनसंख्या २१,७८,९१४ है। यहाँ के लोगों का मुख्य व्यवसाय खेती करना है। यहां की मुख्य उपज आलू, कपास, गन्ना, मक्का, जई, राई, चावल और गेहूँ है। १९४९ ई० में कपास की खेती २७,७०,००० एकड़ में हुई थी। जिसमें कपास की उपज १४,९०,९००० गांठ हुई थी। कपास की उपज का औसत प्रति वर्ग मील में ४४१ पौंड तक था किन्तु १९४९ ई० में यह उपज अस्थायी रूप से घट कर २४८ पौंड हो गई थी। २०,७७,३२५ एकड़ भूमि जङ्गल में हैं। इन जङ्गलों में अच्छी अच्छी लकड़ियां भी मिलती हैं जिनसे व्यापार होता है। यहां पर ५,४६,००० दूध देने वाली गायें, १,०४,००० घोड़े, २,७६,००० खच्चर, १६,७४,००० गाय बैल, १,०४,००० भेड़ें और ९,७४,००० सुअर हैं।

मिसूरी

इसका क्षेत्रफल ६९,६७४ वर्ग मील है। ४०४ वर्ग मील के क्षेत्र में पानी है। यहां की जनसंख्या ३९,५४,६५३ है। आबादी का औसत प्रति वर्ग मील में ५७.० है। इस देश का मुख्य व्यवसाय खेती है। १९५० ई० में यहां पर फार्मों की संख्या २,३०,०४५ थी। इन फार्मों का क्षेत्र ३,५१,२३,१४३ एकड़ था। यहां की मुख्य पैदावार गेहूँ, जई, आलू, कपास और तम्बाकू है। १९४९ ई० में कुल उपज १७,३९,६३,००० बुशल थी। इसमें गेहूँ की उपज ३,५०,२८,००० बुशल, जई की उपज ४,३२,४८,००० बुशल, आलू की उपज २४,३२,००० बुशल, कपास की उपज ४,६०,००० बुशल और तम्बाकू की उपज ५९,८०,००० पौंड थी। ३४,५९,९९९ एकड़ भूमि में जंगल हैं। यहां पर ९,३६,००० दूध देने वाली गायें, ७९,००० खच्चर, ३,४७,००० घोड़े, १०,५४,००० भेड़ें, ४४,२९,००० सुअर और ३१,०७,००० गाय-बैल हैं।

मानटाना

इसका क्षेत्रफल १,४७,१३८ वर्ग मील है। ८२२ वर्ग मील मे पानी है। यहा की जनसंख्या ५,९१०२४ है। आबादी का औसत प्रति वर्ग मील में ४.० है। १९५० ई० मे यहा फार्मों की संख्या ३५,०८५ थी। इन फार्मों का क्षेत्रफल ५,९२,४७,४३४ एकड़ था। वाणिज्य वाले फार्मों की संख्या ३०,०३९ थी। कुल फार्मों के २८ प्रतिशत भाग मे टेलीफोन और ७५ प्रतिशत भाग में बिजली लगी हुई है।

१३,४५७ फार्मों में खेती सिंचाई द्वारा होती है। इन फार्मों का क्षेत्रफल १७,१६,७९२ एकड़ है। कुल उपज का २२ प्रतिशत भाग सिंचाई द्वारा पैदा किया जाता है। १,६४,८१,७६० एकड़ मे जंगल हैं। यहां की मुख्य पैदावार गेहूँ, जौ, चुकन्दर, मका, आलू, फ्लैक्स और जई है। १९४९ ई० में गेहूँ की उपज ६,४०,८०,००० बुशल, जौ की उपज १,२०,५५,००० बुशल, और चुकन्दर की उपज ६,९०,००० टन थी। यहा पर दूध देने वाली गाये १,२८,००० भेड़ें १७,३५,००० घोड़े १,५३,०००, सुअर और १७,३५-००० गाय-बैल हैं।

नेब्रास्का

इसका क्षेत्रफल ७७,२२७ वर्ग मील है। ५८४ वर्ग मील के क्षेत्र मे पानी है। यहां की जनसख्या १३,२५,५१० है। आबादी का औसत प्रति वर्ग मील में १७.२ है। १९५० ई० मे फार्मों की सख्या ३,११० थी। इन फार्मों का क्षेत्रफल ७०,६३,५२५ एकड़ था। २,८१९ फार्मों में खेती सिंचाई द्वारा होती है। इस देश का कुल क्षेत्रफल ५,०२,८६,१८८ एकड़ है जिसकी ३९.९ प्रतिशत भूमि अधिक खराब है। १४.३ प्रतिशत में पर्वत और जगल आदि हैं। यहा की मुख्य उपज गेहूँ, जौ और आलू हैं। २५,००० दूध देने वाली गायें, ३४,००० घोड़े, ५,८०,००० गाय-बैल, ४,६५,००० भेड़ें, और २६,००० सुअर हैं। जगलों का क्षेत्रफल ५३,८१,५३४ एकड़ है।

न्यूहम्पशायर

इसका क्षेत्रफल ९,३०४ एकड़ है। २८० वर्ग मील के क्षेत्र में पानी है। यहा की जनसंख्या ५,३३,२४२ है। आबादी का औसत प्रति वर्ग मील में ५९.० है। १९५० ई० मे फार्मों की सख्या १३,३९० थी। इनका क्षेत्रफल १७,१३,७२१ एकड़ था। २,९०,१९९ एकड भूमि मे खेती होती थी। वाणिज्य वाले फार्मों की सख्या ६,३९३ थी। यहां की मुख्य उपज आलू, जौ, गेहूँ और फल है। ९,२२,००५ एकड़ भूमि में जंगल हैं। यहा पर ७०,००० दूध देने वाली गायें, १०,००० घोड़े, १,१८,००० गाय-बैल, ७,००० भेड़े और १३,००० सुअर हैं।

न्यूजर्सी

इसका क्षेत्रफल ७,८३६ वर्ग मील है। ३१४ वर्गमील के क्षेत्र मे पानी है। यहा की जनसख्या ४८,३५,३२९ है। आबादी का औसत प्रति वर्ग मील में ६४२.८ है। यहा के लोगो का मुख्य व्यवसाय ढोर पालना, बाग लगाना, फल उगाना और जंगलो में काम करना है। १९५० ई० में फार्मों की सख्या २४,८३८ थी। इनका क्षेत्रफल १७,२५,४४१ एकड़ था। यहां की मुख्य उपज गेहूँ, आलू, जौ, जई और टमाटर है। यहा पर ११,००० घोड़े, २,२६,००० गाय-बैल, १,५२,००० दूध देने वाली गायें, १०,००० भेड़ें और ७२,००० सुअर हैं।

न्यूमेक्सिको

इसका क्षेत्रफल १,२१,६६६ वर्ग मील है। १५५ वर्ग मील के क्षेत्र में पानी है। यहा की जनसख्या ६,८१,७८७ है। आबादी का औसत प्रति वर्ग मील मे ५.६ है। यहां खेती सिंचाई द्वारा होती है। १९५० ई० मे १२,६९१ फार्मो मे खेती सिंचाई द्वारा होती थी। इन फार्मों का क्षेत्रफल ६,५५,२८७ एकड़ है। ३,५०० फार्मों मे टेलीफोन, १४,०३७ और फार्मो मे बिजली लगी हुई है। इस देश का कुल क्षेत्रफल ७,७५,८८,५३६ एकड़ है जिसकी ३६.५ प्रतिशत भूमि खराब है। १३.५ प्रतिशत मे पहाड़ और जगल आदि हैं। जगलों का क्षेत्र १,०१,०५,४९३ एकड़ है। यहा की मुख्य उपज गेहूँ,मक्का, कपास और आलू है। १९४९ ई० मे ३,१०,००० एकड़ भूमि से कपास की उपज २,५५,००० गाठें थी। यहा पर ८१,००० घोड़े, ६०,००० दूध देने वाली गायें, ५,००० खच्चर, ११,६६,००० गाय-बैल, १३,९७,००० भेड़ें और ५३,००० सुअर हैं।

न्यूयार्क

इसका क्षेत्रफल ४९,२०४ वर्ग मील हैं। १,५५० वर्ग मील मे पानी है। यहा की आबादी १,४८,३०,१९२ है। आबादी का औसत प्रति वर्ग मील में ३११.२ है। यह एक खेतिहर प्रदेश है। १९५० ई० मे फार्मों की संख्या १,२४,९७७ थी। इनका क्षेत्रफल १,६०,१६,७२१ एकड़ था। वाणिज्य वाले फार्मों की

सख्या ८७,८६९ थी। यहा की मुख्य उपज मक्का, गेहूँ, जई, जौ, फल, प्याज और आलू है। १९५०ई० में कुल औसत उपज ३.०३,४०,००० बुशल थी। इनमें गेहूँ की उपज १,२४,७०,००० बुशल, जई की उपज २.२४,४१,००० बुशल और आलू की उपज ३,४३,१५,००० बुशल थी। यहां पर १,२६,००० घोड़े, १४,८२,००० दूध देने वाली गायें, २,००० खच्चर, २०,४८,००० गाय-बैल, १,८२,००० भेड़े और १,९३.००० सुअर हैं।

उत्तरी कारोलीना

इसका क्षेत्रफल ५२,४२६ वर्ग मील है। ३ ८६८ वर्ग मील मे पानी है। यहा की जनसख्या ४०,६१,९२९ है। आबादी का औसत प्रति वर्ग मील मे ८२.६ है। इस देश के लोगों का मुख्य व्यवसाय खेती करना है। १९५० ई० मे यहां पर २,८८,५०८ फार्म थे। इनका क्षेत्रफल १,९३,१७,९२७ एकड़ था। वाणिज्य वाले फार्मों की सख्या १,९३,५४१ थी। यहां की मुख्य उपज मक्का, कपास, तम्बाकू, और आलू है। मक्का की उपज बहुत कम होती है। १९४९ ई० मे कुल उपज ७,५५,६५,००० बुशल थी। इसमें तम्बाकू की ७४,५१,२०,००० पौंड और आलू की उपज ५८,७६,००० बुशल, थी। ८,१५,००० एकड़ मे कपास की ४,६०,००० गाठे मिली थी। ३५,५३,४३६ एकड़ भूमि में जंगल हैं। यहां पर ३,८७,००० दूध देने वाली गायें, ८२,००० घोड़े, २,४८,००० खच्चर, ७,१०,००० गाय-बैल, ४०,००० भेड़े और ११,२०,००० सुअर हैं।

उत्तरी डाकोटा

इसका क्षेत्रफल ७०,६६५ वर्ग मील है। ६११ वर्ग मील में पानी है। यहा की जनसख्या ६ १९,६३६ है। आबादी का औसत प्रति वर्ग मील मे ८.८ है। यहा के निवासियो का मुख्य व्यवसाय खेती करना है। १९५० ई० मे फार्मों की सख्या ६५,४०१ थी। इनका क्षेत्रफल ४,१२,०३,१४४ एकड़ था। कुल फार्मो के ४१ प्रतिशत भाग मे टेलीफोन और ६७ प्रतिशत भाग मे बिजली लगी हुई है। ७,६४,४२५ एकड़ भूमि जंगलों मे ढकी हुई है। यहा की मुख्य उपज जौ, राई, गेहूँ, फ्लैक्स, आलू, जई और मक्का है। १९४९ ई० में जौ की उपज २,६६,०८,००० बुशल गेहूँ की उपज ७,७४,२६,००० बुशल और राई की उपज २७,४८,००० बुशल थी। यहां पर १,५३,००० घोड़े, ४,२१,००० दूध देने वाली गायें, ३,८८,००० भेड़े, १५,४२,००० गाय-बैल और ४,१३,००० सुअर हैं। ७,६४,४२५ एकड़ मे जंगल हैं।

ओहाइयो

इसका क्षेत्रफल ४१,२२२ वर्ग मील है। १०० वर्ग मील के क्षेत्रफल मे पानी है। यहां की जनसख्या ७९,४६,६२७ है। यहा खेती सिंचाई द्वारा होती है। १९५० ई० में सिंचाई वाले फार्मों की सख्या १७,६६३ थी। इनका क्षेत्रफल १३,०६,८१० एकड़ था। यहा पर १९५०ई० में कुल फार्मों की सख्या ५९,८२७ थी। इनका क्षेत्रफल २,०३,२७,६८३ एकड़ था। जो कुल भूमि के क्षेत्र का ३३ प्रतिशत भाग था। ३२,१८,७६७ एकड़ भूमि मे अनाज की फसलें बोई जाती थी। वाणिज्य वाले फार्मों की सख्या ३४,४७० थी। कुल फार्मों के ५० प्रतिशत में टेलीफोन और ९१ प्रतिशत में बिजली लगी हुई है। २,९६,६१,८०० एकड़ भूमि मे जंगल पाये जाते हैं। यहा की मुख्य उपज गेहूँ हैं। यहा पर २,३५,००० दूध देने वाली गायें, ६,५६,००० भेड़े, ९,१,४१,००० सुअर ११,१८,००० गाय-बैल और ६३,००० घोड़े हैं। ३९,०००,००० एकड भूमि में चरागाह स्थित हैं। इनमें भेड़, बकरी और गाय-बैल आदि चराये जाते हैं।

पेन्सिल्वेनिया

इसका क्षेत्रफल ४५,३३३ वर्ग मील है। २९४ वर्ग मील के क्षेत्रफल में पानी है। यहा की जनसख्या १,०४,९८,०१२ है। आबादी का औसत प्रति वर्ग मील में २३३ ० है। यहा के लोगों का मुख्य कारबार खेती करना, फल उगाना, पशु आदि पालना और जगलो मे काम करना है। १९५० ई० मे यहा पर खेती वाले फार्मों १,४६,८८७ थी। इनका क्षेत्रफल १,४१,१२,८४१ एकड़ था। ५६,३५,०९० एकड भूमि मे अनाज वाली फसलो की खेती होती थी। यहा की मुख्य उपज मक्का, गेहूँ, जई, फल और आलू है। यहा पर सिगार वाले पत्ते की तम्बाकू की भी उपज होती है। १९४९ ई० मे इस तम्बाकू की उपज

५,८७,०९,००० पौंड, जाड़े वाले गेहूँ की उपज २,११,१४,००० बुशल, जई की उपज २,४६,३०,००० बुशल, मक्का की उपज ६,४०,७७,००० बुशल और आलू की उपज १,९१,५८,००० बुशल थी। यहां पर १०,२०,००० दूध देने वाली गायें, १,१०,००० घोड़े, ११,००० खच्चर, १७,९०,००० गाय-बैल, २,१७,००० भेड़ें, और ७,०४,००० सुअर हैं।

रोड द्वीप

इसका क्षेत्रफल १,२१४ वर्ग मील है। १५६ वर्ग मील के क्षेत्रफल में पानी है। यहां की आबादी ७,९१,८९६ है। आबादी का औसत प्रति वर्ग मील में १९३.२ है। इस देश की अधिकतर भूमि खेती योग्य है। १९५० ई० में यहां पर फार्मों की संख्या १,९९,३५९ थी। इनका क्षेत्रफल २,०९,६९,४११ एकड़ था। १,०२,९५,५९० एकड़ भूमि में अनाज की फसलों की खेती होती थी। १९५० ई० में वाणिज्य वाले फार्मों की संख्या १,२४,४५६ थी। यहां की मुख्य उपज मक्का, जई, गेहूँ, आलू, चुकन्दर, तम्बाकू और फल हैं। १९५० ई० में मक्का की उपज १७,८९,२८,००० बुशल, जई, की उपज ४,१२,५२,००० बुशल, गेहूँ की उपज ४,६५,९६,००० बुशल और आलू, राई, और तम्बाकू की उपज २,६४,३०,००० पौंड थी। १,००,४४५ एकड़ भूमि में जंगल हैं। यहां पर १,१२,००० घोड़े, १०,६०,००० दूध देने वाली गायें, ५,००० खच्चर २२,३५,००० गाय-बैल, ९,२९,००० भेड़ें, और २४,३०,००० सुअर हैं।

ओकलाहोमा

इसका क्षेत्रफल ६९,९१९ वर्ग मील है। ६२६ वर्ग मील के क्षेत्रफल में पानी है। यहां की जनसंख्या २२,३३,३५१ है। आबादी का औसत प्रति वर्ग मील में ३२.२ है। यह एक खेतिहर देश है। १९५० ई० में फार्मों की संख्या १,४२,२४६ थी। इनका क्षेत्रफल ३,६०२६,६०३ एकड़ था। १,१८,९६,०४० एकड़ भूमि में अनाज की फसलें बोई जाती थी। यहां की मुख्य उपज मक्का, गेहूँ, जई, और कपास है। १९५० ई० में मक्का की उपज ३,१७,२५,००० बुशल, गेहूँ की उपज ४,३६,१४,००० बुशल और जई की उपज १,४६,६५००० बुशल थी। १९५० ई० में कपास की उपज भी २,३०,००० गाठें थी। ३,४४,२६९ एकड़ भूमि में जङ्गल हैं। यहां पर ६,४८,००० दूध देने वाली गायें, १,१०,००० भेड़ें, १,९२,००० घोड़े, २८,१४,००० गाय-बैल, २५,००० खच्चर और ८,४३,०००० सुअर हैं।

ओरेगन

इसका क्षेत्रफल ६६,६८१ वर्ग मील है। ६३१ वर्ग मील के क्षेत्रफल में पानी है। यहां की जनसंख्या १५,२१,३४१ है। आबादी का औसत प्रति वर्ग मील में १५.८ है। इस देश की कुल भूमि का क्षेत्र ६,१६,६४,००० एकड़ है। यहां पर खेतों की संख्या का औसत प्रति वर्ग मील में ७४८.५ है। १९५० ई० में फार्मों की संख्या २,५६८ थी। इनका क्षेत्रफल १,६१,०५२ एकड़ था। जो कुल भूमि के क्षेत्र का २८.२ प्रतिशत था। ३६,७८२ एकड़ भूमि में अनाज के फसलों की खेती होती थी। वाणिज्य वाले फार्मों की संख्या १५६० थी। यहां की मुख्य उपज कपास है।

दक्षिणी कैरोलीना

इसका क्षेत्रफल ३१,०५५ वर्ग मील है। ४६१ वर्ग मील के क्षेत्रफल में पानी है। यहां की जनसंख्या २१,१७,०२७ है। आबादी का औसत प्रति वर्ग मील में ६९.१ है। यह एक खेतिहर देश है। १९५० ई० में यहां पर १,३६,३६४ फार्म थे। इनका क्षेत्रफल १,१८,७८,७६३ एकड़ था। वाणिज्य वाले फार्मों की संख्या ८४,१०,१ थी। इस राज्य के कुल क्षेत्र के ६८ प्रतिशत भाग में जङ्गल हैं। यहां की मुख्य उपज मक्का, जई, कपास, तम्बाकू, फल और आलू है। १९४६ ई० में जई की उपज १,४३,००,००० पौंड और तम्बाकू की उपज १४,७६,३०,००० पौंड थी। १२,५०,००० एकड़ भूमि में कपास की पैदावार ५३०,००० गाठें थी। यहां पर १,५२,००० दूध देने वाली गायें, ३१,००० घोड़े, १,५१,००० खच्चर, ३,६०,००० गाय-बैल, ३,००० भेड़ें और ६,५३,००० सुअर हैं।

दक्षिणी डाकोटा

इसका क्षेत्रफल ७७,०४७ वर्ग मील है। ५११ वर्ग मील के क्षेत्रफल में पानी है। यहां की जनसंख्या ६,५२,७४० है। आबादी का औसत प्रति वर्ग मील में ८.५ है। १९५० ई० में यहां पर ६६,४५२ फार्म थे। इनका क्षेत्रफल ४,४७,८५,५२६ एकड़ था। वाणिज्य वाले फार्मों की संख्या ६२,७६७ थी। कुल फार्मों के ५६ प्रतिशत भाग में टेलीफोन और ६६ प्रतिशत भाग में बिजली लगी हुई है। यहां की मुख्य उपज मक्का, जई, जौ, राई, गेहूँ, फ्लैक्स और आलू है। १९४९ ई० में गेहूँ की उपज २,८०,६६,००० बुशल, मक्का की उपज ८,२८,२४,००० बुशल, जई की उपज ६,७६,८८,००० बुशल और जौ की उपज १४६,५८,००० बुशल थी। जङ्गलों का क्षेत्रफल १४,०३,१५७ एकड़ है। यहां पर १,७०,००० घोड़े, १,००० खच्चर, ३,७९,००० दूध देने वाली गायें ८,७४,००० भेड़ें, २४,७६,००० गाय-बैल और १४,४२,००० सुअर हैं।

टिनेसी

इसका क्षेत्रफल ४२,२४६ वर्ग मील है। ३,६६५ वर्ग मील के क्षेत्रफल में पानी है। यहां की जनसंख्या ३२,९१,७१८ है। आबादी का औसत प्रति वर्ग मील में ७४.४ है। १९५० ई० में कुल फार्मों की संख्या ३,४१,६३१ थी। इनका क्षेत्र १,८५,३४,२८० एकड़ है। वाणिज्य वाले फार्मों की संख्या १,३८,२१६ थी। यहां की मुख्य उपज मक्का, कपास, तम्बाकू, गेहूँ, जौ, सेम और आलू है। १९५० ई० में मक्का की उपज ७,२७,९४,००० बुशल, कपास की उपज ४,०६,००० गांठ, और तम्बाकू की उपज १३,३२,२०,००० पौंड हुई थी। १५,३१,७६७ एकड़ भूमि में जङ्गल हैं। यहां पर ६,४०,००० दूध देने वाली गायें, १,१३,००० घोड़े, १,६०,००० खच्चर, १५,४०,००० गाय-बैल, २,७०,००० भेड़ें और १३,८५,००० सुअर हैं।

टेक्सास

इसका क्षेत्रफल २,६७,३३९ वर्ग मील है। ३,६९५ वर्ग मील के क्षेत्रफल में पानी है। यहां की जनसंख्या ७७,११,१९४ है। यह एक कृषिप्रधान देश है यहां पर खेती सिंचाई द्वारा होती है। १९४८ ई० में ३०,००० फार्म थे। जिनका क्षेत्र २७,४४,१००० एकड़ था और जो सिंचे गये थे। यहां की मुख्य उपज मक्का, प्याज, कपास, गेहूँ, जौ, चावल, फल, आलू और तरकारियां हैं। १९४९ ई० में ५६,००,००० कपास की गाँठों की उपज १,०७,३५,००० एकड़ भूमि से हुई थी। कपास की औसत उपज प्रति एकड़ भूमि में २६४ पौंड थी। इसके अलावा १९४९ ई० में प्याज की उपज ३६,८५,००० बोरे (प्रति बोरे में ५० पौंड की दर से) मक्का की उपज ५,८२,०८,००० बुशल, गेहूँ की उपज १०,२८,४८,००० बुशल, जई की उपज ३,४०,२०,००० बुशल, और चावल की उपज २,२३,१८,००० बुशल थी। १७,१४,३७४ एकड़ भूमि में जङ्गल हैं। यहां पर १३,६६,००० दूध देने वाली गायें, ६८,२१,००० भेड़ें, ३,५२,००० घोड़े, १,३६,००० खच्चर, २३,७५,००० बकरे और ६४,५५,००० भेड़े हैं।

उटाह

इसका क्षेत्रफल ८४,९९० वर्ग मील है। २,८०६ वर्ग मील के क्षेत्रफल में पानी है। यहां की जनसंख्या ६,८८,८६२ है। आबादी का औसत प्रति वर्ग मील ८.३ है। १९५० ई० में कुल फार्मों की संख्या २४,१७६ थी। इनका क्षेत्रफल १,०६,४१ १६५ एकड़ था। १२,७८,४६६ एकड़ भूमि में अनाज की खेती होती थी। ८६,८३,७८७ एकड़ भूमि जङ्गलों से ढकी हुई है। खेती प्रायः सिंचाई ही द्वारा होती है। सिंचाई वाले फार्मों की संख्या २१,१२६ है। जो कुल फार्मों का ८७ प्रतिशत भाग है। इनका क्षेत्रफल १२,७८,४६६ एकड़ है। यहां की मुख्य उपज गेहूँ जौ, आलू, चारावाली फसलें और चुकन्दर है। यहां पर १,१६,००० दूध देने वाली गायें, ५७,००० घोड़े १,००० खच्चर, ४,६०,००० गाय-बैल, १३,३२,००० भेड़े और ८८,००० सुअर हैं।

वरमान्ट

इसका क्षेत्रफल ९,६०९ वर्ग मील है। ३३१ वर्ग मील के क्षेत्रफल में पानी है। यहां की जनसंख्या ३,७७,७४७ है। आबादी का औसत प्रति वर्ग मील

में ४०.७ है। यहां के लोगों का मुख्य व्यवसाय खेती करना है। १९५० ई० में फार्मों की संख्या १६,०४३ थी। इनका क्षेत्रफल २५,२७,२८१ एकड़ था। ११,५६,८८८ एकड़ भूमि में अनाज के फसलों की खेती होती थी। यहां की मुख्य उपज जई, मक्का, आलू और फल है। यहां पर २,८८,००० दूध देने वाली गायें, ३०,००० घोड़े, १२,००० भेड़ें, ४,३३,००० गाय-बैल और २१,००० सुअर हैं।

पश्चिमी-वर्जीनिया

इसका क्षेत्रफल ४०,८१५ वर्ग मील है। ६१६ वर्ग मील के क्षेत्रफल में पानी है। यहां की जनसंख्या ३,३१८,६८० है। आबादी का औसत प्रति वर्ग मील में ८३.१ है। १९५० ई० में यहां पर फार्मों की संख्या १,५०,६६७ थी। इनका क्षेत्रफल १,५५७२,२६३ एकड़ है। ३३,१२,८४६ एकड़ में अनाज के फसलों की खेती होती थी। वाणिज्य वाले फार्मों की संख्या ७८,१२६ थी। जो कुल फार्मों का ५१.६ प्रतिशत भाग था। यहां की मुख्य उपज गेहूँ, जई, आलू, कपास फल और तम्बाकू है। १९५० ई० में तम्बाकू की उपज १६,५२,२०,०००और पौंड गेहूँ, जई और आलू की उपज २,२८,६७,००० बुशल थी। १९४० ई० में १८,००० एकड़ भूमि से ५,००० कपास की गांठों की उपज हुई थी। ४१,२३,६६६ एकड़ भूमि जङ्गलों से ढकी हुई है। यहां पर ४,०७,००० दूध देने वाली गायें, १,२१,००० घोड़े, ६४,००० खच्चर, ११६७,००० गाय-बैल, २,६६,००० भेड़ें और ७,६७,००० सुअर हैं।

वाशिंगटन

इसका क्षेत्रफल ६८,१६२ वर्ग मील है। १,२१५ वर्ग मील के क्षेत्रफल में पानी है। यहां की आबादी २३,७८,९६३ है। आबादी का औसत प्रति वर्ग मील में ३५.५ है। यहां के लोगों का मुख्य व्यवसाय खेती करना है। १९५० ई० में यहां पर फार्मों की संख्या ६९,८२० थी। इसका क्षेत्रफल १,७३,६,९२.५ एकड़ था। ४२,३७,६०५ एकड़ भूमि में अनाज की खेती होती है। यहां की मुख्य उपज गेहूँ, जौ, जई, मक्का, आलू और फल है। १,०७,५१,६१४ एकड़ भूमि जंगलों से ढकी हुई है। यहां पर ३,२१,००० दूध देने वाली गायें, ५४,००० घोड़े, २,००० खच्चर, ८,८५,००० गाय-बैल, ३,२४,००० भेड़ें और १,६०,००० सुअर हैं।

पश्चिमी वर्जीनिया

इसका क्षेत्रफल २४,१८१ वर्ग मील है। ९१ वर्ग मील के क्षेत्रफल में पानी है। यहां की जनसंख्या २०,०५,५५५२ है। आबादी का औसत प्रति वर्ग मील में ८३.२ है। १९५० ई० फार्मों की संख्या ८१,४३४ थी। इनका क्षेत्र ८२,१४,६२६ एकड़ है जिसके १२,७८,२३९ एकड़ भूमि में अनाज की खेती होती थी। यहां की मुख्य उपज गेहूँ, मक्का, जौ, आलू, तम्बाकू और फल है। १९४९ ई० में तम्बाकू की उपज .४६,२०,००० पौंड थी। यहां पर ८६,००० घोड़े, २,३४,००० दूध देने वाली गायें, ५,००० खच्चर, ५,५९,००० गाय-बैल, २,९६,००० भेड़ें और २,५६,००० सुअर हैं। १८,३६,१४० एकड़ भूमि में जंगल हैं।

विस्कोन्सिन

इसका क्षेत्रफल ५६,१५४ वर्ग मील है। १,४३९ वर्ग मील के क्षेत्रफल में पानी है। यहां की जनसंख्या ३४,३४,५७५ है। आबादी का औसत प्रति वर्ग मील में ६२.७ है। १९५० ई० में यहां फार्मों की संख्या १,६८,५६१ थी। इसका क्षेत्रफल २,३२,२,०९५ एकड़ था। डेरी वाले फार्मों की संख्या १९५० ई० में १,१६५०० थी। यहां की मुख्य उपज मक्का, गेहूँ, जई, जौ आलू, और तम्बाकू है। १९५० ई० में मक्का की उपज १०,०५०,०६,००० बुशल, जौ की उपज ७२,७६,००० बुशल, गेहूँ की उपज १८,५४,२०० बुशल, जई की उपज १४,०४,३४,००० बुशल और आलू की उपज १,११,६०,००० बुशल थी। १९५१ ई० में तम्बाकू की उपज ३,३९,२२,००० पौंड थी। २०,१९,६९८ एकड़ भूमि में जंगल हैं। यहां पर २४,५६,००० दूध देने वाली गायें, २,०२,००० घोड़े १,००० खच्चर, ३९,१८,००० गाय-बैल २,८५,००० भेड़ें और १९,४१,००० सुअर हैं।

व्योमिंग

इसका क्षेत्रफल ९७,९१४ वर्ग मील है। ४०८ वर्ग मील के क्षेत्रफल में पानी है। यहां की जनसख्या २,९०,५२९ है। आबादी का औसत प्रति वर्ग मील में २.९ है। इस देश में खेती सिंचाई द्वारा होती है। १९५० ई० में सिंचाई वाले फार्मों की सख्या ७,८३१ थी। इनका क्षेत्रफल १४,३१,७६७ एकड़ था। यहां की मुख्य उपज अनाज, आलू और चुकन्दर है। यहां पर ५४,००० दूध देने वाली गायें, ७६,००० घोड़े १०,४१,००० गाय-बैल, १९,३४,००० भेड़ें, और ६९,००७ सुअर हैं।

एलास्का

इस देश का क्षेत्रफल ५,८६,३७८ वर्ग मील है। १५,३१० वर्ग मील के क्षेत्रफल मे पानी है। यहां की आबादी १,२८,६४३ है। आबादी का औसत प्रति वर्ग मील में २ है। २,०८,४८,००० एकड़ भूमि जंगलों से ढकी हुई हैं। उत्तरी और पश्चिमी एलास्का मे २,००,००० वर्ग मील के क्षेत्रफल मे पेड़ नहीं दिखलाई पड़ते है। इस क्षेत्र मे खेती भी नहीं हो सकती है। यह क्षेत्र केवल एक चरागाह के रूप है, जिस मे ४०,००,००० रेनडियर पाले जाते हैं। यहां के जंगलों से जो लकड़ियां मिलती हैं उन से व्यापार होता है। यहां पर २०७ घोड़े और खच्चर, २,२३६ गाय-बैल, १,२० सुअर और ६,०४६ भेड़ हैं।

हवाई द्वीप

इसके आठ मुख्य द्वीपों का क्षेत्रफल ६,४३५ वर्ग मील है जिनकी जनसख्या ४,९२,४३७ है। १०,२६,-२९९ एकड़ भूमि जंगलो मे ढकी हुई है। यहा की मुख्य उपज गन्ना, काफी, और फल है। १९५० ई० मे गन्ने की खेती १,०९,४०५ एकड़ भूमि में हुई थी।

पोर्टोरिको।

इस द्वीप का क्षेत्रफल ३,४२३ वर्ग मील है। यहां की जनसख्या २२,१०,७०३ है आबादी का औसत प्रति वर्ग मील में ६४५.८ है। यहा की मुख्य उपज तम्बाकू, नारियल और गन्ना है।

इसमें कई द्वीप सम्मिलित हैं। इसके तीन बड़े द्वीपों का क्षेत्रफल १३३ वर्ग मील है। यहा की आबादी २६,६५५ है। जनसख्या का औसत प्रति वर्ग मील मे २००.४ है। यहां के लोगो का मुख्य पेशा पशु पालना है।

ग्वाम

इस द्वीप की लम्बाई ३० मील और चौडाई ४ से ८½ मील तक है। इस का क्षेत्रफल लगभग २०६ वर्ग मील है। यहा की जनसंख्या ५८,७५४ है। यहां की मुख्य उपज आलू, फल, मक्का, नारियल और गन्ना हैं। यहा पर ६६७ दूध देने वाली गायें, ६७९ भैंस, २,८४७ गाय-बैल. ७,०५६ सुअर, ७४८ बकरे, ३० घोड़े और १,३२,७६१ मुर्गियां हैं।

एबीसीनिया (इथियोपिया)

इस देश का क्षेत्रफल ३,५०,००० वर्ग मील है। यहां की जनसंख्या आठ से दस लाख तक है। यहा के लोगों का मुख्य व्यवसाय खेती करना और पशुओं को चराना है। भेड़, बकरे और गाय-बैल यहां पर अधिक सख्या मे पाले जाते हैं। यहां के घोड़ों का कद छोटा होता है किन्तु बड़े मेनहती होते हैं। यहा की मुख्य उपज रुई, काफी, और गन्ना है। इसके अलावा यहा पर गेहूँ, जौ, ज्वार और तम्बाकू की भी उपज थोडी मात्रा मे होती है। यहां पर जंगल अधिक हैं। इनमें रबड़ के पेड़ अधिक मिलते हैं।

लङ्का

लंका का क्षेत्रफल २५,३३२ वर्ग मील है। यहां की जनसख्या ७५,००,००० है। सारे द्वीप का क्षेत्र लगभग १,६२,२,,४०० एकड़ है जिसके ३५,००,००० एकड में खेती होती है। ४,५६,००० एकड में चरागाह हैं। ९,०१ ००० एकड़ मे धान, ४६,३२२ एकड में चाय, ७०,७१ ००० एकड़ मे नारियल, और ६,५५,०२५ एकड मे रबड़ की उपज होती है। यहां पर भेड़ो की सख्या ४३,६२७, बकरों की सख्या ३ ७० ९१, सुअरों की सख्या ७४,११८, भैंस की संख्या ५,२२,४५८ और अन्य पशुओं की सख्या १७,०५,४४७ है। यहा पर ७ सरकारी डेरी और पशु-फार्म हैं जहा २,९८९ पशु पले हुये हैं।

बर्मा

इस देश का कुल क्षेत्रफल २,६१,६१० वर्ग मील है। यहां की जनसंख्या १,७०,००,००० है। ११.१५,५४८ एकड़ में अनाज सिंचाई द्वारा पैदा होता है। यहा पर जंगल भी पाये जाते हैं जिसमें साखू के पेड़ अधिक हैं। यहां की मुख्य फसल चावल, मक्का, मूँगफली और रुई है। १९४५-४६ ई० मे चावल की पैदावार ६२,७४,२०७ एकड़ में २६,२९,६६१ टन, मक्का की पैदावार ८९,७१६ एकड़ मे १२,४५४ टन, मूँगफली ७,७५,४२७ एकड़ में ७६,२८५ टन पैदा हुई थी। १९४८-४९ में चावल की उपज ५८,००,०००० मेटरिक टन हुई थी। यहां पर ५२,०७,००० गाय बैल, ७२१००० भैंस, १२,००० घोड़े, २१,०२० भेड़, १,७२,००० बकरे, और ३,९४,००० सुअर है। १९३८ ई० में यहां पर १,०१९ कारखाने थे जिनमें ८६,३८२ मनुष्य काम करते थे।

इन्डोनेशिया

इसका क्षेत्रफल ७,३५,२६७,९ वर्ग मील है। यहां की जनसख्या ७,८०,००,००० है। यहा कीमुख्य उपज चावल, मक्का, अरारोट, मूंगफली, आलू, तम्बाकू, सोयाबीन, कपास और गन्ना है। १९.५ ई० में ४६,८९,६०० एकड़ भूमि में चावल १९,९६,००० एकड़ भूमि में आलू, २,५७,९९० एकड़ भूमि मे मूँगफली, ५,१२,७७९ एकड़ भूमि मे सोयाबीन, ८०,९२१ एकड़ भूमि में अन्य प्रकार की दालें, २८,३०४ एकड़ भूमि मे तम्बाकू, १४,५६५ एकड़ भूमि में कपास, ४,९३० एकड़ भूमि में गन्ना और २,८४,३९९ एकड़ मे अन्य प्रकार के फसलों की खेती होती थी। १९४८ ई० में यहां पर खेती योग्य कुल भूमि २६,८५,३१० एकड़ थी किन्तु खेती केवल १२,६१,०४० एकड़ भूमि मे होती थी। यह देश काली मिर्च के लिये भी बहुत प्रसिद्ध है। काली मिर्च १९४८ और १९४९ ई० मे लगभग १,१०,००,००० पौंड हुई थी। यहा की फसलों की उपज का ब्योरा निम्नलिखित प्रकार से मेटरिक टन मे दिखलाया गया है।—

फसलों का नाम	१९४०	१९४०	१९५०
काफी	७२,६४७	१०,८७७	३५,३६२
रबड़	५,४८,९०४	१,७०,८६७	१,२३,००१
सिनकोना	१६,३७१	६,५१३	५,५८७
तम्बाकू	३७,४१४	८,३५१	११,९८४
चाय	८१,९८६	२७,२६९	३५,२८१
कोको	१,५५२	८५३	८६६
नारियल का तेल	२,३९,८८५	१,१८,६१५	१,२६,४५५

यहा पर ३५,००० गाय-बैल और २७,४६,००० भैंस हैं।

इराक

इसका क्षेत्रफल १,१६,६०० वर्ग मील है। यहां की जनसख्या ४७,९९,५०० है। यहां पर खेती सिंचाई द्वारा होती है। यहां की मुख्य फसलें गेहूँ और जौ हैं। कपास भी पैदा होती है। १९५१ ई० में ५,७३१ टन कपास और १५,१०० टन अनाज की उपज हुई थी। खजूर के पेड़ यहा पर बहुतायत से मिलते हैं।

ब्रिटिश बोर्नियो

यहां का क्षेत्रफल लगभग २९,३८७ वर्ग मील है। इसका तटवर्ती भाग ९०० मील से भी अधिक लम्बा है। यहां की जनसख्या ३,३३,७५२ है।

साइप्रस

साइप्रस का क्षेत्रफल ३,५७२ वर्ग मील है। इसकी लम्बाई पूर्व से पश्चिम तक १४० मील और चौड़ाई उत्तर से दक्षिण तक ६० मील है। यहा की जनसंख्या ४९२,२९७ है। प्रति वर्ग मील में ७३८ मनुष्य रहते हैं। १९५१ ई० मे मरने वालों की सख्या १४,४०३ थी। इस द्वीप मे कुल २३,००,००० एकड भूमि है। किन्तु १०,०० ०००एकड़ भूमिमें खेती होती

है। इस भूमि के ५७०,००० एकड़ में वार्षिक-फसलों की उपज होती है। यहां आलू की दो मुख्य फसलें होती हैं। यहां पर गाय, भैंस ३२,३८, घोड़े और खबर १३.४६२, गदहे ५१,२१४, भेड़ २,८७४०५, बकरे १.५३,९८६ और सुअर ३३,३७७ हैं।

हांग कांग

हांग कांग पूर्व से पश्चिम तक ११ मील और उत्तर से दक्षिण तक केवल २ से ५ मील तक लम्बा है। इसका क्षेत्रफल लगभग ३२ वर्ग मील है। इसकी जनसंख्या २,३६०,७०,०० है। यहां जहाज, रबड़ के सामान तम्बाकू, दियासलाई और रस्सी बनाने के कारखाने हैं। यहां खेती नहीं होती है।

मलय

मलय का क्षेत्रफल ५०,६९० वर्ग मील है। यहां की जनसंख्या ५४,२०,७३८ है। ५२,५२,००० एकड़ भूमि में खेती होती है। ८,७५,३९० एकड़ भूमि में चावल की खेती होती है जिसमें ४,४२,७८० टन चावल पैदा होता है। १९,६४,३७० एकड़ भूमि में रबड़ के पेड़ पाये जाते हैं। इन पेड़ों से लगभग ३,२७,९५६ टन रबड़ मिलता है। यहा पर नारियल की भी उपज होती है। १९५१ ई० में ४८,२५४ टन नारियल का तेल ७१३,८६८टन गरी और ८६,३९७टन नारियल का तेल मिला था। १९५१ ई० में चाय की उपज ३६,८४,१५८ पौंड हुई थी। यहा पर २,४३,१०० भैंस ७२,२७,३०० बकरे, २१,००० भेड़े, ३,११,३०० सुअर और ७०० घोड़े हैं।

सिंगापुर

सिंगापुर का क्षेत्रफल २२५ वर्ग मील है। यह द्वीप २६ मील लम्बा और १४ मील चौड़ा है। यहां की जनसंख्या १०,४१,९३३ है। यहां पर खेती नहीं होती है।

कीनिया

कीनिया का क्षेत्रफल २,२४,९६० वर्ग मील है। भूमि सम्बन्धी क्षेत्र २,१९,७४० वर्ग मील है। यहा की जनसंख्या ५४,०५,९६६ है। इस जनसंख्या में २९,६६० योरुपियन, ९७,६८७ भारतवासी और गोअन, २४,१७४ अरबी और ५२,५१,१२० अफ्रीकन सम्मलित हैं। प्रधान खेती वाले क्षेत्र पठारों में हैं। इन स्थानों में गेहूँ, मकई, काफी और चाय आदि की उपज होती है। कम ऊंचाई वाले स्थानों की मुख्य उपज कपास, मकाई, गन्ना और नारियल है। आलू और मूँगफली आदि की उपज ऊचाई और वर्षा के अनुसार होती है। निम्नलिखित फसलों की पैदावर १९५१ ई० में हुई थी:—

काफी ९,७६० टन (२७,००,००० पौंड)
रुई १३,८२४ गाठ (१७,९८,७१० पौंड)
मकाई २३,८७,२९४ बोरा (३५,८०,९४१ पौंड)
सीसल ४१,२५७ टन (७४,४४,२६० पौंड)
पाइरेथरम (मसाला) २७,८४८ हं० (५,५१,०६७ पौंड)
चाय १,५५,००,००० पौंड (२१,३१,३५० पौंड)
वाटल छाल ४५,४०८ टन (६,२८,९०० पौंड)
गेहूँ १४,२१,७४४ बोरा (२८,४३,४८८ पौंड)
मक्खन ७५,२७,१३० पौंड (८,८६,७६१ पौंड)

जंगलों का कुल क्षेत्रफल ५,५२६ वर्ग मील है। जंगलों का ९२ प्रतिशत भाग पठारों में स्थित है। व्यापार योग्य लकड़ी जंगलों में मिलती है। ४,७७४ वर्ग मील में सरकारी और ७५२ वर्ग मील में प्रजा वाले जंगल हैं।

यूगांडा

यूगांडा का चेत्रफल ९३,९८१ वर्ग मील है। यहां की जनसंख्या ४९,६२,७४९ है जिसमें ४९,१७,५५५, एशियाटिक ३३,७६७, गोअन १,४४८, पोलिश शरणार्थी ४.०२० और योरुपियन ३ ४४८ समिलित हैं। यहांकी प्रधान उपज कपास है। इसकी खेती १५,३५,१९९ एकड़ भूमि में होती है जिसमें रुई की ३,००,००० गाठों की उपज होती है। इसके अलावा कहवा गन्ना और तम्बाकू आदि की भी खेती होती है। यहां पर सुन्दर लकड़ी के जंगल भी पाये जाते हैं।

जेंजीबार

जेजीबार का क्षेत्रफल ६४० वर्ग मील है। यहा की जनसंख्या १४९,५७५ है। यह प्रदेश लौंग के लिये प्रसिद्ध है। यहा पर ५०,००० एकड़ भूमि में लौंग के पेड़ लगे हुये हैं। इनकी रुरया

लगभग ४०,००,००० से भी अधिक है। इन पेड़ों से २,००,००,००० पौंड लौंग मिलती है। ४०,००,००० नारियल के भी पेड़ हैं। नारियल से तेल भी निकाला जाता है। अनाज में चावल की अधिक उपज होती है। फलों में संतरा और आम आदि की भी खेती होती है।

टैंगानीका

इसका क्षेत्रफल ३,६२,००० वर्ग मील है जिसके २०,००० वर्ग मील में पानी है। यहां की जनसंख्या ७४,८७,००५ है। इस प्रदेश का मुख्य व्यवसाय खेती है। यहां पर कहवा, तम्बाकू, दाल और रेंड़ी आदि की अच्छी उपज होती है। ७,२०,००० वर्ग मील के क्षेत्र में सघन्ना जंगल फैले हैं। कहीं-कहीं पर अच्छी लकड़ी वाले जंगल भी मिलते हैं। इन लकड़ियों से व्यापार होता है। यहां पर ६१,१२,९६७ गाय-बैल, २४,४५,०५५ भेड़, और ३२,८०,८०,६३८ बकरे हैं।

नाइजीरिया

इसका क्षेत्रफल ३,७२,६७४ वर्ग मील है। यहां की जनसंख्या२,४३,३०,००० है। यहां मूँगफली, कपास, खजूर, कोको और रबड़की उपज होती है। यहां पर जंगल भी मिलते हैं जिसमें टिम्बर (इमारती लकड़ी) अधिक मिलती है।

गोल्ड कोस्ट

इसका क्षेत्रफल ५१,८४३ वर्ग मील है। इसकी जनसख्या ४१,११६८० है। यहां की मुख्य फसले चाय, मकई, चावल, तम्बाकू और ज्वार है। यहां पर ३,००,००० गाय-बैल, ४,५५,००० भेड़ बकरी, गदहे १६,८००, घोड़े और ६,००० सुअर १,५०० हैं।

सियरा लिओन

इसका क्षेत्रफल २७,९२५ वर्ग मील है। इसकी जनसंख्या १९,५५,००० है। यहां की मुख्य उपज मूंगफली, नारियल, कोला नट और अदरख है।

कैमरून

कोमरून का क्षेत्रफल ३४,०८१ वर्ग मील है। यहां की जनसख्या १०,५१,००० है। यह क्षेत्र घने जंगलों से ढका हुआ है। इसके तटवर्तीय भाग के पास केले, खजूर और रबड़ के पेड़ अधिक संख्या में लगे हुए हैं।

टोगोलैंड

इसके उस भाग का क्षेत्रफल जो ग्रेट ब्रिटेन को मिला है १३,०४१ वर्ग मील है। यहां की जनसख्या ३,८२,७१७ है यहां की मुख्य उपज तम्बाकू और चावल है।

एँग्लोइजिप्शियन सूडान

इसका क्षेत्रफल ९,६७,५०० वर्ग मील है। यहां की जनसंख्या ८०,७९,८०० है। यहां पर मकई, ज्वार, और मूंगफली की खेती होती है। खजूर और महोगनी के पेड़ भी अधिक हैं। इस राज्य में पशु का व्यवसाय भी अधिक उन्नति पर है। यहां पर लगभग २०,००० घोड़े, ५,००,००० गदहे, ५०० खच्चर, ३२,००,००० गाय बैल, ४८,००,००० भेड़, ४७,००,००० बकरी, ११,००,००० ऊंट और ३,५०० सुअर हैं। यहां पर जंगल भी हैं जो नील नदी नदी के किनारों से लेकर एबीसीनिया की सीमा तक फैले हुये हैं, इन जंगलों में रेशादार पेड़ अधिक हैं। दक्षिणी सूडान के जंगलों में सुन्दर लकड़ी वाले पेड़ मिलते हैं। इनमें महोगनी के पेड़ बहुत अधिक प्रसिद्ध हैं।

सुमालीलैंड

सुमालीलैंन्ड का क्षेत्रफल लगभग ६८,००० वर्ग मील है। यहां की जनसख्या ७,००,००० है। यहां पर खेती केवल छोटे-छोटे क्षेत्रों में होती है। इसके पश्चिमी भागों में ज्वार की खेती होती है। यहां के जंगलों में काटे दार पेड़ अधिक हैं। यहां पर चरागाह भी मिलते हैं जिनमें बकरे, भेड़ और ऊंट आदि चराये जाते हैं।

मारीशस

मारीशस का क्षेत्रफल ७२० वर्ग मील है। यहां की जनसख्या ४,७५,३८६ है। पुरुषों की संख्या २,३६,७४४ और स्त्रियों की सख्या २,३८,६४२ है। यहां पर गन्ने की खेती होती है।

सेशलीज

इसका क्षेत्रफल १५६! वर्ग मील है। यहां की जनसंख्या ३५,९३३ है। यहां २८,५००० एकड़ से अधिक भूमि में खेती होती है। इस प्रदेश में अनाज वाली फसलों की उपज की उन्नति हो रही है। यहां पर अधिकतर मकाई और ऊड़वाली फसलों की उपज होती है। नारियल के पेड़ भी बड़ी सख्या में हैं। यहां पर पशु-पालन का भी व्यवसाय होता है। यहां के पशुओं में मुख्य सख्या मुर्गियों, सुअर और गाय-बैल की है।

सेन्ट हलीना

सेन्ट हेलीना अफ्रीका के पश्चिमी किनारे से १,२०० मील दूर है। इसका क्षेत्रफल ४७ वर्ग मील है। यहां ८,६०० एकड़ भूमि खेती के योग्य है। इसकी जनसंख्या ४,७४८ है। यहां पर फल के पेड़ अधिक हैं। जंगल भी मिलते हैं जिसमें देवदार के पेड़ अधिक हैं। यहां पर फ्लैक्स की खेती लगभग ३,५०० एकड़ में होती है। यहां पर १ सरकारी और ७ प्राइवेट फ्लैक्स के कारखाने हैं। यहा पर पशु भी पाले जाते हैं।

फिजी

इसमें ३२२ द्वीप सम्मिलित हैं जिसका कुल क्षेत्रफल ७,०८३ वर्ग मील है। यहां की जनसंख्य २,९३,७६४ है। इस जनसख्या मे ६,५०१ योरुपियन (३,८०१ मर्द, २,७०० औरतें), १,२९,८९६ (६५,९१५ मर्द, ६३,९८१ औरतें), फिजीयन १,३८,४२५ (७३,७०४, मर्द, ७६४,७२१ औरतें) भारतवासी ३,३७९ (२,३५२ मर्द, १०२७ औरतें) चीनी अर्द्ध ६,९०२ (३,५७१ मर्द, ३,३३१ औरतें), योरुपियन, ३,६६९ (१,८७१ मर्द, १,९९८ औरतें), रुटोमान, पोलीनेशियन, मेलेनेशियन माइक्रोनेशियन, ४,३४० (२,५५० मर्द, १,७९० औरतें) और दूसरी जातिया ६५२ (३४९ मर्द, ३०३ औरतें) की सम्मलित हैं। यहां की २३,००,००० एकड़ भूमि जंगलों से ढकी हुई है। इस जंगल में कोमल और कड़ी लकड़ी वाले पेड़ मिलते हैं। यहां पर लकड़ी के ६ कारखाने, ५ चीनी के कारखाने, ४ तेल के कारखाने, २ मक्खन का कारखाने, १ बिसकुट का और १ चाय का कारखाना है, यहा पर २,५०० एकड़ में केले, १,३०,००० एकड़ मे नारियल के पेड़ लगे हुये हैं। १,६०,००० एकड़ में गन्ना और ३४,४७४ एकड़ में चावल की खेती होती है। ८०० एकड़ भूमि में अन्नास के पेड़ भी पाये जाते हैं। यहा पर १६,१६४ घोड़े, ८०,८४५ गाय बैल, ५६ भेड़, २३,७८७ बकरे और ८,७१५ सुअर हैं।

बेल्जियम

इस देश का क्षेत्र फल ११,७७५ वर्ग मील है। यहां की जन सख्या ८६,५३,६५३ हैं। इस जनसख्या में ४२,५६,९७५ मर्द और ४३,९६,६७८ औरतें सम्मिलित हैं। इस देश का कुल क्षेत्रफल७६,४१,६५० एकड़ है। इसके ४५,८१, १३३ एकड़ भूमि में खेती होती है। इस भूमि के ३७.९० प्रतिशत भाग में केवल अनाज, ०-७४ प्रतिशत में तरकारी, ४.८९ प्रतिशत में व्यवसायिक ३ पौधे, १२.८५ प्रतिशत में जड़ वाली फसलें और ४९.६३ प्रतिशत में चारा वाली फसलें पैदा होती हैं। कुल भूमि का १८ प्रतिशत क्षेत्र जंगल से ढका हुआ है। यहा की प्रधान फसलो की उपज का व्योरा निम्न प्रकार से है :—

मुख्य फसलें	क्षेत्र (हेक्टर में)			उपज (मेटरिक टन में)		
	१९४८	१९४९	१९५०	१९४८	१९४९	१९५०
गेहूँ	१,४३,१४६	१,५३,२०१	१,७३,७५५	३,४३,९९१	५,९६,००८	५,४८,२२०
जौ	७६,६७०	७२,४१३	८३,६७०	१,७२,१३२	२,४६,८९५	१,७८,०५५
जई (ओट)	१,८९,१२६	१,७३,६९८	१,७७,२४५	३,८४,५८२	५,८६,९५३	५,०३,३७६
राई	८६,१५०	९५,०२५	८८,५६०	१,८४,००१	२,५७,८१०	२,३८,२२६
आलू	८८,२३९	८८,८४१	९८,०३२	२१,३३,०६८	२०,४७,१४५	२३,०८,५७४
चुकन्दर	४५,२३१	५९,९००	६८,४९४	१५,९७,८१४	२३,४८,३२८	२६,६९,११९
चारावालीफसल	८०,७८५	७३,८९३	७४,५७१	६२,२४,०५७	४९,९१,३७०	६०,५६,७९०
तम्बाकू	१,६२७	१,३५७	१,७७९	२,८३४	३,१४४	४,५२६

यहां पर २,६३,२७१ घोड़े, २१,००,८३१ गाय-बैल २,७३,९३८ भेड़े बकरी और १३,२९,४४३ सुअर हैं। यहां पर ३७ चीनी बनाने के कारखाने ९ चीनी साफ करने और ६ दियासलाई बनाने के कारखाने हैं।

बेल्जियन कांगो

इस देश का क्षेत्रफल २३,४३,९३० वर्ग किलोमीटर है। यहां की जनसंख्या १.१२.३१.७९३ है। १९,९७,६७५ एकड़ मे खजूर के पेड़, १,४६,२७८ एकड़ भूमि में रबड और ९१,३३३ एकड़ भूमि मे काफी के खेत हैं। यहा पर २,७०,६७३ विदेशी गाय-बैल ४०,३६० विदेशी भेड, ३,९३,०५४ देशी गाय-बैल, और १४ ४६ ४७७ देशी भेड़ें हैं।

बोलीविया

इस देश का क्षेत्रफल १०,९८,५८१ वर्ग किलोमीटर है। यहा की जनसंख्या का ३३.५ प्रतिशत भाग नगरों में रहता है। इस देश के कुल क्षेत्र के तीन चौथाई भाग की उन्नति अभी नहीं हो सकी है। खेती केवल ४९,४०,००० एकड़ भूमि मे होती है। ऊँचे स्थानों पर कोको, चावल, मकाई, कहवा और जौ की उपज होती है। इन स्थानो मे आलू भी पैदा होता है। रबड़ की उपज में इस देश का दूसरा स्थान दक्षिणी अमरीका मे है। इस देश के दो तिहाई निवासी खेती का व्यवसाय करते है। यहा पर जंगल भी हैं। जिनमें कड़ी लकड़ी से लेकर कोमल लकड़ी वाले कई तरह-तरह के पेड़ मिलते हैं।

ब्राजील

इस देश का क्षेत्रफल ८५,१६,०३७ वर्ग किलोमीटर है। इस की जनसंख्या ५,२६,४५९ है। जन संख्या का औसत प्रति वर्ग किलोमीटर मे ६.१ है। १९४० ई० के जनगणना से यह ज्ञात हुआ था कि ९४,५३,५१० मनुष्य खेती और जंगल के कार्य मे, १४,००,०५६ मनुष्य सामान बनाने में, ४,७३,६७६ मनुष्य ट्रांसपोर्ट मे, ३,९०,५६० मनुष्य कारखानों में ३,१०,७२६ मनुष्य नौकरी मे, १,१९,०९, ५१४ मनुष्य घर के कार्य और मास्टरी मे और १,१८,६८७ मनुष्य अन्य व्यवसाय करने लगे थे। ब्राजील एक खेतिहर देश है। यहा पर ४,४४,३८,००० एकड़ भूमि में खेती होती है। इस भूमि के ६७,६८,००० एकड़ मे कहवा १,२०,२६,००० में मकाई, ६५,४२,७५० मे कपास, ४८,८६,००० मे चावल और ४४,६८,२५० एकड़ मे सेम की खेती होती है। ब्राजील के उत्तरी-पूर्वी भाग के ६७,४५५ एकड़ भूमि में खेती सिचाई द्वारा होती है। ब्राजील का प्रथम स्थान कहवा और रेंडी की उपज मे, दूसरा स्थान कोको की उपज मे और तीसरा स्थान चीनी और तम्बाकू की उपज में है। १९५० ई० मे १,५७,००,००० एकड़ में अनाज की उपज ६,६०,००,००० मेटरिक टन हुई थी। यहां एक साल में दो फसलें पैदा होती हैं। तम्बाकू की वार्षिक उपज १,००,००० और १,२०,००० मेटरिक टन तक होती है। यहा पर चीनी १९४९ ई० मे २,३०,२८,३५६ बोरा पैदा हुई थी। यहा पर फल भी पैदा होता है। फलों मे केला और संतरा का मुख्य स्थान है। १९५० ई० मे ३,९३,००० मेटरिक टन कपास ६०,२२,९०० एकड़ भूमि में हुई थी। गेहूँ की उपज १९५० ई० में ५,३२,३५१ टन हुई थी। यह प्रदेश चावल की उपज के लिये भी प्रसिद्ध है। इस की उपज १९५० ई० मे ३२,१७,६९० मेटरिक टन थी। यहां पर रबड़ के पेड भी अधिक हैं। यहा एक प्रकार का जूट भी पैदा होता है जिससे रस्सी आदि बनाई जाती हैं। यहा पर ४,६२,५०,००० गाय-बैल, २,४१,००,००० सुअर ९९,००,००० भेड़ (ऊन वाली) और ८६,००,००० भेड़ (बाल वाली), ८०,००,००० बकरे, ६७,७०,००० घोड़े गदहे और खच्चर और १,६९,८०,००० बैल हैं। १९४९ ई० मे ६०,२२,५०१ गाय-बैल, ११,९२११९ भेड़ और ५०,७२,४६१ सुअर मास के लिये मारे गये थे। यहा पर घने जगल भी है। इनमे मूल्यवान लकडी मिलती हैं। यहा के कारखानों मे काम करने वाले मजदूरों से २५ प्रतिशत कपास बुनने आदि के कारखानों मे काम करते हैं। यहा लगभग ६५० सूती कारखाने हैं। कागज बनाने का यहा एक बहुत बडा कारखाना है। इस कारखाने मे १९४९ ई० २,४६,६४४ मेटरिक टन कागज बना था।

बल्गेरिया

इस देश का क्षेत्रफल ४२,७९६ वर्ग मील है। यहा की जनसंख्या ७०,४८,००० है। प्रति वर्ग मील

में औसत जनसख्या १६४ है। वलोरिया का कुल क्षेत्र २,५४,८८,३४३ एकड़ है। इस भूमि के १,२०,५८,४८० एकड़ में खेती होती है। जंगल का क्षेत्र ७६,९०,००० एकड़ है जिसके ७४,४०,००० एकड़ क्षेत्र के जंगलों की लकड़ी अधिक उपयोगी है। यहां पर १९५१ ई० में २,७३४ कोआपरेटिव और ९१ सरकारी फार्म थे। २,७९२ फार्म पशु पालने के लिये थे। यहां की मुख्य उपज गेहूँ, राई (विलायती बाजरा) ओट (जई), मक्का और वार्ली है। इसकी उपज का व्योरा निम्नलिखित प्रकार से है।—

फसलो के नाम	१९३५-३९		१९४६ ई०	१९४७ ई०		१९४८ ई०
	क्षेत्र (एकड़/में)	उपज (मेटरिक टन मे)	उपज (मेटरिक टन मे)	क्षेत्र (एकड़ मे)	उपज (मेटरिक टन में)	उपज (मेटरिक टन में)
गेहूँ	३०,८०,०००	१७,३५,२८०	१८,४०,८७८	३६,९०,०००	१३,०६,३५९	३२,३२,६०२
राई	४,६५,०००	२,०५,७५१	१,८३,९७८	७,४५,०००	१,९५,९५०	——
जौ	५,३५,०००	३,२१,३११	२,८३,०४४	७,३५,०००	२,६१,२७२	६,८९,०२८
जई	३,१५,०००	१,१५,३९५	१,४८,७७९	४,१०,०००	१,०१,६०५	१,७२,५८३
मक्का	१६,८५,०००	८,४५,८६७	४,८४,४४१	१८,८०,०००	६,५३,१७९	११,२९,८७१

यहां फल भी अधिक पैदा होता है। इसके अतिरिक्त यहां पर चुकन्दर और तम्बाकू की भी अच्छी उपज होती है। १९४९ ई० चुकन्दर की उपज ४,००,००० शार्ट टन और तम्बाकू की उपज ४९,७९९ मेटरिक टन हुई थी। रुई भी १९४९ ई० में १,३५००० मेटरिक टन पैदा हुई थी। यहा पर ४,४९,२५७ घोड़े, १९,१८,४२१ गाय-बैल, ८९,९४,८५३ भेड़ और बकरे, ९,५६,६०७ सुअर और १,०३,२९,४०९ मुर्गियां हैं।

चिली

इसका क्षेत्रफल २,८६,३९७ वर्ग मील है। यहां की जनसख्या ५८,६६,१८९ है। १९५० ई० में औसत जनसंख्या प्रति वर्ग मील में २० थी। इसके दक्षिणी भाग मे जगल फैले हुये हैं और मध्यवर्ती भाग में खेती होती है। १९३६ ई० में खेती योग्य भूमि ६,०२,१९,५८३ एकड़ थी, ८६,७१०५१ एकड़ भूमि जंगलो से ढकी हुई थी, ४,५९,८७२ एकड़ भूमि मे फल के पेड़ और १,२३,९३,६७७ एकड़ भूमि मे चरागाह थे। १९३७ ई० मे फार्मों की सख्या २,०१९९७ थी। १९५० ई० मे २४,९८,८०० एकड़ भूमि मे केवल अनाज की खेती होती थी। यहा पर सन की भी उपज बढ़ती जा रही है। यहां की मुख्य *फसलों का व्योरा नीचे दिया जा रहा है —*

यहा पर ३७५ बड़े बड़े फार्म हैं। हर एक फार्म प्रायः १२,२५० एकड़ भूमि का है। इसमें ४,००,००० किसान रहते हैं। प्रति परिवार को ४ एकड़ से भी कम भूमि मिली है। यहा पर २३,४४,१८८ गाय-बैल, ६३,००,००० भेड़ें, ५,७२,००० सुअर, ५,२७८२७ घोड़े और ९३,५२५ गदहे और खच्चर हैं।

फसल का नाम	बोया हुआ क्षेत्र (हेक्टर में)		उपज (मेटरिक टन में)	
	१९४९-५०	१९५०-५१	१९४९-५०	१९५०-५१
गेहूँ	८,३३,२३९	८,२३,०३२	८,२७,३६५	९,७२,६३०
जौ	४५,४४४	५२,४६३	६३,७४७	९०,३५१
जई	९१,११९	१,०१,०११	६४,७८९	८७,५१२
चावल	२६,८१०	२३,४१५	८३,०५२	४८,५९९
आलू	४९,५५६	५१,४१४	४,६०,८२५	३,८३,८११
सेम	६,८७,१४७	६७,३१३	६२,९६१	५९,९०८
मसूर	१९,५३२	२२,९७७	१२,५३०	१७,८८९

चीन

इस देश का क्षेत्रफल ४२,००,००० वर्ग मील है। यहां की जनसंख्या ५८,३८,५०,००० है। चीन एक कृषि प्रधान देश है। १९४६ ई० में यहा के खेतों का बंटवारा इस प्रकार से था.—३५ प्रतिशत किसानों ४० प्रतिशत मालिकों और २५ प्रतिशत आधे मालिकों के रूप में भूमि बटी थी। यहां १,५२,०६० वर्ग मील भूमि खेती करने योग्य है। खेती यहां सिंचाई द्वारा होती है। बाग लगाने का व्यवसाय अधिक उन्नति पर है। फलों के पेड़ अधिक संख्या में हैं। यहा की मुख्य फसलें गेहूँ, जौ, मक्का और बाजरा है। उत्तर में सेम की खेती अधिक होती है। दक्षिण मे चावल, गन्ना और नील की खेती होती है। इस के अलावा यहां पर रेशेदार फसलों की भी उपज होती है। इनमें मुख्य हेम्प, जूट, रामी और फलैक्स हैं। गेहूँ १९५० ई० मे २,००,००,००० टन हुआ था। चीन कपास की उपज के लिये भी प्रसिद्ध है। विश्व के कपास पैदा करने वाले देशों में इसका स्थान तीसरा है। १९५२ में ३१,००,००० गांठ कपास पैदा हुई थी। दक्षिणी और पश्चिमी भाग मे चाय की भी खेती होती है। १९.९ ई० में तम्बाकू की पैदावार १४,००,००,००० पौंड हुई थी। यहां पर २,२८,८५,००० बैल, ९२,०३,००० भैंस, १७८,५९,००० बकरे, १९२,२७,००० भेड़, ५,९६,०५,००० सुअर, ४९,६७,००० घोड़े, ६८,५७,००० गदहे, २८,२८,००० खच्चर, १९,१६,५२,००० मुर्गियों के बच्चे, ५,६१,८७,००० मुर्गाबियां और ६८,७८,००० बतख हैं। यहा के जंगलों में टंग और साखू के पेड़ अधिक हैं। यहां आटा पीसने, धान माड़ने और कपास के कपडे बुनने के कारखाने हैं।

कोलम्बिया

इस देश का क्षेत्रफल ४,३९,४२८ वर्ग मील है। यहां की जनसंख्या १,१२,५९,७०० है। इस देश के थोड़े भाग मे खेती होती है। यहां पर काफी, चावल, गन्ना, मक्का और गेहूँ की खेती होती है। इसके अलावा यह देश आलू, केला और रबड़ की उपज के लिये प्रसिद्ध है। यहां पर काफी की पैदावार लगभग ६०,००,००० बोरा है। १९५० ई० में चावल की पैदावार २,४१००० मेटरिक टन, साफ चीनी १, ६,४४५ और भूरी चीनी ७,५०,००० मेटरिक टन थी। १९४९ ई० में मक्का की उपज ७,३७ मेटरिक टन, आलू की उपज ५,३८,००० मेटरिक टन और गेहूँ की उपज १,२८,००० मेटरिक टन थी। यहा पर १,३९,००२

गाय-बैल, २०,७०,००० सुअर, १७,४२,००० घोड़े, १०,२२,=०० भेड़, ४,००,००० बकरे, ७,७२,००० खच्चर और गदहे हैं। १५,००,००,००० एकड़ भूमि में जंगल हैं।

कोस्टारिका

इस देश का क्षेत्रफल १९,६९५ वर्ग मील है। यहा की जनसंख्या ८,७७,२८८ है। यह एक कृषि प्रधान देश है। १०,४०,००० एकड़ भूमि में खेती होती है और ६५,५२,००० एकड़ भूमि में चरागाह हैं। २,५०० एकड़ भूमि में रबड़ के पेड़ लगे हुये है। ११,५०० एकड़ भूमि में हेम्प की खेती होती है। यहां पर हजारों वर्ग मील में जंगल फैले हुये है। इन जंगलो मे देवदार, महोगनी और अन्य प्रकार की मूल्यवान लकडी मिलती है। यहां की मुख्य फसलें काफी, कोको, मक्का, तम्बाकू और गन्ना हैं। आलू की भी खेती होती है। काफी की उपज १,१७,५०० एकड़ में २०,५०० मेटरिक टन, हुई थी। ५,००० एकड़ भूमि में तम्बाकू की खेती होती है। १९५५ ई० में गाय-बैल की संख्या ४,०१,१०४ थी।

क्यूबा

इस द्वीप का क्षेत्रफल ४४,२०६ वर्ग मील है। यहां की जनसंख्या ५३,४८,००० है। यहा पर तम्बाकू, गन्ना, काफी, कोको और फलों की पैदावार अधिक होती है। विश्व के चीनी पैदा करने वाले देशों मे क्यूबा का दूसरा स्थान है। २८,००,००० एकड़ भूमि मे केवल गन्ना की खेती होती है। यहा पर १६३ चीनी के कारखाने हैं। १९५० ई० में तम्बाकू की उपज १,१७,००० एकड़ में ७,६०,००,००० पौंड हुई थी। १९५०-५१ ई० मे चावल की पैदावार १,४३,००,००० पौंड और १९५० ई० में मक्का की उपज १६,५१० मेटरिक टन थी।

इस द्वीप का अधिक भाग जंगलो से ढका हुआ है। लगभग १२,५०,००० एकड़ भूमि मे सरकारी जंगल हैं। इन में मूल्यवान लकड़ी मिलती है। देवदार और महोगनी के पेड़ो की संख्या अधिक है। यहा पर ४६,००,०० गाय-बैल हैं।

इक्वेडार

इसका क्षेत्रफल २,७६,००८ वर्ग मील है। यहां की जनसंख्या ३०,७६,९३३ है। इस जनसख्या मे पुरुष १५,५५,७९९ और १५,२११३८ स्त्रियां सम्मिलित हैं। यहां की मुख्य पैदावार काफी, कोको, चावल, कपास, और गन्ना है। खेती १,१४,८०,००० एकड़ भूमि में होती है। १९५० ई० में कोको की पैदावार २६,९०० मेटरिक टन थी। यहां पर १५,२०,००० गाय-बैल, १२००,००,० घोड़े, ३५,००,००० भेड़ और बकरे, और ३२,००,००० सुअर हैं। इस प्रदेश की १८,००० वर्ग मील भूमि जंगलों से ढकी हुई है। यहा के जंगलो में मूल्यवान लकड़ी मिलती है।

सैनसल्वाडार

इसका क्षेत्रफल १३१७६ वर्ग मील है। यहां की जनसंख्या १७,८७,१३६ है। प्रति वर्ग मील मे औसत आबादी १४१ है। यह एक कृषि-प्रधान देश है। कुल क्षेत्र के ६० प्रतिशत भाग में खेती होती है। यहां पर काफी, कपास, चावल, मक्का, कोको, तम्बाकू और नील की पैदावार होती है। ३,२,००० एकड़ भूमि में कहवे की खेती होती है। १९५०-५१ कहवे की उपज ६८,४०० मेटरिक टन और कपास की उपज ६,६५० मेटरिक टन हुई थी। चावल की खेती ३१,००० एकड़ मे होती है। १९५० ई० में इसकी उपज ४,२३,००,००० पौंड थी। यहा पर गन्ना भी पैदा होता है जिससे चीनी बनाई जाती है। यहां पर १,८३,००० घोड़े, गदहे और खच्चर, ७,६५,००० गाय-बैल, ६,००० भेड़, १७,५०० बकरे और ३,४८,००० सुअर हैं। यहा के जंगलों में महोगनी, देवदार और अखरोट के पेड़ अधिक पाये जाते हैं। यहां पर सूती कपड़े के कारखाने हैं।

ग्वाटेमाला

इस देश का क्षेत्रफल ४२०४२ वर्ग मील है। यहां की जनसख्या २७,८७,०३० है। आबादी का औसत प्रति वर्ग किलोमीटर मे २५६ है। खेती इस देश का एक प्रधान व्यवसाय है। यहा की मुख्य उपज काफी, गेहूँ, मक्का, सेम, चावल, गन्ना, तम्बाकू और कोको हैं। ३,३८,००० एकड़ भूमि मे १२,८०,००,००० काफी के पेड़ लगे हैं। कुल उपज का ८० प्रतिशत भाग १,५०० बड़े काफी फार्मो से प्राप्त होती है। इन फार्मो मे ४,२६,००० मजदूर काम करते हैं। १९४९-५० ई० में काफी १०,७५,००० बोरा पैदा हुई थी। इसी वर्ष में गन्ना की उपज ३३,४७९ मेटरिक टन थी। यहा पर ९,११,००० गाय-बैल ६,१८,००० भेड़ और ३,७४,००० सुअर हैं। ७,५८,६१० एकड़ भूमि में चरागाह और १,७७,८४,००० एकड़ भूमि मे जंगल हैं। इन जंगलो मे मूल्यवान लकड़ीयां मिलती हैं।

हांडूराज

इसका क्षेत्रफल ५९,१६१ वर्ग मील है। यहां की जनसंख्या १५,३३,६२५ है। औसत आबादी प्रति वर्ग मील में २५.९ हैं। यहां की मुख्य उपज केला, नारियल, काफी या कहवा है। ३९,६७७ एकड़ भूमि मे केला की खेती होती है। चावल और गन्ना की भी उपज होती है। यहां पर जो जंगल हैं उनमें मूल्यवान लकड़ी मिलती है।

हेइटी

इसका क्षेत्रफल १०,७१४ वर्ग मील है। यहां की जनसंख्या ३१,११,९७३ है। आबादी का औसत प्रति वर्ग मील में २९० है। इस देश का ३२ प्रतिशत भाग खेती योग्य है। यहां खेती सिंचाई द्वारा होती है। २,००,००० एकड़ से २५,००० एकड़ भूमि में कृषि सम्बन्धी व्यवसाय होता है। यहां की मुख्य उपज-चावल, गन्ना, काफी, केला और कपास है। १९५०-५१ ई० में काफी की उपज ३,६०,००,००० किलोमिटर थी। यहां पर पशु भी पाले जाते हैं।

मिस्र

इस देश का क्षेत्रफल ३,८६,१९८ वर्ग मील है। १३,५०० वर्ग मील में खेती होती है। २,८५० वर्ग मील में झीलें और दलदल हैं। यहां की जनसंख्या १९४७ ई० में १,९०,८७,३०३ थी। इसमें ९४,६६,७३१ मर्द और ९६,२१,२५३ स्त्रियां सम्मिलित हैं। ८१,४२,४६१ फेदान भूमि (१ फेदान = प्रायः एक एकड़) खेती योग्य है। जनसंख्या का ६२ प्रतिशत भाग खेती में लगा रहता है। यहां की मुख्य फसल रुई, गेहूँ, जौ, अलसी, सेम, प्याज, मक्का, बाजरा, चावल और गन्ना है। १९५०-५१ ई० में गेहूँ की उपज १४,९६,५७५ फेदान भूमि में ८०,६०,००० अरडेब, सेम की उपज ३,१९,५९४ फेदान भूमि में १४,९४,६३६ अरडेब, मक्का की उपज १६,५३,७५४ फेदान भूमि में १,०१,५१,००० अरडेब, बाजरा की उपज ४,२२,४६७ फेदान भूमि में ६,६७,००० दरीया हुई थी। १९४९-५० ई० में २,३०,८७६ मेटरिक टन साफ चीनी तैयार हुई थी। यहां पर २७,७३७ घोड़े, ११,२५,९४५ गदहे, १२,२२५ खच्चर, १३,२१,०५२ गाय, १२,४०,१९६ भैंस, १८,७५,३३८ भेड़, १४,७५,२३१ बकरे, १,९६,७२१ ऊँट और ५०,३४३ सुअर हैं।

डेनमार्क

डेनमार्क का क्षेत्रफल ४२,९३६ वर्ग किलोमीटर है। इस की जनसंख्या ४२,८१,२७५ है। प्रति वर्ग मील में जनसंख्या १०० है। यहां पर कुल ३१,३०,००० हेक्टर में खेती होती है। इसमें अनाज की पैदावार १२,६६,००० हेक्टर में जड़ वाली फसलों की पैदावार ५,८९,००० हेक्टर में दूसरी फसलों की पैदावार १,०२,००० हेक्टर में, घास और चारा वाली फसलों की पैदावार ११,६६,००० हेक्टर में होती है। ७०,०० हेक्टर भूमि बेकार पड़ी है। तीन वर्ष की मुख्य फसलों की उपज का ब्यौरा इस प्रकार है—

फसलों के नाम	क्षेत्र (१,००० हेक्टर में)			उपज (१,००० मेटरिक टन में)		
	१९४९	१९५०	१९५१	१९४९	१९५०	१९५१
गेहूँ	४३.३	८४.९	८१.६	३००	२९८	२७७
राई	१९५.०	१५४.५	११८.४	४६९	३३०	२६९
जौ	४५४.०	४९४.४	५१८.१	१,५७१	१,६१५	१,७३८
ओट	३०८.०	२७६.६	२६७.६	९८२	८३४	८२९
आलू	१६.१	१०५.०	१०५.१	१७९४	१८५०	१९५२
जड़ वाली फसलें	४५७.१	४७९.३	४८४.३	२२,८६७	२४,२०३	२२,८६०

यहां पर ४,६२०,०० घोड़े, ३१,०१,००० गाय बैल, ३२,००,००० सुअर और २,२१,१०,००० मुर्गियां हैं। यहां पर १९४८ ई० में ९१,००० कारखाने थे। इनमें ६,५४,६०० मनुष्य काम करते थे। चुकन्दर की उपज १९५९ ई० में ३,४६,९०० मेटरिक टन, पनीर ५४,०३,००० मेटरिक टन, मक्खन १,७५,१०० मेटरिक टन और दूध ५४,०३,००० मेटरिक टन हुआ था।

फिनलैंड

इसका क्षेत्रफल ३,०५,३९६ वर्ग किलोमीटर है। इस देश की जनसंख्या ४०,३२,५३८ है। इस आबादी में १९,२६,३३४ मर्द और २१,०६,२०४ औरतें सम्मिलित हैं। यहां के रहने वालों का मुख्य व्यवसाय खेती है कृषि योग्य भूमि कुल क्षेत्र का ७७ प्रतिशत है। १९५० ई० में खेती २४,७२,२६७ हेक्टर भूमि में होती थी। यहां की मुख्य फसलें जई, आलू, राई, जौ और गेहूँ है। इन फसलों का ब्योरा निम्नलिखित प्रकार से है —

फसल का नाम	क्षेत्र हेक्टर में	उपज (टन) में
राई	१,४१,९९६	२,३३,८६७
जौ	१,२१,१०९	१,८६,६२९
गेहूँ	१,८४,७१०	२,९१,४१६
जई	४,५२,१४१	७,२२,३०७
आलू	८४,९००	१२,१०,०८०

१९५० ई० मे एकड़ भूमि में सूखी घास थी। यहां पर ४,२७,००० घोड़े, ११३५,००० गाय, १३,२९,००० भेड़, ४,७०,००० सुअर, ५०,७६,००० मुर्गियां आदि और ७,०९,००० अन्य प्रकार के चौपाये हैं। २,१६,७०,००० हेक्टर भूमि में जंगल हैं। १,७०८,००० हेक्टर भूमि इस प्रकार के जंगलो से ढकी हुई है जो अधिक लाभदायक हैं। यहां पर १९४९ ई० में ५९२४ बड़े कारखाने और ६५९ लकड़ी चीरने वाली मिलें थी।

डोमिनीकन प्रजातंत्र राज्य

इसका क्षेत्रफल १९,१२८ वर्ग मील है। यहां की जनसंख्या २१,२१,०८३ है। इसमें १०,६३,७५८ पुरुष और १०,५७,३२४ स्त्रियां हैं। नगरों की जनसंख्या ५,०५,२६८ है। प्रति वर्ग मील की औसत जनसंख्या ११०९ है। १९५० ई० में १,०९,६५५ बच्चे पैदा हुये और २१,३०३ मरे थे। कुल भूमि का ९,९०० वर्ग मील भूमि खेती के योग्य है। लगभग ३,७०० वर्ग मील भूमि में खेती होती है। यहां पर ३७ नहरें हैं जिन से लगभग १२,००० एकड़ भूमि सींची जाती है। देश के शेष भाग में जंगल हैं। इस भाग में खेती नहीं हो सकती है यहा पर ५,९३,००० गाय बैल, ५,३३,००० सुअर, २,६५,००० घोड़, खच्चर और गदहे हैं। इस देश का दक्षिणी-पूर्वी भाग गन्ने की उपज के लिये प्रसिद्ध है। १९५० ई० में १९,९३५ टन चीनी बनाई गई थी। यहा पर कुल १६ चीनी के कारखाने हैं। यहा की मुख्य पैदावार काफी तम्बाकू और चावल है। १९५० ई० मे चावल की उपज ६०,८०५ मेटरिक टन थी। यह देश कोको की उपज के लिये भी प्रसिद्ध है। १९५० ई० मे २५,७८० मेटरिक टन कोको पैदा हुआ था। १९५० ई० में ३,४१२ कारखाने थे।

फ्रांस

इसका क्षेत्रफल ५,५०,९८७ वर्ग किलोमीटर है। यहां की जनसंख्या ४,२४,००,००० है। फ्रांस में कुल भूमि का क्षेत्र ५,५१,६०,००० हेक्टर है। १,८५,५३,००० हेक्टर भूमि में खेती होती है। १५,७४,००० हेक्टर भूमि में अंगूर के बाग और १,१२,०२,००० हेक्टर भूमि मे जगल हैं। ५६,८५,००० हेक्टर भूमि बेकार है। यहां की मुख्य उपज गेहूँ, विलायती बाजरा, जौ, जई, आलू, चुकन्दर रुई, गन्ना और फल हैं। चार वर्ष की पैदावार का ब्योरा निम्नलिखित प्रकार से है। :—

फसलों का नाम	क्षेत्र (१,००० हेक्टर में)				उपज (१,००० मेटरिक कुइनटाल में)			
	१९४८	१९४९	१९५०	१९५१	१९४८	१९४९	१९५०	१९५१
गेहूँ	४,२३१	४,२२३	४,३१९	४,२२१	७६,३३६	८०,८२४	७७,०१३	७०,२८४
अन्य-अनाज	३९	३४	३२	२९	४५६	४४३	४१८	३३७
राई	५६५	५२२	५०४	४७१	६३८०	६,४९६	६,०६२	५,०३६
जौ	८२०	८९६	९६२	१,०१७	१२,७३१	१४,३१४	१५,७१९	१६,६५०
ओट	२,४३९	२,४३६	२,३५३	२,२२३	३३८००	३२,२४५	३३,०५०	३६,०२३
आलू	१,०४७	९८२	९८८	९७२	१,५६,८२०	९६,४९६	१,२९,४३६	१,१९,०००

१९५० ई० में फलों की उपज इस प्रकार से है—

फलों का नाम	उपज (१,००० कुइन्टाल में)
सेब	५,५५०
बेर	१,०३२
आड़ू	१,१३५
खुबानी	४०७
चेरी	७५७

यहां पर २३,५९,००० घोड़े, ९०,००० खच्चर, १,०२,००० गदहे, १,६१,६२,००० गाय-बैल, ७५,६२,००० भेड़ और ७१,०२,००० सुअर हैं।

जर्मनी

इसका क्षेत्रफल २१,२८,८४५ वर्ग किलोमीटर है। यहां की जनसंख्या ६७,४९,२४,४०८ है। जर्मनी में कृषि योग्य भूमि २,१२,००,००० हेक्टर है। इसमें से १,४५,००,००० हेक्टर भूमि संघात्मक प्रजातन्त्र राज्य में शामिल है और ६७,००,००० हेक्टर भूमि सोवियत क्षेत्र में सम्मलित है। १९५१ ई० मे संघात्मक प्रजातन्त्र राज्य में कृषि योग्य भूमि ७८,८०,००० हेक्टर थी। इसमें ५५,८३,००० हेक्टर भूमि में झाड़ीयां और चरागाह और ५,६४,००० हेक्टर भूमि में फलों आदि के बाग हैं। जर्मनी के सोवियत क्षेत्र में खेती योग्य भूमि १९४९ ई० में ५०,२७,००० हेक्टर थी। इस भूमि को सोवियत सरकार ने किसानों को बांट दिया था। यहां की मुख्य उपज गेहूँ, राई, जौ, जई, आलू और चुकन्दर है। यहां की उपज का ब्योरा निम्नलिखित प्रकार से है। यहां ब्योरा संघात्मक प्रजातन्त्र राज्य की उपज है।

यहां पर १,१४,५३,००० गाय बैल, १५,७०,००० घोड़े, २०,४८,००० भेंड़, १,२०,५४,००० सुअर, १३,४७,००० बकरे और ५,१८,०१,००० मुर्गियां हैं। पशुओं की यह संख्या संघात्मक प्रजातन्त्र राज्य की है। सोवियत क्षेत्र के पशुओं की संख्या इस प्रकार से है—घोड़े, ७,२२,९००, गाय बैल ३६,१४,७००, सुअर ५७,०४,८०० और भेंड़ १०,८१,३०० हैं। १९४६ ई० में जर्मनी में जंगल का क्षेत्र ९६,००,०० हेक्टर था। यहां के जंगलों में मुल्यवान लकड़ी भी मिलती है।

फसलों का नाम	क्षेत्र (१,००० हेक्टर में)				उपज (१,००० मेटरिक टन में			
	१९३५-३८	१९४९	१९५०	१९५१	१९३५-३८	१९४९	१९५०	१९५१
गेहूँ	१,१२८	९२२१	१,०१४	१,०३०	२,५१५	२,४७१.०	२,६१४	२,९४९
राई	१,७३३	१४९१.२	१४३०	१३५४	३,१७४	३,४३८.३	३,१७८	३,११६
जौ	८१३	४९५.५	६१३	६४३	१,७२३	१,२१३.२	१,४५२	१,६८८
ओट	१,२६४	१,३२१.५	१,३४०	१,३३४	३,०३७	३,०३३.४	२,९४५	३,३२१
आलू	१,१६२	११,२३.७	१,१४१	१,११७	१९,९३८	२०,८७५.०	२७,९५९	२४,१०३
चुकन्दर	१३०	१६६.९	१९३	२२३	४२५३	४७३५.०	६,५७५	७,२९०

बाडेन

इसका क्षेत्रफल ३,८४२ वर्ग मील है। यहां की जनसंख्या १३,३८,६२९ है। यहां पर ६,१८,४०२ मर्द और ७,२०,२२७ औरतें हैं। यहां की मुख्य उपज गेहूँ, विलायती बाजरा (राई), जौ, जई (ओट), तम्बाकू, मक्का, आलू चुकन्दर और फल हैं। ४,१९,६०५ हेक्टर भूमि में जंगल और २,२२००० हेक्टर भूमि में चरागाह हैं। यहां पर १९,००० हेक्टर भूमि में वार्ली, २,३०० हेक्टर भूमि में मक्का, १४,२०० हेक्टर भूमि में राई, २९,२०० हेक्टर भूमि में गेहूँ, १५,००० हेक्टर भूमि में जई, २७,३०० हेक्टर भूमि में आलू, ३०० हेक्टर भूमि में चुकन्दर, और ५,६०० हेक्टर भूमि में अंगूर के बाग, और १९,०० हेक्टर भूमि में तम्बाकू के खेत हैं। ३४,२०० हेक्टर भूमि में चरागाह हैं। यहा पर २५.२०१ घोड़े, २,९५,९६८ गाय बैल, २,६०,२७८ सुअर, २७,६७८ भेड़, ७१,३२३ बकरे और ९,२५,७६८ मुर्गियां हैं। १९५१ ई० म यहां पर २,००० व्यवसायिक कारखाने थे जिन में १,६४,६३६ नौकर थे।

ब्रीमेन

इसका क्षेत्रफल १५५-८६ वर्ग मील है। यहां की जनसंख्या ५,७९,७७७ है। १९५० ई० में ७,५१८ बच्चे पैदा हुये और ५,४७१ लोग मरे थे। यहा पर खेती योग्य भूमि २४,२९५ हेक्टर है। अनाज की उपज ५,२१२ मेटरिक टन है। यहा पर १८,७४५ गाय बैल, २३,०७८ सुअर, १,५३० भेड़, ३,७३५ घोड़े और २,५०५ बकरे हैं।

हैम्बर्ग

इसका क्षेत्र १,८४,४८९ एकड़ है। यहां की जनसंख्या १६,०५,६०६ है। यहां पर ७,५२,३५७ मर्द और ८,५३,२४९ औरतें हैं। १९५० ई० में १७,७०७ बच्चे पैदा हुये और १६,६६७ लोग मरे थे। इस देश मे खेती योग्य भूमि ३९,२७७ हेक्टर है। १९५१ ई० मे अनाज की उपज १२,१८८ मेटरिक टन और आलू आदि की उपज ९८,९२६ मेटरिक टन थी। यहा पर १७,००२ गाय बैल, २२,८२० सुअर, ५,७२१ घोड़े, ४,०८१ भेड़ और ४,६९७ बकरे हैं। १९५१ ई० मे नौकरी करने वालों की सख्या ६,०६९६९ (४,००,७५२ पुरुष और २०६,२१७ औरतें) और बेकार लोगों की सख्या १,३४,१४० (५१,८४४ पुरुष और ४२,२९६ औरतें) थीं।

हीसेन

यह भाग विश्व की दूसरी लडाई के बाद बना। इसमें लैंड हीसेन (राईन नदी के दक्षिणी किनारे पर) हीसेन नासौ (यह पूर्व कालीन प्रशिया का एक प्रांत था) के क्षेत्र सम्मिलित हैं। यह देश अमरीकन

राज्य के अधिकार में है और इसका क्षेत्रफल (उन जिलों को छोड़कर जो फ्रांस के आधीन हैं) ८,१५०-१२ वर्ग मील है। यहां की जनसंख्या ४३,२३,८०१ (२०,२४,१७५ मर्द और २२,९९,६२६ औरतें) है। यहां की मुख्य उपज गेहूँ, राई, जई, आलू चुकन्दर है। १९५१ ई० की उपज का व्योरा निम्नलिखित प्रकार से है।—

फसल का नाम	क्षेत्र (१,००० हेक्टर म)	उपज (१,००० मेटरिक टन में)
गेहूँ	९३.१	३०३.६
जई	१२३.२	३१३
जौ	३२.२	९२.२
जई	११७.४	३१८.२
आलू	१००.२	२,२३९.२
चुकन्दर	१५.८	५१९.१

यहां पर १,१४,६२८ घोड़े, २,५८,४०६ बकरे २,५८,४०६, मुर्गियां, ७,८०,३०५,२,५९,७५९ भेड़ और १०,२०,३१५ सुअर हैं। १९५१ ई० में ४,४८३ कारखाने थे।

बेवेरिया

इसका क्षेत्रफल २७,१११०८३ वर्ग मील है यहां की जनसंख्या ९१,२६,११० है। यहां पर १९५० ई० में १,५१७५२ बच्चे पैदा हुये और ९८,९७३ लोग मरे थे। यहां की मुख्य उपज गेहूँ, राई, जौ, जई, आलू और चुकन्दर है। इन फसलों की उपजों का व्योरा निम्नप्रकार से है:—

यहां पर ३४,३२,००० गाय-बैल, ३,३६,६,००० घोड़े, ३,९०,००० भेड़, २,५७,००० बकरे, २४,६७,००० सुअर और १,२१,७९,००० मुर्गियां हैं। यहां पर २१,११२ व्यवसायिक कारखाने हैं जिनमें लगभग ७,३७,५४९ मनुष्य काम करते हैं। ३०.६ प्रतिशत लोग खेती और जंगलों के काम में लगे हुये हैं।

फसलों का नाम	क्षेत्र (१,००० हेक्टर में)				उपज (१,००० मेटरिक टन में)			
	१९४८	१९४९	१९५०	१९५१	१९४८	१९४९	१९५०	१९५१
गेहूँ	३०६.९	३०१.९	३४८.३	३४५.५	४८३.२	६६३.६	७७३ २	८६७.५
राई	३५१.५	३४४.०	३६०.९	३५२.३	४९५ ६	६१६.१	७५३.३	७२३.७
जौ	१७८.०	१९९ ४	२६६.५	२७८.१	२५६ ६	४०२.३	५८८.१	६६६.३
ओट	२६५.१	२७३.२	२८७.२	२७९.०	३२५.६	४५४.३	४९६.९	६११.०
आलू	३१५.७	३०६.१	३०४.२	३०२.७	५,८६९.१	३,३१८.४	८,०८८.२	६,०७६.८
चुकन्दर	१५.८	१५.०	१७.२	२०.५	३९९.७	३२८.९	३९९.८	५८८.२

लोयर सेक्सोनी

इस देश का निर्माण १९४६ ई० में हुआ था। इसका क्षेत्रफल ४७,२८८ वर्ग किलोमीटर है। यहां की जनसख्या ६७,९९,३७९ है। १९५० ई० में १,१६,४८२ वच्चे पैदा हुये और ६५,४४२ लोग मरे थे। यहा की मुख्य फसलें, राई, (विलायती वाजरा), औट (जई), गेहूँ, जौ, आलू और चुकन्दर हैं। इन फसलों की उपज का व्यौरा निम्नलिखित प्रकार से है:—

फसल का नाम	क्षेत्र (१,००० हेक्टर में)	उपज (१,००० मेटरिक टन में)
राई	३५३.०	८१९.४
ओट	२४५.९	६५४.२
गेहूँ	११९.३	४०१.६
जौ	५५.५	१७०.३
आलू	२६९.६	६,२९६
चुकन्दर	९३.१	३०,८६३

यहां पर २१,३२,८४६ गाय-बैल, ३७,०९,२८९ सुअर, ३,६४,४०८ भेड़ और ३,७९,११९ घोड़े हैं।

उत्तरी राइन वेस्टफेलिया

यह देश ब्रिटिश लोगों के अधिकार में है। इसका क्षेत्रफल १३,१०२ वर्ग मील है। यहां की जनसंख्या १,३२,९६,१७६ (६२,५५,०२५ मर्द और ६९,४१,१४१ औरतें) है। यहां १९५१ ई० मे २,०४७१७ वच्चे पैदा हुये और १,४०,६०३ लोग मरे थे। १९४० ई० में कुल जनसख्या का १६-३ प्रतिशत भाग व्यवसाय आदि के काम में लगा हुआ था। यहां की मुख्य फसलें राई (विलायती वाजरा) ओट (जई), गेहूँ, जौ, आलू और चुकन्दर हैं। इन फसलों की उपज का व्यौरा निम्नलिखित प्रकार से है:—

फसलों का नाम	क्षेत्र (१,००० हेक्टर में)	उपज (१,००० मेटरिक टन में)
राई	२१५.५	५७३.५
जई	२०१.२	५३५.३
गेहूँ	१५०.०	४७८.८
जौ	६७.९	२०८.
आलू	१६५.३	३,५९०.
चुकन्दर	५६.५	१,९२३.

यहां पर १४,५६,३१९ गाय बैल, २५,५०,७३१ सुअर, २,३५,१९८ भेड़, १७५९,३७८ वकरी और २,६४,८३३ घोड़े हैं।

राइन लैन्ड पेलेटीनेट

यह देश फ्रांस के आधीन है। इसका निर्माण विश्व की दूसरी लड़ाई के वाद में हुआ था। इसका क्षेत्रफल १९,८२८ वर्ग किलोमीटर है। यहां की जनसख्या ३०,०४,७५२ (१४,००,८९६ मर्द और १६,०३,८५६ औरतें) है। १९५० ई० में ५६,१४७ वच्चे पैदा हुये और ३१,९५८ लोग मरे थे। यहां की मुख्य फसलें गेहूँ, राई (विलायती वाजरा), जौ, ओट (जई), आलू, चुकन्दर और तम्वाकू हैं। १९५१ ई० की उपज का व्यौरा नीचे दिया हुआ है।

फसलों का नाम	क्षेत्र (१,००० हेक्टर में)	उपज (१,००० मेटरिक टन म
गेहूँ	६७.५	२२१.१
राई	८९.८	२३३.१
जौ	५४.२	१६८.३
ओट	९६.८	२५७.५
आलू	९०.८	२,०७३.४
चुकन्दर	१४.१	४५५.२
तम्वाकू	२.६	५.८

यहां पर ६,९८,००० गाय-बैल, ८५,६०० घोड़े, ४३,२०० भेड़, १,५६,८०० बकरी, ५,३२,८०० सुअर और ३३,१९,४०० मुर्गियां हैं।

ग्रीस या यूनान

इस देश का क्षेत्रफल ५१,२४६ वर्ग मील है। यहां की आबादी ७६,०३,५९९ है। इस आबादी का २७.५ प्रतिशत भाग नगरों में और ६२.५ प्रतिशत भाग ग्रामों में बसा हुआ है। इस देश का केवल २० प्रतिशत भाग खेती योग्य है। इस देश की उपज से केवल ५३.७ प्रतिशत लोगों का निर्वाह हो सकता है। १९४९ ई० में ३७,२०,५५० हेक्टर भूमि में खेती होती थी। १९३८ ई० में २४,०६,५०२ हेक्टर भूमि जंगलों से ढकी थी जिसमें १६,६७,८१६ हेक्टर जंगल सरकारी थे। १९४४ ई० में जनसंख्या का ४९.५ प्रतिशत भाग किसानी का काम करता था। २५ प्रतिशत भाग मजदूरों और कारीगरों का, १० प्रतिशत भाग नौकरों का ८.५ प्रतिशत भाग अन्य व्यवसाय वालों का और ७ प्रतिशत भाग पेन्शन पानेवालों का था। यहां की मुख्य फसलें गेहूँ, राई (विलायती बाजरा), मक्का, जौ, ओट (जई), मेसलिन और चावल हैं। इनकी उपज का ब्योरा निम्नलिखित प्रकार से है। १९४७ ई० में अलसी की उपज ४,००० मेटरिक टन थी। १९५० ई० में फलों की उपज इस प्रकार से थी। किशमिश ८०,००० मेटरिक टन, मुनक्का ३४,००० मेटरिक टन, सूखा अंजीर २१,००० मेटरिक टन १९५० ई० में तम्बाकू की उपज ५७,९००० मेटरिक टन थी और ९९,०७० हेक्टर भूमि में फसलें बोई गई थीं। १,५४,००२ हेक्टर भूमि में जैतून की खेती होती है। यहां पर २,३५,००० घोड़े, ३,८०,००० खच्चर, ६,७७,६७० गदहे, ६६,५६,००० गाय-बैल, ३४,३८,००० बकरी, ५,३०,००० सुअर ९७,००,००० मुर्गियां हैं। १९५० ई० में कपास की उपज ७७,२०८ मेटरिक टन थी।

फसलों के नाम	१९३५-३९ की औसत पैदावार		१९४६-४७		१९४७-४८	१९४८-४९	१९५०
	क्षेत्र (१,००० हेक्टर में)	उपज (१,००० मेटरिक टन में)	क्षेत्र (१,००० हेक्टर में)	उपज (१,००० मेटरिक टन में)	उपज (१,००० मेटरिक टन में)	उपज (१,००० मेटरिक टन में)	उपज (१,००० मेटरिक टन में)
गेहूँ	८५०	७६७	७६५	७३५	७७०	८००	८५०
राई	६२	५५	५५	५०	४०	४०	४८
मक्का	२६१	२५५	२६६	२१७	२२९	२२९	१९५
जौ	२०५	१९७	१६२	१९८	१९०	१३०	२००
ओट	१३८	११६	१०६	१४७	१५०	८५	१२०
मेसलिन	५६	४१	५२	४६	३०	—	३२
चावल	२	४	२	५	९	९	३२

फसल का नाम	उपज (१,००० कुइन्टाल में)
गेहूँ	६९,०००
जौ	२,६९३
ओट	५,०७८
राई	१,२२८
चुकन्दर	५६,५००
आलू	३२,६८०
टमाटर	९४,४८०
चावल	७,१००
हेम्प	६९३
मक्का	१९,२४१

जापान

जापान का क्षेत्रफल १,४१,५२९ वर्ग मील है। यहां की जनसंख्या ८,३११,९९,६३७ है। आबादी प्रति वर्ग मील मे ५८७८ है। यहा की आबादी मे ४,०७,४०,२०० पुरुष और ४,२३,५०,००० औरतें हैं। १९४३ ई० मे कृषकों की सख्या ३,४२,४५,०२७ थी। इनमे १,४४,७०,९७९ लोग फार्मो में खेती करते थे और १,४७,२३,६५७ लोग खेती के काम के लिये नौकर थे। १९५१ ई० मे खेती करने वालों की सख्या १,८६,२०,००० हो गई थी। प्रति हेक्टर खेती योग्य भूमि में काम करने वालों की संख्या का औसत ३.६ थी। १९५० ई० मे खेती योग्य भूमि ५०,४८५१९ हेक्टर थी जो कुल भूमि के क्षेत्र का १६ प्रतिशत भाग था। २८,५२,१५० हेक्टर भूमि में चावल की खेती होती थी। १९,१२,२२१ हेक्टर भूमि में अन्य प्रकार के अनाज की फसलों की खेती होती थी। २,८४,१२८ हेक्टर भूमि पेड़ो के लिये और ५,५९,००० हेक्टर भूमि व्यवसायिक फसलो के लिये थी। इस प्रकार की फसलों में शहतूत के पेड़, चाय, तम्बाकू और फ्लैक्स मुख्य हैं। ५,१०,४७,५०६ एकड़ भूमि में जंगल हैं जिसमें १,८३,२४,२०० एकड़ भूमि के जंगल सरकारी और ३,२७,२३,५०६ एकड़ भूमि के जगल प्रजा के हैं। २०,१५,२५७ एकड़ भूमि के जगलो में इमारती लकड़िया मिलती हैं।

चावल जापान की प्रधान फसलो में है। इसकी उपज कुल खेतिहर क्षेत्र के ५६ प्रतिशत भाग में होती है। १९५० ई० मे चावल की उपज प्रति एकड़ में ३,३३० पौंड थी। १९५१ ई० में जौ की पैदावार १०,८४,०९४ मेटरिक टन और गेहूँ की पैदावार १५,१७,०३१ मेटरिक टन थी। यहां पर फलो और आलू की उपज भी अधिक होती है। यहां पर २४,६०,००० गाय-बैल १०,६१,५०० घोड़े, ४,४९,२६० भेड़, ४,५१,००० सुअर और १,११६,४८० खरगोश हैं। इसके अलावा यहां पर बकरे और फर (समूर) वाली लोमड़ियां भी पाली जाती हैं। यहा पर सूती, ऊनी और रेशमी कपड़े बनाने के कारखाने हैं।

जार्डन

इसका क्षेत्रफल ३४,७५०. वर्ग मील है। यहां की जनसख्या १,७०,००० है। इस देश का जो भाग हेजाज रेलवे लाइन के पूर्व मे है वह रेगिस्तानी है। *किन्तु इस लाइन के पश्चिम वाला भाग खेती के लिये* प्रसिद्ध है। यहां की आबादी का औसत प्रति वर्ग मील में १०.१ है किन्तु जो भाग उपजाऊ हैं उनकी औसत आबादी प्रति वर्ग मील मे ४४३ है। यहां पर चरागाह भी हैं जिनमें पशु भी चराये जाते हैं।

कोरिया

इसका क्षेत्रफल ८५,२६६ वर्ग मील है। यहां की आबादी १९४३ ई० में २,५१,२०,१७४ थी। उत्तरी कोरिया का क्षेत्रफल ४९,११४ है और दक्षिणी कोरिया का क्षेत्रफल ३६,१५२ वर्ग मील है। १९४८ ई० मे इसकी जनसख्या २,०२,००,००० थी। आबादी प्रति वर्ग मील मे ५६१.५ थी। दक्षिणी कोरिया खेती के लिये प्रसिद्ध है। यहां पर कई हजार छोटे-छोटे कारखाने भी हैं जो ३६,१५२ वर्ग मील के क्षेत्र में फैले हुये हैं। यहां पर खेती योग्य भूमि १,१०,००,००० एकड़ है। १९४८ ई० में

दक्षिणी कोरिया में १४,००,००० फार्म, प्लाटों से अधिक प्लाटों को कोरियन कृषकों के हाथ बेच दिया गया था। इनमें १८.३ प्रतिशत चावल की उपज वाले प्लाट और ८.७ प्रतिशत सूखी फसलों की उपज वाले प्लाट थे। इन फार्मों को खरीदने वालों ने अनाज देकर खरीदा था। इन फार्मों का दाम वार्षिक उपज का तीन गुना रक्खा गया था। यह फार्म पहले जापानियों के अधिकार में थे। इन फार्मों में ३३,००,००० लोगों को लाभ पहुंचा था। यहां की मुख्य फसलें चावल, वार्ली (जौ), गेहूँ, सेम, जई, राई (विलायती बाजरा), कपास, और तम्बाकू हैं। दक्षिणी कोरिया की मुख्य उपज वार्ली, ज्वार, सोयाबीन, गेहूँ, कपास और तम्बाकू है। यहां पर फलों के बाग और तरकारियों के खेत भी हैं। इसके अलावा यहां पर शहतूत के पेड़ भी अधिक संख्या में हैं जिन पर रेशम के कीड़े पाले हैं। यहां पर ६,४१,९११ गाय-बैल, ६६,६६३ घोड़े, खच्चर और गदहे, ९,१८,८८२ सुअर और ३,२२६ भेड़ हैं। यहां सूती कपड़े आदि बनाने के कारखाने भी हैं।

लाइबेरिया

इसका क्षेत्रफल ४३,००० वर्ग मील है। इसकी जनसंख्या लगभग १५,००,०० है। यहां की मुख्य उपज चावल, काफी और गन्ना है। यहां पर रबड़ के पेड़ भी अधिक हैं। यहां के जंगलों की लकड़ियां बाहर भेजी जाती हैं।

लिबिया

इसका क्षेत्रफल ६,७९,३५८ वर्ग मील है। यहां की जनसंख्या १९३८ ई० में ८,८८,४०१ थी। १७,२३१ वर्ग मील भूमि खेती के योग्य है। यहां की मुख्य उपज गेहूँ वार्ली (जौ) और फल है। यहां पर चरागाह भी हैं जिनमें पशु चराये जाते हैं। शहतूत के पेड़ों पर रेशम के कीड़े पाले जाते हैं। यहां पर ७,६१,३८७ भेड़, ६,८७,२५५ बकरे, ६३,८०० गाय-बैल, ७८,६४० ऊंट, ८४,०४८ घोड़े, गदहे, खच्चर और १,९९८ सुअर हैं।

लेबनान

इसका क्षेत्रफल लगभग ३,४०० वर्ग मील है। की जनसंख्या १२,४६,५८० है। १९५० ई० में २८,९५३ बच्चे पैदा हुये और ९,७१४ लोग मरे थे। इस देश का केवल २२ प्रतिशत भाग खेती योग्य है। यहां की मुख्य उपज गेहूँ, मका, वार्ली, (जौ), आलू, प्याज, जैतून, तरबूज और फल हैं। १९५० ई० में इनकी उपज निम्न प्रकार से हुई थी:—

फसलों का नाम	उपज (१,००० मेटरिक टन)
गेहूँ	४५
मका	२३
जौ	२६
आलू	३५
प्याज	३८
जैतून	१५
आलू	२६
फल	१५८
तरबूज	२५

यहां पर साबुन, सिगरेट और सूती कपड़ा बनाने के कारखाने हैं।

लक्सेम्बर्ग

इसका क्षेत्रफल २,५८६ वर्ग किलोमीटर है। यहां की जनसंख्या २,९८,५७८ है। १९५० ई० में यहां पर ४,४०१ बच्चे पैदा हुये और ३,४४६ लोग मरे थे। यहां पर कृषकों की संख्या १,००,००० है। १९५० ई० में खेती योग्य भूमि १,४४,००० हेक्टर थी। यहां की मुख्य फसलें जई, आलू और गेहूँ हैं। यहां पर १३,९१० घोड़े, १,२४,२३० गाय-बैल, १,१९,६८० सुअर, ३,५०० भेड़ें और १,३५० बकरे हैं।

मेक्सिको

इस देश का क्षेत्रफल ७,६०,३७५ वर्ग मील है। यहां की जनसंख्या २,५५,८१,२५० है। आबादी का औसत प्रति वर्ग मील में ३३६ है। अनाज की

उपज खेती योग्य भूमि के ६८ प्रतिशत भाग में होती है। इसके ९ प्रतिशत भाग में गेहूँ और ६८ प्रतिशत भाग में मक्का की उपज होती है। खेती के लिये सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है। १९५८ ई० में खेती योग्य कुल भूमि १,७०,०७,७०० एकड़ थी जिसमें २३,५५,६०७ एकड़ भूमि मे खेती सिंचाई द्वारा होती थी। इस देश को अपने ऊपर निर्भर रहने के लिये दो चीजों की आवश्यकता है.—(१) २,४०,००,००० एकड़ भूमि में खेती हो सके (२) १,७०,००,००० एकड़ भूमि मे सिंचाई का प्रबन्ध हो सके। यहां की मुख्य उपज फल, मक्का, काफी, गन्ना, कपास, चावल, जौ, गेहूँ और सेम है। १९५० ई० में मक्का की पैदावार ३४,२७,००० मेटरिक टन, चावल १,५२,००० मेटरिक टन, गन्ना ७,०३,००० मेटरिक टन, गेहूँ ८,१४,६०० मेटरिक टन, सेम ३,२३,३७१ मेटरिक टन, जौ १,६०,००० मेटरिक टन, और काफी की पैदावार ६९,००० मेटरिक टन थी। १९५१ ई० मे कपास की पैदावार १२,२०,००० गांठ थी। साखू के जंगल लगभग ७,००,००,००० एकड़ भूमि मे फैले हुये हैं। यहां पर १२ रिजर्व (सरक्षित) जंगल हैं। यह जगल ७,२२,६४८ हेक्टर भूमि में फैले हुये हैं। ४६ जातीय पार्क जंगल हैं जो ५,५९,१४४ हेक्टर भूमि में फैले हैं। यहां पर १,४६,००,००० गाय-बैल, ५१,७०,००० भेड़ें, ६ ९,४५,७२२ बकरे २७,२२, २३५ घोड़े, १२,२२,०३४ खच्चर और २६,३५,८२८ गदहे हैं।

सुरीनाम

इसका क्षेत्रफल १,४२,८२२ वर्ग किलोमीटर है। यहां की जनसख्या २,२१,००० है। खेती योग्य भूमि २६,००० हेक्टर है। यहा की मुख्य उपज चावल, गन्ना, मक्का, काफी, कोको और फल है। यहां पर ३८,००० गाय-बैल, ३,००० भेड़ें और बकरे, ५,००० सुअर, १३० भैंस, ६०० घोड़े और ८०० खच्चर और गदहे हैं।

हालैंड या नेदरलैंड (निचले प्रदेश)

इस प्रदेश का क्षेत्रफल ३,२३,९५.७० वर्ग किलोमीटर है। इस की जनसख्या १,०२,००,२८० है। इसमें ५०,८३,७५९ पुरुष और ५१,१६,५२१ औरतें सम्मिलित हैं। औसत आबादी प्रति वर्ग मील में ३१४.९ है। खेती योग्य भूमि २३,२५,४८२ हेक्टर है जिसका विभाजन निम्न प्रकार की तालिका में दिया गया है।:—

	१९४८	१९४९	१९५०	१९५१ (हेक्टर में)
खेती योग्य भूमि	९,६३,९८२	९,१७,८२६	९,२५,५०६	९,०५,२२२
चरागाह	१२,४४,५१२	१३,७३,७१९	१३,१७,८५२	१३,२१,०२६
फ्लावर बल्ब	६,४२८	६,०१५	६,५०९	७,५३४
तरकारियां	८०,९६९	१,२०९	१,१५१	१,१७६
फूल की खेती	१,४८२	३,२३९	३,०८६	२,५६८
पौधे लगाने के लिये	३,३६२			
कुल भूमि का जोड़	४२,००,७३६	२३,११,११२	२३,३८,३८५	२३,२५,४८२

निम्न तालिका में प्रधान फसलों की उपज का ब्योरा (मेटरिक टन में) दिया है :—

फसलों का नाम	औसत उपज १९३० से १९३९ तक	१९४८	१९४९	१९५०	१९५१
गेहूँ	३,६७,०१२	३,०५,७७४	४,२५,३१४	२,९३,५९३	२,६९,५९२
राई	४,५८,००२	३,८२,१८७	५,१६,८३७	४,२०,९५०	४,५७,९९९
जौ	१,०१,५५२	१,३७,९३८	१,८८,६२५	२,३२,२५२	२,१०,११२
जई	३,३७,३६७	३,१५,८६४	४,२३,८४०	३,८१,५४८	४,९१,१७८
सेम	२५,०८७	७,७३९	१२,४५०	१२,४३६	८,७३४
आलु	२९,२१,००५	५.८७,०३१	४६,०५,१७४	४०,५१,८४८	३७,९५,६१२
चुकन्दर	१६,५२,८६६	१८,९२,९०१	२९,४३,०६४	२७,१६,९१५	२४,५०,५११

मुख्य फसलों की उपज का क्षेत्र हेक्टर मे निम्न तालिका में दिया गया है।

पैदावार	१९५०	११५१
गेहूँ	१९,२२४	७५,३०८
राई	१,७५,६९०	१,६०,६९४
जौ	६९,२३५	६५,४७२
जई	१,४०,९९०	१,५६,५१६
फ्लैक्स	१७,७९२	२९,१२३
खेती का बीज	७,०८४	७,४९६
आलू	१,६५,८५३	१,५६,५८१
चुकन्दर	६६,९०३	६६,६४१
फल	५६,३९५	६०,३०३

यहा पर २८,८२,००० गाय-बैल, १९,३५,००० सुअर, ७,५०,००० घोड़े, ३,७१,००० भेड़े और २,५४,६०,००० मुर्गिया हैं।

निकारेगुआ

इसका क्षेत्रफल ५७,१४३ वर्ग मील है। यहां की जनसख्या १०,५३,१८९ है। औसत आवादी प्रति वर्ग मील में १८.४ है। इस देश की कुल भूमि ३,००,००,००० एकड़ है। १,००,००,००० एकड़ भूमि में सारू के जंगल, ९,००,००० एकड़ भूमि में चरागाह और २,००,००० एकड़ भूमि खेती के योग्य है। जनसख्या के ७० प्रतिशत लोग कृपिक हैं। यहां की मुख्य उपज चावल, गेहूँ, काफी, गन्ना, कोको सेम, कपास, तम्बाकू और फल है। यहां के जंगलों में मूल्यवान लकड़ी भी मिलती है। दियासलाई, सिगरेट और चमड़े आदि के सामान बनाने के कारखाने भी हैं। १९५० ई० में १२,७५,००० गाय-बैल थे।

नार्वे

इसका क्षेत्रफल ३,२४,२२२,.२७ वर्ग किलोमीटर है। यहां की जनसख्या ३२,७७,००० हैं। इस जनसख्या के २४.९ प्रतिशत लोग खेती और जगल के काम में, ३१.४ प्रतिशत लोग व्यवसाय मे ९.९ प्रतिशत लोग व्यापार में, ९.१ प्रतिशत लोग यातायात में ,५.८ प्रतिशत लोग मछली मारने मे और ७४ प्रतिशत लोग अन्य प्रकार के व्यवसाय मे लगे हुये

है। यहां पर खेती के योग्य भूमि प्रायः तंग घाटियों में मिलती है। कुल क्षेत्र का ७२.३ प्रतिशत भाग उपजाऊ नहीं है। २४.३ प्रतिशत भाग में जंगल और केवल ३.४ प्रतिशत भाग खेती के योग्य है। यहां की मुख्य उपज गेहूँ, राई, जौ, और जई, आलू है। इनका विवरण निम्न प्रकार की तालिका में दिया गया है:—

कुल जंगल का क्षेत्रफल ६०,२८३ वर्ग किलोमीटर है। इसका ८० प्रतिशत भाग केवल चीड़ के पेड़ों से ढका हुआ है। ६०,२८३ वर्ग किलोमीटर के क्षेत्रफल में पतझड़ वाले पेड़ों के जंगल हैं। कुल भूमि के क्षेत्र का २४.२ प्रतिशत भाग जंगलों से ढका हुआ है। यहां पर कागज बनाने के अधिक कारखाने हैं। यहां पर १,९०,५१४ घोड़े, १२,३६,६०० गाय-बैल, १८,११,७४८ भेड़ें, १,३०,०४५ बकरी, ४,२२,१५६ सुअर और २९,११,९९६ मुर्गियां हैं।

मुख्य फसलों का नाम	क्षेत्र (हेक्टर में)			उपज (मेटरिक टन में)		
	१९४९	१९५०	१९५१	१९४९	१९५०	१९५१
गेहूँ	२०,८२८	३१,६१५	२४,२६७	६६,९९१	६६,०१८	३,६९,०००
राई	९९०	१,१५६	६३९	२,०६२	२,४७१	
जौ	३९,९९६	४१,८९३	५४,६५५	८६,१४४	९८,९३४	
ओट	७४,८९०	७५,८३५	७६,४१०	१,६३,२५०	१,६३,२५७	
मिला अनाज	३.८९८	३,८३०	३,८६१	९,६६९	९,५६०	
आलू	५८,२४१	५८,५१६	५८,५१६	१०,९८,७१८	११,१५,६८५	

पनामा

इसका क्षेत्रफल २८,५७५ वर्ग मील है। यहां की जनसंख्या ८,०१,८९ है। पनामा में खेती योग्य भूमि बहुत कम है। यहां की मुख्य उपज केला, चावल, नारियल, कोको और काफी है। यहां पर ५,७६,५९८ गाय-बैल, १,९९,९६८ सुअर और १८,३१,१४० मुर्गियां हैं।

पेरग्वे

इस देश का क्षेत्रफल ९५,३३७ वर्ग मील है। यहां की जनसंख्या १४,०५,६२७ है। इस आबादी में ३,८०,००० मर्द और ७,००,००० औरतें सम्मिलित हैं। आबादी का औसत प्रति वर्ग किलोमीटर में ३४ है। इस देश की भूमि उपजाऊ है। खेती के योग्य भूमि ४,१०,००,००० हेक्टर है। खेती केवल १५,५०,००० हेक्टर भूमि में होती है। यहां की मुख्य उपज फल, चाय और तम्बाकू है। १,३४,००० एकड़ भूमि में मक्का और २५,००० एकड़ भूमि में गन्ना की खेती होती है। कपास की खेती १,४०,००० एकड़ भूमि में होती है। चावल यहां पर कम पैदा होता है। यहां के जंगलों में साखू और देवदार के पेड़ों की संख्या अधिक है। यहां पर ३३,६९,००० गाय-बैल, २,७४,००० घोड़े, २,०६,००० भेड़ें और ३३,४०० सुअर और बकरी हैं।

ईरान

ईरान का क्षेत्रफल १६,४०,००० वर्ग किलोमीटर है। यहां की जनसंख्या १,९१,३९,५६३ है। यहां की मुख्य उपज कपास, फल, गेहूँ, चावल, चुकन्दर और जौ है। कुल भूमि का क्षेत्र १६,२६,००,००० हेक्टर

। इसके केवल १० प्रतिशत भाग में खेती होती है। ४० प्रतिशत भूमि में रेगिस्तान और १७ प्रतिशत भूमि में जंगल और पहाड़ हैं। २० प्रतिशत भूमि बेकार पड़ी हुई है। १९५०-५१ में गेहूँ की उपज २२,८८,००० मेटरिक टन, चावल की उपज ३,८४,३१५ मेटरिक टन और जौ की उपज ९,२९,३२८ मेटरिक टन थी। चाय और तम्बाकू भी यहां पैदा होती है। १९४९-५० चाय की उपज ५,१५२ मेटरिक टन थी।

पीरू

इस देश का क्षेत्रफल ५,१४,०५९ वर्ग मील है। यहां की जनसंख्या ८४,९७,८५३ है। आबादी का औसत प्रति वर्ग मील में १७ है। खेती के योग्य भूमि २,९४,६०,००० एकड़ है। किन्तु खेती केवल ३६,००,००० एकड़ भूमि में होती है। यहां खेती सिंचाई द्वारा होती है। आबादी का ८० प्रतिशत भाग खेती पर निर्भर रहता है। यहां की मुख्य पैदावार कपास, गन्ना, गेहूं और काफी है। १९५० ई० में गेहूँ की उपज १,६२,३८८ हेक्टर भूमि से १,४३,८०७ मेटरिक टन हुई थी। १९५० ई० में चावल की उपज ९५,४९४ मेटरिक टन थी। कपास की उपज १९५०-५१ ई० में १,३८,३९६ हेक्टर भूमि से ८०,२४५ मेटरिक टन हुई थी। १९५० ई० में तम्बाकू की उपज १,३६३ मेटरिक टन थी। यहां पर २६,३९,००० गाय-बैल, ५,१७,००० घोड़े, १,३९,८०० खच्चर, ४,३२,००० गदहे, ३३,५०,००० ऊंट और १,७७,४८,००० भेड़ हैं।

फिलीपाइन प्रजातन्त्र राज्य

इसमें ७,१०७ द्वीप सम्मिलित हैं। इसका क्षेत्रफल १,१५,६०० वर्ग मील है। यहां की जनसंख्या १,९२,३४,१८२ है। आबादी की औसत प्रति वर्ग मील में १६४ है। कुल भूमि का क्षेत्र ७,३४,८९,९१० एकड़ है। ३,२६,१३,२६० एकड़ भूमि में जो जंगल हैं उनसे व्यापार के योग्य लकड़ियां मिलती हैं। १,०४,७९,८३० एकड़ भूमि के जंगलों की लकड़ियां बेकार रहती हैं। १४,९९,४३० एकड़ भूमि में दलदल और झाड़ियां हैं। २,८७,५६,४२० एकड़ भूमि खेती योग्य है। यहां की मुख्य फसलें गन्ना, मक्का, चावल और तम्बाकू आदि हैं। १९४८-४९ ई० में चावल की उपज ५४,९१,२९० मेटरिक टन, गन्ना की उपज ६,९२,९१० मेटरिक टन, मक्का की उपज ५,२५,००० मेटरिक टन और तम्बाकू की उपज २१,९२० मेटरिक टन थी। यहां पर फल भी पैदा होता है। ८,३८० एकड़ भूमि में रबड़ के पेड़ लगे हुये हैं। यहां पर १९,७२,८५९ भैंसें, ७,०५,२६० गाय-बैल, २,१६,६१६ घोड़े, ३३,४८,८६१ सुअर, ३,१६,८०६ बकरी और २१,४०० भेड़े हैं।

रूमानिया

इस देश का क्षेत्रफल ९१,६७१ वर्ग मील है। यहां की जनसंख्या १,५८,७२,६२४ है। यहां की मुख्य उपज गेहूं, राई, जौ, जई और मक्का है। इस के अलावा यहां पर गन्ना, फ्लैक्स और हेम्प की भी उपज होती है। १९४८ ई० में ५५,५८८ हेक्टर भूमि में हेम्प और १५,००० हेक्टर भूमि में फ्लैक्स की खेती होती थी। यहां पर ८,६८,००० घोड़े, ३३,९८,००० गाय-बैल, ७७,३९,००० भेड़ें और १४,९३,००१ सुअर हैं।

पोलैंड

इसका क्षेत्रफल १,२१,१३१ वर्ग मील है। यहां की जनसंख्या २,४९,७६,९२६ है। इसमें १,१९,१२,५१४ पुरुष और १,३०,६४,०१२ औरतें हैं। यहां की मुख्य उपज गेहूँ, राई (विलायती बाजरा), बार्ली (जौ), ओट (जई), आलू, चुकन्दर और कपास हैं। १९४७ ई० में खेती योग्य भूमि १,४३,६३,६०० हेक्टर थी। ३४,१०,१०० हेक्टर भूमि में झाड़ियां, ७०,८३,१०० हेक्टर भूमि में जंगल, १६,२९,७०० हेक्टर भूमि में चरागाह और ३,४५,८०० हेक्टर भूमि में बाग हैं। १९४८ ई० में तम्बाकू की उपज १६,९०० टन थी। फसलों की उपज का ब्योरा निम्न तालिका में दिया गया है—

यहां पर २७,९५,४२४ घोड़े, ७१,६३,९३८ गाय-बैल, २१,९४,२०७ भेड़ें, ९९,२८,४१८ सुअर, ६,६७,३०० बकरी और ७,८० ००,००० मुर्गियां हैं।

फसलों का नाम	क्षेत्र (१,००० हेक्टर में)				उपज (१,००० मेटरिक टन में)			
	१९४७	१९४८	१९४९	१९५०	१९४७	१९४८	१९४९	१९५०
गेहूँ	१,११२	१,३८४	१,४४५	१,४९४.५	९८६	१,६२१	१,७८१	१,२५०.२
राई	४,६३२	५,०८८	५,१६६	५,१२६.४	४,३०६	६,३००	६,७५९	६,५०२.८
जौ	९३०	८६३	८४१	८५५.१	१,०३५	१,०१०	१,०२८	१,०७६.६
ओट	१,५६२	१,७१६	१,७७५	१,७१९.८	१.७६३	२,४०२	२,३३३	२,१२६.०
आलू	२,३०३	२,४७८	२,५३८	२,६४२.७	५०,८२१	२६,७१६	३०,९०	३६,८८३६
चुकन्दर	२१०	२२४	२६१	२८६.९	३,४९३	४,२२६	——	६,३७७.२

पुर्तगाल

इसका क्षेत्रफल ९,१७,२१.१० वर्ग किलोमीटर है। यहा की जनसंख्या ८४,९१,४५५ है। इसमें ४१,०१,६५३ पुरुष और ४३,८८,८०२ औरतें सम्मिलित हैं। १९५१ ई० में २,०७,८१५ बच्चे पैदा हुये और १,०५,४६९ लोग मरे थे। यहां की मुख्य उपजगें हैं, मक्का, ओट, वार्ली, राई, चावल, सेम और आलू है। इनकी उपज का व्योरा निम्नतालिका मे दिया हुआ है।

यहा पर ८५,०४० घोड़े, १,२२८३२ खच्चर, २,५५,४४८ गदहे, ९,५३,२२६ बैल, ३९,४८,३२० भेड़ें, १२,४३,८९० बकरी और १२,५२,९७५ सुअर हैं। २४,६७,००० हेक्टर भूमि में जगल हैं। ११,६१,००० हेक्टर भूमि में चीड़ के पेड़, ८०,००० एकड़ भूमि में विल्लूत के पेड़, १४,८८,००० हेक्टर भूमि में देवदार के पेड़ और ६८,००० हेक्टर भूमि में अन्य प्रकार के पेड़ हैं।

फसलों के नाम	१९४९		१९५०		१९५१	
	क्षेत्र (हेक्टर में)	उपज (मेटरिक टन में)	क्षेत्र (हेक्टर में)	उपज (मेटरिक टन में)	क्षेत्र (हेक्टर में)	उपज (मेटरिक टन में)
गेहूँ	६८७,६५३	४,०४,८८४	६७९,७२९	५७४,५९३	७,०९,८६०	६,०४,३३७
मक्का	४,८२,३२४	३,४२,३३१	४,९३,८३७	४,८१,६८५	५,०३,८३२	४,२२,५९६
जई	३,१६,०४७	२,१९,४९१	२,९१,८४९	१,४१,३४८	२,६४,५००	१,४६,५७८
जौ	१,३९,३९४	१,३३,४७९	१,४५,४५०	१,२९,१६२	१,५५,६२५	१,३६,९३०
राई	२,६९,५८९	१,४८,८४०	२,६५,०३०	१,५०,०३४	२,६४,५४१	१,२७,७३९
चावल	२८,२५१	७७,५३५	२७,०१५	१,२१,०३४	३०,०५४	१,२७,७३९
सेम	३,५५,५४३	३६,४३२	३,४६,९५७	५७,६७७	३,४७,७०१	३५,८६१
आलू	८३,१६१	७,९०,३६८	८७,९२६	११,२७,७५४	८७,५८३	१२,०८,८०

स्पेन

इसका क्षेत्रफल १,९४,२३२ वर्ग मील है। यहा का जनसंख्या २,८०,०२,१५२ है। यहा पर प्रति वर्ग किलोमीटर मे आबादी ५५.७ है। १९४९ ई० में आलू की खेती ३,५८,५०० हेक्टर भूमि मे, चुन्कदर की खेती ९६,००० हेक्टर भूमि मे, फल की खेती ५,७४,७१४ हेक्टर भूमि मे, रेशादार फसलों की खेती ६,९०,२९४ हेक्टर भूमि में, अनाज की खेती ७०,६४,९५६ हेक्टर भूमि मे, तरकारी की खेती १२,३०,१२७ हेक्टर भूमि मे, जैतून के पेड़ २०,०८,१०३ हेक्टर भूमि मे, अगूर की लतरें १५,६८,३२५ हेक्टर भूमि में, चरागाह २,३३,२१,१२२ हेक्टर भूमि मे और बाग १,४०,४६१ हेक्टर भूमि मे थे। यहां की मुख्य उपज गेहूँ, जौ, ओट (जई), राई (विलायती बाजरा), चावल, फल और आलू हैं। इनकी उपज का व्योरा निम्न तालिका मे दिया गया है:—

यहां पर तम्बाकू और गन्ना की भी खेती होती है। १९५० ई० मे तम्बाकू की उपज २९,८२ टन, गन्ना की उपज २३,३०० टन और चुकन्दर की उपज १,५३,२०० टन हुई थी। यहां पर ६,०७,४३८ घोड़े, १०,७८,७७५ खच्चर, ७,४६,७४९ गदहे, ३३,००,१८९ गाय, १,५९,२१,३०३ भेड, ४२,२१,७५९ बकरी, २६,८८,१११ सुअर, ४२,२७,४६३ खरगोश और १,८०,९३,३७२ चिडिया हैं। कपास के कुल कारखाने २८६४ हैं जिनमे १,६१,४७८ मजदूर काम करते हैं। कागज बनाने के कारखाने २०३ हैं। १९५० ई० में इन कारखानों मे १,६९,७६८ टन कागज बना था।

फसलों का नाम	क्षेत्र (१,००० हेक्टर में)					उपज (१,००० मेटरिक टन मे)				
	१९४६	१९४७	१९४८	१९४९	१९५०	१९४६	१९४७	१९४८	१९४९	१९५०
गेहूँ	३,७७१	३,८३८	३,८६१	३,९०६	४,०७५	३,६१८	२,३६२	२,३२२	२,२५४	३,३८२
जौ	१,४९९	१,४७४	१,४७४	१,४८४	१,५४६	१,९३१	१,१९०	१,४७५	१,१२४	१,५०२
जई	६३४	६००	५८९	५८६	६२५	६०४	३५४	४०२	३३८	५०६
राई	५९८	६०७	६१८	६१३	६१६	४७७	३५७	३६७	४०५	४६४
चावल	५८	७७	७७	७८	१,४३१	९१०	५९७	७५४	८७२	३८६
आलू	३६२	३५९	३५८	३,५८५	३५८.५	२,५५८	२,८३५	२,७०२	२,८१४	—

स्वेडन

इस देश का क्षेत्रफल ४,४९,१९९ वर्ग किलोमीटर है। यहां की जनसंख्या ७०,४३,७०१ है। प्रति वर्ग किलोमीटर भूमि मे आबादी १७.२ है। यह एक खेतिहर देश है। कुल भूमि का क्षेत्र ४,१०,४८,००० हेक्टर है। ३७,१५,००० हेक्टर भूमि मे खेती होती है। ९,४२,००० हेक्टर भूमि में झाडियां और २,२२,६९,००० हेक्टर भूमि मे जंगल है। यहा १९४४ ई० मे ४,१४,४४,१ फार्मों मे खेती होती थी। यहा की मुख्य फसले गेहूँ, राई, जौ, जई, आलू, चुकन्दर और फल हैं। इनकी उपज का व्योरा निम्न तालिका मे दिया गया है।

फसलों का नाम	क्षेत्र (१,००० हेक्टर में)				उपज (१,००० मेटरिक टन में)			
	१९४७	१९४८	१९४९	१९५०	१९४७	१९४८	१९४९	१९५०
गेहूँ	१,११२	१,३८४	१,४४५	१,४९४.५	९८६	१,६२१	१,७८१	१,२५०.२
राई	४,६३२	५,०८८	५,१६६	५,१२६.४	४,३०६	६,२००	६,७५९	६,५०२.८
जौ	९३०	८६३	८४१	८४५.१	१,०३५	१,०१०	१,०२८	१,०५६.६
ओट	१,५६२	१,७१६	१,७७५	१,७१९ ८	१,७६२	२,४०२	२,३३३	२,१२६.०
आलू	२,३०३	२,४७८	२,५३८	२,६४२.७	५०,८२१	२६,७१६	३०,९०	३६,८८३.६
चुकन्दर	२१०	२२४	२६१	२८६.९	३,४९३	४,२२६	—	६,२७७.२

पुर्तगाल

इसका क्षेत्रफल ९,१७,२१.१० वर्ग किलोमीटर है। यहा की जनसंख्या ८४,९०,४५५ है। इनमें ४१,०१,६५३ पुरुष और ४३,८८,८०२ औरतें सम्मिलित हैं। १९५१ ई० में २,०७,८१५ बच्चे पैदा हुये और १,०५,४६९ लोग मरे थे। यहां की मुख्य उपजें हैं, मक्का, ओट, वार्ली, राई, चावल, सेम और आलू है। इनकी उपज का व्योरा निम्नतालिका में दिया हुआ है।

यहा पर ८५,०४० घोड़े, १,२२८३२ खच्चर, २,५५,४४८ गदहे, ९,५३,२२६ बैल, ३९,४८,३२० भेड़ें, १२,४३,८९० वकरी और १२,५०,९५५ सुअर हैं। २४,६७,००० हेक्टर भूमि मे जंगल हैं। ११,६१,००० हेक्टर भूमि मे चीड़ के पेड़, ८०,००० एकड़ भूमि में बिरलूत के पेड़, १४,८८,००० हेक्टर भूमि में देवदार के पेड़ और ६८,००० हेक्टर भूमि में अन्य प्रकार के पेड़ हैं।

फसलों के नाम	१९४९		१९५०		१९५१	
	क्षेत्र (हेक्टर में)	उपज (मेटरिक टन में)	क्षेत्र (हेक्टर में)	उपज (मेटरिक टन में)	क्षेत्र (हेक्टर में)	उपज (मेटरिक टन में)
गेहूँ	६८७,६५३	४,०४,८८४	६७९,७२९	५७४,५९२	७,०९,८६०	६,०८,३३७
मक्का	४,८२,४२४	३,४२,२३९	४,९३,८३७	४,८१,६८५	५,०३,८३२	४,२२,५९६
जई	३,१६,०४७	२,१९,३९१	२,९१,८४९	१,४१,३४८	२,६४,७००	१,४६,५७८
जौ	१,३९,४९४	१,३३,४७९	१,४५,४७०	१,२९,१६२	१,५५,६२५	१,३६,९३०
राई	२,६९,५८९	१,४८,८४०	२,६५,०३०	१,७०,०३४	२,६४,५४१	१,२७,७३९
चावल	२८,२५१	७७,५३५	२७,०१५	१,२१,०३४	३०,०५४	१,२७,७३९
सेम	३,५५,५४३	३६,४३३	३,४६,९५७	५७,६४०	३,४७,७०१	३५,८६१
आलू	८३,१६१	७,९०,३६८	८७,९२६	११,२७,७५४	८७,५८३	१२,०८,८०

स्पेन

इसका क्षेत्रफल १,९४,२३२ वर्ग मील है। यहां का जनसंख्या २,८०,०२,९१२ है। यहा पर प्रति वर्ग किलोमीटर मे आबादी ५५.७ है। १९४९ ई० में आलू की खेती ३,५८,५०० हेक्टर भूमि मे, चुन्कदर की खेती ९६,००० हेक्टर भूमि में, फल की खेती ५,७४,७५४ हेक्टर भूमि में, रेशादार फसलों की खेती ६,९०,२९४ हेक्टर भूमि में, अनाज की खेती ७०,६४,९५६ हेक्टर भूमि में, तरकारी की खेती १२,३०,१३७ हेक्टर भूमि मे, जैतून के पेड़ २०,०८,१०३ हेक्टर भूमि मे, अगूर की लतरें १५,६८,३२५ हेक्टर भूमि में, चरागाह २,३३,२१,१२२ हेक्टर भूमि मे और बाग १,४७,४६१ हेक्टर भूमि मे थे। यहां की मुख्य उपज गेहूँ, जौ, ओट (जई), राई (विलायती बाजरा), चावल, फल और आलू हैं। इनकी उपज का व्योरा निम्न तालिका में दिया गया है:—

यहां पर तम्बाकू और गन्ना की भी खेती होती है। १९५० ई० में तम्बाकू की उपज २९,८२ टन, गन्ना की उपज २३,३०० टन और चुकन्दर की उपज १,५३,२०० टन हुई थी। यहां ९८ ६,०७,४३८ घोड़े, १०,७८,७७१ खच्चर, ७,४६,७४९ गदहे, ३३,००,१८९ गाय, १,५९,२१,३०३ भेड़, ४२,२१,७५९ बकरी, २६,८८,१११ सुअर, ४२,२७,४६३ खरगोश और १,८०,९३,३७२ चिड़ियां हैं। कपास के कुल कारखाने २८६४ हैं जिनमें १,६१,४७८ मजदूर काम करते हैं। कागज बनाने के कारखाने २०३ हैं। १९५० ई० मे इन कारखानों में १,६९,७६८ टन कागज बना था।

फसलों का नाम	क्षेत्र (१,००० हेक्टर में)					उपज (१,००० मेटरिक टन में)				
	१९४६	१९४७	१९४८	१९४९	१९५०	१९४६	१९४७	१९४८	१९४९	१९५०
गेहूँ	३,७७१	३,८३८	३,८६१	३,९०६	४,०७५	३,६१८	२,३६२	२,३२२	२,२५४	३,३८२
जौ	१,४९९	१,४७४	१,४७४	१,४८४	१,५४६	१,९३१	१,१९०	१,४२५	१,१२४	१,५०२
जई	६३४	६००	५८९	५८६	६२५	६०४	३५४	४०२	३३८	५०६
राई	५९८	६०७	६१८	६१३	६१६	४७७	३५७	३६७	४०५	४६४
चावल	५८	७७	७७	७८	१,३३१	९१०	५९७	७५४	८८२	३८६
आलू	३६२	३५९	३५८	३,५८५	३५८.५	२,५५८	२,८३५	२,५०२	२,८१४	—

स्वेडन

इस देश का क्षेत्रफल ४,४९,१९९ वर्ग किलोमीटर है। यहा की जनसख्या ७०,४३,७०१ है। प्रति वर्ग किलोमीटर भूमि मे आबादी १७.२ है। यह एक खेतिहर देश हैं। कुल भूमि का क्षेत्र ४,१०,४८,००० हेक्टर है। ३७,१५,००० हेक्टर भूमि मे खेती होती है। ९,४२,००० हेक्टर भूमि में झाड़ियां और २,२२,६९,००० हेक्टर भूमि मे जगल है। यहां १९३४ ई० मे ४,१४,४४,१ फार्मों मे खेती होती थी। यहा की मुख्य फसलें गेहूँ, राई, जौ, जई, आलू, चुकन्दर और फल हैं। इनकी उपज का व्योरा निम्न तालिका में दिया गया है।

मुख्य फसलें	क्षेत्र (हेक्टर में)		उपज (१,००० मेट्रिक टन में)	
	१९५०	१९५१	१९५०	१९५१
गेहूँ	३,३९,३००	३,२८,०००	७३९	४८४
राई	१,२६,७००	९७,८००	२४४	१७६
जौ	९४,०००	१,१०,५००	२०९	२५०
ओट	५,०२,३००	५,०१,५००	८०७	८९०
मिला हुआ अनाज	३,१८,१००	३,२५,६००	६५४	६८९
फला	२३,१००	२४,५००	३६	३६
आलू	१,३०,५००	१,३०,८००	१,७३४	१,७५१
चुकन्दर	५४,४००	५४,१००	१,९७८	१,७३२

१९५१ ई० में ३,१७,००० हेक्टर भूमि में चारा वाली घास की उपज होती थी। यहां पर ४,१५,००० घोड़े, २६,३३,००० गाय-बैल, ७,६१,००० भेड़ें, १४,८२५ बकरे और १२,२४,००० सुअर हैं। ७३,८१,००० हेक्टर भूमि में जंगल हैं। इन जंगलों में मूल्यवान लकड़ी मिलती हैं। वहां पर १,१०९ लकड़ी चीरने वाले कारखाने हैं जिनमें २५,८८७ मजदूर काम करते हैं। लकड़ी के सामान बनाने वाले कारखानों की सख्या १,८५१ हैं। इनमें ५५,८८७ मजदूर काम करते हैं। कागज की लुब्दी बनाने के ७३ कारखाने हैं। इनमें १७,९६२ मजदूर काम करते हैं। कागज बनाने के कारखानों की सख्या ७१ है। इन कारखानों में १९,३१९ मजदूर काम करते हैं।

स्विट्ज़रलैंड

इस देश का क्षेत्रफल ४१,२९५ वर्ग किलोमीटर है। यहां की जनसंख्या ४७,१४,९९२ है। प्रति वर्ग किलोमीटर में जनसख्या १५ है। कुल भूमि का क्षेत्र ४१,२९,५९० हेक्टर है। लगभग ९,३१,१८० हेक्टर भूमि (२२.५ प्रतिशत) उपजाऊ नहीं है। केवल ३१,९८,३१० हेक्टर भूमि उपजाऊ है। १०,२७,८३० हेक्टर भूमि में जंगल हैं। २,६६,८४० हेक्टर भूमि में खेती होती है। ९,११,७८० हेक्टर भूमि में स्थायी झाड़ियां और ९,९१,८६० हेक्टर भूमि में चरागाह हैं। १९३९ ई० में २,३८,४८१ फार्म थे जिनका कुल क्षेत्र १२,४२,६९७ हेक्टर था। यहां की मुख्य उपज गेहूँ, आलू, चुकन्दर, तम्बाकू और तरकारियां हैं। १९५१ ई० में १,६७,५५० हेक्टर भूमि में खेती हुई थी। इसके ८८,५०० हेक्टर भूमि में गेहूँ, ५४,८५० हेक्टर भूमि में आलू, ५,९१० हेक्टर भूमि में चुकन्दर, ११,१५० हेक्टर भूमि में तरकारियां और १,००० हेक्टर भूमि में तम्बाकू की उपज हुई थी। यहां पर १,३१,३४० घोड़े, १,९१,१६० भेड़, १,४७,३१४ बकरे, १६,०६,६५३ गाय-बैल और ८,९१,८४३ सुअर हैं।

सीरिया

इसका क्षेत्रफल ७२,२३४ वर्ग मील है। यहां की जनसख्या ३२,५२,६८७ है। यहां के निवासी प्राय: खेती ही के काम में लगे रहते हैं। खेती योग्य भूमि ८५,००० वर्ग किलोमीटर है। ३५,००० वर्ग

किलोमीटर भूमि में खेती होती है जिसमें १०००० वर्ग किलोमीटर भूमि में खेती सिंचाई द्वारा होती है। खेती योग्य भूमि का क्षेत्रफल ८५,००० वर्ग किलोमीटर है। यहां पर पैदा होने वाली फसलों का ब्योरा निम्न तालिका में दिया गया है :—

मुख्य फसल	धान्य खेती क्षेत्र हेक्टर में)	उपज (१९५० मेटरिक टन में)
गेहूँ	९,७२,२५०	८,३०,०२५
जौ	४,१६,४४५	३,२२,०११
मक्का	२४,८१२	३५,६८३
कपास	७७,९६१	३५,५९३
अलसी	५९,१९४	२६,५५१

यहा पर २९,३०,३९७ भेड़, १२,२९,७३८ बकरें, ७८,०५१ ऊंट, ८७,०७० घोड़े, ४,२९,२५३ गायबैल, २,७१,०४७ गदहे, ५८,२१२ खच्चर और २४,८२,८१५ चिड़िया है।

थाईलैंड

इस देश का क्षेत्रफल ७७,८०० वर्ग मील है। यहां की जनसंख्या १,७५,१७,७८२ है। यहा की मुख्य उपज चावल, गन्ना, तम्बाकू, रुई और नारियल है। इस प्रदेश का ६० से ७० प्रतिशत भाग जंगलों से ढका हुआ है। यहां पर ३,५८३ हाथी, २,०३,०१२ घोड़े, ५७,९८,४३५ बैल और ५२,३०,५७८ भैंसे हैं।

टर्की

इस देश का क्षेत्र फल २,९६,१८५ वर्ग मील है। यहां की जनसंख्या २,०९,३४,६७० है। इस देश की भूमि का अधिकतर भाग उपजाऊ है। जनसंख्या का का ६५.२ प्रतिशत भाग खेती करता है। यहां की मुख्य उपज गेहूँ, जौ, ओट, (जई) मक्का, राई, चावल रुई, तम्बाकू, अलसी, फल, और गन्ना है। यहा पर अफीम की भी उपज होती है। १९४९ ई० में २,२७,८२६ कृषकों ने १,२७,४२० हेक्टर भूमि में तम्बाकू की खेती की थी। १,००,०८५ मेटरिक टन तम्बाकू पैदा हुई थी। १९५० ई० में गन्ना की उपज १,३७,५५० टन हुई थी। इसी वर्ष फ्लैक्स २,००० मेटरिक टन, हेम्प ७,५०० मेटरिक टन और कपास की उपज १,१८,८०० मेटरिक टन हुई थी। कपास की खेती ४,४८,५०० हेक्टर भूमि में की गई थी। १९४९ और १९५० ई० की उपज का ब्योरा निम्नतालिका में दिया गया है।

२,९५,२४,६,७ एकड़ भूमि जंगलों से ढकी हुई है। जंगलों का ८८ प्रतिशत भाग सरकार के अधिकार में हैं और ६ प्रतिशत भाग में प्रजा का अधि-

मुख्य फसलें	१९४९		१९५०	
	क्षेत्र (हेक्टर में)	उपज (मेटरिक टन में)	क्षेत्र (हेक्टर में)	उपज (मेटरिक टन में)
गेहूँ	४०,०५,८१०	३५,१६,६२३	४४,७७,१९१	३८,७१,९२६
जौ	१७,५८,७१९	१२,४६,५३६	१९,०१,९१०	२०,४७,०१८
ओट	२,९३,६५८	२,३५,५२४	३,०२,३७६	३,१५,६०१
मक्का	६,००,५७९	७,२४,६७९	५,९३,१६१	६,२७,९८७
राई	४,३२,७६३	२,७४,३३९	४,८७,५३६	४,४२,८७९
चावल	२६,३७६	५७,६९,१	२४,१२५	५१,२५८

कार है। यहां पर २,२०,८३,००० भेड़, १,८५,४२,००० बकरे, १,०२,१६,००० गाय बैल, १६,२३,००० गदहे, ११,४०,००० घोड़े, ९,३२,००० भैंस, १,१०,००२ ऊंट और १,०९,००० खच्चर हैं।

चेकोस्लोवेकिया

इस राज का क्षेत्र फल १,२७,८२७ वर्ग किलोमीटर है। यहां की जनसख्या १,२५,१३,००३ है। जनसंख्या का औसत प्रति वर्ग मील में २९३.६ है इस देश में खेती उन्नति पर है यहां पर १९४८ ई० में ५३,०४,३२९ हेक्टर भूमि खेती योग्य थी। ४०,६६,०३ हेक्टर भूमि में जगल और २०,२६,५६७ हेक्टर भूमि मे स्थायी चरागाह और घास के मैदान थे यहां की मुख्य उपज राई, गेहूँ, और जई है। इस का ब्योरा निम्नलिखित तालिका मे (मेटरिक टन में) दिया गया है।

फसलों का नाम	१९४५	१९४६	१९४७	१९४९
राई	९,९२,७०४	११,४९,०८८	९,९८,८२५	११,४२,२८६
गेहूँ	११,१२,५४०	१३,२०,२३१	८,५३,६०१	१३,९७,७९०
जौ	६,६५,३२९	७,६५,८१६	६,६९,३४०	९,३४,३५१
जई	६,९१,०४२	८,२४,७४०	७,१४,०४४	९,०८,१२९

इस के अलावा यहां पर हाप्स की भी उपज होती है। चेकोस्लोवेकिया योरुप के प्रमुख वन प्रदेशों में गिना जाता है। यहां इमारती लकड़ी बहुत तैयार की जाती है। अन्न उगाने के कारबार में १,१३,७०२ और कागज लकड़ी के सामान बनाने और इमारती लकड़ी तैयार करने मे ७८,५६१ मजदूर काम में लगे रहते है। यहां पर ३६,६१,००० गाय बैल, (इस में १८,६९,००० गायें भी सम्मिलित हैं) घोड़े ६,३४,६०६ सुअर ३२,३९,००० भेड़ ४,५९,०००, बकरी ९,८१,००० और मुर्गियां १'६३,७८,००० हैं। इस देश की जनसख्या और क्षेत्रफल निम्न प्रकार से है·

ग्रेट ब्रिटेन

इङ्गलैंड का कुल क्षेत्र ३,२०,३३,००० एकड़ है जिसके २६,१६,००० एकड़ भूमि में अच्छे चरागाह नहीं हैं। स्थायी चरागाह ९२,४०,००० एकड भूमि में पाये जाते है। यहा पर खेती योग्य भूमि १,२६,६२००० एकड़ है वेल्स का कुल क्षेत्र ५०,९९,००० एकड़ है। १५,८५,००० एकड़ भूमि में स्थायी चरागाह है।

इस देश की जनसंख्या और क्षेत्र निम्न प्रकार से है.—

भागों का नाम	क्षेत्र एकड में	मनुष्यों की सख्या	स्त्रियों की संख्या	अप्रैल १९५१ में जो जनसंख्या थी।
इङ्गलैंड	३,२२,०९,४५६	१,९७,५४,२७५	२,१३,९३,६६३	४,११,४७,९३८
वेल्स	५१,३०,१०३	१२,६९,९१२	१३,२७,०७४	२५,९६,९८६
स्काटलैंड	१,९४,५९,२००	२४,३४,७८९	२६,६१,२२०	५०,९५ ९६९
आयल आफ मैन	१,४१,४४०	२५,७४९	२९,४६४	५५,२१३
चैनल द्वीप समूह	४८ ०००	४९,२७६	५३,२९४	१,०२,७७०
जोड	—	२,३९,३४,०६१	२,५४,६४,८१५	४,८९,९८,८७६

१८,२६,००० एकड़ भूमि में कहीं-कहीं चरागाह पाये जाते हैं। इस देश में खेती योग्य भूमि १०,१८,००० है। स्काटलैंड का कुल क्षेत्र १,९०,६९,००० एकड़ है। १,०९,१४,००० एकड़ भूमि में निम्न श्रेणी वाले चरागाह मिलते हैं। १२,०५,००० एकड़ भूमि में स्थायी चरागाह हैं। यहां पर खेती योग्य भूमि ३१,८९,००० एकड़ है। आइल आफ मैन का कुल क्षेत्र १,४१,००० एकड़ है जिसके ४६,००० एकड़ भूमि में खराब श्रेणी वाले चरागाह मिलते हैं। १३,००० एकड़ भूमि में स्थायी चरागाह हैं। खेती योग्य भूमि का क्षेत्र ६३,००० एकड़ है। ग्रेटब्रिटेन में खेतिहर क्षेत्र का विभाजन निम्न प्रकार से है:—

खेतिहर क्षेत्र	इङ्गलैंड और वेल्स		स्काटलैंड	
	१९५०	१९५१	१९५०	१९५१
	एकड़	एकड़	एकड़	एकड़
अनाज वाली फसलें	६७,५०,७११	६३,१२,१००	११,६२,२०९	११,४८,७१८
हरी फसलें	३०,४६,३६१	२८,४२,५०७	५,८६,९७९	५,६२,६७१
हाप्स	२२,१५४	२२,४२२	—	—
फलों के बाग	२,३२,६९४	३,२३,५९६	११,४९९	११,१७१
ऊसर	२,६०,३३५	३,७७,१४२	८,२४१	७,११६
घास और मसाले	३५,५८,७५२	३८,१५,०११	१४,३१,६६६	१४,५९,१७४
स्थायी चरागाह	१,०४,९६,१२०	१,०७,८५,६७०	११,८८,९७२	१२,०४,५९०
जोड़	२,४४,५८,१५७	२,४४,७८,६७७	४३,९९,५६६	४३,९४,२९४

ग्रेटब्रिटेन में १९५१ ई० में ९,१२,००० लोग खेती के काम में लगे हुये थे। इनमें पुरुषों की संख्या ६,९७,००० और स्त्रियों की संख्या १,१५,००० थी। यहां पशुओं की संख्या निम्न तालिका में दी हुई है।

	१९४७	१९४८	१९४९	१९५०	१९५१
गाय-बैल	९५,६७,०००	९८,०६,०००	१,०२,४४,०००	१,०६,७०,०००	१,०४,७३,०००
भेड़	१,६७,१३,०००	१,८१,६४,०००	१,९४,९३,०००	२,०४,३०,०००	१,९९,८४,०००
सुअर	१६,२८,०००	२१,४१,०००	२८,२३,०००	२९,८६,०००	३८,९१,०००
घोड़ा	७,७८,०००	७,०३,०००	६,१८,०००	५,५९,०००	४,५८,०००
मुर्गियां	७,००,०६,०००	८,५३,७२,०००	९,५१,९९,०००	९,६१,०९,०००	९,४३,४४,०००

इजले आफ़ मैन

इस द्वीप का क्षेत्र १,४५,३२५ एकड़ है। यहां की जनसंख्या ५५,५९९ है। इस आबादी में २५,०८६ मर्द और २९,४१३ औरतें सम्मिलित हैं। यहां की मुख्य उपज जई, गेहूँ, जौ, आलू और घास है। १९५० ई० में ७६,५६३ एकड़ भूमि में फसलों की उपज होती थी। ८५,७६९ एकड़ भूमि में चरागाह थे।

१७,२८७ एकड़ भूमि में अनाज की खेती होती थी। १४,५५९ एकड़ भूमि में जई, ६६४ एकड़ भूमि में गेहूँ, ३०६ एकड़ भूमि में जौ, १,९७८ एकड़ भूमि में आलू की पैदावार होती थी। २८,९७९ एकड़ भूमि में घास उगती थी। यहा पर २५,०६७ गाय-बैल, ७१,५१७ भेड़, ४,३४१ सुअर और १,७७१ घोड़े हैं।

जर्सी

इस द्वीप का क्षेत्रफल २८,७१७ एकड़ है। यहा की जनसंख्या ५७,२९६ है। यहां की मुख्य उपज आलू और टमाटर है। यहां पर गाय-बैल केवल १,११८ है।

गुयर्नसी

इस द्वीप का क्षेत्रफल १५,६५४ एकड़ है। यहा की जनसंख्या ४३,४९३ है। यहा की मुख्य उपज टमाटर और अंगूर है। यहां पर गाय-बैल की संख्या ४८५ है।

मान्टा

इस द्वीप का क्षेत्र फल ९५ वर्गमील है। यहां की जनसंख्या ३,१२,५४७ है। यहा की मुख्य उपज गेहूँ जौ, आलू, प्याज, सेम, फल, कपास, तरकारी और टमाटर है। यहा के निवासियों का मुख्य व्यवसाय खेती करना है। ३५,९६४ एकड़ भूमि में खेती होती है। कुल खेतों की संख्या लगभग १२,६१४ है। यहा पर घोड़ों, खच्चरों और गदहों की सख्या ८,२७१, गाय-बैल की संख्या २,८६१, भेड़ों की सख्या २०,४०८ बकरों की सख्या ५७,१५९ और सुअर की सख्या २०,८०० है।

केपउपनिवेश

इसका क्षेत्रफल २,७७,११३ वर्ग मील है यहां की जनसंख्या ४४,१७,३३० है। यहा पर खेती सिवाई द्वारा होती है। यहां की मुख्य उपज गेहूँ मकई और तम्बाकू है।

नैटाल

इसका क्षेत्रफल ३५,२८४ वर्ग मील है। यहां की आबादी २४,०८,४३६ है। यहां की मुख्य उपज गन्ना, मकई, फल चावल, आलू और जौ है।

ट्रान्सवाल

इसका क्षेत्रफल १,१०,४५० वर्ग मील है। यहां की जनसंख्या ४८,०२,४०५ है। यहां के निवासी अधिकतर खेती करते हैं। इन लोगों का मुख्य धन्धा ढोर और भेड़ पालना है। यहा पर ३८,७९,५४१ गाय-बैल, ३८,३३,०३६ भेड़ें, ९,७३,२७१ बकरे और ३,२०,५६८, सुअर हैं।

दक्षिणी रोडेशिया

इस का क्षेत्रफल १,५०,३३३ वर्ग मील है। यहा की जनसंख्या २१,०१,००० है। यह देश खेती योग्य है। यहां की मुख्य उपज मकई, तम्बाकू, मूगफली, गेहूँ, आलू और फल है। १९४९-५० ई० में मकई की खेती ३,४०,९३५ एकड़ में तम्बाकू की खेती १,५५,२८६ एकड़ भूमि में, मूगफली की खेती ५,५२९ एकड़ भूमि मे, गेहूँ की खेती ८९७ एकड़ भूमि मे और आलू की खेती ४,१२६ एकड़ भूमि मे की गई थी। यहा के निवासी डेरी के सामान से भी लाभ उठाते हैं। १९४९ ई० मे कारखानों मे काम करनेवालो की सख्या ९७,३२५ थी। १९५० ई० मे ९०,००,००० गैलन दूध से ९,१३,००० पौंड मक्खन और ३,९४,२९६ पौंड पनीर तैयार हुआ था। यहा पर १८,३७,४१५ गाय-बैल, २,०१,२६९ भेड़, ५४,५०६ सुअर और ५,६५,९९९ बकरे हैं।

उत्तरी रोडेशिया

इस का क्षेत्रफल २,८७,६४० वर्ग मील है। यहां की जनसंख्या १६,२०,००० है। यहा पर चरागाह और खेती योग्य भूमि मिलती है। यहा की मुख्य उपज मक्का, तम्बाकू, और कपास है। यहा पर गाय-बैल की संख्या ८,५९,००० है यहा के जंगलों में रेड वुड नामक टिम्बर इमारती लकड़ी मिलती है जो बहुत अधिक प्रसिद्ध है।

अल्जीरिया

इस का क्षेत्रफल ८४७,५५२ वर्ग मील है। यहां की जनसंख्या ८८,७६,०१६ है। यहां के मैदान और घाटियां अधिक उपजाऊ हैं। १,५६,००,००० एकड़ भूमि में खेती होती है। ५०,००,००० एकड़ भूमि के किसान योरपियन लोग हैं। शेष भूमि को यहां के निवासी जोतते और बोते हैं। यहां की मुख्य उपज गेहूँ, जौ, जई, आलू, मक्का, तम्बाकू, सेम, फल, और टमाटर है। १९५० ई० में गेहूँ की उपज १,०६,-१४,००० कुइन्टाल, जौ की उपज ८०,५०,००० कुइन्टाल और जई की उपज १५,२०,००० कुइन्टाल थी। १९५० ई० में तम्बाकू की खेती १,७७,५०० एकड़ भूमि में हुई थी। जिसमें तम्बाकू की उपज १,९०,००० कुइन्टाल हुई थी। २,००,००० एकड़ भूमि में खेती सिंचाई द्वारा होती है। यहां के जंगलों में देवदार, साखू और चीड़ आदि के पेड़ अधिक मिलते हैं। यहां पर २,१७,००० घोड़े, २,३८,००० खच्चर ३,२६,००० गदहे, ७,६८,००० गाय-बैल, ४५,४१,००० भेड़, २८,६०,००० बकरे, १,३७,००० सुअर और १,४०,००० ऊँट हैं।

अजरबैजान

इसका क्षेत्रफल ३३,४६० वर्ग मील है। जनसंख्या ३२,०९,७०० है यहां की मुख्य उपज कपास, चावल, फल, तम्बाकू और तरकारियां हैं। इसके अलावा चाय और गेहूँ की भी पैदावार होती है। यह देश कपास की उपज के लिये अधिक प्रसिद्ध है। यहां पर १३,५७,००० गाय-बैल, १,१९,५०० सुअर और २९,०७,००० भेड़-बकरे हैं।

अफ्रीका

दक्षिणी अफ्रीका

दक्षिणी अफ्रीका का क्षेत्रफल ४,७२,४५४ वर्ग मील है। यहां की जनसंख्या १,२६,४६,३७५ है। यहां पर खेतों की संख्या १९४६ ई० में १,१७,४४२ थी। इन खेतों का कुल क्षेत्र २१,४७,७७,४६५ एकड़ था। मुख्य फसलों की उपज निम्नतालिका में दी गई है (१,००० पौंड में)—

वर्ष	गेहूँ	जौ	जई	आलू	काफिर कार्न
१९५५-५६	६,०८,६९३	६५,१००	१,६९,८६१	५,८५,६३३	७०,११२
१९५६-५७	९,६४,०७३	५७,१७१	१,९१,५५३	७,४८,५३७	१,०५,३००
१९५७-५८	१०,५६,८८६	८१,३६७	२,७१,३३३	५,५६,६७२	२,६४,९५९
१९४८-४९	१०,६५,१८८	६५,५६८	१,८०,३४१	४,७८,३०१	३,११,७५२

१९४८-४९ ई० में गन्ना की उपज ४६,१२,२७३ टन थी। यहां पर कपास की उपज भी दिन प्रति दिन बढ़ती जा रही है। १९४० ई० में कपास की पैदावार ५,२०० गांठें, १९५० ई० में ७,००० गांठें और १९५१ ई० में १३,८०० गांठें थीं। यहां के कृषकों को सिंचाई के लिये आवश्यक सहायता सरकार की तरफ से मिलती है। यह सहायता १९१२ ई० के सिंचाई के नियम के अन्तर्गत मिलती है। १९४८ ई० में १,७१,३२,२६८ पौंड पनीर और ४,१६,६६,३१० पौंड मक्खन कारखानों द्वारा तैयार किया गया था। १९४८ ई० में कुल कारखानों की संख्या १३,६५३ थी। इन कारखानों में लगभग ५,४२,४७ लोग नौकर थे। ३५,२५,००० एकड़ भूमि जंगलों से ढकी हुई है। यहां पर १,२४,६२५ गाय-बैल, ३,१६,०७,-७०६ भेड़ें, ५५,२८,८२० बकरियां, ७,६१,६८१ सुअर ३,४६,११४ घोड़े, १,००,२६१ खच्चर और ३,५५,-०६७ गदहे हैं।

दक्षिणी-पश्चिमी अफ्रीका

इस देश का क्षेत्रफल ३,१७,७२५ वर्ग मील है। इसकी जनसंख्या ४,३०,३५४ है। इस देश के निवासियों का मुख्य व्यवसाय पशु पालना है। वर्षा और पानी के अभाव के कारण यहां पर खेती होना बड़ा ही कठिन है। इसके केवल उत्तरी और उत्तरी-पूर्वी भाग में थोड़ी बहुत खेती होती है। यहां पर १५,२०,२६३ गाय-बैल, ३७,४८५ घोड़े, ८३,६२६ गदहे, ३,५७६ खच्चर और ३५,५६,६८२ छोटी जाति के पशु हैं।

दक्षिणी अफ्रीका

इसका क्षेत्रफल ११,७१६ वर्ग मील है। यहां की जनसंख्या ५,६३,८५३ है। यहां की मुख्य उपज गेहूं, मक्का, जई, सेम, तरकारी और जौ है। यहां पर भेड़ों की संख्या अधिक है। उनका पालन भी अच्छी दशा में होता है।

ऑरेंज फ्री स्टेट

इसका क्षेत्रफल १६,६४७ वर्ग मील है। यहां की जनसंख्या १०,५८,२०७ है। यहां पर सुन्दर चरागाह भी पाये जाते हैं जिन में पशु चराये जाते हैं।

अल्बर्टा

यह कनाडा का एक प्रांत है। इसका कुल क्षेत्रफल २,५५,२८५ वर्ग मील है जिसमें पानी का क्षेत्र ६४८५ वर्ग मील और भूमि का क्षेत्र २,१८,८०० वर्ग मील है। यहां की जनसंख्या ६,३,५६१ है। अल्बर्टा एक खेतिहर देश है। इस देश में कुल भूमि ८,५०,००,००६ एकड़ है। ७,००,००,००० एकड़ भूमि में खेती होती है। यहां पर ८६,६६,३१२ एकड़ भूमि में जङ्गल है। इस प्रान्त में १९४८ ई० में १,६८५ कारखाने थे। जिसमें लगभग २६,१२५ मनुष्य काम करते थे।

न्यासालैण्ड

इसका क्षेत्रफल ३७,३७४ वर्गमील है। यहां की जनसंख्या २४,०७,००० है। यहां एक खेतिहर देश है। यहां की मुख्य उपज तम्बाकू, कपास, दालें और मूंगफली है। १९४९ ई० में खेती २२,६६१ एकड़ में होती थी। यहां पर २,८९,८७० गाय-बैल, ३,५९,०४७ बकरे, ५१,०४२ भेड़, ९१,२२० सुअर, १५९ गदहे और खच्चर और ६२ घोड़े हैं।

बेचुआनालैण्ड

इसका क्षेत्रफल २,७५,००० वर्ग मील है। यहां की जनसंख्या २,९६,८८३ है। यहां के लोगों का मुख्य व्यवसाय पशु पालना है। यहां पर खेती की अपेक्षा चरागाह अधिक है। यहां पर १०,५९,९६६ गाय बैल और ६,९५,४६५ भेड़, बकरे हैं।

स्वाजीलैण्ड

इसका क्षेत्रफल ६७०४६ वर्ग मील है। यहां की जनसंख्या १,९५,००० है। यहां की मुख्य उपज कपास तम्बाकू, मक्का, मूंगफली, सेम और आलू हैं। यहां पर ५,१७,२५५ गाय-बैल १,४३,००० भेड़ बकरे हैं। इस देश में १,५०,००० भेड़ें जाड़े में चराने के लिये ट्रान्सवाल से लाई गई थीं।

कनाडा (अमरीका)

इस देश का क्षेत्रफल ३८,४५,७७४ वर्ग मील है। यहां की जनसंख्या १,४०,०९,४६९ है। यह एक खेतिहर देश है। यहां पर २,४३,५०६ वर्ग मील भूमि खेती के काम के लिये ठीक है। २,४३,५७७ वर्ग मील भूमि में जंगल हैं। निम्न तालिका में १९५० ई० की उपज डालर में दी गई है।

खेत वाली फसलों से—१,६३,६९,७८,००० डालर
फार्म वाले पशुओं से—१,५२,२१,६४,००० ,,
दूध से— ४३,०५,२३,००० ,,
मुर्गियों और अंडों से— २१,०४,८१००० ,,
फलों से— ४,७३,२९,००० ,,
तम्बाकू आदि अन्य मद में—६,९१,८७,००० ,,
कुल उपज—३ ९१,१६,७२,००० डालर

यहां पर सिंचाई बड़े पैमाने पर होती है जिसका आरम्भ १८९४ ई० के सिंचाई के नियम के पास होने के समय से ही हो गया था। अल्बर्टा में सिंचाई के लिये बांध बनाये जा रहे हैं। इन में ७,८९,०३५ एकड़ भूमि की सिंचाई हो सकेगी। ५,००,००० एकड़ भूमि केवल सेंट मेरी और मिल्क नदियों के बांध द्वारा सींची जायेगी। ब्रिटिश कोलम्बिया में १,६०,०००

एकड़ भूमि की सिंचाई होती है। १९५०ई० में ६,२२,९७,००० एकड़ भूमि में फसलें बोई गई थीं। कनाडा देश की मुख्य उपज गेहूँ, जई, विलायती बाजरा, जौ और घास है। १९५१ ई० में जो भूमि बोई गई थी वह और १९५० ई० के अनाज वाली फसलों की उपज निम्नलिखित तालिका में दी गई हैं।

प्रान्तों के नाम	गेहूँ		जई		जौ	
	एकड़	१,००० बुशल	एकड़	१,००० बुशल	एकड़	१,००० बुशल
प्रिंस एडवर्डद्वीप	७,२००	१८७	१,१३,०००	४,९७२	११,८१०	४२५
नोवास्कोशिया	१,५००	४५	६८,९००	३,१६९	६,७००	२८५
न्यूब्रंजविक	३,६००	९०	१,८४,०००	८,२८०	१७,४००	६६१
क्यूबेक	३२,९००	६९१	१५,४६,०००	५०,६२०	१,४२,०००	४,३२५
आन्टेरियो	९,८३,०००	३१,२३३	२१,२८,०००	९६,१८६	२,२२,०००	८,३२५
मैनीटोवा	२३,८२,०००	५०,०००	१६,१०,०००	७०,०००	१७,१७,०००	५५,०००
सस्कचवान	१,६२,०३,०००	२,६०,०००	३३,८१,०००	१,१२,०००	१९,५४,०००	४६,०००
अल्बर्टा	७२,५१,०००	१,१७,०००	२४,५५,०००	७२,०००	२५,३४,०००	५६,०००
ब्रिटिश कोलम्बिया	१,५७,०००	२,४१८	८९,२००	२,७०३	१८,९००	३७२
कनाडा का जोड़	२,७०,२१,२००	४,६१,६६४	१,१५,७५,१००	४,१९,९३०	६६,२४,८००	१,७१,३९३

१९५१ ई० मे फसलों की उपज निम्नलिखित प्रकार से थी :—

गेहूँ—५६,२३,९८,००० बुशल
जई—४५,३२,९२,००० ,,
जौ—२५,२९,३०,००० ,,
विलायती बाजारा—१,८०,१४,००० ,,
फ्लैक्स—१३,१२,००० ,,
घास—१,७३,४०,००० टन
आलू—६,७१,९५,०९० बुशल

यहा पर फलों की भी उपज होती है। १९५० ई० में नीचे लिखे हुये मूल्य के फल कनाडा में पैदा हुये था :—

ब्रिटिश कोलम्बिया—२,१९,१०,००० डालर के फल
आन्टेरियो—१,४२,६८,००० ,, ,,
क्यूबेक—२८,५२,००० डालर के फल
नोवास्कोशिया—१६,२९,००० ,, ,,
न्यूब्रंजविक—५,५०,०००

निम्न लिखित तालिका में १९५० ई० की उपज दिखलाई गई है।

प्रान्तों के नाम	विलायती		जावरा		फ्लैक्स		मिला हुआ अनाज	
	एकड़	१,००० बुशल			एकड़	१,००० बुशल	एकड़	१,००० बुशल
प्रिंस एडवर्डद्वीप	—	—			—	—	८०,२००	३,६८९
नोवास्कोशिया	—	—			—	—	७,५००	३२३
न्यूब्रंजविक	—	—			—	—	१४,१००	६४९
क्यूबेक	१३,७००	२६१			—	—	३,५४,०००	१२,३१६
आन्टेरियो	९१,०००	१,८५६			३७,०००	३६५	११,४४,०००	५४,९१२
मैनीटोवा	८१,४००	१,३००			३,००,०००	२,९००	१९,७००	६९०
सस्कचवान	६,६८,०००	६,२००			१,५७,०००	१,०००	६,२००	१३०
अल्बर्टा	३,१२,०००	३,७००			४८,३००	४००	४३,३००	१,०८३
ब्रिटिश कोलम्बिया	८००	१६			२,७००	२१	१०,०००	३९८
जोड़	११,६७,९०००	१३,३३३			५,६०,०००	४,६८६	१६,५९,२००	७४,१९०

प्रान्तों के नाम	अन्य प्रकार के अनाज		आलू		जड़ों वाली फसलें	
	एकड़	१,००० बुशल	एकड़	१,००० बुशल	एकड़	१,००० बुशल
प्रिंस एडवर्डद्वीप	९००	२४	४५,१००	११,५००	१२,९००	३,५३५
नोवास्कोशिया	७००	१७	२१,७००	५,२०८	९,४००	२,८२०
न्यूब्रंजविक	१६,३००	४९१	५९,९००	१७,१२१	९,०००	१,८००
क्यूबेक	९८,६००	२,३२२	१,६१,०००	२६,२००	२६,१००	४,८२६
आन्टेरियो	४,१६,८००	१६,२७१	१,१३,०००	२१,६९६	४३,७००	९,७८९
मैनीटोवा	४०,५००	५८१	२८,१००	३,९९०	—	—
सस्कचवान	१,०००	१२	३१,९००	३,३००	—	—
अल्बर्टा	७,०००	९४	२८,३००	४,२६५	—	—
ब्रिटिश कोलम्बिया	४,१००	६६	१६,२००	३,७७१	१,७००	३२३
जोड़	५,८५,९००	१९,९७८	५,०५,२००	९७,०६५	१,०२,८००	२३,०९३

प्रान्तों के नाम	सेम (सोया बीन)		लौंग		चारा वाली फसलें	
	एकड़	१,०००बुशल	एकड़	१,००० टन	एकड़	१,००० टन
प्रिंस एडवर्ड द्वीप	—	—	३,२६,०००	२९४	१,२००	११
नोवास्कोशिया	—	—	३,८६,०००	७१४	२,०००	१२
न्यूब्रजविक	—	—	६,२०,०००	६२०	२,०००	१६
क्यूबेक	—	—	३७,२७,०००	४,५९४	३,४४,०००	१,३१३
आन्टेरियो	१,४२,०००	३,३२३	२८,३६,०००	४,५०९	४,५२,१००	४,८२७
मैनीटोवो	—	—	३,०३,०००	५९१	१९,०००	९५
सस्कचवान	—	—	२,७७,०००	४६३	४,८००	११
अल्बर्टा	—	—	६,६४,०००	७३०	१,०००	१०
ब्रिटिश कोलम्बिया	—	—	२,१५,०००	३९८	३,४००	३६
जोड़	१,४२,०००	३,३२३	९२,५४,०००	१२,९१३	६,२८,५००	६,४२१

कनाडा के प्रान्तों की पशु पालन संख्या निम्न लिखित तालिका के अनुसार है।

प्रान्तो के नाम	घोड़े	गाय	दूसरे पशु	भेड़	सुअर	मुर्गियाँ
प्रिंस एडवर्ड द्वीप	२२,३००	४४,०००	२५,८००	४,७४००	६७,८००	११,८०,०००
नोवास्कोशिया	२९,९००	९५,०००	६२,२००	१,३१,६००	५५,६००	१९,६९,०००
न्यूब्रजविक्	३९,३००	१,०४,०००	४९,०००	७०,७००	८३,९००	१३,५५,०००
क्यूबेक	२,८८,२००	११,२४,०००	३,९६,२००	३,९७,६००	१२,४९,९००	१,०२३४,०००
आन्टेरियो	३,७८,३००	१२,३७,३००	८,६८,१००	५,०४,१००	२२,१३,१००	२,३४,६०,०००
मैनीटोबा	१,५६,३००	२,४०,८००	२,५०,८००	१,१७,१००	२,६९,४००	५६,६४,४००
सस्कचवान	४.०३,९००	३,५२,०००	५,०८,४००	२,३७,०००	४,३३,७००	८४,४९,१००
अल्बर्टा	३,१८,९००	३,०७,८००	७,३१,३००	४,१४,५००	८०९,७००	९४,४७,००
ब्रिटिश कोलम्बिया	४५,९००	९९,८००	१,८२,५००	९५,०००	६४,०००	३६,५८,०००
जोड़	१६,८३,०००	३६,०८,७००	३०,७४,३००	२०,१५,०००	५२,४७,१००	६,५५,१६,८००
१९४९ ई० मे	कनाडा मे	कुल १९,	४९,६००	कारखाने	थे।	

१९५० ई० में कनाडा में सेव की उपज १,६१,६६,००० बुशल थी। इसी वर्ष तम्बाकू की उपज १,०१,८२९ एकड़ भूमि में १२,०२,९८,००० पौंड थी। तम्बाकू की खेती केवल कनाडा के ग्रान्टेरियो, क्यूबेक और ब्रिटिश कोलम्बिया के प्रान्तों में होती है। १९५० ई० में ३०,५१,७३,००० दर्जन अंडे बेचे और खाये गये थे। कनाडा की १२,७४,८४० वर्ग मील भूमि जंगलो से ढकी हुई है। जो कुल भूमि के क्षेत्र का ३७ प्रतिशत भाग होता है। ७,७०,००० वर्ग मील के जगलों की भूमि उपजाऊ है और उनके भीतर लोग आसानी से आ जा सकते हैं। लगभग ४,७३,००० वर्ग मील के उपजाऊ जगलों में घुसना कठिन है। डेरी का व्यवसाय मुख्यत: आन्टेरियो और क्यूबेक में होता है। किन्तु डेरी के कारखाने कनाडा के सारे प्रान्तों मे हैं। १९४९ ई० में इस प्रकार के कुल कारखाने कनाडा में लगभग ११०९ थे।

ब्रिटिशकोलम्बिया

यह भी कनाडा का एक प्रान्त है। इसका कुल क्षेत्रफल ३,६६,२५५ वर्गमील है। स्थल का क्षेत्र ३,५९,२७९ वर्ग मील और पानी का क्षेत्र ६९७६ वर्ग मील है। यहां की जनसख्या ११,६५,२१० है। इस प्रान्त की पैदावार और पशु पालन संख्या कनाडा के वर्णन मे दी गई है।

मैनीटोवा

इस प्रान्त का क्षेत्रफल २,४६,५१२ वर्गमील है (भूमि का क्षेत्र फल २,१९,७२३ वर्ग मील और पानी का क्षेत्र २६,७८९ वर्ग मील है) यहां की जनसंख्या ७,७६,५४१ हैं। इसका दक्षिणी भाग अधिक उपजाऊ है। यहां की मुख्य उपज चुकन्दर, शहद और अनाज है। यहां की पैदावार और पशु पालन सख्या कनाडा के वर्णन में दी गई है। इस प्रान्त का ४० प्रतिशत भाग जंगलों से ढका हुआ है। ४,१२८ वर्ग मील के जगलों की लकड़ी व्यापार के योग्य है। १९५० ई० मे यहां पर कारखानों की सख्या १,६०० थी। इनमें ४३,००० लोग काम करते थे।

न्यूब्रन्सविक

इस प्रान्त का क्षेत्रफल २७,९८५ वग मील है जिसमें स्थल का क्षेत्र २७,४७३ वर्ग मील है। यहा की जनसंख्या ५,१५,६९७ है। यह एक खेतिहर प्रान्त है। यहां के जंगलों में अच्छी लकड़ियां मिलती हैं। १९४९ ई० में ९,३३,५०० एकड़ और १९५० ई० में ९,२६,३०० एकड़ भूमि बोई गई थी। इस प्रान्त की कुल भूमि का क्षेत्रफल १,८०,००,००० एकड़ है। ७५,००,००० एकड़ भूमि सरकारी है। १,४०,००,००० एकड़ भूमि जंगलों से ढकी हुई है जिस में लगभग ७०,००,००० एकड भूमि के जंगल सरकारी हैं। यहा की पैदावार और पशुओ की सख्या कनाडा के साथ दी गई है।

न्यूफाउंडलैंड और लब्राडार

इसका क्षेत्रफल ४२,७३४ वर्गमील है। यहा की जनसख्या ३,६१,४१६ है। यहा खेती योग्य भूमि बहुत कम है। यहां की अधिकतर भूमि जंगलों से ढकी है।

नोवास्कोशिया

इसका क्षेत्रफल २१,०६८ वर्गमील है (स्थल का क्षेत्र २०,७४३ वर्गमील और पानी का क्षेत्र ३२५ वर्ग मील है) यहां की जनसख्या ६,४२,५८४ है। इस प्रान्त में जंगल १५,९०० वर्ग मील से अधिक क्षेत्र मे फैले हुए हैं। इन जंगलों मे अच्छी लकड़िया मिलती हैं जिनसे व्यापार होता है। यहा के रहने वालो का मुख्य व्यवसाय मक्खन, पनीर आदि बनाना, मुर्गियां पालना और फल उगाना है।

आन्टरियो

यह भी कनाडा का एक प्रान्त है। इसका क्षेत्रफल ४,१२,५८२ वर्ग मील है (३,६ ,२८२ वग मील भूमि का क्षेत्र और ४९,३०० वर्ग मील पानी का क्षेत्र है) यहां की जनसख्या ४५,६७,५४२ है। आन्टरियो एक खेतिहर प्रान्त है। खेती योग्य भूमि का क्षेत्र १,०२,८७० वग मील है। २०,८८० वर्ग मील भूमि में खेत हैं और ३५,६८१ वग मील भूमि बसी हुई है। १९५१ ई० में खेती ६७,६६,६२५ एकड़ भूमि में की गई थी। इस प्रान्त मे जङ्गलों का क्षेत्र १,७२८०० वग मील है। ६६,२०० वर्ग मील में कोमल लकड़ी वाले जङ्गल और १६,१०० वर्ग मील में कड़ी लकड़ी वाले जङ्गल मिलते हैं।

प्रिंस एडवर्ड द्वीप

इस का क्षेत्र फल २,१८४ वर्ग मील है। यहां की जनसंख्या ९८,४२९ है। १९.५१ ई० में १२,६०,८०० एकड़ भूमि खेत के लिये थी। १९४९ ई० में ४,८९,००० एकड़ भूमि में फसलें बोई गई थीं। ३१० वर्ग मील में जंगल और ३,१७,४४० एकड़ भूमि में चरागाह है। यहां की पैदावार और पशुओं की संख्या का विवरण कनाडा के साथ दिया गया है।

क्यूबेक

इस प्रान्त का क्षेत्रफल ५,९४,८६० वर्ग मील है (५,२३,८६० वर्ग मील स्थल का क्षेत्रफल और ७१,००० वर्ग मील पानी का क्षेत्रफल है) यहां की जनसंख्या ४०,५५,६८१ है। १९५० ई० में ६३,५०,३०० एकड़ भूमि जोती बोई गई थी। यहा की मुख्य उपज आलू, जई और घास है। २,६१,१७० वर्ग मील भूमि जंगलों से ढकी हुई है। इसमें २५,०७६ वर्ग मील के जंगल प्रजा के अधिकार में हैं। ८९,१६८ वर्ग मील के जंगलों को पट्टे पर दिया जाता है। १,५२,८१८ वर्ग मील में टिम्बर के जङ्गल हैं जो पट्टे पर नहीं मिलते हैं। २,७०९ वर्ग मील में सुरक्षित जङ्गल हैं। १९५१ ई० में ३६,९८,४०१ टन लुग्दी और ३२,२२,०६३ टन कागज तैयार हुआ था।

सस्केचवान

इसका क्षेत्रफल २,५१,७०० वर्ग मील है। (भूमि का क्षेत्रफल २,३७,९७५ वर्ग मील और पानी का क्षेत्रफल १३,७२५ वर्ग मील है) यहां की जनसंख्या ८,३१,७२८ हैं। यहां की मुख्य उपज जई, जौ, गेहूँ और फ्लैक्स है। १९५० ई० में १६२,०३,००० एकड़ भूमि में २६,३०,००,००० बुशल गेहूँ, ३३,८१,००० एकड़ भूमि से ११,६०,००,००० बुशल जई, १९,५१,००० एकड़ भूमि से ४,७०,००,००० बुशल गेहूँ और १,१७,००० एकड़ भूमि से १०,००,००० बुशल फ्लैक्स की उपज हुई थी। यहा पर सिंचाई के लिये एक बांध भी बनाया जा रहा है। इस से ५,००,००० एकड़ भूमि की सिंचाई होगी। इस बांध में ४०,००,००० लाख एकड़ फुट पानी रहेगा।

उत्तरी पश्चिमी राज्य

इसका क्षेत्रफल १३,०४,९०३ वर्ग मील है। यहा की जनसंख्या १६,००४ है। यहा के लोगों का मुख्य व्यवसाय मछली और फल का व्यापार करना है। यहां मुख्यतः रेनडियर पाला जाता है।

यूकान प्रदेश

इस प्रदेश का क्षेत्रफल २,०७,०७६ वर्ग मील है (स्थल का क्षेत्रफल २,०५,३४६ वर्ग मील और पानी का क्षेत्रफल १,७३० वर्ग मील है। यहां की जनसंख्या ९,०९६ है। यहा के जंगली भागों में मूल्यवान लकड़ी मिलती है। यहा पर समूरदार पशु भी मिलते हैं। यहां के निवासी इनसे फर प्राप्त कर के व्यापार करते हैं।

बरमूडा

इसका क्षेत्रफल २२ वर्ग मील है। यहां की जनसंख्या ३७,२५४ है। ५७५ एकड़ भूमि में खेती होती है। यहा की मुख्य पैदावार आलू, केला और तरकारी है।

फाकलैंड द्वीप

इसका क्षेत्रफल ४,६१८ वर्ग मील है। यहां की जनसंख्या २,२३१ है। (१,२२७ पुरुष और १,००४ स्त्रियां) यहा के लोगों का मुख्य व्यवसाय भेड़ पालना है। १९५०-५१ ई० में भेड़ों की संख्या ५,९६,९६३ थी। २८,७५,५२० एकड़ भूमि में चरागाह हैं।

ब्रिटिश गायना

इस देश का क्षेत्रफल ८३,००० वर्ग मील है। यहा की जनसंख्या ४,२५,१५६ है। यहा की मुख्य उपज गन्ना, चावल, नारियल, कोको, काफी, फल और रबड़ है। १९५० ई० में ५२,४६७ एकड़ में ५२,५३६ टन चावल २,७७८ एकड़ में काफी, और ८९८ एकड़ में कोको की खेती हुई थी। ३५,५२६ एकड़ में नारियल के पेड़, ६२५ एकड़ में रबड़ और ७,४३० एकड़ भूमि में फलों के पेड़ लगे हुये थे। ६१,००० वर्ग मील में जङ्गल हैं। १०,५०० वर्ग मील भूमि ऊसर है। किसी प्रकार

की उन्नति अभी तक इस भूमि की नहा हुई है। यहां पर १,६५,७५५'गाय-बैल, २,५२७ घोड़े, ३७,३२१ भेड़, १३,९३५ बकरी, २८,०५९ सुअर, और १३२ भैंस हैं।

ब्रिटिश हांडूरास

इस देश का क्षेत्रफल ८,८६७ वर्ग मील है। यहां की जनसंख्या ६६,८९२ है (३२,७१९ पुरुष और ३४,१७३ स्त्रियां) यहां की मुख्य उपज केला और फल हैं। यहां के जङ्गलों में महोगनी के पेड़ अधिक मिलते हैं।

पश्चिमी द्वीपसमूह (वेस्ट एण्डीज) बहमा

इस द्वीप का क्षेत्रफल ४,४०४ वर्ग मील है। यहां की जनसंख्या लगभग ८०,६३० है। यह एक उपजाऊ द्वीप है। यहां की मुख्य उपज टमाटर है।

बरबेडास

इस द्वीप का क्षेत्रफल १६६ वर्ग मील है। यहां की जनसंख्या २,५१,६८२ हैं। कुल भूमि का क्षेत्र १,०६,४०० एकड़ है। इसमें लगभग ६६,००० एकड़ भूमि खेती योग्य है। यहां की मुख्य उपज गन्ना है। १९५१ ई० में ४३,०२१ एकड़ में गन्ना बोया गया था, जिस से १,८८,६४३ टन चीनी तैयार हुई थी।

जमैका

इस का क्षेत्र फल ४,४११ वर्ग मील है। यहां की जनसंख्या १४,१६९८७ है। १९४९ ई० में कुल १२,१८,००० एकड़ भूमि में खेती की गई थी। गन्ना की उपज ९०,००० एकड़ भूमि में काफी की उपज १७,४०० एकड़ भूमि में और ३,५०० एकड़ भूमि में अनाज की उपज हुई थी। ५,९,५,००० एकड़ भूमि में चरागाह है जिस के ५०,००० एकड़ भूमि में गायना घास पाई जाती है। १,००,००० एकड़ भूमि में नारियल के और २४,५४,००० एकड़ भूमि में कोको के पेड़ हैं। यहां पर २,२५,७२६ गायबैल, १२५०६ भेड़ और ९०,००९ घोड़े, खच्चर और गदहे हैं।

ट्रिनीडाड

इस का क्षेत्र फल १,८६४ वर्ग मील है। यहां की जनसंख्या ६,२५८४३ है। यहां पर कुल भूमि १२,६७,२३६ एकड़ है। १९५० ई० में ८२,००० एकड़ भूमि में गन्ना, ,८०,००० एकड़ भूमि में तरकारी, और ६,००० एकड़ भूमि में सेम की उपज हुई थी। ४०,००० एकड़ भूमि में नारियल और १,०५,००० भूमि में कोको के पेड़ लगे हुये हैं। खट्टे फलों के बाग १४,५०० एकड़ भूमि में लगे हुये हैं। ६,४२,९३३ एकड़ भूमि में जंगल हैं। चावल की खेती सिंचाई द्वारा होती है।

विंडवर्ड द्वीप समूह

इस में कई द्वीप सम्मलित हैं। इन का क्षेत्र वर्ग मील हैं। यहां की जनसंख्या १,२९,९०२ है। यहां की मुख्य उपज अनाज, कपास, गन्ना, कोको, फल और मसाले हैं। यहां पर कुल भूमि ९६,००० एकड़ है। ५८,००० एकड़ भूमि खेती योग्य है। २५,०० एक भूमि में अनाज की पैदावार होती है। यहा पर कुल फार्मों की संख्या ४,५५९ है। प्रति फार्म एक एकड़ से अधिक भूमि में बने हुये हैं। कुल फार्मों की भूमि ४९,३८२ एकड़ है। छोटे फार्मों की की संख्या ४,५७९ है।

मार्टीनिक

इसका क्षेत्रफल २,६४,२१९ वर्गमील है। यहां की जनसंख्या २,६४,२१९ है। यहा की मुख्य उपज गन्ना, काफी, कोको और केला है। १९५० ई० में ३,६०० हेक्टर भूमि में अनाज की खेती की गई थी। यहा पर ४३,५०० गाय-बैल, २२,५०० भेड़, ३४,३०० सुअर, १४,००० बकरी और ९,३०० घोड़े और खच्चर हैं।

गुआडेलूपे

इसका क्षेत्रफल ५८३ वर्गमील है। यहां की जनसंख्या २,२५,६३४ है। यहा की मुख्या उपज गन्ना, काफी, कोको और केला है।

हलैंडेला

इसका क्षेत्रफल ९७० वर्गमील है। यहां की जनसंख्या २,६१,६४७ है। यहां की मुख्य उपज गन्ना है। १,५०,०० एकड़ भूमि जंगलों से ढकी हुई है। यहां के लोग अपने खाने और पहिनने का सामान बाहर से मंगाते हैं।

गायना

इसका क्षेत्रफल ९०,००० वर्ग किलोमीटर है। यहां की आबादी २८,५३७ हैं। यहां की मुख्य फसलों

में चावल, कोको, केला और गन्ना है। इस देश का लगभग ८०,००० भाग जंगलों से ढका हुआ है। इन जंगलों में व्यापार योग्य लकड़ियां मिलती हैं।

इसमें ८ राज्य सम्मिलित हैं जिनका विवरण निम्न प्रकार से अलग अलग दिया गया है :—

१—सिनेगाल—इसका क्षेत्रफल ७७,७३० वर्गमील है। यहां की जनसंख्या १९,९९,००० है। यहां की भूमि प्रायः रतुही है। कहीं-कहीं पर मूंगफली ज्वार, मक्का और चावल की फसलें हो जाती हैं। यहां पर ५,००,००० भेड़ और बकरी, ४,००,००० गाय-बैल ४०,००० गदहे और २०,००० घोड़े हैं।

२. मौरीटानिया—इसका क्षेत्रफल ९,४३,००० वर्ग किलोमीटर है। यहां की जनसंख्या ४,२७,२७५ है। यहां पर १,००,६०० ऊंट, २,५०,००० गाय-बैल ५७,००० गदहे, २२,२९,००० भेड़ और २,५०० घोड़े हैं।

३—फ्रेन्च गिनी प्रदेश—इसका क्षेत्रफल २,५०,००० वर्ग किलोमीटर है। जनसंख्या २२,६२००० है। यहां की मुख्य उपज चावल, काफी ज्वार, मूंगफली और केला है। यहां पर ८,००,०० गाय-बैल, २,४८,००० भेड़ बकरे, १,१०० घोड़े, २,७०० सुअर और १,७०० गदहे हैं।

४—फ्रेंच सूडान—इसका क्षेत्रफल ११,९२,२१५ वर्ग किलोमीटर है। जनसंख्या ३३,५०,००० है। यहां की मुख्य उपज ज्वार, चावल, मक्का, मूंगफली और कपास है। १९५० ई० में ज्वार की उपज ६,२०,००० मेटरिक टन, चावल की उपज मेटरिक टन, मक्का की उपज ६०,००० मेटरिक टन, मूंगफली की उपज ८०,००० मेटरिक टन, और कपास की उपज ४,००० मेटरिक टन थी यहां पर ३०,००,००० गाय-बैल, १,२५,००० घोड़े, ३,५०,००० गदहे, १,००,००० भेड़ बकरी और १,२५,००० ऊंट हैं। यहां पर खेती सिंचाई द्वारा भी होती है।

५—नाइजर—इसका क्षेत्रफल १२,७६,६२७ वर्ग किलोमीटर है। यहां जनसंख्या २०,४१,५५० है। इस का अधिकतर भाग जंगलों से ढका हुआ है। यहां के लोगों का मुख्य व्यवसाय पशु चराना है। यहां पर ७४,२०० घोड़े, १५,७६,५०० गाय-बैल, ४३,०५,२०० भेड़ बकरी, १,९६,५०० गदहे और १,७०,००० ऊंट हैं।

६—आइवरी कोस्ट—इसका क्षेत्रफल १,२३,३१० मूंगफली, मक्का, चावल, कोको और केला है।

७—डहोमी—इसका क्षेत्रफल १,१५,८०० वर्ग किलोमीटर है। यहां की जनसंख्या १५,०५,००० है। यहां की मुख्य उपज कपास, काफी और मक्का है। यहां पर २,११,९०० गाय-बैल, ४,१७,००० भेड़ बकरी, १,७७,००० सुअर और ३,००० घोड़े हैं।

८—अपर वोल्टा—इसका क्षेत्रफल १,०९,९५० वर्गमील है। यहां की जनसंख्या ३२,१०,००० है। यहां की मुख्य उपज मक्का, ज्वार चावल और सेम है। यहां पर ७,९३,००० गाय-बैल १४ २६,५०० भेड़ बकरे, ४५,०० घोड़े और १,००,२०० गदहे हैं।

भूमध्यरेखीय फ्रेन्च अफ्रीका

इसका क्षेत्रफल २५,१०,००० वर्ग किलोमीटर है। यहां की जनसंख्या ४४,०६,५२० है। जनसंख्या का औसत प्रति वर्ग किलोमीटर में १०७५ है। यहां की मुख्य उपज कपास, काफी और मसाले हैं। यहां पर ५०,००० घोड़े, १,००,००० गदहे, १,२०,००० ऊंट १५,००,००० गाय-बैल और २०,००,००० भेड़ बकरे हैं।

मैडागास्कर

इसका क्षेत्रफल ५,८९,९०० वर्गमील है। यहां की जनसंख्या ४३,५०,७०० है। यहां की मुख्य उपज चावल, मक्का, आलू, काफी, कपास, तम्बाकू, गन्ना और सेम है। १९५० ई० में चावल की उपज ७,७२,००० मेटरिक टन, मक्का की उपज ८४,००० मेटरिक टन, आलू की उपज ९०,००० मेटरिक टन और सेम की उपज १३,५०० मेटरिक टन हुई थी। यहां पर ५६,३३,००० गाय-बैल, ४,२०,००० सुअर, २,४३,००० भेड़ और २,६६,००० बकरे हैं। यहां पर मूल्यवान लकड़ियों के जंगल हैं। जिनकी छाल आदि से औषधियां बनाई जाती हैं।

कोमोरो आर्चीप्लेगो द्वीप समूह

इसका क्षेत्रफल ६५० वर्गमील है। जनसंख्या १,६८,८९० है। यहां की मुख्य उपज गन्ना और कोको है।

न्यूकेलेडोनिया

इसका क्षेत्रफल ८,५४८ वर्गमील है। यहां की जनसंख्या ६७,२५० है। इस देश के कुल क्षेत्र का एक तिहाई भाग खेती योग्य नहीं है। १६०० वर्गमील में चरागाह स्थित है और केवल १६०० वर्गमील भूमि भी खेती योग्य है। ५०० वर्गमील भूमि जंगलों से ढकी है। यहां की मुख्य उपज मक्का, केला, तरकारियां और काफी है। यहां पर ९१,०८९ गाय-बैल, २,३०० भेड़े, ५,४२९ बकरी, ८,४३५ घोड़े और ११,२१२ सुअर हैं।

फ्रेन्च टोगोलैंड

इसका क्षेत्रफल ३३,७०० वर्गमील है। यहा की जनसंख्या ९,९८,६६० है। इस देश का अधिक भाग जंगली है। यहा पर खेती योग्य भूमि बहुत कम है। यहां की मुख्य उपज मक्का, कोको, कपास, काफी और नारियल हैं। १९५० ई० में कोको की उपज ४,५३२ मेटरिक टन, काफी की उपज १,३७८ मेटरिक टन, कपास की उपज १,५०० मेटरिक टन और मक्का की उपज ४,२०० मेटरिक टन थी। यहां पर ९८,००० गाय-बैल, २,८१,००० भेड़े, १,२१,००० सुअर, १,४८३ घोड़े, ३,१२३ गदहे और २,०६,००० बकरी हैं।

फ्रेन्च कैमरून

इसका क्षेत्रफल १,६६,४८९ वर्गमील है। यहां की जनसंख्या २९,९७,१६४ है। यहां की मुख्य उपज काफी, कोको और केला है। यहां पर १३,००,००० गाय-बैल, २०,००० घोड़े, ३५,००० गदहे, १,९०,००० सुअर और १३,००,००० भेड़ हैं।

इण्डोचीन

इसका क्षेत्रफल २,८६,००० वर्गमील है। यहा की जनसख्या २,७०,३०,००० है। यहा की मुख्य उपज चावल, मक्का गन्ना, चाय और तरकारी हैं। यहां के जंगलों मे मूल्यवान लकड़ियां मिलती हैं जिन से इस देश का व्यापार होता है। इसके अलावा रबड़ के पेड़ भी अधिक सख्या में मिलते हैं।

वियट-नाम

इस देश में तीन राज्य सम्मलित हैं जिनका विवरण निम्न प्रकार से है।

उत्तरी-वियट-नाम—इसका क्षेत्रफल १,१५,५[illegible] वर्ग किलोमीटर है। यहा की जनसख्या ९९,३१,१[illegible] है। मुख्य उपज चावल, मक्का, तम्बाकू, चाय, फ[illegible] काफी और गन्ना है।

मध्यवर्ती वियट-नाम—इसका क्षेत्रफल ५९,९[illegible] वर्ग किलोमीटर है। यहा की जनसख्या ७१,८३,८[illegible] है। ६,९०० एकड़ भूमि में खेती सिंचाई द्वारा हो[illegible] है। यहां की मुख्य उपज चावल, कपास, मक्का, का[illegible] तम्बाकू और गन्ना है। शहतूत के पेड़ भी अधि[illegible] संख्या में लगे हुये हैं जिन पर रेशम के कीड़े पा[illegible] जाते हैं। यहां के जंगल मूल्यवान् लकड़ियों के लि[illegible] प्रसिद्ध हैं। यहा पर १९४५ ई० में कुल १५,००,०० गाय-बैल थे।

दक्षिणी वियट-नाम—इसका क्षेत्रफल २६,४५[illegible] वर्गमील है। यहां की जनसख्या ५६,२८,४२७ है मुख्य उपज चावल, सोयाबीन, तम्बाकू, मूँगफली और गन्ना है। इसके अलावा रबड़ के पेड़ भी अधिक संख्या में मिलते हैं। १९५० ई० में धान की उपज १५,६१,६९० मेटरिक टन, सोयाबीन की उपज १,५५० मेटरिक टन, तम्बाकू की उपज २,१०० मेटरिक टन, मूँगफली की उपज १,४०० मेटरिक टन और गन्ना की उपज १,९५,००० मेटरिक टन थी। नदियों और समुद्र के किनारे वाले भाग मछलियां मारने के लिये प्रसिद्ध हैं। यहा पर १,७०,००० गाय-बैल, २,०३,००० भैंस और २,३१,००० सुअर हैं।

कम्बोडिया

इसका क्षेत्रफल १,८१,००० वर्ग किलोमीटर है। यहा की जनसख्या ३७,५०,००० है। यहां की भूमि उपजाऊ है। मुख्य उपज चावल, कपास, मक्का, तम्बाकू और खजूर है। २,५०,००,००० एकड़ भूमि जंगलों से ढकी हुई है। यहा के निवासी पशु-पालन का भी व्यवसाय करते हैं।

मराको

इस देश का क्षेत्रफल १,७२,१०४ वर्ग मील है। यहा की जनसख्या ८२,००,००० है। इस देश के तीन भाग हैं जिनका विवरण नि. लिखित प्रकार से है।

स्पेनिश भाग—इस भाग मे भी खेती होती है किन्तु अभी इसका अधिक विकास नहीं हो सका है। इस भाग को अधिक उन्नतिशील और उपजाऊ बनाने के लिये सिंचाई आदि का प्रबन्ध किया जा रहा है।

टैंजीयर भाग—इस भाग की मुख्य उपज गेहूँ और जौ है। यहां के लोगो का दूसरा व्यवसाय मछली पकड़ना है।

सोवियत रूस साम्यवादी प्रजातन्त्र राज्य

सोवियत रूस का क्षेत्रफल ८७,०८०७० वर्गमील है। यहां की जनसंख्या १९,२००,००० है। इस देश के ५५,००,००,००० हेक्टर भूमि में जंगल (जो कुल क्षेत्र का ४४ प्रतिशत भाग है,) २४,१०,८४,००० हेक्टर भूमि में चरागाह (११ प्रतिशत) १९,७६,११,००० हेक्टर भूमि खेती योग्य (९ प्रतिशत ४,६४,१५,००० हेक्टर भूमि में घास के मैदान (२ प्रतिशत), १,१४,६१,००० हेक्टर भूमि में बाग (०.५ प्रतिशत) हैं। ६७,५०,००,००० हेक्टर भूमि (३१ प्रतिशत) खेती योग्य नहीं है। यह विवरण १९३९ ई० के राज्य से सम्बन्धित है। १९५० ई० में १५,८४,२६,००० हेक्टर भूमि मे खेती थी। यहां की मुख्य उपज गेहूँ, मक्का, जौ, जई, ज्वार, कपास, तम्बाकू फ्लैक्स, हेम्प, चुकन्दर और फल आदि हैं। इसके अलावा चाय, सूरज-मुखी की भी अच्छी उपज होती है। १९४५ ई० में २०,००,००० हेक्टर भूमि केवल कपास की खेती के लिये थी। १९४० ई० में ५१,००० हेक्टर भूमि, केवल रेशम की उपज के लिये थी। सोवियत रूस के जंगलो का अधिकतर भाग एशियाई रूस मे फैला हुआ है। जगलों के भीतर जाने के लिये सड़कों का अभाव है। इसी कारण से इस क्षेत्र की लकड़ी से व्यापार होना बहुत ही कठिन है। यहा पर ४,८८,००,००० गाय,बैल, २,६७,००,००० सुअर, १४७,००,००० घोड़े और १०,७०,००,००० भेड़ और बकरी है।

आर्मेनिया

इस का क्षेत्रफल ११,६४० वर्ग-मील है। जन सख्या १२,८१, ६०० है। इस देश का मुख्य खेती वाला-क्षेत्र एराक्स की घाटी येरीवान के आस पास वाला भाग है। यहां की मुख्य उपज चुकन्दर तम्बाकू फल, कपास और गेहूँ है। १९४८ ई० में तम्बाकू की खेती १०,००० हेक्टर में, चुकन्दर की खेती ४,००० हेक्टर में और कपास की खेती ६३,५०० हेक्टर में होती थी ३,५८,३०० हेक्टर भूमि मे अनाज के फसलो की खेती होती थी। खेती सिंचाई द्वारा भी होती है १९४८ ई० में २,१०,८०० हेक्टर भूमि की सिंचाई नहरों द्वारा होती थी। स्टालिन नहर, सरदाराबाद नहर, मिकोयान नहर और कामार्यलिन नहर, की गणना यहा की मुख्य नहरों मे होती है। स्टालिन नहर द्वारा २८,७०० हेक्टर भूमि, सरदाराबाद नहर द्वारा २२,९०० हेक्टर भूमि मिकोयान नहर द्वारा २,३०० हेक्टर भूमि और कामार्यलिन नगर द्वारा २,०७९ हेक्टर भूमि सींची जाती है। यहां पर १०,७८,४०० भेड़ बकरी और ५,१७,४०० गाय-बैल हैं।

कारेलो-फिनिश सोवियत साम्यवादी प्रजातन्त्रराज्य

इसका क्षेत्रफल ६१,७२० वर्गमील है। जनसख्या ६,०६,३३३ है। १९४६ ई० में ७७,५०० हेक्टर भूमि जाती बोई गई थी। यहा की मुख्य उपज गेहूँ और जई है।

मोल्डावियन सोवियत प्रजातन्त्र राज्य

इसका क्षेत्रफल १३,२०० वर्ग मील है। जन-संख्या २७,००,००० है। १९४५ ई० मे १९,००,००० हेक्टर भूमि खेती योग्य थी। इसके ८० प्रतिशत भाग मे अनाज की खेती होती थी। ३०,००० हेक्टर भूमि मे फलो आदि के बाग हैं। यहां की मुख्य उपज गेहूँ, मक्का, जौ, कपास, फल सूरजमुखी, चुकन्दर, तम्बाकू, हेम्प और सोया बीन है।

एस्थोनिया

इसका क्षेत्रफल १८,३५३ वर्ग मील है। जन-सख्या ११,१७,३०० है। यहां के लोगो का मुख्य व्यवसाय खेती करना और पशु-पालना है। इस देश की मुख्य उपज राई, जौ और जई है। इस देश का २२ प्रतिशत भाग जगलो से ढका हुआ है। इन जंगलो में अच्छी अच्छी लकड़ियों के पेड़ मिलते हैं। इनके लकड़ियों से व्यापार होता है। यहा पर ७,०६,००० गाय-बैल, ६,९५,७०० भेड़, ४,४२,०००

न्यूकेलेडोनिया

इसका क्षेत्रफल ८,५४८ वर्गमील है। यहां की जनसंख्या ६७,२५० है। इस देश के कुल क्षेत्र का एक तिहाई भाग खेती योग्य नहीं है। १६०० वर्गमील में चरागाह स्थित है और केवल १६०० वर्गमील भूमि भी खेती योग्य है। ५०० वर्गमील भूमि जंगलों से ढकी है। यहां की मुख्य उपज मक्का, केला, तरकारियां और काफी है। यहा पर ९१,०८९ गाय-बैल, २,३०० भेड़े, ५,४२९ बकरी, ८,४३५ घोड़े और ११,२१२ सुअर हैं।

फ्रेन्च टोगोलैंड

इसका क्षेत्रफल ३३,७०० वर्गमील है। यहां की जनसंख्या ९,९८,६६० है। इस देश का अधिक भाग जंगली है। यहा पर खेती योग्य भूमि बहुत कम है। यहां की मुख्य उपज मक्का, कोको, कपास, काफी और नारियल हैं। १९५० ई० में कोको की उपज ४,५३२ मेट्रिक टन, काफी की उपज १,३७८ मेटरिक टन, कपास की उपज १,५५० मेटरिक टन और मक्का की उपज ४,२०० मेटरिक टन थी। यहां पर ९८,००० गाय-बैल, २,८१,००० भेड़, १,३१,००० सुअर, १,४८२ घोड़े, ३,१२३ गदहे और २,०६,००० बकरी हैं।

फ्रेन्च कैमरून

इसका क्षेत्रफल १,६६,४८९ वर्गमील है। यहां की जनसंख्या २९,९७,१६४ है। यहां की मुख्य उपज काफी, कोको और केला है। यहां पर १३,००,००० गाय-बैल, २०,००० घोड़े, ३५,००० गदहे, १,९०,००० सुअर और १३,००,००० भेड़ हैं।

इण्डोचीन

इसका क्षेत्रफल २,८६,००० वर्गमील है। यहां की जनसख्या २,७०,३०,००० है। यहा की मुख्य उपज चावल, मक्का गन्ना, चाय और तरकारी हैं। यहां के जंगलों में मूल्यवान लकड़ियां मिलती हैं जिन से इस देश का व्यापार होता है। इसके अलावा रबड़ के पेड़ भी अधिक सख्या में मिलते हैं।

वियट-नाम

इस देश में तीन राज्य सम्मलित हैं जिनका विवरण निम्न प्रकार से है।

उत्तरी-वियट-नाम—इसका क्षेत्रफल १,६५,७०० वर्ग किलोमीटर है। यहां की जनसख्या ९९,३१,१९० है। मुख्य उपज चावल, मक्का, तम्बाकू, चाय, फल काफी और गन्ना है।

मध्यवर्ती वियट-नाम—इसका क्षेत्रफल ५९,९७० वर्ग किलोमीटर है। यहा की जनसख्या ७१,८३,८९० है। ६,९०० एकड़ भूमि में खेती सिंचाई द्वारा होती है। यहां की मुख्य उपज चावल, कपास, मक्का, काफी तम्बाकू और गन्ना है। शहतूत के पेड़ भी अधिक संख्या में लगे हुये है जिन पर रेशम के कीड़े पाले जाते हैं। यहां के जंगल मूल्यवान लकड़ियों के लिये प्रसिद्ध हैं। यहा पर १९४५ ई० में कुल १५,००,००० गाय-बैल थे।

दक्षिणी वियट-नाम—इसका क्षेत्रफल २६,४७६ वर्ग मील है। यहां की जनसंख्या ५६,२८,४२७ है। मुख्य उपज चावल, सोयाबीन, तम्बाकू, मूँगफली, और गन्ना है। इसके अलावा रबड़ के पेड़ भी अधिक सख्या में मिलते हैं। १९५० ई० में धान की उपज १५,६९,६९० मेटरिक टन, सोयाबीन की उपज १,५५० मेटरिक टन, तम्बाकू की उपज २,१०० मेटरिक टन, मूँगफली की उपज १,४०० मेटरिक टन और गन्ना की उपज १,९९,००० मेटरिक टन थी। नदियों और समुद्र के किनारे वाले भाग मछलियां मारने के लिये प्रसिद्ध हैं। यहा पर १,७०,००० गाय-बैल, २,०३,००० भैंस और २,३१,००० सुअर हैं।

कम्बोडिया

इसका क्षेत्रफल १,८१,००० वर्ग किलोमीटर है। यहा की जनसख्या ३७,५०,००० है। यहां की भूमि उपजाऊ है। मुख्य उपज चावल, कपास, मक्का, तम्बाकू और खजूर है। २,५०,००,००० एकड़ भूमि जगलों से ढकी हुई है। यहा के निवासी पशुपालन का भी व्यवसाय करते हैं।

मरक्को

इस देश का क्षेत्रफल १,५२,१०४ वर्ग मील है। यहा की जनसंख्या ८२,००,००० है। इस देश के तीन भाग हैं जिनका विवरण निम्नलिखित प्रकार से है।

स्पेनिश भाग—इस भाग में भी खेती होती है किन्तु अभी इसका अधिक विकास नहीं हो सका है। इस भाग को अधिक उन्नतिशील और उपजाऊ बनाने के लिये सिंचाई आदि का प्रवन्ध किया जा रहा है।

टैंजीयर भाग—इस भाग की मुख्य उपज गेहूँ और जौ है। यहां के लोगों का दूसरा व्यवसाय मछली पकड़ना है।

सोवियत रूस साम्यवादी प्रजातन्त्र राज्य

सोवियत रूस का क्षेत्रफल ८७,०८०७० वर्गमील है। यहां की जनसंख्या १९,२००,००० है। इस देश के ९५,००,००,००० हेक्टर भूमि में जगल (जो कुल क्षेत्र का ४४ प्रतिशत भाग है,) २४,१०,८४,००० हेक्टर भूमि मे चरागाह (११ प्रतिशत) १९,७६,११,००० हेक्टर भूमि खेती योग्य (९ प्रतिशत ४,६४,१५,००० हेक्टर भूमि में घास के मैदान (२ प्रतिशत), १,१४,६१,००० हेक्टर भूमि में बाग (०.५ प्रतिशत) हैं। ६७,५०,००,००० हेक्टर भूमि (३१ प्रतिशत) खेती योग्य नहीं है। यह विवरण १९३९ ई० के राज्य से सम्बन्धित हैं। १९५० ई० में १५,८४,२६,००० हेक्टर भूमि मे खेती थी। यहां की मुख्य उपज गेहूँ, मका, जौ, जई, ज्वार, कपास, तम्बाकू फ्लैक्स, हेम्प, चुकन्दर और फल आदि हैं। इसके अलावा चाय, सूरज-मुखी की भी अच्छी उपज होती है। १९४५ ई० में २०,००,००० हेक्टर भूमि केवल कपास की खेती के लिये थी। १९५० ई० में ५१,००० हेक्टर भूमि, केवल रेशम की उपज के लिये थी। सोवियत रूस के जंगलो का अधिकतर भाग एशियाई रूस में फैला हुआ है। जंगलो के भीतर जाने के लिये सड़को का अभाव है। इसी कारण से इस क्षेत्र की लकड़ी से व्यापार होना बहुत ही कठिन है। यहां पर ४,८८,००,००० गाय,बैल, २,६७,००,००० सुअर, १४७,००,००० घोड़े और १०,७०,००,००० भेड़ और बकरी हैं।

आर्मेनिया

इस का क्षेत्रफल ११,६४० वर्ग मील है। जन संख्या १२,८१, ६०० है। इस देश का मुख्य खेती वाला क्षेत्र एराक्स की घाटी येरीवान के आस पास वाला भाग है। यहां की मुख्य उपज चुकन्दर तम्बाकू फल, कपास और गेहूँ है। १९४८ ई० मे तम्बाकू की खेती १०,००० हेक्टर में, चुकन्दर की खेती ४,००० हेक्टर मे और कपास की खेती ६३,५०० हेक्टरमें होती थी ३,५८,३०० हेक्टर भूमि में अनाज के फसलों की खेती होती थी। खेती सिंचाई द्वारा भी होती है १९४८ ई० में २,१०,८०० हेक्टर भूमि की सिंचाई नहरों द्वारा होती थी। स्टालिन नहर, सरदाराबाद नहर, मिकोयान नहर और कामारलिन नहर, की गणना यहा की मुख्य नहरों मे होती है। स्टालिन नहर द्वारा २८,७०० हेक्टर भूमि, सरदाराबाद नहर द्वारा २२,९०० हेक्टर भूमि मिकोयान नहर द्वारा २,३०० हेक्टर भूमि और कामारलिन नगर द्वारा २,०७९ हेक्टर भूमि सींची जाती है। यहां पर १०,७८,४०० भेड़ बकरी और ५,१७,४०० गाय-बैल हैं।

कारेलो-फिनिश सोवियत साम्यवादी प्रजातन्त्रराज्य

इसका क्षेत्रफल ६१,७२० वर्गमील है। जनसंख्या ६,०६,३३३ है। १९४६ ई० में ७७,५०० हेक्टर भूमि जाती बोई गई थी। यहा की मुख्य उपज गेहूँ और जई है।

मोल्डावियन सोवियत प्रजातन्त्र राज्य

इसका क्षेत्रफल १३,२०० वर्ग मील है। जन-संख्या २७,००,००० है। १९४५ ई० मे १९,००,००० हेक्टर भूमि खेती योग्य थी। इसके ८० प्रतिशत भाग में अनाज की खेती होती थी। ३०,००० हेक्टर भूमि मे फलों आदि के बाग हैं। यहां की मुख्य उपज गेहूँ, मका, जौ, कपास, फल सूरजमुखी, चुकन्दर, तम्बाकू, हेम्प और सोया बीन है।

एस्थोनिया

इसका क्षेत्रफल १८,३५३ वर्ग मील है। जन-संख्या ११,१७,३०० है। यहां के लोगों का मुख्य व्यवसाय खेती करना और पशु-पालना है। इस देश की मुख्य उपज राई, जौ और जई है। इस देश का २२ प्रतिशत भाग जंगलों से ढका हुआ है। इन जगलों में अच्छी अच्छी लकड़ियों के पेड़ मिलते हैं। इनके लकड़ियों से व्यापार होता है। यहां पर ७,०६,००० गाय-बैल, ६,९५,५०० भेड़, ४,४२,०००

सुअर, २,१८,५०० घोड़े और १९,९१,०३० मुर्गियां हैं।

लैटविया

इसका क्षेत्रफल २५,२०० वर्गमील है। जनसंख्या १९,५०,००० है।। यह एक सोवियत देश है। यहां की मुख्य उपज जई, जौ, राई, आलू, फ्लैक्स, फल और हैं। १७,२७,००० हैक्टर भूमि जंगलों से ढकी हुई है। यहां पर ४,१४,५५० घोड़े, १२,७१,७३० गाय-बैल, १४,६९,५५० भेड़, ८,९१,४५० सुअर और ४७,२९,१२० मुर्गियां हैं।

लिथुएनिया

इस देश का क्षेत्रफल २५,५०० वर्ग मील है। जनसंख्या २८,५९,०५० है। इस देश का ४९.१ प्रतिशत भाग खेती योग्य है। २२.२ प्रतिशत भाग में झाड़ियां और चरागाह हैं। १६.३ प्रतिशत भूमि जंगलों से ढकी हुई है। १२.४ प्रतिशत भाग ऊसर है। यहां की मुख्य उपज राई, गेहूँ, जौ, जई, आलू और फ्लैक्स है। १५,६६,००० हेक्टर भूमि में अनाज और ९३,००० हेक्टर भूमि में व्यवसायिक फसलों की खेती होती है। १०,७१,००६ एकड़ भूमि जंगलों से ढकी हुई है। यहां पर ३,४४,९०० घोड़े, ६,१७,७०० गाय-बैल, ४,९५,५०० सुअर और ३,६१,६०० भेड़ हैं।

कज्जाक सोवियत साम्यवादी प्रजातन्त्र राज्य

इस देश का क्षेत्रफल १०,७२,७९७, है। १९३९ ई० में यहां की जनसंख्या ६१,४५,९३७ थी। इस देश का अधिकतर भाग रेगिस्तानी है। इसके उत्तरी, दक्षिणी और पूर्वी भाग की कुछ भूमि उपजाऊ है। यहां पर खेती प्राय. सिंचाई द्वारा होती है। यहां की मुख्य उपज कपास, चुकन्दर, तम्बाकू और फल है। ११४५ ई० में १३,५०,००० हेक्टर भूमि नहरों द्वारा सींची जाती थी। सिंचाई के लिये किर्ल ओर्डा नामक एक बांध भी १९४४ ई० में बनाया जा रहा था। इस बांध से १,००,००० एकड़ भूमि से ३,७५,००० एकड़ भूमि तक सींची जा सकती थी। १९४० ई० में ६,८००,००० हेक्टर भूमि जोती जाती थी। इसके ५,५२,००० हेक्टर भूमि में अनाज और ७,९२,४०० हेक्टर भूमि में व्यवसायिक फसलों की खेती होती थी। यहां पर भेड़ अधिक पाली जाती हैं।

तुर्कमान सोवियत साम्यवादी प्रजातन्त्र राज्य

इसका क्षेत्रफल १,८९,२५० वर्गमील है। १९३९ ई० में जनसंख्या १२,५२,००० थी। यहां के लोगों का मुख्य व्यवसाय खेती करना है। खेती प्रायः सिंचाई द्वारा होती है। १९४५ ई० में ३,५३,००० हेक्टर भूमि जोती जाती थी। इसके १,१०,००० हेक्टर भूमि केवल कपास की खेती होती थी। यहां की मुख्य उपज कपास, गेहूँ, फल, खजूर और तरकारियां हैं। यहां पर २,६०,००० गाय-बैल, २४,००० सुअर, २८,१०,००० भेड़-बकरी और ७५,००० ऊँट हैं।

यूक्रेन

इसका क्षेत्रफल २,२५,००० वर्ग मील है। यहां जनसंख्या लगभग ३,८४,००,००० है। यह देश सोवियत रूस में खेती के लिये प्रसिद्ध है। यहां की मुख्य उपज गेहूँ, चुकन्दर, कपास, फ्लैक्स, फल, सूरजमुखी, तम्बाकू, सोयाबीन, और हाप्स है। इसके अलावा तरकारियां भी अधिक संख्या में पैदा होती हैं। यहां पर खेती योग्य भूमि २,८१,६४००० हेक्टर (जो कुल क्षेत्र का ६४ प्रतिशत भाग है,) चरागाह वाली भूमि १८८९,००० हेक्टर (४.२ प्रतिशत) और १८,६३,००० हेक्टर भूमि में स्थायी झाड़ियां हैं। २३,५४,००० हेक्टर भूमि (७६ प्रतिशत) भाग जंगलों से ढकी हुई है। १९५० ई० २,९९,६४,००० हेक्टर भूमि जोती बोई गई थी। यहां पर ३२,५६९०० घोड़े, ७७,४१,४०० गाय-बैल, ४७,३५,५०० भेड़ और बकरी और ५३,२५,५००० सुअर हैं।

व्हाइट (श्वेत) रूस

इसका क्षेत्रफल ८,१०,९० वर्ग मील है। जनसंख्या ४८,००,००० है। यहां की मुख्य उपज आलू, हेम्प, फ्लैक्स, और फल है। रेशम के लिये शहतूत के पेड़ भी लगाये गये हैं। १९३७ ई० में ४०,००,००० हेक्टर भूमि खेती योग्य थी। २४,००,००० हेक्टर भूमि में अनाज और ६४,००,००० हेक्टर भूमि में हेम्प और फ्लैक्स आदि की उपज के लिये थी। यहां पर १०,९१.८०० घोड़े, २०,९६,२०० गाय-बैल, ३४,४९,००० भेड़ बकरे और २२,९३,३०० सुअर हैं।

जार्जिया

इस देश का क्षेत्रफल २९,००० वर्ग मील है। यहां की जनसंख्या ३५,४२,३०० है। यहां पर तीन मुख्य खेती वाले क्षेत्र है।—(१) काला सागर का तटवर्ती भाग इस भाग में खट्टे फल, चाय और अच्छी श्रेणी वाली तम्बाकू की उपज होती है। (२) कुटैस का क्षेत्र यह क्षेत्र अंगूर और सिल्क की उपज के लिये (३) काखेटिया का क्षेत्र अपने अंगूर के बागों के लिये प्रसिद्ध है, यह प्रदेश अच्छे जंगलों से ढका हुआ है। जंगलों का कुल क्षेत्र २४,००,००० हेक्टर है। यहां पर १५,००,००० गाय-बैल, ६,००००० सुअर और २०,००,००० भेड़ और बकरी है।

उजबेक साम्यवादी सोवियत

इस देश का क्षेत्रफल १,५९,१७० वर्ग मील है। यहां का जनसंख्या १९३९ ई० में ६२,८२४५० थी। यह एक खेतिहर देश है। खेती सिचाई द्वारा होती है। इस देश की मुख्य नहरें सिर्कोयान उत्तरी फर्गाना नहर, अन्द्रीव दक्षिणी फर्गाना नहर और मोल्टोव ताराक नहर है। यह नहरें १९४० ई० में बन कर तैयार हो गई थी। खेती प्राय उन्ही स्थानों में होती है जहां पर पानी की कमी नहीं है। फर्गाना घाटी, जेरावशाल, ताराकद और खेरेज्म इस देश के खेती वाले क्षेत्र हैं। यहां की मुख्य उपज चावल, फल, रेशम, कपास और गेहूँ है। १९४० ई० में कपास की खेती ८,७५,००० हेक्टर भूमि में होती थी। सोवियत रूस के भाग कुल में कपास की उपज का ६० प्रतिशत और चावल भेड़ पाला जाता है। यहां की काराकुल नाम भेड अपनी ऊन के लिये जगत प्रसिद्ध है। यहा पर एक नये प्रकार का चावल भी होता है जो १३५४० दिनों के स्थान पर केवल ८०-९० दिनों में ही पक जाता है। आमूदरिया के मुहाने में मछलिया भी पकडी जाती हैं।

ताजिक साम्यवादी सोवियत प्रजातन्त्र राज्य

इसका क्षेत्रफल ५५,७०० वर्ग मील है। १९३९ ई० मे यहां की जनसख्या १४,८५,०८० थी। इस देश के लोगों का मुख्य व्यवसाय खेती करना और पशु-पालना है। वर्षा के अभाव के कारण खेती सिंचाई द्वारा होती है। १९३९ ई० मे २,८८,६०० हेक्टर भूमि मे खेती-सिंचाई द्वारा होती थी। किन्तु १९४६ ई० से ३,२०,००० हेक्टर भूमि मे खेती सिचाई द्वारा होने लगी है। यहां की मुख्य उपज फल, जौ, जई, गेहूँ और तरकारियां है। पर ६० प्रकार का जौ, १० प्रकार की जई और ४ प्रकार के गेहूँ की उपज होती है। यहा पर १९४२ ई० में ५,६०,००० गाय-बैल, २१,८६,००० भेड़-बकरी और २१,००० सुअर थे। इस देश मे गिस्सार और काराकुल नाम की दो प्रकार की भेड़ें पाई जाती हैं जो अपनी ऊन और मांस के लिये प्रसिद्ध हैं।

किरगीज साम्यवादी सोवियत

इसका क्षेत्रफल ७६,९०० वर्ग मील है। १९३९ ई० मे जनसख्या १४,५९,३०१ थी। यहां की मुख्य उपज गेहूँ, चुकुन्दर, केनाफ, तम्बाकू, हेम्प, फल और तरकारिया है। इस देश का लगभग दो तिहाई क्षेत्र ट्रैक्टरो द्वारा जोता जाता है। १९४० ई० मे ७,५२,००० हेक्टर भूमि मे खेती सिचाई द्वारा होती थी। १९४१ ई० में यहां पर ३०,००,००० भेड़ें, बकरी, घोड़े और गाय-बैल थे। इस देश का प्रसिद्ध पशु याक है। यह पशु यहा के रहने वालो का लिये बड़े का मका है।

यूक्रेन

इस देश का क्षेत्रफल ७२,१७२ वर्ग मील है। यहां की जनसंख्या २३,५३,००० है। इस देश के रहने वालों का मुख्य व्यवसाय ढोरों आदि का चराना है। २,७५,७३,९१९ एकड़ भूमि में चरागाह स्थित हैं जो कुल क्षेत्र का ६० प्रतिशत भाग है। १,००,०२,१२६ एकड़ भूमि में फार्म बने हुये है और केवल ३१,२०,००० एकड़ भूमि में खेती होती है जो कुल क्षेत्र का ७ प्रतिशत भाग है। यहां की मुख्य उपज गेहूँ, अलसी, जौ, जई, चावल, और फल है। १९५०-५१ ई० मे गेहूँ की उपज ४,२४,७२९ मेटरिक टन, अलसी की उपज ९०,०००३ मेटरिक टन, जौ की उपज २४,६३५ मेटरिक टन, जई की उपज ३४,५६३ मेटरिक टन, और चावल की उपज ३९,९६९ टन हुई थी। यहां पर ८०,००,००० गाय-बैल, २,२०,००,००० भेड़, ५,४१,००० घोड़े, २,७३,००० सुअर और १५,००० बकरी है।

वेनिज्वेला

इसका क्षेत्रफल ३,५२,१४३ वर्ग मील है। जनसंख्या ४९.८५,७१४ है। इस देश के तीन भाग हैं। (१) खेती वाला भाग ।(२) चराई वाला क्षेत्र और (३) जङ्गलों का क्षेत्र। पहले भाग वाले क्षेत्र में काफी, कोको, गेहूँ, चावल, तम्बाकू, मक्का, कपास और फलियां हैं। दूसरे वाले भाग में घोड़े और गाय-बैल आदि चराये जाते हैं। इन पशुओं की संख्या लगभग ५०,००,००० से भी अधिक रहती है। तीसरे भाग वाला क्षेत्र जङ्गलों से ढका हुआ है। इन जङ्गलों में सुन्दर लकड़ी के पेड़ मिलते हैं जिनमें व्यापार भी होता है। खेती योग्य भूमि ३५,३०,३०८ एकड़ है। यहां पर ५६,३१,९८६ गाय-बैल और १४,६७,१७८ सुअर हैं।

युगोस्लैविया

इसका क्षेत्रफल २,५६,३९३ वर्ग किलोमीटर है। जनसंख्या १,५७,७२,०९८ है। आबादी का औसत प्रति किलोमीटर में ६१.२२ है। इस देश का क्षेत्र २,५६,३९,३०० हेक्टर है। १,३८८१,९१८ हेक्टर भूमि खेती योग्य है। यहां की मुख्य उपज हेम्प, गन्ना, फल, जौ और जई है। इस देश के जङ्गलों में अधिकतर चीड़ और देवदार के पेड़ मिलते हैं। यहां पर १०,८७,८२४ घोड़े, ३१,५८२ खच्चर, १,५२,१७२ गदहे, ४७,०२२७ गाय-बैल, १,०१,९७,२४५ भेड़-बकरी ३८,७५९८० सुअर और १,७०,०६,७२० मुर्गियां हैं।

फ्रेन्च भाग—यहां के लोगों का मुख्य व्यवसाय खेती करना है। खेती योग्य भूमि ,१,५४,५०,००० हेक्टर है। ३५,२०,००० हेक्टर भूमि जंगलों से ढकी हुई है। इसका एक तिहाई भाग खेती वाले क्षेत्र में सम्मिलित है। यहां की मुख्य फसलें गेहूँ, जौ, तिलहन, सेम, फल, जई और मक्का है। १९४९-५० ई० में ५६,२९० हेक्टर भूमि में अंगूर की लतरें लगी हुई थी। यहां के जंगलों में कई प्रकार के पेड़ पाये जाते हैं। चीड़, देवदार और भिन्न-भिन्न नोक दार पत्तियों के पेड़ों की संख्या अधिक है। १९४९-५० ई० में जैतून के पेड़ों की सख्या १,०६,४६,००० खजूर के पेड़ों की संख्या ३०,३४,००० सतरा और नीबू के पेड़ों की संख्या ५१,२१,००० और अखरोट के पेड़ों की संख्या ८८,८७,००० थी। गोद भी अधिक मात्रा में मिलता है। इस भाग की उपज का विवरण निम्नलिखि तालिका में दिया गया है।:—

यहां पर १९,४२,००० गाय-बैल, १९,४२,००० भेड़े, १,०३,७५,००० बकरी, ७३,५०,००० सुअर, ८४,००० घोड़े, १,७९,००० खच्चर, ८,३७,००० गदहे और १,९४,००० ऊट हैं।

मुख्य फसलों का नाम	उपज (१,००० कुइन्डाल में)			क्षेत्र (१,००० हेक्टर में)	
	१९३६-३९ की औसत उपज	१९४८ से १९४९ की औसत उपज	१९४९ से १९५० की औसत उपज	१९४८ से ४९ के भूमि का क्षेत्र	१९४९ से ५० ई के भूयि का क्षेत्र
जाड़े के गेहूँ	४,७९५	४,६४२	५,३५५.५	७८३	९३६.२
गर्मी का गेहूँ	३,३३९	१,७३८	२,१९१.४	२६४	३२२.९
जौ	१३,६४७	१३,६७८	२,०७,५०.२	१,८३२	१,९६१.३
जई	२,१३३	३,९९९	१,२६८.७	५०३	५२१.३
सेम	२९९	५५	५६ ७	९	१६.३
तिलहन	५१	३८	४८.१	१६	१७.८
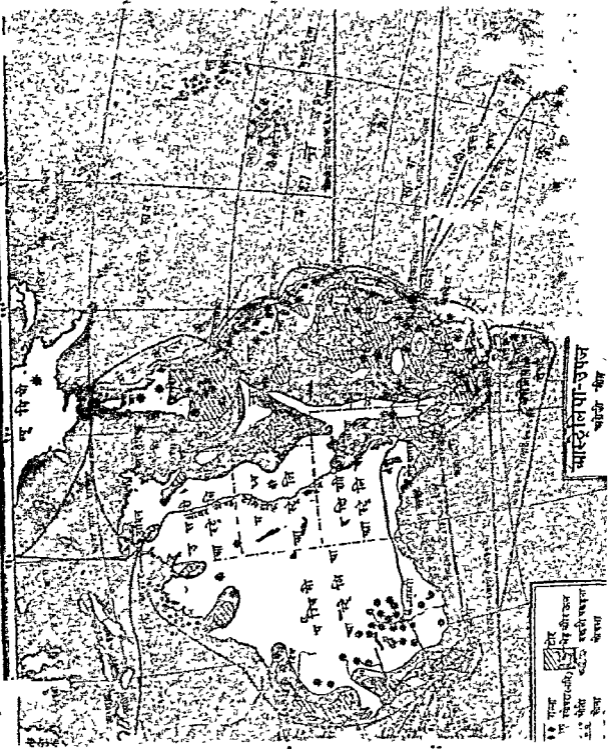
एशिया उपज
मं गो लि या

न्यू गिनी
आस्ट्रेलिया-उपज
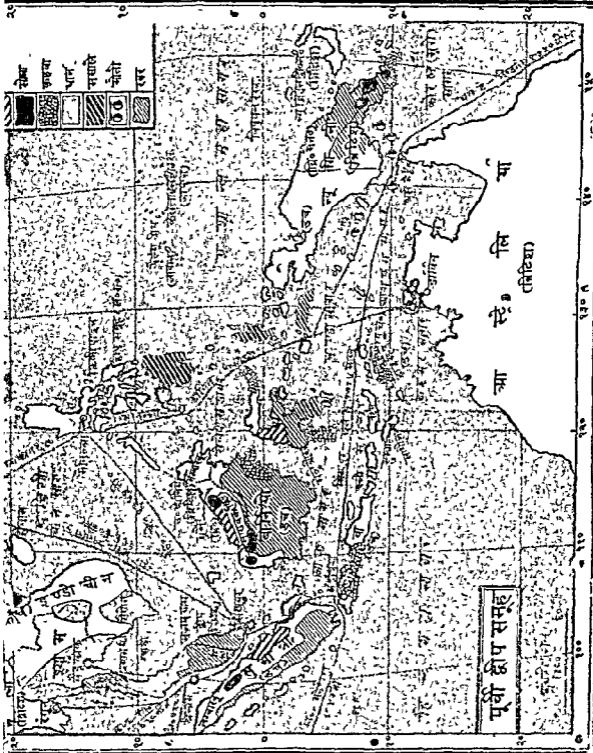
पूर्वी द्वीप समूह

ट्यूनिसीया

इसका क्षेत्रफल ४८,१९५ वर्गमील है। यहां की जनसंख्या ३१,४३,४९८ है। यहां के रहने वालों का मुख्य व्यवसाय खेती करना है। इसका उत्तरी भाग पहाड़ी है। किन्तु इसी क्षेत्र में उपजाऊ घाटियां भी पाई जाती हैं। उत्तरी-पूर्वी भाग पठारी है। इसी भाग में फलों के बाग भी अधिक हैं। मध्यवर्ती भाग में चरागाह स्थित हैं। इस देश का दक्षिणी भाग अपने बागों और मरुद्यानों के लिये प्रसिद्ध है। इस भाग में खजूर के पेड़ बहुत अधिक हैं। इस दे[श] का कुल क्षेत्र फल लगभग ३,१०,००,००० एकड़ है [।] इस क्षेत्र का ३२.२ प्रतिशत भाग खेती योग्य है [,] १०.६ प्रतिशत भाग में जंगल, ९.२ प्रतिशत भाग [में] फलों आदि के बाग और १.१ प्रतिशत भाग [में] झाड़ियां और चरागाह हैं। ४५.९१ प्रतिशत भाग [ऊ]सर है। यहां की उपज गेहूँ, जौ, जई और फ[ल] है जिसका विवरण निम्नलिखित तालिका में दिय[ा ग]या है:—

फसलों का नाम	उपज (१,००० मेटरिक टन में)					
	१९३८	१९४६	१९४७	१९४८	१९४९	१९५०
गेहूँ	२८०	३२५	२५०	२५२	५४०	४६०
जौ	१००	१५०	१००	१००	४००	२००
जई	३०	१०	६	६	२५	२५

यहां पर २,४३,००० घोड़े, गदहे और खच्चर, ३,९५,००० गाय-बैल, २३,८९,००० बकरे, १९,२८,००० ऊंट और २९,५०० सुअर हैं।

कृषि-कहावतें

उत्तम खेती मध्यम बान।
निखिद चाकरी भीख निदान॥

[१]

सुथना पहिरे हर जोतै, औ पौला पहिरि निरावै।
घाघ कहैं ये तीनों भकुआ, सिर बोझा औ गावै॥

जो सुथना (पाजामा) पहनकर हल जोतता है, जो पौला पहन कर निराता (खेत में घास निकालता) है, और जो सिर पर बोझा लिये हुए भी गाता चलता है, घाघ कहते हैं ये तीनों मूर्ख हैं।

पौला=एक प्रकार का खड़ाऊँ, जिसमें खूँटी के बदले रस्सी लगाई जाती है। किसान लोग प्राय पौला ही पहनते हैं। भकुआ=भोंभाभाला, मूर्ख।

[२]

फूटे से बहि जातु हैं, ढोल गँवार अँगार।
फूटे से बनि जातु हैं, फूट कपास अनार॥

ढोल, गँवार और अंगारा, ये तीनों फूटने से नष्ट हो जाते हैं। पर फूट (ककड़ी), कपास और अनार फूटने से बन जाते हैं। अर्थात् मूल्यवान् हो जाते हैं।

[३]

भूरी हथिनी चँदुली जोय।
पूस महावट विरले होय॥

भूरे रंग की हथिनी, गंजे सिर वाली स्त्री और पौष महीने की वर्षा बहुत शुभ है। ये किसी-किसी को नसीब होते हैं।

[४]

बाध, बिया, बेकहल, बनिक, बारी बेटा, बैल।
ब्योहर, बढ़ई, बन, बबुर, बात, सुनो यह छैल॥
जो बकार बारह बसैं, सो पूरन गिरहस्त।
औरन को सुख दें सदा, आप रहे अलमस्त॥

बाध (जिससे खाट बुनी जाती है), बाज, बेकहल (ढांक की जड़ की छाल), बनिया, बारी (फुलवाड़ी), बेटा, बैल, ब्योहर (सूद पर उधार देना), बढ़ई, बन या कपास, बबूल और बात, ये बारह बकार जिसके पास हों, वही पूरा गृहस्थ है। वह दूसरों को सदा सुख देगा और स्वयं भी निश्चिन्त रहेगा।

[५]

गया पेड़ जब बकुला बैठा।
गया गेह जब मुड़िया पैठा॥
गया राज जहँ राजा लोभी।
गया खेत जहँ जामी गोभी॥

बगले के बैठने से पेड़ का नाश हो जाता है। मुड़िया (सन्यासी) जिस घर में आता-जाता है, वह घर नष्ट हो जाता है। राजा लोभी हो तो उसका राज नष्ट हो जाता है और गोभी (एक प्रकार की घास) जमने से खेत नष्ट हो जाता है।

मुड़िया=वह साधु जो सिर मुड़ाये रखता है। राज-पूताने में जैन साधु मुड़िया कहलाते हैं।

बगले की बीट पेड़ के लिये हानिकारक बताई जाती है और गोभी के जमने से खेत की पैदावार बहुत कम हो जाती है।

[६]

खेती पाती बीनती, औ घोड़े की तंग।
अपने हाथ सँवारिये, लाख लोग हो संग॥

खेती करना, चिट्ठी लिखना, बिनती करना और घोड़े का तंग कसना अपने ही हाथ से चाहिये। यदि लाख आदमी भी साथ हों, तब भी स्वयं करना चाहिये

[७]

सावन सोये ससुर घर, भादो खाये पूआ।
खेत खेत में पूछत डोलैं, तोहरे केतिक हुआ॥

सुस्त और बेपरवाह किसान सावन में तो ससुराल में रहा, भादों में पूआ खाता रहा। अब दूसरों के खेत में पूछता फिरता है कि तुम्हारे कितनी पैदावार हुई ?

[८]

चैते गुड़ बैसाखे तेल। जेठ क पंथ असाढ़ क बेल॥
सावन साग न भादों दही। कार करेला कातिक मही॥
अगहन जीरा पूसे धना। माघे मिश्री फागुन चना॥

चैत में गुड़, बैसाख में तेल, जेठ में राह, असाढ़ में बेल, सावन में साग, भादों में दही, क्वार में करेला, कार्तिक में मट्ठा, अगहन में जीरा, पौष में धनिया, माघ में मिश्री और फागुन में चना हानिकारक है।

इसी के जोड़ का एक दूसरा छंद है, जिसमें प्रत्येक महीने में लाभ पहुँचाने वाली चीजों के नाम हैं। जैसे—

[९]

सावन हर्रे भादो चीत। कार मास गुड़ खायउ मीत॥
कातिक मूली अगहन तेल। पूस में करै दूध से मेल॥
माघ मास घिउ खींचरि खाय। फागुन उठिके प्रात नहाय॥
चैत मास में नीम बेसहनी। बैसाखे में खाय जड़हनी॥
जेठ मास जो दिन में सोवै। ओकर जर असाढ़ में रोवै॥

[१०]

अगसर खेती अगसर मार।
कहैं घाघ ते कबहुं न हार॥

घाघ कहते हैं कि जो सबसे पहले खेत बोता है और जो सबसे पहले मारता है, वे कभी नहीं हारते।

[११]

निचै खेती दुसरे गाय। नाहीं देखै तेकर जाय॥
घर बैठल जो बनवै बात। देह में बस्त्र न पेट में भात॥

जो किसान रोज उठकर खेती को और दूसरे दिन गाय को संभाल नहीं करता, उसकी ये दोनों चीजें बरबाद हो जाती हैं। जो घर में बैठे-बैठे बातें बनाया करता है, उसके देह पर न वस्त्र होता है, न पेट में भात। अर्थात् वह गरीब हो जाता है।

[१२]

बाढ़ै पूत पिता के धर्मा।
खेती उपजै अपने कर्मा॥

पुत्र पिता के धर्म से बढ़ता है। पर खेती अपनेही कर्म से होती है।

[१३]

माघ मास की बादरी, औ कुवार का घाम।
यह दोनों जो कोउ सहै, करै पराया काम॥

माघ की बरखा और कुवार का घाम, ये दोनों बड़े कष्टदायक होते हैं। इन्हें जो सह सके, वही पराया काम कर सकता है।

[१४]

सावन घोड़ी भादों गाय।
माघ मास जो भैंस बियाय॥
कहै घाघ यह सांची बात।
आप मरै कि मलिकै खात॥

यदि सावन में घोड़ी, भादों में गाय और माघ के महीने में भैंस ब्यावे, तो घाघ यह सच्ची बात कहते हैं कि या तो वह स्वयं मर जायगी या मालिक ही को खा जायगी।

[१५]

खेती करै बनिज को धावै। ऐसा डूबै थाह न पावै॥

जो आदमी खेती भी करता है और व्यापार के लिये भी दौड़ता फिरता है, वह ऐसा डूबता है कि उसे थाह भी नहीं मिलती। अर्थात् उसे किसी में भी सफलता नहीं मिलती।

[१६]

सब के कर। हर के तर॥

भगवान् के हाथ के नीचे सभी के हाथ हैं। अथवा सारे धन-धंधे हल पर निर्भर हैं।

[१७]

खेती ? । खसम सेती॥
आधी केकी ? जो देखै तेकी॥
बिगड़ै केकी ? घर बैठै पूछै तेकी॥

खेती उसी की पूरी है, जो अपने हाथ से करे। आधी उसकी जो स्वयं निगरानी करे। और घर-बैठे पूछ लेता है कि खेती का क्या हाल है? उसकी खेती बिल्कुल बेकार है।

[१८]

पहिलै पानि नदी उफनावैं।
तौ जानियौ कि बरसा नावैं॥

पहली ही बार की वर्षा से यदि नदी उफन कर बहे, तो समझना चाहिये कि बरसात अच्छी न होगी।

[१९]

जौ हर होंगे बरसनहार।
काह करेगी दखिन बयार॥

दक्खिन की हवा से पानी नहीं बरसता। किन्तु यदि भगवान बरसना चाहेंगे, तो दक्खिन की हवा क्या करेगी?

[२०]

माघ में गरमी जेठ में जाड़।
कहैं घाघ हम होब उजाड़॥

माघ में गरमी और जेठ में सरदी पड़े, तो घाघ कहते हैं कि हम उजड़ जायेंगे। अर्थात् पानी न बरसेगा।

[२१]

ईख तिस्सा। गोहूँ बिस्सा॥

ईख की पैदावार तीस गुनी होती है और गेहूँ की बीस गुनी।

[२२]

असाढ़ मास जो गँवहाँ कीन।
ताकी खेती होवै हीन॥

आषाढ़ में जो किसान मेहमानी खाता फिरता है, उसकी खेती कमजोर होती है।

[२३]

सांझे धनुक सकारे मोर।
यह दोनों पानी के चोर॥

यदि शाम को इन्द्र-धनुष दिखाई पड़े और सवेरे मोर बोले, तो वर्षा बहुत होगी।

अर्थात् पानी बरसेगा और खेत जोतना पड़ेगा, इससे हलवाहे चोर पड़ें।

[२४]

पूनो परवा गाजे। तो दिना बहत्तर नाजे॥

यदि आषाढ़ की पूर्णमासी और प्रतिपदा को बिजली चमके, तो बहत्तर दिन तक वृष्टि होगी।

[२५]

बयार चले ईसाना। ऊंची खेती करो किसान॥

यदि आषाढ़ में ईशान-कोन से हवा चले, तब फसल अच्छी होगी।

[२६]

थोड़ा जोतै बहुत हेंगावै, ऊंच न बांधै आड़।
ऊंचे पर खेती करे, पैदा होवै भाड़॥

थोड़ा जोते, बहुत हेंगावे (सिरावन दे) मेड़ भी ऊँचा न बांधे और ऊँची जगह पर खेती करे, तो भड़भड़ा पैदा होगा ?

भड़=भड़भड़ा, एक काँटेदार, चितकबरी पत्तीवाला पौधा, जिसके फूल पीले और कटोरे के आकार के होते हैं। चमार लोग उसके बीज का तेल निकालते हैं।

[२७]

गेहूँ बाहा धान गाहा। ऊख गोड़ाई से है आहा॥

गेहूँ कई बाँह करने से, धान बिदाहने (धान के पौधे उग आवें तब जोतने) से और ईख गोड़ने से अधिक पैदा होती है।

[२८]

रड़हे गेहूँ कुसहे धान।
गड़रा की जड़ अड़हन जान॥
फुली घास रो देयँ किसान।
वहिमें हाथ आन का तान॥

राड़ घास काटकर खेत बनाया जाय तो गेहूँ की, कुस काटकर बनाया जाय तो धान की और गड़रा काटकर बनाया जाय, तो जड़हन की पैदावार अच्छी होती है। लेकिन जिस खेत में फुलही घास होती है, उसमें कुछ नहीं पैदा होता और किसान रो देता है।

[२९]

जब सैल खटाखट बाजै। तब चना खूब ही गाजै॥

खेत में इतने ढेले हो कि हल चलते वक्त बैलों के जुए की सैलें खट-खट बजती रहें, उस खेत में चने की फसल अच्छी होगी।

[३०]

जब बरसै तब बाँधो क्यारी।
बड़ा किसान जो हाथ कुदारी॥

जब बरसे, तब क्यारी बाँधनी चाहिये। बड़ा किसान वह है, जिसके हाथ में कुदाल रहती है।

[३१]

हर लगा पताल। तो टूट गया काल॥

यदि हल खूब गहरा चला गया अर्थात् जोत गहरी हुई, तो समझो कि अकाल का भय जाता रहा।

[३२]

छोटी नसी—धरती हँसी

हल का फल छोटा देखकर पृथ्वी हँस देती है। अर्थात् पैदावार अच्छी न होगी।

[३३]

खेते पांसा जो न किसाना।
उसके घरे दरिद्र समाना॥

जो किसान खेत में खाद नहीं डालता,उसके घर में दरिद्र घुसा रहता है।

[३४]

मैदे गेहूँ ढेले चना।

गेहूँ के खेत की मिट्टी मैदे की तरह बारीक हो और चने के खेत में ढेले हों, तब पैदावार अच्छी होती है।

[३५]

माघ मँघारै जेठ में जारै॥
भादों सारै—
तेकर मेहरी डेहरी पारै॥

गेहूँ के खेत माघ में जोतना चाहिये, फिर जेठ में, जिससे घास जल जाय। फिर भादों में जोते। जो किसान ऐसा करेगा, उसी की स्त्री अन्न भरने के लिये डेहरी (कोठिला) बनायेगी।

[३६]

जोतै खेत घास न टूटे।
तेकर भाग साँझ ही फूटै॥

जोतने पर भी यदि खेत की घास न टूटे, तो उसका भाग्य साँझे ही को फूट गया समझना चाहिये।

[३७]

गहिर न जोतै बोवै धान।
सो घर कोठिला भरै किसान॥

धान के खेत को गहरा न जोतकर धान बोवे, तो इतना धान पैदा हो कि किसान का घर कोठिलों से भर जायगा।

[३८]

दुइ हर खेती यक हर बारी।
एक बैल से भली कुदारी॥

दो हल से खेती और एक हल से शाक-तरकारी की बाड़ी होती है। और जिस किसान के पास एक ही बैल है, उससे तो कुदाल ही अच्छी है।

[३९]

कातिक मास रात हर जोतौ।
टाँग पसारे घर मत सूतौ॥

कातिक महीने में रात में हल जोतो। टाँग फैलाकर घर में मत सोओ।

[४०]

आगे गेहूँ पीछे धान। वाको कहिये बड़ा किसान॥

जो धान बोने से पहले गेहूँ के खेत की जोताई कर चुकता है, उसे बड़ा किसान कहना चाहिये।

[४१]

दस बाहों का माड़ा। बीस बाहों का गांड़ा॥

गेहूँ के खेत को दस बार जोतना चाहिये और ईख के खेत को बीस बार।

[४२]

गेहूँ भवा काहें। असाढ़ के दो बाहें॥

गेहूँ क्यों हुआ? आषाढ़ महीने में दो बार जोत देने से।

[४३]

तेरह कातिक तीन असाढ़।
जो चूका सो गया बजार॥

[१०]

अगसर खेती अगसर मार।
कहैं घाघ ते कबहुं न हार॥

घाघ कहते हैं कि जो सबसे पहले खेत बोता है और जो सबसे पहले मारता है, वे कभी नहीं हारते।

[११]

नित्तै खेती दुसरे गाय। नाहीं देखै तेकर जाय॥
घर बैठल जो बनवै बात। देह में वस्त्र न पेट में भात॥

जो किसान रोज उठकर खेती की और दूसरे दिन गाय की सम्भाल नहीं करता, उसकी ये दोनों चीजें बरबाद हो जाती हैं। जो घर में बैठे बैठे बातें बनाया करता है, उसकी देह पर न वस्त्र होता है, न पेट में भात। अर्थात् वह गरीब हो जाता है।

[१२]

बाढ़ै पूत पिता के धर्मा।
खेती उपजै अपने कर्मा॥

पुत्र पिता के धर्म से बढ़ता है। पर खेती अपने ही कर्म से होती है।

[१३]

माघ मास की बादरी, औ कुवार का घाम।
यह दोनों जो कोउ सहै, करै पराया काम॥

माघ की बदली और कुवार का घाम, ये दोनों बड़े कष्टदायक होते हैं। इन्हें जो सह सके, वही पराया काम कर सकता है।

[१४]

सावन घोड़ी भादों गाय।
माघ मास जो भैंस बियाय॥
कहै घाघ यह साची बात।
आप मरै कि मलिकै खात॥

यदि सावन में घोड़ी, भादों में गाय और माघ के महीने में भैंस ब्यावे, तो घाघ यह सच्ची बात कहते हैं कि या तो वह स्वयं मर जायगी या मालिक ही को खा जायगी।

[१५]

खेती करै बनिज को धावै। ऐसा डूबै थाह न पावै॥

जो आदमी खेती भी करता है और व्यापार के लिये भी दौड़ता फिरता है, वह ऐसा डूबता है कि उसे थाह भी नहीं मिलती। अर्थात् उसे किसी में भी सफलता नहीं मिलती।

[१६]

सब के कर। हर के तर॥

भगवान् के हाथ के नीचे सभी के हाथ हैं। अथवा सारे काम-धंधे हल पर निर्भर हैं।

[१७]

खेती ? । खसम सेती॥
आधी केकी ? जो देखै तेकी॥
बिगड़ै केकी ? घर बैठे पूछै तेकी॥

खेती उसी की पूरी है, जो अपने हाथ से करे। आधी उसकी, जो स्वयं निगरानी करे। और घर बैठे पूछ लेता है कि खेती का क्या हाल है ? उसकी खेती बिल्कुल बेकार है।

[१८]

पहिलै पानि नदी उफनायँ।
तौ जानियौ कि बरखा नायँ॥

पहली ही बार की वर्षा से यदि नदी उफन कर बहे, तो समझना चाहिये कि बरसात अच्छी न होगी।

[१९]

जौ हर होंगे बरसनहार।
काह करेगी दखिन बयार॥

दक्खिन की हवा से पानी नहीं बरसता। किन्तु यदि भगवान् बरसना चाहेंगे, तो दक्खिन की हवा क्या करेगी ?

[२०]

माघ में गरमी जेठ में जाड़।
कहैं घाघ हम होब उजाड़॥

माघ में गरमी और जेठ में सरदी पड़े, तो घाघ कहते हैं कि हम उजड़ जायँगे। अर्थात् पानी न बरसेगा।

[२१]

ईख तिस्सा। गोहूँ बिस्सा॥

ईख की पैदावर तीस गुनी होती है और गेहूँ की बीस गुनी।

[२२]

असाढ़ मास जो गँवहीं कीन।
ताकी खेती होवै हीन॥

आषाढ़ में जो किसान मेहमानी खाता फिरता है, उसकी खेती कमजोर होती है।

[२३]

साझे धनुक सकारे मोरा।
यह दोनों पानी के बोरा॥

यदि शाम को इन्द्र-धनुष दिखाई पड़े और सवेरे मोर बोलें, तो वर्षा बहुत होगी।

अर्थात् पानी बरसेगा और खेत जोतना पड़ेगा, इससे हलवारे दौड़ पड़े

[२४]

पूनो परवा गाजे। तो दिना बहत्तर नाजे॥

यदि आषाढ़ की पूर्णमासी और प्रतिपदा को बिजली चमके, तो बहत्तर दिन तक वृष्टि होगी।

[२५]

बयार चले ईसाना। ऊंची खेती करो किसान॥

यदि आषाढ़ में ईसान-कोन से हवा चले, तब फसल अच्छी होगी।

[२६]

थोड़ा जोतै बहुत हेंगावै, ऊंच न बाँधै आड़।
ऊंचे पर खेती करे, पैदा होवै भाड़॥

थोड़ा जोतै, बहुत हँगावे (सिरावन दे) मेड़ भी ऊँचा न बाँधे और ऊँचा जगह पर खेती करे, तो भड़भड़ा पैदा होगा ?

भाड़=भड़भड़ा, एक काटेदार, चितकबरा पत्तीवाला पौधा, जिसके फूल पीले और कटोरे के आकार के होते हैं। चमार लोग उसके बीज का तेल निकालते हैं।

[२७]

गेहूँ वाहा धान गाहा । ऊख गोड़ाई से है आहा ॥

गेहूँ कई बाँह करने से, धान बिदाहने (धान के पौधे उग आवें तब जोतने) से और ईख गोड़ने से अधिक पैदा होती है।

[२८]

रड़है गेहूँ कुसहै धान।
गड़रा की जड़ जड़हन जान॥
फुली घास रो देयें किसान।
वहिमें होय ध्यान का तान॥

राड़ घास काटकर खेत बनाया जाय तो गेहूँ की, कुस काटकर बनाया जाय तो धान की और गड़रा काटकर बनाया जाय, तो जड़हन की पैदावार अच्छी होती है। लेकिन जिस खेत में फुलकी घास होती है, उसमें कुछ नहीं पैदा होता और किसान रो देता है।

[२९]

जब सैल खटाखट बाजै । तब चना खूब ही गाजै ॥

खेत में इतने ढेले हों कि हल चलते वक्त बैलों के जुए की सैले खट-खट बजती रहें, उस खेत में चने की फसल अच्छी होगी।

[३०]

जब बरसै तब बांधों क्यारी।
बड़ा किसान जो हाथ कुदारी॥

जब बरसे, तब क्यारी बाँधनी चाहिये। बड़ा किसान वह है, जिसके हाथ में कुदाल रहती है।

[३१]

हर लगा पताल । तो टूट गया काल ॥

यदि हल खूब गहरा चला गया अर्थात् जोत गहरी हुई, तो समझो कि अकाल का भय जाता रहा।

[३२]

छोटी नसी—धरती हँसी

हल का फल छोटा देखकर पृथ्वी हँस देती है। अर्थात् पैदावार अच्छी न होगी।

[३३]

खेते पांसा जो न किसानां।
उसके घरे दरिद्र समाना॥

जो किसान खेत में खाद नहीं डालता, उसके घर में दरिद्र घुसा रहता है।

[३४]

मैंदे गेहूँ ढेले चना।

गेहूँ के खेत की मिट्टी मैदे की तरह बारीक हो और चने के खेत में ढेले हों, तब पैदावार अच्छी होती है।

[३५]

माघ मँघारै जेठ में जारै॥
भादों सारै—
तेकर मेहरी डेहरी पारै॥

गेहूँ के खेत माघ में जोतना चाहिये, फिर जेठ में, जिससे घास जल जाय। फिर भादों में जोते। जो किसान ऐसा करेगा, उसी की स्त्री अन्न भरने के लिये डेहरी (कोठिला) बनावेगी।

[३६]

जोतै खेत घास न टूटे।
तेकर भाग सांझ ही फूटे॥

जोतने पर भी यदि खेत की घास न टूटे, तो उसका भाग्य सांझे ही को फूट गया समझना चाहिये।

[३७]

गहिर न जोतै बोवै धान।
सो घर कोठिला भरै किसान॥

धान के खेत को गहरा न जोतकर धान बोवे, तो इतना धान पैदा हो कि किसान का घर कोठिलों से भर जायगा।

[३८]

दुइ हर खेती यक हर बारी।
एक बैल से भली कुदारी॥

दो हल से खेती और एक हल से शाक-तरकारी की बाड़ी होती है। और जिस किसान के पास एक ही बैल है, उससे तो कुदाल ही अच्छी है।

[३९]

कातिक मास रात हर जोतौ।
टांग पसारे घर मत सूतौ॥

कातिक महीने में रात में हल जोतो। टाँग फैलाकर घर में मत सोओ।

[४०]

आगे गेहूँ पीछे धान। वाको कहिये बड़ा किसान॥

जो धान बोने से पहले गेहूँ के खेत की जोताई कर चुकता है, उसे बड़ा किसान कहना चाहिये।

[४१]

दस वाहों का भाड़ा । बीस वाहों का गांड़ा ॥

गेहूँ के खेत को दस बार जोतना चाहिये और ईख के खेत को बीस बार।

[४२]

गेहूँ भवा काहें । आसाढ़ के दो वाहें ॥

गेहूँ क्यों हुआ ? आषाढ़ महीने में दो बार जोत देने से।

[४३]

तेरह कातिक तीन असाढ़।
जो चूका सो गया बजार॥

तेरह बार कातिक में और तीन बार असाढ़ में जोतने से जो गेहूँ, वह बाजार में सौदा कर सकता। अच्छा कातिक में तेरह दिन में और असाढ़ में तीन दिन में जो बोना चाहिये, जो नहीं बोयेगा, उसे फल नहीं मिलेगा।

[४४]

जेतना गहिरा जोतै खेत। बीज परे फल अच्छा देत॥

खेत को जितना ही गहरा जोते, बीज पाने पर वह उतना ही अच्छा फल देता है।

[४५]

थाली छोटी भई काहे। बिना असाढ़ की दो बाहे॥

गेहूँ की थाली छोटी क्यों हुई? असाढ़ में दो बार जोता नहीं था इसलिये।

[४६]

जोंधरी जोतै तोड़ मरोर।
तब वह डारै कोठिला फोर॥

मक्के के खेत को खूब उलट-पलट कर जोतना चाहिये। तब वह इतना पैदा होगा कि कोठिले में न समायगी।

[४७]

बाहे क्यों न असाढ़ एक बार।
अब क्यों, बाहे बारम्बार॥

अरे किसान! तू ने असाढ़ में एक बार खेत क्यों न जोता? अब तू बार बार क्यों जोतता है?

[४८]

तीन कियारी तेरह गोड़। तब देखो ऊखी के पोर॥

तीन बार सींचो और तेरह बार गोड़ो, तब ऊख अच्छी लगेगी।

[४९]

गेहूँ भया काहे। सोलह बाहे—नौ गाहे॥

गेहूँ की पैदावार अच्छी क्यों हुई? सोलह बार जोतने और नौ बार हेंगाने से।

[५०]

मेड़ बांध दस जोतन दे। दस मन बिगहा मोंसे ले॥

मेड़ बांधकर दस बार जोतने दो, तो फी बिघा दस मन की पैदावार मुझसे लो।

[५१]

थोर जोताई बहुत हेंगाई, ऊँचे बांधे क्यारी।
उपजै तो उपजै, नाहीं धाघै देवै गारी॥

थोड़ा जोतने से, बहुत बार हेंगाने से और ऊँचा मेड़ बाँधने से यदि अन्न उपजा तो उपजा, नहीं तो घाघ को गाली देना। अर्थात् अन्न जरूर ही उपजे।

[५२]

नौ नमी—एक कसी।

नौ बार हल से जोतने से एक बार कस्से से खोदकर मिट्टी को उलट देना अच्छा है।

[५३]

सरसे अरसी—निरसे चना।

खेतों में तरी हो तो अलसी और सूखी हो तो चना बोना चाहिये।

[५४]

गेहूँ भया काहे—सोलह दायँ बाहे।

गेहूँ क्यों हुआ? सोलह बार के जोतने से।

[५५]

जोत न मानै अरसी चना।
कहा न मानै हरामी जना॥

अलसी और चना अधिक जोताई नहीं चाहते। जैसे हरामी आदमी कहा नहीं मानता।

[५६]

गेहूँ भया काहे—कातिक के चौबाहे।

गेहूँ क्यों हुआ? कातिक में चार बार जोतने से।

[५७]

खाद परे तो खेत। नहीं तो कूड़ा रेत॥

खाद पड़ने ही से खेत हो सकता है। नहीं तो कूड़ा-करकट और रेत के सिवा कुछ नहीं होगा।

[५८]

गोबर मैला नीम की खली। यामें खेती दूनी फली॥

गोबर, पाखाना और नीम की खली डालने से खेती में दूना पैदा होता है।

[५९]

गोबर मैला पानी सड़ै। तब खेती में दाना पड़ै॥

खेत में गोबर, पाखाना और पत्ती सड़ने से दाना अधिक होता है

[६०]

खेती करै खाद से भरै। सौ मन कोठिला में लै धरै॥

खेती करे, तो खेत को खाद से पाट दे। तब सौ मन अन्न कोठिला में लाकर रक्खे

[६१]

गोबर, चोकर, चकवड़ भूसा।
इनको छोड़े होय न भूसा॥

गोबर, चोकर, चकवड़ और भूसे की पत्तियाँ खेत में छोड़ने से भूसा नहीं होता है। अर्थात् उपज अच्छी होती है।

[६२]

जेकरे खेत पड़ा नहिं गोबर।
वहि किसान को जान्यो दूबर॥

जिस किसान के खेत में गोबर नहीं पड़ा उसे कमजोर समझना चाहिये।

[६३]

कोठिला बैठी बोली अई।
आधे अगहन काहे न बई॥

अथवा
खिचड़ी खाकर क्यों नहिं बई ॥
जो कहुं बोते बिगहा चार।
तो मैं डरतिउँ कोठिला फारि ॥

कोठिला में बैठे हुई जई ने कहा—मुझे आधे अगहन में क्यों नहीं बोया ? या खिचड़ी खाकर क्यों नहीं बोया ? यदि तुम चार बीघा भी बोते तो मैं इतनी पैदा होती कि कोठिले में न समाती।

खिचड़ी = मकर की संक्रान्ति का एक त्योहार।

[६४]
अगहन बवा। कहूँ मन कहूँ सवा ॥

अगहन में यदि जौ-गेहूँ बोया जायगा, तो बीघा पीछे कहीं मन भर होगा, कहीं सवा मन। अर्थात् उपज कम होगी।

[६५]
पुक्ख पुनर्वस बोवै धान।
असलेखा जोन्हरी परमान ॥

पुष्य और पुनर्वसु नक्षत्र में धान बोना चाहिये और अश्लेषा में जोन्हरी।

[६६]
आधे हथिया मूरि मुराई।
आधे हथिया सरसों राई ॥

हस्त नक्षत्र के प्रारम्भ में मूली आदि और अन्त में सरसों और राई आदि बोना चाहिये।

[६७]
अगहन जो कोउ बोवै जौवा।
होइ तो नहिं खावै कौवा ॥

अगहन में यदि कोई जौ बोवेगा, तो पहले तो होगा ही नहीं। यदि होगा भी तो कौवे खावेंगे। क्योंकि फसल सबसे पीछे तैयार होगी और कौवे उसे खाने के लिये पुरस्सा में रहेंगे।

[६८]
गेहूँ बाहें। धान बिदाहें ॥

गेहूँ का खेत कई बार जोतने से और धान का खेत बिदाहने (धान के उग आने पर फिर जोतवा देने से) पैदावार अच्छी होता है।

[६९]
सांवन सांवां अगहन जवा।
जितना बोवै उतना लवा ॥

सावन में सांवा और अगहन में जितना जौ बोया जायगा, उतना ही काटा जायगा। अर्थात् उपज कम होगी।

[७०]
चित्रा गोहूँ अद्रा धान।
न उनके गेरुई न इनके घाम ॥

चित्रा में गेहूं और आर्द्रा नक्षत्र में धान बोने से गेहूं को गेरुई नहीं लगती और धान को धूप नहीं मारती।

[७१]
अद्रा धान पुनर्बसु पैया।
गया किसान जो बोवै चिरैया ॥

आर्द्रा में धान बोना चाहिये। पुनर्वसु में बोने से केवल पैया (बिना चावल का धान) हाथ आवेगा। और पुष्य में बोने से कुछ न होगा।

[७२]
कच्चा खेत न जोतै कोई।
नाहीं बीज न अकुरै कोई ॥

गीला खेत न जोतना चाहिये, नहीं तो उसमें बीज नहीं जमेगा।

[७३]
सब कार हर तर। जो खसम 'सीर पर ॥

अगर मालिक स्वयं सीर का सब काम करे, तो खेती कुल पेशों से उत्तम है।

[७४]
जब बर्रे बरोठे आई। तब रबी की होय बोआई ॥

जब बर्रे घर में उड़ती हुई आवें, तब रबी की बुआई होनी चाहिये,

[७५]
हस्त न बजरी चित्र न चना।
स्वाति न गोहूँ बिसाख न धाना ॥

हस्त में बाजरी, चित्रा में चना, स्वाती में गेहूं और और विशाखा में धान न बोना चाहिये।

[७६]
ऊगी हरनी फूली कास।
अब का बोये निगोड़े मास ॥

हरिणी तारा को उदय हो गया और कास में फूल आ गया। ऐ मूर्ख ! अब तू ने उड़द क्यों बोया ?

[७७]
मारूँ हरनी तोडूँ कास।
बोऊं उर्द हथिया की आस ॥

हरिणी तारा को मार डालूँगा, अर्थात् उसकी कुछ परवा नहीं; कास को तोड़ डालूँगा, मैं तो हथिया नक्षत्र की आशा से उड़द बो रहा हूँ।

[७८]
अगाईं। सो सवाईं ॥

आगे बोने वाला औरों से सवाया अन्न पाता है।

[७९]
कातिक बोवै अगहन भरै।
ताको हाकिम फिर का करै ॥

जो कातिक में बोता है और अगहन में सींचता है। उसका हाकिम क्या कर सकता है ? अर्थात् वह लगान आसानी से दे सकता है।

[८०]

बोवै बजरा आये पुक्ख।
फिर मन कैसे पावै सुक्ख॥

पुष्य नक्षत्र आने पर बाजरा बोओगे; तो मन कैसे सुख पावेगा?

[८१]

पुरवा में जिन रोपो भइया।
एक धान में सोलह पइया॥

हे भाई! पूर्वा नक्षत्र में धान न रोपना; नहीं तो एक धान में सोलह पैया होंगे।

[८२]

अद्रा रेंड पुनरबस पाती।
लाग चिरैया दिया न बाती॥

धान आर्द्रा में बोया जायगा तो कंकड़ कड़े होंगे, पुनर्वसु में पत्तियां अधिक होंगी। चिरैया लगने पर बोया जायगा तो घर में अंधेरा ही रहेगा।

[८३]

बुध बृहस्पति दो भलो, सुक्र न भले बखान।
रवि मंगल बौनी करै, द्वार न आवै धान॥

बोने के लिये बुध-बृहस्पति दो दिन अच्छे हैं। शुक्र अच्छा नहीं है। रविवार और मंगलवार को बोने से अन्न लौट कर घर नहीं आता।

[८४]

नरमी गेहूँ सरसी जवा। अति के बरसे चना बवा॥

गेहूँ को नरम भुरभुरे खेत में और जौ को तर खेत में बोना चाहिये और यदि बहुत पानी बरसे, तो चना बोना चाहिये।

[८५]

हरिन फलांगन काकरी, पेंग पेंग कपास।
जाय कहो किसान से, बोवै घनी उखार॥

हरिन की छलांग-छलांग पर ककड़ी, और कदम-एक कदम पर कपास बोना चाहिये। किसान से जाकर कहो कि ऊख को घनी बोवें।

अर्थात्; ऊख को इतना घना बोना चाहिये कि इसमें हवा सवेरा न कर सके।

[८६]

मक्का जोन्हरी औ बजरी।
इनको बोवे कुछ बिदरी॥

मक्का, ज्वार और बाजरे को कुछ बिदर (छीदा) बोना चाहिये।

[८७]

घनी घनी जब सनई बोवै।
तब सुतरी की आसा होवै॥

सनई को घनी बोने से सुतली की आशा होगी।

[८८]

कदम कदम पर बाजरा, मेढक कुदौनी ज्वार।
ऐसे बोवै जो कोई, घर घर भरै कोठार॥

एक-एक कदम पर बाजरा और मेढक की कुदान पर ज्वार जो कोई बोवे, तो घर-घर का कोठिला भर जाय।

[८९]

छीछी भली जौ चना, छीछी भली कपास।
जिनकी छीछी ऊखड़ी, उनकी छोड़ो आस॥

जौ और चना छीदे-छीदे अच्छे। कपास भी छीदी अच्छी। पर जिनकी ऊख छीदी है, उनकी आशा छोड़ो।

[९०]

सन घना बन बेगरा, मेढक फन्दे ज्वार।
पैर पैर पर बाजरा, करै दरिद्रै पार॥

सन को घना, कपास को छीदा-छीदा, ज्वार को मेढक की कुदान पर और बाजरे को एक-एक कदम पर बोवे, तो दरिद्रता से पार हो जाय।

[९१]

कुड़हल भदई बोओ यार।
तब चिउरा की होय बहार॥

कुड़हल जमीन में भादों की फसल बोओ, तब चिउड़ा खाने को मिलेगा। अथवा धरती खोदकर भदई धान बोओ।

कुड़हल=वह जमीन जो जेठ में धान बोने के लिये तैयार की जाती है।

[९२]

बाड़ी में बाड़ी करै, करै ईख में ईख।
ते घर योंही जायँगे, सुनै पराई सीख॥

जो कपास के खेत में कपास और ईख के खेत में ईख फिर बोता है और पराई सीख सुनता है, उसका घर योंही नष्ट हो जायगा।

[९३]

साठी में साठी करै, बाड़ी में बाड़ी।
ईख में जो धान बोवै, फूँको वाकी दाढ़ी॥

जो साठी के खेत में फिर साठी बोता है, कपास के खेत में कपास और ईख के खेत में धान बोता है, उसकी दाढ़ी फूँक देनी चाहिये। अर्थात् फसल अच्छी न होगी।

[९४]

बोओ गेहूँ काट कपास।
होवै न ढेला न होवै घास॥

कपास काटकर गेहूँ बोओ। पर उसमें ढेला और घास न होनी चाहिये।

[९५]

बिड़रै जोत पुराने बिया।
वाकी खेती छिया-बिया॥

जिस खेत में छीदी-छीदी जुताई हुई है और बीज भी पुराना है, उस खेत में कुछ न उत्पन्न होगा।

[९६]

पूस न बोये । पीस खाये ॥

पौष में बोने से पीसकर खा लेना अच्छा है ।

[९७]

बुध बउनी । सुक लउनी ॥

बुध को बोना चाहिये और शुक्र को काटना ।

[९८]

दीवाली को बोये दिवालिया ।

जो दिवाली को बोता है वह दिवालिया हो जाता है । अर्थात् उसके खेत में कुछ नहीं पैदा होता है ।

[९९]

गाजर गंजी मूरी । तीनों बोवै दूरी ॥

गाजर, शकरकन्द और मूली को दूर-दूर बोना चाहिये ।

[१००]

अबर खेत जो जुट्ठी खाय ।
सडै बहुत तो बहुत मोटाय ॥

कमजोर खेत में यदि नल का डंठल डाला जाय, तो वह जितना ही सड़ेगा, खेत उतना ही जोरदार होगा ।

[१०१]

भैंस जो जन्मे पंड़वा, बहू जो जन्मे धी ।
समै कुलच्छन जानिये, कातिक बरसे मीं ॥

भैंस यदि पँड़वा ब्याये, बहू के यदि कन्या पैदा हो और यदि कातिक में पानी बरसे, तो ये तीनों समय के कुलक्षण हैं ।

[१०२]

रोहिनी खाट मृगसिरा छउनी ।
अद्रा आये धान की बोउनी ॥

रोहिणी नक्षत्र में खाट बुनकर और मृगशिरा में छप्पर छाकर किसान को खाली हो जाना चाहिये । ताकि आर्द्रा आने पर धान बोने के लिये वह खेत की तैयारी कर सके ।

[१०३]

कन्या धान मीन जौ । जहाँ चाहे तहां लौ ॥

कन्या की संक्रान्ति आने पर धान और मीन की संक्रान्ति में जौ काटना चाहिये ।

[१०४]

दाना अरसी । बोया सरसी ॥

पोस्ता और अलसी को तर खेत में घनी बोना चाहिये ।

[१०५]

बोवत बनै तो बोइयो । नहीं बरी बना कर खइयो ॥

उड़द को यदि बोते बने तो बोना, नहीं तो बरी-बरा बना कर खाना । व्यर्थ खेत में न फेंकना ।

[१०६]

पहिले काकरि पीछे धान ।
उसको कहिये पूर किसान ॥

पूरा किसान वह है जो पहले ककड़ी बोता है, उसके बाद धान ।

[१०७]

जौ गेहूँ बोवै पांच पसेर ।
मटर के बीघा तीसै सेर ॥
बोवै चना पसेरी तीन ।
तिन सेर बीघा जोन्हरी कीन ॥
दो सेर मोथी अरहर मास ।
डेढ़ सेर बिगहा बीज कपास ॥
पांच पसेरी बिगहा धान ।
तीन पसेरी जड़हन मान ॥
सवा सेर बीघा साँवाँ मान ।
तिली सरसों अँजुरी जान ॥
बर्रे कोदो सेर बोआओ ।
डेढ़ सेर बीघा तीसी नाओ ॥
डेढ़ सेर बजरा बजरी साँवाँ ।
कोदौ काकुन सवैया बोवा ॥
यहि विधि से जब बोवै किसान ।
दूना लाभ की खेती जान ॥

फी बीघा पचीस सेर जौ-गेहूं, मटर तीस सेर, चना पन्द्रह सेर, मक्का तीन सेर, अरहर, मोथी और उर्द दो सेर, कपास डेढ़ सेर, धान पचीस सेर, जड़हन पन्द्रह सेर, साँवाँ सवा सेर, तिल्ली और सरसों अंजलि भर, बर्रे और कोदो एक सेर, अलसी डेढ़ सेर, बजरा बजरी और साँवाँ डेढ़ सेर और कोदौं, काकुन आधा सेर; इस हिसाब से जो किसान खेत बोवेगा, वह दूना लाभ उठायेगा ।

[१०८]

चना चित्तरा चौगुना । स्वाती गेहूँ होय ॥

चित्रा में चना और स्वाती में गेहूं बोने से चौगुनी पैदावार होती है ।

[१०९]

रोहिनि मृगसिर बोये मक्का ।
उरद मडुवा दे नहिं टका ॥
मृगसिर में जो बोये चना ।
जमींदार को कुछ नहीं देना ॥
बोये बाजरा आया पुख ।
फिर मन मत भोगो सुख ॥

मक्का, उड़द और मडुवा रोहिणी और मृगशिरा में बोने से अच्छी पैदावार नहीं होती । मृगशिरा में यदि चना बो दोगे तो जमींदार को देने भर के लिये भी पैदा न होगा । और पुष्य में यदि बाजरा बोओगे तो आराम से न रहोगे ।

[११०]

या तो बोओ कपास औ ईख।
ना तो मांग के खाओ भीख॥

या तो कपास या ईख बोओ या भीख मांगकर खाओ।

[१११]

ईख तक खेती—हाथी तक बनिज।

ईख से बढ़कर कोई खेती नहीं, और हाथी के व्यापार से बड़ा कोई व्यापार नहीं।

[११२]

जो तू भूखा माल का। तो ईख कर ले नाल का॥

अगर तुझे बहुत धन चाहिये; तो बड़ जमीन में ईख बो, जो फागुन से फागुन तक तैयार की जाती है।

[११३]

सभी किसानी हेठी। अगहनिया पानी जेठी॥

अगहन में खेत सींचने से बढ़कर कोई किसानी नहीं।

[११४]

धान, पान, उखेरा। तीनों पानी के चेरा॥

धान, पान और ईख तीनों पानी के गुलाम हैं।

[११५]

धान पान औ खीरा। तीनों पानी के कीरा॥

धान, पान और खीरा तीनों पानी के जीव हैं।

[११६]

उठके बजरा यों हँस बोले।
खाये बूढ़ जुवा हो जाय॥

बाजरा ने उठकर कहा कि मुझे यदि बुड्ढा खाय तो जवान हो जाय।

[११७]

लाग बसन्त। ऊख पकन्त॥

बसन्त लगा, अब ईख पक गई।

[११८]

ऊख गोड़िके तुरत दबावै।
तो फिर ऊख बहुत सुख पावै॥

ईख गोड़ कर तुरन्त ही उसे दबा दे, तो ईख बहुत सुख पाती है।

[११९]

रूँध बांध के फाग दिखावे।
सो किसान मोरे मन भावे॥

ईख कहती है कि होली से पहले जो किसान मुझे अच्छी तरह रूँध देता है। अर्थात् होली तक मैं उग आती हूं यह मुझे बहुत पसंद है। अथवा जो मुझे होली तक रूँधकर और बांधकर रखता है, वह मुझे बहुत पसंद है।

[१२०]

खेती करै ऊख कपास। घर करै व्यवहरिया पास॥

ईख और कपास की खेती करे और समय पड़ने पर धन उधार देनेवाले के पास बसे, तो सुख मिलता है।

[१२१]

ऊख सरवती दिवला धान।
इन्हें छाड़ि जनि बोओ आन॥

सरौती (एक प्रकार की पतली ईख) और देवुला (एक किस्म का धान) छोड़कर दूसरे किस्म की ईख और धान न बोवें।

नोट—सरौती ईख का गुड़ अच्छा होता है, और देवुला धान का चावल पुष्टिकारक होता है।

[१२२]

जो कपास को नाहीं गोड़ी।
उसके हाथ न आवै कौड़ी॥

जिसने कपास को नहीं गोड़ा, उसके हाथ कौड़ी भी न लगेगी।

[१२३]

कपास चुनाई। खेत खनाई॥

कपास चुनने में और खेत खोदने में लाभदायक होता है।

[१२४]

तरकारी है तरकारी।
या में पानी की अधिकारी॥

तरकारी को तर रखना चाहिये। इसमें पानी की अधिकता चाहिये।

[१२५]

हथिया में हाथ गोड़ चित्रा में फूल।
चढ़त सेवाती झम्पा मूल॥

हस्त नक्षत्र में अगहन ने डंठल निकलना शुरू होता है, चित्रा में फूल आ जाता है। और स्वाती के प्रारम्भ में बालें लटक पड़ती हैं।

[१२६]

साठी होवै साठवें दिन।
तब पानी पावै आठवें दिन॥

साठी (चावल) यदि आठवें दिन पानी पाता जाय, तो साठ दिन में तैयार हो जाता है।

[१२७]

सावन भादौं खेत निरावै।
तब गृहस्थ बहुतै सुख पावै॥

यदि किसान सावन और भादों में खेत निरावे, तो वह बहुत सुख पावेगा।

[१२८]

बांध कुदारी खुरपी हाथ।
लाठी हँसुवा राखै साथ॥
काटै घास औ खेत निरावै।
सो पूरा किसान कहवावै॥

वही पूरा किसान है जो कुदाल और खुरपी हाथ में और लाठी और हँसुआ साथ में रक्खे, तथा घास काटता रहे और खेत निराता रहे।

(१२६)

काले फूल न पाया पानी।
धान मरा अध बीच जवानी ॥

धान का फूल जब काला हो चला, तब उसे पानी न मिले, तो वह आधी जवानी ही में मर जायगा।

(१३०)

विधि का लिखा न होई आन।
आधे चित्रा फूटै धान॥

चित्रा नक्षत्र के मध्य में धान फूटता है, यह ब्रह्मा का लिखा हुआ बदल नहीं सकता।

(१३१)

दो पत्ती क्यों न निराये।
अब बीनत क्यों पछिताये॥

जब कपास में दो पत्तियां निकलती थीं, तब तुमने खेत को निराया क्यों नहीं? अब कपास चुनते हुए क्यों पछताते हो?

(१३२)

ठाढ़ी खेती गाभिन गाय।
तब जानौं जब मुँह में जाय॥

खड़ी खेती और गाभिन गाय को तभी अपना समझना चाहिये, जब वह अपने काम आवे।

(१३३)

मघा मारै पुरवा सँवारै।
उत्तरा भर खेत निहारै॥

मघा में यदि जड़हन को दो, और पूर्वा में देख-भाल करो, तो उत्तरा में खेत को हरा-भरा देखोगे।

(१३४)

चना सींच पर जब हो आवै।
ताको पहिले तुरत खुँटावै॥

चना जब सिंचाई के लायक हो, तब सबसे पहले उसे तुरन्त खुँटना चाहिये।

(१३५)

गेहूँ बाहे चना दलाये।
धान गाहें मक्की निराये॥
ऊख कसाये।

गेहूं के खेत को बहुत बार जोतने से, चने को खोंटने से, धान को बार-बार पानी देने से, मक्के को निराने से और ऊख को बोने के पहले से पानी में छोड़ रखने से लाभ होता है।

(१३६)

गोहूँ जौ जब पछुवाँ पावै।
तब जल्दी से दायाँ जावै॥

गेहूं और जौ को जब पछुवां हवा मिलता है, तब उसका डंठल जल्दी टूटता है।

(१३७)

पछियाँ हवा ओसावै जोई।
घाघ कहैं घुन कवहुँ न होई॥

पछुवां हवा में यदि नाज ओसाया जाय, तो घाघ कहते हैं कि उनमें घुन कभी न लगेगा।

(१३८)

दो दिन पछुवाँ छः पुरवाई।
गेहूँ जव को लेब दँवाई॥
ताके बाद ओसावै सोई।
भूसा दाना अलगै होई॥

पछुवां हवा में दो दिन में और पूर्वा में छः दिन में मड़ाई करने से दाना और भूसा अलग हो जाता है। इसके बाद जो कोई ओसावेगा, तब उसका भूसा और दाना अलग होगा।

(१३९)

चना अधपका जौ पका काटै।
गेहूँ बाली लटका काटै॥

चने को तब काटना चाहिये, जब वह आधा पका हो; जौ पूरा पक जाने पर और गेहूं को बालें लटक आवें तब काटना चाहिये।

(१४०)

खेती करै अधिया। न बैल न बधिया॥

अपना खेत दूसरे किसान को, जिसके पास खेत न हो, उसे आधे लाभ-हानि पर देकर खेती करानी चाहिये। तब बैल रखने की जरूरत ही न पड़ेगी।

(१४१)

जै दिन भादों बहै पछार।
तै दिन पूस में पड़ै तुसार॥

भादों के महीने में जितने भी दिन पछुवां हवा बहेगी, उतने दिन पौष में पाला पड़ेगा।

(१४२)

ऊख कनाई काहे से। स्वाती क पानी पाये से॥

ईख कना क्यों हो गई? स्वाती का पानी बरस जाने से।

कना = ईख का एक रोग, होता है जिससे डंठल के अंदर के रेशे लाल रंग के हो जाते हैं, और उतनी दूर का रस और मिठास कम हो जाता है।

(१४३)

जेकरे ऊखर लगै लोहाई।
तेहि पर आवै बड़ी तबाही॥

जिसके ईख में लोहाई लग जाती है, उस पर बड़ी तबाही आती है।

(१४४)

नीचे ओद ऊपर बदराई।
घाघ कहैं गेरुई अब धाई॥

खेत पानी से भरा हो और आकाश में बादल हों, तो घाघ कहते हैं कि अब गेरुई (नाज का एक रोग है) दौड़ेगी ।

(१४५)

फागुन मास बहे पुरवाई ।
तब गेहूँ में गेरुई धाई ॥

फागुन के महीने में यदि पूर्वी हवा बहे, तो गेहूँ में गेरुई लगेगी ।

(१४६)

माघ पूस बहे पुरवाई ।
तब सरसों का माहूँ खाई ॥

माघ और पौष में यदि पूर्वी हवा बहे, तो सरसों को माहूँ (एक कीड़ा) खायगा ।

(१४७)

वायु चलैगी दखिना । माँड़ कहाँ से चखना ॥

दक्खिन की हवा चलेगी, तो धान नहीं होगा । माँड़ कहाँ से चखोगे ?

(१४८)

कुम्भे आवै मीने जाय । पेड़ी लागै पालो खाय ॥

फागुन के आरम्भ में गेहूँ में गेरुई रोग लगता है और चैत में चला जाता है । तने से शुरू होता है और पत्तियाँ खा जाता है ।

(१४९)

गोहूँ गेरुई गाँधी धान । बिना अन्न के मरा किसान ॥

गेहूँ में गेरुई और धान में गाँधी रोग लग जाने से किसान पर बड़ी तबाही आती है ।

(१५०)

माघ में बादर लाल धरै ।
तब जान्यो साँचो पथरा परै ॥

माघ में यदि लाल रंग के बादल हों, तो जानना कि सचमुच पत्थर पड़ेगा ।

(१५१)

चना में सरदी बहुत समाई ।
वाको जान गधैला खाई ॥

चने में यदि सरदी बहुत लग जाय, तो उसमें गदहिला (एक कीड़ा) लग जायँगे ।

(१५२)

जब वर्षा चित्रा में होय ।
सगरी खेती जावै सोय ॥

यदि चित्रा नक्षत्र में वर्षा हो, तो सारी खेती बरबाद जायगी ।

(१५३)

मघा में मक्कर पुरवा डाँस ।
उत्तरा में भई सब की नास ॥

मघा नक्षत्र में मकड़ा-मकड़ी और पूर्वा में डाँस पैदा होते हैं और उत्तरा में सब नष्ट हो जाते हैं ।

(१५४)

साँवाँ साठी साठ दिना ।
जब पानी बरसै रात दिना ॥

यदि रात-दिन पानी बरसता रहे तो साँवाँ और साठी (धान) साठ दिन में तैयार हो जाते हैं ।

(१५५)

मघा के बरसे माता के परसे ।
भूखा न माँगे फिर कुछ हर से ॥

मघा के बरसने से और माता के परोसने से ऐसी तृप्ति होती है कि भूखा आदमी फिर भगवान् से कुछ नहीं माँगता ।

(१५६)

चढ़त जो बरसै चित्रा, उतरत बरसै हस्त ।
कितनौ राजा डाँड़ ले, हारे नाहिं गृहस्त ॥

यदि चित्रा नक्षत्र चढ़ते समय बरसे और हस्त उतरते समय, तो इतनी अच्छी पैदावार होगी कि राजा कितना ही दण्ड ले पर गृहस्थ नहीं हारेगा ।

(१५७)

मघा—भुम्मि अघा ।

मघा पृथ्वी को अघा देता है ।

(१५८)

चीत के बरसे तीन जायँ—
मोथी, मास, उखार ।

चित्रा के बरसने से तीन फसलों की हानि है—मोथी, उर्द और ईख की ।

(१५९)

जो बरसे पुनर्बसु स्वाति ।
चरखा चलै न बोलै ताँति ॥

पुनर्वसु और स्वाती नक्षत्र के बरसने से कपास की खेती मारी जाती है । न चरखा चलता है और न रुई धुनी जाती है ।

(१५९)

चटका मघा पटकि गा ऊसर ।
दूध भात में परिगा मूसर ॥

मघा में यदि पानी न बरसे, तो ऊसर भी सूख जायगा । घास न होने से न दूध मिलेगा और पानी न होने से चावल नहीं मिलेगा ।

(१६०)

माघ मास जो परै न सीत ।
महँगा नाज जानियो मीत ॥

माघ के महीने में यदि सरदी न पड़े तो यह समझ लेना चाहिये कि अन्न महँगा होगा ।

(१६१)

माघ पूस जो दखिना चलै ।
तौ सावन के लच्छन भलै ॥

यदि माघ और पौष में दक्खिन की हवा चले तो सावन के लक्षण अच्छे समझने चाहिये।

[१६२]

ऊख करै सब कोई। जो बीच मे जेठ न होई॥

यदि बीच में जेठ जैसा गरमी का महीना न हो, तो ईख की खेती सभी कोई करना चाहेगा।

[१६३]

जो कहुँ मग्घा बरसै जल।
सब नाजों मे होगा फल॥

यदि कहीं मघा में जल बरसे, तो सब अन्नों में फल लगेगा।

[१६४]

हथिया बरसे चित्रा मँडराय।
घर बैठे किसान रिरियाय॥

हस्त नक्षत्र बरस रहा है, चित्र मँडला रहा है अर्थात् बरसने वाला है। किसान खुश होकर घर में बैठा गीत गा रहा है।

[१६५]

हथिया पूछ डोलावै। घर बैठे गोहूँ आवैं॥

हस्त नक्षत्र चलते-चलते भी यदि बरस जाय तो गेहूँ की उपज बिना परिश्रम के बढ़ जायगी।

[१६६]

सावन सूखा स्यारी। भादों सूखा उन्हारी॥

सावन में पानी न बरसे, तो खरीफ की फसल को हानि पहुँचती है और भादों में पानी न बरसे, तो रबी को नुकसान पहुँचता है।

[१६७]

पानी बरसै आधे पूस। आधा गोहूँ आधा भूस॥

आधे पौष में यदि पानी बरसे, तो आधा गेहूँ होगा आधा भूसा। अर्थात् फसल अच्छी होगी।

[१६८]

आवत आदर ना दियो, जात न दीनों हस्त।
ये दोऊ पछतायँगे, पाहुन और गृहस्त॥

आर्द्रा नक्षत्र प्रारम्भ में और हस्त अन्त में न बरसे, तो गृहस्थ पछतायगा और यदि अतिथि को आते हा सम्मान नहीं दिया और विदा होते समय कुछ धन-हाथ में नहीं दिया, तो वह अतिथि पछतायगा।

[१६९]

हस्त बरसे तीन होय, साली सकर मास।
हस्त बरसे तीन जायँ; तिल कोदो कपास॥

हस्त के बरसने से धान, ईख और उड़द की पैदावार अच्छी होती है। लेकिन तिल, कोदों और कपास मारी जाती है।

[१७०]

यक पानी जो बरसै स्वाती।
कुरमिन पहिरै सोने क पाती॥

स्वाती नक्षत्र यदि एक बार भी बरस जाय, तो इतनी अच्छी पैदावार हो कि कुरमिन भी सोने का गहना पहने।

[१७१]

जब बरसेगा उत्तरा। नाज न खावै कुत्तरा॥

उत्तरा बरसेगा तो पैदावार ऐसी अच्छी होगी कि कुत्ते भी अन्न से ऊब जायँगे।

[१७२]

पुक्ख पुनरबस भरे न ताल।
फिर बरसेगा लौटि असाढ़॥

पुष्य और पुनर्वसु नक्षत्रों में यदि ताल न भरा, तो अगले आषाढ़ मे भरेगा।

[१७३]

दिन मे गरमी रात मे ओस।
कहैं घाघ वर्षा सौ कोस॥

यदि दिन में गरमी पड़े और रात में ओस पड़े, तो घाघ कहते हैं कि वर्षा बड़ी दूर है।

[१७४]

लगे अगस्त फुले बन कासा।
अब छोड़ो बरखा की आसा॥

अगस्त तारा उदय हुआ और बन में कास फूल आये। अब वर्षा की आशा छोड़ो।

तुलसीदास—उदित अगस्त पथ जल सोखा।

[१७५]

एक बूँद जो चैत मे परै।
सहस बूँद सावन मे हरै॥

चैत में यदि एक बूँद भी पानी बरस जाय, तो वह सावन में हजार बूँद हरण कर लेगा। अर्थात् चैत्र में बरसने से सावन में सूखा पड़ेगा।

[१७६]

तपै मृगसिरा जोय। तो बरखा पूरन होय॥

यदि मृगशिरा अच्छी तरह तपे, तो पूरी वर्षा होगी।

[१७७]

जब वहै हड़हवा कोन। तब बनजारा लादै नोन॥

जब पच्छिम-दक्खिन के कोने की हवा बहती है, तब बनजारे को नमक लादना चाहिये। अर्थात् पानी न बरसेगा, नमक के गलने का डर नहीं।

[१७८]

बोली लोखरि फूली कास।
अब नाहीं बरखा कै आस॥

लोमड़ी बोलने लगी और कास में फूल आ गये, अब वर्षा की आशा नहीं।

[१७९]

दूर गुड़ुआ दूर पानी।
नीयर गुड़ुआ नीयर पानी॥

यदि टेक (एक घेरा) चन्द्रमा के चारों ओर दूर होवे, तो वर्षा की आशा दूर समझना चाहिये और यदि नज़दीक होवे, तो वर्षा अति निकट समझी जाती है।

[१८०]

जेठ मास जो तपै निरासा।
तो जानो बरखा की आसा॥

जेठ के महीने में जो अत्यन्त ताप गरमी पड़े, तो वर्षा की आशा है।

[१८१]

करिया बादर जी डरवावै। भूरे बदरे पानी आवै

काला बादल केवल डरावना होता है, पर भूरे रंग के बादल से पानी बरसता है।

[१८२]

दिन का बादर। सूम का आदर॥

दिन का बादल और सूम का आदर दोनों निष्फल होते हैं।

[१८३]

धनुष पड़ै बंगाली। मेह साँझ या सकाली॥

बंगाल की तरफ इन्द्रधनुष निकले, तब वर्षा बहुत निकट समझनी चाहिये। या तो शाम को बरसेगी, या सबेरे।

[१८४]

सब दिन बरसै दखिना बाय।
कभी न बरसै बरखा पाय॥

दक्षिण से चलनेवाली हवा सब दिनों में पानी बरसाती है, पर वर्षा-काल में नहीं।

[१८५]

पूरब के बादर पच्छिम जावैं।
पतली पकावै मोटी पकाय॥
पछुवाँ बादर पुरब क जावैं।
मोटी पकावै पतली पकाय॥

पूरब के बादल यदि पश्चिम को जावें, तो यदि पतली रोटी पकाते हो तो मोटी पकाओ। क्योंकि पानी बरसेगा और मन होगा।

यदि पश्चिम के बादल पूरब को जावें, तो यदि मोटी पकाते हो तो पतली पकाओ। क्योंकि पानी नहीं बरसेगा। इसलिये किफ़ायत से खाओ।

[१८६]

ढोंढ़ी बोलें जाय अकास।
अब नाहीं बरखा कै आस॥

बन मुर्गे यदि आकाश में उड़कर बोलें, तो वर्षा की आशा नहीं।

[१८६]

लाल पियर जब होय अकास।
तब नाहीं बरखा कै आस॥

वर्षाकाल में यदि आकाश लाल-पीला हो जाय, तो वर्षा की आशा न करनी चाहिये।

[१८६]

पुख्य पुनर्बस भरे न ताल।
तो फिर भरिहैं अगली साल॥

यदि पुष्य और पुनर्वसु में ताल न भरा, तो अगले साल भरेगा।

[१८७]

रात दिना घमछाहीं।
घाघ कहैं बरखा अब नाहीं॥

कभी घाम हो, कभी बदली, तो घाघ कहते हैं कि अब वर्षा नहीं है।

[१८८]

रात निबद्दर दिन का घटा।
घाघ कहैं ये बरखा हटा॥

रात को आकाश खुला रहे और दिन में घटा घिरी रहे, तो घाघ कहते हैं कि वर्षा गई।

[१८९]

दिन का बद्दर रात निबद्दर।
बहै पुरवैया झब्बर झब्बर॥
घाघ कहैं कुछ होनी होई।
कुँवा के पानी धोबी धोई॥

दिन को बादल हों, रात को बादल न रहें और पूर्वी हवा झब्बर झब्बर करके बहे, तो घाघ कहते हैं कि कुछ बुरा होनहार है। काल पड़ता है, सूखा पड़ेगा, और धोबी कुएँ के पानी से कपड़े धोयेगा।

[१९०]

पूरब धनुही पच्छिम भान।
घाघ कहैं बरखा नियरान॥

सूर्य का अस्त यदि पूर्व में इन्द्रधनुष निकले, तो घाघ कहते हैं कि वर्षा निकट है।

[१९१]

वायू में जब वायू समाय।
कहैं घाघ जल कहाँ समाय॥

यदि एक ही समय आमने-सामने की दो हवा चले, तो घाघ कहते हैं कि पानी कहाँ समायेगा? अर्थात् बड़ी वृष्टि होगी।

[१९२]

उत्तर चमकै बीजली, पूरब बहनो बाउ।
घाघ कहैं भड्डर से, बरधा भीतर लाउ॥

पूरब की हवा चल रही हो और उत्तर की ओर बिजली चमक रही हो तो घाघ भड्डर से कहते हैं कि बैलों को छप्पर के नीचे लाओ। अर्थात् पानी जल्दा ही बरसेगा।

[१९३]

सावन मास बहै पुरवाई।
बरदा बेंचि लिहा धेनु गाई॥

सावन में यदि पूर्वी हवा बहे, तो बैल बेचकर गाय ले लेना। क्योंकि वर्षा न होगी और अकाल पड़ेगा।

[१९४]

जेठ में जरै माघ मे ठरै।
तब जीभी पर रोड़ा परै॥

जेठ की धूप मे जलने से और माघ की सरदी में ठिठुरने से ईख की खेती होती है और तब किसान की जीभ पर गुड़ का रोड़ा पड़ता है।

[१९५]

धान गिरै सुभागे का। गेहूँ गिरै अभागे का॥

धान भाग्यवान् का गिरता है और गेहूं अभागे का।

[१९६]

मंगलवारी होय दिवारी।
हँसैं किसान रोवैं बैपारी॥

यदि दीवाली मंगल को पड़े, तो किसान हँसेगा और व्यापारी रोवेगा।

[१९७]

ऊंचे चढ़िके बोला मँडुवा।
सब नाजों का मैं हूँ भँडुवा॥
आठ दिना मुझको जो खाय।
भले मर्द से उठा न जाय॥

मडुवा ऊँचे खड़े होकर बोला—मैं सब अन्नों में भँडुवा हू। मुझे यदि कोई आठ दिन भी खाय, तो वह कैसा ही मर्द हो, इतना निर्बल हो जायगा कि उससे उठा नहीं जायगा।

[१९८]

जौ तेरे कुनबा घना। तो क्यों न बोये चना॥

तुम्हारे परिवार मे यदि अधिक प्राणी हैं, तो तुमने चना क्यों नहीं बोया?

[१९९]

मकड़ी घासा पूरा जाला।
बीज चने का भरि भरि डाला॥

जब मकड़ी घास पर जाला तनने लगे, तब चने का बीज बोना चाहिये।

[२००]

उर्द मोथी की खेती करिहौ।
कूँडिया तोर उसर मे धरिहौ॥

उर्द और मोथी की खेती करोगे तो कूँड़ा (मिट्टी का घड़ा, जिसमे किसान लोग अन्न रखते हैं) या कुरिया (खेत की रखवाली के लिये फूस का छोटा-सा छप्पर) तोड़कर तुमको ऊसर मे रखना पड़ेगा। क्योंकि उर्द और मोथी की खेती ऊसरवाली जमीन में अधिक होती है। अथवा उर्द और मोथी के भरोसे रहोगे, तो तुमको अपना कूँड़ा फोड़कर फेंकना पड़ेगा।

[२०१]

जहँवा देखिहा लोह बैलिया।
तहँवा दीहा खोलि थैलिया॥

जहां लाल रंग का बैल देखना, वहां जल्दी थैला खोल देना। अर्थात् उसे जल्द खरीद लेना।

[२०२]

मत कोई लीजौ मुसरहा बाहन।
खसम मारि के डालै पायन॥

मुसरहा बैल कोई मत खरीदना। यह ऐसा मनहूस होता है कि मालिक को मारकर पैरों तले डाल लेता है।

[२०३]

समधर जोते पूत चरावै।
लगते जेठ भुसौला छावै॥
भादों मास उठे जो गरदा।
बीस बरस तक जोतो बरदा॥

यदि बैल को समतल खेत मे जोते, किसान का बेटा उसे चरावे, जेठ लगते ही भूसा रखने का घर छा दे और बैल के बैठने की जगह ऐसी सूखी रक्खे कि भादों में वहाँ धूल उड़े, तो बीस बरस तक बैल जोता जा सकता है।

[२०४]

अगहन मे सरवा भर। फिर करवा भर॥

अगहन में फसल के लिये एक कटोरा पानी दूसरे समय के एक घड़े भर पानी के बराबर लाभदायक है।

[२०५]

धनि वह राजा धनि वह देस।
जहवां बरसै अगहन मेस॥
पूस में दूना माघ सवाई।
फागुन बरसै घरौं से जाई॥

वह राजा और देश धन्य है, जहां अगहन के अन्त मे वृष्टि हो। पौष में बरसने से अन्न दूना उपजता है और माघ में सवाया। पर फागुन में बरसने से घर का अन्न भी चला जाता है।

[२०६]

सिंहा गरजै। हथिया लरजै॥

सिंह नक्षत्र के गरजने से हस्त मे वर्षा कम होती है।

[२०७]

सावन सुक्ला सत्तमी, गगन स्वच्छ जो होय।
कहै घाघ सुन घाघिनी, पुहुमी खेती खोय॥

सावन शुक्ला सप्तमी को यदि आकाश साफ हो, तो घाघ घाघिनी से कहते हैं कि पृथ्वी पर की खेती नष्ट हो जायगी।

[२०८]

रोहिनि बरसे मृग तपे, कुछ कुछ अद्रा जाय।
कहैं घाघ घाघिन से, स्वान भात नहिं खाय॥

रोहिणी बरसे मृगशिरा तपे और कुछ-कुछ आर्द्रा भी बरस दे, तो ऐसी पैदावार हो कि कुत्ते भी भात से ऊब जावें।

[२०९]

माघा मकड़ी पुरवा डास।
उत्रा मे है सबकी नास॥

मघा में मकड़ी और पूर्वा में डांस पैदा होते हैं और उत्तरा में सब नष्ट हो जाते हैं।

[२१०]

मेदिनि 'मेघा भइँसि किसान।
मोर पपीहा घोड़ा धान॥
बाढ्यो मच्छ लता लपटानी।
दस सुखी जब बरसै पानी॥

पृथ्वी, मेढक, भैंस, किसान, मोर, पपीहा, घोड़ा, धान, मछली और लता, ये दस पानी बरसने से सुखी होते हैं।

[२११]

छीपा छेड़ी ऊट कोंहार।
पीलवान और गाड़ीवान॥
आक जवासा बेस्वा बानी।
दस मलीन जब बरसै पानी॥

रंगरेज, धोबी, ऊँट, कुम्हार, महावत, गाड़ीवान्, मदार, जवासा, वेश्या और बनिया, ये दस पानी बरसने पर दुखी हो जाते हैं।

[२१२]

आकर कोदो नीम जवा।
गादर गेहूँ बेर चना॥

यदि आकर की फसल अच्छी हो तो कोदो, नीम की हो तो जौ, गादर की हो तो गेहूँ और बेर की हो तो चना अच्छा होगा।

[२१३]

आगे की खेती आगे आगे।
पीछे की खेती भागे जागे॥

जो आगे खेत बोयेगा, उसकी पैदावार भी सब से आगे रहेगी। पीछे बोने वाले की पैदावार भाग्य के जागने पर अवलम्बित है।

[२१४]

उत्तर चमकै बीजली, पूरब बहै जु बाव।
घाघ कहैं भड्डर से, बरधा भीतर लाव॥

उत्तर की ओर बिजली चमकती हो और पूर्वा हवा चलती हो, तो घाघ भड्डरी से कहते हैं कि बैलों को छप्पर के नीचे लाओ। अर्थात् पानी बरसेगा।

[२१५]

छिन पुरवैया छिन पछियावै।
छिन छिन बहै बगूला बाव॥
बादर ऊपर बादर धावै।
कहै घाघ पानी बरसावै॥

क्षण में पूर्व की हवा चले, क्षण में पश्चिम की, बवण्डर बवण्डर उड़े, और बादल के ऊपर बादल दौड़े तो घाघ कहते हैं कि पानी बरसेगा।

(२१६)

भौआ पौआ बहै बतास।
तब होला बरखा कै आस॥

हवा यदि कभी पश्चिम की कभी पूरब की अथवा वे फिर-फेर की बहे, तब वर्षा की आशा होती है।

(२१७)

अदरा गेल तीनि गेल, सन साठी कपास।
हथिया गेल सब गेल, आगिल पाछिल चास॥

आर्द्रा न बरसे तो सन, साठी और कपास की खेती नष्ट हो जाती है। और हथिया न बरसे, तो पीछे और आगे दोनों की खेती नष्ट हो जाती है।

(२१८)

सावन क पछुवाँ दिन दुइ चार।
चूल्ही क पाछा उपजै 'सार॥

सावन में यदि दो-चार दिन भी पछुवाँ चले, तो मौसम ऐसा अच्छा हो कि चूल्हे के सिरहाने भी फसल उत्पन्न हो। अर्थात् अत्यन्त रूखी जगह में भी खेती हो।

(२१९)

अदरा माहिं जो बोवइ साठी।
दुख के मार निकालइ लाठी॥

यदि आर्द्रा में साठी धान बोओगे, तो इतनी अच्छी फसल होगी कि दुःख को लाठी से मार कर भगा सकोगे।

[२२०]

आदि न बरसे अदरा, हस्त न बरसे निदान।
कहै घाघ सुनु भड्डरी, भये किसान पिसान॥

आर्द्रा नक्षत्र शुरू में यदि न बरसे और हस्त अन्त में, तो किसान बेचारे पिसान (आटा, चूर) हो जायँगे।

[२२१]

चैत के पछुवा भादों जला।
भादों पछुवाँ माघ क पला॥

चैत में पछुवाँ बहे, तो भादों में जल बहुत होगा। भादों में पछुवाँ बहे, तो माघ में पाला पड़ेगा।

[२२२]

कांसी कुसी चौथ क घान।
अब का रोपवा धान किसान॥

कास-कुस फूल आये, भादों की उजाली चौथ भी हो गई। अब धान क्यों रोपोगे?

[२२३]

विधि का लिखा न होवै आन।
बिना तुला ना फूटे धान॥
सुख सुखराती देवउठान।
तेकरे बरहे करो नेमान॥
तेकरे बरहे खेत खरिहान।
तेकरे बरहे कोठिले धान॥

ब्रह्मा का लिखा कुछ बदल नहीं सकता। तुला ही में धान फूटेगा। सुख की रात दीवाली और देवोत्थान एकादशी बीत जाने पर उसके बारहवें दिन नवान्न ग्रहण करना चाहिये। उसके बारहवें दिन धान को काटकर खलियान में रखना चाहिये। उसके बारहवें दिन तो कोठिला में रख ही देना चाहिये।

[२२४]

चिरैया में चीर फार।
असरेखा में टार टार॥
मघा में काँदो सार॥

चिरैया नक्षत्र में यदि जमीन को थोड़ा-सा भी खोदकर धान लगा दे तो फसल अच्छी होगी। असरेखा में जोतकर लगाना पड़ेगा तब धान होगा। और मघा में लगाया जायगा तो खाद पास डालकर खेत अच्छी तरह तैयार होगा, तभी होगा।

[२२५]

बाउ चलेगी दखिना। मांड़ कहा से चखना॥

दखिन की हवा चलेगी, तो धान न होगा। मांड़ कहां से चखोगे?

[२२६]

बाउ चलेगी उत्तरा। मांड़ पियेंगे कुत्तरा॥

उत्तर की हवा चलेगी, तो धान की फसल ऐसी अच्छी होगी कि कुत्ते मांड़ पियेंगे।

[२२७]

बाउ चलेगी पुरवा। पियो मांड़ का कुरवा॥

पूर्व की हवा चलेगी, तो धान की उपज अच्छी होगी। फिर तो खूब मांड़ पीना।

[२२८]

चमके पच्छिम उत्तर ओर।
तब जान्यो पानी है जोर॥

यदि पश्चिम और उत्तर के कोने पर बिजली चमके, तो समझना कि पानी बहुत बरसेगा।

[२२९]

पहला पवन पुरब से आवे।
बरसे मेघ अन्न भरि आवे॥

आषाढ़ में पहली हवा यदि पूर्व से बहे, तो पानी बहुत बरसेगा और अन्न की उपज बहुत होगी।

[२३०]

मघा गरजे। हथिया लरजे॥

यदि मघा नक्षत्र में बादल गरजता है तो हस्त में बरसात नहीं होती।

[२३१]

आर्द्रा चौथ। मघ पंचक॥

आर्द्रा नक्षत्र बरसता है तो आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य और अश्लेषा चारों नक्षत्र बरसते हैं। और जब मघा नक्षत्र बरसता है तो मघा, पूर्वा उत्तरा, हस्त और चित्रा पाँचों नक्षत्र बरसते हैं।

[२३२]

कातिक सुद एकादसी, बादल बिजुली होय।
तो असाढ़ मे भड्डरी, बरखा चोखी होय॥

कार्तिक शुक्ला एकादशी को यदि बादल हों और बिजली चमके, तो भड्डरी कहते हैं कि आषाढ़ में निश्चय वर्षा होगी।

[२३३]

कातिक मावस देखो जोसी।
रवि सनि भौमवार जो होसी॥
स्वाति नखत अरु आयुष जोगा।
काल पड़ै अरु नासैं लोगा॥

ज्योतिषी को कार्तिक अमावस्या को देखना चाहिये, यदि उस दिन रविवार शनिवार और मङ्गलवार होगा और स्वाती नक्षत्र और आयुष्य योग होगा तो अकाल पड़ेगा और मनुष्यों का नाश होगा।

[२३४]

कातिक सुद पूनो दिवस, जो कृतिका रिख होई।
तामे बादर बीजुरी, जो संजोग सों होइ॥
चार मास तौ वर्षा होसी।
भली भाति यो भाखैं जोसी॥

कार्तिक सुदी पूर्णिमा को यदि कृतिका नक्षत्र हो और उसमें संयोग से बादल और बिजली भी हों, तो समझना चाहिये कि चार महीने वर्षा अच्छी होगी।

[२३५]

मार्ग महीना माहिं जो, जेठा तपै न मूर।
तो इमि बोलै भड्डली, लिपटै सातो तूर॥

फागुन के महीने में यदि न रेवती नक्षत्र तपे और न मूल, तो भड्डरी कहते हैं कि सभी प्रकार के अन्न पैदा हों।

[२३६]

मार्ग बदी आठे घटा, बिज्जु समेती जोइ।
तौ सावन बरसै भलौ, साखि सवाई होई॥

अगहन बदी अष्टमी को यदि बिजली समेत घटा हो, तो सावन में वर्षा अच्छी होगी और उपज सवाई होगी।

[२३७]

पौस अंध्यारी सत्तमी, जो पानी नहिं देइ।
तौ आर्द्रा बरसै सही, जल थल एक करेइ॥

पौष बदी सप्तमी को यदि पानी न बरसे, तो आर्द्रा अवश्य बरसेगा और जल-थल को एक कर देगा।

[२३८]

पौष अंध्यारी सत्तमी, बिन जल बादर जोय।
सावन सुदि पूनो दिवस, बरषा अवसिहिं होय॥

पौष बदी सप्तमी को यदि बादल हों, पर पानी न बरसे, तो सावन सुदी पूर्णिमा को वर्षा अवश्य होगी

[२३९]

पौष मास दसमी दिवस, बादल चमकै बीज।
तौ बरसै भर भादवो, साधो खेलो तीज॥

पौष बदी दसमी को यदि बादल हो और बिजली चमके, तो भादों भर वर्षा होगी। हे सज्जनो! आनन्द से तीज का त्योहार मनाओ।

[२४०]

पौष अंध्यारी तेरसै, चहुदिसि बादर होय।
सावन पूनो मावसै, जलधर अतिहीं जोय॥

यदि पौष बदी तेरस को आकाश में चारों ओर बादल दिखाई पड़ें, तो सावन में पूर्णिमा को और अमावास्या को वृष्टि बहुत होगी।

[२४१]

पौष अमावस मूल को, सरसै चारों बाय।
निश्चय बाधो झोपड़ा, बरषा होय सिवाय॥

पौष के अमावस को यदि मूल नक्षत्र हो और चारों ओर की हवा चले, तो वर्षा बड़े जोर की होगी। छप्पर-छप्पर छा रक्खो।

[२४२]

सनि आदित औ मंगल, पौष अमावस होय।
दुगुनो तिगुनो चौगुनो, नाज महँगो होय॥

यदि पौष की अमावास्या को शनिवार, रविवार या मङ्गल पड़े, तो इसी क्रम से अन्न दोगुना तिगुना और चौगुना महँगा होगा।

[२४३]

सोम सुक्र सुरगुरु दिवस, पौष अमावस होय।
घर घर बजे बधावड़ा, दुखी न दीखै कोय॥'

यदि पौष की अमावास्या को सोमवार, शुक्रवार या बृहस्पतिवार पड़े, तो घर-घर बधाई बजेगी और कोई दुखी न दिखाई देगा।

[२४४]

पूस अंधेरी तेरसी, चहुंदिसि बादल होय।
सावन पूरो मावसै, जल धरती में होय॥

पौष की अंधेरी, त्रयोदशी को यदि चारों ओर बादल दिखाई पड़ें, तो सावन की पूर्णिमा और अमावास्या को पृथ्वी पर पानी रहेगा।

[२४५]

मार्ग बदी आठैं घन दरसै।
सो सम्पा भरि सावन बरसै॥

अगहन बदी अष्टमी को यदि बादल हो, तो सावन भर पानी बरसेगा।

[२४६]

पूस मास दसमी अंधियारी।
बदली घोर होय अधिकारी॥
सावन बदि दसमी के दिवसे।
भरे मेघ चारो दिसि बरसे॥

पौष बदी दसमी को यदि घोर-घोर की घटा घिरी हो, तो सावन बदी दसमी को चारों ओर वर्षा खूब होगी।

[२४७]

कर्क सुवावै कातरी, सिंह अबोनो जाय।
ऐसा बोलै भड्डरी, कीड़ा फिर फिर खाय॥

कर्क राशि में कातरा बोवे और सिंह में न बोवे, तो भड्डरी कहते हैं कि उसमें कीड़ा बार-बार लगेगा।

[२४८]

मंगल सोम होय सिवराती।
पछिवां बाय बहै दिन राती॥
घोड़ा रोड़ा टिड्डी उड़ैं।
राजा मरै कि परती पड़ै॥

यदि शिवरात्रि मङ्गल या सोमवार को पड़े और उस दिन पच्छिम की हवा बहती रहे, तो समझना कि घोड़ा (एक पतिंगा), रोड़ा और टिड्डा उड़ेंगे, तथा राजा की मृत्यु होगी या सूखा पड़ेगा, जिससे खेत परती पड़ा रहेगा।

[२४९]

काहे पंडित पढ़ि पढ़ि मरो।
पूस अमावस की सुधि करो॥
मूल बिसाखा पूरबाषाढ़।
झूरा जान लो बहिरे ठाढ़॥

हे पंडित! बहुत पढ़पढ़कर क्यों जान देते हो? पौष की अमावस को देखो। यदि उस दिन मूल, विशाखा या पूर्वाषाढ़ नक्षत्र हो, तो समझना कि सूखा घर के बाहर खड़ा है। अर्थात् सूखा पड़ेगा।

[२५०]

पूस उजेली सप्तमी, अष्टमी नौमी गाज।
मेघ होय तो जान लो, अब सुभ होइहै काज॥

पौष सुदी सप्तमी, अष्टमी और नवमी को यदि बादल हों और गरजे, तो समझना कि सब काम सिद्ध होगा अर्थात् सुकाल होगा।

[२५१]

माघ अंधेरी सप्तमी, मेह विज्जु दमकन्त।
मास चारि बरसै सही, मत सोचै तू कन्त॥

माघ बदी सप्तमी को यदि बादल हों और बिजली चमके, तो हे स्वामी! तुम सोच मत करो, चौमासा भर पानी बरसेगा।

[२५२]

नौमी माह अंधेरिया, मूल रिच्छ को भेद।
तौ भादौं नौमी दिवस, जल बरसै बिन खेद॥

माघ बदी नवमी को यदि मूल नक्षत्र हो, तो भादों बदी नवमी को निश्चय पानी बरसेगा।

[२५३]

माह अमावस गर्भमय, जो केहु भांति विचारि।
भादौं की पून्यों दिवस, बरषा पहर जु चारि॥

माघ की अमावास्या यदि वृष्टि के गर्भ से युक्त हो, तो भादों की पूर्णिमा को चार पहर वर्षा होगी।

[२५४]

माघ जु परिवा ऊजली, वादर वायु जु होय।
तेल और सुरही सवै, दिन दिन महँगो होय॥

माघ सुदी प्रतिपदा को यदि हवा चलती रहे और बादल भी हों, तो तेल और घी महँगे होते जायँगे।

[२५५]

माघ उज्यारी दूज दिन, वादर विज्जु समाय।
तो भाखैं यों भड्डरी, अन्न जु महँगी लाय॥

माघ सुदी दूज को यदि बादलों में बिजली समाती दिखाई पड़े, तो भड्डरी कहते हैं कि अन्न महँगा होगा।

[२५६]

माघ उज्यारी तीज को, वादर बिज्जु जु देख।
गेहूँ जौ सचय करौ, महँगो होसी पेख॥

माघ सुदी तृतीया को यदि बादल और बिजली दिखाई पड़े, तो अन्न महँगा होगा। जौ-गेहूँ जमा करो।

[२५७]

माघ उँजेरी पंचमी, परसै उत्तम वाय।
तो जानो ये भादवौ, विन जल कोरौ जाय॥

माघ सुदी पचमी को अच्छी हवा चले, तो समझना कि भादों बिना पानी का सूखा ही जायगा।

[२५८]

माघ छठी गरजै नहीं, महँगो होय कपास।
सातें देखा निर्मली, तो नाहीं कछु आस॥

माघ सुदी छठ को यदि बादल न गरजे, तो कपास महँगा होगा। पर सप्तमी को आकाश बिल्कुल साफ हो, तो कुछ भी आशा नहीं।

[२५९]

माघ सत्तमी ऊजली, बादल मेघ करंत।
तो असाढ़ में भड्डली, घनो मेघ वरसत॥

माघ सुदी सप्तमी को यदि बादल घिर आवे, तो भड्डरी कहते हैं कि आषाढ़ में खूब वर्षा हो।

[२६०]

माघ सुदी जो सत्तमी, विज्जु मेह हिम होय।
चार महीना बरससी, सोक करौ मति कोय॥

माघ सुदी सप्तमी को यदि बिजली चमके, पानी बरसे और सर्दी बहुत पड़े, तो चौमासे भर पानी बरसेगा, कोई चिन्ता मत करो।

[२६१]

माघ जो सातैं ऊजली, आठैं बादर होय।
तो असाढ़ में धूरवा, बरसै जोसी जोइ॥

माघ बदी सप्तमी और अष्टमी को यदि बादल हों, तो आषाढ़ में पानी बरसेगा ज्योतिषी को यह देख रखना चाहिये।

[२६२]

माघ सुदी जो सत्तमी, भौमवार की होय।
तो भड्डर जोसी कहैं, नाजु किरानो लोय॥

यदि माघ सुदी सप्तमी मङ्गलवार को पड़े, तो अन्न में कीड़े लग जायँगे।

[२६३]

माघ सुदी आठैं दिवस, जो कृतिका रिषि होय।
की फागुन रोली हड़ै, की सावन महँगो होइ॥

माघ सुदी अष्टमी को कृत्तिका नक्षत्र हो, तो या तो फागुन में कुसमय पड़ेगा या सावन में अन्न महँगा होगा।

[२६४]

अथवा नौमी निरमली, वादर रेख न जोय।
तौ सरवर भी सूखहीं, महि में जल नहि होय॥

माघ सुदी नवमी को यदि बादल की एक रेखा भी न हो और आकाश स्वच्छ हो, तो पृथ्वी पर कहीं पानी न मिलेगा। तालाब भी सूख जायँगे।

[२६५]

माघ सुदी पून्यो दिवस, चन्द्र निर्मलो जोय।
पसु वेचौ कन संग्रहौ, काल हलाहल होय॥

माघ सुदी पूर्णिमा को यदि चन्द्रमा स्वच्छ हो, अर्थात् आकाश में बादल न हों, तो हे किसान! पशुओं को बेचकर अन्न का संग्रह करो। क्योंकि भयानक अकाल पड़ेगा।

[२६६]

माघ पांच जो हों रविवार।
तो भी जोसी समय विचार।।

माघ में यदि पाँच रविवार पड़ें, तो समय अच्छा होगा।

[२६७]

फागुन वदी सुदूज दिन, बादर होय न बीज।
बरसै सावन भादवा, साधौ खेलो तीज॥

फागुन वदी दूज को यदि बादल हों, पर बिजली न चमके; अथवा न बादल हों न बिजली, तो सावन-भादों दोनों महीनों में वर्षा होगी। हे सज्जनो! आनन्द से तीज का त्योहार मनाओ।

[२६८]

मङ्गलवारी मावसी, फागुन चैती जोय।
पशु बेंचौ कन संग्रहो, अवसि दुकाली होय॥

फागुन और चैत की अमावस यदि मङ्गल को पड़े, तो अकाल पड़ेगा। पशुओं को बेंच डालो और अन्न संग्रह करो।

[२६९]

पाच मंगरी फागुनी, पौष पाच सनि होय।
काल पड़े तब भड्डरी, बीज बवौ मति कोइ॥

यदि फागुन के महीने में पाँच मङ्गल और पौष में पाँच शनिवार पड़े, तो भड्डरी कहते हैं कि अकाल पड़ेगा, कोई बीज मत बोओ।

[२७०]

होली झर को करो विचार।
सुभ अरु असुभ कहा फल सार॥
पच्छिम वायु बहै अति सुन्दर।
समयो निपजै सजल वसुन्धर॥
पूरब दिशि की बहै जो बाई।
कछु भीजै कछु कोरो जाई॥
दक्खिन बाय बहे बध नास।
समया निपजे सनई घास॥
उत्तर बाय बहे दड़बड़िया।
पिरथी अचूक पानी पड़िया॥
जोर झकोरै चारो बाय।
दुखया परजा जीव डराय॥
जोर झलो आकाशै जाय।
तौ पृथ्वी संग्राम कराय॥

होली के दिन की हवा का विचार करो। उसके शुभ और अशुभ फलों का सार बताया जाता है।

पश्चिम की हवा बहे तो बहुत अच्छा है। उससे पैदावार अच्छी होगी और वृष्टि होगी।

पूरब की हवा बहती हो, तो कुछ वृष्टि होगी और कुछ सूखा पड़ेगा।

दक्षिण की हवा बहती हो, तो प्राणियों का बध और नाश होगा। खेती में सनई और घास की पैदावार अधिक होगी।

उत्तर की हवा बहती हो, तो पृथ्वी पर निश्चय पानी पड़ेगा।

यदि चारोंओर का झकोरा चलता हो, तो दुःख पड़ेगा और जीवों को भय होगा।

यदि हवा नीचे से ऊपर को जाय, तो पृथ्वी पर संग्राम होगा।

[२७१]

चैत मास उजियाले पाख।
आठैं दिवस बरसता राख॥
नव बरसे जित बिजली जोय।
ता दिसि काल हलाहल होय॥

चैत सुदी अष्टमी को यदि आकाश से धूल बरसती रहे और नवमी को पानी बरसे, तो जिस दिशा में बिजली चमकेगी, उस दिशा में भयानक दुर्भिक्ष पड़ेगा।

[२७२]

चैत मास दसमी खड़ा, बादर बिजुरी होइ।
तौ जानौ चित मांहि यह, गर्भ गला सब जोइ॥

चैत सुदी दशमी को यदि बदल और बिजली हो, तो यह समझ रखना कि वर्षा का गर्भ गल गया। अर्थात् चौमासे में वृष्टि बहुत कम होगी।

[२७३]

चैत मास दसमी खड़ा, जो कहुं कोरा जाइ।
चौमासे भर बादला, भली भांति बरसाइ॥

यदि चैत सुदी दशमी को बादल न हुआ, तो समझना कि चौमासे भर अच्छी वृष्टि होगी।

[२७४]

चैत पूर्णिमा होइ जो, सोम गुरौ बुधवार।
घर घर होइ बधावड़ा, घर घर मंगलचार॥

चैत्र की पूर्णिमा यदि सोमवार, बृहस्पतिवार और बुधवार को पड़े, तो घर-घर आनन्द की बधाई बजेगी और घर-घर मङ्गलाचार होगा।

[२७५]

असनी गलिया अन्त बिनासै।
गली रेवती जल को नासै॥
भरनी नासै तृनौ सहूतो।
कृतिका बरसै अन्त बहूतो॥

चैत में यदि अश्विनी बरस जाय, तो चौमासे के अन्त में सूखा पड़ेगा। रेवती बरसे, तो वृष्टि होगी ही नहीं। भरणी बरसे तो तृण

का भी नाश हो जायगा। और कृतिका बरसे, तो अन्त में अच्छी वृष्टि होगी।

[२७६]

बादर ऊपर बादर धावै।
कह भड्डर जल आतुर आवै॥

बादल के ऊपर बादल दौड़ने लगें, तब भड्डरी कहते हैं कि जल्दी ही पानी बरसेगा।

[२७७]

असुना गल भरनी गली, गलियो जेष्ठा मूर।
पुरवोषाढ़ा धूल कित, उपजै सातो तूर॥

अश्विनी में वर्षा हुई, भरणी में हुई, ज्येष्ठा और मूल में हुई, तो पूर्वाषाढ़ में कितनी धूल शेष रहेगी? निश्चय ही सातों प्रकार के अन्न उपजेंगे।

[२७८]

कृतिका तो कोरी गई, अद्रा मेंह न बूँद।
तौ यों जानों 'भड्डरी, काल मचावै दूँद॥

कृतिका नक्षत्र कोरा ही चला गया, वर्षा हुई ही नहीं, आर्द्रा में बूँद भी नहीं गिरा। भड्डरी कहते हैं कि निश्चय ही अकाल पड़ेगा।

[२७९]

जो चित्रा में खेलैं गाई।
निहचै खाली साख न जाई॥

यदि कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा—गोवर्द्धन पूजा, अन्नकूट, गो-क्रीड़ा के दिन चित्रा नक्षत्र में चन्द्रमा हो, तो फसल अच्छी होगी।

[२८०]

मृगसिर वायु न बाजिया, रोहिणि तपै न जेठ।
गोरी बीनै कांकरा, खड़ी खेजड़ी हेठ॥

मृगशिर में हवा न चली और जेठ में रोहिणी न तपी, तो वृष्टि न होगी। किसान की स्त्री खेजड़ा (एक वृक्ष) के नीचे खड़ी कंकड़ चुनेगी।

[२८१]

आद्रा तौ बरसै नहीं, मृगसिर पौन न जोय।
तौ जानौ ये भड्डरी, बरखा बूँद न होय॥

चैत में आर्द्रा में वर्षा नहीं हुई और मृगशिर में हवा न चली, तो भड्डरी कहते हैं कि एक बूँद भी बरसात नहीं होगी।

[२८२]

बैसाख सुदी प्रथमै दिवस, बादर बिज्जु करेइ।
दामा बिना बिसाहिजै, पूरा साख भरेइ॥

बैसाख शुक्ल प्रतिपदा को यदि बादल हो और बिजली चमके, तो उस वर्ष ऐसी अच्छी पैदावार होगी कि अन्न बिना मोल के बिकेगा।

[२८३]

अखै तीज तिथि के दिना, गुरु होवै संजूत।
तो भाखै यों भड्डरी, निपजै नाज बहूत॥

बैशाख में अक्षय तृतीया के दिन यदि गुरुवार हो, तो भड्डरी कहते हैं कि अन्न बहुत उपजेगा।

[२८४]

जेठ बदी दसमी दिना, जो सनिबासर होइ।
पानी होय न धरनि पर, बिरला जीवै कोइ॥

जेठ कृष्ण दशमी को यदि शनिवार पड़े, तो पृथ्वी पर पानी न पड़ेगा अर्थात् वर्षा न होगी और शायद ही कोई जीवित रहे।

[२८५]

जेठ उँजारे पक्ख में आद्रादिक दस रिच्छ।
सजल होयँ निरजल कह्यो, निरजल सजल प्रत्यच्छ॥

जेठ सुदी में यदि आर्द्रा आदि दस नक्षत्र बरस जायँ, तो चौमासे में सूखा पड़ेगा और यदि न बरसे, तो चौमासे में पानी बरसेगा।

(२८६)

स्वाति बिसाखा चित्रा, जेठ सु कोरा जाय।
पिछलो गरभ गल्यो कहो, बनी साख मिट जाय॥

यदि स्वाती, विशाखा और चित्रा जेठ में सूखा जाय, अर्थात् इनमें बादल न हों, तो वृष्टि का पिछला गर्भ गला हुआ समझना चाहिये। इससे खेती नष्ट हो जायगी।

(२८७)

तपा जेठ मे जो चुइ जाय।
सभी नखत हलके परि जायँ॥

जेठ में मृगशिर के अन्त के दस दिन को, दसतपा कहते हैं। यदि दसतपा में पानी बरस जाय, तो पानी के सभी नक्षत्र हलके पड़ जायँगे।

(२८८)

जेठ उज्यारी तीज दिन, आद्रा रिष बरसन्त।
जोसी भाखै भड्डरी, दुर्भिछ अवसि करन्त॥

जेठ सुदी तृतीया को यदि आर्द्रा नक्षत्र बरसे, तो भड्डरी ज्योतिषी कहते हैं कि अवश्य दुर्भिक्ष पड़ेगा।

[२८९]

चैत मास जो बीज बिजोवै।
भरि बैसाखहि टेसू धोवै॥

यदि चैत के महीने में बिजली चमके, तो बैसाख के महीने में इतना पानी बरसे कि टेसू के फूल धुल जायँगे।

[२९०]

जेठ मास जो तपै निरासा।
तो जानो बरषा की आसा॥

जेठ के महीने में खूब गरमी पड़े, तो वर्षा की आशा करनी चाहिये।

[२९१]

उतरे जेठ जो बोले दादर।
कहैं भड्डरी बरसै बादर॥

यदि जेठ उतरते ही मेंढक बोलने लगें, तो वृष्टि जल्दी होगी।

[२९२]

धुर आषाढ़ी प्रतिपदा, जो अम्बर गरजन्त।
सोमाँ सुकराँ सुरगुराँ, तो भारी जल होय॥

आषाढ़ वदी में यदि लगातार थोड़ी-थोड़ी दूर पर सोमवार' शुक्र और बृहस्पति के दिन बिजली चमके तो पानी बहुत बरसेगा।

[२९३]

नवैं असाढ़े बादला, जो गरजै घनघोर।
कहैं भड्डरी जोतिसी, काल पड़ै चहुंओर॥

आषाढ़ कृष्ण नौमी को यदि बादल घोर को गरजें तो भड्डरी ज्योतिषी कहते हैं कि चारों ओर अकाल पड़ेगा।

[२९४]

सुदि असाढ़ में बुध को, उदै भयो जो देख।
सुक्र अस्त सावन लखो, महाकाल अवरेख॥

आषाढ़ शुक्ल में यदि बुध उदय हों और सावन में शुक्र अस्त हों, तो महा अकाल पड़ेगा।

[२९५]

सुदि असाढ़ की पचमी, गरज धमधमो होय।
तो यों जानो भड्डरी, मघुरी मेघा जोइ॥

आषाढ़ शुक्ल की पचमी को यदि बिजली चमके, तो भड्डरी कहते हैं कि बरसात अच्छी होगी।

[२९६]

सुदि असाढ़ नौमी दिना, बादर भीनो चन्द।
जानै भड्डर भूमि पर, मानो होय अनन्द॥

आषाढ़ शुक्ल नवमी को यदि चन्द्रमा के ऊपर हलका बादल छाया रहे तो भड्डरी कहते हैं कि पृथ्वी पर आनन्द होगा।

[२९७]

चित्रा स्वाति विसाखड़ी, जो बरखै आषाढ़।
चलौ नरा विदेसड़ो, परिहै काल सुगाढ़॥

यदि आषाढ़ में चित्रा, स्वाती और विशाखा नक्षत्र बरसें, तो भयानक अकाल पड़ेगा? मनुष्यों को विदेश ही में शरण मिलेगी।

[२९८]

आसाढ़ी पूनो दिना, बादर भीनो चन्द।
सो भड्डर जोसी कहै, सकल नरां आनन्द॥

आषाढ़ पूर्णिमा को यदि चन्द्रमा बादलों से ढका हो, तो भड्डरी कहते हैं कि सब मनुष्य सुख पावेंगे।

[२९९]

आसाढ़ी पूनो दिना, निर्मल ऊगै चन्द।
पीव जाव तुम मालवे, अटै छै दुख द्वन्द॥

आषाढ़ की पूर्णिमा को यदि चन्द्रमा स्वच्छ उदय हो, तो हे स्वामी! तुम मालवे चले जाना, यहां कठिन दुःख पड़ेगा।

(३००)

आसाढ़ी पूनो दिना, गाज बीज बरसंत।
नासै लच्छन काल का, आनँद मानो संत॥

आषाढ़ की पूर्णिमा को यदि बादल गरजे, बरसे और बिजली चमके, तो सुकाल का लक्षण है। खूब आनन्द होगा।

(३०१)

जो बदरी बादर मा खमसे।
कहैं भड्डरी पानी बरसे॥

बादल से बादल मिलें, तो भड्डरी कहते हैं कि पानी बरसेगा।

(३०२)

आसाढ़ मास आठें अंधियारी।
जो निकले चन्दा जलधारी॥
चन्दा निकले बादल फोड़।
साढ़े तीन मास बरखा का जोग॥

आषाढ़ वदी अष्टमी को यदि चन्द्रमा बादल में निकले, तो साढ़े-तीन महीने वर्षा होगी।

[३०३]

आगे रवि पीछे चलै, मंगल जो आसाढ़।
तौ बरसै अनमोल ही, पृथी अनन्दै बाढ़॥

आषाढ़ में यदि सूर्य आगे और मङ्गल पीछे हो, तो पानी खूब बरसेगा और पृथ्वी पर आनन्द बढ़ेगा।

[३०४]

आर्द्रा भरणी रोहिणी, मघा उत्तरा तीन।
इन मंगल आंधी चलै, तबलौं बरखा छीन॥

यदि मङ्गल के दिन आर्द्रा, भरणी, रोहिणी और तीनों उत्तरा नक्षत्रों में आंधी चले, तो बरसात कम समझना।

[३०५]

असाढ़ मास पूनो दिवस, बादल घेरे चन्द।
तो भड्डर जोसी कहैं, होवै परम अनन्द॥

आषाढ़ की पूर्णमासी को यदि चन्द्रमा बादलों से घिरा रहे, तो भड्डर कहते हैं कि परम आनन्द होगा। अर्थात् वर्षा अच्छी होगी।

[३०६]

आगे मंगल पीछे भान।
बरषा होवै ओस समान॥

जब मङ्गल आगे हो और सूर्य पीछे, तब वर्षा ओस के समान अर्थात् बहुत थोड़ी होगी।

[३०७]

आगे मेघा पीछे भान।
बरषा होवै ओस समान॥

आगे मघा और पीछे सूर्य हो, तो वर्षा ओस के समान होगी।

[३०८]

आगे मेघा पीछे भान।
पानी पानी रटै किसान॥

आगे मघा और पीछे सूर्य हो, तो सूखा पड़ेगा। किसान पानी-पानी की रट लगायेगा।

[३०६]

रात निर्मली दिन को छांहीं।
कहैं भड्डरी पानी नाहीं॥

रात निर्मल हो और दिन में बादलों की छाया दिखाई पड़े, तो भड्डरी कहते हैं कि अब वर्षा न होगी।

[३१०]

मंगल रथ आगे चले, पीछे चलै जो सूर।
मन्द वृष्टि तब जानिये, पड़सी सगलै मूर॥

यदि मङ्गल आगे हो और सूर्य पीछे, तो वृष्टि कम होगी और सर्वत्र सूखा पड़ेगा।

[३११]

आगे मंगल पीठ रवि, जो असाढ़ के मास।
चौपट नासै चहुं दिसा, विरलै जीवन आस॥

आषाढ़ में यदि मङ्गल आगे हो, और सूर्य पीछे, तो चारों ओर चौपायों का नाश होगा और शायद ही किसी के जीने की आशा हो।

रोहिनि जो बरसै नहीं, बरसै जेठ नित मूर।

[३१२]

एक बूँद स्वाती पड़ै, लागै तीनों तूर॥

यदि रोहिणी न बरसे, पर जेठा और मूल बरस जाय और एक बूँद स्वाती की भी पड़ जाय, तो तीनों फसलें अच्छी होंगी।

[३१३]

सावन पहली चौथ में, जो मेघा बरसाय।
तो भाखैं यों भड्डली, साख सवाई जाय॥

सावन बदी चौथ को यदि बादल बरसे, तो भड्डरी कहते हैं कि उपज सवाई होगी।

[३१४]

सावन पहिले पाख में, दसमी रोहिणि होइ।
महँग नाज अरु अल्प जल, बिरला बिलसै कोइ॥

श्रावण के पहले पक्ष की दशमी को यदि रोहिणी हो, तो अन्न महँगा होगा, जल कम बरसेगा और शायद ही कोई सुख भोगे।

[३१५]

सावन वदि एकादसी, जेती रोहिणि होय।
तेतो समया ऊपजै, चिन्ता करो न कोय॥

श्रावण कृष्ण एकादशी को जितने दंड रोहिणी होगी, उसी परिमाण से उपज होगी। व्यर्थ चिन्ता कोई मत करो।

[३१६]

जो कृत्तिका तो किरवरो, रोहिणि होय सुकाल।
जो मृगसिर आवै तहां, निहचै पड़ै दुकाल॥

यदि सावन बदी द्वादशी को कृत्तिका हो, तो अन्न का भाव साधारण रहेगा। रोहिणी हो, तो सुकाल होगा और यदि मृगशिर पड़े, तो निश्चय दुर्भिक्ष पड़ेगा।

[३१७]

सावन सुकला सत्तमी, छिपि कै ऊगै भान।
तब लग देव बरीसिहैं, जब लग देव-उठान॥

सावन सुदी सप्तमी को यदि इतनी बदली हो कि उदय होते समय सूर्य दिखाई न दे, बाद को दिखाई दे, तो समझना चाहिये कि वर्षा देवोत्थान एकादशी तक होगी।

[३१८]

सावन केरे प्रथम दिन, उवत न दीखै भान।
चार महीना बरसै पानी, याको है परमान॥

सावन की प्रतिपदा को यदि ऐसी बदली हो कि उदय के समय सूर्य न दिखाई पड़े, तो निश्चय जानो कि चार महीने तक वृष्टि होगी।

[३१९]

पुरवा बादर पच्छिम जाय।
बासे वृष्टि अधिक बरसाय॥
जो पच्छिम से पूरब जाय।
वर्षा बहुत न्यून हो जाय॥

पूर्व दिशा से यदि बादल पश्चिम को जायँ, तो वृष्टि अधिक होगी। यदि पश्चिम से बादल पूर्व को जायँ, तो वर्षा बहुत न्यून होगी।

[३२०]

सावन बदी एकादसी, बादल ऊगै सूर।
तो यों भाखै भड्डरी, घर घर बाजै तूर॥

सावन बदी एकादशी को यदि उदय होते हुये सूर्य पर बादल रहें, तो भड्डरी कहते हैं कि सुकाल होगा और घर-घर आनन्द की बंशी बजेगी।

[३२१]

चित्रा स्वाति विसाखहूँ, सावन नहिं बरसंत।
हाली अन्नै संग्रहो, दूनो मोल करन्त॥

यदि चित्रा, स्वाती और विशाखा भी सावन में न बरसे, तो जल्दी अन्न का संग्रह कर लो। क्योंकि भाव दूना महँगा हो जायगा।

[३२२]

करक 'जु' भीजै कांकरो, 'सिंह' अभीनो जाय।
ऐसा बोलै भड्डली, टीड़ी फिरि फिरि खाय॥

सावन में जब कर्क राशि पर सूर्य हो, तब यदि इतनी अल्प वृष्टि हो कि केवल कंकड़ ही भीजे और सिंह राशि भी सूखा ही जाय, तो भड्डरी कहते हैं टीड़ी पैदा होंगी और बार-बार फसल को खायेंगी।

[३२३]

मीन सनीचर कर्क गुरु, जो तुल मंगल होय।
गोहूँ गोरस गोरड़ी, बिरला बिलसै कोय॥

यदि श्रावण की पंचमी को बृहस्पति और शुक्र का मेल हो, तो मेह, दूध और अन्न की उत्पत्ति अच्छी और सस्ते दामों में हों।

[३२८]

सावन कृष्णा पक्ष में देखो।
गुरु को मंगल होय विसेखो॥
कर्क रासि पर शुक्र जो जावै।
सिंह रासि ने शुक्र सुहावै॥
ताल मा सोखै बरसै धूर।
कहूँ न उपजै सातो तूर॥

सावन के कृष्ण पक्ष में यदि गुरु का मंगल से मेल हो, या कर्क राशि पर बृहस्पति हों, या सिंह राशि पर शुक्र हो, तो तालाब सूख जायेंगे, धूल की वृष्टि होगी और कहीं अन्न न उपजेगा।

[३२५]

तीतर बरनी, बादरी, रहे गगन पर छाय।
कहै डंक सुनु भड्डरी, बिन बरसे ना जाय॥

तीतर के पंख की तरह वाला बादल यदि आकाश पर छा जाय, तो डंक कहते हैं कि हे भड्डरी! सुन, वह बादल बरसे बिना नहीं जायगा।

(३२६)

सावन सुदी सतमी, उवत जो दीसै भान।
या जल मिलि हैं कूप में, या गंगा असनान॥

सावन सुदी सतमी को यदि आकाश साफ हो और सूर्य उदय होता हुआ दिखाई पड़े, तो समझो वर्षा नहीं। पानी या तो कुओं में मिलेगा या गंगास्नान में।

(३२७)

सावन पछियाँ भादों पुरवा, आसिन बहै इसान।
कातिक कन्ता सीक न डोलै, गावैं सबै किसान॥

सावन में पछुवा, भादों में पूर्वी और आश्विन में ईशान कोन की हवा बहै, तो हे स्वामी! कातिक में एक सींक भी न हिलेगी, अर्थात् हवा न बहेगा और सब किसान हर्ष से गायेंगे।

(३२८)

पवन थक्यो तीतर लवै, गुरुहिं सदेवै नेह।
कहत भड्डरी जोतिसी, ता दिन बरसै मेह॥

हवा थम गई हो, तीतर बोल रहा हो, तो भड्डर ज्योतिषी कहते हैं कि उस दिन वर्षा होगी।

[३२९]

कलसे पानी गरम है, चिरिया न्हावै धूर।
अंडा लै चींटी चढ़ै, तो बरखा भरपूर॥

घड़े में पानी गरम जान पड़े, चिड़िया धूल में नहावें और चींटी अंडे लेकर चलें, तो भरपूर वर्षा होगी।

[३३०]

बोले मोर महातुरी, खाटी होय जु छाछ।
मेह मही पर परन को, जानौ काढ़े काछ॥

मोर जल्दी-जल्दी बोलें और मट्ठा खट्टा हो जाय, तो समझो कि पानी पृथ्वी पर पड़ने के लिये कमर कसे है।

[३३१]

सावन उसमै मादों जाड़।
बरखा मारै ठाड़ पछाड़॥

यदि सावन में गरमी जान पड़े और भादों में सर्दी, तो समझना चाहिये कि वर्षा बहुत होगी।

[३३२]

कुही अमावस मूल बिन, बिन रोहिनि अखतीज।
स्रवन बिना हो सावनी, आधा उपजै बीज॥

अमावस के दिन मूल नक्षत्र न पड़े, अक्षय तृतीया को रोहिणी न पड़े और सलूनो के दिन श्रवण न पड़े, तो अन्न आधा होगा।

[३३३]

सावन पहली पचमी, गरभे ऊवै भान।
बरखा होगी अति घनी, ऊँचे जानो धान॥

सावन बदी पंचमी को यदि सूर्य बादलों में से निकले, तो बड़ी वर्षा होगी और धान की फसल अच्छी होगी।

[३३४]

मृगसिरा वायु न बादला, रोहिनि तपै न जेठ।
अद्रा जो बरसै नहीं, कौन सहै अलसेठ॥

यदि मृगशिरा में न हवा चले, न बादल हों, जेठ में गरमी न पड़े और आर्द्रा न बरसे, तो खेती करने की झंझट कौन ले? अर्थात् मौसम बहुत खराब होगा।

[३३५]

सर्व तपै जो रोहिणी, सर्व तपै जो मूर।
परिवा तपै जो जेठ की, उपजै सातो तूर॥

यदि रोहिणी पूरी तपे, मूल भी पूरा तपे और जेठ की परिवा भी पूरा तपे, तो सातों प्रकार के अन्न उत्पन्न हों।

[३३६]

जो पुरवा पुरवाई पावे।
सूखी नदिया नाव चलावे।
ओधि के पानी बँडेरी जावे॥

अगर पूर्वा नक्षत्र में पूर्व की हवा चले, तो इतना पानी बरसे कि सूखी नदी में भी नाव चलने लगे। और ओरौनी का पानी छप्पर की चोटी पर चढ़ जायगा।

[३३७]

सावन सुक्ला सत्तमी, जो गरजै अधिरात।
बरसै तो सूखा पड़े, नाहीं समौ सुकाल॥

सावन सुदी सप्तमी को यदि आधी रात के समय बादल गरजे और पानी बरसे, तो सूखा पड़ेगा और यदि पानी न बरसे, तो समय अच्छा होगा।

(३३८)

भोर समै डरडम्बरा, रात उजेरी होय।
दुपहरिया सूरज तपै, दुरभिछ तेऊ जोय॥

सवेरे आकाश में बादल छाये हों, रात में आकाश साफ रहे और दोपहर में सूर्य तपे, तो दुर्भिक्ष पड़ेगा।

(३३९)

सुकरवारी बादरी, रही सनीचर छाय।
तो यों भाखै भड्डरी, बिन बरसे नहिं जाय॥

शुक्रवार के दिन बदली हो और शनैश्चरवार को छाई रहे, तो भड्डरी कहते हैं कि बिना बरसे वह नहीं जायगा।

(३४०)

मघादि पंच नछत्तरा, भृगु पच्छिम दिसि होय।
तो यों जानो भड्डरी, पानी पृथी न जोय॥

मघा, पूर्वा, उत्तरा, हस्त और चित्रा नक्षत्रों में यदि शुक्र पश्चिम दिशा में हो, तो भड्डरी कहते हैं कि पृथ्वी पर पानी न बरसेगा।

(३४१)

रात्यो बोले कागला, दिन मे बोले स्याल।
तो यों भाखै भड्डरी, निहचै परै अकाल॥

रात में यदि कौवे बोलें और दिन में सियार, तो भड्डरी कहते हैं कि अकाल निश्चय पड़ेगा।

(३४२)

उत्तरा उत्तर दै गई, हस्त गयो मुख मोरि।
भली बिचारी चित्रा, परजा लेइ बहोरि॥

उत्तरा सूखा जवाब दे गई। हस्त मुख मोड़कर चला गया। बेचारा चित्रा ने उजड़ती हुई प्रजा को फिर बसा लिया। अर्थात् उत्तरा और हस्त में वृष्टि नहीं हो, पर चित्रा में हो जाय, तो भी फसल अच्छी होगा।

(३४३)

रवि ऊगंते भादवा, अम्मावस रविवार।
धनुष उगन्ते पच्छिम, होसी हाहाकार॥

भादों के अमावस्या को यदि रविवार हो, और उस दिन सूर्योदय के समय पश्चिम दिशा में इन्द्र-धनुष दिखाई पड़े, तो संसार में हाहाकार मच जायगा।

(३४४)

भादों की सुदि पचमी, स्वाति संजोगी होय।
दोनो सुभ जोगी मिले, मगल बरती लोय॥

भादों सुदि पंचमी को यदि स्वाती हो, तो यह योग शुभ है। लोग आनन्द से रहेंगे।

(३४५)

भादों मासै ऊजरी, लखौ मूल रविवार।
तो यों भाखै भड्डरी, साख भली निरधार॥

यदि भादों सुदी में रविवार के दिन मूल नक्षत्र हो, तो फसल अच्छा होगा, ऐसा भड्डरी कहते हैं।

(३४६)

भादो बदी एकादसी, जो ना छिटकै मेघ।
चार मास बरसै नहीं, कहै भड्डरी देख॥

भादों बदी एकादशी को यदि बादल तितर-बितर न हो जायँ, तो चार मास तक वर्षा न होगा। ऐसा भड्डरी कहते हैं।

(३४७)

आस्विन बदी अमावसी, जो आवै सनिवार।
समयो होवे किरवरो, जोसी करो विचार॥

कुआर बदी अमावस को यदि शनिवार पड़े, तो समय साधारण होगा।

(३४८)

बिजै दसैं जो वारी होई।
सवतसर को राजा सोई॥

विजयादशमी के दिन जो वार होगा, वही सम्वत्सर का राजा होगा। जैसे मङ्गलवार हो तो राजा मङ्गल हो।

(३४९)

जिन वारों रवि संक्रमै, तिनै अमावस होय।
खप्पर हाथा जग भ्रमै, भीख न घालै कोय॥

जिस दिन सूर्य की संक्रान्ति हो और उसी दिन अमावस भी हो, तो ऐसा अकाल पड़ेगा कि लोग हाथ में खप्पर लेकर फिरेंगे और कोई भीख न डालेगा।

(३५०)

जाड़े मे सूतो भलो, बैठो बरषा काल।
गरमी मे ऊभो भलो, चोगो करै सुकाल

द्वितीया का चन्द्रमा जाड़े में सोया हुआ, वर्षा में बैठा हुआ और गर्मी में खड़ा शुभ है।

(३५१)

जिहि नक्षत्र में रवि तपै, तिहीं अमावस होय।
परिवा साँझी जो मिलै, सूर्य ग्रहण तब होय॥

सूर्य जिस नक्षत्र में होता है, उसी में अमावस्या होती है। शाम को यदि प्रतिपदा हो जाय, तो सूर्य ग्रहण होगा।

(३५२)

मास ऋष्य जो तीज अँध्यारी।
लेइ जोतिसी ताहि विचारी॥
तिहि नक्षत्र जो पूरनमासी।
निहचै चन्द्रग्रहन उपजासी॥

महीने की कृष्णपक्ष की तृतीया को कौन सा नक्षत्र है, ज्योतिषी को इसका विचार कर लेना चाहिये। यदि उसी नक्षत्र में पूर्णिमा पड़े, तो निश्चय चन्द्रग्रहण होगा।

[३५३]

पाँच सनीचर पाँच रवि, पाँच मँगर जो होय।
छत्र टूटि धरती परै, अन्न महँगो होय॥

यदि एक महीने में पाँच सनीचर या पाँच रविवार या पाँच मङ्गल पड़ें, तो महा अशुभ है। इससे राजा का नाश होगा और अन्न महँगा होगा।

माघ में पाँच मङ्गल, जेठ में पांच रवि और भादों में पाँच शनिवार पड़ें, तो राजा का नाश होगा या अन्न महँगा होगा।

[३५४]

भादों जै दिन पछुवाँ ब्यारी।
तै दिन माघे पड़ै तुसारी॥

भादों में जितने दिन पछुवा हवा बहेगी, माघ में उतने दिन पाला पड़ेगा।

[३५५]

जै दिन जेठ बहै पुरवाई।
तै दिन सावन धूरि उड़ाई॥

जेठ में जितने दिन पूर्वी हवा बहेगी, सावन में उतने दिन धूल उड़ेगी।

[३५६]

अगहन द्वादस मेघ अखाड़।
असाढ़ बरसे अछना धार॥

यदि अगहन की द्वादशी को बादलों का जमघट दिखाई पड़े, तो आषाढ़ में वर्षा बहुत होगी।

[३५७]

कर्कराशि में मंगलवारी।
ग्रहण परै दुर्भिक्ष विचारी॥

जब चन्द्रमा कर्क राशि में हो, तब मङ्गल के दिन चन्द्रग्रहण हो, तो दुर्भिक्ष पड़ेगा।

[३५८]

एक मास में ग्रहण जो दोई।
तो भी अन्न महँगो होई॥

एक महीने में यदि दो ग्रहण पड़ें, तो भी अन्न महँगा होगा।

[३५९]

अद्रा भद्रा कृत्तिका, असरेखा जो मघाहिं।
चन्दा ऊगै दूज को, सुख से नरा अघाहिं॥

यदि द्वितीया का चन्द्रमा आर्द्रा, भद्रा कृत्तिका असरेखा या मघा में उदय हो, तो मनुष्य सुख से तृप्त हो जायँगे।

[३६०]

तेरह दिन का देखो पाख।
अन्न महँग समझो बैसाख॥

यदि पक्ष तेरह दिन का हो, तो अन्न महँगा होगा।

[३६१]

छः ग्रह एकै राशि विलोकौ।
महाकालको दीन्हों कोकौ॥

यदि छः ग्रह एक ही राशि पर हों, तो मानों महाकाल को निमन्त्रण दिया है।

[३६२]

सातै पांच तृतीया दसमी, एकादसि में जीव।
ऐहि तिथिन पर जोतहु, तौ प्रसन्न हों सीव॥

सप्तमी, पंचमी, तृतीया, दशमी और एकादशी में जीव का निवास होता है। इन तिथियों में खेत जोते, तो शिवजी प्रसन्न होते हैं।

[३६३]

भादों की छठ चांदनी, जो अनुराधा हो।
ऊबड़खाबड़ बोय दे, अन्न घनेरा हो॥

भादो सुदी छठ को यदि अनुराधा नक्षत्र हो, तो ऊबड़ जमीन में भी यदि बो देगे, तो अन्न बहुत पैदा होगा।

[३६४]

इतवार करै धनवन्तरि होय।
सोम करै सेवा फल होय॥
बुध बिहफै सुक्र भरै बखार।
सनि मंगल बीज न आवै द्वार॥

खेती का काम यदि रविवार को प्रारम्भ करे, तो किसान धनवान् होगा। सोमवार को करेगा, तो परिश्रम का फल मिलेगा। बुध, बृहस्पति और शुक्र को करेगा, तो अन्न से कोठिला भर जायगा और यदि शनिवार और मङ्गलवार को प्रारम्भ करेगा, तो हानि होगी और बीज भी लौटकर घर नहीं आवेगा।

[३६५]

कर्क के मंगल होय भवानी।
दैव धूर बरसेंगे पानी॥

यदि सावन में कर्क और मङ्गल का मेल हो, तो निश्चय वृष्टि होगी।

राजस्थान की कृषि कहावतें

[१]

सूरज तेज सु तेज, श्राड बोले अनयाली।
मही माट गल जाय, पवन फिर बैठे छाली ॥
कीड़ी मेलै ईंड, चिड़ी रेत में नाहवै।
कॉसी कामन दौड़, आभो लील रंग लावै ॥
डेडरो डहक वाड़ां चढ़ै, विसहर चढ बैठे बड़ा।
पांडिया जोतिस झूठा पड़ै, घन वरसै इतरा गुणां ॥

सूर्य का प्रचण्ड तेज (धूप), बतक का चिल्लाना, घी का पिघलना, हवा की तरफ पीठ देकर बकरी का बैठना, चींटियों का अंडे लेकर चलना, चिड़ियों का धूल से नहाना, कांसे का रंग फीका पड़ जाना, आकाश का गहरा नीला हो जाना, मेंढकों का बाड़ में घुस जाना और सांपों का वृक्षों पर चढ़ना, आगामी घनी वर्षा के चिन्ह है। चाहे ज्योतिषी की बात झूठी पड़ जाय, पर ये शकुन अटल है।

[२]

ईसानी। वीसानी ॥

ईशान कोण में यदि बिजली चमके तो खेती अच्छी होगी।

[३]

परभाते गेह डंवरा, सांजे सीला वाव।
डंक कहै हे भड्डली, काला तणा सुभाव ॥

डंक भड्डली से कहता है कि यदि प्रातःकाल में बादल भागे जा रहे हों और सायकाल में ठन्डी हवा चले, तो अकाल पड़ेगा।

[४]

परभाते गेह डंवरा, दोफारां तपंत।
रातू तारां निरमला, चेला करो गछंत ॥

यदि प्रातःकाल मे बादल दौड़ें; दोपहर को धूप तेज हो और रात्रि को निर्मल आकाश मे तारे दिखाई दें, तो, हे शिष्य! उस देश से अपना रास्ता लेना चाहिये (अर्थात् वहाँ अकाल पड़ेगा)।

[५]

आभा राता मेह माता, आभा पीला मेह सीला ।

यदि आकाश में ललाई दिखाई दे तो भारी वर्षा हो और पीलापन दिखाई दे तो वर्षा की कमी हो।

[६]

अगस्त ऊगा मेह न मंडे। जो मंडे तो धारन खंडे ॥

अगस्त के उगने पर प्रथम तो वर्षा होवे ही नहीं और यदि हुई तो खूब मूसलाधार होवे।

[७]

सवार रो गाजियो।
(ने) सापुरस रो बोलियो
एल्यो नहीं जाय ॥

प्रातःकाल का गरजना और महात्मा की वाणी वृथा नहीं जाती है।

[८]

पानी पाला पादसा। उत्तर सूँ आवै ॥

वर्षा, पाला और बादशाह उत्तर दिशा ही से आया करते हैं।

[९]

विमलियां बोले रात निमाई, छाली वाड़ा वेस छिकाई।
गोहों राग करै गरणाई, जोरां मेह मोरां अजगाई ॥

यदि रात भर झींगर बोले और बकरी बाड़ के पास बैठ कर छींके और गोह घुरघुराहट करे और मोर चिल्लावे तो मेह आवे।

[१०]

भल भल चके पपइयो वाणी,
कूँपल कैर तणी कमलाणी।
जलहलतो ऊगे रवि जांणी,
पहरा मांय अवसरे पांणी ॥

यदि पपीहा चारों तरफ पी-पी करता फिरे और कैर की ताजी कूँपल कुम्हला जावे और सूर्य उदय के समय बड़ी कड़ी धूप हो तो समझना चाहिये कि वर्षा कुछ ही घन्टों में आवेगी।

[११]

नाडी जल व्है तातो न्हाली,
धिर करवै नीलो रंग धाली।
चहके बैठ सिरै चूँचाली,
कॉटल बंधे उत्तर दिस काली ॥

यदि तालाब का जल गरम होजाय और कांसे की थाली नीली पड़ जाय और चूँचाली (पनडूबी) चिड़िया पेड़ के ऊपर बैठ चींचां करे तो उत्तर दिशा से काले बादल खूब आवें।

[१२]

जिण दिन नीली बले जवासी।
माडे राड़ सांपरी मासी ॥
बादल रहे रातरा वासी।
(तो) इड़ जाणो चौकस मेह आसी ॥

यदि हरा जवासा जल जाय, बिल्लियां लड़े और पिछले रात के बादल सुबह तक रहें तो अवश्य वर्षा आवे।

[१३]

विरछां चढ़ किरकांट विराजे।
स्याह सफेत लाल रंग साजे ॥
विजनस पवन सूरियो बाजे।
(तो) घडी पलक मांहे मेह गाजे ॥

यदि किरकांट (गिरगट) पेड़ पर बैठ कर काला, सफेद और

लाल रंग धारण करे और वायु उत्तर पश्चिम से चले तो घड़ी दो घड़ी में मेह आवेगा।

[१४]

ऊँचो नाग चढ़ै तर ओड़े।
दिस पिछमाण बादला दौड़े॥
सारस चढ़ असमान सजोड़े।
तो नदियाँ ढाहा जल तोड़े॥

यदि सांप पेड़ की चोटी पर चढ़े, मेह पश्चिम दिशा को दौड़े और सारसों के जोड़े आसमान में चढ़ें, तो नदी का पानी किनारे को तोड़ कर बहेगा।

[१५]

ऊमस कर घृत माढ गमावे।
डडा कीड़ी बाहर लावे॥
नीर बिनां चिड़िया रज न्हावै।
तो मेह बरसे धर मांह न मावै॥

यदि गर्मी से घी पिघल जाय, चींटियें अपने अण्डे बाहिर लावें और चिड़िया रेत में न्हावें तो खूब मेह बरसेगा कि वह धरती (भूमि) पर नहीं समावेगा।

[१६]

सावण पहिली पचमी, भींनी छाँट पड़ै।
डंक कहै हे भडली, सफलाँ रूंख फलै॥

यदि श्रावण बदि पंचमी को छींटे पड़ें तो डंक भड्डली से कहता है कि फल वाले पेड़ फलें।

[१७]

आसोजाँ रा मेहड़ा, दोय बात विनास।
बोरटियाँ बोर न्ही, बिणियाँ न्ही कपास॥

आश्विन में यदि वर्षा हो तो दो प्रकार से हानि करें, झाड़ियों में बेर न लगें और कपास में रुई न लगे।

[१८]

आसवाणी, भागवाणी।

आसोज में बरसात भाग्यवानों के यहाँ होता है।

[१९]

काती। सब साथी॥

फसलें चाहे जब बोई गई हों कार्तिक में सब साथ ही पकती हैं।

[२०]

माह महीने पड़े न सीत, मैंगा अनाज जानिये मीत

यदि माघ में सर्दी न पड़े तो मित्र अनाज महँगा होगा।

[२१]

दोय मूसा दोय कातरा, दोय टीडी दोय ताव।
दोयां री बादी जल हरै, दोय बीसर दो बाव॥

यदि मघा के प्रथम दो दिनों में हवा न चले तो चूहे पैदा हों, तीसरे चौथे दिन हवा न चले तो गेहरा से कांडे हों, पांचवें छठे दिन हवा न चले तो टिड्डी दल हों, सातवें आठवें न चले तो बुखार फैले, नवें दसवें न चले तो वर्षा बन्द हो, ग्यारहवें बारहवें न चले तो नहर्ने बाड़ और जानवर पैदा हों, तेरहवें चौदहवें न चले तो खूब आंधी चले।

[२२]

पहली आद टपूकड़े, मासां पखा मेह।

आर्द्रा के शुरू में बूंदें पड़ जाय तो महीने पन्द्रह रोज में वर्षा हो।

[२३]

मघा मेह माचन्त, कै गच्छन्त।

मघा नक्षत्र में या तो जल बरसे या भगे।

[२४]

दीवा चीती पचमी, सोम शुकर गुरु मूल।
डंक कहे हे भडली, निपजे सातूं तूल॥

कार्तिक सुदि पंचमी को यदि मूल नक्षत्र में सोमवार, बृहस्पतिवार या शुक्रवार हो, तो डंक भड्डली से कहता है कि सातों किस्म का नाज खूब उपजे।

[२५]

सावण मास सूरयो बाजै, भादरवै परवाई।
आसोजां में समदरी बाजे, काती साख सवाई॥

यदि श्रावण में उत्तर-पश्चिमी को हवा चले, भादों में पूर्वी और आसौज में पश्चिम को हवा चले, तो कार्तिक में खूब फसल हो।

[२६]

जटा बधे बड़ री जद जांणों।
बादल तीतर पंख बखाणों॥
अवस नील रंग व्है असमाणां।
(तो) घण बरसे जल रो घमसाणा॥

जब कि बड़ (बरगद) की जटा बढ़ने लगे और बादल का रंग तीतर के पंख के जैसा हो जाय या आसमान का रंग बिल्कुल नीला हो जाय तो अवश्य वर्षा खूब होगा।

[२७]

गले अमल गुल री व्है गारी।
रवि सिस रे दोली कुंडारी॥
सुरपत धनक करे विध सारी।
(तो) एरापत मघवा असवारी॥

यदि अफीम गलने लगे और गुड़ में पानी छूटने लगे सूर्य और चन्द्रमा के चारों तरफ कुण्डल हो और इन्द्रधनुष पूरा दिखाई दे, तो इन्द्र ऐरावत हाथी) की सवारी पर आवे यानी वर्षा खूब हो।

भारतवर्ष की कृषि

भारतवर्ष में कई प्रकार की खेती होती है। इसका कारण यहाँ की की जलवायु और प्राकृतिक दशा है। इस महान देश के हर एक भाग में अनाज की उपज होती है। इसका भौगोलिक क्षेत्र ८१,१०,००,००० एकड़ है। ठीक ठीक कृषिसम्बन्धी भूमि का विवरण न मालूम होने के कारण यह नहीं कहा जा सकता कि भारतवर्ष में कितने एकड़ भूमि खेती के योग्य है। १९४९ ई० में इस प्रकार की भूमि का क्षेत्र ५८,००,००,००० एकड़ था। इस देश की जो वर्गीकरण रहित भूमि है उसका अधिकतर भाग खेती के योग्य नहीं है। इस प्रकार की भूमि अधिकतर पहाड़ी और रेगिस्तानी है जिसका एक बड़ा भाग 'बी' और 'सी' श्रेणी वाले राज्यों में और अण्डमान और निकोबार द्वीप समूहों में फैला हुआ है। ५८,००,००,००० एकड़ भूमि के क्षेत्र में, ८,७०,००,००० एकड़ भूमि का क्षेत्र जगलो से और ६३०,००,०० एकड़ चरागाहों से ढका हुआ है। इसके अलावा २७,३०,००,००० एकड़ भूमि में ऊसर और बंजर स्थित है। ९,३०,००,००० एकड़ भूमि कृषिसम्बन्धी उपज के काम में नहीं आती है। १९४९ ई० में फसलों की उपज २४,४०,००,००० एकड़ भूमि में हुई थी। जिन क्षेत्रों में एक से अधिक बार बोई जा चुकी थी इस प्रकार के खेतिहर भूमि का क्षेत्र १९४८-४९ ई० में २७,५० ०० ००० एकड़ था। इस के २२,८०,००,००० एकड़ भूमि में केवल अनाज की खेती की गई थी और ४,९०,००,००० एकड़ भूमि में अन्य प्रकार की फसलों की उपज हुई थी। १९४८-४९ ई. में जिन क्षेत्रों में खेती सिंचाई द्वारा होती थी उनके क्षेत्र ५,००,००,००० एकड़ भूमि था किन्तु इस प्रकार के क्षेत्रों में फसलें एक से अधिक बार बोई जा चुकी थी।

इस देश की खेती प्रायः वर्षा पर ही निर्भर रहती है जो जून और अक्टूबर के महीनों के बीच में होती है। यहां पर जाड़े के मौसम में सूखा रहता है। मार्च से जून महीनों तक गर्मी पड़ती है। इस देश में दो फसलें मुख्यतः पाई जाती हैं—एक खरीफ और दूसरी रबी की फसल है। यहाँ पर हर मौसम में उसी मौसम के अनुसार फसलों की उपज होती है। यहां पर गर्मी के मौसम में वर्षा ४७ इंच से ५० इंच तक और जाड़े के मौसम में २ से ४ इंच तक हो जाती है। इस देश में मुख्यत. चार प्रकार की भूमि मिलती है।

(१) लाल भूमि—इस प्रकार की भूमि मद्रास हैदराबाद, मध्य प्रदेश, छोटा नागपुर और पश्चिमी बंगाल के दक्षिणी भाग में पाई जाती है।

(२) काली भूमि—इस प्रकार की भूमि भारतवर्ष के दक्षिणी भाग में मिलती है।

(३) कछार वाली भूमि—इस प्रकार की भूमि प्राय गंगा जमुना के मैदान में पाई जाती है जो इस देश का कृषि प्रधान क्षेत्र है।

(४) मटियार (लेटराइट) भूमि—इस प्रकार की भूमि आसाम, बर्मा और पश्चिमी बंगाल में पाई जाती है। इसके अलावा इस देश के उत्तरी भाग में वन सम्बन्धी भूमि भी पाई जाती है। इस महान देश में रेगिस्तानी भूमि भी मिलती है। इस प्रकार की भूमि का अधिकतर भाग पाकिस्तान में फैला हुआ है। इस देश में राजस्थान का रेगिस्तान प्रसिद्ध है। इसका क्षेत्रफल ४०,००० वर्ग मील है। इस प्रकार की भूमि का नाम उत्तर प्रदेश में रेह और ऊसर है। पंजाब में इस भूमि का नाम थुर और राकड़ है और बम्बई प्रदेश में इसी भूमि का नाम चुपान, है। इस प्रकार की भूमि खेती के लिये ठीक नहीं होती है। इसको खेती योग्य बनाने के लिये अधिक जुताई और खाद की आवश्यकता

पड़ती है। इस देश में जंगल भी अधिक पाये जाते हैं। भारत सरकार इस देश की भूमि का निरीक्षण भी कर रही है। इसके अलावा भूमि-रक्षण का भी कार्य हो रहा है। इस प्रकार से कृषि की उन्नति दिन प्रति दिन हो रही है। भूमि को भी उपजाऊ बनाया जा रहा है। भारत सरकार भी यहां के कृषकों को हर प्रकार की सहायता दे रही है। जिससे खेती और उसकी उपज में वृद्धि होवे। भूमि सम्बन्धी उन्नति की तरफ भी सरकार ध्यान दे रही है। भूमि की नमी को रोकने के लिये भी योजनायें बनाई गई हैं। वर्तमान समय में साढ़े छः लाख एकड़ से अधिक भूमि को खेती योग्य बनाया गया है।

भारतवर्ष में वर्षा समान रूप से नहीं होती है जिसके कारण इस देश के भिन्न क्षेत्रों में फसलों की उपज के लिये सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है। १९४७-४८ ई० यहां पर खेती योग्य भूमि का क्षे— २४,९०,००,००० एकड़ था। इस के ४,९०,००,००० एकड़ भूमि में खेती सिंचाई द्वारा होती थी। २,००,००० एकड़ भूमि नहरों द्वारा १३,००,००,००० एकड़ कुओं द्वारा ५०,००,००० एकड़ भूमि तालाबों द्वारा और ७०,००,००० एकड़ भूमि अन्य साधनों द्वारा सींची जाती थी। इस देश के कुल खेतिहर भूमि के १९.१६ प्रतिशत भाग में खेती सिंचाई द्वारा ही होती है। जब की पाकिस्तान के ६६-६७ प्रतिशत भाग में खेती सिंचाई द्वारा होती है भारतवर्ष के दक्षिणी और मध्यवर्ती भाग में सिंचाई अधिक होती है। इस काम के लिये यहां पर बांध आदि भी बनाये जा रहे हैं।

चावल—चावल की उपज भारतवर्ष में सबसे अधिक होती है। इसकी उपज का क्षेत्र ७,५२,००,००० एकड़ है जो कुल खेतिहर भूमि का ३० प्रतिशत भाग है। इस देश में कुल २,१७,००,००० टन चावल पैदा होता है। इसकी उपज प्रति एकड़ में ६४५ पौंड होती है। यहां पर चावल की खपत उपज की अपेक्षा अधिक है। इसीलिये भारतवर्ष में चावल की कमी रहती है। जो यहां की उपज का ८ से १० प्रतिशत तक है। इस कमी की पूर्ति के लिये गत वर्षों से चावल दक्षिणी-पूर्वी एशियाई देशों से मगाया जाता था जिसमें बर्मा देश अकेला १७,००,००० टन चावल देता था। विश्व की दूसरी लड़ाई के कारण इस दशा में परिवर्तन हो गया। लड़ाई के दिनों में कोई सामान भी नहीं मिलता था और इन देशों के बाहर भेजने वाले सामानों में भी कमी हो गई थी। भारतवर्ष के विभाजन से यहां की दशा में और भी परिवर्तन हो गया। चावल की उपज वाले कुछ क्षेत्र पाकिस्तान राज्य में चले गये। इसी कारण से भारतवर्ष में मुख्यतः चावल की कमी हो गई। इस फसल की उपज के लिये गर्म तापक्रम और अधिक नमी की आवश्यकता है। इसकी उपज के लिये ७०-१०० फारेन हाइट गर्मी की आवश्यकता रहती है। इस देश में इसकी खेती उन्हीं स्थानों में होती है जहां पर वर्षा अधिक होती है। भारतवर्ष के जिस भाग में वर्षा ८० इंच से अधिक हो जाती है वहां पर मुख्यतः चावल की उपज होती है। ३०-८० इंच वर्षा वाले क्षेत्रों में भी चावल पैदा होता है। किन्तु ३० इंच से कम वर्षा वाले क्षेत्रों में चावल की उपज सिंचाई द्वारा की जाती है। भारतवर्ष में चावल के मुख्य क्षेत्र दक्षिणी और उत्तरी-पूर्वी भागों में स्थित हैं। मद्रास, बिहार, बङ्गाल, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, आसाम और बम्बई इसकी उपज के मुख्य क्षेत्र हैं। इन भागों में इस देश के कुल चावल की उपज का ९५ प्रतिशत भाग पैदा होता है।

यहां पर चावल भिन्न-भिन्न प्रकार की जलवायु में भी पैदा होता है। आसाम और बङ्गाल में चावल की उपज १५-२० फुट पानी में होती है जब कि यह भारतवर्ष के अन्य भागों में केवल २० से ३० इंच की वर्षा में पैदा किया जाता है। यहां पर अधिकांश चावल की एक ही फसल प्रति वर्ष पैदा होती है। इसका कारण यह है कि यहां पर वर्षा की कमी है और चावल की एक से अधिक फसलें चावल वाले खेतों में नहीं पैदा की जा सकती हैं। यहां पर खेती अक्सर समुद्र-तल की ऊंचाई पर ही होती है। इस देश के जो भाग समुद्र-तल से नीचे हैं उन भागों में इसकी खेती खाई आदि बांध कर होती है। खेतों में खाई या बांध आदि बांधने से आवश्यकता से अधिक पानी नहीं जमा होने पाता। इस प्रकार से चावल की खेती देश के निचले भागों में भी होती

है। भारतवर्ष मे चावल उन क्षेत्रों में भी पैदा होता है जो समुद्र-तल से ३,००० से ५,००० फुट तक ऊंचे हैं। इस देश में चावल के क्षेत्र का विस्तार ८ से ३७ अक्षांश तक है। चावल की फसलें ८० से २०० दिनों के भीतर तैयार हो जाती हैं। चावल यहां पर जाड़े की फसल मानी जाती है। चावल काली और चिकनी मिट्टी मे पैदा होता है। इसकी उपज के लिये भूमि मे क्षार का रहना भी आवश्यक है। चावल ५ से ८.५ मात्रा तक फासफोरस भी सहन कर सकता है। चावल दो प्रकार से बोया जाता है—पहला साधन यह है कि खेतो मे चावल को छींट दिया जाता है और दूसरा साधन यह है कि धान को पहले खेतो में बो दिया जाता है। २८ से ३५ दिनो के बाद जब धान के पौधे कुछ बड़े हो जाते हैं तो उनको उखाड़ कर धान वाले खेतों मे बो देते हैं जहां पर वह पकने की अवस्था तक रहता है। इस प्रकार से जो धान बोया जाता है उसकी उपज अच्छी होती है। छींट कर बोने वाला धान ऊंचे स्थानो मे पैदा होता है। इस देश मे लगभग ४,००० प्रकार के चावल की उपज होती है।

इस देश मे चावल की औसत उपज अन्य देशों की अपेक्षा कम है। साफ किया हुआ चावल प्रति एकड़ में ७२३ पौंड मिलता है जब कि जापान मे इस प्रकार का चावल प्रति एकड़ मे २,३५० पौंड होता है। चावल की पैदावार मे यह कमी मुख्यत. चार कारणों से है—(१) धान वाले क्षेत्रों मे पानी समय-समय से नहीं मिलता है। (२) भूमि भी कम उपजाऊ है और सामान्य रूप से खाद आदि का भी अभाव रहता है। (३) जुताई के साधनो मे भी कमी है और धान वाले खेतों से दूसरे प्रकार के बीज भी बोये जाते हैं जिससे खेत की शक्ति भी कम हो जाती है। (४) कीड़ो तथा अन्य प्रकार के रोगों के कारण फसल खराब हो जाती है। पिछले वर्षों मे जो इस सम्बन्ध मे अनुसधान हुये हैं उनसे यह पता चला है कि यह कमी केवल उसी दशा मे दूर हो सकती है जब कि धान वाले खेतो की जुताई और सिचाई के साधनों मे उन्नति कर दी जावे। चावल की उपज को बढ़ाने के लिये इनके क्षेत्रों मे खाद की भी आवश्यकता है। अनुसंधान द्वारा यह भी पता चला है कि अगर धान वाले खेतों मे कमपोस्ट और खली आदि की खाद डाली जावे तो इसकी उपज मे २५ से ३० प्रतिशत की वृद्धि हो जाय। वर्तमान समय में चावल की उपज में कुछ वृद्धि हो गई है। अब इस सम्बन्ध मे भारत सरकार ने भी अपना ध्यान दिया है। फसलों को नष्ट करने वाले कीड़ो और रोगो को कम करने का उपाय हो रहा है। चावल अनुसधान सम्बन्धी योजनायें भी बनाई गई हैं। इन सब कारणों से चावल की उपज मे भी अब वृद्धि हो गई है। यह वृद्धि ट्रावनकोर मे १७ से २३ प्रतिशत तक, बिहार में २० से २५ प्रतिशत तक, उड़ीसा में ३० से ५२ प्रतिशत में और काश्मीर मे ५५ से ७० प्रतिशत तक हुई है। निरीक्षण करने से यह भी पता चला है कि कश्मीर मे चावल की उपज ७,००० से ९,००० फुट की ऊंचाई तक हो सकती है।

गेहूँ—इस अनाज की उपज उत्तरी भारतवर्ष मे अधिक होती है। गेहूँ जाड़े मे पैदा होता है। इसकी उपज के मुख्य स्थान उत्तर प्रदेश और पंजाब हैं। इन क्षेत्रों में जो गेहूँ पैदा होता है उसका ६७ प्रतिशत भाग भारतवर्ष के अन्य प्रान्तों में भेज दिया जाता है। भारतवर्ष के कुल गेहूँ की पैदावार का ७५ प्रतिशत भाग केवल पजाब और उत्तर प्रदेश के क्षेत्रों मे पैदा होता है। इस फसल की उपज भारतवर्ष के कुल खेतिहर क्षेत्र के १० प्रतिशत भाग मे होती है। १९३३-३४ ई० मे ३,६०,००,००० एकड़ भूमि में गेहूँ की उपज होती थी। यह उपज १९३९-४० ई० के गेहूँ की उपज की अपेक्षा कम थी। यह कमी १,०५,००,००० टन गेहूँ की थी। आज कल गेहूँ की औसत उपज प्रति वर्ष में लगभग ९०,००,००० टन है। इस देश में जो गेहूँ पैदा होता है वह यहां की खपत से कुछ ही अधिक होता है। १९४५-४६ ई० मे इस देश मे गेहूँ की खेती २,४५,४६,००० एकड़ भूमि मे होती थी। इसमें ५९,२,००० टन गेहूँ की पैदावार होती थी। पजाब प्रात मे सिंचाई के साधनों की उन्नति हुई है। यही कारण है कि इस प्रान्त मे गेहूँ की उपज भी अधिक होती है। जिन भागों मे गेहूँ सिंचाई द्वारा होता है वहां पर इसके खेतो को २ से ४ बार तक

सींचने की आवश्यकता पड़ती है। सुन्दर प्रकार वाले गेहूँ की खेती ८०,००,००० एकड़ भूमि में होती है। १९४७-४८ ई० में गेहूँ की उपज ५३,८९,००० टन, १९४८-४९ ई० में ५४,७२,००० टन और १९४९-५० ई० में इसकी उपज ६१,१०,००० टन थी। अभाग्यवश भारतवर्ष में गेहूँ की फसल कीड़ों और काई द्वारा नष्ट हो जाती है। काई पौधों में लगने वाला एक प्रकार का रोग होता है। इस रोग के आक्रमण से अनाज के फसलों को बड़ी हानि पहुँचती है। १९४६-४७ ई० में ई० इसका आक्रमण मध्य प्रदेश और भारतवर्ष के अन्य भागों में हुआ था जिससे २०,००,००० टन गेहूँ नष्ट हो गया था। इसकी लागत ६० करोड़ रुपये थी। इस भयंकर रोग के आक्रमण से फसलों को बचाने के लिये साधन निकाले जा रहे हैं।

बाजरा—इस अनाज की उपज भारतवर्ष के उन्हीं भागों में होती है जहाँ पर वर्षा अधिक नहीं होती है। यहां के गरीब लोग प्रायः इस अनाज को खाते हैं। यह अनाज पशुओं को भी खिलाया जाता है। इसकी कई किस्में होती हैं। यह कई प्रकार की भूमि और जलवायु में पैदा होता है। इसकी दो प्रसिद्ध किस्में हैं। एक ज्वार और दूसरा बाजरा है। इस देश के ५,००,००,००० एकड़ भूमि में इनकी उपज होती है। १९४८-४९ ई० में ज्वार की खेती ३,५३,८८,००० एकड़ भूमि में की गई थी। इसकी उपज ४७,८८,००० टन थी। इसी वर्ष बाजरा की खेती भी १,९६,०४,००० एकड़ भूमि में हुई थी जिस में २२,४७,००० टन बाजरा पैदा हुआ था। बाजरा की अपेक्षा ज्वार की उपज के लिये अच्छी भूमि की आवश्यकता पड़ती है। यह आमतौर से अरहर या कपास मिला कर बोया जाता है।

दालें—भारतवर्ष में दालों का एक मुख्य स्थान है। यहां के निवासी लोग इन को भोजन के साथ मिला कर खाते हैं। इस देश में कई प्रकार की दालें पैदा होती हैं। इनकी उपज के लिये भिन्न-भिन्न प्रकार की भूमि और जलवायु की आवश्यकता पड़ती है।

कपास—भारतवर्ष में कपास एक सबसे अधिक महत्वशाली और व्यवसायिक फसल है। १९३८-३९ ई० में कपास की खेती २,१०,००,००० एकड़ भूमि में होती थी। कपास की औसत उपज ४२,००,००० गांठ थी। प्रति गांठ में ३९२ पौंड कपास होती थी। १९४९-५० के अंत में कपास के उपज वाले क्षेत्रों में कमी हो गई थी। इसका प्रभाव कपास की पैदावार पर भी पड़ा था। कपास की उपज में २२,००,००० गाँठ कपास की कमी गई थी। इसका कारण यह था कि १,२४,००,००० एकड़ भूमि में कपास की खेती का होना ही बन्द हो गया था। १९५०-५१ ई० में कपास की उपज में फिर वृद्धि हुई। खेती वाले क्षेत्र भी पहले की अपेक्षा बढ़ गये। इसका कारण "अनाज अधिक पैदा करो" भारत सरकार वाली योजना थी। कपास का क्षेत्र ?, ३९,००,००० एकड़ बढ़ गया। इसकी उपज भी २९,००,००० गांठ और अधिक हो गई। भारतवर्ष के कपास वाले कारखानों में ३६,२२,००० गाठों का खर्च था। १९५०-५१ ई० में ११,०५,००० गांठ कपास विदेश से भारत सरकार को मंगाना पड़ता था। २५,१७,००० गांठ कपास की कमी की पूर्ति इस देश से होती थी। इस देश से वही कपास बाहर भेजी जाती है। जिस का सूत ? इंच से अधिक लम्बा नहीं होता है। अब केवल कोमिला और बङ्गाल से देशी आदि प्रकार की कपास बाहर भेजी जाती है। इस देश में कपास के मुख्य उपज वाले क्षेत्र पंजाब, बम्बई, मद्रास, उत्तर प्रदेश, मध्य भारत, हैदराबाद, सौराष्ट्र और राजस्थान हैं। देश के इन भागों में उत्तम प्रकार वाली कपास पैदा होती है। इन भागों में कपास के बोने और पकने के समय अलग-अलग हैं। कुछ स्थानों में कपास की फसल का समय मई से दिसम्बर तक रहता है, जब कि कुछ स्थानों में इसकी उपज अक्तूबर से मई और जून के महीनों में होती है। कपास की पैदावार में भी भिन्नता रहती है। किसी-किसी क्षेत्रों में इसकी पैदावार अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा अधिक होती है। जो भाग खूब सींचे जाते हैं उनमें साधारण तौर पर प्रति एकड़ में लगभग २०० पौंड कपास पैदा होती है। कभी-कभी इससे भी अधिक कपास की पैदावार हो चुकी है। जिन भागों में सिंचाई के साधन अच्छे नहीं हैं उन भागों की उपज प्रति एकड़ ६० पौंड रहती है। अच्छी वाली

कपास की उपज बढ़ाई जा रही है। इसके लिये योजनायें भी बनी हुई हैं।

भारतवर्ष कच्ची कपास का जन्म स्थान माना जाता है। इस देश में प्राचीन समय से ही कपास का कारबार होता चला आया है। १७ वीं शताब्दी के अंत तक यहां से कपास के सुन्दर कपड़े ग्रेट ब्रिटेन को भेजे जाते थे। अमरीकन सिविल युद्ध के समय में इस देश की ५,२८,००० से ९,६३,००० गांठ तक कपास विदेश को भेजी जाती थी। १९२५-२६ ई० में कपास की खेती १,८३,०२,००० एकड़ क्षेत्र में होती थी। इस क्षेत्र में ६२,००,००० गाँठ कपास की पैदावार होती थी। १८९९,१९०० ई० में यहां पर कपास की उपज केवल २०,९०,००० गांठ थी। १९३१-३२ ई० में कपास की उपज में अधिक कमी हो गई। इस वर्ष कपास की पैदावार केवल ४०,०७,००० गांठ थी। धीरे-धीरे कपास की उपज फिर बढ़ने लगी। १९३७-३८ ई० में इसकी उपज ६२,३४,००० गाँठ हो गई थी किन्तु १९३९-४० ई० कपास की उपज का अनुमान ४९,०९,००० गांठ लगाया गया था। इस कमी का एक विशेष कारण यह था कि जापान ने भारतवर्ष से से छोटे सूत वाली कापस का लेना बन्द कर दिया था। विश्व की दूसरी लड़ाई के समय फिर कपास की उपज बढ़ने लगी। १९४१-४२ ई० में ६२,२३,००० गांठ कपास की पैदावार हुई थी। जब भारत सरकार ने "अधिक अन्न पैदा करो" वाली योजना बनाई तो इसका असर फिर कपास की उपज और इसके खेती वाले क्षेत्रों पर पड़ा। कपास की उपज में कमी हो गई जो २६ प्रतिशत थी। इसके अनुसार ४७,०२,००० गांठे कपास की कम हो गई। १९४२-४३ ई० में कापस वाले क्षेत्र २२ प्रतिशत से कम हो गये अर्थात् १,९२,०३,००० एकड़ भूमि में कपास की खेती होनी बन्द हो गई। १९४५-४६ ई० में कपास की खेती १,४८,६००० एकड़ भूमि में की जाती थी। इस क्षेत्र में कपास की उपज ३५,३०,००० गांठे थीं। १९४६-४७ ई० में भारतवर्ष के कारखानों में ३८४ लाख गांठ कपास की खपत होती थी। इस में भारत सरकार ३८.६ लाख कपास की गाठे खर्च करती थी। इसमें २१.८ लाख गांठे भारतीय कपास की खच होती थी। ९.८ लाख गाठे पाकिस्तानी कपास और ७ लाख गांठे विदेशी कपास की खर्च होती थीं। इस देश में ११।१६ इच से ७।८ इच सूत वाली कपास की उपज अधिक होती है। १९४६-४७ ई० में विभाजन के समय जो भारतवर्ष में कपास की दशा थी उसका ब्योरा निम्न प्रकार से है:—

	भारतवष	पाकिस्तान	विभाजन के पूर्व
क्षेत्र दस लाख एकड़ में	११.५	३.४	१४.९
उपज प्रति एकड़ पौंड में उपज लाख में-३९२ पौंड की गांठे	९०	१८८	११.३
७।८ इंच और इससे अधिक सूत वाली कपास की उपज	४.५	५.४	९.९
७।८ इंच से कम और ११।१६ इंच में अधिक कपास की उपज	१३.०	७.९	२०.९
११।१६ इंच और इससे कम सूत वाली कपास की उपज	८.५	२.७	११.२
कुल फसल	२६.०५	१६.०	४२.०

१९४१-४२ ई० में कपास की खेती २०,४०,००० एकड़ भूमि में की गई थी। इसमें कपास की ४८,४४,००० गांठें मिली थीं। जब सरकार ने कपास के दामों पर प्रतिबन्ध लगा दिया था तो इसकी खेती में कमी हो गई थी। १९४७-४८ ई० में १,०६,६०,००० एकड़ भूमि में कपास की खेती होती थी। कपास की उपज २१,८८,००० गांठ हुई थी। १९४८-४९ ई० में कपास की खेती का क्षेत्र १,१२,९०,००० एकड़ हो गया। उपज १७,६५,००० गांठ थी। १९५० ई० में भारत सरकार ने कपास की उपज बढ़ाने का निश्चय किया था। इसके लिये एक योजना भी बनाई गई। इसके अनुसार (१) कपास की मिल पर जो प्रतिबन्ध लगाये गये थे उठा लिये गये। (२) सिंचाई के साधनों में उन्नति की गई। (३) यह विश्वास दिलाया गया कि इस प्रकार से जो अनाज की उपज में कमी होगी उस की पूर्ति भारत सरकार करेगी। (४) सरकार ने उन खेतों का कर क्षमा कर दिया था जो कपास की खेती के लिये नये नल बनाये गये थे। (५) सरकार कपास का दाम बढ़ा दिया था।

इस का विभाजन निम्न प्रकार से है:—

नगर का नाम	कपास की वृद्धि (गांठों में)
मैसूर	४५,०००
बम्बई	१,६४,०००
सौराष्ट्र	१,४९,०००
अन्य राज्यों में	१७,०००
मद्रास	२,१८,०००
उत्तर प्रदेश	४६,०००
मध्य प्रदेश	१,२८,०००
मध्य भारत	९१,०००
हैदराबाद	८८,०००
पंजाब	७९,०००
राजस्थान	७५,०००
पेप्सू	५६,०००

इस प्रकार की योजना भारत सरकार ने हर एक प्रान्त में लागू कर दिया था। भारतवर्ष को ९४ प्रतिशत लम्बे सूत वाली और २७ प्रतिशत और सूत वाली कपास आवश्यकता रहती है। इस कमी की पूर्ति उसी दशा में हो सकती है जब कि इस प्रकार के कपास की उपज बढ़ाई जावे। यह अनुमान लगाया गया है कि पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत (१९५१-५२ से १९५५-५६) कपास की पैदावार में १२ लाख गाँठ की वृद्धि हुई है।

१९२२-२३ और १९४३-४४ ई० के बीच में ७-८ इंच से कम सूत वाली रुई की उपज में ४९ प्रतिशत कमी हो गई। १९२२ ई० में एक इंच या इससे अधिक सूत वाली रुई की उपज नहीं होती थी। धीरे-धीरे इस प्रकार के रुई की उपज बढ़ाई गई। १९४३-४४ ई० में इस प्रकार की कपास की पैदावार ६,५४,००० गांठ थी। इसके पश्चात कपास की उपज में वृद्धि में होती गई। लम्बे सूत वाली कपास के उपज की उन्नति मद्रास के कम्बोडिया क्षेत्र में, पंजाब के सिंचाई वाले क्षेत्र में और हैदराबाद के कुछ क्षेत्र में हो रही है। इन भागों में सिंचाई के बड़े-बड़े बांध भी बनाये जा रहे हैं। यह आशा की जाती है कि इन से ४०,००,००० एकड़ भूमि की सिंचाई हो सकती है। कपास की उपज बढ़ाने के लिये ६०,००,००० एकड़ उपजाऊ भूमि भी जोती जावेगी। इस देश में कपास की कमी का अन्त हो जावेगा अगर कपास की उपज के क्षेत्र की वृद्धि में सफलता मिल गई। १९५१-५२ कपास की उपज ६५ लाख गांठ थी।

गन्ना—विभाजन के पश्चात् भारतवर्ष की सरकार के पास कुल गन्ना वाले क्षेत्रों का ९०-९५ प्रतिशत भाग रह गया था। १९५०-५१ ई० में गन्ना की खेती ४१,२८,००० एकड़ भूमि में होती थी। इससे १२,२३,००० टन चीनी और ५४,९२,००० टन गुड़ बनाया गया था। उत्तम श्रेणी वाले गन्ने की उपज में वृद्धि हो रही है। इसके उपयोग को बढ़ाने

के लिये इस पर अनुसन्धान भी किया जा रहा है। १९३२-३३ ई० में गन्ने से २,९०,००० टन चीनी १९३९-४० में १२,४१,००० टन चीनी और १९५१-५२ ई० में १३,००,००० टन चीनी बनाई गई थी। निम्न लिखित तालिका को देखने से यह ज्ञात हो जायेगा कि गन्ना की खेती में किस प्रकार से वृद्धि हुई है:—

वर्ष	गन्ने के कारखानों की संख्या	गन्ने के कारखानों का उत्पादन (टनमें)	गुड़ से साफ की हुई चीनी (टनमें)	शक्कर का उत्पादन (टन में)	चीनी का उत्पादन (टनमें)
१९३२-३३	५७	२,९०,०००	८०,०००	२,७५,०००	६,४५,०००
,, ३३-३४	११२	४,५४,०००	६४,९००	२,००,०००	७,१९,९००
,, ३४-३५	१३०	५,७८,१००	४३,५००	१,५०,०००	७,७१,६००
,, ३५-३६	१३७	९,३२,१००	४७,९००	१,२५,०००	११,०५,०००
,, ३६-३७	१३७	११,११,४००	२५,६००	१,००,०००	१२,३७,०००
,, ३७-३८	१३१	९,१४,६००	१७,२००	१,१५,२००	१०,४७,०००
,, ३८-३९	१३२	६,४२,२००	१४,५००	९२,१००	७,४९,०००
,, ३९-४०	१३८	१२,०७,८००	२६,५००	१,१४,५००	१३,४८,८००
,, ४०-४१	१४०	१०,४६,१००	४२,०००	१,८३,८००	१२,७१,९००
,, ४१-४२	१४१	७,५१,४००	१९,९००	९१,५००	८,६२,८००
,, ४२-४३	१४१	१०,५१,८००	७,८००	१,९५,९००	१२,५५,५००
,, ४३-४४	१४५	१२,००,७००	७,५००	१,३७,३००	१३,४५,७००
,, ४४-४५	१३६	९,४२,२००	६,४००	१,१४,७००	१०,६३,३००
,, ४५-४६	१३८	९,२२,९००	४,१००	१,०६,८००	१०,३३,८००
,, ४६-४७	१३५	९,०१,१००	४,०००	९६,७००	१०,०१,८००
,, ४७-४८	१३४	१०,७४,८००	४,०००	१,०५,०००	११,८३,८००
,, ४८-४९	१३४	१०,०७,५००	४,०००	१,१३,०००	१०,०७,५००
,, ४९-५०	१३९	९,७५,६००	४,०००	१,७५,०००	११,५४,४००
,, ५०-५१	१३८	११,१०,००९	४,०००	१,२५,०००	१२,०४,००
,, ५१-५२	१३८	१३,००,०००	२,०००	३५,०००	१३,३७,०००

जैसे जैसे गन्ना की खेती में वृद्धि होती गई वैसे वैसे चीनी आदि भी अधिक बनती गई। १९५१-५२ ई० में ४.३१४ लाख एकड़ भूमि में गन्ना की खेती होती थी। १९३१-३२ ई० में अच्छी श्रेणी वाला गन्ना १,१३,५५,००० एकड़ में बोया जाता था। १९०५-६ ई० में इसकी खेती केवल २० लाख एकड़ तक ही सीमित थी। यह कहा जाता है कि वर्तमान समय में गन्ने के क्षेत्र वाले भाग के ९० प्रतिशत में उत्तम श्रेणी के गन्ने की खेती होती है। गन्ने की उपज का विस्तार निम्न लिखित तालिका में दिया हुआ है—

वर्ष	भूमि का क्षेत्र जिसमें गन्ने की खेती होती है (प्रति हजार एकड़ में)	भूमि का क्षेत्र जिसमें उत्तम श्रेणी गन्ने की खेती होती है (प्रति हजार एकड़ में)	प्रति एकड़ गन्ने की औसत उपज (टन में)	गुड़ का उत्पादन प्रति हजार (टन में)	गन्ने की उपज प्रति हजार (टन में)
१९३२-३३	३,४२५	१,८४५	१ .९	४,८५९	५१,१२९
,, ३३-३४	३,४२२	२,२९५	१५.३	५,०५५	५२,४५१
,, ३४-३५	३,६०२	२,४३३	१५.१	५,२९२	५४,३०६
,, ३५-३६	४,१५३	३,०५६	१५.३	६,१०२	६१,२०२
,, ३६-३७	४,५८६	३,४५२	१५.६	६,९३२	६७,२२२
,, ३७-३८	३,९९७	२,९६८	१५.५	४,६५८	४६,४१०
,, ३८-३९	३,२७०	२,६७३	१५.०	३,५७८	३६,०६६
,, ३९-४०	३,७८८	२,८९३	१५.०	४,००२	३९,४७२
,, ४०-४१	४,७४९	३,५२९	१५.०	५०,३६	४१,०६६
,, ४१-४२	३,६७१	२,८३१	१५.०	३,७०१	३७,८२४
,, ४२-४३	३,७५५	३,००४	१५.०	४,४४३	४५,३२९
,, ४३-४४	४,३८९	५,५४५	१३.८	५,०९०	५१,८६७
,, ४४-४५	४,३०५	३,६०४	१३.२	४,७२९	४८,६६१
,, ४५-४६	३,८२५	२,५८९	१२.०	४,५१२	४६,१२७
,, ४६-४७	३,५२८	——	१३.९	४,९१३	४९,७६९
,, ४७-४८	४,०५६	——	१४.३	५,२६९	५३,३२९
,, ४८-४९	३,६३४	——	१३.०	४,९९३	——
,, ४९-५०	४,१३८	——	१३.५	४,९०४	——
,, ५०-५१	४,३१४	——	——	——	——

१९४९-५० ई० में सरकार ने गन्ने का भाव उत्तर प्रदेश मे प्रतिमन एक रुपया दस आना और विहार में एक रुपया नौ आना और नौ पाई प्रति मन नियत किया था। किन्तु गन्ने का भाव इसके पैदावार के अनुसार घटता बढ़ता रहा है।

तिलहन—यह भारतवर्ष में बहुत अधिक पैदा होता है। इसकी गणना विश्व के तिलहन पैदा होने वाले देशों में होती है। इसकी खेती २,६०,००,००० एकड़ भूमि में होती है। यह कुल खेतिहर क्षेत्र का ९ प्रतिशत भाग है। इसके अलावा १,२०,००,००० एकड़ भूमि में कपास की खेती होती है। इससे दस लाख टन कपास का बीज मिलता है। मूंगफली, रेंडी, राई, तिल और अलसी आदि की गणना तिलहन में होती है।

मूंगफली—मूंगफली की उपज इस देश में बहुत होती है। १९५१ ई० में विश्व की उपज का ४०.६ प्रतिशत भाग मूंगफली इस देश में पैदा हुई थी। इस देश में खेतिहर भाग के ६५.७ भाग मे तिलहन की खेती होती है। इस क्षेत्र के ४०.३ प्रतिशत भाग में मूंगफली की खेती होती है। मद्रास प्रांत मे सबसे अधिक मूंगफली की उपज होती है। इस प्रांत के खेती वाले भाग के ४८.६ प्रतिशत में तिलहन बोया जाता है। इसके ३७.८ प्रतिशत भाग में मूंगफली की उपज होती है। हैदराबाद और बम्बई भी मूंगफली की उपज के लिये प्रसिद्ध हैं। ११५०-५१ ई० में मूंगफली १,०४,७२,००० एकड़ भूमि में पैदा की गई थी। इस क्षेत्र में ३३,३१,००० टन मूंगफली की उपज हुई थी। मूंगफली की उपज उत्तर प्रदेश, पंजाब और देश के अन्य भाग में बढ़ाई जा रही है।

राई और सरसों—यह इस देश के उत्तरी भाग मे अधिक पैदा होता है। इसकी उपज के लिये उत्तर प्रदेश, बिहार और पंजाब अधिक प्रसिद्ध हैं। १९५०-५१ ई० मे इसकी उपज ८,२६,००० टन थी। ५५,०५,००० एकड़ भूमि में खेती भी हुई थी। इस देश में कई प्रकार की राई पैदा होती है।

रेंडी—रेंडी का पौधा तरह-तरह की भूमि और जलवायु में होता है। यह भारतवर्ष के हर एक भाग में पैदा होता है। इसकी उपज ८,००० फीट की ऊँचाई पर भी होती है। १९५०-५१ ई० में इसकी खेती का क्षेत्र १२,५५,००० एकड़ था। उपज १,०६,००० टन थी।

तिल—इसकी खेती भारतवर्ष के समस्त भागों में होती है। १९५०-५१ ई० में इसकी खेती का क्षेत्र ५२,४५,००० एकड़ था। उपज ४,२१,००० टन थी।

जूट—यह एक प्रसिद्ध व्यवसायिक फसल है। जूट चिकनी मिट्टी में पैदा होता है। इसकी उपज के मुख्य क्षेत्र पश्चिमी बंगाल, बिहार, आसाम, उड़ीसा और उत्तर प्रदेश के कुछ भाग हैं। १९५०-५१ ई० में इसकी खेती का क्षेत्र-१५,००,००० एकड़ भूमि था। उपज ३१.७ लाख गाठ थी। प्रति गाठ ४०० पौंड की बनी थी। जूट खरीफ की फसल मानी जाती है। इसके बोने का समय फरवरी से मई तक रहता है। यह खेतों में छीटकर बोया जाता है। बोने के समय २ से ३ इंच तक वर्षा की आवश्यकता पड़ती है। इसकी फसल के लिये धूप और प्रति सप्ताह में १ से २ इंच तक वर्षा का होना आवश्यक है। इसका पौधा आमतौर से १२ फीट या इससे कुछ अधिक ऊँचा होता है। चार या पांच महीने बोने के बाद जब इसमें फूल आ जाते हैं तो इसके पौधों को इस प्रकार से काट दिया जाता है कि उसकी ऊँचाई भूमि से बहुत कम रह जाती है। कटे हुये पौधों का बंडल बनाया जाता है। इसको सड़ने के लिये पानी में डाल देते हैं। १२ से १५ दिन तक यह पौधे सड़ जाते हैं। इसके रेशों को डंठल से अलग कर लिया जाता है। इसके बाद इसको धोकर सुखा लेते हैं। एक एकड़ भूमि में जूट की औसत उपज १५ मन है किन्तु आमतौर से इसकी उपज एक एकड़ में १२ से २५ मन तक रहती है। उसी श्रेणी का जूट अच्छा माना जाता है जिस में चमक और रेशे भी लम्बे रहते हैं। इसके रेशे से तरह-तरह के सामान बनाये जाते हैं।

जूट की खेती की वृद्धि पश्चिमी बंगाल और बिहार में अधिक हुई। १९५० ई० मे पश्चिमी बंगाल के जूट वाले क्षेत्र में ७,२५,००० एकड़ और बिहार मे १,२९,००० एकड़ से अधिक की वृद्धि हुई थी। जूट की उपज के बढ़ाने के लिये साधन निकाले जा रहे हैं। इसके लिये सुन्दर बीज बोये जा रहे हैं।

इसके खेतों को खाद आदि डाल कर उपजाऊ बनाया जा रहा है। जूट को छीट कर बोने के बजाय पक्तियों मे बोया जाता है।

निम्नलिखित तालिका में इसका ब्योरा दिया जाता है:—

वर्ष	जूट की खेती एकड़ में	जूट की उपज (गांठ में)	
१९४४	२१,०३,९५५	६२,०३,२०५	विभाजन के पूर्व
१९४५	२४,२१,६७०	७९,९१,०५०	
१९४६	१९,११,०००	५६,४८,०००	
१९४८	८,३४,०००	२०,५६,०००	विभाजन के पश्चात्
१९४९	११,५८,०००	३१,१७,०००	
१९५०	१४,५४,०००	३३,०१,०००	
१९५१	१९,५१,०००	४६,१७,०००	

१९४०-४१ ई० मे जूट की खेती ५६.६ लाख एकड़ में हुई थी। उपज भी १३१.७ लाख गाठ थी। १९४६-४७ ई० में इसकी खेती केवल १९ लाख एकड़ में हुई थी। उपज भी ५६.६ लाख गांठ थी। जूट के क्षेत्र मे यह कमी भारतवर्ष के विभाजन के कारण हुई। इस कमी का प्रभाव भारत देश मे अधिक पड़ा। इसकी उपज बढ़ाने की कोशिश होने लगी। १९४७-४८ ई० मे जूट की खेती के लिये केवल ६.५ लाख एकड़ क्षेत्र था जिसमें १६.५ लाख गांठ की पैदावार हुई थी। जूट की खेती का क्षेत्र बढ़ते-बढ़ते १९५१-५२ ई० में १९.५ लाख एकड़ हो गया। इसकी उपज भी ४६.७ लाख गाठ थी। पश्चिमी बङ्गाल में २ लाख एकड़ भूमि जिसमें धान की खेती होती थी जूट की खेती के योग्य खेत बनाये गये।

तम्बाकू—इस देश में तम्बाकू की खेती के मुख्य पाच क्षेत्र हैं:—(१) उत्तरी बिहार और बङ्गाल का क्षेत्र-इस क्षेत्र में मुजफ्फर पुर, पुरनिया, दरभङ्गा, जल्पाईगुड़ी, माल्दा, पेरहनपुर और दीनाजपुर सम्मिलित हैं। (२) चरोतर का क्षेत्र (गुजरात में)—इस क्षेत्र में पेतलाद, भदरान, (बम्बई राज्य में) और बोसद आदि सम्मलित हैं। (३) निपानी क्षेत्र-इस क्षेत्र में बेलगाव, सतारा, मीराज, कोल्हापुर और सगली सम्मलित हैं। (४) गुन्टूर क्षेत्र—इस क्षेत्र मे सिगरेट की तम्बाकू पैदा होती है। इस क्षेत्र में मद्रास के जिले सम्मलित हैं। (५) दक्षिणी मद्रास का क्षेत्र—इस क्षेत्र में खाने और सिगरेट वाले तम्बाकू की उपज होती है। उत्तरी बिहार, कलकत्ता पञ्जाब, उत्तर प्रदेश और दिल्ली में पूर्वी नामक तम्बाकू की उपज होती है।

निम्नलिखित तालिका में इसकी उपज आदि का ब्योरा दिया गया है:—

तम्बाकू वाले क्षेत्रों का नाम	तम्बाकू की खेती एकड़ में	तम्बाकू की उपज पौंड में
अजमेर	८	२,८७७
आसाम	६६४	३,९०,०७३
बिहार	३५,१५५	४,७१,३१,८०५
बिलासपुर	१६०	५४,८०५
बम्बई	१,६५,९४१	८८८,५२,०७४
कुर्ग	२८	८६९७
मध्य प्रदेश	२,४७५	९,२४,२२५
दिल्ली	८६३	१७,९०,७१७
हिमाचल प्रदेश	३६५	१,१९,३८६
पंजाब	६,१२९	६०,५२,६००
मद्रास	३,०८,१८५	२७,३८,५३,२०७
उड़ीसा	९,९२७	४९,७५,४०६
उत्तर प्रदेश	४०,३८७	७,७१,३१,३५९
पश्चिमी बङ्गाल	५,८३३	४१,६२,११०
रामपुर (उ० प्र०)	३०३	२,१७,४८५
अनिश्चित	५००	५,३४,२२३
कुल जोड़	५,७२,९३३	५०,६२,६३,९१९

इस देश में तम्बाकू पहले पहल १५०८ ई० में पुर्तगाली लोग लाये थे। आजकल भारतवर्ष की गणना विश्व के मुख्य तम्बाकू वाले देशों में होती है।

गुन्टूर क्षेत्र की भूमि अधिक काली है। यह कालापन अधिक गहराई तक मिलता है। यहां की भूमि में चूने की मिलावट भी अधिक रहती है। गुन्टूर के जिले में तम्बाकू सितम्बर के महीने में बोई जाती है। इस क्षेत्र के अन्य जिलों में तम्बाकू अक्टूबर-नवम्बर के महीनों में बोई जाती है। इस क्षेत्र में तम्बाकू की उपज के लिये सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती है। तम्बाकू की फसल जनवरी से मार्च तक तैयार हो जाती है। इस क्षेत्र में २ प्रकार की तम्बाकू की उपज होती है। एक का नाम वर्जीनिया और दूसरी का नाम देशी तम्बाकू है। वर्जीनिया तम्बाकू में *'हरीसन स्पेशल'* और देशी तम्बाकू में "थोक आकू" और "कारा आकू" के नाम वाली तम्बाकू बहुत प्रसिद्ध है। उत्तरी बिहार और बङ्गाल के क्षेत्र में दो प्रकार की तम्बाकू प्रसिद्ध है। एक का नाम एन तबाकुम और दूसरी का नाम एन रस्टीका है। एन तबाकुम की उपज का अधिक भाग खाने के रूप में काम आता है। यह तम्बाकू सिगरेट और चुरुट के काम में भी आती है। एन रस्टीका नामक तम्बाकू पीने के काम में आती है। इस क्षेत्र की भूमि हलकी है। इस भूमि में मटियापन गहराई तक मिलता है। भूमि का रङ्ग भी सफेदी लिये हुये रहता है। इस क्षेत्र की मिट्टी में चूने की मिलावट अधिक रहती है। कहीं-कहीं पर पोटाश भी मिला हुआ पाया जाता है। मिट्टी की गहराई एक स्थान से दूसरे स्थान तक भिन्न-भिन्न रहती है। यहां *की भूमि में नमी बहुत कम रहती है। यहां तम्बाकू* के बीज सितम्बर में बो दिये जाते हैं। नवम्बर के महीने में उनको उखाड़ कर दूसरे खेतों में बैठा दिया जाता है। तम्बाकू की फसलों की सिंचाई आमतौर से कुओं द्वारा होती है। मार्च के महीने से फसलें कटने लगती हैं। छरोतर वाले क्षेत्र में एन तबाकुम नामक तम्बाकू की खेती होती है। यह तम्बाकू पांच प्रकार की होती है-(१) गाण्, (२) पिल्यु (३) किल्यु (४) फल्यु (५) सेजपुरी। एक से तीसरी संख्या वाली तक तम्बाकू बीडी बनाने के काम में आती है। फल्यु नामक तम्बाकू पीने के काम में आती है सेजपुरी तम्बाकू चूसने (खाने) के काम में आती है। २०० एकड़ भूमि में वर्जीनिया नामक तम्बाकू की उपज होती है। इस क्षेत्र की भूमि बलुही है। मिट्टी में काला और चिकना पन पाया जाता है। जुलाई में तम्बाकू के बीज बो दिया जाता है। अगस्त के महीने में इन पौधों को उखाड़ कर दूसरे खेतों में लगा देते हैं। पिल्यु और किल्यु नामक तम्बाकू की के लिये सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती है। फल्यु और सेजपुरी तम्बाकू की उपज सिंचाई द्वारा होती है।

तम्बाकू की फसल दिसम्बर-जनवरी के महीने में काटी जाती है। निपानी क्षेत्र में एन तबाकुम नामक तम्बाकू की खेती होती है। यहां तम्बाकू कई प्रकार की होती है। इनके नाम निपानी, जवारी, सगली, मिरजी और सुरती आदि हैं। इस क्षेत्र में पनधर पुरी नाम की तम्बाकू अधिक पैदा होती है। निपानी तम्बाकू मीठी होती है। पनधरपुरी तम्बाकू कड़ी होती है। इस क्षेत्र की मिट्टी काली और चिकनी है। यहां की मिट्टी में कालापन गहराई तक मिलता है। जून के महीने में तम्बाकू के बीज को बो देते हैं। अगस्त के महीने में उखाड़ कर इसके पौधे दूसरे खेतों में लगा दिये जाते हैं। जनवरी के महीने में तम्बाकू की फसल को काटा जाता है। दक्षिणी मद्रास के तम्बाकू वाले क्षेत्र में मदूरा का जिला भी सम्मिलित है। इस क्षेत्र की मिट्टी बलुही है। मिट्टी का रंग देखने में काला मालूम होता है। इस क्षेत्र में तम्बाकू के बीज दिसम्बर-जनवरी के महीनों में बो दिये जाते हैं। ४५ दिन के बाद इसके पौधों को उखाड़ कर दूसरे खेत में लगा देते है। तम्बाकू की खेती ८,६०,००० एकड भूमि में होती थी। इसमें ५९,१३,६०,००० पौंड तम्बाकू की उपज होती थी। १९५०-५१ ई० में तम्बाकू की खेती ८,३९,००० एकड़ भूमि में होती थी। उपज ५६,२२,४७,००० पौंड थी।

कहवा—इसकी उपज दक्षिणी भारत के उन पहाड़ी भागों में होती है जो समुद्र-तल से १००० से ६००० फुट तक ऊंचे हैं। इससे कम ऊंचे क्षेत्रों में जहां वर्षा अधिक होती है उत्तम श्रेणी का कहवा पैदा होता है। इस देश में कहवा की उपज

२०,००० टन से ३०,००० टन तक होती है। काफी के कुल २७,३५२ खेत हैं उनमें १७,८४७ खेतों का क्षेत्र ५ एकड़ से कम है। ५ से १० एकड़ के क्षेत्र वाले २,२३५ खेत हैं। १० से २५ एकड़ के क्षेत्र वाले १,५९३ खेत हैं। १,४३७ खेतों का क्षेत्र २५ एकड़ से अधिक हैं। ट्रावनकोर में भी कहवा के ४,२४० खेत हैं। इस देश में कहवा दो प्रकार होता है। इनका व्योरा निम्नलिखित तालिका में दिया गया है:—

वर्ष	अरबी कहवा की उपज (टन में)	रोबस्टा कहवा की उपज (टन में)	जोड़	अरबी कहवा की खेती का क्षेत्र (एकड़ में)	रोबस्टा कहवा की खेती का क्षेत्र (एकड़ में)	जोड़
१९४५-४६	१९,३००	६,२००	२५,५००	१,६४,७२४	४६,१३८	२,१०,८६
,,४६-४७	१२,१००	३,२५०	१५,३५०	१,६७,४१४	४९,५०२	२,१६,९१
,,४७-४८	६,९७०	८,८३०	१५,८००	१,६६,५८१	५२,२६०	२,१८,८४
,,४८-४९	१८,२९९	३,२६९	२१,५६८	१,६६,६५९	५४,३५७	२,२१,०२
,,४९-५०	१२,४६५	७,६४६	२०,१११	१,६४,१९०	६०,४१५	२,२४,६०
,,५०-५१	१५,०४३	३,२३७	१८,२८०	१,६४,१९०	६०,४१५	२,२४,६०
	८४,१७७	३१,४३२	१,०६,६०९	९,९३,७७८	३,२३,०८७	११,१६,९६

रबड़—इस देश में १६,००० टन रबड़ पैदा होती है जो विश्व में मिलने वाले रबड़ का १ प्रतिशत से कुछ अधिक भाग है। १९२५ ई० के पहले इस देश में कुल १,७०,५०६.५६ एकड़ खेत थे। दिन प्रति दिन इसकी खेती में उन्नति होने लगी जो निम्न प्रकार की तालिका से ज्ञात होता है।

वर्ष	रबड़ की खेती वाला क्षेत्र (एकड़ में)	वर्ष	रबर की खेती वाला क्षेत्र (एकड़ में)
१९३८	१,०८,३१४.८८	१९४५	९,४४१.५८
१९३९	४,०१७.७५	१९४६	४,२३६.८५
१९४०	३,६६६.०१	१९४७	२,७०३.७२
१९४१	२,१२३.६६	१९४८	१,२७६.३५
१९४२	५,९६१.५३	१९४९	१,०९६.९७
१९४३	१४,७४२.८३	१९५०	१,४१५८.१,
१९४४	११,३६९.३८	१९५१	८२४.४९
		जोड़	१,७१,१९१.८१

रबड़ के कुछ खेत १०० एकड़ से अधिक क्षेत्र वाले हैं। अधिक संख्या वाले खेत ५ एकड़ के क्षेत्र से कम है। कुछ खेत इस प्रकार के हैं जिनका क्षेत्र ५ से १०० एकड़ के बीच में है। २५७ काफी के खेतो का क्षेत्र १,०३,११७.४२ एकड़ है। हर एक खेत का विस्तार १०० या इससे अधिक एकड़ के क्षेत्र मे है। २०१ खेतों का क्षेत्र १३,५१२.५२ एकड़ है। हर एक खेत ५० या इससे अधिक किन्तु १०० एकड़ मे कम के क्षेत्र मे बना हुआ है। १३२ खेतो का क्षेत्र २५,१२७.७२ एकड़ है। प्रति खेत का क्षेत्र १० या इससे अधिक किन्तु ५० एकड़ से कम है। ९,८०७ खेतो का क्षेत्र २८,०४६.१८ एकड़ है। इसके हर एक खेत का क्षेत्र या इससे अधिक किन्तु १० एकड़ से कम है। २,४२१ खेतों का क्षेत्र १,३८७.९७ एकड़ है। प्रति खेत का क्षेत्र एक एकड़ से कम है। इस प्रकार से इस देश में रबड़ के कुल १४,००७ खेत हैं जिनका क्षेत्र १,७१,१९१.८१ एकड़ है। निम्नलिखित तालिका मे रबड़ की उपज का क्षेत्र अलग-अलग दिया गया है:—

नगर या प्रान्त का नाम	रबड़ की पैदावार का क्षेत्र एकड़ में
तिरुवाकुर	१,२२,५४८.०५
कोचीन	१३,८१२.४४
मद्रास	३०,७७२.४८६
आसाम	५०.००
कुर्ग	३,१९६.७०
मैसूर	३९६.६३
अंडमान	४०७.००
पश्चिमी बङ्गाल	९.२३
जोड़	१,७१,१९१.८१

इस देश में रबड़ की उपज का औसत प्रति वर्ष प्रति एकड़ मे २५० से २९० पौंड रहता है। निम्न प्रकार की तालिका मे रबड़ की उपज का ब्योरा दिया गया है:—

वर्ष	उपज (टन में)	रबड़ की पैदावार का क्षेत्र (एकड़ में)	औसत उपज प्रति वर्ष प्रति एकड़ में (पौंड में)
१९४७	१६,४८९	१,२९,३६०	२८५
१९४८	१५,४२२	१,१८,८११	२९१
१९४९	१५,५८७	१,२३,७९१	२८२
१९५०	१५,५९९	१,३७,८८८	२५३
१९५१	१७,१४८	१,४८,७२९	२५८

चाय—भारतवर्ष में जो पौधे वाली फसलें हैं उनमे चाय की फसल अधिक प्रसिद्ध है। निम्नलिखित ब्योरे मे चाय की उपज और उसका क्षेत्र आगे दिया गया है:—

तालिका के देखने से यह ज्ञात होगा कि पहले की अपेक्षा चाय की खेती में ४९ प्रतिशत की वृद्धि हो गई है। चाय की पैदावार मे भी २०१ प्रतिशत की वृद्धि हो गई है। चाय की पैदावार के लिये आसाम और बङ्गाल प्रदेश अधिक प्रसिद्ध हैं। चाय की पैदावार का ५० प्रतिशत से अधिक चाय आसाम में होती है। १९५० ई० में आसाम मे ३२,५०,००,००० पौंड चाय की उपज हुई थी जो इस देश की कुल चाय के उपज का ५३ प्रतिशत भाग था। पश्चिमी बङ्गाल में १८,१०,००,००० पौंड चाय की पैदावार हुई थी जो इस देश में पैदा होने वाली चाय का २९.७५ प्रतिशत भाग था। इसी प्रकार से दक्षिणी भारतवर्ष मे १९५० ई० मे चाय की उपज ९,८०,००,००० पौंड थी जो कुल उपज का १६ प्रतिशत भाग था। इसके अलावा चाय की खेती उत्तर प्रदेश, नेपाल, बिहार और पंजाब मे भी होती है। इस देश के विभाजन के कारण से ६४,००० एकड़ क्षेत्र पाकिस्तान के अधिकार में हो गया है।

निम्न लिखित तालिका में यह दिखलाया गया है कि इस देश के हर प्रांत में कितना खेतिहर क्षेत्र है और कितनी भूमि खेती के योग्य नहीं है।

प्रांत या राज्य का नाम	क्षेत्र (१००० एकड़ में)		प्रांत या राज्य का नाम	क्षेत्र (१००० एकड़ में)	
	१९४७-४८	१९४८-४९		१९४७	१९४८
आसाम	३३,४००	३३,४००	मूर	१७,३८५	१७,३८५
बिहार	४४,३३०	४४,३३०	पेप्सू	६,४६३	६,४९१
बम्बई	५७,९८६	५८,०४९	राजस्थान	२०,६६९	२०,६६९
मध्य प्रदेश	८२,९५०	५२,९९७	सौराष्ट्र	१,३९७	१,३९७
मद्रास	८०,७९६	८०,७९६	अजमेर	१,५६१	१,५६१
उड़ीसा	२०,१४२	१८,०५३	भोपाल	४,४५०	४,४३२
पंजाब	२३,२२६	२३,२३६	बिलासपुर	२८५	२८५
उत्तर प्रदेश	७१,४०३	७१,४२८	कुर्ग	१,०१२	१,०१२
हैदराबाद	५२,९२७	५२,९२७	दिल्ली	३६६	३६६
काश्मीर	८,००२	३,३६०	हिमाचल प्रदेश	१,८७६	२,३०५
त्रिपुरा	२,६३४	२,६३४	कच्छ	४,९७४	४,९७४
			विन्ध्य प्रदेश	१,६१०	१,६१०

भारतवर्ष के जंगल

इस देश के कुल जंगलों का क्षेत्र २,४२,१०४ वर्गमील है। कुल भूमि का क्षेत्र १२,६६,८९२ वर्गमील है। सरकारी जंगलों का क्षेत्रफल १,८२,५३९ वर्ग मील है। १,३६९ वर्ग मील के जंगल इस देश की संस्थाओं के अधिकार में हैं। ५८,१९६ वर्ग मील के जंगल लोगों के निजी अधिकार में हैं। जंगलों का १० प्रतिशत से अधिक भाग वन विभाग के आधीन हैं। जंगलों के उगने के लिये अधिक वर्षा की आवश्यकता रहती है। इस देश में हर प्रकार के जंगल मिलते हैं। नीचे दी गई तालिका में जंगलों का क्षेत्र तथा उनका वर्गीकरण दिया गया है.—

(ब) इस क्षेत्र में ९ वर्ग मील का क्षेत्र वन विभाग के अधिकार में सम्मिलित नहीं है।

(स) इस क्षेत्र मे २४५ वर्ग मील का जंगल जो वन विभाग के अधिकार में नहीं है सम्मिलित नहीं है।

(द) इसमें २ वर्ग मील के घर और सड़कें हैं। ९,७९७ वर्ग मील के जंगलों पर लोगों का अपना अधिकार है। ५०० वर्गमील के जंगलों का वर्गीकरण नहीं हुआ है।

(इ) इस क्षेत्र मे ५ वर्ग मील का क्षेत्र जो भिन्न-भिन्न समुदाय वालों के और १६९ वर्ग मील के जंगल जिस पर लोगों का निजी अधिकार है सम्मिलित हैं।

सिंचाई

इस देश मे सींची जाने वाली भूमि का क्षेत्र ४,८०,००,००० एकड़ है। इस देश के उत्तरी भाग में फसलों की उपज प्राय: सिंचाई ही द्वारा होती है। इसका अधिकांश क्षेत्र अब पाकिस्तान मे चला गया है। फिर इस देश में सिंचाई वाला क्षेत्र संयुक्तराज्य अमेरिका या पाकिस्तान के सिचाई वाले क्षेत्रो से दूना है। इस देश की नहरों की लम्बाई २,२९,००० मील से भी अधिक है। सिचाई की उन्नति के लिये भारत सरकार ने कई योजनाये भी बनाई गई हैं। इनके पूरा होने पर और अधिक भूमि भी सींची जा सकेगी। अनाज का उत्पादन भी बढ़ जावेगा। इसका ब्यवरा निम्न प्रकार की तालिका मे दिया हुआ है।

वर्ष	सिंचाई (१००० एकड़ में)	अनाज के उत्पादन में अनुमानित वृद्धि (दस लाख टनमें)
१९५१-५२	६४७	०.२
,, ५२-५३	१,११४	०.४
,, ५३-५४	१,९९७	०.७
,, ५४-५५	४,३१५	१.४
,, ५५-५६	५,४९९	१.८
,, ५६-५७	६,६८५	२.२
,, ५७-५८	७,५०२	२.५
,, ५८-५९	८,५२७	२.८
,, ५९-६०	९,१५०	३.१
अन्तिम रूप से	१२,९४९	४.३

यह आशा की जाती है कि ४,२०,००,००० एकड़ भूमि और सींची जा सकेगी। यह वृद्धि सिंचाई सम्बन्धी योजनाओं की सफलता पर निर्भर है। इस प्रकार से सींची जाने वाली भूमि का कुल क्षेत्र ९,१०,००,००० एकड़ हो जावेगा। नीचे दी हुई तालिका में यह दिखलाया गया है कि भिन्न-भिन्न साधनो के सफल होने पर कितना और अनाज का उत्पादन बढ़ जायेगा:—

साधन	क्षेत्र (एकड़ में)	अतिरिक्त उत्पादन (टन में)
सिचाई के लिये बड़े बांधों का बनाना	८७,१२,०००	२२,७२,०००
सिंचाई के लिये छोटी-छोटी योजनाओं के सफल होने पर	७६,२१,०००	१९,३२,०००
जुताई आदि मे उन्नति करने से	७४,०५,०००	१५,२४,०००
खाद आदि डालने से	— — —	१४,७४,०००

भारतवर्ष के जिन भागों में वर्षा का औसत ५० इंच से कम रहता है उन भागों में खेती की उपज के लिये सिंचाई की अवश्यकता रहती है। भारतवर्ष के हर भाग मे वर्षा समान रूप से नहीं होती है। प्रति साल वर्षा का औसत ४६० इंच से ५ इंच तक रहता है। जाड़े के मौसम में यहां पर वर्षा बहुत ही कम होती है। खेती के विचार से वर्षा का ढंग संतोषजनक नहीं रहता है। इस कारण से खेती को सूख जाने का भय हर समय बना रहता है। जिन

क्षेत्रों में वर्षा १५ इंच से कम होती है उन भागों में खेती बिना सिंचाई के नहीं हो सकती है। इस में खेती की सिंचाई प्रायः कुओं, तालाबों या नहरों द्वारा होती है। नीचे दी गई तालिका से यह पता चलता है कि इस देश के हर एक प्रांत में कितने एकड़ भूमि पानी द्वारा सींची जाती है:—

प्रांत या प्रदेश का नाम	१९४६-४७ (एकड़ में)	१९४७-४८ (एकड़ में)	१९४८-४९ (एकड़ में)	प्रांत या देश का नाम	१९४६-४७ (एकड़ में)	१९४७-४८ (एकड़ में)	१९४८-४९ (एकड़ में)
आसाम	१,१२ ४००	११,२८,०००	११,४५,०००	सौराष्ट्र	५२,०००	५३,०००	५४,०००
बिहार	५३,२०,०००	४८,७५,०००	४८,७९,०००	त्रिवांकुर-कोचीन	९,४४,०००	९,६३,०००	९,४०,०००
बम्बई	१५,०४,०००	१५,८४,०००	१५,७१,०००	उत्तर प्रदेश	१,१७,३०,०००	१,१०,५९,०००	१,१२,०५,०००
हैदराबाद	१४,१३,०००	१३,२९,०००	१३,२७,०००	पश्चिमी बंगाल	१८,५६,०००	२०,७२,०००	१९,०९,०००
काश्मीर	७,८६,०००	७,८६,०००	६,६०,०००	अजमेर	१,०१,०००	१,०५,०००	१,०४,०००
मध्य प्रदेश	१६,५३,०००	१७,४०,०००	१७,३५,०००	बिलासपुर	५,०००	८,०००	९,०००
मध्य भारत	३,३०,०००	३,३१,०००	३,९४,०००	भोपाल	१६,०००	१९,०००	१८,०००
मद्रास	९८,७८,०००	९८,००,०००	९८,१६,०००	कुर्ग	६,०००	५,०००	६,०००
मैसूर	११,४४,०००	११,५९,०००	११,५२,०००	दिल्ली	५१,०००	४८,०००	६२,०००
उड़ीसा	१६,९१,०००	१६,९३,०००	१६,८४,०००	हिमाचल प्रदेश	७३,०००	७०,०००	७०,०००
पेप्सू	१९,७८,०००	१७,१८,०००	१,९५९	विन्ध्य प्रदेश	७०,०००	७०,०००	७०,०००
पंजाब	५१,७९,०००	४४,२४,०००	३६,१०,०००	कच्छ	४६,०००	४८,०००	४८,०००
राजस्थान	१५,०३,०००	१५,०३,०००	१५,०३,०००	त्रिपुरा			
				जोड़	४,८४,५२ ०००	४,६६,३५,०००	४,६९,६८,०००

नीचे तालिका में जो घेरा हुआ क्षेत्र सींचा गया था उसका ब्योरा दिया गया है।:—

प्रांत या देश का नाम	औसत क्षेत्र एकड़ में जो १९४४-४५ से १९४६-४७ ई० तक सींचा गया था	१९४७-४८ई० में सींचा गया क्षेत्र (एकड़ में)	बढ़ी हुई फसल का मूल्य (रुपये में)	प्रांत या देश का नाम	औसत क्षेत्र एकड़ में जो १९४४-४५ से १९४६-४७ ई० में सींचा गया था	१९४७-४८ई० में सींचा गया क्षेत्र (एकड़ में)	बढ़ी हुई फसल का मूल्य (रुपये में)
आसाम	१,९९०	२,४५०	९,५२,०००	मैसूर	८,४९,७३९	८,७३,२४३	———
बिहार	६,८३,५८९	६ ८३,१४८	———	उड़ीसा	६,९४,८४१	६,५१,५७२	६,२६,९४,१००
बम्बई	६,४९,५५८	६,२४,१५६	११,०४,१९,०१६	पेप्सू	१०,१७,२३०	९,६९,६२३	४,००,३०,२६०
हैदराबाद	९,२९,९४४	८,४४,४५६	———	पंजाब	३४,६७,८२०	३५,२०,३३५	३४,३५,४६,९४२
काश्मीर	——	१,४४,४००	———	राजस्थान	———	१३,२४,३१३	६,६८,८०,४९१
मध्य भारत	९८,३५४	८९,०५४	६,७४,३९०	सौराष्ट्र	———	६३,१३७	———
मध्य प्रदेश	७,५७,९२७	७,९८,८५५	७,८३,४१,०१५	तिरुवांकुर-कोचीन	———	३,९८,१८७	———
मद्रास	८४,६१,१९६	८०,९७,६६५	६७,७४,३०,०४२	उत्तर प्रदेश	५७,४२,३७२	५४,७०,२३६	८४,५९,५१,१८९
पश्चिमी बंगाल	२,७८,४९२	२,८०,७९८	४,३५,२५,९२०				
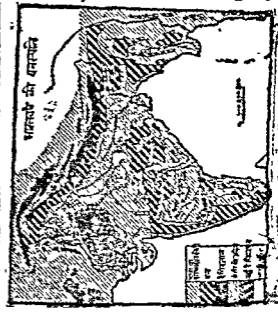
भारतवर्ष की प्रधान उपज
चाय
गेहूं
कपास
चावल

इस देश में सिंचाई के लिये जो बांध बनाये जा रहे हैं उनके पूरे होने पर अधिक भूमि सींची जा सकेगी। अनाज की पैदावार भी अधिक होने लगेगी। इस प्रकार से हर प्रांत में जितनी अधिक भूमि सींची जायेगी उसका ब्योरा निम्नलिखित प्रकार से है।

प्रांत का नाम	अधिक सींची जाने वाली भूमि का क्षेत्र (एकड़ में)
बिहार	५०,०००
बम्बई	८,५७,४००
हैदराबाद	६,७१,०००
मध्य भारत	१०,५०,०००
मद्रास	५,६५,०००
मैसूर	२,२१,०००
उड़ीसा	९,००,२००
पंजाब	४०,७५,०००
राजस्थान	१,२३,७५०
उत्तर प्रदेश	८,८२,५५१
पश्चिमी बंगाल	१६,६२,०००
सौराष्ट्र	१,७९,९७०
तिरुवांकुर-कोचीन	१,०८,८००
भोपाल	६,८००

[सिंचा]ई के विचार से कुल १७ बांध बनाये जाने [की] योजना है। ९ बांधों में काम लगा दिया गया है। [इन]का विवरण निम्न प्रकार से है :—

१—गोदावरी बांध (हैदराबाद में)

इस योजना के अनुसार चार बांध सिचाई के लिये बनेंगें। दो गोदावरी नदी पर और दो इसकी सहायक नदियों पर बनाये जायेंगे। इस योजना के सफल होने पर २,२७,००० एकड़भूमि सींची जायगी। यह काम १९५५ के अन्त तक पूरा हो सकेगा।

२—लोअर भवानी बांध (मद्रास में)

इस बाध से १२१ मील लम्बी नहर निकाली जायगी। इससे २,००,००० एकड़ कपास और चावल के खेतों की सिचाई होगी। १९४८ ई० में इसके बनाने का काम आरम्भ कर दिया गया था। १९५४ ई० के अन्त तक सके बन जाने की आशा थी।

३—मयूराची बांध (पश्चिमी बंगाल में)

इस बाध द्वारा ५,९५,००० एकड़ खरीफ फसल और १०,००,००० एकड़ रबी फसल की सिचाई होगी। इस बाध को १९५४ ई० तक बन जाना था।

४—गंगापुर बांध (बम्बई में)

इस बाध को १९५२-५४ ई० बन जाने की योजना थी। इससे ३७,५०० एकड़ भूमि सींची जायगी। ७,५००० टन अनाज की उपज में भी वृद्धि होगी।

५—ककरा पार बांध (बम्बई में)

इस बाध के बन जाने की आशा १९५६-५७ ई० तक है। इस बांध द्वारा लगभग ६,५०,००० एकड़ भूमि सींची जायगी।

६—तुंगभद्रा बांध (हैदराबाद और मद्रास में)

इस बांध से जो नहरें निकाली जायेंगीं उनसे ९,७१,००० एकड़ भूमि सींची जायगी।

७—हीराकुंड बांध (उड़ीसा में)

इस बाध की नहरों से ९००,००० एकड़ भूमि सींची जायगी।

भारतवर्ष की धरती का नक्शा
उपजाऊ
बहुत ही कम उपजाऊ
भारतवर्ष की प्रधान उपज
गेहूँ
कपास
चावल
चाय
नील
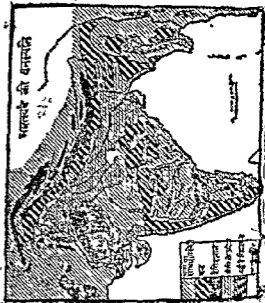
इस देश में सिंचाई के लिये जो बांध बनाये जा रहे हैं उनके पूरे होने पर अधिक भूमि सींची जा सकेगी। अनाज की पैदावार भी अधिक होने लगेगी। इस प्रकार से हर प्रांत में जितनी अधिक भूमि सींची जायेगी उसका ब्योरा निम्नलिखित प्रकार से है।

प्रांत का नाम	अधिक सींची जाने वाली भूमि का क्षेत्र (एकड़ में)
बिहार	५०,०००
बम्बई	८,९७,४००
हैदराबाद	६,३१,०००
मध्य भारत	१०,५०,०००
मद्रास	५,६५,०००
मैसूर	२,२१,०००
उड़ीसा	९,००,०००
पंजाब	४०,७५,०००
राजस्थान	१,२३,७५०
उत्तर प्रदेश	८,८२,९५१
पश्चिमी बंगाल	१६,६२,०००
सौराष्ट्र	१,७९,९७०
तिरुवांकुर-कोचीन	१,०८,८००
भोपाल	६,८००

सिंचाई के विचार से कुल १७ बांध बनाये जाने की योजना है। ९ बांधों में काम लगा दिया गया है। इनका विवरण निम्न प्रकार से है।—

१—गोदावरी बांध (हैदराबाद में)

इस योजना के अनुसार चार बांध सिंचाई के लिये बनेंगे। दो गोदावरी नदी पर और दो इसकी सहायक नदियों पर बनाये जायेंगे। इस योजना के सफल होने पर २,२७,००० एकड़ भूमि सींची जायगी। यह काम १९५५ के अन्त तक पूरा हो सकेगा।

२—लोअर भवानी बांध (मद्रास में)

इस बांध से १२१ मील लम्बी नहर निकाली जायगी। इससे २,००,००० एकड़ कपास और चावल के खेतों की सिंचाई होगी। १९४८ ई० में इसके बनाने का काम आरम्भ कर दिया गया था। १९५४ ई० के अन्त तक सके बन जाने की आशा थी।

३—मयूराक्षी बांध (पश्चिमी बंगाल में)

इस बांध द्वारा ५,९५,००० एकड़ खरीफ फसल और १०,००,००० एकड़ रबी फसल की सिंचाई होगी। इस बांध को १९५४ ई० तक बन जाना था।

४—गंगापुर बांध (बम्बई में)

इस बांध को १९५२-५४ ई० बन जाने की योजना थी। इससे ३७,५०० एकड़ भूमि सींची जायगी। ७,५००० टन अनाज की उपज में भी वृद्धि होगी।

५—ककरा पार बांध (बम्बई में)

इस बांध के बन जाने की आशा १९५६-५७ ई० तक है। इस बांध द्वारा लगभग ६,५०,००० एकड़ भूमि सींची जायगी।

६—तुंगभद्रा बांध (हैदराबाद और मद्रास में)

इस बांध से जो नहरें निकाली जायेंगी उनसे ९,७१,००० एकड़ भूमि सींची जायगी।

७—हीराकुंड बांध (उड़ीसा में)

इस बांध की नहरों से ९००,००० एकड़ भूमि सींची जायगी।

पेप्सू	२२	५१९	६२	१४	९२	१२७	४३०	५७	—	१४९	४
राजस्थान	६	२,८३	१८३	५४	७२	४७	२५२	२६	३२०	५४	२१९
सौराष्ट्र	—	४८	—	—	—	—	—	६	—	—	—
त्रिवांकुर-कोचीन	७१७	(अ)	—	—	—	(अ)	१३	१३	१९९	—	२८२
अजमेर	(अ)	१९	३३	१	१	३३	७	(अ)	१५	९	११
भोपाल	(अ)	१	(अ)	—	—	(अ)	१	१२	५	—	(अ)
बिलासपुर	३	४	(अ)	—	—	१	(अ)	(अ)	१	(अ)	—
कुर्ग	६	—	—	(अ)	—	—	—	—	—	—	—
दिल्ली	(अ)	२७	२	४	(अ)	१	४	६	९	(अ)	९
हिमाचल प्रदेश	४८	४८	१०	(अ)	(अ)	१३	१२	(अ)	१५	(अ)	७
कच्छ	—	१९	३	५	२०	—	(अ)	(अ)	(अ)	१	६
त्रिपुरा	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—
विन्ध्य प्रदेश	१	२३	१४	—	—	—	२८	३	१	—	(अ)
जोड़	२१,२३९	७,४०१	२,९९०	१,११४	८२४	७७०	६,५९२	२,५५०	२,२१८	६६३	३,५२०

(अ) ५०० एकड़ से कम क्षेत्र है।

निम्न लिखित तालिका में उन फसलों का ब्योरा दिया गया है। जिनकी उपज १९४८-४९ ई० में सिंचाई द्वारा हुई थी। इनकी पैदावार का क्षेत्र १०० एकड़ में है।—

प्रांत या देश का नाम	चावल	गेहूँ	जौ	ज्वार	बाजरा	मक्कई	अन्य प्रकार के अनाज और दालें	गन्ना	दूसरे अनाज वाली फसलें	कपास	व्यवसायिक फसलें
आसाम	१,३१७	—	—	—	—	—	२	—	४	—	२
बिहार	२,८६६	३४६	३२१	४	२	९२	८०६	१३९	२२८	६	६९
बम्बई	२३५	२६२	११	३६४	८८	३४	१३३	१८७	२०४	३	२३२
मध्य प्रदेश	१,५०६	२७	२	१	—	(अ)	५	४८	१४०	(अ)	६
मद्रास	८,२५६	५	(अ)	५०५	३०१	८	१,०६१	१६८	२५३	१६२	५०८
उड़ीसा	१,३७६	३	—	(अ)	—	१	१९२	२८	७६	(अ)	१८
पंजाब	२३८	१,४७२	१११	६७	२१८	२६३	७८१	२२८	१०४	२०८	९४३
उत्तर प्रदेश	७०६	४,०६६	२,१५५	२८	६	६०	२,५५१	१,४१५	३७७	५१	४६६
पश्चिमी बंगाल	१,८४७	१४	२	(अ)	(अ)	४	२४	३७	२७	(अ)	२०
हैदराबाद	१,१३१	२१	१०	४०	१०	३३	४४	८९	१२२	५	३२
कश्मीर	३,५२	२६	३३	१	(अ)	४६	२५	१	१८	२	८०
मध्य भारत	३६	१३७	३४	(अ)	—	७	४७	५९	२०	६	
मैसूर	[illegible]	२	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	४	[illegible]	[illegible]	[illegible]

८—दामोदर घाटी का बांध (बिहार और पश्चिमी बंगाल में—इस बांध में काम १९४८-४९ ई० मे लगा था। यह आशा है कि १९५४-५५ ई० तक यह बांध बन जायगा। इससे ९,६७००० एकड़ भूमि सींची जायेगी।

९—भाकरा नांगल बांध (पंजाब में)

इस बांध द्वारा ३६,००,००० एकड़ भूमि सींची जायगी। ११,३०,००० टन अनाज और ८,००,००० गांठ कपास की उपज बढ़ जावेगी। शेष ८ बांधों का श्रीगणेश अभी तक नहीं हुआ है। इनके नाम इस प्रकार से हैं:—

१—कोसी बांध (बिहार में)

इस योजना में १७७ करोड़ रुपया खर्च होगा। इससे कुल ५,३७,२०,००० एकड़ भूमि सींची जावेगी।

२—गंडक घाटी नामक बाँध (बिहार में)

इस योजना में २५ करोड़ रुपया खर्च होगा। २५,००,००० एकड़ भूमि सींची जावेगी।

३—छतप्रभा घाटी नामक बाँध (बम्बई

इस योजना में ३० करोड़ रुपया खर्च ६,०७,००० एकड़ भूमि सींची जायेगी।

४—पिपरी बाँध (उत्तर प्रदेश में)

३१ करोड़ रुपया खर्च होगा। ४०,०० एकड़ भूमि सींची जायगी।

५—राम पादसागर बाँध (मद्रास में)

१२९ करोड़ रुपया खर्च होगा २७,०० एकड़ भूमि सींची जायगी।

६—कृष्ण पेन्नार बांध (मद्रास में)

२० करोड़ रुपया खर्च होगा। ३२,०० एकड़ भूमि सींची जायेगी।

७—नरोला बाँध (बम्बई में)

१० करोड़ रुपया खर्च होगा। १८,०० एकड़ भूमि सींची जायेगी।

८—कोयना बाँध (बम्बई में)

६५ करोड़ रुपया खर्च होगा।

निम्नलिखित तालिका में हर एक प्रांत के क्षेत्र का वर्गीकरण दिया गया है जिसके देखने से हर प्रांत की भूमि सम्बन्धी दशा विदित होती है। इस प्रकार का क्षेत्र १००० एकड़ में दिया गया है :—

प्रांत या राज्य का नाम	जंगल		क्षेत्र जो खेती के योग्य नहीं है		क्षेत्र जिस में खेती नहीं होती है (ऊसर को छोड़ कर)		बंजर		बोया हुआ क्षेत्र	
	१९४७-४८	१९४८-४९	१९४७-४८	१९४८-४९	१९४७-४८	१९४८-४९	१९४७-४८	१९४८-४९	१९४७-४८	१९४८-४९
आसाम	४,२००	४,२००	४,२४८	४,२४८	१६,९९४	१७,०२८	१,८८१	१,७०८	५,२३४	५,३७१
बिहार	६,६१२	६,६१२	६,३८०	६,३८०	६,५८०	६,५८०	७,१०५	७,१०५	१७,६५३	१७,६५३
बम्बई	८,९९८	८,९१३	६,९६२	७,०५६	१,९३५	१,९३४	६,३२०	६,८८३	३३,७०१	३३,२६३
मध्य प्रदेश	२३,५७९	२३,५७२	६,२४८	५,६६५	११,७३२	१०,०९८	५,३६६	४,७८४	२८,०२५	२८,५७८
मद्रास	१३,३५०	१३,५१५	१४,३१८	१४,४२४	१२,२२२	११,८७४	१०,२४३	१०,०४९	३०,४६३	३०,९३४
उड़ीसा	२,६०६	२,४१२	६,५५६	४,७७५	३,२१८	२,९९७	१,२४५	१,४१५	६,५१७	६,४५४
पंजाब	७६९	७६९	६,१७४	६,१७२	२,४४१	२,४५४	१,८०८	२,३१५	१२,०३४	११,५२६
उत्तर प्रदेश	७,९५१	७,५०२	११,५५२	११,८५९	१०,२०३	१०,३११	२,७९७	२,७२७	३८,८८०	३९,०२९
पश्चिमी बंगाल	१,७०९	१,७०९	३,०२६	३,०४३	१,९३०	१,९२५	१,१४२	१,२४४	११,७४२	११,६२७
हैदराबाद	६,१७१	६,१८७	८,३९७	८,२३२	१,१४२	१,०१६	१३,३६३	१५,१७१	२३,८५४	२२,३२१

कश्मीर	१,७५४	४१७	५,८०५	१,०१४	५०५	४०८	५०५	४८७	५,५५८	१,०१५
मध्य भारत	२,४२६	२,७३८	३,९४६	४,८९६	३,५३८	५,०३२	१,५३८	९२७	७,६९२	८,९४६
मैसूर	१,९५७	१,९५७	५,५२८	५,७०५	१,४६७	१,४६०	१,७०५	१,८०७	६,४२४	६,४१६
पेप्सू	११६	७८	४६८	४६१	८१४	५०२	७०२	६५६	४,२५३	४,३८६
राजस्थान	६५५	६५५	४,२२३	४,२२३	४,५४४	४,५४४	२,८६२	२,८६२	८,३८५	८,३८५
सौराष्ट्र	७	७	१५५	१५५	२२२	२२२	——	——	१,०१३	१,०१३
तिरुवांकुर-कोचीन	१,५४२	१,५४२	४८३	४८२	४३५	४२९	६१	६८	२,८२०	२,८२१
अजमेर	४७	४७	५९६	५९६	२९५	३०५	१८१	२७४	४४२	३३१
भोपाल	१,००४	९८८	९१५	९१४	८२९	५९२	१३०	३८५	१,५६२	१,५५३
बिलासपुर	३६	३६	२९	२९	१३०	१३१	१२	११	७८	७८
कुर्ग	३३१	३३१	२४०	२५०	२२६	२२६	४२	४०	१६३	१६५
दिल्ली	——	——	७३	७५	३५३	५४	१५	१३	२२५	२२४
हिमाचल प्रदेश	५३४	७८७	३१०	४१२	२९६	५२७	१३४	४२	६०२	५७७
कच्छ	१०८	१०८	१,४०७	१,४०७	१,२००	१,२००	१,६०८	१,८८६	४६२	२२२
त्रिपुरा	१,७१५	१,७१५	१७	१७	५०५	५०१	३	४	३९२	३९७
विन्ध्य प्रदेश	२०३	२०३	३१५	३१५	४४०	४४०	१९२	१९२	४६०	४६०
जोड़	८८,५९२	८६,९६०	९५,६०३	९३,११५	९२,४१६	९३,२००	६०,९४२	६३,०५५	२,४५,५०४	२,४२,८३२

निम्नलिखित ब्योरा में व्यवसायिक फसलों का विवरण दिया गया है। (१००० एकड़ में)
× चिन्ह का अर्थ- ५०० एकड़ से कम क्षेत्र है।

प्रांत का नाम	गन्ना		कपास		जूट		अन्य प्रकार की रेशेदार फसलें		चाय		काफी		तम्बाकू	
	१९४७-४८	१९४८-४९	१९४७-४८	१९४८-४९	१९४७-४८	१९४८-४९	१९४७-४८	१९४८-४९	१९४७-४८	१९४८-४९	१९४७-४८	१९४८-४९	१९४७-४८	१९४८-४९
आसाम	६०	६१	३३	३१	२१०	२२५	—	९	३७५	३८९	—	—	२०	२०
बिहार	३६६	३६६	३९	३९	१४६	१२	१२	१२	४	४	—	—	११८	११८
बम्बई	२०८	१८८	१,९०७	२,१२२	×	×	६७	६६	×	—	×	—	२३६	२१३
मध्य प्रदेश	५९	५९	२,९१०	३,०५३	—	—	१०४	११८	—	—	—	—	१०	८
मद्रास	२७३	१७६	१,३०८	१,६३३	२७	३९	९८	१५०	७९	५६	६०	६०	२९४	३२२
उड़ीसा	३३	३३	९	९	२२	३१	९	१३	—	—	×	×	३१	३१
पंजाब	३९०	३०६	२९६	२३९	×	—	२२	१७	१०	९	—	—	४	५
उत्तर प्रदेश	२,३०२	२,११६	१५५	११९	१	६	२१४	२२६	६	६	—	—	५१	६०
पश्चिमी बंगाल	६३	६६	×	×	२६४	२५०	११	१३	२०९	२०९	—	—	५५	६१
हैदराबाद	१२८	९६	१,९०७	२,०४८	९३	—	२२१	३३३	—	—	—	—	२३	३१
काश्मीर	२	२	२४	६	—	—	६	२	×	—	—	—	५	२
मध्य भारत	५३	६१	७४२	१२६	४०	५४	८	३६	—	—	—	—	५	५

कारमार		१,७५५	४१७	२,८०५	१,०११		५०५	४०८		२७५	४८७	२,२५८		१,०२६
मैसूर	५२	४९	४६	६६	१	१	१४	७	५	४	१०५	१०१	२४	५
पेप्सू	६५	६७	११२	१८१	४	३	२	४	—	—	—	—	३	२
राजस्थान	२८	२८	९२	६२	—	—	१८	१८	—	—	—	—	९	९
सौराष्ट्र	५	५	४७	४७	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—
तिरुवांकुर-कोचीन	१९	१८	१५	१५	—	१	—	—	११	११	९	९	×	×
अजमेर	१	१	११	१२	×	×	×	×	—	—	—	—	×	×
भोपाल	११	१२	२६	२०	—	४	४	×	—	—	—	—	×	×
बिलासपुर	१	×	१	१	—	×	×	—	—	—	—	—	१	१
कुर्ग	×	×	—	—	—	—	—	—	×	१	४१	४१	×	×
दिल्ली	४	८	×	×	—	—	×	×	—	—	—	—	×	२
हिमाचल प्रदेश	२	३	१	१	×	×	×	×	२	२	—	—	४	३
कच्छ	१	×	२४	२४	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—
त्रिपुरा	५	५	२६	२५	११	१२	—	—	११	११	—	—	×	—
विन्ध्य प्रदेश	३	३	१	१	×	×	×	×	—	—	—	—	×	×
जोड़	४,१४०	३,७२९	९,८१२	१०,७१०	८१८	८७१	८१०	१,०२४	७९२	७८२	२२०	२०१	८९३	९१०

इस तालिका में प्रत्येक प्रान्त की बोई गई भूमि का विवरण दिया हुआ है। (१००० एकड़ में)

प्रांत का नाम	बोये हुये भूमि का कुल क्षेत्र		भूमि का वह क्षेत्र जो एक बार से अधिक बोया गया है।		बोया हुआ असल क्षेत्र	
	१९४७-४८	१९४८-४९	१९४७-४८	१९४८-४९	१९४७-४८	१९४८-४९
आसाम	६०८३	६,१९१	८४९	८२०	५,२३४	५,३७१
बिहार	२२,६०७	२२,६०७	४,९५४	४,९५४	१७,६५३	१७,६५३
बम्बई	३४,८८३	३४,४७३	१,११२	१,२१०	३३,७७१२	२३,२६३
मध्य प्रदेश	३१,२७७	३२,०३५	३,२५२	३,४५७	२८,०२५	२५,८७८
मद्रास	३५,०३३	३५,७९६	४,५५०	४,८६२	३०,४६३	३०,९३४
उड़ीसा	७,५७२	७,४५१	१,०५५	९९७	६,५१७	६,४५४
पंजाब	१४,०७६	१३,३३७	२,०४२	१,८११	१२,२३४	११,५२६
उत्तर प्रदेश	४८,१०२	४९,२०९	९,२२२	१०,१८०	३८,८८०	३९,०२९
पश्चिमी बंगाल	१३,१३६	१२,९७८	१,३९४	१,३५१	११,७४२	११,६२७
हैदराबाद	.२४,१४१	२२,५३०	२८७	२०९	२३,८५४	२२,३२१
काश्मीर	२,५५४	२,३०१	२९६	२६५	२.२५८	१,०३७

[illegible] | १,७११ | ४१७ | २,८०५ | १,०११ | ५०५ | ४०८ | ५०५ | ४८७ | ५,११८ | १,०२६

मद्रास | ५२ | ४९ | ४६ | ६६ | १ | १ | १४ | ७ | ५ | ४ | १०५ | १०१ | २४ | ५

मध्य भारत	८,३५०	९,९६१	९५८	७३५	७,६९२	८,११६
मैसूर	६,६९१	६,५९६	२६७	१४०	६,४२४	६,४४६
पेप्सू	५,०९७	४,८४४	७४४	४५८	४,३५३	४,३८४
राजस्थान	९,४५०	९,४५०	१,०६५	१,०६५	८,३८५	८,३८५
सौराष्ट्र	१,०१३	१,०१३	—	—	१,०१३	१,०१३
त्रावणकोर-कोचीन	४,०४४	३,०४६	२२४	२१७	२,८२०	२,८२९
अजमेर	४८७	४८८	४५	४९	४४२	३३९
भोपाल	१,६०२	१,६०२	४०	४९	१,५६२	१,५५३
बिलासपुर	११९	१२४	४१	४६	७८	७८
कुर्ग	१६४	१६६	१	१	१६३	१६५
दिल्ली	२९२	२५६	७७	३३	२२५	२२४
हिमाचल प्रदेश	८१७	१,०५८	२१५	४८१	६०२	५७७
कच्छ	४८३	२४५	२१	२३	४६२	२२२
त्रिपुरा	४६६	४७२	७४	७५	३९२	३९७
विन्ध्य प्रदेश	५२०	५२०	६०	६०	४६०	४६०
जोड़	२,७८,०५५	२,७७,३५५	३३,५५५	३३,४८७	२,४५,५०४	२,४३,८३२

निम्न लिखित तालिका में उन मुख्य फसलों की प्रति एकड़ उपज का विवरण दिया हुआ है जो भारत वर्ष में पैदा होती हैं।

फसल का नाम	१९४८-४९	१९४९-५०	१९५०-५१
चावल	६९८	६८८	६०५
ज्वार	३०५	३३८	३०५
बाजरा	२४६	२७३	२३५
मकई	५५१	५५९	४९८
जई	३४४	३७५	३२२
गेहूँ	५६६	५८४	६१६
जौ	६४१	६३१	६८१
चना	४९६	४०१	४३५
गन्ना	२,९०७	३,०५२	२,९५७
आलू	५,७८२	५,८९७	६,२०६
अलसी	१६२	१९१	१८०
मूंगफली	७०९	७७०	७१३
राई और सरसों	३५५	३७२	३२५
तिल	२५२	२४१	२३९
रेंड़ी	१७५	१९६	१८८
कपास	६१	८५	८३
जूट	९८६	१,०६२	९०८
तम्बाकू	७११	६८८	६७०

आसाम

आसाम ७ जिलों से मिल कर बना हुआ है। इसका क्षेत्रफल ५५,०८४ वर्गमील है। इसकी जन संख्या ९१,२९,४४२ है। इस जनसख्या में मर्दों की संख्या ४८,६९,८९८ और औरतों की संख्या ४२,५९,५६४ है। यहां की जनसख्या में २९,७०,९८९ हिन्दू, १७,१०,४२३ मुसलमान, ३,७४२ सिक्ख और ३५,७२४ ईसाइ मत के लोग सम्मलित हैं। जनसंख्या की सघनता १५० है। इस प्रात की नदियों का कछार उपजाऊ है। यहां की मुख्य उपज चावल, चाय, आलू, जूट और दालें हैं। चावल ही यहां के रहने वालों का मुख्य भोजन है। वर्षा अधिक होती है। इसी कारण से फसलों की उपज के लिये सिचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती है। १९४७-४८ ई० में चावल की खेती ४०,०३,५०३ एकड़ में होती थी। इसका क्षेत्र १९५०-५१ ई० बढ़ कर ४०,१८,३७८ एकड़ भूमि हो गया था। १९५०-५१ ई० में चाय की उपज ३,८२,१९९ एकड़ में, जूट की उपज २,४८,९६९ एकड़ में, दालों की उपज २,२१,२८० एकड़ में, आलू की उपज ५९,३८२ एकड़ में और सब प्रकार के तिलहन की उपज २३,५६,४५६ एकड़ में होती थी। ६०,०४२ एकड़ में गन्ने की खेती होती थी। यहां की पहाड़ियो पर छोटे रेशे वाली कपास की अच्छी उपज होती है।

बिहार

इसका क्षेत्रफल ७०,३६८ वर्गमील है। यहां की आबादी ४,०२,१८,९१६ है। इस प्रांत के प्रति वर्ग मील में ५७४ आदमी रहते हैं। बिहार जर्मनी से अधिक घना बसा है। इस प्रात में मुसलमानों की आबादी केवल १० प्रतिशत है। इस प्रांत के मर्दों की सख्या २,०१,७२,५६७ और औरतों की सख्या २,००,४६,३५९ है। यहां की भूमि भी खूब उपजाऊ है। किन्तु उत्तरी बिहार की भूमि इस प्रात में सबसे अधिक उपजाऊ है। उत्तरी बिहार में जनसख्या का का औसत प्रति वर्ग मील में ९०० है। यहां की जल वायु नम है। इस प्रांत के उत्तरी और पश्चिमी भाग में खेती सिचाई द्वारा होती है। यहां की प्रधान

उपज धान है। इसकी खेती १,२०,००,००० एकड़ में होती है जो कुल खेतिहर क्षेत्र का ५२ प्रतिशत भाग है। इसके अलावा इस प्रांत में अन्य फसलें भी पैदा होती हैं। १८ लाख एकड़ में मकई की खेती होती है। १६ लाख एकड़ में गेहूँ और १० लाख एकड़ में जौ की खेती होती है। सरसों, रेंडी और तिलहन आदि की खेती १५,०४,३०० एकड़ में होती है। तम्बाकू और जूट की भी पैदावार इस प्रांत में होती है। तम्बाकू की खेती ५५,००० एकड़ और जूट की खेती ३ लाख एकड़ में होती है।

बम्बई

इसका क्षेत्रफल १,१५,५७० वर्ग मील है। जन संख्या ३,५९,५६,१५० है। आबादी का औसत प्रति वर्ग मील में ३२३ है। यहां पर वर्षा २० इंच से २५० इंच तक होती है। यहां के रहने वालों का मुख्य व्यवसाय खेती करना है। यहां की भूमि काली है। यहां की मुख्य उपज चावल, गेहूँ- चना, मकई गन्ना और बाजरा आदि है इस प्रांत में खेतिहर भूमि का क्षेत्र ४,१०,००,००० एकड़ है। १०,००,००० एकड़ क्षेत्र में एक से अधिक बार फसलों की उपज होती है। इस प्रांत में ज्वार की खेती अन्य फसलों से अधिक होती है। इसके अलावा यहां पर कपास मूंगफली, मसाला, तम्बाकू अलसी, तिलहन, रेंडी राई, सरसों और चारावाली फसलों की उपज होती है। इनका विवरण अलग तालिका में दिया गया है।

फसल का नाम	क्षेत्र (१००० टन में)	फसल का नाम	क्षेत्र (१००० टन में)	फसल का नाम	क्षेत्र (१००० टन में)
ज्वार	८,४४७	चावल	१,९५०	चना	६६२
बाजरा	४,३१०	गेहूँ	१,४३४	मडुवा	५२२
मक्का	२१५	फल और तरकारियां	२३६	फुटकर फसलें	६
दालें	३ १६०	गन्ना	१८५	कपास	१,६३१
अलसी	६७	तम्बाकू	१२५	मूंगफली	१,८०७
रेंडी	४१	तिल	१४०	मसाला	२१८
सरसों	२	चारा वाली फसल	९१२	रेशावाली फसलें	६१

इस प्रांत में ४३,६१,६०४ बैल, २८,२५,६०४ गाय, २५,८७,७१६ बछवे, २,८५,८३७ भैंसे, १८,१९,६०५ गायबैल, २६,९८,८१७ भेड़ और ३४,८६,५९८ बकरियां हैं। इस प्रांत की ५,९३,००० एकड़ भूमि जो खेती योग्य नहीं थी अब खेती योग्य बना लि गई है। ५०,००० एकड़ भूमि में खेती स्थायी रूप से होने लगी है। सरकार के पास २५६ ट्रक्टर हैं। फरवरी १९५० ई० में २६,१०० एकड़ भूमि ट्रक्टरों द्वारा जोती गई थी। १,६४,००० एकड़ भूमि कुओं और नहरों द्वारा सींची गई थी।

मध्य प्रदेश

इस प्रांत का क्षेत्रफल इसके १,६२,०२९ वर्ग मील है। यहां की जनसंख्या २,१३,२७,८९८ है। इसके उत्तर-पश्चिम में विन्ध्य पठार है। इसमें जंगल पाये जाते हैं। इस देश में सतपुड़ा पठार जंगलों से ढका हुआ है। इस देश के दक्षिणी-पूर्वी भाग में २४,००० वर्ग मीलों में जंगल पाये जाते हैं। इस देश के ९५ प्रतिशत भाग मे जंगल मिलते हैं। कुल खेतिहर भूमि के ६७.७ प्रतिशत भाग में खेती होती है। यहां की मुख्य उपज चावल है। इसकी खेती २४.६ प्रतिशत भाग में होती है। ज्वार की खेती १०.४ प्रतिशत गेहूँ की खेती ६.३ प्रतिशत और कपास की खेती २.८ प्रतिशत भाग में होती है। दालें और तिलहन आदि की उपज कुल खेतिहर क्षेत्र के ४२.प्रतिशत भाग मे होती है। वरार प्रदेश मे कपास की पैदावार ३३.६ प्रतिशत और ३७.१ प्रतिशत ज्वार की उपज होती है। यहां के रहने वालो का मुख्य व्यवसाय खेती करना है। यहां की मुख्य उपज फल, भी है।

मद्रास

इसका क्षेत्रफल १,२७,७६८ वर्ग मील है। यहा की जनसख्या ५,६९ ५२,३३२ है। खेती इस प्रात के रहने वालो का मुख्य व्यवसाय है। ३,१३,०७,६५७ एकड़ भूमि मे खेती होती है जो कुल खेतिहर भाग का ३८.८ प्रतिशत भाग है। ९८,८६०४५ एकड़ भूमि वजर है जो इस प्रात की कुल भूमि का १२ ३ प्रतिशत भाग होता है। ९१,७१,११५ एकड़ भूमि या ११.९ प्रतिशत भाग खेती योग्य नहीं है। १,३८,१४३०४ एकड़ या इस प्रांत के १७.१ प्रतिशत भाग में जंगल हैं। यहां के लोगो का मुख्य भोजन चावल और वाजरा है। १९४९-५० ई० में चावल १,०५,९८,६४६ एकड़ भूमि मे बोया गया था ६०,४५,०८० टन चावल की उपज हुई थी। ज्वार की खेती १,१८,०२,१९३ एकड़ के उपज २८,६७,०१० टन, दालों की खेती २९,६८.५८३ एकड़ में उपज २,४२,३१० टन, गन्ना की खेती १,८१,२८६ एकड़ मे आलू की खेती १८,९८१ टन में, उपज ४७,८३० टन, सकरकन्द की खेती ४०,९७८ एकड़ में और उपज १,२६,८०० टन हुई थी। १९४८-४९ ई० में व्यवसायिक फसलों का विवरण निम्नलिखित तालिका में दिया हुआ है।

फसल का नाम	क्षेत्र (एकड़ में)	उपज (टन मे)	फसल का नाम	क्षेत्र (एकड़ मे)	उपज (टन में)
मूंगफली	३७,६७,१२३	१५,६७,०४०	नारियल	६,३३,०४३	१,५६,५९२
कपास	१६,९१,००१	४,४७,७८०	तम्बाकू	३,४५,३४४	१,१८,८५०
तिल	७,५९,३५९	८९,३९०	काली मिर्च	९८,५६८	७,९६०
कहवा	८५.६४४	९,६७०			

इस प्रान्त में आम, केला और खट्टे फलो की उपज बहुत होती है। १९४८-४९ ई० मे केला की खेती १,५९,७९० एकड़ भूमि मे की गई थी। उपज ११,५०,४९० टन थी। आमके बाग २,५४,८६६ एकड़ मे थे जिनसे ६१,१०,५०० टन आम मिला था। खट्टे फलों की खेती ५५,७०३ एकड़ में की गई थी। उपज ७२,४०० टन थी। इस प्रांत में खेती सिंचाई द्वारा भी होती है। इस प्रांत में १,६३,५३,९१४ गाय-बैल, ६२,८९,३२५ भैंस, १,०५,६९,१८९ भेड़, ६०,८७,६५० बकरे, ५०,०१६ घोड़े और २५९ खच्चरें।

उड़ीसा

इस प्रान्त का क्षेत्रफल ५९,८६९ वर्गमील है। यहाँ की जनसंख्या १,४६,४४,२९३ है। इस प्रान्त में मर्दों की संख्या ७२,४०,००८ और औरतों की संख्या ७४,०४,२,२८५ है। यहाँ के रहने वालों का मुख्य व्यवसाय खेती करना है। इस देश में खेती की उन्नति के लिये भिन्न-भिन्न योजनायें भी निकाली गई हैं। इसकी देख-रेख संचालक कृषिविभाग करता है। इन योजनाओं में बेकार पड़ी हुई भूमि को जोतना, खेतों में से खाद डालना और अच्छी भेणी के बीजों को बोना आदि है। १९५१-५२ ई० में २,३३,४३१ एकड़ भूमि खेती योग्य बनाई गई थी। १९५२-५३ ई० में ३,९२,९५० एकड़ भूमि को जोतने की योजना थी। इस प्रकार अन्न की उपज में भी वृद्धि हो जायेगी। यहाँ की मुख्य उपज गन्ना, जूट, दालें और चावल है।

पंजाब

इस प्रान्त में कुल १३ जिले है। इसका क्षेत्रफल ३७,४३० वर्गमील है। जनसंख्या १,२६,३८,६११ है। इस प्रान्त में खेती अधिकतर सिंचाई के ऊपर निर्भर रहती है। यहाँ पर जाड़ा और गर्मी दोनों अधिक पड़ते हैं। यहाँ पर वर्षा १५ से २५ इंच तक होती है। ७.५ लाख एकड़ भूमि जंगलों से ढकी हुई है। इस प्रान्त की मुख्य उपज गेहूँ है। चना भी अन्य फसलों की अपेक्षा अधिक पैदा होता है। इस प्रान्त मे १९४८-४९ ई० में २,३२,३५,८००, एकड़ भूमि थी जिसका वर्गीकरण निम्न प्रकार से था।—

जंगल	७,६९,३०० एकड़ में
जिस भूमि में खेती नहीं होती थी	६१,७२,१०० ,,
जो भूमि खेती योग्य न थी	२४,५४,५०० ,,
ऊसर	२३,१४,३००
बोया हुआ क्षेत्र	१,१५,२५,६००

१९४८-४९ ई० में खेती १,३३,३७,२०० एकड़ भूमि में की गई थी। इसके ४६,३३,४०० एकड़ भूमि में खेती की उपज सिंचाई द्वारा हुई थी। इस प्रान्त की मुख्य पैदावार गेहूँ, ज्वार, मक्का, चना, तिलहन गन्ना, कपास और चावल है। इसका विवरण निम्न प्रकार की तालिका में दिया गया है।

फसल का नाम	क्षेत्र (एकड़ में)	उपज (टन में)	फसल का नाम	क्षेत्र (एकड़ में)	उपज (टन में)
चावल	२,७७,५००	१,५५,१००	जौ	४,१०,५००	१,१५,०००
ज्वार	४,५६,३००	६१,४००	बाजरा	२०,९२,१००	२,२६,१००
मक्का	७,६०,७००	२,५३,३००	चना	३०,१६,९००	७,२२,४००
तिलहन	२,३८,८००	४२,५००	गन्ना	३,०५,६००	३,४६,०००
कपास(देशी)	१,९४,०००	६१,०००(गाठें)	कपास (अमरीकन)	४४,८००	१६,७०० (गाठें)

इस प्रान्त की २६,०१,६०० एकड़ भूमि सरकारी नहरों द्वारा, ३,१८,३०० एकड़ भूमि प्राइवेट नहरों द्वारा, ६,८०० एकड़ भूमि तालाबों द्वारा, १६,५३,९०० एकड़ भूमि कुओं द्वारा और २६,१०० एकड़ भूमि अन्य साधनों द्वारा सींची गई थी।

उत्तर प्रदेश

इसका क्षेत्रफल १,१२,५२३ वर्गमील है। यहाँ की जनसंख्या ६,३२,५४,११८ है। इस प्रान्त मे गंगा जमुना का मैदान अधिक उपजाऊ है। यहां की औसत उपज प्रति वर्ग मील में ५४२ से ७५३ तक है। इस प्रान्त के पश्चिमी भाग की जनसंख्या प्रतिवर्ग मील में ५५५ है। यहां के लोगों का मुख्य व्यवसाय खेती करना है। ७० प्रतिशत लोग अपने जीवन का निर्वाह खेती के ही द्वारा करते हैं। भूमि उपजाऊ होने के कारण खेती की उपज अच्छी होती है। इस प्रदेश की मुख्य पैदावार चावल, गन्ना, कपास, मकई, चना, जौ, तिलहन, दालें और आलू है। वर्षा ४० से ५० इंच तक होती है किन्तु, कहीं-कहीं पर वर्षा २५ से ३० इंच तक होती है।

पश्चिमी बंगाल

इस प्रान्त का क्षेत्रफल २९,४७६ वर्गमील है। जनसंख्या २,४७,८६,६८३ है। यहां के रहने वालों का मुख्य व्यवसाय खेती करना है। इस प्रान्त मे मर्दों की सख्या १,३३,१९,९४१ और औरतों की संख्या १,१४,६६,७४२ है। जनसख्या का औसत प्रति वर्गमील मे १११.७ है। यहां की मुख्य उपज चावल, जूट, तिलहन और चाय है।

हैदराबाद

इसका क्षेत्रफल ८२,३१३ वर्ग मील है। जनसंख्या १,८६,५२,९६४ है। इस पूर्वी भाग की भूमि बलुही है। इस देश का पश्चिमी भाग काली मिट्टी से बना हुआ है। तिलगाना क्षेत्र की भूमि पहाड़ी है। इस भाग मे खेती सिंचाई द्वारा होती है। गर्मी के मौसम मे नदियां सूख जाती हैं। पानी को जमा करने के लिये तालाब और कुंड बने हुये हैं। इन पानी एकत्रित कर लिया जाता है जो सिंचाई आदि के काम में आता है। यहा पर बड़े तालाबों की संख्या ७,८८१ और छोटे तालाबों की सख्या २५,२३८ है। करनाटक भाग की भूमि उपजाऊ है किन्तु पानी की कमी है। इस कारण से खेती बहुत कम होती है। यही दशा मरठवाड़ा क्षेत्र मे भी है। तिलगाना क्षेत्र मे वार्षिक चार फसलें होती हैं—खरीफ, रबी, अबी और तबी किन्तु मरठवाडा क्षेत्र मे केवल दो फसलों की उपज होती है। खरीफ की फसलों में ज्वार, मूँगफली, कपास, बाजरा, मूँग तूर, रेंडी, कुलती, तिल, मकई, उर्द, चना और कुदरु है। रबी की फसलों मे कपास, सफेद ज्वार, चना, अलसी, गेहूँ, तम्बाकू और गन्ना इत्यादि हैं। इस देश मे कुल खेतीहर क्षेत्र २,४३,६४,००० एकड़ है। १२,८७,००० एकड़ भूमि मे धान, ७२,५२,००० एकड़ भूमि मे ज्वार, १६,३८,००० एकड़ मे मूँगफली, २४,१८,००० एकड़ भूमि मे कपास, ८,३२,००० एकड़ भूमि मे रेंडी, ८९,००० एकड़ भूमि मे गन्ना और २८,००० एकड भूमि मे तम्बाकू की उपज होती है। १४,८८,००० एकड़ भूमि मे खेती सिंचाई द्वारा होती है। यहाँ पर १,१३,२५,५०० गाय-बैल हैं।

काश्मीर

इस राज्य का क्षेत्रफल ४०,२१,६१६ वर्गमील है। जो हैदराबाद राज्य के क्षेत्रफल से ५५ वर्ग मील कम है। आबादी की औसत ४८ प्रति वर्ग मील है। यहाँ की जलवायु मनोहर है। इस राज्य की ७५ प्रतिशत भूमि जंगलों से ढकी हुई है। यहाँ के रहने वालों का मुख्य व्यवसाय खेती करना है। खेती योग्य भूमि ५ ६ प्रतिशत है। भूमि भी अधिक उपजाऊ है। २३,००,००० एकड़ भूमि मे अनाज की उपज होती है। यहाँ पर चावल, मकई, गेहूँ और फल की उपज होती है।

मध्य भारत

इस प्रान्त का क्षेत्रफल ४६,७१० वर्गमील है। यहा की जनसख्या ७९,४१,६४२ है। वर्षा समान रूप से नहीं होती है। वर्षा का औसत १५ से ५० इंच तक रहता है। इसके दक्षिणी भाग मे वर्षा ३० से ५० इंच तक होती है। यहा के लोगों का मुख्य व्यवसाय खेती करना है। आबादी का ७५ प्रतिशत भाग खेती के काम मे लगा रहता है। यहाँ की मुख्य उपज गेहूँ, कपास, ज्वार, चना, बाजरा, चावल, तिलहन, मूँगफली. गन्ना, दालें और अफीम है। इस प्रान्त के आम, अमरुद और नीबू मुख्य फलों मे माने जाते हैं। खेती योग्य भूमि का क्षेत्र

उड़ीसा

इस प्रान्त का क्षेत्रफल ५९,८६९ वर्गमील है। यहाँ की जनसंख्या १,४६,४४,२६३ है। इस प्रान्त में मर्दों की संख्या ७२,४०,००८ और औरतों की संख्या ७४,०४,२,२८५ है। यहाँ के रहने वालों का मुख्य व्यवसाय खेती करना है। इस देशों में खेती की उन्नति के लिये भिन्न-भिन्न योजनायें भी निकाली गई हैं। इसकी देख-रेख संचालक कृषिविभाग करता है। इन योजनाओं में बेकार पड़ी हुई भूमि को जोतना, खेतों में मे खाद डालना और अच्छी श्रेणी के बीजों को बोना आदि है। १९५१-५२ ई० में २,३३,४३१ एकड़ भूमि खेती योग्य बनाई गई थी। १९५२-५३ ई० में ३,९२,९५० एकड़ भूमि को जोतने की योजना थी। इस प्रकार अन्न की उपज में भी वृद्धि हो जायेगी। यहाँ की मुख्य उपज गन्ना, जूट, दालें और चावल है।

पंजाब

इस प्रान्त में कुल १३ जिले है। इसका क्षेत्रफल ३७,४३० वर्गमील है। जनसंख्या १,२६,३८,६११ है। इस प्रान्त में खेती अधिकतर सिंचाई के ऊपर निर्भर रहती है। यहां पर जाड़ा और गर्मी दोनों अधिक पड़ते हैं। यहाँ पर वर्षा १५ से २५ इंच तक होती है। ७.५ लाख एकड़ भूमि जंगलों से ढकी हुई है। इस प्रान्त की मुख्य उपज गेहूँ है। चना भी अन्य फसलों की अपेक्षा अधिक पैदा होता है। इस प्रान्त में १९४८-४९ ई० में २,३२,३५,८०० एकड़ भूमि थी जिसका वर्गीकरण निम्न प्रकार से था।—

जंगल	७,६९,३०० एकड़ में
जिस भूमि में खेती नहीं होती थी	६१,७२,१०० ,,
जो भूमि खेती योग्य न थी	२४,५५,५०० ,,
ऊसर	२३,७४,३००
बोया हुआ क्षेत्र	१,१५,२५,६००

१९४८-४९ ई० में खेती १,३३,३०,२०० एकड़ भूमि में की गई थी। इसके ४६,३३,४०० एकड़ भूमि में खेती की उपज सिंचाई द्वारा हुई थी। इस प्रान्त की मुख्य पैदावार गेहूँ, ज्वार, मकई, चना, तिलहन गन्ना, कपास और चावल है। इसका विवरण निम्न प्रकार की तालिका में दिया गया है।

फसल का नाम	क्षेत्र (एकड़ में)	उपज (टन में)	फसल का नाम	क्षेत्र (एकड़ में)	उपज (टन में)
चावल	२,७०,५००	१,५५,१००	जौ	४,१०,५००	१,१५,०००
ज्वार	४,५६,३००	६१,४००	बाजरा	२०,९२,१००	२,२६,१००
मक्का	७,६०,७००	२,५३,३००	चना	३०,१६,९००	७,२२,४००
तिलहन	२,३८,८००	४२,७००	गन्ना	३,०५,७००	३,४६,०००
कपास(देशी)	१,९४,०००	६१,०००(गाठें)	कपास (अमरीकन)	४४,८००	१६,७०० (गाठें)

इस प्रान्त की २६,०५,६०० एकड़ भूमि सरकारी नहरों द्वारा, ३,१८,३०० एकड़ भूमि प्राइवेट नहरों द्वारा, ६,८०० एकड़ भूमि तालाबों द्वारा, १६,५३,९०० एकड़ भूमि कुओं द्वारा और २६,१०० एकड़ भूमि अन्य साधनों द्वारा सींची गई थी।

उत्तर प्रदेश

इसका क्षेत्रफल १,१२,५२३ वर्गमील है। यहाँ की जनसख्या ६,३२,५४,११८ है। इस प्रान्त मे गगा जमुना का मैदान अधिक उपजाऊ है। यहां की औसत उपज प्रति वर्ग मील में ५४२ से ७५३ तक है। इस प्रान्त के पश्चिमी भाग की जनसख्या प्रतिवर्ग मील में ५५५ है। यहा के लोगो का मुख्य व्यवसाय खेती करना है। ७० प्रतिशत लोग अपने जीवन का निर्वाह खेती के ही द्वारा करते हैं। भूमि उपजाऊ होने के कारण खेती की उपज अच्छी होती है। इस प्रदेश की मुख्य पैदावार चावल, गन्ना, कपास, मकई, चना, जौ, तिलहन, दालें और आलू है। वर्षा ४० से ५० इंच तक होती है किन्तु, कहीं-कहीं पर वर्षा २५ से ३० इंच तक होती है।

पश्चिमी बंगाल

इस प्रान्त का क्षेत्रफल २९,४७६ वर्गमील है। जनसख्या २,४७,८६,६८३ है। यहा के रहने वालो का मुख्य व्यवसाय खेती करना है। इस प्रान्त मे मर्दों की संख्या १,३२,१९,९४१ और औरतो की संख्या १,१४,६६,७४२ है। जनसंख्या का औसत प्रति वर्गमील मे १११.७ है। यहां की मुख्य उपज चावल, जूट, तिलहन और चाय है।

हैदराबाद

इसका क्षेत्रफल ८२,३१३ वर्ग मील है। जनसख्या १,८६,५२,९६४ है। इस पूर्वी भाग की भूमि बलुही है। इस देश का पश्चिमी भाग काली मिट्टी से बना हुआ है। तिलगाना क्षेत्र की भूमि पहाड़ी है। इस भाग में खेती सिंचाई द्वारा होती है। गर्मी के मौसम मे नदियां सूख जाती हैं। पानी को जमा करने के लिये तालाब और कुंड बने हुये हैं। इन पानी एकत्रित कर लिया जाता है जो सिंचाई आदि के काम मे आता है। यहा पर बड़े तालाबो की संख्या ७,८८१ और छोटे तालाबों की संख्या २५,२३८ है। करनाटक भाग की भूमि उपजाऊ है किन्तु पानी की कमी है। इस कारण से खेती बहुत कम होती है। यही दशा मरठवाड़ा क्षेत्र मे भी है। तिलगाना क्षेत्र मे वार्षिक चार फसलें होती हैं—खरीफ, रबी, अबी और तबी किन्तु मरठवाडा क्षेत्र मे केवल दो फसलो की उपज होती है। खरीफ की फसलो मे ज्वार, मूँगफली, कपास, बाजरा, मूंग तूर, रेंडी, कुलती, तिल, मकई, उर्द, चना और कुदरु है। रबी की फसलो मे कपास, सफेद ज्वार, चना, अलसी, गेहूँ, तम्बाकू और गन्ना इत्यादि हैं। इस देश में कुल खेतीहर क्षेत्र २,४३,६४,००० एकड़ है। १२,८७,००० एकड़ भूमि मे धान, ७२,५२,००० एकड़ भूमि में ज्वार, १६,३८,००० एकड़ में मूँगफली, २४,१८,००० एकड़ भूमि में कपास, ८,३२,००० एकड़ भूमि मे रेंडी, ८९,००० एकड़ भूमि में गन्ना और २८,००० एकड भूमि मे तम्बाकू की उपज होती है। १४,८८,००० एकड भूमि मे खेती सिंचाई द्वारा होती है। यहाँ पर १,१३,२५,५०० गाय-बैल हैं।

काश्मीर

इस राज्य का क्षेत्रफल ४०,२१,६१६ वर्गमील है। जो हैदराबाद राज्य के क्षेत्रफल से ५५ वर्ग मील कम है। आबादी की औसत ४८ प्रति वर्ग मील है। यहाँ की जलवायु मनोहर है। इस राज्य की ७५ प्रतिशत भूमि जगलो से ढकी हुई है। यहाँ के रहने वालो का मुख्य व्यवसाय खेती करना है। खेती योग्य भूमि ५६ प्रतिशत है। भूमि भी अधिक उपजाऊ है। २३,००,००० एकड भूमि में अनाज की उपज होती है। यहाँ पर चावल, मकई, गेहूँ और फल की उपज होती है।

मध्य भारत

इस प्रान्त का क्षेत्रफल ४६,७१० वर्गमील है। यहां की जनसख्या ७९,४१,६४२ है। वर्षा समान रूप से नहीं होती है। वर्षा का औसत १५ से ५० इच तक रहता है। इसके दक्षिणी भाग मे वर्षा ३० से ५० इच तक होती है। यहा के लोगों का मुख्य व्यवसाय खेती करना है। आबादी का ७५ प्रतिशत भाग खेती के काम में लगा रहता है। यहाँ की मुख्य उपज गेहूँ, कपास, ज्वार, चना, बाजरा, चावल, तिलहन, मूँगफली, गन्ना, दालें और अफीम है। इस प्रान्त के आम, अमरुद और नीबू मुख्य फलो मे माने जाते हैं। खेती योग्य भूमि या क्षेत्र

८९,५५,६४३ एकड़ ऊसर भूमि का क्षेत्र ११,०९,९५१ एकड़ और ६६,६८,८६६ एकड़ भूमि में खेती नहीं होती है। इस प्रान्त ने भारतवर्ष के अन्य प्रान्तों की भाँति खेती की पैदावार बढ़ाने के लिये योजनायें बनाई जा रही हैं। १९५१ ई० में ३९,००० एकड़ भूमि जोतकर खेती योग्य बनाई गई है। ४,५०० एकड भूमि के जंगलों को साफ कर के खेती योग्य बनाया गया है। ७५,००० एकड़ भूमि सरकारी ट्रैक्टरों द्वारा जोत कर खेती योग्य बनाई गई है। खेती की उन्नति के लिये १९५१ ई० में १,४५,००० मन अच्छे बीज और ६६,१७३ टन खाद किसानों को दिया गया था। गन्ने की खेती में ३,००० एकड़ भूमि और कपास की खेती में १,५०,००० एकड़ भूमि की वृद्धि हुई है। जंगलों का क्षेत्र १२,००० वर्ग मील है। यहाँ के जंगलों में अच्छी-अच्छी लकड़ियाँ मिलती हैं।

मैसूर

इसका क्षेत्रफल २९,४५८ वर्गमील है। यहाँ की जनसंख्या ९०,७१,६७८ है। यहाँ के लोगों का मुख्य व्यवसाय खेती करना है। आबादी का ७५ प्रतिशत भाग खेती के काम में लगा रहता है। वर्षा भी अधिक होती है। सदा बहार वाले घने जंगल भी पाये जाते हैं। यहां की मुख्य उपज चावल, गन्ना, काफी, कपास और नारियल है।

पटियाला और पूर्वी पंजाब

इसका क्षेत्रफल १०,०९९ वर्गमील है। जनसंख्या ३४,६८,६३१ है। यह एक खेतिहर प्रान्त है। यहाँ के लोगों का व्यवसाय खेती करना है। यहाँ की मुख्य फसलें गेहूँ, चना, गन्ना, कपास, आलू, जौ, जई, बाजरा, मकई और दालें हैं। इस प्रांत में भारत के अन्य प्रांतों की अपेक्षा चौपाये भी अधिक हैं। आठ लाख एकड़ भूमि बेकार पड़ी रहती है। यह भूमि खेती योग्य नहीं है। इसको उपजाऊ बनाने के लिये ३,००,००,००० रु० खर्च करने की योजना है। अभी तक केवल ५८,००० लाख एकड़ जमीन जोती गई है। इस प्रांत का वह भाग जो जमुना और व्यास नदियों के बीच में स्थित है उपजाऊ है। इस प्रांत में वर्षा की भी कमी है। अनाज की पैदावार के लिये सिंचाई की आवश्यकता रहती है। भारत सरकार ने सिंचाई के साधनों में वृद्धि करने के लिये तीस लाख रुपया दिया है।

राजस्थान

इसका क्षेत्रफल १,२८,४२४ वर्गमील है। जन संख्या १,५०,९७८ है। इसका उत्तरी-पश्चिमी भाग पथरीला है। वर्षा भी बहुत कम होती है। इस प्रांत का यह क्षेत्र उपजाऊ भी नहीं है। इस प्रान्त के पश्चिमी भाग में केवल रेगिस्तान ही रेगिस्तान है। इस देश का पूर्वी भाग इसके अन्य भागों की अपेक्षा अधिक उपजाऊ है। यहाँ पर गर्मी में अधिक गर्मी और जाड़े में अधिक जाड़ा पड़ता है। इस प्रांत में शहतूत, इमली, अमरूद और आम के पेड़ पाये जाते हैं। मुख्य उपज बाजरा और ज्वार है। पश्चिमी और उत्तरी भागों में बाजरा की एक प्रधान फसल है। इसके अलावा मकई, मूंग, कपास और मोठ भी यहाँ पर पैदा होती है। एक प्रकार का मोटा चावल भी इस प्रांत में होता है। इसकी उपज के लिये अधिक पानी की आवश्यकता नहीं होती है। रबी में होने वाली फसलों में गेहूँ, जौ, चना, गन्ना, पोस्ता, तम्बाकू, सन और नील हैं। इसके अलावा तिल, अलसी, सरसों और रेंडी भी पैदा होती है। प्याज, आलू, टमाटर, आम, संतरा, आम, अमरूद और नीबू भी अधिक पैदा होता है।—

सौराष्ट्र

इसका क्षेत्रफल २१,०६२ वर्गमील है। जन-संख्या ४१,३६,००५ है। यह एक पहाड़ी प्रांत है। खेती योग्य उपजाऊ भूमि बहुत कम है। यहाँ की मुख्य नदी भादर है। इस के किनारे-किनारे जो भूमि है वह अधिक उपजाऊ है। इस क्षेत्र में खेती की उपज भी अच्छी होती है। यहाँ के लोगों का मुख्य व्यवसाय खेती करना है। इस प्रांत की आय का खेती एक विशेष साधन है। गेहूँ, बाजरा, ज्वार, मूंगफली और कपास यहाँ की मुख्य उपज है।

तिरुवांकुर-कोचीन

इस राज्य का क्षेत्रफल ९,१५५ वर्गमील है। वहाँ की जनसंख्या ९,१५५ है। यहाँ मध्यम प्रकार की

जलवायु पाई जाती है। वर्षा अधिक होती है। खेती यहाँ के रहने वालो का मुख्य व्यवसाय है। इस राज्य की मुख्य उपज चावल, सोया बीन, चना, काली मिर्च और चाय है। इस देश के रहनेवालो का मुख्य भोजन चावल है। इसके अलावा यह राज्य फल की उपज के लिये भी प्रसिद्ध है। यहाँ के जंगलों मे सागू और देवदार आदि के पेड़ भी हैं। इन जंगली लकड़ियों से व्यापार भी होता है।

अजमेर

इसका क्षेत्रफल २,४२५ वर्गमील है। यहाँ कि जनसख्या ६,९२,५०६ है इस राज्य मे वर्षा भी बहुत कम होती है। यहाँ की मुख्य उपज मकई, ज्वार, जौ, कपास, तिलहन, गेहूँ, बाजरा, जीरा, मिर्च और तिलहन है।

अंडमान और निकोबार

इन द्वीप समूहो का क्षेत्रफल ३,१४३ वर्गमील है। यहाँ की जनसंख्या ३०,९६३ है। यहाँ न गर्मी मे अधिक गर्मी और न जाड़े मे अधिक जाड़ा पड़ता है। वर्षा लगभग १३० इच तक होती है। वर्षा साल भर में ६ से ८ महीना तक होती है। यहाँ की मुख्य उपज चावल है। इसकी खपत का आधा चावल अब यहाँ पर पैदा होने लगा है। यह द्वीप समूह जंगली लकड़ियो के लिये प्रसिद्ध है। रबड़ और नारियल के पेड़ भी मिलते हैं। इसके अलावा केला और खट्टे फलों की भी उपज होती है।

भोपाल

इसका क्षेत्रफल ३,९२१ वर्गमील है। यहाँ की जनसख्या ८,३८,१०७ है। यहाँ की जलवायु मध्यम प्रकार की है। वर्षा ३० इच से ५० इंच तक होती है। भूमि अधिक उपजाऊ है। इस देश की भूमि का ६६ प्रतिशत भाग खेती योग्य है। यहाँ की मुख्य उपज गन्ना, तम्बाकू और गेहूँ है। यहाँ पर जंगल अधिक घने पाये जाते हैं। इनमे मूल्यवान् लकड़ियां मिलती हैं। यहाँ की उपज बढ़ाने के लिये भिन्न-भिन्न योजनायें भी काम मे लाई जा रही हैं।

कुर्ग

इस राज्य का क्षेत्रफल १,५९३ वर्गमील है। जनसख्या २,२९,२५५ है। यह एक पहाड़ी राज्य है। वर्षा का औसत ८० इंच से १२० इंच तक रहता है। यहाँ की मुख्य पैदावार धान, काफी, संतरा और काली मिर्च है।

हिमाचल प्रदेश

इस राज्य का क्षेत्रफल १०,६०० वर्गमील है। जनसख्या ९,८९,४३७ है। यहाँ के जगलों में मूल्य वान लकड़ियां अधिक मिलती हैं। इन लकड़ियो सें कोयला भी बनाया जाता हैं। यहां की मुख्य उपज आलू और फल है।

कच्छ

इस राज्य का क्षेत्रफल १७,००० वर्गमील है। जनसंख्या ५,६७,८०४ है। यहाँ पर खेती योग्य भूमि कुछ अधिक है। कपास, बाजरा, जौ और गेहूँ की पैदावार होती है। यहां के लोगों का मुख्य व्यवसाय खेती करना है।

मनीपुर

इस राज्य का क्षेत्रफल ८,७२० वर्ग मील है। जनसख्या ५,७९,०५८ है। साल भर मे वर्षा का औसत ६५ इच रहता है। भूमि उपजाऊ है। चावल अधिक पैदा होता है।

त्रिपुरा

इस राज्य का क्षेत्रफल ४,०४९ वर्ग मील है। जनसंख्या ६,४६,९३० है। यहां की मुख्य उपज धान, जूट, कपास, चाय और फल है।

विन्ध्य प्रदेश

इस राज्य का क्षेत्रफल २४,६०० वर्गमील है। जनसंख्या ३५,७७,४३१ है। यहां की भूमि अधिक उपजाऊ नहीं है। गेहूँ, चना, तिलहन, चावल, मकई, कोदो, कपास और बाजरा की पैदावार होती है। इस राज्य का दक्षिणी-पूर्वी भाग अपने जंगलो के लिये प्रसिद्ध है।

पाकिस्तान

पाकिस्तान एक खेतिहर देश है। इस देश के लोगों का मुख्य व्यवसाय खेती करना है। ८० प्रतिशत लोग अपना निर्वाह खेती पर ही करते हैं। चावल पाकिस्तान की एक प्रधान फसल है। इसकी खेती अन्न वाली फसलों की ५० प्रतिशत होती है। चावल अधिकतर पूर्वी पाकिस्तान में पैदा होता है। यहां पर कुल खेती वाले क्षेत्र के ९७ प्रतिशत में चावल की खेती होती है। पूर्वी पाकिस्तान वालों का मुख्य भोजन चावल है। यद्यपि पूर्वी पाकिस्तान में ९७ प्रतिशत चावल की उपज होती है फिर भी यहां पर चावल की कमी रहती है। इस कमी की पूर्ति पश्चिमी पाकिस्तान से होती है। पश्चिमी पाकिस्तान में पूर्वी पाकिस्तान की अपेक्षा चावल कम पैदा होता है फिर भी यह पूर्वी पाकिस्तान की कमी को पूरा कर देता है। इसका कारण यह है कि पश्चिमी पाकिस्तान में मे लोगों का मुख्य भोजन गेहूँ है जो यहां पर बहुत पैदा होता है। पश्चिमी पाकिस्तान गेहूँ की अपेक्षा चावल की खपत बहुत कम होती है।

गेहूँ—पाकिस्तान में गेहूँ भी बहुत पैदा होता है। इसकी उपज की गणना चावल की अपेक्षा दूसरी श्रेणी में होती है। पाकिस्तान में जो खेती वाले क्षेत्र हैं उनके २५ प्रतिशत भाग मे गेहूँ की खेती होती है। पश्चिमी पाकिस्तान गेहूँ की उपज के लिये प्रसिद्ध है। यहां पर ९९ प्रतिशत में गेहूँ के खेत पाये जाते हैं। गेहूँ की पैदावार यहां की खपत से अधिक होती है। इसी कारण से गेहूँ यहां से दूसरे देशों को भी भेजा जाता है। इसके अलावा चना भी यहां खूब पैदा होता है। मक्का, ज्वार, बाजरा और जौ की फसलें भी होती हैं। पाकिस्तान अपनी रेशा वाली फसलों की उपज के लिये प्रसिद्ध है। इस श्रेणी में कपास और जूट का एक मुख्य स्थान है। इसकी उपज के लिये सिंध की घाटी बहुत प्रसिद्ध है। यहां पर कपास दो प्रकार की होती है। एक अमरीकन कपास और दूसरी देशी कपास है। पाकिस्तान के अधिक क्षेत्र में अमरीकन कपास की खेती होती है। यह क्षेत्र कुल कपास की उपज वाले क्षेत्र का ८० प्रतिशत भाग है। कपास की पैदावार का कुल क्षेत्र ३०,९१,००० एकड़ है। साल भर में कपास की पैदावार १२,५०,००० गांठे होती है। प्रत्येक गांठ ४०० पौंड रुई रहती है।

जूट—पाकिस्तान की एक प्रसिद्ध व्यवसायिक उपज है। दुनिया में जितना जूट पैदा होता है। उसका ७३ प्रतिशत भाग केवल पूर्वी पाकिस्तान में होता है। पाकिस्तान में जो खेती वाली भूमि है उसके ८ से १० प्रतिशत भाग में जूट की खेती होती है। इस देश में जूट की वार्षिक उपज ७०,००,००० गांठ होती है। जूट एक पौधा होता है। यह ८ से १० फुट तक लम्बा होता है। इसमें डालियां नहीं निकलती है। इसका केवल डंठल ही ऊपर बढ़ता चला जाता है। इसकी लम्बाई भूमि और मौसम के अनुसार भिन्न-भिन्न हुआ करती है। एक एकड़ में रेशा की औसत उपज १,३०० पौंड से २,५०० पौंड तक होती हैं। जूट का बोना फरवरी के महीनों में आरम्भ होता है। यह निचली भूमि में बोया जाता है। जूट की उपज निचली और ऊंची दोनों प्रकार की भूमि में होती है। इसके काटने का मौसम जून से सितम्बर तक रहता है। यहाँ पर फल भी अधिक होता है। इसकी खेती ४,०९,५०० एकड़ भूमि मे होती है। पूर्वी बङ्गाल में फल की खेती २,००,००० एकड भूमि में, पंजाब मे १,५०,००० एकड़ में और बिलोचिस्तान में ८०,००० एकड़ भूमि मे फल की खेती होती है।

पूर्वी बगाल केला की उपज के लिये भी प्रसिद्ध है। यहां पर प्रति वर्ष ४,३५६५,००० मन केला पैदा होता है। पाकिस्तान की सरकार ने खेती की उपज बढ़ाने के लिये कृषि सम्बन्धी योजनायें भी बनाई हैं। निम्नलिखित ब्योरा मे १९५०-५१ ई० की उपज का विवरण दिया हुआ है —

निम्न लिखित तालिका में प्रत्येक प्रांत में १९५०-५१ ई० में पैदा होने वाली फसलों के क्षेत्र का विवरण दिया गया है। (१००० एकड़ में)

फसलों का नाम	बिलूचिस्तान	पूर्वी बंगाल	उत्तरी प० सीमा प्रांत	सिन्ध	पंजाब	भावलपुर	खैरपुर	समस्त पाकिस्तान का क्षेत्र
चावल	६५	२०,००८	३७	१,२५६	८३७	६१	१८	२२,४०१
गेहूँ	२६४	९४	१,१०१	१,२०२	७,२८३	७९८	९०	१०,८३२
बाजरा	७	१	१११	७९६	१,२४२	१६५	५	२,३२७
ज्वार	९२	१	६८	२८३	५२१	१२६	६४	१,२६५
मक्का	११	१३	४६३	५	४३०	२०	(अ)	९४२
जौ	१०	८२	१३८	३०	२८८	२०	३	५७१
चना	१७	२००	२१४	३५९	१,७४८	२५६	१९	२,८१३
गन्ना	—	२२६	८२	१७	३२५	८८	२	७००
सरसों	७३	४८८	९३	३२४	३६०	२१५	७२	१,६२६
तिल	—	१४४	२	१५	३०	१०	(अ)	२०१
अलसी	—	६०	—	—	६	—	—	६६
चाय	—	७५	—	—	—	—	—	७५
कपास	—	५५	११	८१३	१,७१२	३७५	४४	३,०११
जूट	—	१,२५०	—	—	—	—	—	१,२५०१

सिंचाई—विश्व के जिन भागों में अधिक सिंचाई होती है उनमें से एक पश्चिमी पाकिस्तान भी है। सिंचाई नहरों द्वारा होती है जो यहां की नदियों से निकाली गई हैं। निचली स्वात नहर का बनना १८४६ ई० में आरम्भ हो गया था। २० वर्ष में पंजाब के उजाड़ भू भाग में भी खेती होने लगी। स्थान-स्थान पर गांव भी बस गये। इस नहर से प्रति वर्ष १,६०,००० एकड़ भूमि सींची जाने लगी। झेलम और सतलज के बीच में जो नहर बनी है उनसे भी पंजाब को लाभ पहुंचा। यद्यपि इस भाग में वर्षा भी होती थी जिसका औसत प्रति वर्ष १० इंच से कम था फिर भी नहरों के बनने के कारण यहां की आबादी बढ़ गई। नये नये उपनिवेश बस गये। निचली चेनाब नहर १८९० ई० में बनी थी। इस नहर से ३०,००,००० एकड़ भूमि सींची जाती है। बारी दो आब को भी सिंचने के लिये नहरों की आवश्यकता थी। इस भाग की सिंचाई के लिये नहरों का बनाना १९१२ ई० में आरम्भ हुआ था।

१९५१ ई० में बारी द्वाब क्षेत्र की सिंचाई के लिये नहर बन कर तैयार हो गई थी। इस नहर द्वारा ६,२५० वर्ग मील या ३९,९७,००० एकड़ भूमि सींची जाती है। पाकिस्तान वाले सिंध के क्षेत्र में भी अनाज की उपज बिना सिंचाई के नहीं होती है। वर्षा का औसत प्रति वर्ष में केवल २ से ३ इंच तक रहता है जो खेती की उपज के लिये बहुत ही कम है। सिंध की भूमि को खेतिहर बनाने के लिये सिंध नदी पर बांध बनाया गया है। इस बांध द्वारा ६०,००,००० एकड़ भूमि सींची जाती है। इस भाग में १०,००,०० टन से अधिक चावल और बाजरा और लगभग ९०,००० टन कपास की उपज प्रति वर्ष होने लगी है। सिंध का यह रेगिस्तानी भाग अब अन्न का पैदा करने वाला क्षेत्र बन गया है। पाकिस्तान की कुल भूमि का क्षेत्र २०,००,००,००० एकड़ है जिसके १५,५०,००,००० एकड़ भूमि में खेती नहीं होती है। १७,००,००,००० एकड़ भूमि की सिंचाई के लिये नये-नये बांध बनाये जा रहे हैं। इनमें निचला सिंध बांध अधिक प्रसिद्ध है। इस बांध के पूरा हो जाने पर २,७९,००,००० एकड़ भूमि अधिक सींची जा सकेगी। इस प्रकार से अनाज की उपज में भी वृद्धि हो जायेगी। एक दूसरी सिंचाई वाली योजना थाल नामक बांध है। यह बांध पंजाब में बनाया जा रहा है। सिंचाई के साधनों मे उन्नति करने के लिये पाकिस्तान सरकार ने लगभग ३९ योजनायें बनाई हैं। इनके पूरा होने पर बिलोचिस्तान की ४,६२,९२५ एकड़ भूमि और सींची जा सकेगी।

पूर्वी बंगाल

इस प्रान्त का क्षेत्रफल ५४,००० वर्ग मील है। जनसख्या ४,२०,००,००० है। इस आबादी में ३,९५,४०,००० मुसलमान, १,१७,००० हिन्दू और ५७,६०० ईसाइ सम्मलित हैं। इस प्रांत मे खेती की दशा पश्चिमी पाकिस्तान से भिन्न है। इस प्रांत मे पानी की कमी नहीं रहती है जबकि पश्चिमी पाकिस्तान में पानी का अधिक अभाव रहता है। खेती वाली फसलें सिंचाई के ऊपर निर्भर रहती हैं। इस प्रांत की प्रसिद्ध नदियां गंगा और ब्रह्मपुत्र हैं। इनके डेल्टाओं की भूमि अधिक उपजाऊ है। इसका कारण यह है कि यह नदियां अपने साथ जो मिट्टी बहाकर लाती हैं उसे इन डेल्टाओं मे बिछा देती हैं। इस प्रांत में औसत वर्षा ६० इंच तक होती है। खेती की उपज के लिये सिंचाई की आवश्यकता नहीं रहती है। इस प्रांत मे जूट और चावल की उपज बहुत होती है। २,००,००० एकड से कुछ अधिक क्षेत्र में चावल की खेती होती है। चावल की कुल उपज की खपत इसी प्रांत मे हो जाती है। यहां पर चावल की दो फसले होती हैं। एक फसल जाड़े के मौसम में और दूसरी फसल बसन्त ऋतु मे होती है। चावल की जो फसल जाड़े के मौसम में होती है वह निचली भूमि मे बोई जाती है। चावल के बोने के पहले किसान लोग खेत को बार बार जोतते हैं। इससे खेत पानी से भी बराबर भरे रहते हैं। बार-बार जोतने से खेत की मिट्टी की जड़ के रूप मे हो जाता है। चावल को जुलाई और अगस्त के महीनो में बो देते हैं और नवम्बर और जनवरी के महीनों में काट लेते हैं। इस प्रांत में जूट भी बहुत पैदा होता है। इसकी खेती १३,००,००० एकड़ भूमि में होती है इनके बोने का समय फरवरी से मई महीना तक होता है। इस प्रांत की ८० प्रतिशत भूमि खेती योग्य है। अनाज खर्च की अपेक्षा कम पैदा होता है। इसका कारण यह है कि अनाज की उपज प्रति एकड़ में बहुधा कम होती है। इस प्रात मे प्रति एकड़ उपज का औसत केवल १२॥ मन है। अनाज की उपज बढाने के साधन हो रहे हैं। इस सम्बन्ध में यहां की सरकार ने १५ योजनायें बनाई हैं। इनके चालू होने में २४,२०,०००) रुपया का खर्च है। २,१८,००० एकड़ भूमि मे को इन योजनाओं से लाभ पहुँचेगा। अनाज की उपज भी २०,००,००० टन बढ़ जायेगी। इस प्रात के जिन भागों में पानी सदा भरा रहता है। उन क्षेत्रों में खेती नहीं हो सकती है। ऐसे क्षेत्रो मे पानी निकाले की व्यवस्था की गई है। इसके लिये ७९ योजनायें भी हैं। इस प्रकार से ३,६३,००० एकड़ भूमि खेती योग्य बन जायेगी। अनाज की उपज भी २८ लाख मन बढ़ जायेगी। भूमि को जोतकर भी उपजाऊ बनाने की योजना है। ६ वर्ष मे इस योजना के अनुसार

३ लाख एकड़ भूमि उपजाऊ बन जायेगी। पूर्वी बंगाल अपने जूट की उपज के लिये विश्व में प्रसिद्ध है। विश्व में पैदा होने वाली जूट का ७५ प्रतिशत जूट इस प्रांत में पैदा होता है। जूट की उपज दिन प्रति दिन बढ़ती जा रही है। १९४९-५० ई० मे जूट की उपज ६९,४८,८३४ गांठ थी। इसके अलावा यहां पर चना, गन्ना, जई, अदरख, चाय और कपास की उपज होती है।

उत्तरी-पश्चिमी सीमा प्रांत

इसका क्षेत्रफल ३९,२७६ वर्गमील है। जनसंख्या ६० लाख है। आबादी का औसत प्रति वर्गमील में २२६ है। इस प्रांत में खेती सिंचाई के ऊपर निर्भर रहती है। पहाड़ों की तराई में पानी नालों में मिलता है। यहां के रहने वाले इन नालों पर बांध बना देते हैं और इस प्रकार से पानी की कमी को पूरा कर लेते हैं। कोहाट नामक घाटी यहां पर अधिक प्रसिद्ध है। इस घाटी की भूमि बहुत उपजाऊ है। इसमें गेहूँ, तम्बाकू, मक्का, जौ और कपास की अच्छी उपज होती है। यह प्रांत अपने फलों के लिये भी प्रसिद्ध है। यहां अंजीर, शहतूत, अंगूर, सेब, और अखरोट अधिक प्रसिद्ध हैं। इस प्रांत का अधिकांश भाग सूखा है। यहां पर जाड़े में अधिक जाड़ा और गर्मी में अधिक गर्मी पड़ती है। साल भर की औसत वर्षा १५ इंच रहता है। यहां पर थोड़ा बहुत चावल भी पैदा हो जाता है। इस प्रांत में खेती की उन्नति के लिये साधन बनाये जा रहे हैं। इस प्रांत में जो भूमि बेकार पड़ी हुई थी उसको बार बार जोतकर और खाद आदि डाल कर उपजाऊ बना लिया जाता है। इस प्रांत के कुल जानवरों की संख्या ५ लाख है।

पंजाब प्रांत

इसका क्षेत्रफल ६३,१३४ वर्ग मील है। जनसंख्या १,८८,१४,००० है। इसमें मर्दों की संख्या १,००,४१,००० और औरतों की संख्या ८७,७३,००० है। इस प्रांत में २,००,००० एकड़ भूमि खेती योग्य है। यह भाग कुल भूमि का ५० प्रतिशत है। लगभग ३ प्रतिशत भाग में जंगल हैं। २८ प्रतिशत भाग में खेती होती है। १९ प्रतिशत भाग में खेती नहीं होती है। खेती की अधिकतर उपज सिंचाई द्वारा होती है। इस प्रांत की खेती का बहुत थोड़ा भाग वर्षा के ऊपर निर्भर रहता है। यहां पर सिंचाई कुओं और नहरों द्वारा होती है। निचली झेलम नहर द्वारा ३३,००,००० एकड़ भूमि, निचली चेनाब नहर द्वारा ३ एकड़ भूमि, सतलज घाटी की नहर द्वारा १३,००,००० एकड़ भूमि और हवेली नहर द्वारा १३,००,००० एकड़ भूमि सींची जाती है। इस प्रांत की मुख्य उपज गेहूँ और चावल है। गेहूँ और चावल की उपज कुल खेतिहर क्षेत्र के ३७ प्रतिशत और ५ प्रतिशत भागों में होती है। रेशेवाली फसलों में मुख्य फसल कपास है। इसकी उपज कुल खेतिहर भाग के १० प्रतिशत में होती है। यहां पर लम्बे और छोटे सूत वाली दोनों प्रकार की कपास पैदा होती है। लम्बे सूत वाली कपास विदेश को भेजी जाती है। गन्ना और तिलहन भी पैदा होता है। इसकी पैदावार कुल खेतिहर भाग के १॥ प्रतिशत भाग में होती है। इसके अलावा चना और दालें कुल खेतिहर भाग के १३ प्रतिशत में, बाजरा १२ प्रतिशत में और फल ४ प्रतिशत भाग में पैदा होता है। १९४७-४८ ई० में कपास की पैदावार कम हुई थी। इसका मुख्य कारण यह था कि कपास वाले बीज उचित रूप से नहीं बोये गये थे। १९४९ ई० में कपास की उपज में फिर वृद्धि हो गई। पाकिस्तान में कपास की उपज का ६० प्रतिशत भाग इसी प्रांत में पैदा होती है। १,६७,३०० एकड़ भूमि में कपास की खेती होती है। १९५१ ई० में गेहूँ की खेती ७१,९७,६०० एकड़ में की गई थी। खेती के दृष्टिकोण से पशुओं का भी एक मुख्य स्थान है। इनसे खेतों को खाद मिलती है।

सिन्ध प्रांत

इसका क्षेत्रफल ४७,५६९ वर्गमील है। जनसंख्या ४६,१९,००० है। मुसलमानों की संख्या ९६ प्रतिशत है। इस प्रांत में खेती सिंचाई द्वारा होती है। इस प्रांत में "लायड बांध" एक प्रमुख बांध है। इसके बनाने में २१ करोड़ रुपया खर्च हुआ था। इस बांध द्वारा ७५,००,००० एकड़ भूमि सींची जाती है।

इस बांध से कई नहरें निकाली गई हैं। इन नहरों की कुल लम्बाई ५४,३०० मील है। इस बांध से २,८५,१०० गेलन पानी प्रति सेकेन्ड इन नहरों मे पहुंचाया जाता है। इस बाध के द्वारा सींची जाने वाली फसलों का विवरण निम्न लिखित तालिका मे दिया गया है:—

फसलों का नाम	क्षेत्र (एकड़ मे)	उपज
गेहूँ	२४,४०,०००	११,३३,०००
कपास	८,५०,०००	५,४९,००० गांठ
चावल	६,२५,०००	४,४७,००० टन
ज्वार और बाजरा	६,३५,०००	२,७१,००० टन
तिलहन	४,१०,०००	१,१०,००० टन

भारत के बटवारा के पहले कपास की खेती का क्षेत्र २,५३,२३२ एकड था। १९५०-५१ ई० मे इसका क्षेत्र बढ़कर ८,११,९१० एकड़ हो गया। गेहूँ की खेती का क्षेत्र ४,८०,००० एकड़ था। जो १९५०-५१ ई० बढ़कर १२,६३,६७३ एकड़ हो गया। १९५०-५१ ई० में चावल की खेती १३,७६,४४९ एकड़ मे हुई थी। सिंध सरकार एक दूसरा बांध सिंचाई के लिये बना रही है। इसका नाम कोटरी बांध है। इसके बनने मे लगभग २४ करोड़ रुपया खर्च होगा। इस प्रांत के लोगो का मुख्य व्यवसाय खेती करना है। इस प्रांत के ६१,०८,००० एकड भूमि मे खेती होती है। ५०,०६,००० एकड़ से अधिक भूमि परती पड़ी हुई है। इस प्रात मे चावल गेहूँ, जौ, ज्वार, बाजरा, मकई, चना, दालें, कपास गन्ना और तम्बाकू की उपज होती है। किसानो को सरकार बोने के लिये बीज भी देती है। इस प्रांत मे पाकिस्तान के अन्य प्रांतों की अपेक्षा चौपाये भी अधिक हैं। इनकी सख्या निम्न प्रकार की तालिका में दी हुई है।—

भैंस	७,०१,६१८	२६,६०,९५२
गाय	१९,५९,३३४	
भेड़	६,३८,०४०	
बकरे	१४,१४,२८५	
घोड़े	१,०५,७८४	
मुर्गियां	८,०३,४३८	
ऊट	१,०५,४७५	
खच्चर	१,२५,७१०	

सिन्ध मे जङ्गलो का क्षेत्र ७,२७,००० एकड़ है। इन मे अन्तर्वर्ती जङ्गलों का क्षेत्र २,६९,५०० और नदियो के किनारे वाले जंगलों का क्षेत्र ४,५७,५०० एकड़ है। जो जगल नदियो के किनारे-किनारे फैले हुये हैं उनके क्षेत्र नदियो के बहाव के कारण बदला करते हैं। अन्तर्वर्ती जगलों मे जलाने वाली लकड़ी मिलती है। इसकी दर प्रति वर्ग प्रति एकड मे १० से १५ घन फुट रहती है। नदी के किनारे वाले जंगलो मे इस प्रकार की लकड़ी २५ से ३० घन फुट तक मिलती है। सिन्ध और कराची में जलाने वाली लकड़ी का खर्च ५,००,००,००० घन फुट रहता है। सिन्ध के जगलो से केवल १,४०,००,००० घन फुट लकड़ी मिलती है। इस कमी की पूर्ति दूसरे स्थानो के जगलों मे होती है। यहां के जगलों मे चार प्रकार के पेड़ मिलते हैं।— (१) बबूल (२) कांडी (३) बहान (४) लई। इन पेडो की लकड़ियो से कोयला, दियासलाई और खेती के सामान आदि बनाये जाते हैं। इस प्रान्त की उपज तथा उनके क्षेत्र निम्नलिखित तालिका मे दिया हुआ है—

	१९४९-५०		१९५०-५१	
फसल का नाम	क्षेत्र	उपज (टन में)	क्षेत्र	उपज (टन में)
चावल	१२,८६,५९१	५,५६,३७१	१३,७६,४८९	७,१३,७३४
गेहूँ	१२,७३,९२९	३,२५,७०१	१२,६४,६७३	२,७१,००१
बाजरा	७,५५,१०२	७२,८४०	७,९५,५५०	८२,८३४
ज्वार	३,७५,२१४	७३,५८१	३,८३,१७४	८२,४७८
जौ	२७,१४६	४,६७६	२५,२२१	४,५०५
चना	३,३६,२७१	६८,१८२	३,६३,३३७	६३,८८१
गन्ना	१६,६९८	२१,६९५	१६,९३७	२,६७,६३०
राई और सरसो	२,२७,६५८	३४,१७२	२,६८,६९९	३८,३८५
अलसी	१०,७१८	१,०९७	१३,३१८	१,९०२
कपास (अमरीकन)	६,९८,४५६	२,८०,३२६	३६,१५७	२,९७,१४६
कपास (देशी)	८४,०९५	३३,६३८	७,७५,७५३	४१,०९९

बिलोचिस्तान

इसका क्षेत्रफल १,३४,१२९ वर्ग मील है। जनसंख्या ११,५४,१६७ है। इसमें मुसलमानों की संख्या ११,३०००० और हिन्दू लोगों की संख्या १२.००० है। इस प्रान्त में वर्षा का सालाना औसत मैदानों में ५ इंच तक और किसी-किसी पठार पर १० इंच तक रहता है। पहाड़ों की तराई में चावल और मैदानों में गेहूँ और ज्वार की खेती है। इसके अलावा यहां पर सेव, अंगूर, अखरोट और खजूर आदि फलों की उपज होती है।

पूर्वी देशों के कृषि के सम्बन्ध में

चीन—यह एक कृषि प्रधान देश है। सुदूर पूर्व के देशों में चीन की अपेक्षा अधिक खेती अन्य देशों में नहीं होती है। यह देश बहुत घना बसा है। इसका मुख्य कारण यहां की खेती है। यहां के निवासी प्रायः खेती के व्यवसाय ही में लगे रहते हैं। कृषि की उन्नति अपने चरम सीमा पर पहुँच गई है। इसका प्रमाण इस देश की प्रति वर्गमील में रहने वाली जनसंख्या से मिलता है। यह जनसंख्या उत्तर प्रदेश के प्रति वर्गमील की जनसंख्या से भी बढ़ी हुई है। चिली देश में जो खेतिहर भाग हैं उनकी औसत जनसंख्या प्रति वर्गमील में ५५० से २,००० तक है। शानटुंग देश में प्रति वर्गमील की जनसंख्या ४,२०० हैं। चिक्यांग देश के चावल वाले क्षेत्रों की जनसंख्या प्रति वर्गमील में २,२७० से ६,८६० तक है। अन्य प्रकार के अनुमानों से यह पता चलता है कि चीन देश की औसत आबादी प्रति वर्गमील में १,७८३ है। इनमें से अधिक लोगों का निर्वाह खेती के ही द्वारा होता है। यह लोग दूसरे ढंग का व्यवसाय नहीं करते हैं। इसी से उत्तर प्रदेश में कृषि सम्बन्धी उन्नति का अनुमान किया जा सकता है। १९०० ई० में इस देश की खेती योग्य भूमि की औसत जनसंख्या प्रति वर्ग मील में ६१ थी।

जापान की भांति चीन भी चावल की उपज के लिये प्रसिद्ध है। इसकी उपज के लिये यागटिसी घाटी का दक्षिणी भाग अधिक प्रसिद्ध है। इस भाग में चावल पानी भरे हुये खेतों में पैदा किया जाता है। इसके अलावा दक्षिणी चीन में गन्ना, कपास, और चाय की भी उपज होती है। यहां पर बास के जङ्गल भी अधिक मिलते हैं। दक्षिणी चीन शहतूत के पेड़ों के लिये भी प्रसिद्ध है। इसके पेड़ों पर शहतूत के कीड़े भी पाले जाते हैं। जिनसे रेशम मिलता है। उत्तरी चीन अपनी लोइसा मिट्टी के लिये प्रसिद्ध है। इस भाग में समय-समय पर वर्षा भी हो जाती है। इस कारण से इस भाग में खेती के लिये सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती है। पैदावार भी अच्छी होती है। उत्तरी चीन की मुख्य उपज गेहूँ, जौ, बाजरा और मकई है। कहीं-कहीं पर चावल की भी उपज हो जाती है। इस देश में सोयाबीन की उपज अधिक होती है। इसकी उपज के लिये यह देश प्रसिद्ध है। सोयाबीन यहाँ से अधिक संख्या में विदेश को भेजा जाता है। उत्तरी चीन में कपास भी पैदा होती है। इसके लिये शेन्सी और शानटुंग के प्रांत अधिक प्रसिद्ध हैं। चीन एक ऐसा देश है जहा पर लगभग हर प्रकार के फसलों की उपज होती है। अगर चावल की उपज को इस देश के मुख्य भोजन के रूप में और आर्थिक दृष्टिकोण के आधार पर देखा जाय तो इन दोनो बातों के लिये चावल इस देश में अधिक प्रसिद्ध नहीं है। इसकी प्रधानता इसकी खेती के ढंग पर है। चीनी लोग इसकी खेती बड़ी सावधानी और निपुणता से करते हैं। प्रति युनीट भूमि में यह लोग चावल अधिक पैदा करते हैं। इस देश में चावल के छोटे-छोटे खेत बने हुये हैं। चीनी लोग इन खेतों को खूब जोतते हैं। पानी भरे हुये खेतों में जो धान बोया जाता है उसको पहले छोटे-छोटे खेतों में लगा दिया जाता है। धान के पौधे इन खेतों में बढ़ते रहते हैं। ९ या १० सप्ताह तक धान के पौधों को धान वाले खेतों में बोने के लिये उखाड़ते नहीं हैं। इस समय तक के लिये धान वाले खेतों में दूसरी फसलें बो देते हैं। धान के पौधों को लगाने के समय तक यह फसलें पककर तैयार हो जाती हैं और उनको काट कर धान के पौधों को लगा दिया जाता है। इस प्रकार से चीनी लोग एक खेत में कई फसलें पैदा करते हैं। खेतों को भी कोई हानि नहीं पहुँचने पाती है। चीनी लोग खेतों को उपजाऊ बनाने के लिये उनमें खाद खूब डालते हैं। चीनी लोग नगरों का कूड़ा करकट और मनुष्य के मल आदि को पहले भूमि में गाड़

देते हैं जो कुछ समय के बाद सड़ कर खाद के रूप में हो जाता है। इस प्रकार से बनी हुई खाद में नमी भी अधिक रहती है। अत में यह खाद खेतों में डाल दी जाती है। इस प्रकार के खेतों में जो बीज बोया जाता है वह जल्द ही उग आता है। इसका कारण खाद में नमी का होना है। इस प्रकार से चीनी लोग बड़े ही सादे ढंग से खाद बनाते हैं। खेतों के जोतने का ढंग भी बड़ा सादा हैं। चीन के विभिन्न क्षेत्रों में खेत को जोतने के लिये उसी प्रकार के हल काम में लाये जाते हैं। जिस प्रकार के हल से अपने देश के किसान लोग खेतों को जोतते हैं।

चीन देश मे जागीर सम्बन्धी प्रणाली महात्मा ईसा के पहले से ही फैली हुई थी। इस देश में यह प्रणाली दूसरी शताब्दी तक रही। इसका नाश इस देश में समय-समय से होने वाले लड़ाई झगड़ों के कारण से हुआ। इसमे सदेह नहीं कि जिन शक्ति के साधनों पर चीन देश का राजनैतिक ढाचा बनाया गया था उनको जानना बड़ा ही कठिन है। चीन का राज्य मुख्यत खेती के लिये प्रसिद्ध हैं। यह देश चावल की पैदावार के लिये विश्व मे प्रसिद्ध है। इसका कारण यह है कि चीन देश के जिन क्षेत्रों में चावल की उपज होती है उनमे पानी की कमी नही रहती है। चावल की उपज के लिये पानी का होना अति आवश्यक है। इस देश मे चावल के खेतों तक पानी ले जाने का बड़ा ही सुन्दर प्रबन्ध है। चावल के छोटे से छोटे खेतो तक पानी पहुंचाया जाता है। इस बात का सबसे अधिक ध्यान रक्खा जाता है कि पानी की कमी के कारण मे चावल की खेती नष्ट न होने पावे। इस प्रकार का प्रबन्ध यहा के किसानों और चीनी सरकार दोनों के लिये हितकारी है। किसानों को अनाज की अच्छी उपज मिल जाती है और सरकार को भी अच्छा कर मिल जाता है। इस देश मे खेतो का कर अनाज की उपज पर ही निर्भर रहता है। अगर अनाज की उपज अच्छी होती है तो सरकार को कृषि सम्बन्धी कर भी अधिक मिलता है। इस प्रकार से अनाज की पैदावार कम होने से सरकार की आय में भी कमी हो जाती है। इस प्रकार की आय को चीनी सरकार खेतों की सिंचाई आदि के सम्बन्ध में ही खर्च करती है। इस प्रकार से यहां के कृषि साधनों मे उन्नति होती रहती है। ऐसा प्रबन्ध मिस्र के इतिहास मे मार्क्स वे बेर के समय मे भी मिलता है। आजकल चीन देश की कुल नहरों की लम्बाई २,००,००० मील है। इस देश की पैदावार का एक बड़ा भाग यहा की नहरों द्वारा ही होता है।

चीन देश में जो अनाज पैदा होता है उसका ५० प्रतिशत से अधिक इसी देश में खप जाता है। इस देश के कई गांवो मे यातायात सम्बन्धी कठनाईयां भी हैं। अगर किसी गांव में अनाज आदि की कमी रहती है तो दूसरे गांव द्वारा उसकी पूर्ति होना कठिन रहता है। इस प्रकार के गांवों में सामान आदि अधिकतर मनुष्य ही द्वारा ढोया जाता है। कहीं-कहीं पर दो पहिये वाली गाड़ियों द्वारा भी सामान एक से दूसरे गांव में पहुंचाया जाता है। इस प्रकार के क्षेत्रों में व्यापार केवल नदियों या नहरो द्वारा ही हो सकता है। इन सब कठनाईयों के कारण ऐसे गांवो को स्वालम्बी रहना पड़ता है। इस प्रकार के गांवो मे अधिकतर भूमि बेकार पड़ी हुई है। मार्गों की कमी के कारण इनको उपजाऊ बनाना बड़ी ही कठिन हैं। इस प्रकार की भूमि से पैदावार भी बहुत कम होती है। ऐसे क्षेत्रो मे जो किसान रहते हैं उनकी आय भी बहुत कम रहती है। इस क्षेत्र का निर्धन परिवार सुख करना जानता ही नहीं है। खाना और कपड़ा भी बहुत नीची श्रेणी का रहता है। यहा के किसान भाई मुख्यत बाजरा ही खाते हैं। अच्छे भोजन का नाम तक नहीं जानते हैं। यहा के निवासी मांस को केवल बड़े-बड़े त्योहारों में ही खाते हैं। इस क्षेत्र मे मुर्गियां भी बहुत कम पाली जाती हैं। सरकार ने यह अनुमान लगाया है कि चीन मे जितनी मुर्गियां पाली जाती हैं उससे नौ गुना अधिक मुर्गियां संयुक्त राज्य अमरीका मे पाली जाती हैं। धीन और संयुक्त राज्य के पशुपालन की सख्या मे भी महान अतर है। चीन मे जितने चौपाये पाले जाते हैं उससे १८० गुना अधिक चौपाये संयुक्त

राज्य में पाले जाते हैं। यह कमी चीन देश में वृद्धि धर्म के कारण से हुई है चीन देश में इस बात की भी आवश्यकता है कि खेती द्वारा जो कुछ पैदा हो उसकी खपत यहां के निवासियों ही द्वारा है। चीन के गांवों में बड़े भद्दे घर बने हुये हैं। अधिकतर घर मिट्टी के ही बने हुये दिखलाई पड़ते हैं। यहां के घरों में केवल एक कमरा होता है। उसी कमरा में सोने का भी स्थान बना रहता है। यह स्थान कमरे की भूमि के धरातल से कुछ ऊंचा रहता है। जलाने के लिये घास और जड़ें आदि काम में आती हैं। इसका कारण यह है। कि यहां के जङ्गलों को काट-कर साफ कर दिया गया है इस प्रकार से भूमि को जोत कर खेती योग्य बनाया गया है। अब कुछ स्थानों में जंगलों के लगाने का काम भी आरम्भ कर दिया गया है। नान किंग के आस-पास के क्षेत्रों में जंगलों के लगाने का काम अधिक उन्नति पर है। दक्षिणी चीन के कुछ भागों में कर सम्बन्धी प्रणाली पाई जाती है। इसके अनुसार इन क्षेत्रों के किसान लोगों के पैदावार का अधिक भाग जमीन्दारों को देना पड़ता है। इस कारण से इन क्षेत्रों के किसानों का एक प्रकार का प्रजातन्त्र सम्बन्धी आन्दोलन फैला हुआ है।

इसमें संदेह नहीं है कि चीनी किसान लोग अधिक गरीब हैं। किन्तु चीनी खेती का ढंग एक आर्थिक ढाँचे के आधार पर बना हुआ है। वर्तमान समय में चीन देश में जो परिवर्तन हुये हैं उनका बहुत कम प्रभाव इस देश की कृषि सम्बन्धी आर्थिक ढाँचे पर पड़ा है। इसका मुख्य कारण यह है कि अभी तक चीन देश की सड़कों में कुछ भी सुधार नहीं हुआ है। जब इस देश में नये-नये मार्ग बन जायेंगे और यहाँ के क्षेत्रों में रेलवे लाइनों का जाल बिछ जायेगा।, तो इसमें संदेह नहीं है। कि इस देश का ढाँचा और अधिक बदल जायेगा।

चीन की सरकार ने अब इस तरफ अपना ध्यान दे दिया है। आज कल भी चीन में पेट्रोल और तम्बाकू की कमी है। चीनी किसान तम्बाकू को पीने और पेट्रोल के प्रकाश आदि करने के काम में लाते हैं। इस काम को पूरा करने के लिये यहां के किसान लोग अपनी उपज को बेच भी डालते हैं। चीनी किसान उपज की वृद्धि के लिये बराबर प्रयत्न किया करते हैं। चीन में आज कल यह भी प्रश्न चल रहा है कि किस प्रकार से कृषि सम्बन्धी नये साधनों द्वारा अनाज आदि की उपज बढ़ाई जा सकती है। यह भी ठीक नहीं कहा जा सकता कि बाजार आदि के ढंग में परिवर्तन करने से चीनी देश की उपज में वृद्धि हो सकेगी। इसमें संदेह नहीं है कि चीनी लोग अनाज की पैदावार बढ़ाने के सम्बन्ध में विचार कर रहे हैं। अनाज की पैदावर बढ़ जाने से यहां के किसान भी सुखी हो सकेंगे। किसानों के लिये जाड़े के महीनों में जो समय बेकार चला जाता है उस समय में चीन के किसान यदि अपना कोई घरेलू व्यवसाय कारखानों में मौसमी करोबार करें तो इनकी गरीबी दूर हो सकती हैं। इस प्रकार से उनकी आय में भी वृद्धि हो सकती है। चीनी लोगों को अपने देश की जनसंख्या बढ़ाने के लिये अब भी बड़ी इच्छा रहती है। इस प्रकार से जो उपज आदि में वृद्धि भी होगी उसकी खपत बढ़ी हुई जनसंख्या द्वारा होती जायेगी। चीन के एक परिवार में बच्चों की संख्या प्राय अधिक पाई जाती है। एक कुटुम्ब की सम्पत्ति यहां के नियम के अनुसार उसके लड़कों में बांट दी जाती है। इस प्रकार का नियम चीन देश के हर एक स्थान में पाया जाता है। जब तक इस देश की जनसंख्या का बढ़ना बन्द नहीं हो जाता है। यहां के लोगों के रहन-सहन की दशा में परिवर्तन होना कठिन है।

जापान—इस देश की खेती बहुत कुछ चीन देश की खेती से मिलती जुलती है। दोनों देश अधिक घने बसे हैं। दोनों देशों की पैदावार भी करीब-करीब एक ही है। दोनों देश चावल और रेशम (सिल्क) की उपज के लिये विश्व में प्रसिद्ध हैं। इन दोनों देशों के खेती सम्बन्धी साधन भी एक दूसरे से मिलते जुलते हैं। दोनों देशों की जलवायु में भी कोई विशेष अन्तर नहीं है। चीन और जापान की १९०० ई० की जनसंख्या से अगर संयुक्त राज्य अमेरिका की जनसंख्या से तुलना की जावे तो एक महान अन्तर मिलता है। १९०० ई० में चीन देश की औसत जनसंख्या प्रति

वर्गमील में १,७८३ थी। जापान देश की औसत जनसंख्या प्रति वर्गमील में २,३५० थी। किन्तु १९०० ई० में संयुक्त राज्य अमरीका की औसत जनसंख्या प्रति वर्गमील मे केवल ६१ थी। जापान देश में खेती सम्बन्धी नियम आदि अलग हैं। वे चीन देश के खेती वाले नियमों से नहीं मिलते-जुलते हैं। जापान मे भी चीन देश की भांति जागीरसम्बन्धी प्रणाली चालू थी। जापान देश मे इस प्रणाली की अधिक उन्नति १६०० ई० से १८६८ ई० तक अधिक रही। सारे देश का प्रबन्ध एक केन्द्रीय सरकार द्वारा होता था। इस देश मे जमींदारी प्रथा भी चालू थी। इस देश के जमींदार लोग केन्द्रीय सरकार के ही आधीन थे। इन जमींदारों के अपने-अपने न्यायालय भी होते थे। जिसमें यह लोग अपने प्रजा के लड़ाई झगड़ों का फैसला किया करते थे। इन जमींदारों को उस समय की सरकार द्वारा अलग-अलग उपाधियां भी प्राय: उसी ढग पर दी जाती थीं। जैसे अंग्रेज लोग हमारे देश के जमींदारों और राजा महाराजों को दिया करते थे। इन जमींदारों मे अलग-अलग दर्जे भी होते थे। इनमें कोई बड़ा जमींदार होता था तो कोई छोटा। इन जमींदारों का राज्य का विस्तार भी भिन्न-भिन्न होता था। बड़े-बड़े जमींदार अधिक प्रभावशाली हुआ करते थे। यहां के जमींनदारों का अलग-अलग दल भी रहता था। यह जमींदारो को समुराई टिटेमर्स या नाईस की उपाधिया दी जाती थीं। इन लोगों की गणना वीर दल मे होती थी। यह देश की खेती आदि से अपना कोई सम्बन्ध नहीं रखते थे। इस वर्ग के लोगों का खर्चा चावल के करों से चलता था। यह लोग खेती की उन्नति की तरफ भी अपना कोई ध्यान नहीं देते थे। इन लोगो का खर्चा प्राय: उस समय के अधिपतियों द्वारा चलता था। इस देश के अधिपति लोग उस समय के योरुप के अमीर लोगों की भांति होते थे। यह लोग अपनी भूमि को स्वयं नहीं जोतते थे, बल्कि किसानों को दे देते थे। किसान लोग भूमि को जोतते और बोते थे और इन अधिपतियों को कर देते थे। इसके अलावा इन लोगों का सारा कार्य किसान लोग करते थे। उस समय की प्रथा के अनुसार किसान लोग अपनी उपज के एक बड़े अंश को अपने भूमि-मालिकों दिया करते थे। यह भाग साधारण रूप में कुल उपज का ३३ प्रतिशत से ६६ प्रतिशत तक होता था। १८वीं शताब्दी में योरुप की जागीरसम्बन्धी प्रणाली कृषिसम्बन्धी साधनों की उन्नति में बाधक बन गई। इसका मुख्य कारण यह था कि जागीर सम्बन्धी प्रणाली मे लोगों को कष्ट मिलता था। इस प्रणाली को उस समय की जनसंख्या का पूर्ण रूप मे सहयोग भी न प्राप्त था। अन्त में जागीर सम्बन्धी प्रणाली नष्ट हो गई। इसके नष्ट होने के मुख्य कारण उस समय के राजनैतिक झगड़े थे। जागीर सम्बन्धी प्रणाली के नष्ट होने पर जापान में खेती बारी की अच्छी उन्नति हुई। १७२१ ई० में जापानी द्वीप समूहों की जनसंख्या का अनुमान २,६०,००,००० लगाया गया था। उस समय होकेडो द्वीप समूह नहीं बसा था। जापान की यह जनसख्या १९वीं शताब्दी तक बनी रही। कृषि सम्बन्धी अधिक-उन्नति न होने के कारण इस जनसंख्या मे वृद्धि न हो सकी।

जब से जापान में नये युग का आरम्भ हुआ इस देश की दशा में परिवर्तन हो गया। किसानों से कर लिया जाने लगा। यह कर किसान लोग अपने जमींदारों को दिया करते थे। किन्तु कुछ समय के बाद इस प्रणाली का भी अन्त हो गया। इस के लिये यहां के किसानों को बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था। इसका कारण यह था कि यहां का जमींदार वर्ग अपनी नींव किसानों के ही ऊपर जमाना चाहते थे। किसानों को यह चीज पसन्द न थी। जमींदारी और जागीरसम्बन्धी प्रणाली से किसानों को कष्ट मिलता था। कुछ समय के बाद जागीरसम्बन्धी प्रणाली नष्ट हो गई। किन्तु इसके नष्ट होने से किसानों को कोई लाभ न हुआ। इसका कारण यह था कि जापान देश मे बड़े-बड़े राज्यों की स्थापना हो गई। इन राज्यों के मालिक बड़े राजा लोग हो गये। आज कल इस प्रकार के राज्यों में जापान के चावल के खेतों का लगभग आधा क्षेत्र सम्मिलित है। जापान के चावल वाले क्षेत्रों का प्रबन्ध अब कर प्रणाली द्वारा होता है। इस देश की

भूमि का केवल १६ से २० प्रतिशत भाग खेती योग्य है। यही कारण है कि जापानी लोगों का जीवन बहुत कम खेती के ऊपर निर्भर रहता है। इस देश में खेती योग्य भूमि का क्षेत्र १,३०,००,००० एकड़ है। यहां पर अनाज की उपज अच्छी होती है। जापान के एक कुटुम्ब के निर्वाह के लिये २॥ एकड़ भूमि का औसत पड़ता है। इस देश की आबादी का ५० प्रतिशत भाग खेती का कार्य करता है। इससे पता चलता है कि २॥ एकड़ भूमि की खेती से २ कुटुम्बों का निर्वाह होता है। इसमें सन्देह नहीं है कि जापान में औद्योगिक उन्नति अधिक है। जापान विश्व के बाजारों में अपने सस्ते सामानों के लिये प्रसिद्ध है। जापान के २ कुटुम्बों का निर्वाह २॥ एकड़ भूमि में उसी दशा में हो सकता है जब की फसलों की उपज में वृद्धि होवे। जापान की जनसंख्या भी बराबर बढ़ती जा रही है। जापान में कृषि सम्बन्धी अधिक उन्नति की कोई आशा भी नहीं है। इस देश की जनसंख्या की कृषिसम्बन्धी माग बढ़ती जा रही है। कोरिया का वही क्षेत्र फल है जो जापान का है। कोरिया की जनसंख्या १,६०,००,००० है। कोरिया की जलवायु जापानी किसानों के लिये ठीक नहीं रहती है। मंचूरिया और होकैडो की भी जलवायु जापानी किसानों के लिये अनकूल नहीं है। जापानी किसानों की संख्या बढ़ती जा रही है किन्तु इनके जीवन सम्बन्धी निर्वाह के साधनों में कोई वृद्धि नहीं हो रही है। ऐसा मालूम होता है कि गावों के किसान भी जापान के नगरों में अपने जीवननिर्वाह हेतु आकर बस जायेंगे।

जापान की खेती की तुलना चीन की खेती से नहीं हो सकती है। जापान में चीन की अपेक्षा अधिक भूमि सम्बन्धी अनुसधान हुये हैं। जापान देश में खेती आधुनिक मशीनों द्वारा होती है। यहां के खेती वाले क्षेत्र प्राय. नगरों से मिले हुये हैं। किन्तु चीन में ऐसा नहीं है। जापान के गाव स्वालम्बी नहीं है। इनमें पढ़े लिखों की संख्या भी अधिक पाई जाती है। यहां के किसानों के आवश्यकता सम्बन्धी सामानों की पूर्ति जापान के कारखानों ही द्वारा होती है। जापानी लोग अपनी आय के बढ़ाने का बराबर प्रयत्न करते रहते हैं। जापानी लोग हस्तकला के लिये भी प्रसिद्ध हैं। जापानियों में यह विशेषता पाई जाती है कि यह लोग अपनी आयु के ही अनुसार अपना काम करते हैं। चीनी किसानों की अपेक्षा जापानी किसानों की अधिक सामानों की मांग रहती है। चीन में राजनैतिक सम्बन्धी अक्सर आन्दोलन चला करते हैं। किन्तु जापान में ऐसा नहीं है। जापान के निवासियों का इस बात की तरफ ध्यान रहता है कि किस प्रकार से उनकी आय में वृद्धि हो। इसके लिये जापान में बराबर आन्दोलन चलते रहते हैं। इस प्रकार के आन्दोलन प्रायः किसानों से सम्बन्धित रहते हैं। आन्दोलनों का यह मतलब रहता है कि किसानों की आय में वृद्धि उनके भूमि सम्बन्धी करों में कमी करके की जावे। आज कल जापान में यह समस्या चल रही है कि किसानों को उनकी भूमि का मालिक बना दिया जावे। इस समस्या का सुलझाना जापान के लिये निसंदेह एक कठिन कार्य है। चीन में जनसंख्या की वृद्धि करने का रिवाज प्राचीन समय से ही चला आ रहा है। किन्तु इस देश में कृषि सबन्धी इतनी उपज की वृद्धि नहीं हो रही है। जिससे बढ़ती हुई जनसंख्या की अन्न सम्बन्धी मांगों की पूर्ति की जा सके। इस कारण से चीन देश के लिये यह बहुत ही आवश्यक हो गया है। कि वह जनसंख्या में वृद्धि अपने कृषि सम्बन्धी उपज के अनुसार ही करे।

भारत—यह देश प्राचीन समय से ही एक कृषि प्रधान देश रहा है। यह इसके लिये विश्व में प्रसिद्ध है। यहां के रहने वाले अपना निर्वाह मुख्यत. खेती ही पर करते हैं। इस देश की जनसंख्या का ९० प्रतिशत भाग गावों में रहता है। इस देश में जो व्यवसायिक उन्नति हुई है उसका भी प्रभाव अभी तक यहां के ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक नहीं पड़ा है। यहां की ग्रामीण जनसंख्या का अधिक भाग पढ़ा लिखा नहीं है। भारतवर्ष की जनसंख्या का ७५ प्रतिशत भाग का निर्वाह खेती द्वारा होता है। इसमें से कुछ लोग अपना जीवन पशु पालन और जगलों से सम्बन्धित व्यवसाय में व्यतीत करते हैं। आज

में लगभग ८४ वर्ष पूर्व यहां की जनसंख्या का ६६ प्रतिशत भाग खेती आदि के व्यवसाय में लगा हुआ था। किन्तु आज कल यह संख्या घट कर ७५ प्रतिशत हो गई है। इसमें संदेह नहीं है कि भारतवर्ष एक उप-महाद्वीप है। इस देश की भूमि और जलवायु एक समान नहीं है। यहां पर अगर किसी स्थान में वर्षा अधिक होती है तो दूसरा स्थान एक दम सूखा रहता है। इसी प्रकार से अगर कहीं पर जाड़ा अधिक पड़ता है तो कहीं पर गर्मी के कारण लोग कष्ट झेलते रहते हैं। यहां के गांव एक दूसरे से मिलते जुलते हैं। इस देश में खेती करने के ढंग और उससे सम्बन्धित औजार में प्राय: कोई अन्तर नहीं मिलता है। सारे देश के गावों में खेती करने का ढग एक सा है। ग्रामीणों के रहन-सहन में सामान्यता पाई जाती है। उनके रहन सहन के दर्जे में भी कोई विशेष अन्तर नहीं होता है। बगाल और ब्रह्मा के लोगों की सभ्यता रहन-सहन और उनके भेष भूषा में भारतवर्ष के अन्य भागों की सभ्यता आदि से नहीं मिलती है। इस देश के अन्य भागों की अपेक्षा बंगाल और ब्रह्मा के क्षेत्रों में वर्षा भी अधिक होती है। भारतवर्ष में अर्ध-रेगिस्तानी क्षेत्र भी पाये जाते हैं। इनमें सिंध और राजस्थान अधिक प्रसिद्ध हैं। इस देश में सूखे क्षेत्र भी अधिक मिलते हैं। इसका मुख्य कारण उन स्थानों में वर्षा का अभाव है। इस प्रकार के क्षेत्र पजाब, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, हैदराबाद, मैसूर, मद्रास और बम्बई प्रांतों में पाये जाते हैं। इनमें कहीं-कहीं पर यह क्षेत्र पठार के रूप में और कहीं कहीं पर एक उजाड़ मैदान के रूप में फैले हुए हैं। इस भागों की खेती का प्रभाव सारे भारतीय ग्रामों के आर्थिक दशा पर पड़ता है।

इस देश की औसत आबादी प्रतिवर्ग मील में १७७ है। आबादी की यह संख्या भारत के क्षेत्रों में सामान्य रूप से नहीं पाई जाती है। बगाल प्रांत की जनसंख्या प्रति वर्गमील में ५९८ है। उत्तर प्रदेश की औसत जनसंख्या प्रति वर्गमील में ४१४ है। इस देश के कुछ खेतिहर भागों में जनसंख्या का औसत प्रति वर्गमील में ७०० तक पाया जाता है। इस देश के कुल क्षेत्र के ५० प्रतिशत भाग में खेती होती है। इस देश के २५ प्रतिशत भाग में जो खेती होती है वहां आर्थिक विचार कोण से प्रजा के लिये अधिक लाभदायक नहीं है। इस देश में जो खेती योग्य भूमि है उसका बहुत ही कम भाग अधिक उपजाऊ है। यहां के खेतों में अनाज भी कम पैदा होता है खेतिहर भागों के कुछ क्षेत्र चरागाह के रूप में भी मिलते हैं। खेतिहर भाग का केवल ३३ प्रतिशत भाग ही जोता बोया जाता है। खेतिहर भाग के १५ प्रतिशत भाग में २ फसलों की पैदावार होती है। इस देश में कुछ इस प्रकार के भी क्षेत्र हैं जिनमे प्रतिवर्ष केवल एक फसल पैदा होती है। इस देश में भूमि सम्बन्धी अधिकारों में भी अधिक भिन्नता थी। भूमि का एक बड़ा भाग जमींदारी के रूप में भी पाया जाता था। जिसका मालिक जमींदार माना जाता था। ग्रामों में किसानों के पास भी अधिक भूमि रहती थी। इस प्रकार का प्रबन्ध पहले ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा किया गया था। भूमि से कर लेने के लिये कलक्टर आदि नियुक्त किये गये थे। इस कम्पनी द्वारा जमींदारों या किसानों से जो भूमि कर लिया जाता था वह घटता बढ़ता रहता था। इस देश के भूमि के १८ प्रतिशत भाग में भूमि सम्बन्धी स्थायी प्रबन्ध था। इस प्रकार का भूमि कर आदि नहीं घटता बढ़ता था। इस देश के ३० प्रतिशत भाग में बड़े-बड़े राज्यों में कर सम्बन्धी प्रबन्ध अस्थायी रूप में था। ५२ प्रतिशत भूमि के भाग पर किसानों का अपना अधिकार था। इनमें सभी श्रेणी वाले किसान सम्मिलित थे। इन किसानों में से कुछ का अपनी अपनी भूमि पर एक विशेष रूप में अधिकार होता था। कुछ किसानों के भूमि सम्बन्धी अधिकार पर एक विशेष प्रतिबन्ध लगे हुए थे। आजकल इस देश की प्रजातन्त्र सरकार ने भूमि सम्बन्धी नया प्रबन्ध कर दिया है किन्तु फिर भी इस देश के भूमि सम्बन्धी करों में भिन्नता पाई जाती है। इस देश की सरकार द्वारा भूमि सम्बन्धी कर प्रति वर्ष लिया जाता है। कहीं-कहीं पर इस प्रकार के करों की दर बदलती रहती है। कहीं कहीं पर स्थाई रूप वाले कर लिये जाते हैं।

उनकी दरों मे किसी प्रकार का भी परिवर्तन नहीं होता है। कहीं-कहीं पर सरकार द्वारा उत्तराधिकार सम्बन्धी कर लिया जाता है। किसानों के अलावा गावों मे नीच जाति के लोग भी रहते हैं। इन मे कई जातियां सम्मलित रहती हैं। गावों के खेतों में काम करने वाले मजदूरों की संख्या भी अधिक रहती है। इस प्रकार वाले मजदूर खेतों में दैनिक मजदूरी पर काम करते हैं खेत में काम करने वाले मजदूरों की संख्या बहुत कम होती है यह मजदूर प्राय: गांव के नीच जाति के लोग होते हैं। इस प्रकार के मजदूर कहीं-कहीं पर ४ कृषकों को बीच मे एक होता है। वह कृषिसम्बन्धी कार्य आदि किया करता है। बंगाल प्रांत मे ८ किसानों के बीच इस प्रकार का एक मजदूर रहता है।

इस देश मे लोग अपनी भूमि के मालिक समझे जाते हैं। भूमि पर किसानो का अपना अधिकार रहता है। यहां पर भूमि का बटवारा भी सामान्य रूप से नहीं हुआ है। कहीं-कहीं पर अगर किसानों के पास अधिक भूमि पाई जाती है तो कहीं कहीं पर किसानों के पास खेती के लिये बहुत कम भूमि रहती है। प्रति कृषकों के पास जो कृषि सम्बन्धी भूमि की मात्रा पाई जाती है उसमे पंजाब एक दूसरी श्रेणी का प्रान्त है। इस प्रांत में ४३ प्रतिशत से अधिक किसान इस प्रकार के हैं जिनका अधिकार ३ एकड़ से भी कम भूमि पर है। इस प्रांत के सिंचाई वाले क्षेत्रों मे प्रति कृषक के पास और भी कम भूमि रहती है। इस प्रकार के क्षेत्रों मे ३३ प्रतिशत किसान एक एकड़ से भी कम भूमि के मालिक हैं! इस देश मे किसानो की खेती वाली भूमि उनके गांव मे इधर उधर फैली रहती है। प्राय: ऐसा नहीं है कि प्रति किसान की सम्बन्धित भूमि एक ही स्थान पर हो। इस देश मे भूमि के अधिक भाग का प्रबन्ध कर प्रणाली पर है। किसान भूमि को जोतते हैं और जो कर सरकार उनके खेतों पर निर्धारित कर देती है उसको देते रहते हैं। कर सरकार को रुपये के रूप में दिया जाता है। उत्तर प्रदेश में १९२५ ई० में कुल खेती योग्य भूमि का ८१ प्रतिशत भूमि किसानो द्वारा जोता जाता था। किसान लोग इस प्रकार वाली भूमि का कर सरकार को देते थे। १९ प्रतिशत भूमि का कृषि सम्बन्धी प्रबन्ध प्रति वर्ष हुआ करता था। भारतवर्ष के गांवों में घर छोटे-छोटे पाये जाते हैं। यह घर मिट्टी के बने हुये रहते हैं। किसी-किसी गांवों मे घर घास फूस के भी बने हुए मिलते हैं। प्राय: घास फूस से बने हुये घर भारतवर्ष के प्रति गांव मे थोड़ी बहुत संख्या मे मिलते हैं। यहा के किसानो के पास अपने घरों को सजाने के लिये कोई सामान भी नहीं रहता है। इस देश के ग्रामीणों का अपने धर्म में अधिक विश्वास रहता है। यही कारण है कि गावों के घर प्राय साफ दिखलाई पड़ते हैं। यहा के किसानो का भोजन मोटा अनाज है। यह लोग दूध और तरकारियां भी बड़े प्रेम से खाते हैं। इस देश के अल्प संख्यक वर्ग को सदा आधा पेट खाना मिलता है। इसका कारण इनकी गरीबी है। इस देश के ग्रामीण वर्ग लोग कपड़ा सादा पहनते हैं। कपड़े का उपयोग भी उचित रूप से नहीं करते हैं। प्राय. यह देखा जाता है कि जो किसान बिनासिला हुआ सूती कपड़ा दिन को पहनते हैं वही कपड़ा रात के समय ओढ़ने के काम में लाते हैं।

भारतवर्ष के किसी-किसी क्षेत्र मे नमी अधिक रहती है। इस देश मे वर्षा भी कभी कभी बहुत होती है किन्तु अवसर ,वर्षा बहुत कम होती है। इस देश के बहुत कम भाग ऐसे है जहा पर खेती की उपज के लिये सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती है। कम वर्षा वाले क्षेत्रों में भी अच्छी खेती होती है। किन्तु उससे अधिक अच्छी खेती उन क्षेत्रों मे होती है जहां की भूमि भी उपजाऊ है और वर्षा भी अधिक होती है। कुल बोये हुये क्षेत्र के २० प्रतिशत भाग की उपज सिंचाई द्वारा होती है। जो पानी सिंचाई के काम में आता है उसका ५० प्रतिशत भाग नहरों द्वारा आता है। यहां की नहरों पर केवल सरकार का ही अधिकार है। इसका प्रबन्ध आदि सरकार के एक विभाग द्वारा होता है। इसका नाम नहर विभाग है। २५ प्रतिशत सिंचाई सम्बन्धी पानी कुओं से और १३ प्रतिशत तालाबों या गड्ढों से आता है। १२ प्रतिशत भूमि मे खेती के लिये सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती है। भारतवर्ष मे

खेतों की थोड़ी गहरी जोताई होती है। इस प्रकार की जोताई भूमि की नमी को रोकने के लिये कि जाती है। यहां के जोतने के ढंग और उनके औजार दोनों ही पुराने तरीके पर हैं। खेतों के जोतने के साधन उतने अनुपयोगी नहीं हैं जितने देखने से मालूम होते हैं। इस देश की जोताई का ढंग सूखे और गर्म जलवायु के लिये अनकुल हैं किन्तु इस प्रकार का ढंग हर एक देश में अपनाया जा सकता है। यहां पर खेत बैलों द्वारा जोते जाते हैं। खेतों के धरातल को ठीक करने के लिये पाटा का प्रयोग किया जाता है। यह पाटा लकड़ी का बना रहता है जो हलका होता है। इस ढंग की खेती में दो मुख्य खराबियां हैं। पहली खराबी यह है कि पशुओं को खेत जोतने के समय खाना भी नहीं मिलता है। चारे आदि की कमी के कारण वैसे भी इनको भर पेट भोजन नहीं मिलता है। बार-बार खेतों की जोताई करने से भूमि की नमी निकल जाती है। यहां पर उन गायों को भी पाला जाता है जो दूध नहीं देती हैं। इसका कारण यह है कि यहां के लोग इनको पवित्र मानते हैं और मां के नाम से पुकारते भी हैं। सूखे मौसमों में इस प्रकार के जानवर यहां की घास को खा डालते हैं। इसके अलावा यहां पर सूखे मौसमों में जो झाड़ियां उगती हैं उनकी पत्तियों को भी खा डालते हैं। यहां की भूमि को किसी प्रकार की नमी नहीं मिलती है। लकड़ी और कोयला की कमी के कारण गाय आदि के गोबर को सुखा कर जलाने के काम में लाया जाता है। यही कारण है कि गाय बैल के गोबर की खाद बनाकर खेतों में डालना बड़ा कठिन हो जाता है। यहां के निवासी खाद बनाने की तरफ भी ध्यान नहीं देते हैं। मनुष्य के मल आदि को फेंक दिया जाता है। अधिक खाद और कृषि सम्बन्धी कार्य की आवश्यकता पहाड़ी भागों के खेतों में रहती है। अपने देश की सरकार ने खेती वाले स्कूलों और अनुसधान गृहों की स्थापना और प्रदर्शन आदि करने में अधिक धन व्यय किया है। किन्तु इस सम्बन्ध में अभी बहुत अधिक सफलता नहीं मिली है।

पशुओं के चुनाव और उनकी नसल को अच्छी बनाने के सम्बन्ध में सरकार को अधिक सफलता मिली है। भारतवर्ष की कृषि सम्बन्धी बाजार और आर्थिक दशा में अभी बहुत कम सुधार हुआ है इस देश के बाजार किसानों के अनुकूल भी नहीं है। यहाँ के किसानों को थोड़ी बहुत सहायता उनके आस-पास के रहने वाले बनियों से मिलती है। इस देश का गवांर और निर्धन किसान प्रायः उधार लेने के लिये भी विवश हो जाता है। वह उधार अपने खेत या उसकी उपज पर लेता है। अब मे बेचारा किसान अपने खेत की उपज को उसी मनुष्य के हाथ बेच देता है जिससे पहले उसने उधार लिया था। इस प्रकार से इसको अपनी मेहनत द्वारा उपार्जन किया हुआ अनाज खाने को नहीं मिलता है। किसान का आधार केवल उसके खेत और फसलें हैं। कष्ट के दिनों मे भारतवर्ष का किसान अपनी फसलों को बेच डालता है और अधिक कष्ट पड़ने पर अपने खेतों से भी हाथ धो बैठता है। किसान के उधार लेने और अनाज बेचने की शर्तों को कोई जानता नहीं है। वे प्रायः गुप्त रहती हैं। यह सब बातें केवल उसी को मालूम रहती हैं जिससे किसान अपनी आवश्यकता की पूर्ती के लिये उधार लेता है। इस प्रकार से किसान का गवारपन और उसकी कमजोरी सदा उसके लिये हानिकारक रहती है। किसान जो उधार लेता है उसके लिये उसको प्रति वर्ष १० से ७५ प्रतिशत तक ब्याज देना पड़ता है। इस ढग का सुधार केवल इस प्रकार के कर्ज का त्याग देना ही है।

इस देश के कुल खेती योग्य क्षेत्र के ८५ प्रतिशत भाग में अनाज के फसलों की खेती होती है। यहा की उपज के ८५ प्रतिशत भाग की खपत इसी देश मे हो जाती है। इस खपत का अधिक भाग ग्रामों ही में खप जाता है। बोये हुये क्षेत्रों के ३३ प्रतिशत भाग में चावल की उपज होती है। यहाँ की पैदा होने वाली फसलों पर यह प्रथम श्रेणी की फसल है। दूसरी श्रेणी मे गेहूँ, ज्वार और बाजरा की फसलें आती हैं। यह फसलें सूखी जलवायु में पैदा होती हैं। यहाँ पर दालों की भी उपज खूब होती है। यहाँ के निवासी दाल को बड़े चाव से खाते हैं। यह देश कपास, तम्बाकू और जूट की उपज के लिये भी प्रसिद्ध है किन्तु इनकी उपज कम होती है। कुछ

समय से लोगों का ध्यान व्यवसायिक फसलों की की उपज की तरफ गया है। इस देश मे कपास की औसत उपज प्रति एकड़ में संयुक्त राज्य की अपेक्षा बहुत कम है। इस देश के दो एकड़ कपास की उपज संयुक्त राज्य अमरिका के एक एकड़ कपास की उपज के बराबर है। व्यवसायिक सम्बन्धी कारखानों की उन्नति होने के कारण इस देश की दशा मे निसंदेह परिवर्तन हो जायगा। किन्तु अभी इस देश के अधिक भाग मे यहां की सैकड़ो वर्ष वाले पुराने रीत रिवाज और कृषि सम्बन्धी ढग प्रचलित हैं।

कृषि सम्बन्धी सामान्य समस्यायें

कृषि सम्बन्धी साधन—विश्व के भूमि का बहुत थोड़ा भाग खेती के लिये जोता जाता है। इससे अधिक भाग जोता भी नहीं सकता। इसका कारण वहां की सम्बन्धित कठिनाईया हैं।

भूमि का अधिक क्षेत्र सूखा पड़ा रहता है। इस प्रकार के क्षेत्रों मे अनाज की पैदावार नहीं हो सकती है। भूमि का कुछ भाग बहुत गीला रहता है जिसमें खेती हो भी नही सकती। भूमि का कुछ क्षेत्र पथरीला भी है जो खेती के लिये बेकार रहता है। इसी प्रकार से भूमि के कुछ क्षेत्र अधिक गर्म और ठंडे भी होने के कारण खेती के लिये बेकार रहते हैं। यही कारण है कि विश्व के भूमि के ५००,००,००० करोड़ वर्ग मील के क्षेत्र मे केवल ५०,००,००० वर्ग मील से कम क्षेत्र मे खेती होती है। अगर खेती सम्बन्धी इसी प्रकार वर्षों तक प्रयत्न होता रहा तो आधुनिक खेती वाले यन्त्रों के प्रयोग के कारण से खेती वाला १,००,००,००० वर्ग मील हो जायेगा। आजकल भूमि सम्बन्धी अनुसंधान हो रहे हैं। इनको देखने से यह पता चलता है कि हम लोगों का यह अनुमान, है कि कुछ समय में खेती के क्षेत्रों में वृद्धि हो जावेगी ठीक नहीं प्रतीत होता है। अभी हाल ही में रूसी विद्यार्थियों ने यह पता लगाया है कि मिट्टी का निर्माण तीन श्रेणीयों द्वारा होता है। जब किसी चट्टान या और अन्य चीजों द्वारा मिट्टी बनने का श्री गणेश होता है तो उसकी इस अवस्था का नाम तरुण अवस्था (यग) है। इसी प्रकार से दूसरी अवस्था का नाम प्राकृतिक अवस्था है। इसी प्रकार से तीसरी अवस्था का नाम अवस्था विशेष है। इस अवस्था मे मिट्टी अपने रूप मे आ जाती है। दूसरी श्रेणी की मिट्टी पर जलवायु का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। इस पर भूगर्भ सम्बन्धी परिवर्तनो का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता है। निसंदेह यह बडे आश्चर्य का विषय है कि विश्व के वर्षा वाले क्षेत्रो मे प्राय. दूसरी श्रेणी वाली मिट्टी पाई जाती है वह बहुत कम उपजाऊ होती है। इसका कारण उन क्षेत्रो मे अधिक वर्षा का होना है। किन्तु जावा मे मिट्टी की विपरीत ही दशा मिलती है। इस देश मे प्रथम श्रेणी वाली या नई मिट्टी पाई जाती है। यह मिट्टी ज्वालामुखी पर्वतो के उद्गारों द्वारा बनी है। इस प्रकार के उद्गारों मे भूमि के भीतरी भागवाले पदार्थ बाहर आ जाते हैं और फिर निश्चित समय मे यही पदार्थ मिट्टी मे परिणत हो जाते हैं। इस देश की मिट्टी खूब उपजाऊ है और देश भी अधिक घना बसा है। इसी प्रकार से प्रथम श्रेणी वाली मिट्टी मध्यवर्ती अमरीका मे भी पाई जाती है। इस भाग में केलो की खूब उपज होती है। पश्चिमी योरुप के जिन भागों मे वर्षा अधिक होती है वहां पर दूसरी श्रेणी वाली मिट्टी पाई जाती है। इस क्षेत्रों को अब अधिक उपजाऊ बना लिया गया है। इसके लिये वहां के लोगों को बड़ा श्रम करना पड़ा है। अगर इस सम्बन्ध मे इसी प्रकार के श्रम होते रहे तो इस भाग की भूमि सदा उपजाऊ बनी रहेगी। संयुक्त राज्य अमरीका मे वाशिंगटन के पश्चिमी भाग की भूमि का भी अब साफ करके खेती योग्य बना लिया गया है। इस भाग की जलवायु इंगलैंड या पश्चिमी फ्रांस की तरह है। इस क्षेत्र की मिट्टी

की बनावट में वहां की जलवायु का अधिक प्रभाव पड़ा है। इसी कारण से अब इन क्षेत्रों में खेती योग्य अच्छे खेत बन गये हैं। इनमें उपज भी खूब होती हैं।

जलवायु का प्रभाव किस प्रकार से वहां की मिट्टी पर पड़ता है इसका एक दूसरा उदाहरण प्रेरी मैदान वाली काली मिट्टी है।

यह संयुक्त राज्य अमरीका के पश्चिमी भागों का मध्य वाला क्षेत्र है। इसी प्रकार से वर्षा का प्रभाव भी मिट्टी पर पड़ता है। पूर्वी टेक्साज में घने जंगल मिलते हैं जब कि उत्तरी पश्चिमी टेक्साज में पेड़ों का अभाव देखने में आता है। इसी तरह से इण्डियना में वर्षा के कारण से जंगल पाये जाते हैं। जब कि पश्चिमी नेब्रास्का में रेगिस्तानी भूमि पाई जाती हैं। इस प्रकार से इन दूर एक दोनों क्षेत्रों के बीच में वर्षा की असमानता देखने में आती है। इस प्रकार की असमानता इन भागों की प्राकृतिक वनस्पति में भी पाई जाती है। इसका मुख्य कारण यह है कि वर्षा उन भागों में समान रूप से नहीं होती है। इसके फलस्वरूप हमको घास की एक चौड़ी पेटी इन भागों में फैली हुई मिलती है। घास के कारण से ही काली मिट्टी का निर्माण होता है। टेक्साज में इस प्रकार की मिट्टी का नाम काली वेक्सी है। इसी प्रकार से अल्बर्टा, सस्कचवान मैनीटोबा, पूर्वी डाकोटा, पूर्वी नेब्रास्का और कान्साज के मध्य भागों की मिट्टी भी बनी हुई है। ये भाग गेहूँ की उपज के लिये विश्व में प्रसिद्ध हैं। यह काली मिट्टी वाली भूमि इन देश के पूर्वी और उत्तरी जंगलों के बीच एक अवस्थान्तर पेटी के रूप में है। वर्षा और वनस्पति सम्बन्धी इस प्रकार के परिवर्तन सम्बन्धी वाले क्षेत्र दूसरे देशों में भी पाये जाते हैं। इस प्रकार के क्षेत्रों में अधिकतर काली मिट्टी वाली भूमि मिलती है। इन क्षेत्रों में प्रायः अनाज वाले ही खेत पाये जाते हैं। अर्जेनटाइना में काली मिट्टी वाला बहुत थोड़ा क्षेत्र मिलता है। किन्तु इस क्षेत्र में अन्न की पैदावार खूब होती है। इस देश का अनाज बाहर भी भेजा जाता है। यूरेशिया में काली भूमि वाली पेटी कृष्ण सागर से लेकर रूस तक फैली हुई है। यही पेटी साइबेरिया में दूर तक पाई जाती है। काली मिट्टी वाला क्षेत्र आस्ट्रेलिया में बहुत कम मिलता है। सूडान में आस्ट्रेलिया की अपेक्षा अधिक काली मिट्टी का क्षेत्र मिलता है। काली भूमि अपने अनाज की पैदावार के लिये विश्व में प्रसिद्ध है। अनाज की उपज वाले भाग विश्व के उन्हीं स्थानों में पाये जाते हैं जिन स्थानों की मिट्टी काली है। विश्व के नगरों की जो उन्नति हो रही है उसका एक मुख्य कारण काली मिट्टी वाली पेटियों की पैदावार है। इन भागों से नगरों के लिये खाद्य सामग्री बराबर आती रहती है।

खेती के ढंग—ये कई प्रकार के होते हैं। इनकी उपज के मुख्य कारण जलवायु और मिट्टी है। उष्ण कटिबन्ध के जंगलों में खेती भूमि के छोटे-छोटे टुकड़ों में होती है। इसका कारण यह है कि इस प्रकार के क्षेत्रों में बड़े-बड़े खेत नहीं बन सकते हैं। इस प्रकार की खेती में पशुओं की आवश्यकता नहीं होती है। अफ्रीका के कांगो के जंगलों में इसी प्रकार की खेती होती है। इसके अलावा इस प्रकार की खेती ईस्ट इन्डीज, फिलपाइन्स और अमरीका के अन्य उष्ण कटिबन्ध वाले भागों में होती है इस प्रकार के क्षेत्रों में लाखों मनुष्य काम करते हुये दिखलाई पड़ते हैं। इन क्षेत्रों के ग्रामीण लोग जंगलों को काट-काट कर खेत भी बना लेते हैं किन्तु इस प्रकार का काम सूखे ही मौसम में होता है। बड़े-बड़े पेड़ों को जला दिया जाता है। सूखे मौसम के अन्त में यहां के लोग बेकार चीजों को जला देते हैं। इसके बाद खुर्पी या अन्य किसी दूसरी तेज वस्तु की सहायता से सनाय और केले आदि पेड़ों को नष्ट कर डालते हैं। इस प्रकार से बनाये हुये क्षेत्रों में जड़, कपास, सूर्यमुखी बाजरा और अन्य प्रकार की तरकारियाँ भी बो देते हैं। इन चीजों को वहां की औरतें अपने हाथों या खुर्पी द्वारा बोती हैं। दो तीन फसलों के पैदा होने के बाद भूमि की नमी समाप्त हो जाती है। अनाज या तरकारियों की उपज नहीं हो सकती है। अफ्रीकन लोग इस प्रकार के क्षेत्र को छोड़ कर दूसरा क्षेत्र बनाते हैं। अफ्रीकन लोग अपने गांव के पास वाली, समस्त खेती योग्य भूमि को जोतते हैं। फसलों की

पैदावार करने के पश्चात् जब भूमि की नमी नष्ट हो जाती है तो उस स्थान को भी छोड़ कर दूसरे स्थानों में बस जाते हैं। यह लोग इसी तरह बराबर किया करते हैं। इस प्रकार इनका गांव एक स्थान से दूसरे स्थान में बसता और हटता रहता है। वास्तव में यह लोग एशिया के खाना बदोशों की भांति अपने जीवन का निर्वाह किया करते हैं। वेस्ट इंडीज में भी छोटे-छोटे खेत पाये जाते हैं। इस प्रकार के खेते कुछ चौड़े भी होते हैं। इन खेतो में गन्ना और केला की पैदावार खूब होती है। गन्ना वाले खेते इस देश मे एक व्यापारिक महत्व रखते हैं। गन्ने को यहां की बड़ी-बड़ी मिलों मे पहुंचा दिया जाता है जहा पर इन से चीनी बनाई जाती है। इस देश मे केले के खेतों का भी इसी प्रकार से महत्व है। इसी प्रकार से उष्ण कटिबन्ध वाले क्षेत्रों में केकाओ और रबड़ के पेड़ पाये जाते हैं। यह भी जंगलो का एक परिवर्तित रूप ही होता है। वेस्ट इंडीज के पूर्वी और पश्चिमी दोनों भागों मे जो उष्ण कटिबन्ध वाले ऊँचे क्षेत्र हैं वे चाय और कहवा के पेड़ों से ढके हुये हैं। इसमें मजदूर लोग काम करते हैं जिन को मजदूरी दी जाती है। ये मजदूर लोग यहां के गोदामों से अपने खाने पीने का सामान उसी तरह खरीदते हैं जैसे डेन्मार्क या हल्यूनोयम के खेतों वाले मजदूर खरीदते हैं। वृक्षादि लगाने का कार्य अमरीका के पश्चिमी द्वीप समूहों मे प्राचीन समय से होता चला आया है। अफ्रीका में भी अभी थोड़े समय से यह कार्य आरम्भ कर दिया गया है। यहां पर खजूर और केकाओ के पेड़ अधिक संख्या में लगाये जा रहे हैं। इन प्रकार के पेड़ों के लिये किसी खास ढग के भूमि की आवश्यकता नहीं पड़ती है। पेड़ लगाने का कार्य प्राय. उसी स्थान पर होता है जहा पर इसके लिये अनकूल भूमि और जलवायु मिल जाती है। जावा और हवाई देशों की मिट्टी ज्वाला मुखी के उद्गारों द्वारा बनी हुई है। यह देश गन्ना की उपज के लिये प्रसिद्ध हैं। इन देशों की चीनी विश्व के दूसरे भागों मे भी भेजी जाती है। क्यूबा देश अपने चूने वाले मैदानों के लिये प्रसिद्ध है। इस देश में भी गन्ना खूब पैदा होता है। यहां से चीनी भी विदेश को भेजी जाती है। अमरीका के संयुक्त राज्य अमरीका के दक्षिणी भाग मे कपास अधिक पैदा होती है। इस क्षेत्र के कपास की खेती का ढग उष्ण कटिबन्ध वाले देशों के टुकड़े-टुकड़े की खेती से मिलता जुलता है। अमरीका के इस भाग मे भी वर्षा वाली जलवायु, पानी से लाई हुई मिट्टी, जगल और नीग्रो जाति के लोग पाये जाते हैं। गुलामी के समय में अमरीका इस भाग के रहने वाले कपास के पुराने खेतों को छोड़ देते थे और नये-नये खेत जंगलो को साफ करके बनाते थे। अब अमरीका के इस क्षेत्र में भूमि को पशुओं द्वारा जोत कर खेती की जाती है और उष्ण कटिबन्ध वाले क्षेत्रों मे खेती यहां के रहने वाले स्वयं अपने हाथों द्वारा भूमि को तैयार करके करते हैं। इन दो क्षेत्रों में केवल यही एक बड़ा अंतर खेती के ढग में है। अमरीका के इस भाग की भूमि भी जोतने और रसायनिक खाद के प्रयोग करने से अब अधिक खराब हो गई है।

सिंचाई द्वारा भी अधिक अन्न पैदा होता है। इस का विश्व में एक मुख्य स्थान है। विश्व की जनसंख्या का ३३ प्रतिशत भाग सिंचाई वाली खेती पर निर्भर रहता है। इस प्रकार से खेती की पैदावार पहले मिस्र बेबीलोनिया, सिन्ध नदी की घाटी और चीनदेश में होती थी। बेबिलोनिया और भारतवर्ष में अनाज के खेतो की सिंचाई नहरों द्वारा भी होती थी। इसी कारण से इन देशों में एक स्थायी समाज की आवश्यकता पड़ी है। इस समाज को ठीक ढंग से चलाने के लिये एक मजबूत सरकार का होना भी अनिवार्य हो गया। इससे यह ज्ञात होता है कि इन देशों की खेती की उपज वहाँ के राज्यो के ऊपर रहती थी। इस सम्बन्ध में मिस्र अधिक भाग्य शाली था। इस देश मे सिंचाई वहां की नदियों के बाढ़ के ऊपर निर्भर रहती है। अब इस देश में खेतिहर भूमि का क्षेत्र बढ़ाया जा रहा है। इसकी सिंचाई भी अब नहरों ही द्वारा होगी। इस प्रकार की खेती से अधिक लाभ भी होता है। सबसे अधिक लाभ यह है कि पानी अपने साथ जो उपजाऊ पदार्थ लाता है वह खेतों में बिखेर देता है। इस कारण से खेत की उपज में भी वृद्धि होती है। खेत का धरातल भी एक

समान बना रहता है। खेत के कटने फटने का भय नहीं रहता है। भूमि भी उपजाऊ बनी रहती है। सिंचाई द्वारा खेती से हानि भी होती है। नहरों आदि के बनवाने में अधिक व्यय की आवश्यकता पड़ती है। खेतों को नहरों के पानी द्वारा सींचने से उस में क्षार भी जमा हो जाते हैं। जिसके साफ कराने में अधिक खर्च पड़ता है। फिर भी यह स्पष्ट है कि लाभ की अपेक्षा हानि बहुत कम है। पूर्वी देशों के धान वाले खेतों में सिंचाई द्वारा चावल की अच्छी उपज होती है। इसके लिये चीन विशेष में प्रसिद्ध है। जापान, भारतवर्ष, लङ्का और जावा भी इस प्रकार की सिंचाई के लिये प्रसिद्ध हैं। सिंचाई के साधनों में अब और भी उन्नति हो गई है। यह आश्चर्य का विषय है कि पहाड़ के ढालों पर भी खेती सिंचाई द्वारा होती है। पहाड़ों के किनारों को बड़ी कठिनाई के साथ इस प्रकार से समतल बनाया गया है कि उसके द्वारा पानी पहाड़ के ढाल वाले खेतों में पहुंचाया जा सके। वास्तव में विश्व के इस प्रकार के भागों में भी खेती अब स्थायी रूप से होने लगी है। इस प्रकार के क्षेत्रों में सिंचाई द्वारा धान की भी उपज होती है। पहाड़ी भागों में अब धान की उपज एक स्थायी फसल हो गई है। मनुष्य के मल आदि को डाल कर इस क्षेत्र के खेतों को उपजाऊ बनाया जाता है। यह एक बहुत विचित्र बात है कि अमरीका के लुसियाना, टेक्सास अर्कान्सास और कैलीफोर्निया के राज्यों में धान के खेतों के लिये आवश्यक पदार्थों को मशीनों द्वारा पकड़ लेते हैं। किन्तु खेतों की उर्वरता को इन मशीनों द्वारा नहीं रोक सकते हैं। संयुक्त राज्य अमरीका की सिंचाई वाली प्रणाली में कोई नये महत्व वाली चीज देखने में नहीं आती है। भूमध्य सागर वाले देशों में कुछ वर्षा जाड़े के मौसम में हो जाती है। इन देशों में गर्मी का मौसम सूखा रहता है। इन देशों में दो प्रकार की खेती होती है। एक बाग वानी के रूप में है। इसमें किसानों के छोटे-छोटे खेत भी पाये जाते हैं। इनमें खेती सिंचाई द्वारा होती है। दूसरे प्रकार की खेती पठारों में होती है जिनकी मुख्य उपज गेहूँ और जौ है। इन खेतों में कभी-कभी तरकारियों की भी उपज हो जाती है। इस प्रकार के क्षेत्रों में खेती भूमि को जोत कर की जाती है। यही कारण है कि ग्रीस, इटली, सिरिया और दूसरे भूमध्य सागर वाले देशों के पठारों का अधिक भाग नष्ट हो गया है। पुरानी दुनिया का बिना-सिंचाई वाला क्षेत्र अब एक तमाशे के रूप में रह गया है। इसके अधिकतर भाग में अब सिंचाई द्वारा खेती होने लगी है। विश्व का बहुत कम भाग अब ऐसा रह गया है जिसमें अभी खेती नहीं हो सकी है। भूमि का नष्ट होना केवल मैदानों खेतों में पाया जाता है जिन में खेती के लिये सिंचाई की आवश्यकता नहीं रहती है। इसका कारण यह है कि इन प्रकार के खेती बहुत समय से जोते जा रहे हैं। भूमि को जोतने से भी उसमें कटान फटान आ जाती है। कैलीफोर्निया का देश प्रत्येक देश में भूमध्य सागर वाले देशों से मिलता जुलता है। इस देश में कोई भी पठारी भूमि नहीं है। यह देश फलों की उपज के लिये प्रसिद्ध है। इस देश से फल बाहर भी भेजा जाता है।

उत्तरी-पश्चिमी योरुप की खेती दक्षिणी योरुप व पूर्वी संयुक्त राज्य अमरीका की अपेक्षा अधिक स्थायी रूप में पाई जाती है। इसका कारण यह है कि उत्तरी-पश्चिमी योरुप का बहुत कम क्षेत्र पहाड़ी है। यहाँ पर गर्मी में थोड़ी वर्षा भी हो जाती है यहां पर घास स्थायी रूप से फैली हुई है। यहां के खेतों में चारा भी पैदा किया जाता है जो अनाज के खेतों में (उनमें बोई गई फसलों के कटने के बाद) बोया जाता है। इस देश में खेती फसलों की अदली-बदली द्वारा होती है। खेती की इस प्रणाली से अनाज की अच्छी उपज होती है इस देश में इस प्रकार की खेती लगभग ५० वर्षों से हो रही है। अगर इस प्रकार की खेती चतुरता पूर्वक हो तो अनाज, आलू, फल, चुकन्दर और तरकारी इत्यादि की उपज खूब हो सकती है। पशु पालन के व्यवसाय में भी वृद्धि हो सकती है। पूर्वी कनाडा (आंटेरियो मैदान को छोड़ कर), न्यूइङ्गलैंड और न्यूयार्क के कुछ भागों में खेती योरुप वाली प्रणाली के अनुसार होती है। इन देशों में फसलों की उपज

में कोई परिवर्तन नहीं है। खेती सम्बन्धी साधनों मे भी कोई नया ढंग नहीं पाया जाता है। इन देशों के भीतरी और दक्षिणी भागों मे जई, तम्बाकू और कपास की उपज में कुछ वृद्धि हो गई है। इसका कारण यह है कि इन तीन फसलों की पैदावार खेती के नये साधनों द्वारा की जाती है। इन फसलों की उपज के लिये खेती का विस्तार भी अधिक होना चाहिये। गर्मी मे वर्षा भी होनी चाहिये जो इन देशों मे बहुत होती हैं। इस प्रकार से भूमि भी जोतने मे ढीली हो जाती है और बोये हुये बीज आसानी से बाहर आ जाते हैं। इस प्रकार की खेती से अमरीका की भूमि को बहुत हानि पहुंच रही है जिसकी तुलना मनुष्य । इसी समय के इतिहास से नहीं कर सकता है। कुछ इस प्रकार की भी भूमि होती है जिसमे केवल घास या छोटी छोटी ही झाड़ियां उगती हैं। इस प्रकार की भूमि जोती नहीं जा सकती है। इसमे अनाज वाली फसलों की भी उपज नहीं हो सकती है। इन क्षेत्रों मे पशु आदि चराये जाते हैं। इस ढङ्ग से जो भूमि का उपयोग होता है वह निम्न श्रेणी का उपयोग माना जाता है। ऐसे चरागाह मंगोलिया, मध्य एशिया, अरब और सूडान मे पाये जाते हैं।

इन क्षेत्रों के रहने वालों को खाना बदोश कहते हैं। यह लोग अपने पशुओं के झुंड के साथ इधर उधर फिरा करते हैं। इन लोगों मे अब अच्छी सभ्यता का विकास हो गया है। आस्ट्रेलिया, दक्षिणी अफ्रीका, अर्जेन्टाइना, ब्राजील और उत्तरी अमरीका का पश्चिमी भाग भी इसी प्रकार के चरागाहों के लिये प्रसिद्ध हैं। इन क्षेत्रों मे गायें और भेड़ें अधिक चराई जाती हैं। इनमे जो वस्तु प्राप्त होती है उससे व्यापार भी किया जाता है। इन भागों से चरागाहों का विस्तार अब कम हो गया है। इसका कारण यह है कि इन क्षेत्रों मे अधिक पशु चराये जाते हैं। इसके अलावा घास और छोटे-छोटे पौधों को नष्ट भी किया जा रहा है।

व्यापार वाली खेती, इसकी प्रवृतियां और समस्यायें

इसमें सदेह नहीं कि आज कल के समय मे व्यवसाय की अधिक उन्नति हुई है। और बड़े-बड़े कारखाने बने हुये हैं। जिनमे मशीनों द्वारा काम होता है। व्यापार भी रेल मार्गों और जहाजों द्वारा होता है। इसी प्रकार से खेती भी मशीनों द्वारा ही होती है। इन्हीं कारणों से वाणिज्य सम्बन्धी कृषि और आधुनिक नगरों का विकास हुआ है। १८०० ई० तक लोग सामान अपने हाथों से घर ही में बनाते थे। आज कल की भांति बड़े-बड़े कारखाने न थे। इसी प्रकार से गावों मे लोग खेती भी किया करते थे। उनको इसके लिये मशीनों आदि का सहारा न था। यह लोग अपने लिये अनाज, फल आदि पैदा करते थे। दूध, मास और ऊन के लिये पशु पालते थे इन पशुओं के चराने के लिये चरागाह भी होते थे। इन लोगों को अपनी फसलों की उपज के लिये जलवायु पर निर्भर रहना पड़ता था। इस प्रकार की दशा मे आत्मा को सन्तुष्ट बनाये रखना भी बड़ा ही अनिवार्य होता था। अगर किसी कारण से फसलें सूख जाती थी या पैदावार कम होती थी तो गांव के लोगों को भूखों मरना पड़ता था। आजकल की भांत उस समय में यातायात सम्बन्धी साधन उपलब्ध न थे। १९०० ई० तक सामान आदि गावों के बजाय नगरों मे बनने लगे। खेती के ढंग में भी थोड़ा सुधार हो गया। इस प्रकार के खेत बनाये गये जिनमें अनाज की पैदावार अधिक होने लगी। अनाज प्रायः उसी खेत में बोया जाने लगा जिससे उसकी अच्छी उपज होती थी। इससे लोगों को यह लाभ हुआ कि अनाज की पैदावार अगर किसी परिवार के उपयोग से अधिक हुई तो वह परिवार बचे हुये अन्न को बेच डालता था और अपने लिये उस वस्तु को मोल ले लेता था जिसकी उसे अधिक आवश्यकता रहती थी। इस प्रकार से एक परिवार अपने लिये सामान बनाने और उसका उपयोग करने की अपेक्षा से वह अधिक अनाज को बेचता और सामान खरीदता था। यही कारण था कि जूलियस सीजर और जान आदम के समय में छोटे छोटे कारखाने खुले। इन कारखानों द्वारा १९०० ई० के लोगो की आवश्यकतायें न पूरी हो सकीं। १९३० ई० तक लोगों की आवश्यकताओं मे और अधिक वृद्धि हो गई। १९०० की आवश्यकताओं के अलावा अब एक किसान का ध्यान फोटोग्राफ, रेडियो,

गैसोलीन, मशीनों और समाचार पत्रों की ओर गया। इस कारण से अब इस बात की आवश्यकता पैदा हुई कि वह बेचने के लिये जो कुछ सामान १९०० ई० में पैदा करता था। उससे कहीं अधिक सामान वह अब पैदा करे बहुत से इस प्रकार के कारखाने जो १९०० ई० की आवश्यकताओं के अनुसार थे फेल हो गये। १९२०-३० ई० में इस प्रकार वाले बहुत से कारखाने टूट गये। वाणिज्य सम्बन्धी खेती की उन्नति अभी तक बहुत ही कम है। इसका एक मुख्य कारण यह है कि उत्पादन खपत की अपेक्षा अधिक बढ़ा हुआ है। दूसरा कारण यह है कि किसान के पास कोई लेन देन वाली शक्ति भी नहीं रहती है। उसको समय के अनुसार सामानों की कमी और मांग सम्बन्धी ज्ञान भी नहीं हो पाता है। तीसरा कारण यह भी है कि आज कल किसान लोग जो खेतों में पैदा करते हैं, उसका मूल्य भी अन्य सामानों की अपेक्षा कम रहता है। जर्मन और अंग्रेज किसान लोगों की वही दशा है जो अमरीका के किसानों की है। यह एक अनोखी बात है। हम लोगों को एक शताब्दी से यह बतलाया जा रहा है कि मशीनों द्वारा खेती की उपज बढ़ जायगी और इस प्रकार से हर एक किसान के पास अधिक धन हो जावेगा। अब हम लोगों को पता चलता है कि खेतों में मशीनों का प्रयोग अधिक लाभ प्रद नहीं होगा। किसान भी मशीनों की खेती द्वारा धनी नहीं हो सके हैं। अन्य श्रेणी के सामानों के उत्पादन और अनाज की उपज के साधनों के बीच काफी अंतर है। अगर एक मनुष्य धनी होता है तो वह कारखानों के सामानों को अधिक संख्या में खरीद सकता है। किन्तु वह धन मनुष्य की भूख को नहीं बढ़ा सकता है। प्राय यह भी देखा जाता है कि जो धनी होता है वह अन्य लोगों की अपेक्षा कम खाता भी है। इसका कारण यह है कि धनी लोग मोटरों में चलते हैं। इस प्रकार से उनकी शक्ति कम खर्च होती है जिसके कारण से उनको कम भोजन करने की आवश्यकता पड़ती है। ऐसा मालूम हुआ है कि अमरीकन लोग भी अब अपने भोजन में अधिक मांस खाना पसंद नहीं करते हैं। वे लोग अब अनाज, फल और साग ही अधिकतर पसन्द करते हैं। इस प्रकार का परिवर्तन किसानों के लिये और भी हानि कारक है। इसका कारण यह है कि अनाज की उपज कम भूमि में भी हो सकती है किन्तु मांस के के लिये अधिक भूमि की आवश्यकता पड़ती है। पशु आदि का पालने और चराने के लिये चरागाह का होना अनिवार्य है। गैसोलीन के प्रयोग के कारण से लाखों एकड़ भूमि खाली हो गई हैं। गैसोलीन मोटरों के चलने में काम आता है। अमरीका आदि देशों में जो काम पहले घोड़ों से लिया जाता था वह अब अति सुगमता से मोटरों द्वारा ही लिया जाता है। जिस भूमि में पहले जई और घोड़ों को खिलाने के लिये चारा वाली फसलें पैदा कि जाती थीं वह भूमि अब खाली हो गई है। घोड़े भी अब इतनी अधिक संख्या में नहीं पाले जाते हैं। इससे किसानों को बड़ी हानि पहुंची है। अमरीका की सरकार ने उपज के बढ़ाने के सम्बन्ध में मुख्य काम किया है। अमरीका के कृषि विभाग ने किसानों यह सिखलाया है कि वे अपने खेतों की उपज को किस प्रकार से बढ़ावें। इसका प्रभाव वहां के बाजार पर भी अधिक पड़ा है। ओ० ई० बेकर साहब ने जो अमरीका के कृषि विभाग में काम करते हैं दिखलाया है कि यहां पर गाय की संख्या पहले की अपेक्षा कम हो गई है किन्तु दूध की मात्रा बढ़ गई है। इसी प्रकार से पशुओं की संख्या में भी कमी हो गई है किन्तु मांस की मात्रा बढ़ गई है। भेड़ की संख्या में भी कमी आ गई है। परन्तु मांस की मात्रा में वृद्धि है। इसका कारण यह है कि खेती नई मशीनों द्वारा की जाती है। पशुओं के पालने आदि का भी उत्तम प्रबन्ध है। बेकर साहब का यह कहना है कि नये साधनों से खेती करने से २० वर्ष में अनाज की उपज पिछले वर्षों की अपेक्षा अच्छी होने लगेगी। बेकर साहब यह भी कहते हैं कि लोगों का खेती सम्बन्धी ज्ञान बढ़ रहा है। खेती वाले यन्त्रों की भी उन्नति हो रही है। खेतों में बिजली का भी प्रबन्ध किया जा रहा है। व्यापार सम्बन्धी संगठन भी किया जा रहा है। इस प्रकार के संगठन द्वारा कारखानों के उत्पादन और खेतों की उपज का वितरण

किया जायेगा। इस प्रकार से लोगों को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति होती रहेगी। कृषि सम्बन्धी निम्नलिखित परिवर्तन हुये हैं। जिससे किसानों को अधिक लाभ हुआ है।

(१) बड़े-बड़े संघबद्ध खेत:—इस प्रकार के खेत उदाहरण के लिये मान्टाना में पाये जाते हैं। १९१७ ई० में यहा पर लगभग ३५,००० खेत थे। जिनमें केवल गेहूँ की उपज होती थी। ११ वर्ष के बाद केवल १४,००० ही खेत रह गये थे। किन्तु इनमें गेहूँ की उपज पहले की अपेक्षा अधिक होती थी। यह कमी ट्रैक्टरों के आगमन के कारण से हुई। जिनमें खेतों को जोतने के लिये ४ फल तक लगे रहते थे। इन बड़े-बड़े खेतों को काटने के लिये भी मशीनों का प्रयोग होने लगा। इसके अलावा अनाज मशीनों द्वारा मांडा भी जाने लगा। इस बात की भी परीक्षा की जा रही है कि खेतों के जोतने में १२ फलों तक का प्रयोग किया जा सके। इसके सफल होने पर और बड़े-बड़े खेतों का होना भी अनिवार्य हो जायेगा आज कल इस बात का प्रयोग कई देशों में हो रहा है कि चारा को किस प्रकार से मशीनों द्वारा सुखवाया जावे। इस प्रकार की मशीनों से किसानों को और अधिक लाभ पहुंचेगा। नम देशों में मौसम के खराब होने से उनका चारा भी नहीं खराब होगा। वे तुरन्त मशीनों द्वारा अपने चारों को सुखा कर किसी सुरक्षित स्थान में रख देंगे। यह आशा कि जाती है। कि इस प्रकार की मशीन ६४० एकड़ तक चारा वाले खेत के चारा को सुखा देगी। इस प्रकार के परिवर्तन बहुत जल्द होने वाले हैं। इसमें सदेह नहीं है कि इस प्रकार के परिवर्तन से पैदावार भी अधिक होने लगेगी। इन सबसे यह भी मालूम होता है कि प्रति कुटुम्ब सम्बन्धी खेती का जो ढग है वह भी लुप्त हो जायेगा। विश्व में छोटे-छोटे फार्मों के स्थान पर बड़े-बड़े फार्म बन जायेंगे जिनके द्वारा कई परिवार का निर्वाह हो सकेगा।

(२) बड़े-बड़े शृंखलावाले खेत—इस प्रकार के खेतों के साथ उनकी सारी आवश्यकतायें जुडी रहेगी। उन फार्मों के पास अपने पशुओं को खिलाने के लिये चारा रहेगा। पौधों की देख रेख का भी सामान रहेगा। कृषि सम्बन्धी मशीनें भी रहेगीं। पौधों को खरीदने और बेचने का भी प्रबन्ध रहेगा। फार्म के पास अपने मजदूर भी रहेगे। फार्म को मजदूर आदि की कठिनाई न रहेगी। इस प्रकार से कृषि सम्बन्धी अधिक उन्नति होने की आशा है। अपना गोदाम भी रक्खेगा। जिससे उसको किसी भी प्रकार की कठिनाई न उठानी पड़े। इस प्रकार की प्रणाली मिडिल वेस्ट में पाई जाती है। वहा पर यह कार्य सबसे पहले वहां के बैंक वालों ने आरम्भ किया था। जिससे वे हानि से बचते रहे। यह कहना असम्भव है कि इस प्रकार की योजना कहां तक सफल हो सकती है।

(३) वृक्षादि सम्बन्धी फसलें—इस प्रकार की खेती योग्य भूमि का अधिक भाग प्राय. पहाड़ी प्रदेशों में ही पाया जाता है। खेती योग्य अच्छी जलवायु भी इन्ही क्षेत्रों मे मिलती है। पहाडी प्रदेशों की भूमि कहीं पर खेती के काम में नहीं आती है। कहीं-कहीं इस प्रकार की भूमि जोताई द्वारा नष्ट की जा रही है। पेड सम्बन्धी फसलों की अच्छी उन्नति पहाड़ी प्रदेशों में देखी जाती है। इस प्रकार की फसलों द्वारा वहा की भूमि भी नष्ट नहीं होती है। जहा पर पेड उगे रहते हैं वहा की भूमि कटने फटने नहीं पाती है। पेड़ भूमि की रक्षा करते हैं। पेड़ की फसलों मे विश्व को दो प्रकार के लाभ मिलते हैं। पहला लाभ तो यह है कि मनुष्य को कुछ न कुछ भोजन के रूप में मिल जाता है और दूसरा लाभ यह है कि लोगों को लकड़ी आदि मिलती है जिससे मकान या जहाज आदि बनाये जा सकते हैं। चीन देश में लाखो मनुष्य भूखों मर गये होते। किन्तु पश्चिमी आधुनिक मशीनों ने इस घटना को रोक दिया है।

खेती की आर्थिक और सामाजिक दशा

१८०० ई० के अमरीका में अगर अच्छी फसल की उपज होती थी। तो उसका अर्थ यह होता था कि वहां के निवासी सुखी है। यही चीज आज कल चीन में पाई जाती है कि अगर, चीन मे पैदावार अच्छी होती है तो लोग यही विचार करते है कि चीनी लोग सुखी हैं। यह बात व्यवसायिक फसलों

की उपज में नहीं देखने में आती है। अगर व्यवसायिक फसलों की पैदावार अधिक होती है तो इनका अर्थ यह है कि इन फसलों की उपज उसके लिये दुख दायी है जो कि इस को पैदा करता है। १९२६ ई० मे २०,००,००० या ३०,००,००० कपास की बिना चुनी हुई गाठें सयुक्त राज्य अमरीका को भेजी गई और जो शेष कपास थी वह चुनी हुई के भाव ही पर बेच डाली गई। इसी प्रकार से उसी मौसम मे २,००,००,००० या ३,००,००,००० बुशल बिना चुना हुआ सेब सयुक्त राज्य को भेज दिया गया। १,२०,००,००,००० बुशल सेब चुने हुये भाव या उससे कम पर बेच दिया गया। इसने संदेह नहीं है कि इन फसलों के बोने वाले को हानि उठानी पड़ी। अमरीका के बाजारों का भाव बिना सरकार की सहायता या बिना किसी प्रकार के संगठित कार्य के लाभ प्रद उद्देश पर नहीं निर्धारित किया जा सकता है। सगठित रूप के कार्य के लिये अमरीका का किसान बहुत कमजोर पाया जाता है। यह साधारणतः उन सगठित समुदायों का शिकार बना रहता है जो उससे अधिक संगठित हैं। कुछ समुदाय सामान बनाने वालों को कुछ चुगी के रूप में दे दिया करते हैं। कुछ लोग अपने लाभ का थोड़ा सा अंश भी काम करने वालों को दे देते हैं। यह सगठित समुदाय सामान के भावों को बढ़ा देता है। किसान या अन्य लोग इसी बढ़े हुये भाव पर सामान खरीदते हैं। अमरीका मे बैंकों का यह हिसाब किताब है कि जो लोग कर्ज लेते हैं वे लोग जो व्याज की दर निर्धारित रहती है उससे अधिक व्याज देते हैं। इन लोगों के सामने किसानों का कोई भी वश नहीं चल पाता है। इस का कारण भी देखना सरल है। अमरीका के किसान लोग क्षेत्र और फसल सम्बन्धी समूहों में बटे हुये हैं। इनके व्यापार के सामाजिक स्थित इतनी कठिन है कि किसान लोग इसको नहीं समझ पाते। यहां के किसान लोग एक लम्बे चौड़े क्षेत्र में बिखरे हुये ढङ्ग मे बसे हुये हैं। अगर हम इन किसानो की तुलना यहाँ के सामान बनाने वाले लोगों से करते हैं तो यह देखते हैं कि एक मजदूर उस मनुष्य को अधिक धन के रूप में पुरस्कार दे सकता है जो उसके लाभ के लिये कोई नियम बनाते हैं। किसान लोग यह नहीं कर सकते है। अमरीका का एक मजदूर यह जानता है कि उसको किस प्रकार के नियम की आवश्यकता है। अमरीका का किसान इसको नहीं जानता है। उसकी बुद्धि इस योग्य नहीं रहती है कि वह इन सब जटिल बातों को समझ सके। उदाहरण के लिये आयोवा राज्य की जनसख्या में कोई बड़ा व्यापारिक सिद्धान्त नहीं पाया जाता है। इस देश की भूमि समतल है। जलवायु भी अच्छी है। इस देश में जई, गेहूँ, और मका भी पैदा होता है। इसके अलावा पशुओं को खिलाने के लिये घास भी अधिक पैदा होती है। यहां की फसलें इस देश के प्रथम बन्दोबस्त के समय से ही बेची जाती हैं। इन फसलों को बाहर भी भेजा जाता है। ६० वर्ष के लिये यहां के लोगों ने माल सम्बन्धी सुरक्षित कर के लिये अपने मतदान दिया है। इसके अनुसार इस देश की हर एक चीज का भाव जिसको यहा के लोग खरीदते हैं बढ़ गया है। किन्तु बाहर जाने वाली चीजों के भाव मे किसी प्रकार की वृद्धि नहीं हुई है। यहाँ के लोगों ने मतदान इस विश्वास से किया था कि इस प्रकार करने में उन के निजी-स्वार्थ को भी लाभ पहुँचेगा। उसी समय यहां के लोगों ने अपनी उपज पर सुरक्षा सम्बन्धी करो के लिये भी इच्छा प्रगट की थी। यह सब बाते निसंदेह भ्रम में डालने वाली थी। इसका कारण यह था कि यहा से जिन चीजों को बाहर भेजा जाता था वह इस देश के निवासियों के उपयोग से बढ़ता रहता था। इससे यह साफ पता चलता है कि कृषि की उपज और कारखानों के सामानों के भावों को एक समान रखने के लिये यह आवश्यक था कि किसी प्रकार की रोक भावों पर या उत्पादन पर अवश्य रहना चाहिये। सयुक्त राज्य मे भी कुछ इस प्रकार के उदाहरण मिलते हैं जहां पर कृषि सम्बन्धी भाव पर रोक लगाई गई है। सयुक्त राज्य अमरीका मे मरबेरी के पैदा करने वाले लोग सीमित क्षेत्रों में रहते हैं। इसके भाव पर भी रोक लगी हुई है। अमरीका के दूध वाले व्यापारियों ने भी इसी प्रकार की रोक दूध के भावों पर लगाई है। किन्तु इस

प्रकार की रोक अभी कुछ थोड़े ही क्षेत्रों तक सीमित है। अमरीकी फार्मों की दशा भी अच्छी है। यहाँ के लोग खेतों में बहुत थोड़ी मजदूरी में काफी अधिक समय तक काम करते रहते हैं।

डेन्मार्क में विपरीत दशा देखने में आती है। इस देश में भी खेती का अच्छा संगठन है। अमरीका का किसान वर्ग सदा कानून बनाने वालों का शिकार बना रहता है। किन्तु डेन्मार्क में यह बात नहीं है। यहाँ पर किसान विधान वाली सभा पर नियन्त्रण रखता है। अमरीका के किसान की गणना यहाँ के औसत श्रेणी के लोगों में होती है किन्तु डेन्मार्क का किसान स्वयं औसत श्रेणी का होता है। रूस के किसानों में एक अनोखी बात पाई जाती है। यहाँ के किसान वर्ग और व्यवसायिक वर्ग के लोगों में बराबर झगड़ा होता रहता है। दोनों लोग यह चाहते हैं कि नियम इस प्रकार के बनें कि जिनके द्वारा एक को दूसरे की अपेक्षा अधिक लाभ हो। चीन और जापान में कृषि सम्बन्धी दूसरी ही दशा देखने में आती है। इन देशों के कारखानों में जो व्यवसायिक आन्दोलन प्रारम्भ हो रहे हैं। इस प्रकार के आन्दोलन कृषि सम्बन्धी विस्तार के लिये नहीं हो सकता है। इसका कारण यह है कि चीन और जापान दोनों देशों में छोटे-छोटे विस्तार वाले खेत पाये जाते हैं। इन खेतों में मजदूरों द्वारा काम होता है और खेतों में दो-दो फसलें भी पैदा की जाती हैं। यह काम मशीनों द्वारा नहीं हो सकता है। इन देशों में अगर व्यापार सम्बन्धी उन्नति होती है तो इसका यह अर्थ है कि अन्न की अधिक उपज न हो सकेगी। इससे पता चलता है कि इन देशों की कृषि सम्बन्धी प्रणाली में अभी कोई परिवर्तन नहीं होगा। यहाँ के गांवों में कुटीर उद्योग धंधे भी स्थापित किये जा रहे हैं। जिनसे यह आशा की जाती है कि पूर्वी देशों के किसानों की दशा में भी कुछ सुधार हो जायेगा। इस प्रकार से गाँवों में जो कारखाने रहेंगे उनको मजदूर भी लाखों की संख्या में मिल जावेंगे। इसी प्रकार का प्रबन्ध योरुप और अमरीका में भी किया जा रहा है। आजकल के समय में सामाजिक संगठन और क्षेत्र सम्बन्धी योजना के लिये एक मुख्य स्थान दिया जा रहा है। यह भी देखा जाता है कि किसान लोग गर्मी के मौसम में खेतों में काम करते हैं और जब जाड़े का मौसम आता है तो दस्तकारी का काम अपने घरों में करते रहते हैं। किन्तु किसानों की यह दशा समान रूप से हर एक देश में नहीं पाई जाती है। इस प्रकार के काम से किसानों को कुछ आर्थिक सहायता अवश्य मिल जाती है।

कृषि के लिये सरकारी सहायता:—

वर्ष ईसा के पूर्व के इतिहास से पता चलता है कि रोम के प्रजातन्त्र राज्य ने खेती के महत्व को स्वीकार कर लिया था। ग्रामीण जनसंख्या के पास उनकी निजी छोटी-छोटी सम्पत्तियां रहती थीं। इस प्रकार का सम्पत्तियां उनको सरकार की तरफ से मिली थीं। जिसमें उस समय के किसान लोग खेती का काम किया करते थे। कृषि सम्बन्धी और भी दूसरे नियम बने हुये थे। वे नियम भूमि के सम्बन्ध में थे। मध्य कालीन योरुप के विधान सभा में भी यह बात थी कि किसानों को खेती के लिये भूमि दी जाती थी। किन्तु खेतों में काम करने वाले मजदूरों की मजदूरी में वृद्धि करना मना था। खेती सम्बन्धी यह दशा १८ वीं शताब्दी तक रही। इसके बाद फलान्डर में खेती सम्बन्धी आन्दोलन हुये। इस प्रकार के आन्दोलन बाद में इङ्गलैंड में भी हुये। इस अन्दोलन का प्रभाव फ्रांस में अधिक पड़ा। यहां की जनसंख्या में भी कमी हो गई। इन कारणों से सरकार का भी ध्यान खेती की तरफ गया। सरकार ने भी खेती की उन्नति के लिये वैज्ञानिक और आर्थिक सहायता देना स्वीकार किया। इस प्रकार की सहायता पहले केवल नाम मात्र की थी। सरकार ने पहले अपने देशों के किसानों के लिये कुछ अच्छे-अच्छे पशु आदि बाहर से मंगाये। कृषि सम्बन्धी समितियों को सहायता के रूप कुछ अधिक धन बढ़ा दिया। इसके बाद कृषि सम्बन्धी सरकारी सहायता में और वृद्धि हुई। सरकारी सहायता के अब दो मुख्य रूप हो गये। पहले सरकार ने कृषि सम्बन्धी शिक्षा और अनुसंधान सम्बन्धी संगठनों का निर्माण किया। दूसरी सहायता सरकार ने किसानों को कर्ज संबधी

विशेष सुविधाओं के रूप में दी। किसानों को कम ब्याज पर रुपया मिलने लगा। भूमि को घटने फटने से रोका गया। सरकार ने कृषि की उन्नति के लिये बांध भी बनवाये। खेती वाले मजदूरों की रक्षा का भी प्रबन्ध किया गया। नियम संबंधी सुधार में भी उन्नति हुई। भोजन, चारा और अन्य आवश्यक वस्तुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचाने का भी प्रबन्ध किया गया। आजकल प्रायः सभी देशों में कृषि संबंधी सरकारी विभाग खुले हुये हैं। इन विभागों में अधिकतर १९ वीं शताब्दी में हुई थी। कहीं-कहीं पर इस प्रकार के विभाग अलग-अलग खुले हुये हैं और कहीं-कहीं पर दूसरे विभागों के साथ मिले हुये हैं। कुछ देशों में इस प्रकार के विभागों पर सीधा कृषि विभाग का ही नियन्त्रण है। अधिकतर सभी देशों में कृषि संबंधी सरकारी विद्यालय खुले हुये हैं। इन स्कूलों के विद्यार्थियों को कृषि संबंधी शिक्षा दी जाती है। इस सम्बन्ध में सबसे अधिक अनुसंधान का कार्य रूस, फ्रांस, जर्मनी और इंगलैंड के देशों में हुआ है। यह कार्य इन देशों की सरकार के देख-रेख में अब भी हो रहा है। सचमुच योरुप वाले देशों में खेती के लिये अच्छे-अच्छे विद्यालय और विश्व विद्यालय खुले हुये हैं। इन विद्यालयों में खेती पर अच्छी-अच्छी पुस्तकें और अन्य साधन पाये जाते हैं। इस प्रकार के विद्यालयों को वहाँ की सरकार से सहायता मिलती है। खेती में माध्यमिक शिक्षा की सबसे अधिक उन्नति डेन्मार्क देश में हुई है। संयुक्त राज्य की सरकार ने खेती को सबसे अधिक प्रोत्साहित किया है। कृषि सम्बन्धी बड़े-बड़े विद्यालय और अनुसंधान घर खुले हुये हैं। इसके अलावा खेती की उन्नति के लिये अन्य प्रकार की भी सहायता वहां के कृषिकों को दी जाती है। इस देश में अब भी कुछ ऐसे सामाजिक विधान के सामाजिक रूप बने हुये हैं जिनसे खेती सम्बन्धी उन्नति का अहित होता है। उपनिवेशिक समय में भी किसानों को इस प्रकार की सहायता सरकार देती थी कि जिससे वे भिन्न-भिन्न कृषि सम्बन्धी उपज बढ़ा सकें। विदेश के किसानों ने शहतूत के भी अधिक पेड़ लगाये जिन पर रेशम वाले कीड़े पाले जाते थे। वर्जिनिया और दक्षिणी केरोलीना में रेशम के लिये बड़े-बड़े कारखानों की स्थापना हुई है। इस प्रकार से इन देशों को आर्थिक सम्बन्धी प्रोत्साहन मिला। इसके अलावा सरकार ने हाप्स, नील, हेम्प, राल आदि के पेड़ों के उपज की वृद्धि के लिये भी सरकार ने किसानों को सहायता दी। भेड़ की संख्या में भी वृद्धि करने के लिये सरकार सहायता देती थी। यह सहायता कई प्रकार के रूप में होती थी। कहीं कहीं पर सरकार किसानों को भूमि देती थी। कहीं कहीं पर उनको कृषि सम्बन्धी उपदेश द्वारा लाभ पहुँचाती थी। कहीं-कहीं पर किसानों को बाउन्टी के रूप में सहायता मिलती थी। यह एक प्रकार की आर्थिक सहायता थी। जो सरकार देश के व्यवसाय आदि के बढ़ाने के लिये देती थी।

इसके बाद जब संयुक्त राज्य अमरीका ने अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करली तो इस देश के बड़े-बड़े आदमियों ने खेती की उन्नति के लिये अपना ध्यान विशेष रूप से दिया। यहां के बड़े-बड़े मनुष्यों को खेती सम्बन्धी अपना स्वयं अनुभव भी था। इसके लिये जार्ज वाशिंगटन और टामस, जेफरसन नामक साहब अधिक प्रसिद्ध हैं। इन लोगों ने यह भी स्वीकार कर लिया कि खेती का महत्व इस देश के तरुण लोगों की उन्नति में है। इस देश के लोग उसी दशा में उन्नति शील हो सकते हैं जब खेती का महत्व बढ़ा दिया जावे। इन लोगों में यह विचार आर्थरयंग और दूसरे कृषि सम्बन्धी आन्दोलन के प्रभाव से उठा था। १७९६ ई० में वाशिंगटन साहब ने अपने भाषण में यह कहा था कि कृषि विद्यालयों को सरकारी सहायता मिलनी चाहिये। इनके भाषण के कुछ शब्द नीचे लिखे हुये हैं।

"इसमें कुछ भी संदेह नहीं है कि खेती को अगर हम व्यक्तिगत या राष्ट्रीय भावना के दृष्टि कोण से देखें। तो यह दोनों के लिये एक विशेष महत्व का विषय है। इसी के कारण से नगरों आदि की जनसंख्या में वृद्धि भी होती है। जनसंख्या के बढ़ने से खेती के क्षेत्र में भी वृद्धि होती है। लोग अधिक भूमि में खेती करते हैं। इस प्रकार से खेती लोक प्रिय विषय का रूप धारण कर लेता है। जिन विद्या-

लयों में कृषिसम्बन्धी शिक्षा दी जाती है। उन विद्यालयों को प्रजा अपने खर्च से चलाने को भी तैयार रहती है। खेती की उन्नति के लिये जो परिषदों की स्थापना हुई है उन से अधिक सफलता और किसी भी समुदाय को नहीं मिली है। परिषदों ने यहां के किसानों को खेती के सुधार और अन्वेषण के सम्बन्ध में भी सहायता दी है। उनके अंदर एक प्रकार का जोश भर दिया है। इन लोगों को परिषदों द्वारा खेती सम्बन्धी सूचनायें भी मिला करती थी। इन परिषदों से कृषि की अधिक उन्नति हुई है। लोगों में कृषिसम्बन्धी अनुभव करने का साहस बढ़ा। यहां के अनुसंधान द्वारा जो फल प्राप्त होते थे। वे लोगों में फैलाये जाने लगे। इस प्रकार में प्रभाव समस्त जाति पर भी पड़ा। अनुभव से यह ज्ञात हुआ है कि इस प्रकार के साधन में कोई विशेष खर्च नहीं है और जाति के लिये भी लाभप्रद है।" अमरीका की कांग्रेस ने इस सुझाव को स्वीकार नहीं किया। किन्तु कृषि को जो सब सरकारी सहायता मिलती थी वह संघसम्बन्धी न थी। इस प्रकार की सहायता राज्य की तरफ से थी। १७९२ ई० तक इस प्रकार की सहायता में और वृद्धि हुई। १८१७ ई० में हेम्पशायर ने नगर समितियों की सहायता में वृद्धि कर दी। इस प्रकार की सहायता दूसरे राज्यों ने भी दी। इन संस्थाओं द्वारा जो रुपया प्राप्त होता था वह अधिकतर कृषि सम्बन्धी लेखों के छापने में खर्च होता था। यह रुपया कृषि सम्बन्धी अन्वेषणों में खर्च होता था। इसके अलावा इस रुपये से किसानों को पशुपालने और बोने के लिये बीज भी मिलते थे।

१८३९ ई० में संयुक्त राज्य अमरीका की सरकार ने कृषि सम्बन्धी प्रथम सहायता प्रदान की जब कि सरकार ने खेती सम्बन्धी अन्वेषण के लिये १००० का अनुमान लगाया था। अमरीका की सरकार ने यह भी निश्चय किया था कि इस धन में से किसानों को मुफ्त बीज का भी वितरण किया जायेगा। यह काम उस समय के पेटेन्ट नामक कार्यालय को सौंपा गया। इसका कारण यह था कि हेनरी एल० एल्सवर्थ उस समय इस विभाग के कमिश्नर थे जिन्होंने कृषि की उन्नति में अपना विशेष ध्यान दिया था। इन्होंने बाहर से बीज और पौधे भी मांग कर किसानों को बांटा था। इस प्रकार की सहायता उक्त नामक कार्यालय को २० वर्षों से अधिक समय तक मिलती रही और इस धन से लगातार खेती की उन्नति होती रही। इस प्रकार की सबसे अधिक सहायता १८५५ ई० में उक्त कार्यालय को मिली थी जो ५०,००० थी। १८६२ ई० में कृषि विभाग का कार्य एक दूसरे विभाग को सौंप दिया गया। इसके लिये एक दूसरे कमिश्नर की नियुक्ति की गई। १८८९ ई० में यह कृषि कमिश्नर कृषि सचिव बना दिये गये और इसका राष्ट्रपति के कैबिनट में स्थान मिल गया। अमरीका के कृषि विभाग ने अधिक उन्नति की है। आजकल यह विश्व में सबसे बड़ा खेती का विभाग माना जाता है। यह विभाग खेती की उन्नति के लिये विश्व के अन्य कृषि विभागों की अपेक्षा सबसे अधिक कार्य कर रहा है। आजकल इस विभाग में लगभग २२,००० कर्मचारी हैं। इस का वार्षिक खर्च भी १५,००,००,००० से अधिक है। इसका १०,००,००,००० भाग खेती के लिये मार्ग बनाने, अनुसंधान करने और भूमि को कटने फटने से रोकने आदि में खर्च होता है। इस के अलावा यह विभाग निम्नलिखित उप-विभागों में बटा हुआ है —

अनुसंधान विभाग—यह विभाग पशु और पौधों के सम्बन्ध में खोज की जाती हैं। कृषिसम्बन्धी विज्ञान की भी खोज होती है। बाग बानी और वन सम्बन्धी विषयों पर भी छान बीन होती है। पशुओं और पौधों से सम्बन्धित रोगों के रोकने के उपाय को खोजते रहते है। भूमि के सम्बन्ध में भी अन्वेषण होता रहता है। कृषिसम्बन्धी आर्थिक समस्याओं पर भी प्रकाश डाला जाता है। यह भी देखा जाता है कि फार्म की उपज के उपयोग का क्या नया ढङ्ग हो सकता है। सहकारिता या अन्य प्रकार के संगठनों का भी अध्ययन होता है।

(२) कृषि-प्रसार-विभाग—इस विभाग में जो कुछ खोज द्वारा प्राप्त होता है उसका वह प्रचार किया करता है। यह चीजें इसी विभाग द्वारा प्रचार के केन्द्रों और सूचना सम्बन्धी कार्यालयों तक पहुँचाई जाती है। यह विभाग अगर किसी नई चीज का

पता लगता है। तो व्यक्तिगत कार्यालयों को इसकी सूचना भेज देता है। यह विभाग प्रतिवर्ष लगभग ३,००,००,००० पत्रिकायें बांटता है। इस विभाग के पास लगभग १०० से अधिक रेडीओ घर भी हैं जहां से यह अपना कृपिसम्बन्धी प्रचार किया करता है। यह विभाग किसानों को शिक्षा सम्बन्धी तसवीरें भी दिखलाता है। यह विभाग कृषि सम्बन्धी सूचनायें यहां के अखबारों और खेती वाली पत्रिकाओं को देता रहता है। यह विभाग कृपिसम्बन्धी मेलों का भी आयोजन करता है। इन मेलों में खेती की प्रदर्शनी भी होती है। यह विभाग 'कृषि की उन्नति प्रदर्शनी द्वारा भी करता है। क्लब भी खोलता है जिसके मेंबर लड़के और लड़कियां रहते हैं। यह लोग भी खेती सम्बन्धी प्रचार किया करते हैं।

(३) विनाशकारी विभाग—यह उप-विभाग कृपि को हानि पहुंचाने वाले कीड़ों या रोगों को नष्ट करता है।

(४) सेवाकार्य-विभाग—यह उपविभाग सरकारी जंगलों का प्रवन्ध करता है। किसानों को मौसम सम्बन्धी सूचना भी देता है। फसलों की पैदावार और पशुओं की संख्या का अनुमान लगाया करता है। बाजार सम्बन्धी सूचना भी किसानों को दिया करता है। खेतों की उपज का निरीक्षण भी किया करता है।

(५) प्रबन्ध विभाग—यह उपविभाग लगभग ४० नियमों के पालन करने का प्रबन्ध करता है। इनमें से कुछ मुख्य इस प्रकार से हैं—(१) भोजन और औषधि सम्बन्धी नियम (२) मास-निरीक्षण नियम (३) पौधे तथा पशुसम्बन्धी नियम (४) पैकर और स्टाकयार्ड सम्बन्धी नियम (५) गोदाम सम्बन्धी नियम (६) अन्न नाप सम्बन्धी नियम और (७) कपास सम्बन्धी नियम आदि।

कृपि-विभाग का प्रधान कृपि-सचिव होता है। इसके अलावा सहायक कृपि सचिव भी होता है। इस विभाग में ५ कृपि-संचालक भी हैं। उक्त उप-विभागों का एक-एक कृपि संचालक होता है। नियम सम्बन्धी बातें एक वकील और उसका स्टाफ देखता है। इस विभाग में एक पुस्तकालय भी है। इसमें २,०५,००० पुस्तकें हैं। यह विश्व में कृपिसम्बन्धी सबसे बड़े पुस्तकालय हैं। इस पुस्तकालय की पुस्तकें इस विभाग के अलावा दूसरे कृपक वैज्ञानिकों को भी अध्ययन के लिये दी जाती हैं। अमरीका की सरकार ने कृपि-शिक्षा की उन्नति के लिये भूमि अनुदान सम्बन्धी नियम भी बनाया है। यह नियम उसी वर्ष बना था। जिस वर्ष अमरीका के कृपि-विभाग की स्थापना हुई थी। नियम के अनुसार लोगों को कृपि विद्यालय और कृपिसम्बन्धी उन्नति के कार्य के लिये भूमि मिलती थी। इस प्रकार के विद्यालय अमरीका के प्रत्येक क्षेत्र में पाये जाते हैं। इस तरह के विद्यालयों के लिये अलास्का, हवाई और पोर्टोरिको नामक प्रदेश अधिक प्रसिद्ध हैं। किसी-किसी क्षेत्र में इस प्रकार के विद्यालय अलग खुले हुये हैं। और किसी-किसी क्षेत्र में वे वहां के विश्व विद्यालय के साथ मिले हुये हैं। अमरीका के दक्षिणी भाग में इस प्रकार के विद्यालय मुख्यतः अलग ही खुले हुये हैं। इन विद्यालयों में हब्शी लोगों को शिक्षा मिलती है। इसके अलावा अमरीका की कांग्रेस ने एक और नियम १८८९ ई० में बनाया। इस नियम के अनुसार कृपिसम्बन्धी परीक्षा घर भी खोले गये। १९२५ ई० में अमरीका की सरकार ने कृपि की उन्नति के लिये एक और नियम बनाया। इसके अनुसार इस प्रकार के परीक्षा घरों को और अधिक सहायता मिलने लगी। कृपि सम्बन्धी विकास के लिये अधिक अनुसंधान होने लगे। अमरीका की सरकार ने इस प्रकार के घरों की स्थापना मुख्यतः अलास्का, ग्वाम, हवाई, पोर्टोरिको और वर्जिन द्वीप समूहों में किया है। कृपि विद्यालयों की भी स्थापना हुई। इन विद्यालयों में किसानों के लाभ के लिये कृपि सम्बन्धी भाषण भी दिया जाता है। कृपि सम्बन्धी सूचनायें भी पत्रिका द्वारा किसानों को दी जाती हैं। इस प्रकार के विद्यालयों की कुल संख्या पहले केवल ६० थी। किन्तु धीरे-धीरे इनकी संख्या बढ़ती गई। १९१४ ई० में इनकी संख्या ८८६१ थी। इन विद्यालयों में लगभग ३०,५०,१५० कृपक भाषण सुनने के लिये आते थे। १९१६ ई० में इस प्रकार के विद्यालयों की संख्या में कमी आ गई। इसका

कारण यह था कि इन विद्यालयों का काम अधिकतर कृषि सम्बन्धी ऐजेन्टों द्वारा होने लगा। किसानों को कृषि सम्बन्धी प्रदर्शन दिखलाये जाने लगे। यह प्रदर्शन मुख्यतः उसी प्रकार के होते थे। जिसकी आवश्यकता किसानों को रहती थी। इसी समय में लड़के और लड़कियों के कृषिसम्बन्धी क्लबों की भी स्थापना की गई। जो लोग इसके सदस्य होते थे, वे खेती की उन्नति के लिये बराबर कार्य किया करते थे। अमरीका की सरकार उन स्कूलों को सहायता देती है जिनमें कृषि और कुटीर अर्थ शास्त्र सम्बन्धी शिक्षा दी जाती है। अमरीका में कृषि सम्बन्धी आधुनिक साधनों की दिन प्रति दिन उन्नति हो रही है।

अमरीका की सरकार कृपिसम्बन्धी शिक्षा, अनुसधान और उसके प्रसार में अधिक धन व्यय करती है। कहीं-कहीं पर इस प्रकार के धन का व्यय नियम बद्ध होता है। आधा खर्च सरकार को वहन करना पड़ता है और आधा खर्च राज्य को वहन करना है। अमरीका के बहुत से राज्य उस धन को भी देते हैं जो अमरीका की कृषिसम्बन्धी सूचनाओं को इकट्ठा करने और उनको किसानों तक पहुंचाने में व्यय करता है। इसमें संदेह नहीं है कि किसानों को अन्य प्रकार की सरकारी सहायता दी जाती है। सरकार किसानों को बोने के लिये बीज देती है। लगाने के लिये पेड़ पौधे भी सरकार द्वारा किसानों को मिलते हैं। यह काम प्रायः सरकार के कृषि विभाग ही द्वारा होता है। कई वर्षों तक यह विभाग किसानों के लिये बीज का वितरण कांग्रेस के सदस्यों द्वारा कराता था। किन्तु यह योजना लोगों को स्वीकार न हुई। यही कारण था कि सरकार ने इस योजना को ३० जून ,१९२३ ई० में समाप्त कर दिया। यहां की सरकार ने १८९६ ई० में एक नई योजना का श्री गणेश किया था। इस योजना के अनुसार ग्रामीण किसानों को पत्रिकायें आदि पढ़ने को मुफ्त में मिलती थीं। इससे किसानों को अधिक लाभ पहुंचता था। ग्रामीण किसानों को अपने देशों की विचार धारा का ज्ञान होता रहता था। अब इस प्रकार की पत्रिकायें लगभग २,४२,८२००० लोगों तक पहुँचने लगी हैं। अमरीका के ग्रामों में अच्छे मार्ग बने हुये हैं। इनके बनाने में सरकार का अधिक धन व्यय हुआ है। किन्तु इससे गावों में रहने वाले किसानों को बहुत अधिक लाभ पहुंचा है। वे एक गांव से दूसरे गांव तक सरलता पूर्वक आ जा सकते हैं। उन की आवश्यकता के अनुसार सामान भी पहुँचाया जा सकता है। १८९० ई० में यहां की कांग्रेस ने मौसम सम्बन्धीत सेवा विभाग को भी कृषि विभाग को दे दिया। इससे पहले यह विभाग यहा की सेना के अधिकार में था। इससे भी किसानों को अधिक लाभ हुआ। मौसम सम्बन्धी दशा का ज्ञान किसानों को रेडिओ आदि द्वारा हो जाता है। इस प्रकार से अमरीका की सरकार अपने किसानों को अधिक से अधिक लाभ पहुँचाने का प्रयत्न करती है। भूमि की रक्षा और सुधार के लिये बांध भी बनाये गये हैं। दल दल वाली भूमि को अमरीका सरकार के स्टेट राज्यों ने सुधार लिया है। अमरीका की सरकार ने १८४९-१८५० और १८६० ई० में इस प्रकार के नियमों को बनाया। जिसके अनुसार दल दल वाली भूमि का जो क्षेत्र जिस राज्य में पड़ता था वह उसी राज्य को दे दिया गया। पानी के निकास के लिये नालियां आदि भी बनाई गई। इसका व्यय प्रायः अमरीका के स्टेट राज्यों को ही सहना पड़ता है। सिचाई सम्बन्धी नियम भी बने हुये हैं। सिचाई आदि के लिये बांध आदि भी बनाये गये हैं। इस सम्बन्ध का खर्चा भी अमरीका के स्टेट राज्यों को ही देना पड़ता है। सिंचाई सम्बन्धी पहला नियम १८६५ ई० में पास हुआ था।

अमरीका की कांग्रेस ने १८९४ ई में कारी नामक नियम बनाया। इस नियम के अनुसार अमरीका की रेगिस्तानी भूमि को भी वहां के राज्य को सौंप दिया गया। उन राज्यों से यह भी कहा गया कि वे इस प्रकार की भूमि को सिचाई द्वारा उपजाऊ बना कर उसको किसानों के हाथ बेच डालें, अमरीका की सरकार ने ८ वर्ष के बाद पुनः बांधों के बनाने के काम की तरफ अपना ध्यान दिया। यह काम वहा के गृह (अन्तरंग) विभाग को

सौंपा गया। इस समय में जो बांध आदि बनाये गये थे उनसे यहां के किसानों को अधिक लाभ न पहुंच सका। इसके दो कारण थे। पहला कारण यह था कि इस प्रकार के बांध बिना किसानों की आवश्यकताओं को विचारे हुये बनाया गया था। दूसरा कारण यह था कि बांध उन स्थानों पर भी बनाये गये जहां पर इसके लिये बनाने की आशा न थी। १९२३ ई० में सिंचाई आदि के अधिक सुन्दर उपायें अपनाये गये। इस समय जहां कहीं पर सिंचाई आदि के लिये बांध बनाये गये उनके बनाने में उक्त दो कारणों का ध्यान रक्खा गया। किसी-किसी क्षेत्र मे इस प्रकार के बांध किसानों के लिये अधिक लाभ प्रद सिद्ध हुये। उनके खेतों की उपज बढ़ गई। कहीं-कहीं पर किसानों ने इस प्रकार के साधन को नहीं पसन्द किया। यही कारण है कि कुछ समय से अमरीका मे व्यवसायिक फसलों की बहुत अच्छी उपज हो रही है। इसका प्रभाव यहां के निवासियों पर भी अधिक पड़ा है। उनकी अब यह भावना है कि अब भूमिसम्बन्धी अधिक जोताइ न की जावे। केलीफोर्निया में भूमि की जोताई सब से अधिक हुई। इस सम्बन्ध मे यह देश अमरीका में बहुत प्रसिद्ध है। इसका कारण यह है कि केलीफोर्निया अमरीका के भूमि सम्बन्धी प्रबन्ध योजना के अंतर्गत है। भूमि को मोल ले लेते हैं। उस भूमि की सिंचाई का प्रबन्ध करते हैं। जहां कहीं पानी के निकाले की आवश्यकता पड़ती है वहां पर नालियां आदि बनाते हैं। इसके बाद उस भूमि को खेत के रूप में परिणत कर दिया जाता है। खेतों के मजदूरों को रहने के लिये भी स्थान नियत कर दिया जाता है। मवेशी के रहने के लिये भी स्थान नियत कर दिये जाते हैं। इसके बाद यह भूमि किसानों या यहां के रहने वालों के हाथ थोड़े दामों में बेच दी जाती है। इस योजना के अनुसार अभी तक दो उपनिवेशों की स्थापना हो गई है। इन उपनिवेशों के आगामी उन्नति के सम्बन्ध अभी कुछ कहना बड़ा कठिन है। क्योंकि अभी इनकी स्थापना बहुत थोड़े दिनों से हुई है। अमरीका की सरकार ने यह प्रस्ताव किया है कि सिंचाई सम्बन्धी अभी और बांध बनाये जावें। इस प्रकार के बांधों के बनाने में प्रजा भी अपना धन खर्च करती है। इन बांधों को इस योग्य बना दिया जाता है कि पानी आदि के अभाव के समय में यहां के रहने वालों के लिये लाभ प्रद सिद्ध हों। इस प्रकार की योजना अभी अन्य किसी देश में नहीं है।

कृषि सम्बन्धी सहकारी बाजार भी कृषि व्यापार के लिये निसंदेह बहुत लाभ प्रद होती है। इस प्रकार के बाजारों को संघ सरकार और राज्य सम्बन्धी दोनों प्रकार की सहायता दी जाती है। इस प्रकार के बाजारों का कार्य रूप दो क्षेत्रों मे समित है। पहला इनको व्यापार सम्बन्धी सूचना मिलती है और दूसरे इनके लिये इस प्रकार से नियम भी बनाये जावें कि जिससे कृषि सम्बन्धी संगठन आसानी से अपना काम कर सकें। संयुक्त राज्य में केवल डेलावेर नामक ही एक ऐसा राज्य है। जहां पर सहकारी समितियां के लिये कोई भी नियम नहीं बना है। १९२८ ई० मे अमरीका की कांग्रेस कापर वोल्सटेड नामक नियम पास किया था। इस नियम के अनुसार कृषिसम्बन्धी भार कृषि सचिव के ऊपर ही रख दिया गया है। इस नियम के अनुसार सहकारी समितियां अपनी अवैध शक्ति का प्रयोग प्रजा के ऊपर नहीं कर सकती है। इस नियम के अनुसार यहां के संगठनों की भी रक्षा होती है। किसी भी संगठन को अवैध ढंग पर दंड नहीं दिया जा सकता है। यहां की संघ सरकार ने कृषि विभाग में कृषि सम्बन्धी सहकारी बजार की एक शाखा की स्थापना की है। इस शाखा द्वारा बाजार सबन्धी सूचनायें यहां की सहकारी समितियों को मिला करती हैं। यह शाखा यहां की अध्ययन करती रहती है कि किन साधनों से सरकारी समितियों को अधिक लाभ पहुंच सकता है। इस प्रकार की समितियों को योरुप के कुछ देशों में सरकारी सहायता भी मिलती है। जिससे इन समितियों का सुचारु ढंग से संचालन होता रहे। किन्तु इस प्रकार की कोई भी सहायता संयुक्त राज्य की समितियों को नहीं मिलती है। अमरीकी संघ सरकार ने १९२९ ई० में कृषि सम्बन्धी बाजार नियम बनाया यह नियम कृषि परिषद द्वारा

बना था। अमरीका की सरकार यह अवश्य चाहती है। कि सहकारी समितियों के संगठनों वृद्धि में होवे। इस प्रकार के संगठनों को वह आर्थिक सहायता भी इस आशा से देना चाहती है कि खेतिहर उपज के व्यापार में उन्नति हो। यहां के किसानों को उनकी उन्नति के लिये सरकार ने रुपया भी दिया है। इस सम्बन्ध में १९१३ ई० में एक नियम भी बना था। उसका नाम संघ सरक्षित नियम है। इसके अनुसार किसानों को अपनी भूमि पर पांच वर्ष के लिये कर्ज मिल सकता है। इसके अलावा किसानों को और अधिक सहायता दी गई १९१६ ई० में एक दूसरा नियम बना। इसका नाम किसान सघ सम्बन्धी कर्ज नामक नियम है। किसान सघ संरक्षित विभाग की भी स्थापना की गई। इस विभाग से भी किसानों को सहायता मिली। १९२३ ई० में कृषि विषय के अधार नामक नियम बना। इसके अनुसार उधार मध्यवर्ती सघ बैंकों की स्थापना हुई। इन बैंकों द्वारा सहकारी समितियों को उधार धन सरकार से मिलने लगा। उनसे सरकारी नियम अनुसार ब्याज लिया जाता है। इसके अनुसार कृषि उधार सम्बन्धी समितियों की भी स्थापना हुई। इनका कार्य कृषि और पशु आदि की उन्नति का देख रेख करना है। यहां के कृषकों को दीर्घ कालीन उधार प्रणाली द्वारा भी सहायता मिलती है। किन्तु इस प्रकार के सुविधा अमरीका के प्रत्येक राज्यों में नहीं पाई जाती है। इस प्रकार की सुविधा किसानों को केवल उत्तरी डाकोटा और दक्षिणी डकोटा के राज्य ही में दी जाती है। इस प्रकार की सहायता से भी किसानों को अधिक लाभ पहुंचता है। वे अपने लिये हुये धन को थोड़ा-थोड़ा करके सरकार को देते रहते हैं। जिससे उनको किसी प्रकार के कष्ट आदि का अनुभव नहीं करते हैं। इस प्रकार की सबसे सुन्दर सहायता किसानों को उत्तरी डकोटा के बैंक द्वारा मिलती है। अरीजोना, कोलोरेडो, ईडाहो मेन, मोनटाना ओक्लाहोमा, ओरेगन उठा और व्यूमिग के बैंकों द्वारा किसानों को बहुत थोड़ी सहायता मिलती है। अमरीका के कुछ ऐसे राज्य भी है जहां पर किसानो को और भी अन्य प्रकार की मुख्य सुविधायें प्राप्त हैं। इसके लिये अमरीका का उत्तरी डकोटा राज्य अधिक प्रसिद्ध है। इस राज्य ने नानपारटिसन लीग के प्रयास द्वारा १९१९ ई० में एक मिल अनाज लिये चखार गृह निर्माण सस्था पाला, आग और प्रचड तूफान बीमा सम्बन्धी कम्पनी की स्थापना हुई इनमे से केवल गृह निर्माण सस्था की स्थापना सिद्ध न हो सकी। इस कारण से इसको तोड़ दिया गया किन्तु अन्य-कम्पनियां अभी तक काम कर रही है। इस प्रकार के साधनों से यहां के किसानों को अधिक लाभ पहुँचा है। नानपार्टिसन लीग की खिलाफत भी उत्तरी डकोटा की प्रजा किया करती है। किन्तु यह अपना काम कर रही है। अमरीका के अन्य राज्यों में किसानों की उन्नति तथा उनके लाभ के लिये अन्य प्रकार के बीमा विभागों की भी स्थापना की गई है। इनमें किसानो के लिये सबसे अधिक लाभ प्रद पाला सम्बन्धी बीमा है। आग सम्बन्धी बीमा भी किसानों के लिये लाभ प्रद है। इन दोनों प्रकार के बीमा का प्रबन्ध पारस्परिक कम्पनियो के हाथ में है। इस प्रकार से अगर किसानो को आग के लगने या पाला गिरने से जो फसलो की हानि होती है। उसकी पूर्ति इन बीमो द्वारा हो जाती है।

संयुक्त राज्य अमरीका मे फिर भी जो सरकारी सहायता कृषि सम्बन्धी विकास के लिये दी जाती है। वह केवल कृषि सम्बन्धी सूचना और राय तक ही समित रहती है। अमरीका का कृषि विभाग किसानों को यह बतलाया करता है। कि किन-किन साधनों को अपनाने से खेती की वृद्धि होगी। कौन-कौन से रोग और कीड़े होते हैं जो फसल को हानि पहुंचाते हैं। उनको नष्ट करने अथवा उन फसलो की रक्षा करने के क्या साधन है। किस-किस प्रकार से खेत बोया और जोता जाता है। इस प्रकार की सहायता देने के मुख्य कारण यह है। कि किसान मुख्यतः अपने अलग-अलग खेतो मे रहते हैं। वे योरुप के के देशों की भाति गांवो में नहीं रहते हैं। इसका दूसरा कारण यह भी है कि अमरीकी किसानों मे व्यक्तिगत रूपी भावना बहुत है। यहा के निवासियों में यह एक प्रकार की विशेषता मिलती है। दूसरे देशों में कृषि सम्बन्धी विपरीत ही दशा देखने में

आती है। उदाहरण के लिये आस्ट्रेलिया में १८९० से १९०० ई० के मध्य में जो सहकारी समितियां थीं। वे उन फसलों की उन्नति के लिये सहायता देती थीं। जो फसलें विदेश को भेजी जाती थीं। इस प्रकार की प्रणाली से सहकारी समितियों और कृषकों दोनों को लाभ पहुंचता था। इसके लिये समितियां मशीन भी खरीदती थीं। जहां कहीं आवश्यकता होती थी वहां पर घर भी बनाती थी। इसके अलावा कृषि विशेषज्ञों को नौकर भी रखती थीं। कुछ समय बाद इस प्रकार की समितियों में आपसी मतभेद हो गया। कुछ सरकारी समितियां इस आधार पर बनी कि वे सरकारी सहायता न लेंगी। बेल्जियम व्यवसायिक कृषि सम्बन्धी समितियां हैं।,वे अर्ध-सरकारी हैं। कुछ देशों में कृषि सम्बन्धी बीमा का भी अधिक महत्व दिया जा रहा है। फ्रांस देश में पशु सम्बन्धी सहकारी समितियां पाई जाती हैं। वहां की सरकार इनको सहायता भी देती है। अलबर्टा (जो कनाडा का एक प्रांत में है) पाला सम्बन्धी बीमा द्वारा किसानों,को सहायता मिलती है। इस प्रकार की मेंकर के आधार पर चल रहे हैं। इसके अलावा योरुप के देशों के किसानों को सहकारी समितियां द्वारा अन्य प्रकार की भी सहायता मिलती है। आस्ट्रेलिया, एशिया, अफ्रीका दक्षिणी और मध्य अमरीका में किसानों को सहायता खेती सम्बन्धी उधार नियम द्वारा भी मिलती है। बहुत देशों में खेती वाले मजदूरों की भी रक्षा होती है। उनके दुख और सुख का ध्यान रक्खा जाता है। इसके लिये इक्वाडार, इस्थोनियां, स्पेन, उनासट्रिया, चेकोस्लोवेकिया, इङ्गलैंड जर्मनी और पोलैंड नामक देश अधिक प्रसिद्ध है। इक्वाडार, इस्थोनिया और स्पेन देशों में मजदूरों के काम करने वाले घंटों पर नियन्त्रण रखा जाता है। आसटिया चेकोस्लोवाकिया, इंगलैंड, जर्मनी और पोलैंड के देशों में मजदूरों के काम करने घंटों को नियत करा दिया गया है। इस सम्बन्ध का नियम भी इन देशों में बना हुआ है। संयुक्त राज्य अमरीका में यह बात नहीं पाई जाती है। इस देश में कृषि वाले मजदूरों की सख्या खेतों की सख्या के आधा के बराबर है। यहां पर मजदूरों के काम करने वाले घंटों को नियत नहीं किया गया। इसका कारण यह है कि यहां के किसान लोग इनकी खिलाफत करते हैं। भिन्नभिन्न राज्यों ने कृषि के विकास के लिये भूमि सम्बन्धी सुधार योजनायें द्वारा किसान सहायता दी है। इस सम्बन्ध में आस्ट्रेलिया अपना एक विशेष महत्व रखता है। इस देश की भूमि विकास सम्बन्धी योजना के अनुसार निम्नलिखित सुविधायें वहां के निवासियों को प्राप्त हैं। (१) सरकार सहकारी समितियों की स्थापना के लिये भूमि देती है। (२) प्रदर्शन सम्बन्धी खेतों की स्थापना के लिये भी भूमि दी जाती है। इसके द्वारा इस देश के किसानों को कृषि सम्बन्धी उपदेश और आदेश दिये जाते हैं। (३) यहां की सरकार निवासियों को उनके इच्छा अनुसार भूमि प्रदान करती है। अर्थात उनको उसी क्षेत्र में भूमि मिलती है जहा पर उनकी दैनिक अवश्यकताओं की पूर्ती होती रहे। (४) खेतों के लिये भी भूमि दी जाती है। (५) खेती वाले मजदूरों को बसने के लिये भी भूमि मिलती है। (६) नगरों के बसानें के लिये भी भूमि नियत रहती है। इस प्रकार से आस्ट्रेलिया देश भूमि के विभाजन का एक सुन्दर ढांचा बना हुआ है। इसी ढांचे के अनुसार भूमि का विभाजन किया गया है। डेन्मार्क में सरकार नगरों और गांवों के मजदूरों को सहायता देती है। जिससे वे अपने रहने के लिये थोड़ी सम्पत्ति आदि का प्रबन्ध कर सकें। यह सहायता भी मजदूरों को मिलती है। फिन देश में एक भूमि सुधार सम्बन्धी सरकारी फंड है। इस फंड से जाति सम्बन्धी समितियां समाजों को बसने के लिये सहायता दी जाती है। इसके अलावा इस देश में एक सरकारी भूमि सम्बन्धी सुधार फंड और है। जिससे यहां की सहकारी समितियों को सहायता मिलती है। इङ्गलैंड देश में उपनिवेश बसाने की योजना है यह योजना यहां के कृषि और मछुवा ही परिषद के आधीन है। इस योजना का अभीप्राय. यह है कि देश में उपनिवेशों की स्थापना होवे और राज्य को आर्थिक क्षति भी न उठाना पड़े। इसी कारण से इस योजना को उक्त परिषद के आधीन कर दिया

गया है। प्रत्येक उपनिवेश का प्रबन्ध एक सचालक द्वारा होता है। इटली की सरकार भी यहां के रहने वालों को उधार धन देती है। जिससे वे सहकारी समितियों द्वारा कृषि के लिये भूमि खरीदें। यहां पर भिन्न-भिन्न प्रकार के कर आदि भी प्रजा से लिये जाते हैं। इसके अलावा यहां के लोगों को उनकी भूमि के ८० प्रतिशत के मूल्य उधार दिया जाता है।

प्रायः यह देखा जाता है कि सभी देशों ने अपने यहां कृषि सूचना विभागों की स्थापना की है। कृषि सम्बन्धी आदेश लोगों को अधिक समय तक केवल खेती वाले विद्यालयों ही द्वारा मिलती थी। इनमें केवल वही लोग पहुंच पाते थे जो इसके योग्य थे, या जिनके पास इसके लिये साधन उपलब्ध थे। १९०० ई० के आन्दोलन से कृषि सम्बन्धी प्रचार की अधिक उन्नति हुई। ग्रामों और नगरों मे कृषि विद्यालय खोले गये। किसानों तथा उनके परिवारों तक कृषि सम्बन्धी सूचनाओं को पहुंचाने का भी प्रबन्ध किया गया है। कृषि सम्बन्धी शिक्षा की भी उन्नति हो रही है। किसानों को कृषि सम्बन्धी शिक्षा भिन्न-भिन्न प्रदेशों मे भिन्न-भिन्न प्रकार की दी जाती है।

आस्ट्रेलिया के कई राज्यों में सरकारी परीक्षा सम्बन्धी खेतों की सख्या ५० से अधिक पाई जाती है। इसके अलावा किसानों के खेतों में भी लगभग १,००० अनाज के परीक्षा के लिये टुकड़े बने हुये है। इस प्रकार से परीक्षा और प्रदर्शन सम्बन्धी दोनों प्रकार के कार्य सिद्ध हो जाते हैं। इसके अलावा आस्ट्रेलिया की सरकार इस बात पर भी जोर देती है। कि कृषि विशेषज्ञ स्वय प्रत्येक खेतों का निरीक्षण किया करें। यह कार्य यहां के कृषि विभाग की देख रेख मे होता है। कृषि कार्यालयों के तत्वधान में किसानों के लाभ हेतु भाषण दिये जाते है। इसके अलावा प्रदर्शन भी दिखलाये जाते हैं। कृषि कार्यालयों से किसानों का एक प्रकार से स्थाई संगठन होते हैं। इस प्रकार का सगठन कृषि की उन्नति के लिये स्थापित किया गया है। कनाडा राज्य मे परीक्षा सम्बन्धी फार्मों और गृहों की संख्या लगभग २५ है। इसके अलावा यहां पर प्रदर्शन के लिये फार्मों और प्लाटों की भी अधिक संख्या पाई जाती है। इसका सचालन प्रान्तीय कृषि विभागों द्वारा होता है। इसके अलावा इस देश मे कृषि सम्बन्धी प्रतिनिधि भी होते हैं। इनका भी वही कार्य होता है। जो संयुक्त राज्य अमरीका से आर्थिक सहायता वाले विभाग के एजेन्टों का होता है। यह प्रतिनिधि अपने-अपने प्रांतीय सरकारों के प्रति उत्तरदायी होते हैं। कनाडा में एक महिला कृषि विद्यालय भी है जिसमें महिलाओं को कृषि सम्बन्धी शिक्षा दी जाती है। १८९९ ई० से प्रायः इस प्रकार के विद्यालय हर एक देश मे पाये जाते हैं। कनाडा के ग्रामों मे कृषि सम्बन्धी मेले भी लगा करते हैं। चिली के प्रत्येक प्रारम्भिक स्कूलों में कृषि का एक अलग कक्षा होता है। इसके अलावा कृषि अनुसधान के लिये उस स्कूल के पास अपने निजि खेत भी रहते हैं। इन स्कूलों के शिक्षकों को प्रति वर्ष कृषि सम्बन्धी शिक्षा दी जाती है। यह शिक्षा यहां के कृषि के उच्चतर विद्यालयों के प्रोफेसरों द्वारा दी जाती है। यहां खेतों सम्बन्धी कई भिन्न-भिन्न शाखायें भी हैं। जिनको सरकार कृषि सम्बन्धी छोटे-छोटे व्याख्यानों द्वारा शिक्षा दिया करती है। इसके अलावा सरकार विशेष रूप से प्रदर्शन वाली गाड़ी भी सारे देश मे भेजती है। जिससे कृषि सम्बन्धी साधनों मे अधिक उन्नति हो सके। डेन्मार्क देश ने भी कृषि की उन्नति के लिये विशेष ढंगों को अपनाया है। यहां पर कृषि की उन्नति के लिये हाई स्कूलों की स्थापना हुई है। इनको प्रजा का स्कूल कहा जाता है। इन स्कूलों का यह नाम केवल सरकारी आज्ञा के कारण नहीं हुआ है। इन स्कूलों मे सचमुच खेती सम्बन्धी उन्नति के लिये एक सद्भावना पाई जाती है। इसी कारण से इस देश मे कृषि की अधिक उन्नति भी हुई है। डेन्मार्क मे एक और भी सुन्दर प्रणाली देखने मे आती है कि वह अपने कृषक विशेषज्ञों द्वारा स्थान-स्थान पर भाषण आदि भी देने व प्रबन्ध करती रहती है। यहां पर कृषि विद्यालयों की भी अधिक सख्या पाई जाती है। इस देश में कृषि सम्बन्धी शिक्षा का श्री गणेश १८४५ ई० से हुआ था। फ्रांस मे भी सरकारी कृषि विभाग खुले हुये हैं। प्रत्येक विभागों का एक सचालक हुआ करता है। इसको कृषि सचा-

लग रहते हैं। इनकी सहायता के लिये एक या उससे अधिक कृषि के प्रोफेसर रहते हैं। इसके अलावा यहां पर विद्यालय भी खुले हुये हैं। महिला विद्यालयों की भी संख्या अधिक है। इसके अलावा यहां पर इस प्रकार के फार्म भी पाये जाते हैं। जहां से किसानों को कृषि सम्बन्धी उपदेश भी मिला करते हैं। यहां पर एक सरकारी कृषि परिषद् भी खुला हुआ है। ग्रेट ब्रिटेन में कृषि सम्बन्धी अनुसंधान अधिक हुआ है। यहां के अधिस्वर निवासी लोग अपना एक नौकर रखते हैं। उसको वे लोग कृषि आर्गनाइजर के नाम से पुकारते हैं। इसका कार्य किसानों को कृषि सम्बन्धी राय देना होता है और कृषि सम्बन्धी भाषणों के लिये प्रबन्ध करना है। बेल्जियम में आजकल लगभग ३० कृषि विशेषज्ञ नौकर हैं यहां पर लगभग इतनी संख्या इनके सहायकों की भी होती है। जो कृषि विशेषज्ञों को प्रत्येक कार्य में सहायता देते हैं। इस देश में बागवानी वाले उपदेशकों को भी नौकर रक्खा है। किन्तु इनकी संख्या कृषि विशेषज्ञों से कम है। यह लोग किसानों को स्वयं देखते रहते हैं। कृषि सम्बन्धी भाषण भी दिया करते हैं। इसके अलावा किसानों को कृषि सम्बन्धी प्रदर्शन भी दिखलाते हैं। जर्मनी में कृषि सम्बन्धी अनुसंधान गृह अधिक संख्या में खुले हुये हैं। इस देश में सरकार खेती के विकास तथा उन्नति के लिये अधिक सहायता देती है। इसमें सन्देह नहीं है कि इस देश में अन्य देशों की अपेक्षा कृषि सम्बन्धी अधिक अच्छा काम हुआ है। यहां पर कृषि परिषद् भी खुले हुये हैं। यह परिषद् सरकारी नहीं हैं इन परिषदों ने अपने देश में कृषि सम्बन्धी अच्छा संगठन किया है। इन के द्वारा यहां के किसानों को अच्छे-अच्छे उपदेश भी मिलते रहते हैं। स्पेन में भी कृषि की उन्नति के लिये एक सरकारी नियम है। जिसके अनुसार यहां के ग्रामीणों को मिल जुल करके प्रदर्शन वाले खेतों को बनाना पड़ता है। इसी प्रकार से कृषि सम्बन्धी स्कूलों की भी स्थापना की जाती है। इस काम के लिये ग्रामीणों को भूमि भी देना पड़ता है। इस नियम के अनुसार गांव वालों ही को मिल जुल कर बीज, खाद और मशीनों का भी प्रबन्ध करना पड़ता है। स्पेन के अभी बहुत कम गांवों ने इस प्रकार की योजना को अपनाया है। चीन देश में भी वही प्रकार से परीक्षा, सम्बन्धी और प्रदर्शन कार्य होता है। जिस प्रकार से योरुप और अमरीका के देशों में होता है। जापान में ५० से अधिक कृषि सम्बन्धी अनुसंधान खुले हुये हैं। किसानों को भाषण द्वारा कृषि सम्बन्धी शिक्षा दी जाती है। वर्कशॉपों द्वारा भी किसानों को खेती का कार्य दिखलाया जाता है। जापान में कृषि सम्बन्धी शिक्षा उन सैनिकों को भी बराबर दी जाती है जो ग्रामों से आकर सेना में भर्ती हो जाते हैं। यहां की सरकार ने किसानों को अधिक संख्या में बीज और पौधों को वितरण किया है। इससे व्यवसाय सम्बन्धी कृषि की उन्नति का अन्य देशों की अपेक्षा अधिक ध्यान रक्खा है। यहां पर व्यवसायिक कृषि की उन्नति राजनैतिक प्रणाली के ढांचे पर हुई है। इस देश की सरकार उन छोटे किसानों को अधिक सहायता देती है जिन लोगों ने कृषि सहकारी समितियां बनाई हैं। यहां की सरकार किसानों को इसके लिये बाध्य नहीं करती है कि वे इस प्रकार की समितियों में सम्मिलित हो जावें। यहां की सरकार का सदा यही ध्यान रहता है कि कृषि का विकास होवे। इसके अलावा यहां की सरकार ने स्वयं अन्न की उपज के लिये समितियों का संगठन किया है। इसको यहां की भाषा में सोवखोजी कहते हैं। इन समितियों के पास बड़े-बड़े खेत होते हैं। इन खेतों को आधुनिक ढंग से जोता बोया जाता है। यही कारण है कि इन खेतों की उपज में दिन प्रति दिन उन्नति होती जा रही है। १, जनवरी १९२८ ई० को इस प्रकार की प्रणाली २,२२,००० हेक्टर भूमि के खेतों में लगभग ७१,००,००० एकड़ में प्रारम्भ की गई थी। इनमें प्रत्येक खेतों का औसत विस्तार लगभग ५०० हेक्टर होता था। १९२८ ई० में सरकार ने इस प्रकार के खेतों की संख्या पहले की अपेक्षा दुगनी कर दी। नये-नये खेत बनाये गये। १९३२ ई० में रूस की सरकार ने कृषि व्यवसाय के लिये १,००,००० ट्रैक्टरों की योजना भी बनाई थी। यहां की सरकार ने इस वर्षीय उपनिवेशी योजना को भी अपनाया है। इसके अनुसार इस देश की सीमा

पर जो उपजाऊ क्षेत्र हैं। उन मे ४०,००,००० लाख से अधिक मनुष्य बसाये जायेंगे। इन भागों मे सिंचाई के लिये बाँध आदि भी बनाये जा रहे हैं। इसके अलावा कृषि सम्बन्धी उन्नति के लिये अन्य साधनों का भी प्रयोग किया जा रहा है। इस देश के सीमावर्ती क्षेत्रों को आर्थिक और राजनैतिक दृष्टि कोण से भी मजबूत करने का प्रयत्न किया जा रहा है। शिक्षा तथा अन्य कृषि सम्बन्धी उन्नति का कार्य रूस मे भी योरुप के अन्य देशों की भांति हो रहा है। १९२७ ई० मे ७१ कृषि वाले अनुसधान गृह बने थे जो सरकारी थे।

इटली मे कृषि सम्बन्धी एक बहुत बड़ा विद्यालय है। इसका नाम अन्तर्राष्ट्रीय कृषि विद्यालय है। इसकी स्थापना डेविड लुबिन साहब ने १९०५ ई० मे की थी। यह साहब एक अमरीकन सौदागर थे। १९०० ई० में इन्होंने विचार किया। कि इस प्रकार का एक विद्यालय होना चाहिये जिसके द्वारा लोगों को चौपायों की सख्या का ज्ञान होता रहे और खेती की फसलों की दशा और उनकी उपज सम्बन्धी सूचना भी मिलती रहे। उनका यह भी कहना था कि कृषि की उपज तथा उनकी दशाओं का प्रभाव भी व्यापार पर पड़ता है। इन बातों की जानकारी प्रजा को होना बहुत आवश्यक है। लुबिन साहब ने भिन्न-भिन्न देशों की सरकारों से भी बातें किया और इच्छा भी प्रकट की कि इस प्रकार का एक सगठन होना चाहिये अंत में इनके विचार इटली के बादशाह तक पहुंचे। इटली सरकार ने ४० राष्ट्रों के प्रतिनिधियों की एक सभा की। ७ जून १९०५ मे इन राष्ट्रों ने एक प्रकार की सन्धि पर हस्ताक्षर किया जिसके अनुसार उक्त विद्यालय की स्थापना हो गई। इसके कार्यालय का केन्द्र रोम बनाया गया। यह एक सरकारी सगठन है भिन्न-भिन्न देशों की सरकारों द्वारा चलाया जाता है। विद्यालय सम्बन्धी नियम इसकी विधान सभा द्वारा बनाया जाता है। इसकी बैठक दूसरे वर्ष हुआ करती है। इसके प्रबन्ध का कार्य एक समिति द्वारा होता है। यह समिति स्थायी होती है। हर एक राष्ट्र को यह अधिकार होता है कि वह अपना एक प्रतिनिधि इस समिति में रक्खे। इस विद्यालय मे कई एक कृषि सम्बन्धी विभाग खुले हुये हैं। इन विभागों के नाम इस प्रकार से है। (१) अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक कृषि सम्बन्धी परिषद (२) अन्तर्राष्ट्रीय कृषि सम्बन्धी स्थायी समितियां (३) अन्तर्राष्ट्रीय कृषि नियम सम्बन्धी सभा (४) अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक-कृषि सम्बन्धी सभा। अन्तर्राष्ट्रीय कृषि वैज्ञानिक सम्बन्धी सभा में ६०० से अधिक कृषि विशेषज्ञ सदस्य हैं। इस सभा मे ५३ देशों के प्रतिनिधि सम्मिलित हैं। इस विभाग में २३ व्यवसायिक कृषि सम्बन्धी कमीशन हैं। यह लोग कृषि सम्बन्धी नई-नई बातों का अन्वेषण करते हैं। इस महा विद्यालय का मुख्य कार्य कृषि सम्बन्धी आकड़ों का एकत्रित करना है। इस महा विद्यालय का प्रबन्ध भी एक प्रबन्ध कारिणी सभा द्वारा होता है। यह आशा की जाती है कि इस विद्यालय द्वारा कृषि जगत को आगामी वर्षों मे एक महान लाभ पहुँचेगा।

संयुक्त राज्य अमरीका के कृषि सम्बन्ध में—

अमरीका का कृषि सम्बन्धी इतिहास वहाँ के उप-निवेशो के इतिहास से अधिकतर सम्बन्धित है। इस देश मे कृषि भी उसी समय से आरम्भ हुई जब से इस देश मे उप-निवेशों बने। यह उप-निवेश पहले इस प्रकार की भूमि पर बसे थे जो जोती बोई नहीं जाती थी। इसके बाद खेती सम्बन्धी कार्य आरम्भ किया गया। भूमि भी जोती बोई जाने लगी। धीरे-धीरे खेती मे उन्नति होने लगी। अब आजकल इस देश मे खेती मशीनों द्वारा होती है। अनाज की उपज के लिये वैज्ञानिक आधार पर खेतों को बनाया जाता है। आजकल इस देश का कृषि की उपज में एक मुख्य स्थान है। आजकल यह देश कृषि सम्बन्धी व्यापार मे भी अधिक उन्नति शील है। इस देश का कृषि सम्बन्धी इतिहास यहां के निवासियों के जीवन के अनुसार तीन भागों में बांटा जा सकता है। पहला भाग १६०७ से १७७६ ई० तक माना जाता है। इस काल मे प्राय. उप-निवेशों की अधिक स्थापना हुई। दूसरा भाग १७७६ से १८६० ई० तक माना जाता है। इस काल में व्यवसायिक पेड पौधे आदि अधिक लगाये गये। तीसरा भाग

१८६० से १९२० ई० तक माना जाता है। इस काल में सुदूर पश्चिम का क्षेत्र बसा था और भूमि विषयक विद्रोह भी हुआ था। जिन उपनिवेशों की स्थापना बहुत पहले हुई थी। उनको कृषि के लिये भूमि की अधिक आवश्यकता थी। यही कारण था कि १७ वीं और १८ वीं शताब्दी में लोग इस देश के सीमावर्ती क्षेत्रों में बस गये। इसके बाद इसी देश में लोगों ने अपनी स्वतन्त्रता के लिये लड़ाइयां लड़ीं और राजनैतिक अत्याचारों से भी मुक्त पाई। उप-निवेशीय काल में खेती करना लोगों का एक मुख्य व्यवसाय था। वे लोग जिनका व्यापार फर बेचना, मछली मारना और नाव आदि खेना थ.। वे खेती का कार्य करते थे। १७ वीं शताब्दी के समय इङ्गलैंड में भूमि जायदाद सम्बन्धी परिवर्तित नियम के अंतर्गत थी। भूमि कर सम्बन्धी प्रणाली के लोगों ने घोर विरोध किया। अन्त में यह प्रणाली सफल न हुई। इस प्रकार से भूमि का प्रथम बंटवारा जातीय के आधार पर किया गया। कुछ समय के बाद इस प्रकार की योजना भी सफल न हुई और त्याग दी गई। इनके बाद लोगों को बहुत कम कर में भूमि दी गई। इस योजना से यह भी आशा की गई थी कि आबादी की संख्या में वृद्धि होगी। इस प्रकार से सभी लोगों को खेती करने के लिये भूमि मिलने लगी। न्यू इगलैंड में कुछ एकड़ भूमि वहां के प्रत्येक बसने वाले को मिलने लगी। यह भूमि उस समय के उप-निवेश में एक भाग के रूप में मानी थी। वर्जिनिया में भूमि प्राप्त करने के तीन साधन थे। (१) महा सम्बन्धी नियम द्वारा (२) व्यक्ति सम्बन्धी नियम के अनुसार (३) सुयोग सेवाओं कि आधार पर इस देश में भूमि का मिलना सरल था। वहां लोगों को भूमि पारितोषक के रूप में दी जाती थी। न्यू इंगलैंड में यह नियम था कि लोगों को भूमि छोटे-छोटे खेत के रूप में मिलती थी। इस प्रकार की भूमि औसत श्रेणी वाले उप-निवेशों को मिलती थी। उपनिवेशीय समय काल खेती के लिये एक परीक्षा और व्यवस्था करने का समय था। ये रूपियन पशुओं और पौधों को इस देश की जलवायु के अनुसार बनाया गया। कृषि सम्बन्धी योरुपियन प्रणाली को भी यहां के वातावरण के अनुसार बनाया गया। इसमें संदेह नहीं कि यह समय में अर्गल सम्बन्धी कृषि का अधिक विकास हुआ। इस समय में शलजम जड़ वाली फसलों और एक प्रकार की घास जिसको कोलोवर कहते हैं प्रचलित हुई। इसी समय में चारा वाली फसलें भी बोई गई थीं। इसी समय में भी खेती वैज्ञानिक ढंग से होने लगी थी। इसके अलावा योरुप वालों को कृषि सम्बन्धी प्रथम पाठ अमरीका रेड इण्डियन से मिला था। इसमें संदेह नहीं है कि इन्हीं लोगों से योरुप वालों ने यह सीखा था। कि वे किस प्रकार से फसलों का उपार्जन करें और किस प्रकार से खेतों को जोत कर खेती योग्य बनाया जाये। इस प्रकार से उप-निवेशीय लोगों को यह ज्ञान हो गया कि वे किस प्रकार से पौधे का लगायें, किस प्रकार से पशुओं को पाले और किस प्रकार से खेती करें।

इसमें संदेह नहीं है कि एक देश के वातावरण और परस्थिय पर उस देश के भूगोल का भी अधिक प्रभाव पड़ता है। किसी देश का आर्थिक विकास उस देश के भूगोल के अनुसार ही होता है। उस देश की कृषि पर भी भूगोल का प्रभाव पड़ता है। फसलों की उपज मुख्यत उस देश के भौगोलिक दशा के अनुसार ही होती है। न्यू इङ्गलैंड के दक्षिण-मध्य वालों भागों में जो उपनिवेश बसे उन पर यहां की जलवायु और स्थानीय भूगोल सबसे अधिक प्रभाव पड़ा। यह देश छोटे-छोटे पहाड़ों की श्रेणियों से कटा फटा हुआ है। इस देश में खेती के योग्य भूमि कम है। फिर भी इस क्षेत्र में कृषि सम्बन्धी सुन्दर प्रणाली नहीं पाई जाती है। इस क्षेत्र में प्राय. खेती का कार्य मछली पकड़ने वाले, फर का व्यापार करने वाले, लकड़ी काटने वाले और जहाज बनाने वाले ही करते हैं। इसका कारण यहां की भौगोलिक दशा है। दक्षिण में जो अटलान्टिक तटवर्तीय मैदान मिलते हैं। इनमें एक अनोखी दशा देखने में आती है। इस क्षेत्र की नदियों और खाड़ियों द्वारा देश के भीतरी भाग तक व्यापार होता है। यहां पर नदियों के किनारे-किनारे उत्तम श्रेणी वाली उपजाऊ भूमि मिलती है। यहां पर जलवायु

भी अच्छी पाई जाती है। इन कारणों से यह क्षेत्र घना बसा है। खेती भी अधिक उन्नति पर है। इस भाग में व्यवसायिक सम्बंधी कुछ पौधों की अच्छी उपज होती है। फिर भी खेती की अधिक उन्नति उपनिवेशीय काल में न हो सकी। धीरे-धीरे लोगों ने अपना ध्यान फसलों को अदल-बदल कर बोने की तरफ ले गया। इससे खेती की उपज में कुछ वृद्धि हुई। खेतों को खाद आदि डाल कर उपजाऊ बनाया जाने लगा। उपनिवेशीय काल में खेतों की कमी न थी। किन्तु कृषि सम्बन्धी मजदूरों के मिलने में अवश्य कठिनाई थी। यही कारण था कि उस समय में लोगों को खेती के लिये मजदूर न मिलते थे। इन मजदूरों का यह कार्य होता था कि खेती के लिये भूमि को तैयार करें। उनमें पौधों आदि को लगावें। पशुओं की देख-रेख करें।

खेती करने वालों का समुदाय मिसीसिपी की घाटी की तरफ बढ़ा। इसका अमरीकी कृषि के इतिहास में एक प्रबल प्रमाण भी है। इस समुदाय का अधिक सम्बन्ध केवल अमरीकी विद्रोह के काल से वहाँ की घरेलू लड़ाई तक है। यही समय था जब कि अमरीका में कृषि सम्बन्धी उन्नति हुई। केलिफोर्निया, ओरेगन और न्यूमेक्सिको में लोग आकर आबाद होने लगे। यहां पर लोगों को खेती के लिये भूमि भी मिल गई। मिसीसिपी घाटी में लोग विद्रोह के पहले ही आबाद होने लगे थे। १८६० ई० तक इस घाटी का आधा भाग आबाद हो गया। इसके बाद लोग आबाद होने के लिये पश्चिम की तरफ बढ़े और मिसीसिपी को पार कर के वहां के मैदानों में बसने लगे। यहां पर भी लोगों ने अपने निर्वाह के लिये खेती करना आरम्भ कर दिया। पशुओं को भी पालना आरम्भ किया। उस समय खेती प्रायः दो ढंग से की जाती थी। जो लोग सीमावर्ती क्षेत्रों में आबाद थे। वे अक्सर व्यवसायिक पौधों ही की खेती किया करते थे। इसका कारण यह था कि उनके पास छोटे-छोटे खेत रहते थे जिनमें वे इस प्रकार की फसलों की अच्छी उपज कर लिया करते थे। इस प्रकार की खेती करने वाले स्वयं या तो अकेले करते थे या उनका एक बहुत छोटा परिवार रहता था। इन लोगों का ध्यान सम्पत्ति इकट्ठा करने की तरफ न रहता था। वे लोग इस विचार धारा में थे कि जीवन की आवश्यकतायें किस प्रकार से पूरी की जावें। इसी कारण से इस वर्ग के लोग पशुओं को उनके फर आदि के लिये शिकार किया करते थे। खेती की तरफ इनका ध्यान भी कम जाता था। दूसरे ढंग में खेती के लिये बड़े-बड़े खेत बने रहते थे जिनमें अनाज की उपज की जाती थी। इसके लिये किसान तथा उसका परिवार बराबर अपना ध्यान दिया करते थे इन खेतों की उपज की वृद्धि के लिये वे सदा परिश्रम भी किया करते थे। यह लोग खेतों में फसलें केवल अपने परिवार के उपयोग के ही लिये नहीं उत्पन्न करते थे किन्तु व्यवसायिक फसलें भी बोते थे जिससे अन्य लोगों को भी लाभ पहुंचता था। उस समय खेत के मालिक और उसके मजदूरों में कोई विशेष अन्तर नहीं था। मिसीसिपी घाटी के दक्षिणी क्षेत्र में किसान लोग खेतों में काम करने के लिये किराये पर मजदूरों को रखते थे। कुछ किसान लोग इन मजदूरों को खरीद भी लिया करते थे। इस प्रकार के लोगों को गुलाम कहा जाता था। पेड़ पौधों के लगाने वाला क्षेत्र खेतों की अपेक्षा बहुत बड़ा होता था। इसका प्रबन्ध निरीक्षकों द्वारा होता था जिनको बाग के मालिक लोग इसी कार्य के लिये नौकर रखते थे। उन निरीक्षकों के आधीन मजदूरों की एक बड़ी संख्या रहती थी। जिसको यह लोग बागों में काम करने के लिये भेजते थे। पेड़ पौधों को लगाने में इस बात का भी ध्यान विशेष रूप से रखा जाता था। कि दो एक पौधे इस प्रकार के लगाये जावें जिनका उपयोग बाजार में भी हो सके। पेड़ पौधे वाले बागों को खाद और पानी अधिक दिया जाता था जिससे पेड़ सूख न जावें और बराबर बढ़ते रहें। उस समय यह नियम बना हुआ था कि मजदूरों का काम गुलामों से लिया जावे। किन्तु खेतों में काम करने वाले इस प्रकार के भी मजदूर रक्खे जाते थे जो गुलाम नहीं होते थे। उनसे भी काम लिया जाता था और मजदूरी दी जाती थी। गुलामों और उनके मालिकों में विशेष अन्तर रहता था।

१८६० से १९२० ई० तक माना जाता है। इस काल में सुदूर पश्चिम का क्षेत्र बसा था और भूमि विषयक विद्रोह भी हुआ था। जिन उपनिवेशों की स्थापना बहुत पहले हुई थी। उनको कृषि के लिये भूमि की अधिक आवश्यकता थी। यही कारण था कि १७ वीं और १८ वीं शताब्दी में लोग इस देश के सीमावर्ती क्षेत्रों में बस गये। इसके बाद इसी देश में लोगों ने अपनी स्वतन्त्रता के लिये लड़ाइयां लड़ीं और राजनैतिक अत्याचारों से भी मुक्त पाई। उप-निवेशीय काल में खेती करना लोगों का एक मुख्य व्यवसाय था। वे लोग जिनका व्यापार कर बेचना, मछली मारना और नाव आदि खेना थ । वे खेती का कार्य करते थे। १७ वीं शताब्दी के समय इङ्गलैंड में भूमि जायदाद सम्बन्धी परिवर्तित नियम के अन्तर्गत थी। भूमि कर सम्बन्धी प्रणाली के लोगों ने घोर विरोध किया। अन्त में यह प्रणाली सफल न हुई। इस प्रकार से भूमि का प्रथम बंटवारा जातीय के आधार पर किया गया। कुछ समय के बाद इस प्रकार की योजना भी सफल न हुई और त्याग दी गई। इसके बाद लोगों को बहुत कम कर ने भूमि दी गई। इस योजना से यह भी आशा की गई थी कि आबादी की संख्या में वृद्धि होगी। इस प्रकार से सभी लोगों को खेती करने के लिये भूमि मिलने लगी। न्यू इङ्गलैंड में कुछ एकड़ भूमि वहां के प्रत्येक बसने वाले को मिलने लगी। यह भूमि उस समय के उप-निवेश में एक भाग के रूप में मानी थी। वर्जीनिया में भूमि प्राप्त करने के तीन साधन थे। (१) महा सम्बन्धी नियम द्वारा (२) व्यक्ति सम्बन्धी नियम के अनुसार (३) सुयोग सेवाओं कि आधार पर इस देश में भूमि का मिलना सरल था। यहां लोगों को भूमि पारितोषक के रूप में दी जाती थी। न्यू इंगलैंड में यह नियम था कि लोगों को भूमि छोटे-छोटे खेत के रूप में मिलती थी। इस प्रकार की भूमि औसत श्रेणी वाले उप-निवेशों को मिलती थी। उपनिवेशीय समय काल खेती के लिये एक परीक्षा और व्यवस्था करने का समय था। ये रूपियन पशुओं और पौधों को इस देश की जलवायु के अनुसार बनाया गया। कृषि सम्बन्धी योरुपियन प्रणाली को भी यहां के वातावरण के अनुसार बनाया गया। इसमें संदेह नहीं कि यह समय में अंग्रेज सम्बन्धी कृषि का अधिक विकास हुआ। इस समय में शालजम जड़ वाली फसलों और एक प्रकार की घास जिसको फोलोवर कहते हैं प्रचलित हुई। इसी समय में चारा वाली फसलें भी बोई गई थीं। इसी समय में भी खेती वैज्ञानिक ढंग से होने लगी थी। इसके अलावा योरुप वालों को कृषि सम्बन्धी प्रथम पाठ अमरीका रेड इंडियन से मिला था। इसमें संदेह नहीं है कि इन्हीं लोगों से योरुप वालों ने यह सीखा था। कि वे किस प्रकार से फसलों का उपार्जन करें और किस प्रकार से खेतों को जोत कर खेती योग्य बनाया जावे। इस प्रकार से उप-निवेशीय लोगों को यह ज्ञान हो गया कि वे किस प्रकार से पौधों को लगायें, किस प्रकार से पशुओं को पालें और किस प्रकार से खेती करें।

इसमें संदेह नहीं है कि एक देश के वातावरण और परस्थिति पर उस देश के भूगोल का भी अधिक प्रभाव पड़ता है। किसी देश का आर्थिक विकास उस देश के भूगोल के अनुसार ही होता है। उस देश की कृषि पर भी भूगोल का प्रभाव पड़ता है। फसलों की उपज मुख्यत: उस देश की भौगोलिक दशा के अनुसार ही होती है। न्यू इङ्गलैंड के दक्षिण-मध्य वाले भागों में जो उपनिवेश बसे उन पर वहाँ की जलवायु और स्थानीय भूगोल सम्बन्धी अधिक प्रभाव पड़ा। यह देश छोटे-छोटे पहाड़ों की श्रेणियों से कटा फटा हुआ है। इस देश में खेती के योग्य भूमि कम है। फिर भी इस क्षेत्र में कृषि सम्बन्धी सुन्दर प्रणाली नहीं पाई जाती है। इस क्षेत्र में प्राय: खेती का कार्य मछली पकड़ने वाले फर का व्यापार करने वाले, लकड़ी काटने वाले और जहाज बनाने वाले ही करते हैं। इसका कारण यह की भौगोलिक दशा है। दक्षिण में जो अटलांटिक तटवर्तीय मैदान मिलते हैं। इनमें एक अनोखी दशा देखने में आती है। इस क्षेत्र की नदियों और खाड़ियों द्वारा देश के भीतरी भाग तक व्यापार होता है। यहां पर नदियों के किनारे-किनारे उत्तम श्रेणी वाली उपजाऊ भूमि मिलती है। यहां पर जलवायु

भी अच्छी पाई जाती है। इन कारणों से यह क्षेत्र घना बसा है। खेती भी अधिक उन्नति पर है। इस भाग में व्यवसायिक सम्बंधी कुछ पौधों की अच्छी उपज होती है। फिर भी खेती की अधिक उन्नति उपनिवेशीय काल में न हो सकी। धीरे-धीरे लोगों ने अपना ध्यान फसलों को अदल-बदल कर बोने की तरफ ले गया। इससे खेती की उपज में कुछ वृद्धि हुई। खेतों को खाद आदि डाल कर उपजाऊ बनाया जाने लगा। उपनिवेशीय काल में खेतों की कमी न थी। किन्तु कृषि सम्बन्धी मजदूरों के मिलने में अवश्य कठिनाई थी। यही कारण था कि उस समय में लोगों को खेती के लिये मजदूर न मिलते थे। इन मजदूरों का यह कार्य होता था कि खेती के लिये भूमि को तैयार करें। उनमें पौधों आदि को लगावें। पशुओं की देख-रेख करें।

खेती करने वालों का समुदाय मिसीसिपी की घाटी की तरफ बढ़ा। इसका अमरीकी कृषि के इतिहास में एक प्रबल प्रमाण भी है। इस समुदाय का अधिक सम्बन्ध केवल अमरीकी विद्रोह के काल से वहाँ की घरेलू लड़ाई तक है। यही समय था जब कि अमरीका में कृषि सम्बन्धी उन्नति हुई। *कैलिफोर्निया, ओरेगन और न्यूमेक्सिको में लोग* आकर आबाद होने लगे। यहां पर लोगों को खेती के लिये भूमि भी मिल गई। मिसीसिपी घाटी में लोग विद्रोह के पहले ही आबाद होने लगे थे। १८६० ई० तक इस घाटी का आधा भाग आबाद हो गया। इसके बाद लोग आबाद होने के लिये पश्चिम की तरफ बढ़े और मिसीसिपी को पार कर के यहां के मैदानों में बसने लगे। यहा पर भी लोगों ने अपने निर्वाह के लिये खेती करना आरम्भ कर दिया। पशुओं को भी पालना आरम्भ किया। उस समय खेती प्रायः दो ढंग से की जाती थी। जो लोग सीमावर्ती क्षेत्रों में आबाद थे। वे अक्सर व्यवसायिक पौधों ही की खेती किया करते थे। इसका कारण यह था कि उनके पास छोटे-छोटे खेत रहते थे जिनमें वे इस प्रकार की फसलों की अच्छी उपज कर लिया करते थे। इस प्रकार की खेती करने वाले स्वयं यात्रा अकेले करते थे या उनका एक बहुत छोटा परिवार रहता था। इन लोगों का ध्यान सम्पत्ति इकट्ठा करने की तरफ न रहता था। वे लोग इस विचार धारा में थे कि जीवन की आवश्यकतायें किस प्रकार से पूरी की जावें। इसी कारण से इस वर्ग के लोग पशुओं को उनके फर आदि के लिये शिकार किया करते थे। खेती की तरफ इनका ध्यान भी कम जाता था। दूसरे ढंग में खेती के लिये बड़े-बड़े खेत बने रहते थे जिनमें अनाज की उपज की जाती थी। इसके लिये किसान तथा उसका परिवार बराबर अपना ध्यान दिया करते थे इन खेतों की उपज की वृद्धि के लिये वे सदा परिश्रम भी किया करते थे। यह लोग खेतों में फसलें केवल अपने परिवार के उपयोग के ही लिये नहीं उत्पन्न करते थे किन्तु व्यवसायिक फसलें भी बोते थे जिससे अन्य लोगों को भी लाभ पहुंचता था। उस समय खेत के मालिक और उसके मजदूरों में कोई विशेष अन्तर नहीं था। मिसीसिपी घाटी के दक्षिणी क्षेत्र में किसान लोग खेतों में काम करने के लिये किराये पर मजदूरों को रखते थे। कुछ किसान लोग इन मजदूरों को खरीद भी लिया करते थे। इस प्रकार के लोगों को गुलाम कहा जाता था। पेड़ पौधों के लगाने वाला क्षेत्र खेतों की अपेक्षा बहुत बड़ा होता था। इसका प्रबन्ध निरीक्षकों द्वारा होता था जिनको बाग के मालिक लोग इसी कार्य के लिये नौकर रखते थे। इन निरीक्षकों के आधीन मजदूरों की एक बड़ी संख्या रहती थी। जिसको यह लोग बागों में काम करने के लिये भेजते थे। पेड़ पौधों को लगाने में इस बात का भी ध्यान विशेष रूप से रखा जाता था। कि दो एक पौधे इस प्रकार के लगाये जावें जिनका उपयोग बाजार में भी हो सके। पेड़ पौधे वाले बागों को खाद और पानी अधिक दिया जाता था जिससे पेड़ सूख न जावें और बराबर बढ़ते रहें। उस समय यह नियम बना हुआ था कि मजदूरों का काम गुलामों से लिया जावें। किन्तु खेतों में काम करने वाले इस प्रकार के भी मजदूर रखे जाते थे जो गुलाम नहीं होते थे। उनसे भी काम लिया जाता था और मजदूरी दी जाती थी। गुलामों और उनके मालिकों में विशेष अन्तर रहता था।

१८३० ई० तक सयुक्त राज्य अमरीका में तीन बड़े-बड़े आर्थिक क्षेत्र बन गये। हर एक क्षेत्र में उसी प्रकार की फसलों की उपज होती थी। जो जिस उपज के लिये प्राकृतिक रूप से अनुकूल था। उस समय न्यूइङ्गलैंड में उद्योग धंधों का अधिक कार्य होता था। यह देश उस समय का औद्योगिक क्षेत्र कहा जाता था। इस देश के कुछ लोग खेतों का काम छोड़ कर व्यवसायिक केन्द्रों में जा कर बस गये और वहां के कारखानों आदि में काम करने लगे। कुछ लोगों ने होरेस ग्रीली की बात मान ली। इनका कहना था कि देश के पश्चिमी भाग में चले जाओ। कुछ लोगों ने इनके कहने के अनुसार कार्य किया और सयुक्त राज्य अमरीका पश्चिमी भाग में बस गये। इसके अलावा फिर भी अधिक लोग खेती ही का कार्य करते रहे। न्यू इंगलैंड के पश्चिमी भाग में भी अधिक उन्नति हुई। इस क्षेत्र में कुटीर उद्योग धंधे भी अधिक बढ़े। वाणिज्य सम्बन्धी कृषि की उन्नति हुई। पशु आदि भी अधिक संख्या में पाले जाने लगे। उनके ऊन और मांस से व्यापार भी होने लगा। फलों आदि के पेड़ भी अधिक सख्या में लगाये गये। कनेक्टिकट घाटी में तम्बाकू की भी उपज होने लगी। इन सब चीजों के कारण न्यू इंगलैंड के किसान लोगों ने बाध्य हो कर अपने क्षेत्रों को छोड़ दिया और वे जा कर के इन क्षेत्रों में आबाद हो गये। इसके अलावा इन क्षेत्रों में कृषि सम्बन्धी समितियों का भी सगठन हुआ। खेती के लिये नये-नये औजार भी बनाये गये। खेती करने के साधनों में एक बड़ा परिवर्तन हो गया। इस देश के उत्तरी-पश्चिमी भाग में भी कृषि की उन्नति हुई। इसके वनमयी भूमि और प्रेरी घास वाले क्षेत्रों को भी कृषि के लिये साफ कर दिया गया। इस क्षेत्र में बाजार उपयोगी के वस्तुये की अधिक सख्या में पैदा की जाने लगीं। इस क्षेत्र का विकास और उन्नति कुछ कारणों से हुई जो निम्नलिखित हैं। पहला कारण यहां की मध सरकार की नीति थी। १८२० ई० के बाद जो लोग यहां पर आकर बसे उनको एक एकड़ भूमि १.२५ डालर में मिल जाती थी। दूसरा कारण यह था कि यहां पर यातायात सम्बन्धी कठिनाइयां न थी। लोगों को पानी भी सरलता से मिल जाता था। तीसरा कारण यह था कि कृषि सबंधी नये-नये साधनों का प्रयोग होता था। न्यू इंगलैंड के पूर्वी और पश्चिमी भागों में बाजारों की उन्नति हो गई थी। लोगों को उनके निर्वाह हेतु सामान भी आसानी से मिल जाता था। अनाज सम्बन्धी कोई कठिनाई न थी।

कृषि सम्बन्धी समितियों का भी सगठन हो गया था जिससे लोगों को कृषि के कामों में सहायता मिलती थी। पशु-पालन उद्योग धंधे भी अधिक उन्नति पर थे। व्यापार सम्बन्धी भी कोई कठिनाई न थी। लोगों को साप्ताहिक समाचार पत्र भी पढ़ने को मिल जाते थे। जिससे स्थान-स्थान की सूचनायें उनको सरलता पूर्वक मिलती थीं। न्यू इंगलैंड के दक्षिणी भाग में भिन्न-भिन्न प्रकार की खेती होती थी। इस भाग में पहले से ही पेड़ पौधे लगाने का कार्य होता था। तम्बाकू के स्थान पर कपास की भी उपज की जाने लगी थी। इसका कारण यह था कि यह तम्बाकू की अपेक्षा व्यापार के लिये अधिक लाभदायक थी। १८३० ई० तक कपास का पौधा अन्य पौधों का राजा बन हुआ था। इसका कारण यह था कि उस समय इस पौधे की अपेक्षा किसी और अन्य पौधों को व्यवसायिक उपयोग इसके तुल्य न था। उस समय इतना आवश्यक कच्चा सामान किसी अन्य दूसरे देश के पास भी न था। उस समय न्यू इंगलैंड का दक्षिणी क्षेत्र कपास की उपज के लिये जगत प्रसिद्ध था। इस देश के दक्षिणी भागों में जो ग्रामीण सम्बन्धी आर्थिक-उन्नति हुई उसके दो मुख्य कारण थे। पहला कारण यह था यहां पर कपास की उपज खूब होती थी। जिससे भिन्न-भिन्न प्रकार के कुटीर उद्योग धंधे खुले हुये थे। दूसरा कारण यह था कि इस देश में गुलामों की प्रथा थी। जिसके पास जितने अधिक गुलाम होते थे वे अपना कार्य उतनी ही सरलतापूर्वक चलाते थे। तीसरा कारण यह था कि यहां पर कई प्रकार के पौधे भी लगाये जाते थे। जहाँ जिस प्रकार की भूमि और जलवायु होती थी। वहां पर उसी प्रकार के पौधे लगाये जाते थे। पौधों के लगाने और उनकी

देख भाल के लिये मजदूरों की भी आवश्यकता पड़ती थी जो यहां के ग्रामीण क्षेत्रों से मिल जाते थे। यहां पर कपास, तम्बाकू, गन्ना, चावल और नील के पौधे मुख्यत: अधिकतर लगाये जाते थे। इसका कारण यह था कि इन पौधो (फसलों) से अन्य प्रकार के पौधों की अपेक्षा आय कम होती थी। इन पौधों या फसलों को पैदा करने के लिये गुलामों को काम में लाते थे। यह लोग नीग्रो कहलाते थे। यह लोग इन फसलों की देख-रेख करते थे। इन पौधों को लगाने के लिये छोटे-छोटे भी खेत बने हुये थे। किन्तु इस प्रकार के खेत उसी क्षेत्र में पाये जाते थे। जहाँ पर अच्छी भूमि न मिलती थी। इसी कारण से बड़े-बड़े खेतो का बनना भी कठिन था। इन व्यवसायिक फसलों की उपज के लिये अधिक ध्यान दिया जाता था। इसका कारण यह था कि इन फसलों द्वारा उस समय व्यापार होता था।

इस प्रकार यहां पर खेती करने की दो प्रकार की प्रणालियां थीं। एक प्रकार की वह खेती थी जो उपनिवेशिक काल के पूर्व से होती थी। दूसरे प्रकार की खेती प्रजातंत्र सम्बन्धी ढंग पर होती थी। इसके अनुसार लोगों के पास छोटे-छोटे खेत रहा करते थे। फसलों की उपज के लिये उनमें खाद आदि डाली जाती थी। खेतों में काम करने के लिये गुलाम मजदूर होते थे। बड़े-बड़े खेतों में व्यवसायिक पौधे लगाये जाते थे जिनके द्वारा व्यापार होता था। इसी तरह लोग कुछ समय तक खेती करते रहे। इसके बाद संयुक्त राज्य अमरीका में विद्रोह का आरम्भ हुआ। इस विद्रोह के कारण से संयुक्त राज्य अमरीका में व्यवसायिक और कृषि सम्बन्धी विकास हुये। व्यवसायिक सम्बन्धी विद्रोह का यह फल हुआ कि पहले लोग अपने हाथों द्वारा ही उद्योग धंधों आदि का कार्य किया करते थे। किन्तु इस विद्रोह के कारण से कारखानों में मशीनों द्वारा कार्य होने लगा। कृषि सम्बन्धी विद्रोह का यह प्रभाव पड़ा कि खेती वैज्ञानिक रूप से होने लगी। खेती द्वारा लोग धनी बनने का प्रयत्न करने लगे। खेत में अधिकतर वाणिज्य सम्बन्धी सामान पैदा किये जाने लगे। कृषि सम्बन्धी विकास का यह कारण था कि उस समय इस प्रकार की अधिक भूमि पड़ी हुई थी। जो जोती बोई न जाती थी। इसके विकास के लिये सरकार की भी उदार नीति थी। १८६२ ई० में एक प्रकार का नियम भी बनाया गया था। जिसका नाम "होम्सटेड नियम था। इसके अनुसार किसानों को अपनी भूमि पर निजी अधिकार हो गया। इन बातों का विचार करते हुये लोगों की इच्छा खेती के लिये बढ़ गई थी। जनसंख्या भी बढ़ी। लोग दूसरे-दूसरे स्थानों से आकर बसने लगे। इस कारण से यहां के खेतों में काम करने के लिये मजदूरों की कमी न रही। उस समय के ४५,००,००० खेतों में काम करने के लिये लोग आसानी से मिलने लगे। खेती सबंधी नई-नई मशीनों का भी आविष्कार हुआ। इस कारण से मजदूरों के श्रम की बचत हुई। खेती करने के साधनों में भी परिवर्तन हो गये। नये-नये मार्ग भी बनाये गये। यह मार्ग स्थानीय बाजारों को विश्व के बाजार से मिलाते थे। इस कारण व्यापार में भी उन्नति हुई। व्यापार के बढ़ने से बाजारों की संख्या भी बढ़ने लगी। इन बाजारों में उस वस्तु की भी खपत होने लगी जो खेती द्वारा पैदा किया जाता था। कृषि सम्बन्धी ज्ञान की उन्नति के लिये बड़ी-बड़ी समितियाँ बनाई गईं। कृषिसम्बन्धी 'बड़े-बड़े सरकारी विभाग खुले। उस समय इस प्रकार के विभागों ने कृषि उन्नति का अच्छा कार्य किया। कृषि की उन्नति के लिये संघ सरकार ने अलग और राज्य की सरकारों ने अलग अपना-अपना कृषि विभाग खोला था। उसी समय अनुसंधान गृहों की स्थापना हुई। कृषि विद्यालय भी खोले गये। कृषि सम्बन्धी संगठनों का भी निर्माण किया गया। १९१४ ई० तक व्यवसायिक सम्बन्धी फसलों की उपज में बराबर उन्नति होती रही। आजकल भी इस प्रकार की फसलों की उपज की वृद्धि का अधिक ध्यान रखा जाता है। आजकल कृषिसम्बन्धी जटिल समस्या उत्पन्न हो गई है। यह विचार किया जा रहा है कि किसी प्रकार से कृषि सम्बन्धी उपज का वितरण हो। जिससे लोगों को किसी प्रकार की कठिनाई का अनुभव न हो। किस प्रकार से भूमि का सुधार किया जावे और अधिक से अधिक भूमि खेती के काम आ सके।

संयुक्त राज्य अमरीका में जनसंख्या भी बराबर बढ़ती रही। इसका मुख्य कारण यहां की कृषि सम्बन्धी उन्नति है। १९२० ई० में जो जनगणना हुई थी। उससे यह पता लगता है कि उस समय में अमरीकन लोग अधिक संख्या में नगरों और ग्रामों में बसे हुये थे। उस समय कुल आबादी का ४८.६ प्रतिशत भाग ग्रामों में बसा हुआ था। १९२० ई० में २६.३ प्रतिशत लोग खेती के कार्य में लगे हुये थे। उस समय खेती का कार्य वही लोग करते थे। जिन की आयु दस वर्ष से अधिक होती थी। १९२० ई० में जो लोग कारखानों आदि में काम करते थे उनकी संख्या बढ़ कर ३०.८ प्रतिशत हो गई थी। इसमें संदेह नहीं है कि इस बात से संयुक्त राज्य अमरीका में कृषि और व्यवसायिक सम्बन्धी अधिक उन्नति हुई। इसके अलावा खेतों की संख्या में भी वृद्धि हुई। १८६० ई० में यहां पर कुल खेतों की संख्या २०,००००० से कुछ अधिक थी। १८९० ई० में यह बढ़ कर ४५,००,००० से कुछ अधिक हो गई। १९२० ई० में खेतों की संख्या बढ़ कर ६५,००,००० हो गई। इसके साथ-साथ कृषि योग्य भूमि का विस्तार भी बढ़ता रहा। धीरे-धीरे करके भूमि का मूल्य भी बढ़ने लगा। इसी कारण से भूमिसम्बन्धी कर-प्रणाली का श्रीगणेश हुआ। किसानों से खेतों का कर लिया जाने लगा। १८८० ई० में इस प्रकार के खेत कुल खेतों की संख्या का २५.६ प्रतिशत था। १९०० ई० में यह संख्या बढ़ कर ३५.३ प्रतिशत हो गई। १९२० ई० में इस प्रकार के खेतों की संख्या ३८.१ प्रतिशत थी। उस समय जिस क्षेत्र में जो फसलें पैदा की जाती थीं। उस क्षेत्र का नाम उस फसल के नाम पर पड़ता था। इस प्रकार से कार्न की उपज वाला क्षेत्र अलग था। इसी भांति कपास की उपज का क्षेत्र और गेहूँ की उपज का क्षेत्र अलग-अलग बना था। गोपालन उद्योग धंधे का अलग क्षेत्र बना हुआ था। संयुक्त राज्य अमरीका का सबसे प्रसिद्ध कृषि क्षेत्र चेसापीक खाड़ी के मुहाने से उत्तर-पूर्व तक और आयोवा में उत्तरी-पश्चिमी किनारे तक फैला हुआ है। इसी क्षेत्र में किसान लोगों की संख्या भी अधिक है। इस क्षेत्र में आलू की अधिक उपज होती है। इसके डेरी सम्बन्धी उद्योग धंधे की भी अधिक उन्नति है। यहां पर फल भी बाजारों की खपत के आधार पर पैदा किये जाते हैं। इस क्षेत्र के दक्षिणी-पश्चिमी भाग में ओहायियो इन्डीयाना, इलीनोइस, आयोवा और मिसोरी और अन्य सीमावर्ती राज्यों के भाग सम्मिलित हैं। यह क्षेत्र कार्न की उपज के लिये प्रसिद्ध है। इस क्षेत्र में प्रायः उन पशुओं की संख्या पाई जाती है। जिनका मांस खाने के काम में आता है। इन पशुओं से जो सामान मिलता है। उसका १५ प्रतिशत भाग अन्य देशों को भेज दिया जाता है। कार्न वाले क्षेत्र के पश्चिमी और उत्तरी भाग में गेहूँ की उपज वाला क्षेत्र स्थित है। इस क्षेत्र की कुल उपज का २० प्रतिशत भाग अन्य देशों को भेजा जाता है। ७५ प्रतिशत भाग इसी देश में खप जाता है। गेहूँ वाले क्षेत्र के दक्षिणी भाग में कपास की उपज वाला क्षेत्र पाया जाता है। कपास की उपज का ५० प्रतिशत भाग योरुप के व्यवसायिक केन्द्रों को भेज दिया जाता है। शेष ५० प्रतिशत भाग की खपत इसी देश में हो जाती है। २० वीं शताब्दी में भूमि सम्बन्धी अधिक परिवर्तन हुए। भूमि के मूल्य में वृद्धि हो गई। जो भूमि कम उपजाऊ थी उसमें भी सिंचाई द्वारा खेती होने लगी। भूमि के जिस क्षेत्र में पानी इकट्ठा रहता था। उसको नालियों द्वारा निकाल दिया गया। इस प्रकार से दलदली भूमि में भी कृषि होने लगी। ग्रामीण जीवन का पुनः संगठन किया गया। किसानों को शिक्षासम्बन्धी उपयोगिता बतलाई गई। इस प्रकार के परिवर्तन स्थायी रूप से हुये। इस बात की भी आवश्यकता हुई कि आजकल के कृषि समस्या को किसानों के वातावरण के अनुकूल बनाया जावे। इसके लिये विदेशों पर भी भरोसा नहीं किया जा सकता कि हमारे बढ़े हुये सामानों को वे इस भाव पर खरीदेंगे। जिससे कि किसानों को भी लाभ पहुँचे। इस प्रकार से किसान उसी दशा में धन सम्पन्न होंगे। जब कि खेती न करने वाले लोगों की संख्या में वृद्धि हो और वे लोग खेती द्वारा पैदा होने वाले सामानों को उस भाव पर खरीदें। जिससे किसानों को लाभ हो। अब समय आ गया है कि

जब किसान लोग गेहूँ और कपास आदि की उपज पर बहुत कम निर्भर रहेंगे। इसका कारण यह है कि इस प्रकार की उपज से किसानों को लाभ नहीं पहुंचता है। किसान लोग अब अधिकतर उसी प्रकार की चीजों का उत्पादन किया करेंगे जो जल्दी नष्ट हो जाया करे। इस प्रकार की उपज में फल और तरकारी आदि हैं। इनमे किसानों को अनाज की अपेक्षा अधिक लाभ पहुंचने की आशा है।

विश्व में वर्तमान समयानुसार खेती:—

इस काल की गणना १५ वीं शताब्दी के बाद से आरम्भ होती है। भिन्न-भिन्न आर्थिक परिवर्तन हुये। किन्तु इस का प्रभाव कृषि पर बहुत कम पडा। इसमें संदेह नहीं कि "कृषिसम्बन्धी परिवर्तन के चिन्ह दिखलाई पड़ते थे। किन्तु कठिनाई यह थी कि उस समय कृषि वाले क्षेत्र सीमित थे। उपजाऊ भूमि प्राय: नगरो के आस पास ही पाई जाती थी। इस समय कृषि की अधिक उन्नति फ्रांस और इटली आदि देशों मे हुई। कृषिसम्बन्धी ज्ञान उन लोगो तक न पहुंच सका। जो ग्रामो मे आबाद थे। उस समय पुराने ढग के खेत होते थे। जो घास वाले मैदान की श्रेणियों के अनुसार बनाये जाते थे। कहीं-कहीं पर दो या तीन घास के मैदानों का एक खेत होता था। उस समय पशु भी कम पाले जाते थे। उस समय उन बाजारों की कमी थी। जिनमें कृषिसम्बन्धी उत्पादन की खपत होती। इस कारण से कृषि की उन्नति कुछ समय तक न हो सकी। लोग अधिकतर ग्रामों मे रहते थे और प्राय: उसी प्रकार के सामान खेती द्वारा पैदा करते थे जिनकी उन्हें आवश्यकता रहती थी। नगरों में साप्ताहिक बाजार लगा करते थे। आस पास वाले ग्रामीण लोग अपने सामानों को इन बाजारों में बेचने के लिये लाया करते थे। धीरे-धीरे जब व्यापार की अधिक उन्नति हुई तो यहां के लोगों ने गेहूँ, ऊन, मक्खन और रंग के सामानों का व्यापार करना आरम्भ कर दिया। इस प्रकार से थोड़ा सामान बाहर जाने लगा। किन्तु इसका अधिक प्रभाव लोगों पर न पड़ सका। इस कारण से न तो व्यवसायिक उन्नति हुई और न बाजारों का भाव ही बढ़ सका। कृषि सम्बन्धी साधनों का भी विकास न हुआ।

धीरे-धीरे व्यवसयिक सम्बन्धी उन्नति की तरफ लोगों का विचार बढ़ा। उस समय फ्रांस, राइन और इटली के उत्तरी भाग व्यवसायिक उन्नति के लिये प्रसिद्ध थे। इस प्रकार की उन्नति होने का कारण यह था कि कृषिसम्बन्धी पुराने सगठनों का महत्व कम हो गया धीरे-धीरे करके इन सगठनों का अन्त हो गया। पूर्वी जर्मनी बाल्टिक के प्रांत और पोलैंड आदि उस समय गुलामों के उपनिवेशीय क्षेत्र थे। इन क्षेत्रों को जर्मनी ने बनाया था। इन क्षेत्रों की आर्थिक दशा भी अच्छी थी। इसका कारण यह था। कि इन राज्यों से उस समय के अनुसार गेहूँ दूसरे देशो को नहीं भेजा जाता था। इन क्षेत्रों में आर्थिक उन्नति के लिये व्यवसायिक फसलें अधिक पैदा की जाती थीं। इन फसलों की उपज को बाहर भेजा जाता था। इस प्रकार से यह क्षेत्र आर्थिक दृष्टि कोण से उन्नतिशील बना रहा। इसके अलावा इन क्षेत्रों में छोटे पैमाने पर भी व्यापार किया जाता था। यहां से उन वस्तुओं को भी बाहर भेजते थे जिन की आवश्यकता आस पास के देशों को रहती थी। आजकल की भांति उस समय के देश घने बसे न रहते थे। व्यापारसम्बन्धी साधन भी आजकल की तरह विकसित न थे। व्यापार केवल उन्हीं थोड़े मार्गों द्वारा होता था। जो उस समय उपलब्ध थे। इस प्रकार से उस समय के देशों की आर्थिक दशा में थोड़ा बहुत परिवर्तन हो जाता था। उस समय अन्य पशुओं की अपेक्षा भेड़ें अधिक पाली जाती थीं। इसके लिये स्पेन, इटली और ग्रीस अधिक प्रसिद्ध थे। किन्तु यह कृषिसम्बन्धी उन्नति का उदाहरण नहीं हैं। इस प्रकार का व्यवसाय उन देशो के चरवाहे लोग किया करते थे। पशुपालन का व्यवसाय उन देशों की कृषि-उन्नति मे बाधक थी। इस जाति के लोग कृषिसम्बन्धी उन्नति में सहायक भी थे। १८५० ई० तक कृषिसम्बन्धी अधिक परिवर्तन हुये। किसान लोग बाजार में बिकने वाली फसलें अधिक पैदा करने लगे। इसका कारण यह था कि कृषिसम्बन्धी सामान बेचने के लिये बाजारों की

सख्या मे वृद्धि हो गई। इस प्रकार से किसानों को भी अधिक पैसा मिलने लगा। उनका ध्यान भी अब अन्य प्रकार की आवश्यक वस्तुओं के उपार्जन की तरफ न रहा। इसी प्रकार धीरे-धीरे करके व्यवसाय में उन्नति होती गई और बड़े-बड़े नगर भी आबाद होते गये। व्यापार और कृषि मे उन्नति होने के कारण से जनसख्या में भी वृद्धि हो गई। लोगों की आवश्यकतायें भी पहले की अपेक्षा बढ़ गई। अनाज आदि के भावों में भी वृद्धि हो गई। इस प्रकार से किसानों को और अधिक लाभ पहुँचा। उस समय जो कृषि की प्रणाली प्रचलित थी। उससे लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति न होती थी। इस प्रकार से खेती की जो प्रणाली लगभग एक हजार वर्ष से प्रचलित थी। वह अब पुरानी मालूम होती है। उससे लाभ नहीं है। लोगों को यह विश्वास भी हो गया कि पुरानी प्रणाली द्वारा खेती करने से कोई लाभ नहीं है यह विचार ठीक भी था। क्योंकि लोगों की आवश्यकतायें अब कृषि द्वारा पूरी न होती थीं। लोगों का ध्यान अधिक भूमि लेने और उसको जोतने आदि की तरफ गया। उस समय के लोगों की शक्ति अब इस समस्या की ओर लग गई। लोग विचार करने लगे कि किस प्रकार से खेती का विकास किया जावे। किस प्रकार से भूमि को उपजाऊ बनाया जावे। कृषिसम्बन्धी विकास के लिये किस प्रकार के साधनों को अपनाया जावे। लोगों ने सबसे पहले कृषि सम्बन्धी साहित्य बनाया। इसमें आर्थिक कृषिसंबंधी का मुख्य ध्यान रखा गया। उस समय का जो विद्वान समाज था। उसने कृषि की उन्नति के लिये विद्व विद्यालयों की स्थापना की। लोग यह विचार करने लगे कि किसी प्रकार से कृषि की पुरानी पद्धति को त्यागा जावे और नये-नये साधनों को अपनाया जाय। कृषि की उन्नति के लिये लोगों ने पशुओं का पालना आरम्भ कर दिया। नये-नये पेड़ पौधे भी लगाये जाने लगे। खेती करने का नया ढग अपनाया गया। खेत व्यक्तिगत रूप से लोगों को अधिक नहीं दिये जाते थे। खेत अधिकतर गावों में पड़े रहते थे। गाव वाले मिलजुल कर उसको जोते और काटते थे। कार्य गाव वालों के निर्णय के अनुसार होता था। इसमें सदेह नहीं कि एक किसान के लिये यह बहुत कठिन था कि वह भूमि को जोत कर नये-नये पौधों को लगाता। पशुओं की कार्य-शक्ति को बढ़ाने के लिये चारा वाली फसलें भी पैदा की जाने लगी। पशुओं के मल आदि को खाद के रूप में भी प्रयोग किया जाने लगा। चारा वाली फसलों की उपज से पशुओं को सुन्दर-सुन्दर भोजन मिलने लगा। फिर भी उन क्षेत्रों की दशा सोचनीय रही जहां पर चारावाली फसलों की उपज न हो सकती थी, या पशुओं के लिये प्राकृतिक रूप से चरागाह न थे। अब धीरे धीरे लोगों का विचार किसानों की उन्नति पर गया। किसानो को उनके कृषि सम्बन्धी कार्य मे स्वतंत्र कर दिया गया। इसका फल यह हुआ कि खेती में कुछ अधिक उन्नति हो गई। सबसे अधिक उन्नति व्यवसायिक फसलों में हुई। इस समय किसानों को अन्य द्वीपों की अपेक्षा इङ्गलैंड में कुछ मुख्य सुविधायें प्राप्त थी। वहां पर भूमि किसानों को पट्टा प्रणाली द्वारा दी जाती थी। १८ वीं शताब्दी तक यहां पर अधिक उन्नति हुई। फ्रास भी इस प्रकार की भूमि पद्धति को अपनाने वाला था। फ्रास वालों को यह आशा थी कि इस प्रकार के साधन से वे लोग भी धनी हो जायेंगे। अब इस प्रकार के साधनों को अपनाने के लिये लोगों में एक विचार धारा सी बन गई। धन के उपार्जन हेतु लोग बड़े-बड़े खेतों को प्रणाली के अनुसार लेने के लिये इच्छुक थे। किन्तु जागीर सम्बन्धी विद्रोह ने इस प्रकार की उन्नति में बाधायें पहुंचाई। जागीर सम्बन्धी पद्धति के नष्ट हो जाने पर पट्टा प्रणाली का भी अंत हो गया। केवल फ्रांस एक ऐसा देश है। जहा पर इस प्रणाली के अनुसार किसानो के पास छोटे-छोटे खेत हैं। ऐसा केवल नेपोलियन नियम के कारण से है। यह एक प्रकार का नियम है जिसके अनुसार भूमि या सम्पत्ति को वहा के रहने वालों में बाट दिया जाता है।

१९वीं शताब्दी में जब जागीर सम्बन्धी पद्धति का पूर्वी योरूप से अन्त हो गया तो व्यवसायिक सम्बन्धी खेती में भी विघ्न पड़ गया फिर भी किसानों के पास पहले की भांति छोटे-छोटे खेत थे इन खेतों

केवल वही फसलें पैदा की जाती थीं जो लोगों के दैनिक जीवन के लिये आवश्यक थीं। इसके बाद फिर भूमिसम्बन्धी विभाजन का कोई भी प्रयत्न नहीं किया गया। इस प्रकार से कृषि सम्बन्धी सुधार किसानों को सतुष्ट न कर सका। वे भूमि के लिये चिल्लाते रहे। १९०६ ई० में कृषि सुधार की योजना बनाई गई। उसका नाम स्टोली पिन कृषि सुधार था किन्तु यह योजना भी विश्व के प्रथम युद्ध के पहले पूर्ण रूप से न बन सकी थी। जर्मनी में कृषि सम्बन्धी उन्नति में भिन्नता थी। यहां भी डेन्मार्क की तरह जमींदारी प्रणाली को त्याग दिया गया था। यहा पर कृषि सम्बन्धी उन्नति के नये साधन अपनाये गये। १९वीं शताब्दी में इस देश के जो भूमिपति लोग थे, उन्होंने कृषि पर कुछ प्रतिबन्ध लगाया। किन्तु १९वीं शताब्दी के प्रारम्भ में कृषि के विकास के लिये पूर्ण सुविधा दी गई। यह समय किसानों के के लिये स्वत्रता के नाम से प्रसिद्ध था। इस प्रकार से उन ढँगों का अत कर दिया गय जिनके अनुसार किसानों जमींदार के आधीन रहना पड़ता था।

राइन या इसके अन्य आस-पास वाले देशों मे इस प्रकार के कम परिवर्तन हुये। इन क्षेत्रों मे पहले से ही मध्य कालीन जर्मीदारी अधिकार प्रचलित थे। इसके अनुसार किसानों से कर लिया जाता था। इन क्षेत्रों में आर्थिक उन्नति का विकास भी न हो सका था इन भागों की भूमिप्रणाली भी फ्रांस की भूमिप्रणाली से मिलती जुलती थी। छोटे पैमाने वाली कृषि सम्बन्धी प्रणाली नेपोलियन के समय में भी रही। किन्तु इस प्रणाली से किसानों को किसी प्रकार की हानि न हुई। इस प्रकार की प्रणाली हर एक दशा में हानिकारक भी नहीं होती है। यह प्रणाली फलों और तरकारियों की उपज के लिये अधिक लाभदायक है। इसका कारण है कि इस प्रकार की खेती छोटे छोटे विस्तार वाले ही खेतों में हो सकती है। अत मे जर्मीदारी प्रणाली नष्ट हो गई। जर्मनी और डेन्मार्क मे किसानों के लिये अच्छे-अच्छे खेत बनाये गये। इस प्रकार के खेतों के कारण मे कृषि सम्बन्धी फिर अधिक उन्नति हुई। खेती की तरफ लोगों का ध्यान अधिक आकर्षित होने लगा। थ्यार साहब ने (जो एक जर्मन कृषक विद्वान थे) लिखा है कि खेती एक प्रकार की कला है जो अनुभव द्वार प्राप्त होता है। इन्होंने जर्मनी में प्रथम एक बड़ा कृषि विद्यालय खोला था। इसमें लोगों को कृषिसम्बन्धी शिक्षा दी जाती थी। इस प्रकार से कृषि की जो उन्नति थ्यार साहब के द्वारा हुई उसको लेइबिग साहब ने और आगे बढ़ाया। लेइबिग साहब ने पौधों के पालन पोषण सम्बन्धी सारे गलत विचारों को जो उसके समय में थे दूर कर दिया लेईबिग साहब ने यह भी सिद्ध कर दिया कि कुछ इस प्रकार के लवण पदार्थ हैं जो पौधों के उगने बढ़ने के लिये अत्यावश्यक हैं। लेईबिग साहब ने लोगों को यह बतलाया कि भूमि को उपजाऊ बनाने के लिये खाद एक बहुत ही आवश्यक वस्तु है। इसके लिये पशु भी अधिक संख्या में पाले जाने लगे बाजारों मे भी खाद बिकने लगी। किसानों को खाद सम्बन्धी कठिनाई अब न रह गई। जो खेत जिस प्रकार की उपज के लिये उपयुक्त होता था उसमें उसी प्रकार की फसलें बोई जाने लगी। प्राय उसी प्रकार की फसलें अधिकतर बोई जाती थीं जिनकी बाजारों में मांग रहती थी। इस प्रकार से कृषि की उपज में वृद्धि होने लगी।

जर्मनी और उसके उन उत्तरी और पश्चिमी सीमावर्ती राज्यों के इतिहास से यह पता चलता है कि इन देशों में भी कृषिसम्बन्धी उन्नति १९वीं शताब्दी में हुई। इन देशों मे भी बड़े-बड़े खेत पाये जाते थे। खेतों को उपजाऊ बनाने के लिये खाद का प्रयोग होता था। आर्थिक कठिनाई को दूर करने के लिये सुअर और पशु पाले जाते थे। (१) नगरों में जनसंख्या की वृद्धि हो गई। (२) अधिक कारखानों की स्थापना हुई। बाजारों के भावों में भी परिवर्तन हुआ। बाजारों में भिन्न-भिन्न देशों के खाद सामान आदि बिकने लगे। विदेशी मालों को बन्द कर देना भी असम्भव था। इसका प्रभाव व्यवसायिक उन्नति पर भी पड़ा। बाजारों के भावों में भी वृद्धि हो गई। योरुप के व्यवसायिक क्षेत्र वाले किसानों ने बाजार सम्बन्धी भावों मे परिवर्तन करने का प्रयत्न किया। उन लोगों ने पशु

सम्बन्धी उपज को बढ़ाया। इस कारण से पशुओं की संख्या में बराबर वृद्धि होती गई। इस प्रकार से धीरे-धीरे गेहूँ की अपेक्षा नगरों में मांस की अधिक खपत होने लगी। ऐसी दशा में गेहूँ की खेती कम की जाने लगी। गेहूँ का अन्न में प्रधान स्थान नहीं रहा। अब पशु-पालनसम्बन्धी व्यवसाय की उन्नति होने लगी। पशु अधिक संख्या में चराये जाने लगे। जर्मनी में प्रथम युद्ध के पहले यह अनुमान लगाया गया था कि अनाज सम्बन्धी उपज की अपेक्षा पशु सम्बन्धी उपज अधिक रही। इनकी उपज में १ और २ का अनुपात था। इस प्रकार की उन्नति का योरुप के व्यवसायिक केन्द्रों पर अधिक प्रभाव पड़ा। उस समय डेन्मार्क, हालैंड और स्विजरलैंड नामक देश अपने-अपने व्यवसाय के लिये अधिक प्रसिद्ध थे। इस प्रकार की उन्नति से जर्मन किसानों को भी लाभ पहुचा। किन्तु पूर्वी जर्मन वाले क्षेत्र के किसानों को इससे हानि पहुंची। इसका कारण यह था कि इस क्षेत्र में अनाज और आलू की उपज अधिक होती थी। उस समय इन फसलों की माग बाजारों में अधिक न थी। पश्चमी और मध्यवर्ती जर्मनी के किसानों की दशा अच्छी थी। इसका कारण यह था कि इन क्षेत्रों के लोग पशु पालते थे। इन पशुओं से किसानों को अधिक लाभ पहुँचता था। दूसरा कारण यह भी था कि इन क्षेत्रों के किसान लोग चुकन्दर की खेती करते थे। जिसकी उस समय की आवश्यकता के अनुसार खपत अधिक होती थी। यह लोग चुकन्दर को अपने पशुओं को खिलाते भी थे। तीसरा कारण यह था कि पूर्वी योरुप से जो मजदूर लोग इन क्षेत्रों में आकर बस गये थे उनसे यहां के किसानों को सहायता मिलती थी। यह लोग यहां के खेतों में मजदूर के रूप में कार्य करते थे। इसी प्रकार से विश्व के भिन्न-भिन्न देशों में कृषिसम्बन्धी उन्नति होती रही।

इंगलैंड में कृषिसम्बन्धी विद्रोह:—

इस देश में भी शेष योरुप की भांति कृषि संगठन जमींदारी प्रणाली की तरह था। ग्रामों में खेत बने रहते थे। एक गांव दूसरे गांव से अलग होता था। गांवों में घर एक दूसरे की सुरक्षा हेतु गुच्छों की भांति रहते थे। जो चारागाहों, जोती हुई भूमि और झाड़ियों आदि द्वारा घिरे होते थे। खेती भी सार्वजनिक रूप से होती थी। इस प्रकार की खेती से ग्रामीण लोगों की रक्षा उस समय भी होती थी जब कि फसलें आदि सूख जाती थीं या किसी कारण वश नष्ट हो जाती थी। पशु भी पाले जाते थे। इनसे किसानों को दूध और मांस मिलता था। खेतों में डालने के लिये खाद मिलती थी। खेतों को जोतने के लिये बैल मिलते थे। यहां के जंगलों पर भी लोगों का सार्वजनिक अधिकार होता था। इन जंगलों में किसानों को जलाने के लिये लकड़ियां मिलती थीं। यह लोग जंगल की लकड़ियों से अपना घर भी बनाते थे। इसी लकड़ी से खेती सम्बन्धी औजार भी बनते थे। उस समय के किसान लोग अपने कामों के लिये बर्तन भी लकड़ी ही के बनाया करते थे। कृषि सम्बन्धी जमींदारी प्रणाली इंगलैंड में कुछ समय तक उन्हीं दशाओं में चलती रही जिन दशाओं में इसका प्रारम्भ हुआ था। जब इस देश की जनसंख्या में वृद्धि हो गई और व्यवसायिक सम्बन्धी उन्नति हुई तो इस प्रकार की कृषि-प्रणाली में परिवर्तन होना भी आवश्यक हो गया। बाजारों की संख्या में वृद्धि हुई। मार्गसम्बन्धी साधनों में भी विकास हुआ। खेती की स्थायी खपत के आधार पर होना बन्द हो गया। व्यवसायिक सम्बन्धी फसलें पैदा की जाने लगी। फसलों को उनके भूमि और जलवायु सम्बन्धी वातावरण के अनुसार बोया जाने लगा। किन्तु कृषि-सम्बन्धी उन्नति उसी दशा में हुई जब कि इसके पुराने साधनों को नये साधनों द्वारा बदल दिया गया। लोगों ने आन्दोलन करना आरम्भ कर दिया कि भूमि का उपयोग व्यक्ति गत ढंग पर किया जाय। इङ्गलैंड के लोगों ने यह भी इच्छा प्रकट की कि गांव के कृषकों को जो खेत सामूहिक रूप से मिलता था इस प्रकार की प्रणाली को हटा दिया जाय। उनका यह भी कहना था कि इस प्रणाली द्वारा कृषि सम्बन्धी उत्पादन को हानि पहुंचाती है। इस प्रकार के आन्दोलन के बढ़ने के कई कारण थे। पहला कारण यह था कि एडवर्ड प्रथम के समय में जमींदारी संगठनों की सब से अधिक उन्नति हुई। फिर भी

दोनों की दशा में परिवर्तन हो रहे थे। दूसरा कारण यह था कि भूमि एक लाभदायक साधन के रूप में बन गई थी। तीसरा कारण यह था कि भूमि मालिकों के सीरसम्बन्धी काम मजदूरों से जबरदस्ती लिया जाता था। इन लोगों की मजदूरी भी निजी सेवाओं के नाम पर नहीं मिलती थी इस तरह लोगों से बेगार ली जाती थी। उस समय की सरकार ने इस सम्बन्धी की प्रणाली के रूप को बनाये रखा किन्तु इस प्रणाली का आधार कमजोर होता चला गया। धीरे धीरे जोतने के लिये भूमि लोगों को खेत के रूप में मिलने लगी। किसानों से इस प्रकार की भूमि का लगान लिया जाने लगा। इस प्रकार की प्रणाली का उसी समय आरम्भ किया गया था। जब जमींदारी या भूमि के मालिकों ने गांव के खेतों से अपने-अपने सीर सम्बन्धी अधिकारों को हटा लिया। इस प्रकार वाले शेष खेतों को एक में मिला कर घेर दिया गया। ये लोग अपने असामियों द्वारा इन खेतों में खेती कराते थे। कृषि की उन्नति के लिये जंगलों को साफ करके नये-नये खेत बनाये गये। जिस भूमि पर किसानों का सार्वजनिक सम्बन्धी अधिकार था या जो भूमि योग्य न थी उस भूमि को सीर के रूप में बना दिया गया। व्यवस्थापिका द्वारा स्वीकृत विधान और सार्वलौकिक नियम के अनुसार इस प्रकार की भूमि जमींदारों के अधिकार में रहती थी। किसान लोग जो साधारण अधिकारों का उपभोग अपने-अपने खेतों पर करते थे वह सब इन्हीं जमींदारों की आज्ञा से होता था। किसान लोग इस प्रकार की कृपा से संतुष्ट न थे। किन्तु कभी-कभी जमींदारी प्रणाली द्वारा किसानों की नई-नई आवश्यकताओं की पूर्ती होने में सहायता भी मिलती थी। भूमि विषयक साझीदारों के खेतों में जब कृषि सम्बन्धी उपज कम होने लगी तो वे राजी हो गये कि उनके खेतों को चरागाह में परिणित कर दिया जाय। निस्सदेह यह एक प्रकार का कठिन कार्य था इसका केवल एक यही सरल साधन था कि इस प्रकार की भूमि को छोड़ दिया जावे और चराई वाले क्षेत्रों को फसलों की उपज के लिये जोत लिया जावे। इस प्रकार का उपाय गांव के साझीदारों द्वारा नहीं हो सकता था। छोटे-छोटे खेतों को जो १५ एकड़ के थे समाप्त कर दिया गया। नये-नये चरागाहों को जोत कर खेत बनाया गया। इसका कारण यह था कि भूमि की उपजाऊ शक्ति में कमी आ गई थी। १४वीं शताब्दी में योरुप में बड़ी बड़ी विघ्न बाधायें हुई उसी समय काली मौत नामक बीमारी का (ब्लैकडेथ) भी प्रकोप हुआ। यह बीमारी योरुप के पूर्वी भाग से होती हुई अगस्त १३४८ ई० में इङ्गलैंड में भी पहुँची। इस बीमारी ने यहां की लगभग आधी जन-संख्या को नष्ट कर दिया। किसानों और मजदूरों में भी बहुत कमी आ गई। खेतिहर भूमि का अधिकतर भाग बिना खेती के ही पड़ा रहता था। सरकार भी उन लोगों को जो पशु पालने का व्यवसाय करते थे खेतों के प्रयोग के लिये मजबूर किया था। १३५०-५१ ई० में मजदूर सम्बन्धी नियम फिर से प्रचलित किया गया। इस प्रकार का नियम भी काली मौत के प्रकोप सम्बन्धी प्राकृतिक प्रभाव को न रोक सका। इस समय जो कृषि सम्बन्धी सगठन थे वे डगमगा गये। जनसंख्या में कमी होने के कारण लोगों के पास भूमि भी अधिक हो गई। भूमि के मालिकों ने भी अपनी-अपनी भूमि को भिन्न-भिन्न करों पर लोगों को दे दिया। इस बीमारी के कारण से जो मनीएं लोग मर गये थे, या बीमारी के भय के कारण भाग गये थे या जिन्होंने भूमि को छोड़ दिया था। इस प्रकार की भूमि को सम्पत्ति शाली लोगों ने ले लिये। १३८१ ई० में इङ्गलैंड में किसानों का एक विद्रोह हुआ। इसमें किसानों ने यह कहा था कि दुष्टता का बहिष्कार होना चाहिये। इन लोगों ने जमींदारों का न्यायालय सम्बन्धी कागजों को भी नष्ट करने का प्रयत्न किया था। इसका कारण यह था कि उस समय के भूमि मालिकों की पदवियां और उनकी सामाजिक स्थिति इन्हीं कागजों में लिखी रहती थीं। किसान सम्बन्धी आन्दोलन बराबर बढ़ता रहा। टूडरों के काल से ही व्यवसायिक उद्योग धंधों को सामाजिक जीवन में स्थान मिल गया। इससे कृषि को हानि पहुची। इसका मुख्य कारण यह था कि उस समय खेत का व्यवसाय केवल धन उपार्जन के आधार पर होता था। भूमि भी नये भूमि मालिकों

को दे दी गई थीं, जो अधिक लाभ के इच्छुक थे। भूमि मालिकों ने यह विचार किया कि बड़े-बड़े खेत बनाये जायें। उनके लगानों की दर भी अलग-अलग रखी जावे। इस प्रकार से खेतों का मूल्य भी बढ़ जावेगा और धन का उपार्जन भी अधिक होगा। भूमि मालिकों और धनी किसानों ने छोटे-छोटे लोगों की भूमि को ले ले कर के अपनी सम्पत्ति को बढ़ाने लगे। इन कारणों ने व्यवसाय सम्बन्धी एक सामान्य आन्दोलन को जन्म दे दिया। खेती में कुछ लाभ न देख कर लोगों की मनोवृत्ति उद्योग धंधों की तरफ गई। इस प्रकार के आन्दोलन से गांव के खेतों और छोटे छोटे भूमि मालिकों को हानि होने का भय हो गया। कपड़ा बनाने वालों ने ऊन की मांग की। अब लोग खेती की अपेक्षा भेड़ों को पालना अच्छा समझने लगे। इसका कारण यह था कि भेड़ों का पालना अब खेती से अधिक लाभ दायक हो गया था। भेड़ों के चराने के लिये बड़े बड़े चरागाहों की आवश्यकता हुई। इससे छोटे-छोटे भूमि मालिकों को अधिक हानि पहुँची। वे लोग इस बात के लिये बाध्य किये गये कि वे अपनी भूमि को करों पर उठा दें। इसका प्रभाव अभी गांव के खेतों पर न पड़ा। ग्रामीण किसान अभी सुरक्षित थे। इसका कारण वहां का सार्वजनिक अधिकार सम्बन्धी नियम था। इस नियम का बिना आपस के मेल मिलाप के बहिष्कार करना कठिन था। किन्तु व्यवसायिक आन्दोलन के कारण इन लोगों को भूमि छोड़ने के लिये कहा जाता तो यह लोग खेतिहर भूमि को चरागाह बनाने के लिये दे देते। इस प्रकार से ट्यूडर सरकार को यह भय उत्पन्न हो गया कि खेतों को चरागाह बनाने से अनाज की उपज कम हो जायगी। लोग भूखों मरने लगेंगे। इस कारण सरकार को यह नियम बनाना पड़ा कि खेतिहर भूमि को चरागाह न बनाया जावे। यह भी आज्ञा दे दी कि जिस खेतिहर भूमि को चरागाह बना लिया गया है, उसको जोत कर फिर खेत बना लिया जावे। इस नियम का पालन लोगों ने बहुत थोड़े अंशों में किया। १५६० ई० तक इस प्रकार के विद्रोह समाप्त हो गये।

१६वीं शताब्दी में एक नई चीज देखने में आई। इस काल में निम्न श्रेणियों के लोग और दब गये किन्तु औसत दर्जे के लोगों की उन्नति हुई। कृषि की भी कम उन्नति हुई। १६वीं और १७वीं शताब्दी में बराबर परिवर्तन होते रहे। जार्ज तीसरे के काल में ब्रिटिश फार्मिंग के लिये विद्रोह हुआ। इस काल में कृषि सम्बन्धी बहुत सी पुस्तकें भी लिखी गईं। उस समय के कृषक विद्वानों ने खेती की उन्नति की तरफ अधिक ध्यान दिया। जार्ज तीसरे के समय में व्यवसायिक विद्रोह हुआ। इस विद्रोह से देश के जीवन में एक परिवर्तन आ गया। देश की जनसंख्या और सम्पत्ति का भी विभाजन हो गया। १७६० ई० में कृषकों की संख्या कुल आबादी की ६६ प्रतिशत थी। १९२८ ई० तक इस प्रकार के लोगों की संख्या कुल आबादी की केवल १० प्रतिशत ही रह गई। आबादी भी दक्षिणी भाग में कम होने लगी। लोग अधिकतर इस देश के उत्तरी भाग में कोयला और लोहा वाले क्षेत्रों में बसने लगे। बड़े-बड़े कारखाने खुलने लगे। छोटे-छोटे उद्योग धंधों को करने वाले लोग आकर नगरों में बस गये। इस प्रकार से नगरों की जनसंख्या बढ़ गई। इन नगरों में खाद्य सम्बन्धी बड़े-बड़े बाजार भी खुल गये। लोगों के रहन सहन में भी उन्नति हो गई। इस देश के लोगों का मुख्य भोजन १७६० ई० में राई और ओट (जई) था। यहां के लोग कभी कभी मांस का भी स्वाद ले लिया करते थे। १९२८ ई० की नई आबादी ने खाने के लिये गेहूँ और मांस की मांग उपस्थित की। पशु भी अधिक संख्या में पाले जाने लगे। उन लोगों को दूध और मांस मिलने लगा। कपड़ा बनाने के लिये ऊन भी मिलने लगा। गाय और भैंसों की संख्या में वृद्धि हो गई। इनका मांस भी लोगों को खाने के लिये दिया जाने लगा। १७१० ई० में इन पशुओं से ३७० पौंड मांस मिलता था। जब कि १७९५ ई० तक लोगों को ८०० पौंड मांस खाने को मिलने लगा। भेड़ का मांस भी २८ पौंड से बढ़ कर ८० पौंड हो गया। आर्थर यगका कृषि सम्बन्धी नियम ध प ।ा गया। इनका कहना था कि जिन कारखानों में भोजन का सामान बनाया जाता है, उनकी उन्नति के लिये बड़े-बड़े किसानों और

धनी भूमि मालिकों की आवश्यकता है। लोगों ने इस नियम को सरलता पूर्वक स्वीकार कर लिया। इस कारण से इस नियम को अधिक सफलता मिली धनवान लोगों ने इस सम्बंध में अधिक रुपया व्यय किया खेतों के किनारे किनारे-मार्ग बनाये गये। खेतों में बोने के लिये अच्छे-अच्छे बीज लाये गये। उन खेतों में उत्तम श्रेणी वाली खाद डाली जाने लगी। इस प्रकार से खेतों में अनाज आदि की अच्छी उपज होने लगी। १८४१ ई० में १,६५,००,००० लोगों को भोजन देश की ही उपज से मिलने लगा। इस व्यवसायिक उन्नति के काल में गांव के खेत सम्बन्धी प्रणाली का अंत हो गया। १७६० और १८२० ई० में सार्वजनिक अधिकार वाले चरागाहों का क्षेत्र ४०,००,००० एकड़ भूमि था। इङ्गलैंड की सरकार इन चरागाहों को खेतों के रूप में परिणित कर दिया। इन खेतों को व्यक्तिगत अधिकार के आधार पर किसानों को दे दिया गया।

कृषि सम्बन्धी नीति—प्राचीन समय से लेकर वर्तमान काल के लोगों का जीवन अधिकतर कृषि पर ही निर्भर रहा है। कृषि की उन्नति की तरफ सरकार का विशेष ध्यान भी रहता था। देश के विद्वान लोग इसकी उन्नति पर सदा विचार किया करते थे। इसका कारण यह था कि इसके द्वारा लोगों को भोजन मिलता था। व्यवसाय के लिये कच्चा सामान भी खेती ही द्वारा प्राप्त होता था। इस सम्बन्ध में प्रायः तीन प्रकार की सरकारी नीति देखने में आती है। पहला यह है कि कृषि की उन्नति से सामाजिक शक्ति बढ़ती है। दूसरी नीति यह रहती है कि कृषि सम्बन्धी कच्चा सामान बाहर से न मंगाया जाय। तीसरी नीति यह देखने में आती है कि देश कृषि उत्पादन में स्वालम्बी रहे। जो देश इस प्रकार की नीति का पालन करता है। वह सदा कृषि सम्बन्धी उन्नति की आवश्यकताओं की पूर्ती किया करता है। वह देश यह भी नहीं देखता है कि इसके बढ़े हुये सामान को दूसरे देशों में भेज कर व्यापार द्वारा धन का उपार्जन किया जाय। वर्तमान समय में यह आशा की जाती है कि औद्योगिक और कृषि सम्बन्धी अधिक विकास होगा इसका कारण यह है कि यातायात सम्बन्धी कठिनाईयों में बहुत कमी आ गई है। विज्ञान सम्बन्धी ज्ञान की भी वृद्धि हो गई है। बड़े-बड़े वैज्ञानिक विकास हो गये हैं। वर्तमान जगत में यह भी देखा जाता है कि जो छोटे-छोटे देश हैं। वे एक ही ढंग के व्यवसाय और उत्पादन के लिये बाध्य हो जायेंगे। जो देश भौगोलिक विचार से बड़े-बड़े माने जाते हैं तथा जिनमें भिन्न-भिन्न प्राकृतिक साधन भी उपलब्ध हैं। वे देश अधिक लाभ में रहेंगे। उनमें स्वालम्बी दशा अधिक अंश में पायी जायेगी। इस सम्बन्ध में ब्रिटिश द्वीप समूहों का एक अच्छा उदाहरण मिला है। इन द्वीपसमूहों में औद्योगिक उन्नति चरम सीमा पर पहुँच गई है। इन द्वीपों में कृषिसम्बन्धी दशा विपरीत ही देखने में आती है। खेती की इन द्वीप समूहों में बहुत कम उन्नति हुई है। इन द्वीपों में आर्थिक साधनों का भी विकास हुआ है। यहां पर कोयले की बड़ी-बड़ी खाने पाई जाती है। बड़े-बड़े कारखानों की भी स्थापना हुई है। व्यापार भी अधिक उन्नति पर है। इन सब कारणों से इन द्वीप समूहों में कृषिसम्बन्धी उन्नति की नीति रखना भी बड़ा कठिन है। ग्रेटब्रिटेन ऐसा देश जो अपनी व्यवसायिक उन्नति के लिये विश्व में प्रसिद्ध है। खाद्य सम्बन्धी सामाग्रियों के लिये उसको अन्य देशों पर निर्भर रहना पड़ता है। दूसरे विश्व युद्ध में इसको यह विश्वास हो गया कि केवल देश के धन और व्यापार पर गर्व करना व्यर्थ है। यहां पर कृषि सम्बन्धी उन्नति भी होना चाहिये। जिससे युद्ध के दिनों या किसी अन्य परस्थित में खाद्य सम्बन्धी कठिनायी अधिक न हो। अब ग्रेट ब्रिटेन में भी कृषि सम्बन्धी उन्नति हो रही है। वहां पर इस बात का प्रयत्न भी किया जा रहा है कि देश को कम से कम अपने खाने वाले सामानों के लिये दूसरे देशों पर न निर्भर रहना पड़े। इन्हीं कारणों से आज कल वहां की सरकार की भूमि सम्बन्धी नीति अधिक उदार हो गई है। कृषिसम्बन्धी शिक्षा के लिये बड़े-बड़े स्कूल और विश्व विद्यालय भी खोले गये हैं। कृषि वाले मजदूरों की रक्षा के लिये नये-नये नियम भी बन गये हैं। पशुओं के पालने का भी प्रोत्साहन दिया जाता है। किन्तु लड़ाई के पहिले ब्रिटेन ने कृषि की उन्नति

की तरफ अपना अधिक ध्यान नहीं दिया था। उसने यह सोचा था कि कृषिसम्बन्धी व्यवसाय की अधिक उन्नति नहीं हो सकती है। जर्मनी में व्यवसायिक उन्नति केवल इसके पश्चिमी प्रांतों में हुई। यह उन्नति १९वीं शताब्दी के अंत ही में हो सकी थी। इस का पूर्वी भाग अपनी कृषिसम्बन्धी उन्नति के लिये प्रसिद्ध था। उस समय कृषि के प्रतिनिधियों को जर्मनी राज्य में एक अच्छा स्थान दिया जाता था। उनमें से पुरशन फुंक्कर एक था। यह एक सैनिक और जमींदार दोनों था। उस समय यह इस लगन के साथ खेती आदि कार्य करता रहा था कि उससे वह लड़ाई के दिनों में अपने देश वासियों को खाने के लिये अन्न दे सके। जर्मनी के पश्चिमी देशों की व्यवसायिक उन्नति के कारण फक्कर साहब की यह नीति न चल सकी। पश्चिम वाले धनी व्यापारियों का बोल बाला भी जर्मनी के पूर्वी देशों पर हो गया यद्यपि जर्मनी की यह नीति थी कि कृषि सम्बन्धी उन्नति का विकास किया जाये। जर्मनी को खाद्य सामग्री और कच्चा सामान लाभ दायक भावों में न मिलता था। जर्मन के लोग जो सामान बाहर से मंगाते थे। उनमें उनको लाभ न होता था। अब यहां के लोगों ने यह सोचा कि कृषि की उन्नति की जावे और देश की खपत के लिये अनाज की उपज के साधन बढ़ावे जावें। जर्मनी की यह नीति एक अस्थायी रूप में रही वर्सेलीज़ का सन्धि के अनुसार जब जर्मनी की सीमायें निर्धारित की गई। तो इस देश के कृषिसम्बन्धी साधनों में बहुत अधिक कमी हो गई। देश के उपजाऊ क्षेत्र इसकी सीमा से बाहर निकल गये। उस समय ऐसा मालूम होता था कि आर्थिक दशा के सुधार के लिये जर्मनी की व्यवसायिक तथा वाणिज्य सम्बन्धी उन्नति होना अनिवार्य है। यह एक ऐसा कारण था जिसके लिये जर्मनी को पुन. इस प्रकार के देशों से सम्बन्ध स्थापित करना पड़ा। जो उस समय कृषिसम्बन्धी विकास के लिये प्रसिद्ध थे। इसके लिये उस समय केवल रूस ही योग्य था। इस देश में प्राकृतिक साधनों की कमी न थी। भौगोलिक दृष्टि कोण से भी यह एक अच्छा देश था। रूस अपनी आर्थिक दशा के कारण विवश था। वह दूसरे देशों को सहायता न कर सकता था। उस समय रूस की आबादी में भी वृद्धि हो रही थी। लोगों के रहन-सहन का ढंग भी ऊँचा हो रहा था। इस कारण से रूस अपनी ही समस्या को सुलझाने में लगा हुआ था।

यह प्रत्यक्ष दिखलाई पड़ता है कि आगामी वर्षों में रूस में कृषिसम्बन्धी एक महान उन्नति होगी। इस उन्नति के सामने व्यवसायिक विकास चाहे जो कुछ भी हो ढंक जायेगा। इसमें संदेह नहीं की मुख्य रूस में यातायात सम्बन्धी मार्गों में अधिक उन्नति किया है। बड़े-बड़े कारखाने खोले गये हैं। वाणिज्य सम्बन्धी भी अधिक विकास हुआ है। इस प्रकार के विकास प्राय: १९ वीं शताब्दी के अंत में और २० वीं शताब्दी में विश्व युद्ध के पहले हुये हैं। यद्यपि १९०५ ई० में कज़ारिस्ट सरकार को इस बात के लिये बाध्य कर दिया था। कि किसानों के आराम के लिये कुछ किया जावे किन्तु रूस में कृषिसम्बन्धी विकास के लिये बहुत कम काम किया गया। इसके बाद स्टोलीपिन के समय में कृषि की कुछ उन्नति हुई। इनके समय में कृषिसम्बन्धी साधनों का विकास किया गया। उस समय रूस में जो कुछ भी खेती की उन्नति हुई वह साईबेरिया के उपनिवेशों के कारण थी। विश्व के प्रथम युद्ध के कारण इस प्रकार की उन्नति में कुछ विघ्न पड़ा। उसी समय १९१७ ई० में सुरू विद्रोह भी हो गया। जिसके फल स्वरूप भूमि जो पहले बड़े-बड़े जमींदारों के आधीन थी। वह किसानों को बांट दी गई। १९१८-२१ ई० का काल रूस में एक झगड़ा का समय था। इसके बाद सोवियत सरकार ने रूस के आर्थिक जीवन को इसके अपने साधनों पर पुन: निर्माण किया। इसके अनुसार किसानों के साथ उदारता की नीति बर्ती गई। ताकि वे अधिक से अधिक खेती वाली फसलों की उपज कर सकें। इसका फल यह निकला कि जो धनी किसान थे। वे और धनी हो गये। इस कारण से वहां के साम्यवादी दल को और भय भीत बना दिया। इस कारण १९२८ ई० में कृषिसम्बन्धी सामोहिक नीति पर और अधिक जोर दिया गया। बड़े-बड़े क्षेत्र वाले सामूहिक खेत बनावे गये। इस

प्रकार के खेत कृषि उत्पादन की वृद्धि के लिये बने। इन खेतों की व्यवस्था करना सरकार के ऊपर था। लोगों को प्रदर्शन द्वारा यह बतलाया गया कि वे किस प्रकार से इन खेतों को जोते और बोयें। निर्धन किसानों को उनके लाभ हेतु नौकरियां भी दी गईं। इसके अलावा रूस कारखानों की भी स्थापना कर रहा है। उसकी नीति कारखानों का विकास करना भी है। इसमे संदेह नहीं है कि कुछ दिनों मे इसके द्वारा रूस आर्थिक दृष्टि कोण से स्वावलम्बी हो जायेगा। फिर भी समस्त रूस की जनसंख्या का अधिक भाग खेती के कामों में लगा हुआ है। इससे यह पता चलता है कि रूस की अभी वर्षों तक खेती के विकास की ही नीति रहेगी। इटली देश ने अभी हाल ही मे एक योजना बनाई है। जिसके अनुसार खेती की उपज बढ़ाई जायेगी। इटली मे इस योजना के अनुसार कार्य हो रहा है। कृषिसम्बन्धी शिक्षा पर अधिक जोर डाला गया है। कृषिसहकारी समितियों की भी स्थापना की गई है। ग्रामो मे लोगों को आर्थिक सहायता देने के लिये भी एक प्रणाली बनी हुई है। लड़ाई के समय से ही इस बात का प्रयत्न हो रहा है कि अन्न सम्बन्धी उपज में वृद्धि हो जावे। ताकि अतर राष्ट्रीय व्यापार मे उसका एक मजबूत स्थान रहे। इस देश मे आगामी वर्षों के लिये एक दूसरी भी योजना बनाई जा रही है। इस योजना के अनुसार कई लाख एकड़ भूमि और खेती 'योग्य बनाई जायेगी। जिस भूमि मे खेती की जा रही है। उसमें और अधिक कृषिसम्बन्धी विकास किया जावेगा। इस योजना का मुख्य ध्यय यह है कि इटली को गेहूँ दूसरे देशों से न मंगाना पड़े। यद्यपि यह मान लिया गया है कि कनाडा या किसी अन्य नये देशों से गेहूँ मगाया जायेगा। तो उसके लिये बहुत कम मूल्य देना पड़ेगा। इस योजना का यह भी ध्यय है। कि यहा की जनसख्या बढ़ गई है। जिसके कारण यहां मजदूरों की सख्या मे भी वृद्धि हो गई है। इन मजदूरों को बढ़ी हुई वस्तु के उत्पादन मे भी नहीं लगाया जा सकता है। इन्हीं लोगों से गेहूँ की उपज के बढ़ाने के लिये काम लिया जा रहा है। इस देश की भी नीति इस बात पर जोर देती है कि देश को अन्न के लिये स्वालम्बी रहना चाहिये। इससे यह मालूम होता है। कि इटली मे भी अभी अन्न उपार्जन सम्बन्धी नीति का पालन किया जायेगा।

अगर पश्चिमी योरुप की कृषिसम्बन्धी तुलना डेन्मार्क से की जावे। तो डेन्मार्क की गणना एक खेती वाले देशों मे होती है। इसमे संदेह नहीं है कि डेन्मार्क मे औद्योगिक साधनों की कमी है। यही कारण है कि गत ५५ वर्षों मे इसके समीपवर्ती देशो में व्यवसाय सम्बन्धी उन्नति अधिक हुई है। किन्तु डेन्मार्क बड़ी चतुरता और परिश्रम के साथ अपने देश के कृषिसम्बन्धी विकास मे लगा रहा। इस नीति के कारण डेन्मार्क के लोगो को अधिक लाभ पहुँचा है। इस देश मे कृषिसम्बन्धी साधनो की अधिक उन्नति हुई है। कृषिसम्बन्धी शिक्षा भी लोगों को एक सुन्दर ढंग से दी जाती है। डेन्मार्क की सरकार ने किसानों की आवश्यकताओं की पूर्ति का अधिक ध्यान रक्खा है। किसानों को यातायात सम्बन्धी सुविधायें भी प्राप्त हैं। इसके अलावा यहां के किसानो को धन और व्यवसाय सम्बन्धी सहायता भी दी जाती है। अभी कुछ समय हुआ जब कि डेन्मार्क के नगरों की जनसख्या में अधिक वृद्धि हो गई है। इस प्रकार की वृद्धि उद्योग धंधो की उन शाखाओं में हुई है। जिन मे कृषिसबंधी उपज की अधिक खपत होती है। इसका कारण यह है कि भूमि विषयक साधनो मे बढ़ी हुई जनसख्या की खपत नहीं हो सकती है। क्योंकि इस प्रकार के साधनों में इनके लिये कोई स्थान नहीं है। इस प्रकार की समस्या को सुलझाना सरकार का काम था। इसको देखते हुये यह पता चलता है कि डेन्मार्क की खेती नये बसे हुये देशों से भिन्न है। यह देश अपना कच्चा माल अधिकतर बाहर भेजता है। अन्य देशों में डेन्मार्क की अपेक्षा कृषिसम्बन्धी विकास कम हुये हैं। किन्तु इन देशों मे कृषिसबंधी नीति का एक निश्चित रूप पाया जाता है। इसके लिये योरुप के बाल्टिक वाले क्षेत्र (लैटविया और एस्थोनिया) और डैन्यूब के क्षेत्र प्रसिद्ध हैं। बाल्टिक के देशों मे भूमि सबंधी सुधार हुये हैं। इस प्रकार के सुधार विश्व की लड़ाई

के बाद में हुये। इसके अनुसार किसान अपनी भूमि का मालिक समझा जाने लगा। भूमि संबंधी इस प्रकार का सुधार आर्थिक दृष्टि कोण से नहीं किया गया। इस प्रकार के सुधार में सामाजिक और राजनैतिक संबंधी विकास का ध्यान रखा गया था। इस सुधार का परिणाम यह निकला कि जो अन्न बाहर भेजा जाता था उसकी पैदावार कम की जाने लगी। किसान इसका उपयोग भी सहायता से करने लगे। कुछ समय के बाद इन देशों को यह पता लगा कि इस प्रकार का सुधार उनके लिये हानिकारक है। गेहूँ का बाहर जाना भी कम हो गया। इसका विपरीत प्रभाव बाल्टिक के देशों के व्यापार पर पड़ा। अब इन देशों के लोग कृषि-संबंधी उपज को बढ़ाने का प्रयत्न कर रहे हैं। रूमानिया और चेकोस्लोवेकिया में विपरीत दशा पाई जाती है। यह देश बड़े-बड़े राज्यों में बटा हुआ है। कृषि की उन्नति के हेतु किया गया है। इन देशों में किसानों का भी भली भांति संगठन पाया जाता है। यहां के किसानों को आधुनिक ढग पर कृषि सबंधी शिक्षा दी जाती। बल्गेरिया और यूगोस्लेविया में भूमि संबंधी सुधार की समस्या कम जटिल है। इन दोनों देशों में भी कृषिसबंधी शिक्षा की उन्नति हो रही है। इसके अलावा ये देश व्यवसायिक खेती के लिये भी प्रसिद्ध हैं। चेकोस्लोवेकिया और हंगारी नामक देशों में इस बात पर ध्यान दिया जा रहा है कि कृषि में राष्ट्रसबंधी एक सतुलित नीति रहे। योरुप देश के अलावा हम देखते हैं कि कृषिसंबंधी उपार्जन पर दूसरे देशों में अधिक जोर दिया जाता है। यह चीज नये बसे हुये देशों में अधिक पाई जाती है। ऐसे देशों में जनसख्या भी कम पाई जाती है। धन भी सीमित रहता है। व्यवसाय सम्बन्धी कच्चे सामानों की उपज भी कम होती है। किन्तु फिर भी यह लोग अपने सामानो को विश्व के बड़े औद्योगिक केन्द्रों में भेज दिया करते हैं। इस प्रकार के देशों में अर्जेंटाईना अधिक प्रसिद्ध है। इस देश में खेती सम्बन्धी अधिक विकास हुआ है किन्तु किसानों की सहायता के लिये कोई भी योजना नहीं बनाई गई है। कृषिसम्बन्धी कोई कारखाना भी नहीं है। ब्रिटिश राज्यों में इसमें विपरीत दशा पाई जाती है। इस प्रकार के राज्यों ने विश्व युद्ध के दिनों में या उसके पश्चात् अपनी नीति का एक अच्छा परिचय दिया है। इन राज्यों ने कृषिसबंधी अच्छा संगठन किया और भूमि सम्बन्धी सुधारों में भी उदारता दिखलाई। इसी कारण से इन राज्यों में खेती की भी अधिक उन्नति हुई। इन राज्यों ने कृषि की उन्नति के हेतु यातायात सम्बन्धी सुविधायें को भी प्रदान किया। कृषि-विद्यालयों की भी स्थापना हुई। प्रेक्टिकल प्रणाली द्वारा लोगों को कृषिसम्बन्धी शिक्षा भी दी जाती थी। कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड और दक्षिणी अफ्रीका के देशों की वाणिज्य संबंधी स्थिति अच्छी है। इस का कारण यह है कि इन देशों की सरकार उन सामानों की परीक्षा करने के लिये जो यहां से बाहर भेजे जाते हैं एक प्रकार की सहायता देती है। इस का प्रभाव व्यापार सबंधी ढगों पर पड़ता है जिससे सामानों की रक्षा होती रहती है। इसके अलावा इन देशों ने और भी कई एक प्रभाव शाली लोगों को अपनाया है। जिसके द्वारा ऐसे देशों में विश्व के बाजार में अपनी कृषि उपार्जन सबंधी स्थिति को मजबूत कर लिया है। इनदेशों ने सहकारी समितियों का भी संगठन किया है। इन देशों ने निरीक्षण परिषदों की भी स्थापना की है जो कृषि सबंधी व्यवसाय का निरीक्षण करते रहते हैं। इन देशों में गेहूँ की रक्षा के लिये व्यवसायिक लोगों के संघ की भी स्थापना हुई है। अनिवार्य सहयोग के लिये परीक्षा संबंधी नियम भी बने हुये हैं। कनाडा के प्रेरी प्रान्तों में गेहूँ की रक्षा और व्यापार के लिये गेहूँ सम्बन्धी सहकारी व्यवसायिक संघ खुला हुआ है। इससे युद्ध काल में अधिक लाभ पहुंचा था। लड़ाई के दिनों में गेहूँ यहां से सरलता पूर्वक दूसरे स्थानों को भेजा जा सकता था। कनाडा एक ऐसा देश है जो कृषि के लिये प्रसिद्ध है। खेती आदि का प्रबन्ध यहा की प्रांतीय सरकारों द्वारा होता है। यहां का कृषिसम्बन्धी संगठन भी बड़ा सुन्दर है।

संयुक्त राज्य अमरीका में कृषिसबन्धी नीति एक समान रूप से नहीं पाई जाती है। इस देश के प्रथम

१०० वर्ष के इतिहास से यह पता चलता है कि यह एक कृषक देश था। अगर राष्ट्र संबंधी उन्नति की तरफ प्रयत्न किया जाता था, तो उसमें भी कृषि की उन्नति संबंधी सहयोग की नीति रहती थी। घरेलू लड़ाई के समय में भी संयुक्त राज्य अमरीका की भूमि संबंधी उदार नीति थी। इस प्रकार की नीति से कृषि के व्यवसाय में सहायता मिलती थी। यह सब केवल इसी लिये किया जाता था कि देश के प्राकृतिक साधनों की उन्नति हो, और खेती का विकास हो। घरेलू लड़ाई के बाद संयुक्त राज्य अमरीका में भूमि संबंधी परिवर्तन हुये। संयुक्त राज्य अमरीका में रेल मार्गों के बनाने में उदारता दिखलाई। कृषि की उन्नति के संबंध में भी जल्दी की गई। उसी समय कृषि वाले विभागों की स्थापना हुई। इन विभागों के कार्य-क्षेत्र में भी विस्तार किया गया। कृषि विद्यालयों की स्थापना हुई। कृषिसंबंधी परीक्षा घरों का भी निर्माण किया गया। संयुक्त राज्य अमरीका की इच्छा राष्ट्र के औद्योगिक विकास के लिये थी किन्तु इसकी पूर्ति के लिये अभी उसके पास कोई एक निश्चित रूप वाली नीति न थी। यातायात संबंधी सुविधाओं के कारण व्यवसाय और कृषिसंबंधी उन्नति में सहायता मिली। देश में खाने वाले सामानों की कमी न रही। कच्चे सामानों से बाजार भरा रहता था। इसके कारण उद्योग धंधों की स्थापना में उन्नति हुई। कारखानों की भी स्थापना हुई। इसके बाद १८८७ ई० में मानजेर रेल मार्ग नियम पास हुये और इन्टर स्टेट कामर्स कमीशन की भी स्थापना हुई। इसके बाद कृषि संबंधी उन्नति नहीं हो सकी। इस कारण से कृषि संबंधी नयी-नयी समस्याओं का जन्म हुआ। अमरीका के किसानों की गणना उधार लेने वाले वर्गों में होती है। उनके संबंध में सरकार की कोई आर्थिक नीति न थी। जिसके अनुसार सामान आदि के भावों में कमी हो जाये। किसान लोग यह चाहते थे कि उधार उदारता पूर्वक दिया जावे किन्तु ब्याज की दर कम रहे। इसका यह विचार ग्रीनबैंक आन्दोलन के समय भी प्रकट किया गया था। यह आन्दोलन घरेलू लड़ाई बाद में हुआ था। किसानों ने अपने विचारों को उस समय भी प्रकट किया था जब कि इन्होंने (अमरीकन सरकार ने) उन साधनों का विरोध किया था। जो विश्व के दूसरे युद्ध के कारण रूप थे। इन सब का अमरीका की सरकार पर कुछ भी प्रभाव न पड़ा और इस प्रकार से कृषि को हानि पहुंचती रही। कुछ समय के बाद अमरीका की नीति में थोड़ा परिवर्तन हुआ। किसानों की विशेष आवश्यकताओं के लिये मशीनें बनाई गईं। इसके बाद किसानों की सुविधा के लिये १९१५ ई० कृषि सब उधार नियम पास किया गया। १९२३ ई० में अन्दर राष्ट्रीय उधार नियम भी पास हुआ। अमरीकन किसानों की बाजार सम्बन्धी शिकायतें भी थीं। किसानों का कहना था कि बाजारों की दशा कृषि-उपज के अनुसार हो। इस संबंध में संघ और राज्य की सरकारों द्वारा कई नियम बनाये। १९१३ ई० के नियम के अनुसार किसानों की उपज का निरीक्षण होने लगा। अनाज श्रेणियों में रखा जाने लगा। श्रेणी के अनुसार अनाज का भाव भी नियत होने लगा। १९२० ई० में जब फिर कृषि सम्बन्धी ग्लानि हुई तो किसानों ने फिर चिल्लाना आरम्भ कर दिया कि बाजारों के भाव में सुधार किया जावे १९२९ ई० की अमरीका की कांग्रेस ने इस बात को मान लिया कि बाजारों का भाव नियत कर दिया जाये और इसके लिये सरकारी आज्ञा निकाली जावे। फिर भी अमरीका सरकार के लिये इस प्रकार का नियम वहां की बाजारों पर लागू करना कई वर्षों तक सम्भव न हो सकेगा। इसका केवल एक मुख्य कारण विश्व के बाजारों का संघर्ष है।

कृषिसम्बन्धी क्रय-विक्रय

कृषि इतिहास—कुछ वर्षों से यह प्रश्न चल रहा है कि कृषिसंबंधी और जो कृषिसंबंधी उपज नहीं है इन दोनों पैदावारों के बीच एक परिवर्तन शील विभाजक रेखा होनी चाहिये। अगर कोई किसान भेड़ या कार्न को बेच कर इसके बदले में तावा या अच्छी मिट्टी चाहता है तो उनके सामानों को धातु या लकड़ी के औजारों से बदलना कठिन होगा। नगरों में व्यापार सम्बन्धी सभ्यता का विकास हो गया है। इन नगरों में खाद्य पदार्थों के व्यापार का एक मुख्य रूप पाया जाता है। किन्तु गेहूँ, मसाले, सिल्क और मूल्यवान पत्थरों के बाजारों के ढंगों में कोई परिवर्तन नहीं है। खेती की उपज और छोटे पैमाने वाले व्यवसायिक उत्पादन में कुछ थोड़ा अन्तर मिलता है किन्तु यह अंतर केवल उनके वितरण वाले ढंगों में है। मिस्र, बेबीलान, भारतवर्ष, चीन, ग्रीस और रोम प्राचीन समय से ही अपने बाजारों के लिये प्रसिद्ध चले आ रहे हैं। इन देशों के इतिहास से पता चलता है कि इनके बड़े-बड़े नगरों द्वारा विदेश से व्यापार होता था। इन नगरों की जनसंख्या भी अधिक रहती थी। इनके इतिहासों से यह भी पता चलता है कि व्यापार में खाद्य और अन्य कृषिसंबंधी भाग अधिक रहता था। एथेन्स से दूसरे देशों को जैतून का तेल, अंजीर और शहद बाहर भेजा जाता था। एथेन्स एक कृषिक देश नहीं था। इस कारण से उसको अपनी अन्न संबंधी खपत का ५० प्रतिशत भाग बाहर से मगाना पड़ता था। उदाहरण के लिये उनके लिये गेहूँ दक्षिणी रूस से कृष्ण सागर के मार्ग द्वारा आता था। यह पता नहीं चलता है कि प्राचीन रूसी कृषक किस बाजार भाव पर अपना गेहूँ बेचते थे और उसके बदले में उनको क्या मिलता था। हमूराबी के कोड से यह पता चलता है कि २,३०० पूर्व क्राइस्ट ईसा से पूर्व के समय बेबीलन के लोगों का व्यापार उन्नति पर था। उस समय रुपये के स्थान पर सोना और चांदी का प्रयोग किया जाता था। बनिये लोग बैंक सम्बन्धी काम करते थे। उस समय गेहूँ, शराब, भेड़ और ऊन इस देश से बाहर भेजा जाता था। यह चीजें उस समय भी कृषि उपज के अन्तरगत मानी जाती थीं। मिस्र कई शताब्दियों तक अपने यहां से दूसरे पड़ोस वाले देशों को गेहूँ, कागज और तिलहन भेजता था। रोम का व्यापार भी प्रसिद्ध है। इसकी अधिक उन्नति रोम राज्य के प्रथम शताब्दी के बाद हुई। उस समय रोम में बड़ी सुन्दर-सुन्दर दूकानें थीं। खेती भी बहुत उन्नति पर थी। फुटकर और थोक दोनों प्रकार के व्यापार अपनी चरम सीमा पर पहुँचे हुये थे। आस-पास के देश भी रोम से मार्गों द्वारा मिले हुये थे। उस समय कृष्ण और लाल सागर रोम को झीलों के रूप में माने जाते थे। किसी को यह पता नहीं था कि ये दोनों बड़े-बड़े सागर हैं। पश्चिमी योरुप की बड़ी-बड़ी नदियां और नील नदी उस समय रोम के व्यापार सम्बन्धी मार्ग थे। पश्चिमी योरुप और मिस्र के देशों का व्यापार इन्हीं मार्गों द्वारा होता था। ऊँटों के काफिले दक्षिणी एशिया और उत्तरी अफ्रीका से हो कर आया जाया करते थे। भारत, अरब और योरुप के उत्तरी किनारे का व्यापार सागर के मार्गों द्वारा होता था। चीन, भारतवर्ष, अफ्रीका के उत्तरी, मध्यवर्ती और दक्षिणी और दक्षिणी भागों से, मध्यवर्ती एशिया, दक्षिणी रूस, जर्मनी, नार्वे, स्वीडन, ब्रिटेन, (गौल) और स्पेन देशों के साथ रोम के व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित थे। उस समय रोम की बाजारें दूकानों में धान, मूल्यवान पत्थरों और लकड़ियों की भर मार थी। रोम के बाजारों में सिल्क, अम्बर, और फर की भी कमी न थी। यह सब सामान यहां पर विश्व के हर एक देशों से बिकने के लिये आता था। इटली से यहां मुर्गियां, चौपाये, गेहूँ, जैतून और शराब बिकने के लिये आती थी।

मध्य काल के आरम्भ मे इस प्रकार के व्यापार का अंत कर दिया। इसका मुख्य कारण उस समय के लड़ाई झगड़े थे। जमींदारी प्रणाली का भी आरम्भ हो गया। लोगों मे विस्तृत दृष्टि कोण न रह गया। हर एक चीज सकुचित रूप से देखी जाने लगी समाज स्वावलम्बी भावना भी लोगों में आ गई। कृषिसम्बन्धी उपज वाले बाजारों का फिर स्थायी रूप हो गया। जब जमींदारी प्रणाली की अधिक उन्नति हुई तो उस समय लोग न तो अधिक सामान खरीदते थे और न बेचते थे। उस समय के नगर भी अधिकतर स्वावलम्बी होते थे। अगर जमींदार लोग खाने के लिये अधिक उन्नति का उपार्जन करते थे। तो भी इन लोगो को अपने कपड़ों, अन्य प्रकार के सामानो और औजारों के लिये दूसरे समुदायो पर निर्भर रहना पड़ता था। लोगों मे यह स्वावलम्बी भावना केवल थोड़े ही दिनों तक रही। पूर्वी देशों के जो मसाले और अन्य सुखदायक चीजे थी। वे धीरे-धीरे करके योरुप मे पहुंच गई। इस प्रकार से कृषि सम्बन्धी उपज के व्या ार की फिर उन्नति आरम्भ हो गई। उस समय के बड़े-बड़े मेलों में विदेशी सौदागर व्यापार करने योग्य माल खरीदते थे। इनको छोटे-छोटे बाजारों मे बेच डालते थे। या उनके बदले में अनाज, ऊन और शराब माल लेते थे। मध्य काल के समय मे समय-समय पर बड़े-बड़े और छोटे-छोटे मेले लगा करते थे। उस समय इस प्रकार के मेले सबसे अधिक मुख्य बाजारों के रूप मे होते थे। इन बाजारो में अधिकतर सामानो को लोग अदली-बदली किया करते थे। ऐसा लोग केवल अपना जमींदारों को कर देने के लिये करते थे। ऐसा करने पर भी कुछ वर्षों के बाद किसानो के पास इतना सामान बढ़ जाता था। कि वे लोग इसको स्थायी बाजार के भाव पर बेच देते थे। इस प्रकार से जो सामान यहाँ के लोगों को मिलता था उसको वे लोग उन व्यापारियों को देते थे। जो बड़े-बड़े मेलों मे जा कर व्यापार करते थे। इस प्रकार के मेलों का पहले धार्मिक रूप दिया गया था। इसका कारण यह था कि धर्म के नाम पर लोग उन मेलों की तरफ आकर्षित हों। इस प्रकार से व्यापार मे उन्नति होती रहे। इस तरह के मेले आज कल भी देखने मे आते हैं। वास्तव मे ऐसे मेले व्यवसायिक मेले होते हैं। प्राचीन समय मे इस प्रकार के मेले किसी पवित्र स्थान मे ही लगा करते थे। यही कारण था कि एक फ्रेंच लेखक ने लिखा था कि बिना मेला के कोई बड़ा त्योहार नहीं है और बिना त्योहार के कोई मेला नहीं होता है। इस प्रकार के मेलों मे धार्मिक ही महत्व रहता है उस समय सेन्टरीसवं डों, और शेम्पेन मे बड़े-बड़े मेले लगा करते थे। इन मेलो मे व्यापारी लोग आते थे और सामान आदि खरीदते थे। जैसे-जैसे जनसख्या बढ़ती गई। बड़े-बड़े नगर भी बसते गये। मार्ग सम्बन्धी सुविधायें भी लोगों को मिलने लगीं। इन सब कारण से इस प्रकार के मेले स्थायी बाजारो मे परिणित हो गये। धीरे-धीरे वाणिज्य सबंधी उन्नति भी होने लगी। ऐसे बाजारों की स्थापना होने से सौदागरो और व्यापारियों का भी एक सगठन बन गया। रुपये को उधार देने वाले भी हो गये। फल स्वरूप एक व्यवसायिक सघ का निर्माण हो गया। विदेश सबंधी व्यापारिक केन्द्रों की भी स्थापाना हो गई। बाजारो का रूप समयानुसार बराबर बदलता रहा। नगरो के विस्तार मे भी वृद्धि हो गई। इस प्रकार के नगरो की ख्याति भी बढ़ गई। व्यापारी लोग अपने बढ़ती अनाज को एक बाजार से दूसरे बाजारो मे भेजने लगे। धीरे-धीरे १७ वीं और १८ वीं शताब्दी मे व्यापारियों ने थोक और फुट कर सबंधी अपनी-अपनी दूकानें खोल लीं। यह लोग बेचने के लिये सामानों को इकट्ठा करने लगे। इस प्रकार से पुराने बाजारों का रूप भी बदल गया। यही ढंग सूती और ऊनी के व्यवसाय में भी चल रहा। था कृषिसबंधी संगठनो मे प्राय, परिवर्तन होते रहे। इसका कारण यह था कि लोगों मे फसलों के नष्ट होने आदि का भय बराबर बना रहता था। नगरों की आवश्यकताओं की पूर्ति आस-पास के क्षेत्रो के अनाज द्वारा होती थी। लोगो की खपत से जो अनाज बढ़ता था। उसको उस समय के लिये रख दिया जाता था। जब कि फसलें किसी भी मौसमी क्षति के कारण नष्ट

कृषिसम्बन्धी क्रय-विक्रय

कृषि इतिहास—कुछ वर्षों से यह प्रश्न चल रहा है कि कृषिसंबंधी और जो कृषिसंबंधी उपज नहीं है इन दोनों पैदावारों के बीच एक परिवर्तन शील विभाजक रेखा होनी चाहिये। अगर कोई किसान भेड़ या कार्न को बेच कर इसके बदले में तांबा या अच्छी मिट्टी चाहता है तो उनके सामानों को धातु या लकड़ी के औजारों से बदलना कठिन होगा। नगरों में व्यापार सम्बन्धी सभ्यता का विकास हो गया है। इन नगरों में खाद्य पदार्थों के व्यापार का एक मुख्य रूप पाया जाता है। किन्तु गेहूँ, मसाले, सिल्क और मूल्यवान पत्थरों के बाजारों के ढंगों में कोई परिवर्तन नहीं है। खेती की उपज और छोटे पैमाने वाले व्यवसायिक उत्पादन में कुछ थोड़ा अंतर मिलता है किन्तु यह अंतर केवल उनके वितरण वाले ढंगों में है। मिस्र, बेबीलान, भारतवर्ष, चीन, ग्रीस और रोम प्राचीन समय से ही अपने बाजारों के लिये प्रसिद्ध चले आ रहे हैं। इन देशों के इतिहास से पता चलता है कि इनके बड़े-बड़े नगरों द्वारा विदेश से व्यापार होता था। इन नगरों की जनसंख्या भी अधिक रहती थी। उनके इतिहासों से यह भी पता चलता है कि व्यापार में खाद्य और अन्य कृषिसंबंधी भाग अधिक रहता था। एथेन्स से दूसरे देशों को जैतून का तेल, अंजीर और शहद बाहर भेजा जाता था। एथेन्स एक कृषिक देश नहीं थ।। इस कारण से उसको अपनी अन्न संबंधी खपत का ५० प्रतिशत भाग बाहर से मगाना पड़ता था। उदाहरण के लिये उसके लिये गेहूँ दक्षिणी रूस से कृष्ण सागर के मार्ग द्वारा आता था। यह पता नहीं चलता है कि प्राचीन रूसी कृषक किस बाजार भाव पर अपना गेहूँ बेचते थे और उनके बदले में उनको क्या मिलता था। हमूराबी के कोड से यह पता चलता है कि २३०० पूर्व क्राइस्ट ईसा से पूर्व के समय बेबीलन के लोगों का व्यापार उन्नति पर था। उस समय रुपये के स्थान पर सोना और चांदी का प्रयोग किया जाता था। बनिये लोग बैंक सम्बन्धी काम करते थे। उस समय गेहूँ, शराब, भेड़ और ऊन इस देश से बाहर भेजा जाता था। यह चीजें उस समय भी कृषि उपज के अन्तर्गत मानी जाती थीं। मिस्र कई शताब्दियों तक अपने यहां से दूसरे पड़ोस वाले देशों को गेहूँ, कागज और तिलहन भेजता था। रोम का व्यापार भी प्रसिद्ध है। इसकी अधिक उन्नति रोम राज्य के प्रथम शताब्दी के बाद हुई। उस समय रोम में बड़ी सुन्दर-सुन्दर दूकानें थीं। खेती भी बहुत उन्नति पर थी। फुट कर और थोक दोनों प्रकार के व्यापार अपनी चरम सीमा पर पहुँचे हुये थे। आस-पास के देश भी रोम से मार्गों द्वारा मिले हुये थे। उस समय कृष्ण और लाल सागर रोम को झीलों के रूप में माने जाते थे। किसी को यह पता नहीं था। कि ये दोनों बड़े-बड़े सागर हैं। पश्चिमी योरुप की बड़ी-बड़ी नदियां, और नील नदी उस समय रोम के व्यापार सम्बन्धी मार्ग थे। पश्चिमी योरुप और मिस्र के देशों का व्यापार इन्हीं मार्गों द्वारा होता था। ऊँटों के काफिले दक्षिणी एशिया और उत्तरी अफ्रीका से हो कर आया जाया करते थे। भारत, अरब और योरुप के उत्तरी किनारे का व्यापार सागर के मार्गों द्वारा होता था। चीन, भारतवर्ष, अफ्रीका के उत्तरी, मध्यवर्ती और दक्षिणी और दक्षिणी भागों से, मध्यवर्ती एशिया, दक्षिणी रूस, जर्मनी, नार्वे, स्वीडन, ब्रिटेन, (गौल) और स्पेन देशों के साथ रोम के व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित थे। उस समय रोम की बाजारें दूकानों में धातु मूल्यवान पत्थरों और लकड़ियों की भर मार थी। रोम के बाजारों में सिल्क, अम्बर, और मुश्क की भी कमी न थी। यह सब सामान वहां पर विश्व के हर एक देशों से बिकने के लिये आता था। इटली से वहां मुर्गियां, चौपाये, गेहूँ, जैतून और शराब बिकने के लिये आती थी।

मध्य काल के आरम्भ मे इस प्रकार के व्यापार का अंत कर दिया। इसका मुख्य कारण उस समय के लड़ाई झगड़े थे। जमींदारी प्रणाली का भी आरम्भ हो गया। लोगों में विस्तृत दृष्टि कोण न रह गया। हर एक चीज संकुचित रूप से देखी जाने लगी समाज स्वावलम्बी भावना भी लोगों में आ गई। कृषिसम्बन्धी उपज वाले बाजारों का फिर स्थायी रूप हो गया। जब जमींदारी प्रणाली की अधिक उन्नति हुई तो उस समय लोग न तो अधिक सामान खरीदते थे और न बेचते थे। उस समय के नगर भी अधिकतर स्वावलम्बी होते थे। अगर जमींदार लोग खाने के लिये अधिक उन्नति का उपार्जन करते थे। तो भी इन लोगो को अपने कपड़ों, अन्य प्रकार के सामानों और औजारों के लिये दूसरे समुदायों पर निर्भर रहना पड़ता था। लोगों मे यह स्वावलम्बी भावना केवल थोड़े ही दिनों तक रही। पूर्वी देशों के जो मसाले और अन्य सुखदायक चीजें थीं। वे धीरे-धीरे करके योरुप में पहुंच गई। इस प्रकार से कृषि सम्बन्धी उपज के व्यापार की फिर उन्नति आरम्भ हो गई। उस समय के बड़े-बड़े मेलों मे विदेशी सौदागर व्यापार करने योग्य माल खरीदते थे। इनको छोटे-छोटे बाजारों मे बेच डालते थे। या उनके बदले में अनाज, ऊन और शराब माल लेते थे। मध्य काल के समय में समय-समय पर बड़े-बड़े और छोटे-छोटे मेले लगा करते थे। उस समय इस प्रकार के मेले सबमे अधिक मुख्य बाजारों के रूप में होते थे। इन बाजारों मे अधिकतर सामानों को लोग अदली-बदली किया करते थे। ऐसा लोग केवल अपना जमींदारों को कर देने के लिये करते थे। ऐसा करने पर भी कुछ वर्षों के बाद किसानों के पास इतना सामान बढ़ जाता था। कि वे लोग इसको स्थायी बाजार के भाव पर बेच देते थे। इस प्रकार से जो सामान यहाँ के लोगों को मिलता था उसको को वे लोग उन व्यापारियों को देते थे। जो बड़े-बड़े मेलों मे जा कर व्यापार करते थे। इस प्रकार के मेलो का पहले धार्मिक रूप दिया गया था। इसका कारण यह था कि धर्म के नाम पर लोग इन मेलों की तरफ आकर्षित हो। इस प्रकार से व्यापार में उन्नति होती रहे। इस तरह के मेले आज कल भी देखने में आते हैं। वास्तव मे ऐसे मेले व्यवसायिक मेले होते हैं। प्राचीन समय मे इस प्रकार के मेले किसी पवित्र स्थान में ही लगा करते थे। यही कारण था कि एक फ्रेंच लेखक ने लिखा था कि बिना मेला के कोई बड़ा त्योहार नहीं है और बिना त्योहार के कोई मेला नहीं होता है। इस प्रकार के मेलों में धार्मिक ही महत्व रहता है उस समय सेन्टडीसब डी, और शेम्पेन मे बड़े-बड़े मेले लगा करते थे। इन मेलों में व्यापारी लोग आते थे और सामान आदि खरीदते थे। जैसे-जैसे जनसंख्या बढ़ती गई। बड़े-बड़े नगर भी बसते गये। मार्ग सम्बन्धी सुविधायें भी लोगों को मिलने लगीं। इन सब कारण से इस प्रकार के मेले स्थायी बाजारों मे परिणित हो गये। धीरे-धीरे वाणिज्य सबधी उन्नति भी होने लगी। ऐसे बाजारों की स्थापना होने से सौदागरों और व्यापारियों का भी एक संगठन बन गया। रुपये को उधार देने वाले भी हो गये। फल स्वरूप एक व्यवसायिक संघ का निर्माण हो गया। विदेश सबंधी व्यापारिक केन्द्रों की भी स्थापना हो गई। बाजारों का रूप समयानुसार बराबर बदलता रहा। नगरों के विस्तार में भी वृद्धि हो गई। इस प्रकार के नगरों की ख्याति भी बढ़ गई। व्यापारी लोग अपने बढ़ती अनाज को एक बाजार से दूसरे बाजारों में भेजने लगे। धीरे-धीरे १७ वीं और १८ वीं शताब्दी मे व्यापारियों ने थोक और फुट कर संबधी अपनी-अपनी दूकानें खोल लीं। यह लोग बेचने के लिये सामानों को इकट्ठा करने लगे। इस प्रकार से पुराने बाजारों का रूप भी बदल गया। यही ढंग सूती और ऊनी के व्यवसाय मे भी चल रहा। था कृषिसबंधी संगठनों मे प्रायः परिवर्तन होते रहे। इसका कारण यह था कि लोगों मे फसलों के नष्ट होने आदि का भय बराबर बना रहता था। नगरों की आवश्यकताओं की पूर्ति आस-पास के खेतों के अनाज द्वारा होती थी। लोगों की खरच से जो अनाज बढ़ता था। उसको उस समय के लिये रख दिया जाता था। जब कि फसलें किसी भी मौसमी क्षति के कारण नष्ट

हो जाती थी और अनाज का अभाव हो जाता था। इसके अलावा १७ वीं और १८ वीं शताब्दी में और भी परिवर्तन हुये। इसमें संदेह नहीं कि इन शताब्दियों में कृषि और व्यवसायिक संबंधी अधिक परिवर्तन हुये। किन्तु इसी समय दूसरे देशों में भूमि विषयक आन्दोलन भी चल रहे थे। इस प्रकार के आन्दोलनों का यह ध्येय था। कि कृषिसंबंधी उपज के लिये एक नया सठगन किया जावे और कृषि द्वारा नई-नई चीजें उपार्जित की जायें। इस प्रकार के परिवर्तन समाज के व्यवसाय संबंधी बढ़ी हुई मांगों के अनुसार हुये जो केवल अल्प काल ही तक रहा। १८ वीं शताब्दी के अंत में फिर व्यवसायिक ढंगों में उन्नति हुई। आर्थिक दृष्टि कोण से कृषि में अधिक परिवर्तन हो गया। खेतिहर लोग व्यवसायिक प्रणाली की तरफ बढ़े। इन किसनो ने लोगों से अपना संबंध तुरत व्यवसायिक प्रणाली के अनुसार स्थापित कर लिया। किसान लोग अब स्वालम्बी नहीं रह गये। वे लोग अपने अनाज को खरीदने के लिये व्यापारियों पर निर्भर रहने लगे। किसानों के रहन-सहन में भी परिवर्तन हो गया। यह प्रायः व्यवसाय वाली फसलों के पैदा करने के सम्बन्ध में सोचने लगा। बाजार संबंधी समस्या भी जटिल होती हुई। ऐसी पर स्थित में किसान के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि वह अधिक अनाज और व्यवसायिक फसलों का उपार्जन करे। आर्थिक दृष्टि कोण से अभी कृषि संबंधी विकास कम हुआ है। जिन स्थानों में खेती मशीनों द्वारा या आधुनिक प्रणाली के अनुसार होती है वो उन क्षेत्रों में ऐसे साधन नहीं मिलते हैं। जिसके द्वारा दूसरे व्यवसाय की उन्नति हो सके। मशीनों के अविष्कार से किसानों की आर्थिक सम्बन्धी कठिनाई से भक्ति नहीं मिली है। किसान रेशा वाली फसलों को अधिकतर व्यापार के दृष्टि कोण से ही पैदा करते हैं। उनको इस प्रकार के सामानों को कारखानो मे भी ले जाना पड़ता है। जो उसके गांव या स्थान से दूर होता है। ताजी तरकारियां या डेरी सामानों को किसान लोग प्राय. नगरों में जा कर बेचते हैं। किसानों की ऐसी कठिनाईयां अभी दूर नहीं हुई है। कृषिसम्बन्धी क्रय-विक्रय के लिये सहकारी समितियां भी खुली हुई हैं। इसके लिये दलाल और एजेन्ट भी रहा करते हैं। क्रय-विक्रय संबंधी प्रणाली अधिकतर रेलगाड़ी के दरों पर मोटरों के भाड़े पर कारखानों के क्षेत्रों पर और चीनी के व्यवसाय आदि पर भी निर्भर रहती है। आज-कल विश्व में अनाज संबंधी क्रय-विक्रय प्रणाली अपूर्ण ढंग पर पाई जाती है। किन्तु इसमें अब परिवर्तन हो रहा है।

संयुक्त राज्य अमरीका और वर्तमान समस्याः—

यह राष्ट्र भाव सम्बन्धी प्रणी का समर्थन करने वाला है। यहां पर इसके नियमों का कठोरता के साथ पालन किया जाता है। इस का प्रभाव इस देश की उपज पर पड़ा है। जो सामान यहां की गोदामों में भरा हुआ है वह इतना बढ़ा हुआ है। कि उसका प्रबन्ध करना बड़ा ही कठिन है। इसका कारण केवल इस देश की भाव सम्बन्धी नीति है। इस देश में सामान इस श्रेणी तक बढ़ गया है कि जिससे भाव सम्बन्धी नीति से कोई लाभ नहीं मालूम हो रहा है। इस नीति से लाभ उसी समय मालूम हो सकता है जब कि देश पर कोई विपत्ति आ जावे। ऐसे दिनों में भाव सम्बन्धी नीति आवश्य उपयोगी होगी। सयुक्त राज्य अमरीका के बचे हुये सामानों में सबसे अधिक संख्या गेहूँ की है। यह अनुमान लगाया गया है कि गेहूँ लगभग दस खरब डालर के मूल्य का बचा हुआ है। कार्न और रुई भी अधिक सख्या में बची रहती है। इसके मूल्य का भी अनुमान लगभग ४ खरब डालर लगाया जाता है। इस प्रकार की बचत उनके लिये भार रूप समान है जिनको इसके लिये टैक्स देना पडता है। इस बचत का कुछ अश किसी प्रकार से खपा देना उचित रहता है। ऐसा करने से लोगों को कुछ कम कर देना पड़ेगा। सयुक्त राज्य अमरीका के भाव सम्बन्धी नीति का यह फल है। इस नीति के कारण यहां का अनाज अन्य देशों में भी अधिक मात्रा मे नहीं जा सकता है। चार्लस एफ० ब्रानन साहब जो अमरीका के कृषि विभाग के सचिव हैं। १९४८ और १९५० ई० मे ३५,००,००,००० डालर के मूल्य का आलू किसानो से खरीदा था। इन आलू

को इन्होंने या तो चौपायों को खिला दिया या नष्ट कर दिया। अमरीका की भाव सम्बन्धी नीति जल्दी खराब होने वाली वस्तुओं के लिये निसदेह लाभदायक है। जल्दी खराब होने वाली चीजों को लोग अधिक समय के लिये एकत्रित नहीं कर सकते हैं। ऐसे सामानों को लोग बेच दिया करते हैं। अमरीका की सरकार इन चीजों को अपने नियम किये हुये भावों में खरीद कर दूसरे काम में लाती है। भाव सम्बन्धी नीति पर केवल उन्हीं के लिये जो जल्दी खराब होने वाले थे। टीका टिप्पणी भी की गई। इसका कोई विशेष प्रभाव न रहा। सचिव बेन सन साहब इस बात के लिये विवश हो गये कि वह सरकार की इस मूर्खता वाली नीति को चालू रखें। इन्होंने इस सरकारी नीति के अनुसार मक्खन भी खरीद लिया। १०,००,००० पौंड मक्खन पहले से भी गोदाम में मौजूद था। यह मक्खन इसी मक्खन में मिलाने के लिये खरीदा गया था। यह केवल इसी लिये किया गया था। कि जिससे सुअर की चर्बी की बिक्री में वृद्धि होवे। प्रोफेसर जे० के० गलबरेठ का यह कहना है कि इस प्रकार के निर्णयों से देश की आर्थिक दशा में कोई हानि नहीं पहुची है। किन्तु वे इस बात पर प्रभाव डालते हैं। कि हम लोग किस प्रकार से मूर्खता को अपनाते हैं। इसमें सदेह नहीं है कि इस प्रकार की नीति में एक आर्थिक कमजोरी पाई जाती है। फिर भी १९५२ ई० में सयुक्त राज्य अमरीका का प्रजातन्त्र दल इस बात के लिये बाध्य किया गया कि वह इस नीति के सम्बन्ध में अपना और अधिक बचन देवे। वहां के वे किसान जो पश्चिमी भाग के मध्य में स्थित हैं। इस सम्बन्ध में अधिक प्रभावित हुये हैं कि राष्ट्रपति को कृषिसम्बन्धी समस्याओं के लिये चिन्ता है। कासोन और मिनसिटा में राष्ट्रपति महोदय ने अपना कृषिसम्बन्धी भाषण दिया था। इस भाषण में उन्होंने यह विश्वास दिलाया कि लोगों के रहन-सहन आदि में ९० प्रतिशत तक समता हो जावेगी। इस बीच में कुछ लोगों ने यह भी शोर किया कि आर १०० प्रतिशत समता के लिये अपना वचन दें। उन्होंने यह भी आशा प्रकट की कि कृषक लोग भी देश के धन से पूर्णरूप से जल्द ही लाभ उठा सकेंगे। इस प्रकार के भाषण ने किसानों को भी सुरक्षित कर दिया। इस भाषण का प्रभाव धनी लोगों पर अच्छा न पड़ा। सयुक्त राज्य अमरीका के पश्चिमी भाग के मध्य क्षेत्र में जो ग्रामीण रहते थे। उनको फिर से जीतने का केवल एक साधन कृषिसम्बन्धी नीति थी। मतदान के थोड़े समय के बाद आयोवा के एक किसान ने कहा भी था कि हम लोग कृषि योजना में प्रजातन्त्र सम्बन्धी उधार देने के लिये तैयार हैं। यहां के प्रजातन्त्र वादियों ने और भी बहुत सी बातें कहीं थी जो स्वीकार नहीं की गईं।

वाशिंगटन में भाव सम्बन्धी की सार्वजनिक रूप में निन्दा की गई। इस नीति के कारण लोगों के मुंह भी फूले हुये थे। लोगों से टैक्स भी अधिक लिया जाता था। सयुक्त राज्य अमरीका के लोग भाव सम्बन्धी कृषिनीति से सतुष्ट न थे। वे लोग इस नीति को समाप्त करना चाहते थे। इसी लिये लोगों ने अपना मतदान ईक साहब के पक्ष में भी दिया था। क्योंकि लोगों ने यह विचार किया कि यह एक परिवर्तन का समय है। ईक साहब को लगों ने वोट इसी धारणा में दिया था कि वह किसानों का हित करेगा। किन्तु ऐसा वह नहीं कर सका। ईक साहब कृषिसम्बन्धी मौलिक नीति को न तोड सके। इसका कारण यह था कि यह नीति भली प्रकार से सुसज्जित थी। इसमें कोई सन्देह नहीं की अमरीका के लोग अधिकतर ऐसी नीति के पक्ष में न थे।

अमरीकन, किसान लोग बेनसन साहब के भाषणों से सहमत न थे। वे लोग उनके विचारों को भी मानने के लिये तैयार न थे। अमरीकन किसान लोग लकीर के फकीर थे। ये लोग प्रजातन्त्र सम्बन्धी विजय के विरुद्ध किसी भी परिवर्तन के पक्ष में न थे। नये कृषि सचिव ने चुनाव सम्बन्धी विजय के बाद अपना पक्का विश्वास व्यापार के सम्बन्ध में प्रकट किया था। उन्होंने यह कहा था कि अमरीकन किसान को सरकारी निग्रह से अवश्य मुक्त कर कर दिया जावे। बेन सन साहब ने अपना यह भी मत प्रकट किया था कि किसानों पर जो सरकारी प्रतिबन्ध लगे हुये हैं वे सचमुच उनको अरुचिकर हैं। उसने यह भी कहा कि खेती के लिये जो भूमि

बहुत थोड़ा खाना देना पड़ता है। किसानों का ६० प्रतिशत भाग जो फसलें पैदा करता है। उसकी उपज के लिये उन किसानों को राज्य से अधिक आर्थिक सहायता मिलती है। इसके अलावा इन किसानों को भाव सम्बन्धी जिम्मा भी लेना पड़ता है। फिर भी प्रति वर्ष १,५०,००० किसानों का आर्थिक संकट के कारण दिवाला निकला रहता है। बड़े-बड़े किसानों को भाव सम्बन्धी सहायता की आवश्यकता बहुत कम पड़ती है। साधारण रूप से वे लोग इस प्रकार की नीति को पसंद भी नहीं करते हैं। इस वर्ग वाले किसानों को अधिक लाभ समता सम्बन्धी प्रणाली से मिलता है। संयुक्त राज्य अमरीका में जो समता सम्बन्धी नियम बने हुये हैं, उनसे कुछ वर्ग वालों को लाभ नहीं पहुंचता है। इस नियम से चरवाहों को लाभ नहीं होता है। इसका कारण यह है कि पशु सम्बन्धी व्यवसाय को कारखानों की तरह लाभ नहीं होता है। पशु सम्बन्धी भावों पर कोई रोक टोक भी नहीं रहती है। बेनसन साहब चरवाहों की दशा पर भी बहुत चिन्तित रहते हैं। इन अमरीकन चरवाहों का भी अधिक दबाव बेन सन साहब के ऊपर पड़ रहा है। कुछ मितव्ययी लोगों यह प्रश्न उठाया है कि क्या कृषि की समस्त भाव सम्बन्धी प्रणाली एकाधिकार में जायगी। यह लोग यह विश्वास करते हैं कि जो लोग दुखी हैं उनके दुख को दूर करना सरकार का धर्म है। इन लोगों का यह भी विश्वास है कि इसके लिये समस्त आर्थिक अधिकार को छीनना नहीं चाहिये। इन लोगों का यह भी कहना है कि यह रियायत किसानों को क्यों दी जा रही है। इस तरह की रियायत दूसरे लोगों को जैसे कोयला खोदने वालों को और बढ़ई लोगों को क्यों नहीं दी जा रही है।

इन लोगों के लिये बाजार सम्बन्धी कोई प्रतिबन्ध भी न होना चाहिये। इन लोगों का यह भी कहना है कि जो लोग निर्धन और पीड़ित हैं। उन्हें सुविधा के अलावा सहायता भी मिलनी चाहिये। इसके अलावा कुछ इस प्रकार के भी विशेषज्ञ हैं। जिनका कृषि कार्यालय भी समर्थन करता है। इन लोगों का कहना है कि संयुक्त राज्य अमरीका की भाव सम्बन्धी नीति में इस प्रकार का समझौता होना चाहिये। जो सबके लिये मान्य हो। इस सम्बन्ध में लोगों के समर्थन द्वारा एक प्रणाली भी बनाई जावे। यह प्रणाली इस प्रकार की होनी चाहिये। जिसको मानने के लिये लोग बाध्य हो जायें। इस प्रणाली के ढांचे में भी जल्दी परिवर्तन नहीं हो सकेगा। इस देश की उपज से भावों में एक इससे थोड़ा अंतर होना चाहिये। यह अंतर बढ़े हुये सामानों की संख्या के आधार पर रहना चाहिये। इस प्रकार से विशेषज्ञों का विश्वास है कि ऐसी भाव सम्बन्धी प्रणाली का प्रभाव उपज पर अवश्य पड़ेगा। धीरे-धीरे बाजार का भी भाव घटेगा। ऐसा करने से बचत सम्बन्धी जो समस्या है वह कम हो जावेगी। ऐसा करने से बाजार की दशा भी अच्छी हो जायगी। इसमें कोई संदेह नहीं है कि अमरीकन कृषि को एक क्रय-विक्रय सम्बन्धी विकसित ढांचे की आवश्यकता है। ऐसा करने से अमरीका के अनाज की खपत वर्तमान खपत की अपेक्षा अधिक होने लगेगी। इस खपत की वृद्धि देश और बाहर दोनों स्थानों में हो जायेगी। कृषि सचिव बेन सन साहब क्रय और विक्रय के सम्बन्ध में अधिक जोर डालते हैं। इन्होंने ऐसी समस्याओं के समाधान के लिये अपने कार्यालय में एक विभाग भी खोला है। कृषि सचिव बेन सन साहब की यह आशा है कि अगर अमरीकन उपज के निकलने के लिये एक विस्तृत उपाय हो तो अमरीकन किसानों को अपनी उपज सरकार के हाथ में बेचनी की आवश्यकता न पड़ेगी। कृषि सचिव साहब यह भी कहते हैं कि यहां पर बखारों में अनाज और अन्य सामान भरे पड़े हुये हैं। विश्व के अन्य देशों में लोग खाने के लिये मर रहे हैं। इसका एक विशेष उत्तरदायित्व हम लोगों पर भी है। क्योंकि आज अमरीका स्वतन्त्र विश्व का आर्थिक और नैतिक पथ प्रदर्शक बना हुआ है। अमरीका के ,खाद्य सम्बन्धी समानों के भेजने में अधिक असमानता पाई जाती है। अधिकतर अमरीकन यह भी नहीं जानते हैं कि इस अनाज की बढ़ती का क्या कारण है। एक ओहियो के किसान ने लिखा था कि इस बढ़ती में यह

नहीं मालूम होता है कि संयुक्त राज्य अमरीका के किसानों के कारण अनाज में इतनी अधिक बचत हुई है। जब कि विश्व के ६६ प्रतिशत लोगों को पेट भर खाना नहीं मिलता है। उसने यह भी कहा है कि किसान अन्न पैदा करें और संयुक्त राज्य का कृषि विभाग उसके विक्रय का प्रबन्ध करे। संयुक्त राज्य अमरीका ३,५०,००० बुशेल गेहूँ पाकिस्तान को उपहार के रूप में देना चाहता था। यह भी पड़े हुये सामानों को हटाने का एक उपाय था। पड़ा पड़े हुये सामानों के साथ उचित रूप से व्यापार किया जाय। इस प्रकार का व्यापार भी पूर्ण रूप से नहीं हो सकता है। क्योंकि वहां सामानों पर चुंगी भी अधिक लगती है। दूसरा कारण यह है कि वहां पर जो बड़े-बड़े दल है वे यह भी चाहते हैं कि अमरीका के सामानों का भाव भी विश्व के बाजार से बढ़ा रहे। भाव सम्बन्धी समस्या को हटाने के लिये राष्ट्रीय सरकार ने दो भाव वाली एक प्रणाली निकाली है। इस प्रणाली द्वारा बढ़ा हुआ सामान विश्व के बाजारों में सस्ते भावों पर बिका करेगा। इस प्रकार की प्रणाली से विश्व के भूखे लोगों को खाना मिलेगा। इसी तरह अमरीकन कृषि से ये लोग लाभ उठा सकते हैं।

अमरीका में जो वर्तमान खाद्य खाना के सपने का है। इसमें किसान मितव्ययी दोनों प्रकार के लोग सन्तुष्ट नहीं हैं। सेनेटर एकिन साहब अपनी भोजन सम्बन्धी योजना पर जोर देते हैं। उनका यह कहना है। कि संयुक्त राज्य अमरीका के १,००,००,००० आदमी ऐसे हैं। जिनको उस प्रकार का खाना नहीं मिलता है,जो स्वास्थ्य वर्धक हो। इसलिये ऐसे एक करोड़ मनुष्यों को खाना बाट देना चाहिये। सेनेटर एकिन साहब इस प्रकार के परिवारों की आय भोजन सम्बन्धी टिकटों की एक प्रणाली द्वारा बढ़ा देगें। अन्य साधनों द्वारा संयुक्त राज्य अमरीका की अन्य सम्बन्धी खपत भी वृद्धि की जायेगी। ब्रानन साहब ने एक योजना जल्द नष्ट होने वाले सामानों के लिये बनाई है। इस योजना के अनुसार जल्द खराब होने वाले सामानों को देश विदेश के बाजारों में बेच दिया जायेगा। इस प्रकार से संयुक्त राज्य अमरीका में भाव सम्बन्धी एक अन्दोलन चल रहा है। ब्रानन साहब ने यह भी आज्ञा दिया है कि गाय के भाव सम्बन्धी भाव में जांच परताल की जावे।

संयुक्त राज्य अमरीका की कृषि दशा:—

इस राज्य में गेहूँ, कार्न और तिलहन अधिक पैदा किया जाता है। इस राज्य में इन फसलों को अधिक पैदा करने के सम्बन्ध में नियम भी बने हुये हैं। यहां पर यह भी नियम बने हुये हैं कि इन फसलों की देश में अधिक खपत न की जावे। संयुक्त राज्य, अमरीका की सरकार के पास धनाजों का ढेर भरा हुआ है। अनाज की बचत में दिन प्रतिदिन वृद्धि हो रही है। अमरीका की यह बचत साधारण बाजारों के लिये एक भय के रूप में रहती है। यही कारण है कि अमरीका विश्व के बाजारों के भावों को गिराता और चढ़ाता रहता है। ऐसी दशा में अमरीका के नियमों से लाभ पहुँचने के बजाय हानि हुआ करती है। बाजार सम्बन्धी नियम से लोगों को प्रायः सहायता नहीं मिलती है। इसमें सदेह नहीं कि ऐसे नियमों की कभी-कभी आवश्यकता भी पड़ती है। उधार सामान सम्बन्धी संघ ने गत वर्ष अनाज के व्यवसाय में दूना धन व्यय किया था। इस सम्बन्ध में संघ ने २,५१,००,००,००० डालर धन अधिक लगाया था। अनाज के व्यापार के लिये संघ को १,७५,००,००,००० डालर धन उधार लेना पड़ा था। यह धन संघ को उधार देने वाले अधिकारी को भरना था। इस सम्बन्ध में अमरीका के राष्ट्रपति ने कहा था इसके लिये मैं फसलों को सुरक्षित रक्खूँगा। मैं कांग्रेस से यह प्रार्थना करूंगा कि संघ के धन की जो हानि हुई है। उसकी पूर्ति करे और संघ को ८,५०,००,००,००० डालर तक उधार लेने का भी अधिकार देवे।

गेहूँ और कपास से अमरीका का बाजार भरा हुआ है। इस कारण से राष्ट्रपति ने यह कहा था कि गेहूँ और कपास की खेती के लिये नियमानुसार भूमि दी जायेगी। इन फसलों का अनुपातिक भाग ही बाजारों में बेचा जायेगा। उन्होंने यह भी कहा था कि सरकार ने यह प्रार्थना की थी। कि कार्न की खेती कम की जावे किन्तु यह प्रार्थना असफल रही। कपास गेहूँ और कार्न की खेती के लिये भूमि कम दी

जावेगी। ऐसा करने से यह आशा की जाती है कि इन फसलों की उपज की उपज सम्बन्धी भूमि में कमी हो जायेगी जो इस प्रकार से है। गेहूँ की खेती मे १,६५,००,००० एकड़ भूमि, कार्न की खेती में ५०,००,००० से ६०,००,००० एकड़ भूमि और कपास की खेती में ३५,००,००० एकड़ भूमि में कम हो जायेगी। राष्ट्रपति ने लोगों को बतलाया कि इस कमी से गेहूँ और कपास के बटवारों मे कमी न होगी। इसका कारण यह है कि उपज में वृद्धि हो जायेगी। भाव सम्बन्धी नीति के कारण वाजारों मे भी हिचकिचाहट रहेगी। उन्होने लोगों को यह बतलाया कि हम लोगों को तुरन्त उन कारणों को देखना चाहिये जिससे हमारे पास इतना अनाज इकट्ठा होता रहता है।

अमरीका की सरकार ने सात नई फार्म योजना बनाई है:— (१) नई योजना इस प्रकार से चालू की जायेगी कि इससे बढ़े हुये सामानों पर कोई बाधा न पड़ेगी। इसके चालू होने के पहले बढ़े हुये सामानों में से थोड़ा सामन अलग कर दिया जायेगा। इस सामान पर भाव सम्बन्धी नियम न लागू होगा। (२) १९४८ और १९४९ ई० मे कृषि-सम्बन्धी नियम सबको प्रिय थे। जिन आधारों पर यह नियम बना था। वह कृषिसम्बन्धी व्यवसाय के लिये मुख्यत. आज भी लागू है। १९५४ ई० के जो कृषि विषय का नियम बने हैं। उसके द्वारा कृषि का विकास किया जायेगा। (३) १९५९ ई० के कृषि सम्बन्धी नियम के संशोधन होगा। इसका कारण यह है कि इस नियम की आवश्यकता युद्ध के समय में थी। आजकल भाव सन्बन्धी नियम की आवश्यकता नहीं है। इस नियम को समाप्त कर दिया जायेगा। (४) जनवरी १,१९५६ ई० सामानों के भाव में समता कर दी जायेगी। (५) नई योजना की मुख्य बात यह है कि इसके द्वारा धीरे-धीरे चीजें वर्तमान स्थित के अनुसार हो जायेगी। राष्ट्रपति ने कहा कि इस प्रकार के परिवर्तन मे समय लगेगा। यह परिवर्तन जल्दी नहीं होगा क्योंकि ऐसा करने से योजना के समाप्त हो जाने का भय है। (६) इस योजना के अनुसार कृषि सचिव को १९५९ ई० के कृषि नियम के अन्तरगत अधिकार रहेगा कि वे भाव सम्बन्धी भिन्नता को सीमित रखे। (७) कृषि सचिव को यह अधिकार रहेगा कि वह राष्ट्र की रक्षा या हित के लिये भाव सम्बन्धी नीति चालू कर सकते हैं।

बाजारों से बढ़ती सामान का हटाना:—

अमरीका के राष्ट्रपति ने यह भी कहा कि बढ़े हुये सामानों को बाजारों से पृथक कर देना नई योजना का एक अंश है। उन सामानों को व्यवसायिक बाजारों से अलग कर दिया जायेगा। इस प्रकार के सामान दूसरे काम में लाये जायेगें। इन सामानों का प्रयोग स्कूल सम्बन्धी योजनावों में, दूसरे देशो की सहायता के रूप में, युद्ध या राष्ट्र की आवश्यकताओं के दिनों मे या लोगों के दुख के समय में किया जायगा।

राष्ट्रपति ने यह भी कहा कि मै इसके लिये प्रस्ताव करता हूँ कि वर्तमान समय में जो बचत है उधार सामान सम्बन्धी सघ को यह अधिकार दिया जावे कि वह २,५०,००, ००० डालर के मूल्य तक का सामान सुरक्षित रखे। इसके लिये नियम भी बना दिया जावे कि इस प्रकार से सुरक्षित रखा हुआ सामान फिर बाजारों में व्यापार के देश में खपत के हेतु न आवे। ऐसा होने से साधारण व्यापार मे विघ्न पड़ेगा। यह भी बतलाया जायेगा कि इस नई योजना के अनुसार कौन सा सामान किस अंश तक सुरक्षित रखा जायेगा। जल्दी खराब होने वाले सामानों में परिवर्तन होता रहेगा।

दूसरे देशों के साथ व्यापार में विस्तार:—

अमरीका के राष्ट्रपति ने यह भी बतलाया कि हम अपने बढ़ती सामानों को मित्र देशों के साथ व्यापार द्वारा निकालेगें। इससे उन देश के लोगों को सुख मिलेगा। इन बढ़े हुये सामानों को अपने यहा खपत करना कोई बुद्धिमानी नहीं है। इसका कारण यह है कि हमारे किसानों को अधिकतर विदेश के बाजारो पर निर्भर रहना पड़ता है। इसी लिये हमारे किसानो का हित इसी में है कि देश विदेश व्यापार में निकास हो।

अमरीका के छोटे खेत:—राष्ट्रपति ने बतलाया कि हमारे देश में भाव सम्बन्धी नीति में बड़े-बड़े खेतों को अधिक लाभ हुआ है। इन खेतों की कुल सख्या लगभग २०,००,००० है। इन खेतों में यहां कि उपज का ८५ प्रतिशत भाग पैदा होता है। छोटे खेतों की संख्या लगभग ३५,००,००० है। इन खेतों से किसानों को भाव सम्बन्धी नीति से कम लाभ हुआ है। कृषि सचिव छोटे खेतों के सम्बन्ध में अपना ध्यान देवें।

इस देश में खेती प्रायः व्यवसायिक आधार पर होती है। इसके अनुसार किसान अपनी उपज का अधिक से अधिक भाग बेच डालता है। इसके स्थान पर वह उन्हीं चीजों को सबसे अधिक खरीदता है। जिनकी वह खपत कर सकता है। इस देश के बाजार की प्रणाली में ६ प्रकार के मौलिक ढंग अपनाये जाते हैं। उपज, यातायात गोदाम, उधार, विक्रय और भय सम्बन्धी बाजारों के इन मौलिक ढगों की पूर्ती के लिये औसत वर्ग के लोगों को नौकर भी रक्खा गया है। संयुक्त राज्य अमरीका में यातायात का अधिक महत्व दिया जाता है। इस देश में अनाज को खेतों में से लाने के लिये मार्ग की औसत लम्बाई लगभग १००० मील है। रेल मार्गों का अपना अलग-स्थान है। खेती की उपज को ढोने के लिये रेलों का भी एक विशेष-स्थान है। ताप प्रशायक यन्त्रों के विकास से भी लोगों को अधिक सहायता है। इसमें संदेह नहीं कि इस यन्त्र का अधिक महत्व है। इस यन्त्र द्वारा भोजन आदि को सुरक्षित रक्खा जाता है। विश्व के कृषिसम्बन्धी बाजार पर मोटरों का भी प्रभाव पड़ा है। पक्की सड़कों और मोटरों के कारण से स्थायी बाजारों का महत्व अधिक बढ़ गया है। ट्रैक्टरों द्वारा भूमि को जोता जा रहा है। इस प्रकार से भूमि का उपयोग भी बढ़ता जा रहा है। इन मशीनों से किसानों को अधिक लाभ पहुंचा है। किसानों के सामाजिक पृथक्कर की भावना में भी कमी हो गई है। किसानों को भूमि के तोड़ने या जोतने के लिये आर्थिक कठिनाई का भी अनुभव नहीं होता है। संयुक्त राज्य अमरीका में गोदामों की अधिक वृद्धि हुई है। यह वृद्धि गत लगभग ५० वर्षों से है। इस प्रकार के गोदामों की अधिक सख्या प्रायः उन्हीं खेतों में पाई जाती है। जहां पर अनाजों को सुरक्षित रखने की विशेष आवश्यकता है। लाखों टन अनाज इन गोदामों में गर्मी के मौसम में भर दिया जाता है। बहार या जाड़ा के मौसमों में जब इन अनाजों की मांग होती है तो निकाल कर बेच दिया जाता है। गोदामों में रखने के कारण अनाजों की दशा अच्छी रहती है। इनका भाव भी अक्सर किसानों के लाभ पर ही नियत किया जाता है। इसी प्रकार से गोदामों में मक्खन अंडे मुर्गियां ताजा मांस और भांति-भांति के फल और तरकारियां भी रहती हैं। जब इन चीजों की मांग होती है तो इनको भी बेच दिया जाता है। अनाज को सूखे स्थानों में में और केला मीठा आलू और सफेद आलू आदि को गर्म स्थानों में रखा जाता है। किसानों की कृषि सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ती के लिये उधार भी दिया जाता है। अधिकतर देशों की सरकारों ने इस प्रकार के उधार के लिये एक सुव्यवस्थित प्रणाली बनाई है। भय वाली प्रणाली बीमा के द्वारा कई भागों में विभाजित है। फसलों के नष्ट होने के भय को मनुष्य अपने बुद्धी द्वारा भी कम कर सकता है। फसलों को नष्ट होने से बचाने के साधन अधिकतर मनुष्य के अधिकार में ही रहते हैं। फसलों को कीड़े आदि के खाने या रोगों से बचाया जा सकता है। जो फसलें मौसमी क्षति के कारण नष्ट होती हैं। उनको मनुष्य नहीं बचा सकता है। संयुक्त राज्य अमरीका में अनाज श्रेणियों के अनुसार रखा जाता है। इस तरह करने से व्यापार सम्बन्धी लड़ाई झगड़ों में कमी हो जाती है। बाहर जाने वाले सामानों को भली भांति पैक किया जाता है। उनको मशीनों द्वारा जहाजों आदि में भरा भी जाता है। इन सब कारणों से रास्ते में सामान के हानि होने का भय बहुत कम रहता है।

आज कल किसी भी उपज का बेचना एक मुख्य कला है। आजकल के जो दलाल लोग हैं वे भी उत्पादन और वितरण के सम्बन्ध में नये-नये ढंग अपना रहे हैं। सामान के बेचने वाले भी तीन वर्गों में पाये जाते हैं। पहला वर्ग, थोक बन्दी बेचने वालों

का है। दूसरा वर्ग फुटकर बेचने वालों का है। तीसरा वर्ग छोटा मोटा लेनदेन करने वालों का होता है। थोक धन्दी बेचने वाले और छोटा मोटा काम करने वाले लोग अधिक संख्या में सामानों को खरीदते हैं। छोटा मोटा लेन देन करने वाले वर्ग के लोग इन सामानों को थोड़ा-थोड़ा करके बेचते हैं। इस प्रकार से इनको लाभ अधिक मिलता है। अब अधिक कारखानों में इन लोगों की संख्या धीरे-धीरे करके कम हो रही है। इनमें उन लोगों की संख्या बढ़ रही है। जो सामान वि रण करने में कुशल हैं। दलालों द्वारा ही सामान खरीदा और बेचा जाता है। इन दलालों का सामान पर कुछ भी अधिकार नहीं रहता है। इन दलालों को १ से २ प्रतिशत तक दलाली भी मिलती है। इसके अलावा सामान को बेचने के लिये कमीशन वाले व्यापारी भी होते हैं। इनको विक्रय भाव पर १ से १५ प्रतिशत तक कमीशन मिलता है। यह लोग अपने हस्ताक्षर द्वारा सामानों को छुड़ा भी लेते हैं। इन सामानों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले भी जा सकते हैं। किन्तु दलाल लोग सामानों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर नहीं ले जा सकते हैं। दलाल लोग सामान खरीदने वालों का पता लगाया करते हैं। इस प्रकार से जब कोई व्यापारी इनको मिल जाता है। तो उसको यह लोग सामान के मालिक के पास ले आते हैं। इसके बाद लेन देन की बात होती है। अगर बिकने वाला सामान अच्छी श्रेणी का होता है। तो दलालों की संख्या भी बढ़ती जाती है। ऐसी दशा में कमीशन वाले व्यापारियों की संख्या में कमी रहती है। चौपाये, ऊन और गेहूँ प्राय: कमीशन वाले व्यापारियों ही द्वारा बेचे जाते हैं। आजकल कृषिसम्बन्धी उपज का क्रय-विक्रय सरकारी रूप में भी होता है। यह कृषि की उपज के बेचने का एक नया ढंग भी है। इस ढंग में किफायत भी होती है। अनाज, चौपाये, फल, तरकारियां, मूंगफली और डेरी सम्बन्धी उपज का इसी ढंग से क्रय-विक्रय होता है। इन चीजों को सहकारी रूप से बचाने में अच्छी सफलता मिली है। इस साधन द्वारा अनाज के व्यापार में जो कुछ खराबियां थीं। वह अधिक अंश तक दूर हो गई हैं। डेरी सम्बन्धी उत्पादन में भी सुधार हुआ है। मक्खन और पनीर आदि अच्छी श्रेणी में बनने लगे। इन चीजों की खपत भी बढ़ गई। इसका कारण यह है। कि मक्खन और पनीर अधिक संख्या में बनने लगा। सहकारी ढंग से क्रय-विक्रय के कारण इनके दामों में भी कमी हो गई। इसके चलाने वालों को भी लाभ होने लगा। उदाहरण के लिये इसी साधन द्वारा मिनीसोटा मक्खन कम्पनी को १५ दिन में दस हजार डालर का लाभ हुआ। सामानों का क्रय-विक्रय नीलाम द्वारा भी होता है। नीलाम सम्बन्धी काम केवल बड़े-बड़े नगरों में होता है। इसके द्वारा अधिकतर फल या पुराने सामान बेचे जाते हैं। इस साधन द्वारा चीजों को खरीदने से कमीशन वाले व्यापारियों दलालों के द्वारा खरीदने की अपेक्षा सस्ती पड़ती हैं। न्यूयार्क में घोड़ों को भी नीलाम द्वारा बेचने का प्रयत्न किया गया है। इस सम्बन्ध में वहां धीरे-धीरे प्रचार हो रहा है। केर्न काउन्टी और केलिफोर्निया के किसान लोग कई वर्षों से सुअरों का लेन देन नीलाम के द्वारा किया करते हैं। इस साधन से इन लोगों को लाभ भी हो रहा है। सैनफ्रासिसीमिको और लास एन्जेल्स से जो व्यापारी इन सुअरों को लेने के लिये आते हैं। उनको यह लोग नीलाम की बोली बोलकर हरा देते हैं। यह लोग बिना सुअरों के खरीदे ही वापिस चले जाते हैं। क्योंकि नीलाम द्वारा इनका भाव इतना गिर जाता है। कि इस भाव पर लेने से उन व्यापारियों को लाभ नहीं होता है। इस प्रकार के साधन में खर्चा भी बहुत कम पड़ता है। मिले हुये गोदामों द्वारा ताजे फल और तरकारियां बेची जाती हैं। यह क्रय-विक्रय की प्रणाली में एक नया परिवर्तन हुआ है। इन गोदामों की यह नीति है कि अधिक संख्या में सामानों को खरीदा जाय। इन चीजों को श्रेणियों के अनुसार रख कर आदर्शानुकूल बनाया जाय। इस प्रकार से इन चीजों को अधिक दामों पर बेच दिया जावे। संयुक्त राज्य अमरीका में इस प्रकार का क्रय-विक्रय सहकारी समितियों ही द्वारा किया जाता है।

सड़कों के किनारे भी बाजारें लगा करती हैं।

अमरीका के छोटे खेत:—राष्ट्रपति ने बतलाया कि हमारे देश में भाव सम्बन्धी नीति से बड़े-बड़े खेतों को अधिक लाभ हुआ है। इन खेतों की कुल संख्या लगभग २०,००,००० है। इन खेतो में यहां कि उपज का ८५ प्रतिशत भाग पैदा होता है। छोटे खेतों की संख्या लगभग ३५,००,००० है। इन खेतों से किसानो को भाव समस्वन्धी नीति से कम लाभ हुआ है। कृषि सचिव छोटे खेतो के सम्बन्ध मे अपना ध्यान देगें।

इस देश में खेती प्रायः व्यवसायिक आधार पर होती है। इसके अनुसार किसान अपनी उपज का अधिक से अधिक भाग बेच डालता है। इसके स्थान पर वह उन्हीं चीजों को सबसे अधिक खरीदता है। जिनकी वह खपत कर सकता है। इस देश के बाजार की प्रणाली में ६ प्रकार के मौलिक ढग अपनाये जाते हैं। उपज, यातायात गोदाम, उधार, विक्रय और भय सम्बन्धी बाजारों के इन मौलिक ढगों की पूर्ती के लिये औसत वर्ग के लोगों को नौकर भी रक्खा गया है। सयुक्त राज्य अमरीका में यातायात का अधिक महत्व दिया जाता है। इस देश में अनाज को खेतों में से लाने के लिये मार्ग की औसत लम्बाई लगभग १००० मील है। रेल-मार्गों का अपना अलग-स्थान है। खेती की उपज को ढोने के लिये रेलों का भी एक विशेष स्थान है। ताप प्रशायक यन्त्रों के विकास से भी लोगों को अधिक सहायता है। इसमें संदेह नहीं कि इस यन्त्र का अधिक महत्व है। इस यन्त्र द्वारा भोजनआदि को सुरक्षित रक्खा जाता है। विश्व के कृपिसम्बन्धी बाजार पर मोटरो का भी प्रभाव पड़ा है। पक्की सड़को और मोटरों के कारण से स्थायी बाजारों का महत्व अधिक बढ़ गया है। ट्रैक्टरों द्वारा भूमि को जोता जा रहा है। इस प्रकार से भूमि का उपयोग भी बढ़ता जा रहा है। इन मशीनों से किसानों को अधिक लाभ पहुचा है। किसानो के सामाजिक पृथक्कर की भावना में भी कमी हो गई है। किसानों को भूमि के तोड़ने या जोतने के लिये आर्थिक-कठिनाई का भी अनुभव नहीं होता है। सयुक्त राज्य अमरीका में गोदामों की अधिक वृद्धि हुई है। यह वृद्धि गत लगभग ५० वर्षो से है। इस प्रकार के गोदामों की अधिक संख्या प्रायः उन्हीं खेतों में पाई जाती है। जहां पर अनाजों को सुरक्षित रखने की विशेष आवश्यकता है। लाखों टन अनाज इन गोदामो में गर्मी के मौसम में भर दिया जाता है। बहार या जाड़ा के मौसमों में जब इन अनाजो की मांग होती है तो निकाल कर बेच दिया जाता है। गोदामों में रखने के कारण अनाजों की दशा अच्छी रहती है। इनका भाव भी अक्सर किसानों के लाभ पर ही नियत किया जाता है। इसी प्रकार से गोदामों में मक्खन अडे मुर्गियां ताजा मांस और भांति-भांति के फल और तरकारियां भी रहती हैं। जब इन चीजों की मांग होती है तो इनको भी बेच दिया जाता है। अनाज को सूखे स्थानों में में और केला मीठा आलू और सफेद आलू आदि को गर्म स्थानों में रखा जाता है। किसानों की कृषि सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ती के लिये उधार भी दिया जाता है। अधिकतर देशों की सरकारों ने इस प्रकार के उधार के लिये एक खास प्रणाली बनाई है। भय वाली प्रणाली बीमा के द्वार कई भागों में विभाजित है। फसलो के नष्ट होने के भय को मनुष्य अपने बुद्धी द्वारा भी कम कर सकता है। फसलों को नष्ट होने से बचाने के साधन अधिकतर मनुष्य के अधिकार में ही रहते हैं। फसलों को कीड़े आदि के खाने या रोगों से बचाया जा सकता है। जो फसलें मौसमी क्षति के कारण नष्ट होती है। उनको मनुष्य नहीं बचा सकता है। सयुक्त राज्य अमरीका में अनाज श्रेणियों के अनुसार रखा जाता है। इस तरह करने से व्यापार सम्बन्धी लड़ाई झगड़ों में कमी हो जाती है। बाहर जाने वाले सामानों को भली भांति पैक किया जाता है। उनको मशीनों द्वारा जहाजों आदि में भरा भी जाता है। इन सब कारणों से रास्ते में सामान के हानि होने का भय बहुत कम रहता है।

आज कल किसी भी उपज का बेचना एक मुख्य कला है। आजकल के जो दलाल लोग हैं वे भी उत्पादन और वितरण के सम्बन्ध में नये-नये ढग अपना रहे हैं। सामान के बेचने वाले भी तीन वर्गों में पाये जाते हैं। पहला वर्ग थोक बन्दी बेचने वालों

का है। दूसरा वर्ग फुटकर बेचने वालो का है। तीसरा वर्ग छोटा मोटा लेनदेन करने वालों का होता है। थोक वन्दी बेचने वाले और छोटा मोटा काम करने वाले लोग अधिक संख्या में सामानों को खरीदते है। छोटा मोटा लेन देन करने वाले वर्ग के लोग इन सामानों को थोड़ा-थोड़ा करके बेचते हैं। इस प्रकार से इनको लाभ अधिक मिलता है। अब अधिक कारखानों में इन लोगों की संख्या धीरे-धीरे करके कम हो रही है। इनमें उन लोगों की संख्या बढ़ रही है। जो सामान विक्रय करने में कुशल हैं। दलालों द्वारा ही सामान खरीदा और बेचा जाता है। इन दलालों का सामान पर कुछ भी अधिकार नहीं रहता है। इन दलालों को १ से २ प्रतिशत तक दलाली भी मिलती है। इसके अलावा सामान को बेचने के लिये कमीशन वाले व्यापारी भी होते हैं। इनको विक्रय भाव पर १ से १५ प्रतिशत तक कमीशन मिलता है। यह लोग अपने हस्ताक्षर द्वारा सामानों को छुड़ा भी लेते हैं। इन सामानों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले भी जा सकते हैं। किन्तु दलाल लोग सामानों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर नहीं ले जा सकते हैं। दलाल लोग सामान खरीदने वालों का पता लगाया करते हैं। इस प्रकार से जब कोई व्यापारी इनको मिल जाता है। तो उसको यह लोग सामान के मालिक के पास ले आते हैं। इसके बाद लेन देन की बात होती है। अगर बिकने वाला सामान अच्छी श्रेणी का होता है। तो दलालों की संख्या भी बढ़ती जाती है। ऐसी दशा में कमीशन वाले व्यापारियों की संख्या में कमी रहती है। चौपाये, ऊन और गेहूँ प्रायः कमीशन वाले व्यापारियों ही द्वारा बेचे जाते हैं। आजकल कृषिसम्बन्धी उपज का क्रय-विक्रय सरकारी रूप में भी होता है। यह कृषि की उपज के बेचने का एक नया ढंग भी है। इस ढंग में किफायत भी होती है। अनाज, चौपाये, फल, तरकारियां, मूंगफली और डेरी सम्बन्धी उपज का इसी ढंग से क्रय-विक्रय होता है। इन चीजों को सहकारी रूप से बचाने में अच्छी सफलता मिली है। इस साधन द्वारा अनाज के व्यापार में जो कुछ खराबियां थीं। वह अधिक अंश तक दूर हो गई हैं। डेरी सम्बन्धी उत्पादन में भी सुधार हुआ है। मक्खन और पनीर आदि अच्छी श्रेणी में बनने लगे। इन चीजों की खपत भी बढ़ गई। इसका कारण यह है। कि मक्खन और पनीर अधिक संख्या में बनने लगा। सहकारी ढंग से क्रय-विक्रय के कारण इनके दामों में भी कमी हो गई। इसके बनाने वालों को भी लाभ होने लगा। उदाहरण के लिये इसी साधन द्वारा मिनीसोटा मक्खन कम्पनी को १५ दिन में दस हजार डालर का लाभ हुआ। सामानों का क्रय-विक्रय नीलाम द्वारा भी होता है। नीलाम सम्बन्धी काम केवल बड़े-बड़े नगरों में होता है। इसके द्वारा अधिकतर फल या पुराने सामान बेचे जाते हैं। इस साधन द्वारा चीजों को खरीदने से कमीशन वाले व्यापारियों दलालों के द्वारा खरीदने की अपेक्षा सस्ती पड़ती हैं। न्यूयार्क में अंडों को भी नीलाम द्वारा बेचने का प्रयत्न किया गया है। इस सम्बन्ध में वहां धीरे-धीरे प्रचार हो रहा है। केर्न काउन्टी और केलिफोर्निया के किसान लोग कई वर्षों से सुअरों का लेन देन नीलाम के द्वारा किया करते हैं। इस साधन से इन लोगों को लाभ भी हो रहा है। सैनफ्रांससीसिको और लास एन्जेल्स से जो व्यापारी इन सुअरों को लेने के लिये आते हैं। उनको यह लोग नीलाम की बोली बोलकर हरा देते हैं। यह लोग बिना सुअरों के खरीदे ही वापिस चले जाते हैं। क्योंकि नीलाम द्वारा इनका भाव इतना गिर जाता है। कि इस भाव पर लेने से उन व्यापारियों को लाभ नहीं होता है। इस प्रकार के साधन में खर्चा भी बहुत कम पड़ता है। मिले हुये गोदामों द्वारा ताजे फल और तरकारियां बेची जाती हैं। यह क्रय-विक्रय की प्रणाली में एक नया परिवर्तन हुआ है। इन गोदामों की यह नीति है कि अधिक संख्या में सामानों को खरीदा जाय। इन चीजों को श्रेणियों के अनुसार रख कर आदर्शानुकूल बनाया जाय। इस प्रकार से इन चीजों को अधिक दामों पर बेच दिया जावे। संयुक्त राज्य अमरीका में इस प्रकार का क्रय-विक्रय सहकारी समितियों ही द्वारा किया जाता है।

सड़कों के किनारे भी बाजारें लगा करती हैं।

इन बाजारों में किसान लोग तरकारियां, फल, अंडे, फूल और अन्य प्रकार की उपजों को बेचने के लिये लाते हैं। यह सामानों के क्रय-विक्रय करने का सबसे सरल साधन है। सड़कों पर माल भरी मोटरें या अन्य प्रकार की गाड़ियां आती जाती रहती हैं। इस प्रकार की बाजारें प्रायः रेलवे स्टेशनों, बड़े-बड़े नगरों या कारखानों के पास लगती हैं। इन सबका फल यह होता है कि इन बाजारों की चीजों को खरीदने के लिये ग्राहक सरलता पूर्वक मिल जाते हैं। किसानों का सामान भी उनके दरवाजों पर ही बिक जाता है। इस प्रकार से किसानों का सामान सड़क के किनारे लगने वाली बाजारों में बिक जाया करता है। इन फसलों को किसान बिना अधिक परिश्रम के ही पैदा करते हैं। इन फसलों को पैदा करने के लिये उनको किसी प्रकार की मजदूरी नहीं देनी पड़ती है। फलों की अधिक उपज होने पर किसान लोग फलों को पारसल द्वारा दूसरे नगरों में भी भेज दिया करते हैं। ऐसा करने से उनको कुछ अधिक दाम मिल जाता है। कृषिसम्बन्धी उपज का क्रय-विक्रय अधिकतर सहकारी समितियों, दलालों, कमीशन वाले व्यापारियों और स्थायी बाजारों द्वारा होता है। इस सम्बन्ध में उदाहरण भी ऊपर दिया जा चुका है। इन साधनों के अलावा खेती की उपज क्रय-विक्रय के लिये एक विशेष साधन का विकास हुआ है। इस साधन के अनुसार जो आदर्शानुकूल वस्तु होती है खरीद ली जाती है। इसके बाद उस वस्तु को बेच दिया जाता है, और इसके स्थान पर दूसरी वस्तु ले ली जाती है। इस प्रकार का कार्य विनियम सम्बन्धी नियमों द्वारा किया जाता है। संयुक्त राज्य अमरीका में अनाज, कपास मक्खन और अंडों का व्यापार अधिकतर इसी नियम के अनुसार होता है। अनाज और कपास का व्यापार लगातार अंकित मूल्य पर होता रहता है। इसका कारण यह है। कि इन चीजों के व्यापार की आशा भविष्य में भी बनी रहती है। इसके अलावा यहां पर कुछ ऐसे फलों की उपज होती है। जो अधिक समय तक नहीं ठहरते हैं। ये जल्द ही नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार के फलों के व्यापार के लिये कोई संगठित रूप वाले बाजार नहीं हैं। इसी कारण से इन चीजों के लिये कोई अंकित मूल्य भी नहीं रहता है। यहां पर कुछ ऐसे सामानों की उपज की जाती है। जो जल्दी नहीं खराब होते हैं। इस श्रेणी में फल और आलू की गणना होती है। इन चीजों को व्यापार के लिये एकत्रित भी किया जाता है। किन्तु यह चीजें भी एक मौसम के आगे नहीं ठहरती हैं।

ऐसी चीजों के लिये भी कोई संगठित रूप के बाजार नहीं है। इन चीजों का क्रय-विक्रय अधिकतर संयुक्त राज्य अमरीका के स्थायी बाजारों में होता है। संयुक्त राज्य अमरीका मुख्यतः अनाज और कपास के व्यापार के लिये प्रसिद्ध है। संयुक्त राज्य अमरीका इन चीजों द्वारा व्यापार समस्त विश्व में करता है। इस देश के ४२ राज्यों में गेहूँ पैदा किया जाता है। इन राज्यों में गेहूँ के कुल २०,००,००० खेत हैं। गेहूँ को प्रथम सबसे पास वाले स्टेशन या आटे की मिल के पास ले जाया जाता है। कन्ट्री एली वटर के हाथ यह गेहूँ नगद दाम पर बेच दिया जाता है। यह लोग चार प्रकार के होते हैं। (१) स्वतन्त्र (जिसके मालिक स्थायी व्यापारी लोग होते हैं) (२) किसान लोग (३) जहाज वाले (४) कारखानों के लोग होते हैं। अगर गेहूँ बिकने के लिये किसानों के पास जाता है (शिकागो से गेहूँ का ५६ प्रतिशत भाग किसान के एलीवटरों से आता है) तो उसके आने का ढग इस प्रकार से होता है। किसानों का पहले गेहूँ का रुपया दे दिया जाता है। इसके बाद गेहूँ कन्ट्री एलीवटर में आता है जहां पर इसको तार द्वारा बेच दिया जाता है। इसके बाद गेहूँ टरमीनल बाजार में आता है। यहां पर यह गेहूँ टरमीनल एलीवटर या बाहर भेजने वाले के हाथ बेच दिया जाता है। इसी तरह से गेहूँ का व्यापार होता रहता है।

कपास की तुलना गेहूँ से की जा सकती है। इन दोनों सामानों की गणना कोमल श्रेणी वाले सामानों में होती है। दोनों सामानों के भाव अस्थिर रहते हैं। दोनों सामानों से विश्व में व्यापार होता है। दोनों सामानों को अधिक समय तक गोदामों में रखा जा सकता है। दोनों सामानों को सब सरकार द्वारा

श्रेणियों के क्रम मे बांटा जा सकता है। कपास गेहूँ को कम पूंजी में तैयार किया जा सकता है। इन दोनों चीजों से आगामी व्यापार हो सकता है। यह दोनों चीजों को अंकित मूल्य पर बराबर चला करती है। कार्न गेहूँ या कपास से नहीं मिलता जुलता है। कार्न एक रेशादार पौधा होता है। जो कुछ कार्न संयुक्त राज्य अमरीका में पैदा होता है। उसका ८० प्रतिशत भाग यहां के खेतो मे ही में खप जाता है। इस देश मे कुल कृषि उपज का लगभग ४० प्रतिशत भाग कच्चे माल के रूप मे काम आता है। चौपायों का क्रय-विक्रय गेहूँ और कपास से भिन्न है। संयुक्त राज्य अमरीका मे जितने चौपायो का वध किया जाता है। उसके ६० प्रतिशत भाग का वध बड़े-बड़े बाजारों में होता है। यहां के किसान लोग अपने चौपायो को स्थायी ग्राहक के हाथ बेच डालता है। इस प्रकार के पशुओ को बाड़े मे कमीशन वाले व्यपारी के पास भेज दिये जाते हैं। यहां पर कमीशन वाले व्यपारी को पाच प्रकार के ग्राहकों का सामना करना पड़ता है। (१) पैक करने वाले ग्राहक (२) नगर के कसाई वाले ग्राहक (३) खरीदने वाले ग्राहक (इस प्रकार के ग्राहक चौपायों को खरीदकर दूसरे स्थान मे ले जाकर बेचते हैं) (४) सट्टा लगाने वाले ग्राहक (इस प्रकार के चौपायों को खरीदकर फिर इसी बाजार मे बेच देते हैं) (५) पशुओं को समूह रूप मे खरीदने वाले ग्राहक। इस प्रकार के ग्राहक लोग शेष बचे हुये पशुओ को मोल ले लेते हैं। इसके बाद इन पशुओ को नगर में पालने वालों के पास भेज दिये जाते हैं। चौपायों के इस प्रकार के क्रय-विक्रय प्रणाली मे कुछ समय से दो मुख्य परिवर्तन हुये हैं। पहला ढंग यह है कि चौपायों को सहकारी क्रय-विक्रय समितियो द्वारा खरीदा जाता है। इसके बाद इन पशुओं को कम खर्च से जहाजों मे भर दिया जाता है। यह चौपाये सहकारी एजेन्सियो द्वारा बेच दिये जाते हैं। इसके लिये सहकारी एजेन्सियो और कमीशन वाले व्यापारियों के बीच भाव सम्बन्धी होड़ भी लगा करती है। दूसरा नया ढग चौपायो के खरीदने का यह है कि पैकर लोग चौपाये खरीदने वाले ग्राहक को नगर मे भेजते हैं। वे लोग चौपायों को सीधे किसानों से खरीद लेते हैं। दोनों प्रकार के ढंगो में किसानों को उसी अंकित मूल्य का पता रहता है जो गोदाम में नियत की जाती है। यह लोग कभी-कभी किसानो से कम दाम पर भी चौपायों को खरीद कर ले जाते हैं।

अमरीकन कृषि की सबसे मूल्यवान उपज दूध है। जितना दूध नगर में खपता है। उसके अधिकतर भाग की पूर्ति किसानों द्वारा होती है। इस काम के लिये किसानों की सहकारी डेरी समितियाँ बनी हुई हैं। यह समितियां समूहिक रूप मे नगर के दूध वाले से सौदा तय करती हैं। इस प्रकार से सौदा के तय हो जाने पर दूध को खरीद लेते हैं। इस देश में मक्खन और पनीर अधिक बनता है। इस देश मे जितना दूध पैदा होता है। उसके ५० प्रतिशत भाग से मक्खन और पनीर बनाया जाता है। यह चीजे स्थायी सहकारी समितियों द्वारा बनाई जाती हैं। इन्हीं समितियों द्वारा इनका निरीक्षण भी होता है। यही समितिया इनके श्रेणियों का निर्णय भी करती हैं। संयुक्त राज्य अमरीका में फलो और तरकारियो के क्रय-विक्रय सम्बन्धी रूप ठीक नहीं हैं। इस देश के कुल क्षेत्र इस प्रकार के हैं जहां इनका लेन देन सहकारी समितियों द्वारा होता है। यह समितियां इन फलो और तरकारियों से समयानुसार आवश्यक वस्तु तैयार करके अपने ग्राहकों से बेचती हैं। यहां के बाजारों मे कभी-कभी इन चीजों की भरमार हो जाती है। तो कभी-कभी इनकी कमी हो जाती है। इसी कारण से इन चीजों का भाव भी नियत नहीं रहता है। इन वस्तुओं का दाम कभी घट जाता है। तो कभी बढ़ जाता है। हाल ही मे संयुक्त राज्य अमरीका की सरकार ने बाजार सम्बन्धी नियम बनाये हैं। यह नियम व्यापार सम्बन्धी खराबियों को दूर करने के लिये बनाये गये हैं। इस मे संदेह नहीं है। कि इस नियम द्वारा सामान पैदा करने वालो के हितो की रक्षा भी होगी। यहां की संघ सरकार ने १०० वस्तुओं की श्रेणिया और उनका नमूना निर्धारित कर दिया है। इन वस्तुओं का निरीक्षण भी होता है। इन सामानों को बाहर भेजने के लिये जहाजों का भी प्रबन्ध रहता है। इसके अलावा क्रय-विक्रय

वस्तु के बेचने के साधन पर ध्यान रक्खा जाता है। कम पैदा होने वाली चीजों को थोड़े दाम में ही बेच दिया जाता है। इसके अलावा किसान लोग सीधे ग्राहक के हाथ भी अपना सामान बेच डालते हैं। सामानों के बेचने का यह भी एक प्रारम्भिक ढंग है। इस प्रकार का ढंग आजकल भी प्रचलित है। इस प्रकार के ढंग में अधिक तैयारी की आवश्यकता नहीं पड़ती है। इस ढंग पर बिकने वाले सामानों में दूध, मक्खन, अंडे और ताजी तरकारियां आदि हैं। इसी प्रकार से सड़कों के किनारे लगने वाली बाजारों द्वारा भी सामान सीधे ग्राहकों को मिल जाता है। दलाल या कमीशन एजेन्टों की आवश्यकता नहीं पड़ती है। इसी प्रकार से फेरी करने वाले और डाकखाना के पारसलों द्वारा सामान ग्राहकों को मिल जाता है। जहां तक अनुमान लगाया जाता है वह यह है कि किसानों की उपज का अधिक भाग थोक बन्दी द्वारा ही बाजारों में बेचा जाता है। इस समय किसानों के सहकारी सगठनों का भी अधिक ध्यान न रक्खा जाता है। किसान लोग अपनी उपज को थोक या फुटकर के रूप में व्यपारियों के हाथ बेचते हैं। किसान लोग तीन ढंगों द्वारा अपना सामान बेचते हैं। पहला ढंग यह है कि किसान लोग अपना सीधे स्थायी बाजारों में ले जाते हैं। वहां पर इसको या तो स्वयं मोल भाव करके या नीलाम द्वारा बेच डालते है। दूसरा ढंग सामानों के बेचने का यह है कि जो दूर स्थित बाजार है उनमे किसान लोग अपने सामानों को एजेन्टों द्वारा बेचते हैं। इन एजेन्टो को किसान लोग कमीशन के रूप में कुछ पैसा दे देते हैं। तीसरा ढंग यह है कि किसान लोग अपना सामान ठीका पर भी बेच डालते हैं। चौपाये और भेड़ों को आम तौर से किसान लोग स्थायी बाजारों में नीलाम द्वारा बेचते हैं। इसका प्रबन्ध नीलाम करने वाले या नगर पालिकाओं द्वारा होता है। अनाज को किसान लोग स्वयं मोल भाव करके सौदागरों के हाथ बेच डालते हैं। ताजी तरकारियां दूर-दूर के बाजारों में बिकने के लिये भेजी जाती है। वहां इन तरकारियों को कमीशन ही पर बेच दिया जाता है। किन्तु बेचने का ढंग भिन्न होता है। यह भिन्नता इस बात पर निर्भर करती है। कि बाजार जहां पर सामान बिकता है खेत से कितनी दूर है। कुछ सामान थोक बन्दी द्वारा भी कारखानों के हाथ बेच दिया जाता है। इस श्रेणी में चुकन्दर अपना एक मुख्य स्थान रखता है। चुकन्दर थोक बन्दी द्वारा कारखानों के हाथ बेच दिया जाता है। अब दूध और फल भी थोक बन्दी ही द्वारा बेचा जाता है। कहीं-कहीं पर अडे भी थोक बन्दी ही द्वारा बिकते हैं।

कृषिसम्बन्धी क्रय-विक्रय के साधनों मे और अधिक विकास हुये हैं। इस विकास के दो कारण हैं। पहला किसान सहकारीसम्बन्धी आन्दोलन और दूसरा कृषिसम्बन्धी उन्नति है। योरुप के देशों मे किसान सहकारी संगठनों किसी न किसी रूप में बहुत समय से पाया जाता है। योरुप के किसानो का विक्रयसम्बन्धी ,संगठन उनके उधार और क्रय-सम्बन्धी सगठनों की अपेक्षा नया है। योरुप में उधार और क्रयसम्बन्धी संगठन प्राचीन समय से ही पाये जाते हैं। आज कल योरुप के अधिकतर देशों में विक्रय सम्बन्धी संगठनो का अधिक विकास हुआ है। इन देशों मे दूध, चौपाये, शराब, अनाज, मांस और अंडे आदि अधिकतर इन्हीं सगठनो द्वारा बेचे जाते हैं। किसानों द्वारा दूध, ताजे फलों और तरकारियों के बेचने के लिये जो किसान सहकारी विक्रय-संगठन हैं उनमे अभी कम उन्नति हुई है। इसमे संदेह नहीं है कि वे इसकी उन्नति के लिये परिश्रम कर रहे हैं। इन देशों मे कारखानो के लिये जो कच्चा सामान भेजा जाता है वह भी सहकारी सगठनों के ही आधार पर भेजा जाता है। पूर्वी बल्टिक राज्यों से जो फ्लैक्स बाहर भेजा जाता है वह इसी आधार पर बाहर भेजा जाता है। इङ्गलैंड और स्काटलैंड मे ऊन पैदा करने वालों में भी अब इसी प्रकार के संगठनो का विकास हो रहा है। कई देश की सरकारों ने भी सहकारी सम्बन्धी आन्दोलनों को सहायता प्रदान की है। सोवियत रूस और फिन देश की सरकारों ने विक्रयसम्बन्धी सहकारी सगठनो के लिये विश्व व्यापी नीति अपनाई है। योरुप के देशों मे इस प्रकार के संगठनो की

सबसे अधिक उन्नति डेन्मार्क देश में हुई है। यह अनुमान लगाया गया है कि यहां के किसानों के ९० प्रतिशत लोग केवल डेरी-सम्बन्धी सहकारी समितियों के सदस्य हैं। १९२५ ई० में इस देश में जितने सुअर बिके थे। उसके ७० प्रतिशत भाग सहकारी समितियों ही द्वारा बिके थे। जो सामान बाहर भेजा जाता है। उसका प्रबन्ध भी अधिकतर सहकारी समितियों ही द्वारा होता है। योरुप के देशों मे इस सम्बन्ध में अधिक विकास हुआ है। इस प्रकार के विकास में सबसे अधिक सफलता डेन्मार्क देश में हुई है। इस देश में कई सालों से सहकारी समितियों द्वारा ही सामान बाहर भेजा जाता है। इसमें संदेह नहीं है कि इस प्रकार का सगठन योरुप के अन्य देशों में भी हो रहा है। १९२५ ई० में डेन्मार्क के मक्खन का ४० प्रतिशत भाग १४ बड़ी-बड़ी सहकारी समितियों द्वारा बाहर भेजा जाता था। यह समितियां डेन्मार्क के ५८० स्थायी सगठनों से मिली हुई थीं। इसके अलावा रूस, लैटविया, एस्थोनिया, फिनलैंड और नीदरलैंड में भी मक्खन इसी प्रकार से बाहर भेजा जाता है। डेन्मार्क में अंडे भी सहकारी समितियों द्वारा ही बाहर भेजे जाते हैं। १९२५ में अंडों को एकत्रित करने के लिये ५५० स्टेशन गृह बने हुये थे। इसके अलावा इसी प्रकार से अंडे रूस, नीदरलैंड और पोलैंड से भी बाहर भेजा जाता है। सहकारी समितियों के संगठनों द्वारा दूसरे सामान भी बाहर भेजे जाते हैं। सुअर का सूखा हुआ और नमकीन मांस, पूर्वी बाल्टिक प्रदेशों से फ्लैक्स और ग्रीस से मुनक्का आदि इन्हीं सगठनों द्वारा बाहर भेजे जाते हैं। इसके अलावा सहकारी समितियों में अनाज के क्रय-विक्रय के सम्बन्ध में एक नये प्रकार की उन्नति हो रही है। यह लोग कृषिसम्बन्धी सहकारी सगठनों और ग्राहक वाले सहकारी समितियों के बीच में व्यापारिक सबध स्थापित करने का विचार कर रहे हैं। युद्ध के समय में जो कृषिसबधी उपज के बेचने पर प्रतिबन्ध लगे हुये थे, वह भी अब हटा लिये गये हैं किन्तु अब भी देश की सरकारें अनाज के व्यापार में अपने हितों की रक्षा करती हैं। तम्बाकू की उपज संबधी अधिकार, अब भी सरकार अपने हाथों में रखती है। लैटविया में फ्लैक्स की उपज पर सरकारी नियंत्रण रहता है। उपज की क्रय-विक्रय के समस्याओं पर देश की सरकारें भी अपना ध्यान दे रही हैं। योरुप के देशों की सरकार अनाज की श्रेणियां बना देती हैं। इन श्रेणियों के अनुसार ही अनाजों का भाव नियत किया जाता है। इङ्गलैंड और स्काटलैंड के कृषिविभाग भी इस सबध में अधिक उन्नति कर रहे हैं।

कृषि-विषयक श्रम—यह उचित रूप से नहीं कहा जा सकता है कि खेती कबसे की जाने लगी। खेती के लिये सदा से ही मानवश्रम की आवश्यकता रही है। इसमे संदेह नहीं है कि कृषि अपना आर्थिक और सामाजिक सबंधी एक विशेष महत्व रखती है। आजकल के कारखानों द्वारा जो मांग होती है उसका ८० प्रतिशत भाग हम को किसानों से ही मिलता है। इन वस्तुओं को किसान लोग अपने खेतों में पैदा करके कारखानों को भेजते हैं। इसके अलावा विश्व की जनसख्या का एक बड़ा भाग खाद्य सबंधी सामानों के बनाने में लगा हुआ है। प्राचीन समय में खेतों में काम करने के लिये गुलाम लोग मजदूर की भांति रहते थे। किन्तु उनको किसी प्रकार की मजदूरी नहीं मिलती थी। इसका एक कारण यह भी था कि किराये वाले मजदूरों की बहुत कमी थी। इन गुलामों का उस समय की खेती में एक प्रमुख स्थान था। उस समय भूमि के छोटे-छोटे मालिक होते थे। वही लोग अपने गुलामों से खेती का कार्य कराया करते थे। मिस्र, ईरान, और बेबीलन देशों में कृषिसबधी कार्य गुलामों से लिया जाता था। रोमन लोग इन गुलामों से इस प्रकार से काम लेते थे कि कुछ समय के बाद ग्रामीण मजदूर भी गुलाम बन गये। यह लोग निरीक्षकों के देख-रेख में काम किया करते थे। पुरानी पुस्तकों के देखने से यह पता चलता है कि इन लोगों का खाना किस प्रकार का होता था। यह लोग किस प्रकार से रहते थे। इन लोगों को खेती के लिये भूमि का कुछ क्षेत्र दे दिया जाता था। उसमें यह लोग भिन्न-भिन्न प्रकार की फसलें पैदा किया करते थे। इन

लोगों के खाने और रहन-सहन आदि के संबंध में वही मजदूरी खर्च की जाती थी। जो १८ वीं शताब्दी में एक योरुपियन मजदूर को दी जाती थी। रोमन गुलाम योरुपियन मजदूरों की अपेक्षा कम उपज किया करते थे। प्लाइ और दूसरे लेखकों ने गुलामों की आर्थिक दशा पर टीका टिप्पणी भी की है। ग्रीस में कृषि उन्नति पर थी। इस देश में खेती का व्यवसाय अन्य व्यवसायों की अपेक्षा अधिक इमानदारी का माना जाता था। इस देश ने यह नहीं स्वीकार किया था कि गुलामों को खेती के कार्य के लिये रखा जाये। इस ने खेती के कार्य के लिये मजदूरों को रखा था। गुलामों से कृषिसंबंधी काम लेने की प्रथा पश्चिमी योरुप में भी थी। पश्चिमी योरुप में गुलामों की यह प्रथा नार्मन के इङ्गलैंड जीतने के बाद तक रही। डूम्सडे पुस्तक में यह दिया हुआ है कि ३५,००० स्वतंत्र मनुष्य, थे। गुलामों की सख्या २५,००० थी जब की उस समय नीच और कोटर लोगों की सख्या २,००,००० थी। इन्ही लोगों से भूमि सबधी काम लिया जाता था। पश्चिमी योरुप के दक्षिणी राज्यो और वेस्ट इडीज में भी खेती बारी का काम गुलामों से लिया जाता था। योरुप में शताब्दियों से जमीनदारी प्रथा चालू थी। किसान संबधी भिन्न-भिन्न वर्ग बने हुये थे। यह लोग अपने-अपने खेतों में कृषि कार्य किया करते थे। इसके अलावा यह लोग जो अपने मालिकों की सेवायें करते थे। उसके बदले में इन लोगों को दूसरे अधिकार भी प्राप्त थे। उस समय के किसान लोग कृषिसंबधी औजारों को सहकारी रूप में प्रयोग करते थे। पशुपालन संबंधी काम भी मिल जुल कर होता था। किन्तु इन साधनों को जनसख्या की वृद्धि के लिये या रुपये पैसे के संबंध में उचित रूप से नहीं अपनाया गया। इसका प्रभाव लोगों पर यह पड़ा कि १३ वी शताब्दी में सामाहिक मजदूरी सबधी प्रणाली का आरम्भ हो गया। यही प्रणाली धीरे-धीरे करो के रूप में परिवर्तित हो गई। किसानों से व्यक्तिगत सेवाओं के लिये कर लिया जाने लगा। इसप्रकार से किसान लोग अपने-अपने खेतो में खेती करने लगे और जमीनदारों को उसका कर देने लगे।

इस प्रकार की प्रणाली कई शताब्दियों तक रही। यह प्रणाली भिन्न-भिन्न देशों में अलग-अलग में रही। इसमे सदेह नही कि इस प्रणाली के विकास में भी सैकड़ो वर्ष लगे। किन्तु इस की रूप-रेखा प्रत्येक देश में समान नहीं रही। लोग जब ब्लेकडेथ (काली मौत) से मरने लगे तो कर सबधी प्रणाली की और उन्नति हुई। लोगों के मरने से खेती योग्य भूमि भी खाली हो गई। इसके जोतने वालों की सख्या में कमी हो गई। जो किसान लोग बचे हुये थे। उन लोगो को थोड़े ही खर्चे में अधिक भूमि मिल गई। इसी समय मे कर और मजदूरी में भी वृद्धि हो गई। मजदूरी मे वृद्धि होने का यह कारण था कि लोग अधिक सख्या में मर गये थे जिससे मजदूरों की कमी हो गई थी। खेतों में काम करने के लिये मजदूर बड़ी कठिनाई से मिलते थे। उस समय लोगों को अधिक उन्नति करना भी कठिन हो गया। इसका मुख्य कारण उस समय की परिस्थिति थी। अंग्रेज जमींदारों ने मजदूरी के खर्चे को कम करने के लिये भेड़ो का पालना आरम्भ कर दिया। इसके बाद जमीन के मालिक उस वर्ग के लोग हो गये जिन्होंने वाणिज्य तथा व्यापार से इसके लिये साधन एकत्रित कर लिया था। १५ वीं और १६ वीं शताब्दी में जो सर्वसाधारण भूमि थी। उसको इन व्यापारियों ने अपनी निजिसम्पत्ति के रूप में बना लिया। चरागाहों को भी खेत के रूप में परिणत कर दिया गया। १९ वीं शताब्दी के अत में इस श्रेणी वाली भूमि में गेहूँ की पैदावार खूब हुई। छोटी श्रेणी वाले जो कृषक थे वे अधिक कष्ट में पड़ गये। इसका कारण यह था कि उस समय के धनी लोगों ने हजारों किसानों की भूमि को छीन लिया उनको दूसरी तरह से भी हानि पहुची। नेपोलियन युद्ध के बाद किसानों की दशा में फिर परिवर्तन हुआ। अंग्रेज खेती वाले मजदूरों को भी जो परिवर्तित समय के अनुसार काय करने थे हानि सहनी पड़ी। ऐसे बहुत से मजदूर बेकार हो गये। उन लोगों को कष्ट मिलने लगा। इन मजदूरों ने एक बार फिर नई प्रणाली को समाप्त करने के लिये प्रयत्न किया क्योंकि इन लोगों का विचार था कि प्रणाली के कारण से यह

कष्ट मिल रहा है। इसमें कोई संदेह न था कि जमींदारी प्रणाली ही के कारण अँग्रेज मजदूरों को कष्ट मिल रहा था। इसी प्रणाली ने इनको आर्थिक सकट में डाला था। इस प्रणाली के सुधार के लिये व्यवसायिक सम्बन्धी विद्रोह हुआ। इससे भी इन मजदूरों को कोई लाभ न हुआ। इन लोगो मे असंतोष बराबर बढ़ता रहा। अंत में निर्धन सम्बन्धी नियम प्रणाली (पूअरला) मे परिवर्तन नई समस्याओं के अनुसार किया गया। इसके अनुसार उन लोगों को किसी भी प्रकार की सहायता न दी गई जो आर्थिक दृष्टि कोण से सम्पन्न थे। स्थायी कर में कमी कर दी गई। इस कर का अधिक भाग ग्रामीण क्षेत्रों से लिया जाने लगा। इसके अलावा किसानों की स्थिति इस प्रकार से बना दी गई कि वे खाद्य सम्बन्धी सामानों की मांग की पूर्ति कर सकें। इसके बाद सुधारसम्बन्धी नियम बनाये गये। इस नियम के बनने से लोगों को कुछ सुख और शांति मिली। यह काल "सुनहरा काल" के नाम से प्रसिद्ध था। मजदूरों की सामाजिक दशा में अभी तक कुछ परिवर्तन नहीं हो सका था।

योरुप के देशों में मध्य काल तक लोग दुखी रहे। इसके बाद जमींदारी प्रणाली के विरुद्ध आन्दोलन प्रारम्भ हो गये। अंत में इस प्रणाली का नाश हो गया। फ्रांस से यह प्रणाली १८वीं शताब्दी में लुप्त हो गई थी। जर्मनी से यह प्रणाली पूर्ण रूप से नाश न हो सकी थी। इस कारण से १९वीं शताब्दी से भूमि सम्बन्धी अधिक वैधानिक नियम बनाये गये। किसान लोग अपनी भूमि के मालिक समझे जाने लगे। रूस में भी मजदूरों को किसान बनाने के साधन अपनाये गये। महान युद्ध के पहले रूस में जो किसान लोग खेतों के जोतने और बोने का कार्य नहीं कर रहे थे। वे लोग बड़े-बड़े जमीनदारों के यहां मजदूरी का कार्य करते थे। इसके बाद कृषकों ने यह मांग की कि उनको और अधिक भूमि खेती करने के लिये मुफ्त में दी जाये। इसका फल यह हुआ कि उन लोगों को लाखों एकड़ भूमि छोटे-छोटे क्षेत्रों में दे दी गई। कुछ समय बाद योरुप के देशों में भूमिसम्बन्धी नियम में फिर परिवर्तन हुये। इस परिवर्तन का यह प्रभाव पड़ा कि सोवियत रूस ने भी कुछ स्थितियों में निजी अधिकार को स्वीकार कर लिया। किसी-किसी देश में जो भूमि प्रति व्यक्ति के पास थी। उसके क्षेत्र में वृद्धि कर दी गई। इङ्गलैंड मे जिन लोगों के पास ५० एकड़ से कम भूमि थी उसमें वृद्धि नहीं की गई। उसको उसी प्रकार से रहने दिया गया। इस देश में २०,००० एकड़ से अधिक भूमि लोगों को दी गई। भूमि देते समय सैनिक सेवाओं का विशेष ध्यान रक्खा जाता था। यह भूमि लोगों को अधिक मूल्य पर दी जाती थी। संयुक्त राज्य अमरीका में कर प्रणाली का आरम्भ उपनिवेशिक काल से ही था। वे लोग उसी प्रकार की खेती करते थे जिसके सम्बन्ध में उन्हे ज्ञान था। इसमें संदेह नहीं कि उस समय मजदूरों की कमी थी किन्तु भूमि की अधिकता रहती थी। इसके अलावा भूमि सम्बन्धी अधिक कठिनाईयां भी रहती थीं। उस समय भूमि का जोतना और फिर सींचना आदि बड़ा ही कठिन कार्य था। इसका कारण यह था कि आज कल की भाति प्राचीन समय मे खेती वाले औजार न थे। इस कार्य को सरल बनाने का केवल एक ही साधन था और वह यह था कि मजदूरी का कार्य लोगों से जबरदस्ती कराया जावे। २०० वर्ष के बाद जब रेल या अन्य प्रकार के विकास वाले कार्य आरम्भ हुये तो इसमें लाखो खेती वाले मजदूर काम करने के लिये चले गये। इस कारण से कृषिसम्बन्धी फिर एक गम्भीर परिस्थिति उत्पन्न हो गई थी। किन्तु खेती का कार्य मशीनों से ले लिया गया। इसी कारण से चीजों के भाव बढ़ने और घटने का प्रभाव भी खेतिहर लोगो पर कोई विशेष रूप से न पड़ सका। अल्बामा और जार्जिया देशों में खेती सम्बन्धी कार्य मजदूरों द्वारा लिया जाता था। यह कार्य उस समय तक लिया जाता था जब तक इस सम्बन्ध में कोई नियम नहीं बना था। डेन्मार्क, फ्रांस और जर्मनी के दक्षिणी-पश्चिमी भागों के कृषि वाले मजदूरों की भिन्न दशा पाई जाती है इन भागों के किसान लोग कृषिसम्बन्धी मौसमी सहायता वहां के आस-पास के राज्यों से ले लेते हैं। किसान लोग

इन राज्यों के मजदूरों से उस शर्त पर काम लेने हैं जिस पर वे लोग संतुष्ट नहीं रहते हैं।

जहां तक किसान के लिये कृषि वाले मजदूरों के अनुपात का सम्बन्ध है उसमें ब्रिटिशद्वीप समूह अधिक प्रसिद्ध हैं। इस द्वीपसमूह में यह देखा जाता है कि एक-एक किसान परिवार में खेती वाले मजदूरों की सख्या दो से भी अधिक रहती है। सयुक्त राज्य अमरीका में ऐसा नहीं हैं। वहां पर ५० प्रतिशत से कम जनसंख्या इस प्रकार की है जो स्वयं खेती का कार्य मजदूरों की भांति करती है। कुछ देशों में खेती सम्बन्धी मजदूरों की एक टोली हुआ करती थी। यही लोग खेती सम्बन्धी मजदूरी का कार्य किया करते थे। इसका नाम गैंग-लेबर प्रणाली था। १९ वीं शताब्दी के मध्य में इङ्गलैंड में इस प्रकार की प्रथा अधिक थी। इस देश के खेतिहर भागों में हजारों की सख्या में मनुष्य नौकर रखे जाते थे। इन नौकरों में औरतों और लड़कों की संख्या अधिक रहती थी। इन्हीं लोगों से खेती आदि का कार्य लिया जाता था। यह प्रथा भी अधिक समय तक न रह सकी। इसका कारण यह था कि जिन शर्तों पर यह लोग रखे जाते थे। उन शर्तों से यह लोग सतुष्ट न रहते थे। केलिफोर्निया में जापानी और टेक्साज में मेक्सिकन लोग अधिक संख्या में रखे गये थे। इन्हीं लोगों से इन देशों में खेती के मजदूरों का काम लिया लिया जाता था। उसके अलावा मौसमी कार्य के लिये फालतू मजदूर अलग रखे जाते थे। यह मजदूर मौसम सम्बन्धी बढ़े हुये कार्य को करते थे। जब यह काम समाप्त हो जाता था तो इस प्रकार के लोग निकाल दिये जाते थे। इसी प्रकार से कुछ काल के लिये मजदूर भी खेती में काम करने के लिये रखे जाते थे। इन लोगों की सख्या खेती की फसलों के अनुसार कम या अधिक हुआ करती थी। इस प्रकार के मजदूर चुकन्दर के खेतों में काम करने और जंगलों आदि के साफ करने के लिये रखे जाते थे। खेती के मजदूरों की सख्या के सम्बन्ध में ठीक से यह नहीं कहा जा सकता है कि कितने मजदूर काम के लिये और कितने सदा के लिये नौकर रखे जाते थे। मजदूरों की आर्थिक दशा भी अच्छी नहीं रहती थी। यह लोग बड़े-बड़े कठिन कार्य किया करते थे। इसका एक मुख्य कारण यह था कि किसानों की खेती आदि में अधिक लाभ नहीं होता था। उस समय नयी-नयी भूमि का जोतना भी अधिक कठिन कार्य था। इसमें किसानों को अधिक व्यय करना पड़ता था। किसानों की आय व्यवसाय करने वालों की अपेक्षा बहुत कम थी। इस में संदेह नहीं था कि किसान लोग अपने मजदूरों को अधिक मजदूरी देने में असमर्थ थे। किसान लोग इन मजदूरों को उनके कार्य के बदले नकद रुपया नहीं दे सकते थे। वे लोग इन मजदूरों को खाने के लिये अनाज और जलाने के लिये लकड़ी दिया करते थे। रहने के लिये मुफ्त घर दिया करते थे। किसान लोग इन मजदूरों से कोई दूसरा काम जैसे फसलों का काटना आदि लिया करते थे। तो उसके लिये अलग रुपया इन लोगों को देते थे। इन मजदूरों को किसान लोग जागीर के रूप में भूमि भी देते थे। किसान लोग अगर इन मजदूरों से नियत घंटों के अलावा काम लेते थे तो वे उनको इसकी अलग मजदूरी देते थे। मजदूरों के लड़के और औरतें भी कमाया करती थीं। किसान लोग इनका अधिक मान किया करते थे। क्योंकि वे लोग यह जानते थे कि यही लोग हमारे खेतों और घरों को साफ रखते हैं। इसी प्रकार से ग्रामों में किसान और मजदूर लोग रहा करते थे। ग्रामों में इन लोगों को सुन्दर-सुन्दर वायु मिलती थी। ग्रामों में किसानों को मजदूर आसानी से मिल जाते थे।

धीरे-धीरे खेतों का कार्य सरल होता गया। खेती मशीनों द्वारा होने लगी। मजदूरों की सख्या में भी कमी पड़ गई। मशीनों से खेती प्रति वर्ग मील में केवल एक ही मनुष्य द्वारा होने लगी। जहां खेतों में काम करने के लिये मजदूर कम पैसे में मिलते थे। वहां भी धीरे-धीरे खेती खेती का कार्य मशीनों ही द्वारा होने लगा। आज कल इगलैंड के खेती वाले भागों में जहाँ पहले सैकड़ों मजदूर खेती का कार्य करते थे वहां अब प्रति १०० एकड़ में केवल ५ मनुष्य मजदूरों के रूप में काम करते हुये दिखाई देते हैं। पास वाले क्षेत्रों के किसान अपना

काम केवल दो ही मजदूरों से निकालते हैं। इसका मुख्य कारण आधुनिक खेती सम्बन्धी मशीनों का प्रयोग करना है। जिस क्षेत्र में खेती के लिये पहले अधिक मजदूरों की आवश्यकता पड़ती थी। वहां पर अब केवल दो ही चार मजदूरों से काम निकल जाता है। इसका प्रभाव मजदूरों ही पर पड़ रहा है। खेती वाले मजदूरों की संख्या खेतों के विस्तार पर निर्भर रहती है। जिन खेतों की लम्बाई-चौड़ाई कम होती है। उनमें खेती वाले मजदूरों की संख्या बड़े विस्तार वाले खेतों की अपेक्षा अधिक रहती है। इसका कारण यह है कि छोटे विस्तार वाले खेतों में मशीनों का प्रयोग भली भांति नहीं हो सकता है। इंगलैंड के १ से ५ एकड़ वाले खेतों में मजदूरों और किसानों की संख्या १३.४ प्रति १०० एकड़ के हिसाब से पाई जाती है। इसी प्रकार से जिन खेतों का विस्तार ५ एकड़ से ५० एकड़ तक रहता है उनमें इनकी संख्या केवल ६.५ प्रति १०० एकड़ के हिसाब से पाई जाती है। जिन खेतों का विस्तार ५० से ३००० एकड़ तक रहता है उनमें इनकी संख्या ३.३ प्रति १०० एकड़ के हिसाब से रहती है। जो खेत ३००० एकड़ से अधिक क्षेत्र वाले हैं उनमें इनकी संख्या केवल २.६ प्रति १०० एकड़ रहती है। इस प्रकार से यह पता चलता है कि अधिक विस्तार वाले खेतों में मजदूरों की संख्या में कमी होती जाती है। मजदूरों की अधिक संख्या का अनुपात बागों में पाया जाता है। इन बागों में मजदूर लोग फलों, तरकारियों तथा अन्य बाजार सम्बन्धी चीजों के पैदा करने के कार्य में लगे रहते हैं। इस प्रकार के बागों में मजदूरों की अधिक संख्या रहने का यह कारण है कि ऐसा कार्य मशीनों द्वारा होना असम्भव है। यही दशा हालैंड और बेल्जियम के घने बसे वाले भागों में पाई जाती है। इन देशों में खेती और बाग बानी के लिये भूमि बड़ी कठिनाई से मिलती है। इसी कारण से भूमि इन भागों में मंहगी भी रहती है। इन भागों में लोगों की यही इच्छा रहती है कि उपज अधिक से अधिक हो। इन देशों में खेती का कार्य अधिकतर चीनी मजदूर लोग किया करते हैं। विटन के पश्चिमी भागों में खेती प्रायः किसान लोग अपने हाथों से ही किया करते हैं। इसके पूर्वी भाग में खेती के लिये सस्ते दामों में मजदूर मिल जाते हैं। इन दोनों साधनों से खेती की अच्छी उपज होती है। प्रति एकड़ भूमि में कितनी उपज होती है यह फसलों के ऊपर निर्भर रहता है।

नई दुनिया में प्रति मनुष्य का ध्यान खेती की उपज की तरफ लगा रहता है। इसमें संदेह नहीं है कि खेती सम्बन्धी एक अधिक पैदा होने वाला और सस्ता व्यवसाय है। योरुप में खाने के लिये अधिक अनाज बाहर से मगाना पड़ता है। इस देश में अनाज की उपज कम किन्तु खपत अधिक है। योरुप के खेतिहर मजदूरों को अन्य देशों की अपेक्षा कम मजदूरी भी मिलती है। संयुक्त राज्य अमरीका, आस्ट्रेलिया और कनाडा आदि देशों के मजदूर लोग योरुप के मजदूरों की अपेक्षा दुगना कमाते हैं। इसका कारण यह है की योरुप के प्रति एकड़ भूमि की उपज इन देशों की अपेक्षा कम है। इसी उपज के आधार पर मजदूरों की मजदूरी भी निर्भर रहती है। प्रायः यह देखा जाता है कि उपज खेतों के विस्तार के ऊपर निर्भर करती है। फसलों की अच्छी उपज प्राय. बड़े विस्तार वाले ही खेतों में होती है। इंगलैंड के खेतिहर भागों में मजदूरों का खर्चा २० प्रतिशत से ५० प्रतिशत तक रहता है। औसत खर्चा लगभग ३० प्रतिशत रहता है। खेती वाली मशीनों के अधिक प्रयोग से इस प्रकार के खर्चे में निसंदेह कमी हो जावेगी। मजदूरों के काम करने वाले घंटों में भी कमी हो जावेगी। इसका कोई विशेष प्रभाव भी खेती की उपज पर न पड़ेगा। विश्व के प्रथम युद्ध के पश्चात् से देशों की भूमि विषयक नीति में परिवर्तन हो गया है। खेती की वृद्धि के लिये प्रचार किये गये। खेतों में काम करने के लिये मजदूर लोग रक्खे गये। उनको मजदूरी भी दी जाने लगी। इस प्रकार से इन मजदूरों की आर्थिक दशा भी अच्छी होती गई। इङ्गलैंड में मजदूरों की मजदूरी २० प्रतिशत तक बढ़ा दी गई। डेन मजदूरों (डेन्मार्क के निवास) की भी मजदूरी बढ़ा दी गई थी। योरुप में इङ्गलैंड और डेन्मार्क के देशों के मजदूर लोग योरुप के अन्य देशों की अपेक्षा सबसे अधिक मजदूरी पाते हैं।

प्रशांत महासागर के पश्चिमी भागों के मजदूरों की दशा की तुलना योरुप के अन्य भाग वाले मजदूरों से करना कठिन है। इस भाग में मजदूरों की मजदूरी का एक रेट नहीं था। वह भिन्न-भिन्न हुआ करता था। इसका एक मुख्य कारण यह था कि इस भाग में खेती की अधिक उन्नति न थी। अमरीका देश भी अपने मजदूरों को अधिक मजदूरी देता है। १९२६ ई० में अमरीका जो कुछ अपने मजदूरों को विश्व की पहली लड़ाई के पहले दिया करता था, उसमें ५१ प्रतिशत की औसत वृद्धि कर दी। कारखानों में काम करने वाले लोगों की मजदूरी में १०० से १५० प्रतिशत तक औसत वृद्धि हुई। इसका एक मुख्य कारण यह था कि अमरीकन के रहन-सहन के दर्जे में पहले की अपेक्षा ७२ प्रतिशत की वृद्धि हो गई थी। इङ्गलैंड में भी लोगों के रहन-सहन में ६६ से ६८ प्रतिशत पहले की अपेक्षा वृद्धि हो गई थी। इस देश ने भी अपनी खेतिहर मजदूरी पहले की अपेक्षा ७३ प्रतिशत बढ़ा दी। इसके अलावा अन्य लोगों की मजदूरी भी १०० प्रतिशत बढ़ा दी गई। यह बात सदा से देखने में आई है कि किसान लोग व्यापारी लोगों से पीछे रहे हैं। इंगलैंड के किसानों में भी यही बात पाई जाती है। इस देश के किसान लोग व्यापारियों की अपेक्षा कम धनी हैं। इसका एक कारण यहां पर व्यापार संघ आन्दोलन है। यह आन्दोलन १९ वी शताब्दी के प्रथम अर्ध भाग में आरम्भ हुआ था। इस प्रकार का संघ अब भी अपने तथा दूसरे देशों में व्यापार सम्बन्धी उन्नति के लिये प्रयत्न करता रहता है। ग्रामीण लोग इस प्रकार के आन्दोलन से अलग रहते हैं। इंगलैंड में ग्रामीणों की संख्या इस प्रकार के आन्दोलनों में १० प्रतिशत से अधिक नहीं रहती है। यह संख्या राजनैतिक और सामाजिक वातावरण के अनुसार बदलती रहती है। इस के मुख्य कारण चार हैं। (१) काम करने वालों की आय के साधन—कुछ ग्रामीण लोगों की आय इतनी अधिक नहीं रहती है कि वे इस प्रकार के आन्दोलनों में कुछ धन दे सकें। ऐसे लोगों के लिये थोड़ा धन भी देना भार रूप हो जाता है। (२) ग्रामीण लोग उदार व्यवहार वाले भी नहीं होते हैं। इसका कारण यह है कि वे लोग कृषि के काम में लगे रहते हैं। (३) इस प्रकार के आन्दोलनों में ग्रामीणों को कोई विशेष लाभ भी नहीं होता है। (४) इस प्रकार के आन्दोलनों में ग्रामीण लोगों का कोई व्यक्तिगत सम्बन्ध भी नहीं रहता है। इन्हीं कारणों से किसान या ग्रामीण लोग इस प्रकार के आन्दोलनों में भाग नहीं लेते हैं।

इसमें संदेह नहीं कि विश्व के लगभग प्रत्येक देश में ग्रामीण जीवन सम्बन्धी उन्नति हुई है। इस उन्नति के लिये १९ वीं शताब्दी का अर्ध भाग अधिक प्रसिद्ध है। इन लोगों के घरों और शिक्षा सम्बन्धी विकास में अधिक ध्यान दिया गया है। मजदूरों के काम वाले घंटों और उनकी श्रम सम्बन्धी शर्तों में भी उदारता दिखलाई गई है। इस प्रकार से नागरिक और ग्रामीण जीवन में जो अंतर रहता था उसमें कमी आ रही है। मजदूरों के कामों में सहानुभूति भी प्रकट की जाती है। इनके काम करने वाले घंटों में भी कमी हो गई है। नये-नये आविष्कारों के कारण ग्रामीण लोगों को भी अब नगर सम्बन्धी जीवन का लाभ मिलने लगा है। मोटर, साईकिल और रेलगाड़ियों आदि द्वारा देहात के लोग भी शहरों में आसानी से आ जा सकते हैं। बेतार-के-तार के टेलीफोन द्वारा यह लोग अब शहरों या नगरों के किसी भाग की सूचना पा सकते हैं। कुछ ऐसे देश भी हैं जो ग्रामीणों की उन्नति की तरफ ध्यान नहीं देते हैं। उन की उन्नति के लिये विद्यालय, स्कूल या अन्य प्रकार के साधन भी नहीं मिलते हैं। ग्रामीणों को अपने लड़कों के पढ़ाने के लिये किसी प्रकार की छात्रवृत्ति भी नहीं मिलती है। किन्तु धीरे-धीरे इस प्रकार वाले वातावरण में भी परिवर्तन हो रहा है।

कृषिसम्बन्धी मशीनें—प्राचीन समय से खेत आदि बैलों द्वारा जोते जा रहे हैं। घोड़ों और बैलों द्वारा कुओं आदि से पानी भी निकाल कर खेतों की सिंचाई होती थी। गावों में खेतों को अब भी इसी प्रकार से सींचा जाता है। इसमें संदेह नहीं कि खेती सम्बन्धी कामों में बराबर पशु-शक्ति का प्रयोग होता चला आया है। १८ वीं शताब्दी में कृषिसम्बन्धी मुख्य-मुख्य औजार बनाये गये। इस

समय में जेथ्रोट्रल्ल, हार्स ड्रिल, हार्स हो, हार्स रेक, अनाज माड़ने वाली मशीनें, कपास से बिनौला निकालने की मशीनें, गन्ना को पेरने वाली मशीनें और नली बनाने वाली मशीनें बनाई गईं। इन मशीनों से किसानों को अधिक लाभ पहुंचा। उनको तथा उनके पशुओं को खेती के लिये कम श्रम करना पड़ता था। इसके बाद १९ वीं शताब्दी में खेत को जोतने के लिये, बीज को बोने के लिये और कृषि-सम्बन्धी अन्य प्रकार वाली मशीनें १९ वीं शताब्दी में बनाई गईं। वर्तमान समय में खेती सम्बन्धी कार्य मशीनों द्वारा ही होते हैं। लोहे के हल (स्टीलप्लाऊ) का प्रयोग विश्व के सभी देशों में हो रहा है। प्रायः यह देखा जाता है कि कृषिसम्बन्धी मशीनों का प्रयोग अधिक लाभ दायक उसी देश या नगर के लिये है जहाँ पर मजदूरों की कमी हो। वैसे तो इनका प्रयोग खेती के लिये हर एक देश में लाभ दायक है। इसके बाद भिन्न-भिन्न प्रकार के हल आवश्यकताओं के अनुसार बनते रहे। जहां पर जिस प्रकार की भूमि को जोतना या तोड़ना होता है वहां पर उसी प्रकार के हलों का प्रयोग होता है। आज कल सुल्की प्लाऊ, डिस्क प्लाऊ और दो पेंदा के घूमने वाले हलों का प्रयोग अधिकतर हो रहा है। इस प्रकार के हलों को जोतने के लिये चार से ६ घोड़ों तक की आवश्यकता पड़ती है। आज कल ट्रैक्टरों में कई पेंदे वाले हलों का प्रयोग किया जाता है। खेती के लिये भिन्न-भिन्न प्रकार वाले हेंगे भी बनाये गये हैं। इस प्रकार की मशीनों के विकास में अधिक उन्नति हुई है। भूमि भी मशीनों द्वारा बराबर की जाती है। मशीनों से खेती योग्य भूमि तैयार की जाती है। बीज के बोने और वृक्षादि के लगाने वाली मशीनों के साथ हेंगे भी लगे रहते हैं। मशीनों द्वारा खेत दो से चार पत्तियों में एक साथ जोते जाते हैं। खेत का बोना और वृक्षादि का लगाना आदि मशीनों ही द्वारा होता है। अनाज भी मशीनों द्वारा बोया जाता है। आलू और कपास भी मशीनों द्वारा बोई जाती है। खाद भी मशीनों द्वारा खेतों में डाली जाती है। इसके लिये विशेष ढंग की मशीनें बनी हुई हैं। १९ वीं शताब्दी के प्रथम ३० वर्षों में एक घोड़े द्वारा खींची जाने वाली फसल काटने की मशीन के आविष्कार के लिये अधिक प्रयत्न किया गया था। किन्तु कुछ फल न निकला। इसके बाद मेकार्मिक नामक फसल काटने की मशीन का आविष्कार हुआ। इसके बाद धीरे-धीरे इस प्रकार की मशीनों में उन्नति होती गई। फसलों के काटने वाली मशीनों में पांचा भी बना रहता है जिसके द्वारा सूखी घास इकट्ठा की जाती है। पांचा से हाथों द्वारा ग्रामीण किसान भूसा आदि इकट्ठा करते रहते हैं। फसलों के काटने वाली मशीनों के साथ बाइन्डर भी लगे रहते हैं। इसके अलावा इस प्रकार की मशीनों में एक ऊँचा स्थान जो प्लेटफार्म कहलाता है बना रहता है। बाइन्डर कटे हुये अनाज को बांध कर प्लेटफार्म पर फेंकता जाता है। सोयाबीन, मीठी घास और बाजरा भी मशीनों द्वारा काटे जाते हैं। इसके बाद फ्लैक्स पुलर का आविष्कार हुआ। इस मशीन द्वारा फ्लैक्स को काटा और इकट्ठा भी किया जाता है। कपास की मशीनों द्वारा चुना भी जाता है। अनाज भी मशीनों द्वारा माड़ा जाता है। अनाज के माड़ने वाली मशीनें घोड़ों, भाप या गैस द्वारा चलाई जाती हैं घास के बीज, सोयाबीन और मटर के लिये भी माड़ने वाली मशीनों का विकास किया गया है। आज कल एक नई कृषिसम्बन्धी मशीन का आविष्कार हुआ है। इस मशीन का नाम मेन कम्बाइन मशीन है। इस मशीन द्वारा अनाज इकट्ठा किया जाता है। इसके द्वारा फसलों का काटना और माड़ना भी साथ-साथ होता है। पहले इस प्रकार की मशीन का प्रयोग उन्हीं खेतों में होता था जिनमें फसलों के पकने का समय भिन्न-भिन्न होता था साधारणतया इस प्रकार की मशीन उन्हीं क्षेत्रों में काम आती थी जो अर्ध-रेगिस्तानी सूखी खेती वाले क्षेत्र थे। अब इस मशीन से अनाज के काटने और माड़ने का काम आमतौर पर लिया जा रहा है। यह कहा जाता है कि कृषि-सम्बन्धी इस प्रकार की मशीन का विकास हो रहा है जिसके द्वारा फसलों के काटने, माड़ने और अनाज के अलग कर देने का काम भी साथ-साथ हो सके। पहले सूखी घास आदि को इकट्ठा करने में अधिक परिश्रम करना पड़ता था। इसके लिये अधिक

मजदूरों की भी आवश्यकता पड़ती थी। किन्तु अब यह काम अधिकतर मोअर (घास काटने की मशीन का नाम) हार्स रेक (घोड़े द्वारा चलने वाला पांचा), टेडर घास को फैलाने वाली मशीन, स्टाकर घास को इकट्ठा करने वाली मशीन और लोडर घास ढोने वाली मशीनों द्वारा लिया जाता है। घास के सुखाने के लिये भी मशीनों का आविष्कार हुआ है। इस मशीन के आविष्कार के कारण अगर घास वर्षा के दिनों में भीग जाती है तो सुखा ली जाती है। इस प्रकार लोग घास सम्बन्धी हानि से बच जाते हैं। चारा वाली फसलें भी मशीनों द्वारा काटी और इकट्ठा की जाती हैं। इस प्रकार की फसलों को सुखाने के लिये भी मशीनें बनी हुई हैं। यह काम हस्कर नामक मशीन द्वारा हो जाता है। इन फसलों को रखने के लिये गड्ढा भी मशीनों द्वारा खोदा जाता है। चारा वाली फसलों को मशीनों द्वारा ही छोटे-छोटे टुकड़ों में काट भी दिया जाता है। ब्लोअर मशीनों द्वारा हवा देने का काम लिया जाता है।

डेरी सम्बन्धी काम भी मशीनों ही द्वारा लिया जाता है। डेरी सम्बन्धी मशीनों के कारण डेरी के काम का रूप बदल गया है। दूध से मक्खन भी मशीनों द्वारा निकाला जाता है। मक्खन के लिये दूध मशीनों द्वारा मथा जाता है। दूध और पनीर आदि बोतलों में मशीनों द्वारा भरा जाता है। पशुओं का चारा भी मशीनों द्वारा काटा जाता है। खाद भी मशीनों द्वारा खेतों में डाली जाती है। फलों की रक्षा भी मशीनों द्वारा होती है। इस सम्बन्ध में छिड़काऊ मशीनें काम में लाई जाती हैं। इन मशीनों द्वारा तरल पदार्थ जो फलों की रक्षा के लिये आवश्यक होता है छिड़का जाता है। कपास की धूल आदि भी मशीनों द्वारा झाड़ी जाती है। इसके अलावा खाई आदि भी मशीनों द्वारा खोदी जाती है। आलू के खोदने का काम भी मशीनों द्वारा लिया जाता है। पम्प आदि भी मशीनों से ही चलाये जाते हैं। इस प्रकार से अब कृषिसम्बन्धी काम अधिकतर मशीनों द्वारा ही किया जाता है। इसमें संदेह नहीं है कि अमरीका ने इस सम्बन्ध में विश्व के अन्य देशों की अपेक्षा बहुत अधिक उन्नति की है। यह देश कृषि के लिये विश्व में प्रसिद्ध है। कृषि उपज और कृषि जीवन पर खेती वाली मशीनों का गहरा प्रभाव पड़ा है। प्रायः तीस वर्षों से खेती का प्रत्येक काम मशीनों द्वारा ही हो रहा है। हर प्रकार की भूमि से ट्रैक्टरों द्वारा सरलता पूर्वक जोती जाती है। बड़े-बड़े ऊसर आदि भी इन्हीं मशीनों के प्रयोग द्वारा तोड़ डाले जाते हैं। इसमें संदेह नहीं कि ऊसर आदि का तोड़ना मनुष्य के लिये एक बड़ा कठिन कार्य माना जाता था। किन्तु अब मशीनों द्वारा बड़े-बड़े ऊसर बड़ी सरलता पूर्वक तोड़ डाले जाते हैं। हाल ही में खेती सम्बन्धी कार्य बिजली की शक्ति से लिया जाने लगा है। अमरीका में जो बड़े-बड़े फार्म हैं उनका सारा कार्य बिजली की मशीनों द्वारा होता होता है। इन फार्मों में इसी काम के लिये बिजली की मोटरें भी लगा दी गई हैं। कृषिसम्बन्धी मशीनों में वर्तमान युग ने अधिक उन्नति की है। किन्तु अब भी विश्व के अधिकतर भागों में खेती का पुराना ढंग देखने में आता है। खेती सम्बन्धी पुराना ढंग अफ्रीका, एशिया और योरुप के कुछ भागों में अधिक पाया जाता है। इनके कुछ कारण यहां पर दिये जाते हैं। (१) इन देशों के पास इतना धन नहीं है कि मशीनें खरीदी जा सकें। (२) इन देशों में अधिकतर छोटे-छोटे खेत भी बने हुये हैं। इन खेतों में मशीनों का प्रयोग हो भी नहीं सकता है। (३) इन देशों ने इस प्रकार की मशीनों की तरफ अपनी अनभिज्ञता भी दिखलाई है। पहली कठिनाई के दूर करने के दो साधन हैं:—(१) खेती वाली मशीनें किराये पर ली जा सकती हैं और उनसे खेती का काम किया जा सकता है। (२) कृषि सहकारी समितियों द्वारा मशीनों को खरीदा भी जा सकता है। इस प्रकार से मशीनें खेती के उपयोग में आ सकती हैं। ग्रेट ब्रिटेन में खेती मशीनों द्वारा ही होती है। यहा पर बड़े-बड़े विस्तार वाले खेत बने हुये हैं। योरुप के देशों में ग्रेट ब्रिटेन की गणना कृषि सम्बन्धी मशीनों के प्रयोग में प्रथम होती है। योरुप के अन्य भागों में भी जहां पर बड़े-बड़े खेत बने हुये हैं कृषि सम्बन्धी मशीनों का प्रयोग होता है। योरुप की कृषिसम्बन्धी उन्नति में विश्व युद्ध के पश्चात् बाधा

पड़ी है। इसका मुख्य कारण यह था कि बड़े-बड़े राज्यों को तोड़ कर छोटे-छोटे राज्य बनाये गये थे। दक्षिणी अमरीका और अफ्रीका के जिन भागों में कम मजदूरी पर खेती सम्बन्धी कार्य होता था। उन देशों में भी मजदूरी बचत सम्बन्धी योजना निकाल कर या अन्य साधन द्वारा खेती के काम में मशीन का प्रयोग होने लगा है। इस प्रकार से धीरे-धीरे खेती के मशीनों द्वारा विश्व के प्रत्येक देश में होने लगेगी।

कनाडा, अमरीका और आस्ट्रेलिया देश कृषि-सम्बन्धी मशीनों के प्रयोग के लिये विश्व में प्रसिद्ध हैं। इन देशों में खेती का काम बड़ी-बड़ी मशीनों द्वारा होता है। इस सम्बन्ध में इन देशों ने एक प्रकार का पथ प्रदर्शक कार्य किया है। १९२१ ई० में कनाडा के प्रति फार्म में मशीनों का औसत खर्चा ९२५ डालर था। संयुक्त राज्य अमरीका में इस प्रकार का औसत खर्चा १९२५ ई० में प्रति फार्म में केवल ४२५ डालर था। इसका एक कारण यह भी था कि इसके दक्षिणी भाग में छोटे-छोटे खेतों की संख्या अधिक थी। जिसमें मशीनों का प्रयोग नहीं हो सकता था। संयुक्तराज्य अमरीका में मशीनों के मूल्य का कुल जोड़ ढाई बिलियन (२५,००,००,००,०००) डालर से अधिक था। यह मूल्य १८८०ई० में जो रुपये का मूल्य था उससे दसगुना अधिक था। अधिक मूल्य का एक कारण यह भी था कि मशीनों का दाम उस खर्च के पांच गुने से अधिक बढ़ गया था जो खेती के काम के लिये मजदूरों को देना पड़ता था। कनाडा और संयुक्त राज्य अमरीका में अनाज की उपज के लिये मशीनों का प्रयोग अधिक किया जा रहा है। संयुक्त राज्य अमरीका के खेतों में मनुष्य की शक्ति को छोड़ कर अन्य प्रकार की शक्ति का अधिक-अधिक प्रयोग हो रहा है। यह अनुमान लगाया गया है कि १८७० ई० में प्रति खेत में १६ हार्स शक्ति का प्रयोग होता था। १९२०ई० में यह शक्ति बढ़ कर ४.१ हार्स पावर हो गई थी। १९२५ ई० में अमरीका के खेतों में जिस प्रकार की शक्ति काम में आती थी उसका विवरण इस प्रकार से है। कुल शक्ति की ६६ प्रतिशत शक्ति पशुओं द्वारा मिलती थी। १६ प्रतिशत ट्रैक्टरों द्वारा मिलती थी। ४ प्रतिशत से कुछ कम शक्ति अन्य मशीनों द्वारा, २.५ प्रतिशत शक्ति इंजनों द्वारा १ प्रतिशत शक्ति हवाई चर-खियों द्वारा और ५.५ प्रतिशत शक्ति बिजली द्वारा मिलती थी। कारखानों की मशीनों की भांति कृषि सम्बन्धी मशीनों को पहले मनुष्य ने सादे पुर्जों द्वारा बनाया था। इन मशीनों के कारण घोड़ों और बैलों का प्रयोग और अधिक बढ़ गया था। इसका कारण यह था कि इन मशीनों को घोड़े या बैल ही चलाया करते थे। इसके पश्चात यह मशीनें भाप या बिजली द्वारा चलाई जाने लगीं। इन मशीनों के चलाने के लिये अब घोड़े या बैल काम में लाये जाते हैं। इन मशीनों द्वारा बहुत से ऐसे काम लिये जाते हैं जो पहले मनुष्य की शक्ति के बाहर थे। इन कार्मों को मनुष्य इतनी सरलता और सुन्दरता से नहीं कर सकता था जैसे अब मशीनों द्वारा होता है। खेत की जोताई अब अच्छी-अच्छी मशीनों द्वारा होती है। जिससे प्रति एकड़ में फसलों की अच्छी उपज होती है। चारा काटने वाली मशीनों द्वारा अब चारे का बहुत अच्छा प्रयोग होने लगा है। इन मशीनों द्वारा चारे आदि को काट कर पशुओं को खिलाया जाता है। मशीनों द्वारा फसलों को नष्ट होने से भली भांति बचा लिया जाता है। उनमें बीमारी वाले कीड़े नहीं लगने पाते हैं। अन्य प्रकार के रोगों से भी फसलों की बराबर रक्षा होती रहती है। मनुष्य अपने हाथों द्वारा इतनी सफलता के साथ यह काम करने में असमर्थ था। मशीनों द्वारा सुन्दर-सुन्दर श्रेणी वाले फलों की उपज भी अधिक होती है। घासों को भी अब मशीनों द्वारा सुखा लिया जाता है। पहले की भांति लोगों को अब सूर्य और हवा पर घासों के सूखने के लिये नहीं निर्भर रहना पड़ता है। इसके अलावा और भी कृषिसम्बन्धी मशीनों का आविष्कार हुआ है। जिनके द्वारा खेती का कार्य बहुत ही शीघ्र हो जाता है। इन मशीनों से लोगों को अधिक लाभ पहुँचा है। मशीनों के आविष्कार से मानव श्रम की बचत हो गई है। मजदूरों द्वारा जो काम पहले सप्ताहों में होता था, वह अब मशीनों द्वारा घंटों में हो जाता है। ३० वर्ष से अधिक हुआ कि यह अनु-

मान लगाया गया था कि कृषि वाली मशीनों के कारण कृषिसम्बन्धी श्रम मे १९ प्रतिशत की बचत हो गई है। यह भी अनुमान लगाया गया था कि इस प्रकार के श्रम पर जो व्यय पड़ता था उसमें भी ४६.२ प्रतिशत की बचत हो गई है। उस समय से लेकर वर्तमान समय तक कई कृषि सम्बन्धी मशीनों का आविष्कार हुआ जिसके कारण कृषिसम्बन्धी व्यय मे बहुत अधिक किफायत हो गई है। आजकल मशीनों द्वारा एक या दो आदमी एक दिन मे ३० एकड़ के खेत को काट और माड़ डालते हैं। इसमें सदेह नहीं कि प्रकार का काम मनुष्य के लिये एक दिन मे करना असम्भव सा था। इस प्रकार से कम खर्च में खेत काटा और माड़ा जाता है। मशीनों के आविष्कार के कारण संयुक्त राज्य अमरीका को जो मजदूर खेती के कार्य के लिये रखने पड़ते थे उनके खर्चे मे किफायत हो गई। खेती की उपज भी पहले की अपेक्षा तिगुनी हो गई। पश्चिमी योरुप के देशो और सयुक्त राज्य अमरीका मे जो खेती की उपज प्रति मनुष्य द्वारा होती थी, वह अब मशीनों द्वारा २ से ६ गुनी अधिक उपज होने लगी। इसमें सदेह नहीं है कि मशीनों द्वारा खेती के उपज में वृद्धि हो रही है।

मशीनों द्वारा खेती से मानव श्रम के उस अनुपात मे बचत नहीं हुई है जो बचत कारखानों की मशीनों द्वारा हुई है। इस प्रकार के साधनों के प्रयोग से निसदेह मजदूरों को वेकार होने का भय लगा रहता है। १९वी शताब्दी के आरम्भ मे दक्षिणी इङ्गलैंड के मजदूरो में एक प्रकार की खलबली पैदा हो गई थी। इसका कारण अनाज के माड़ने वाली मशीन का आविष्कार था। इङ्गलैंड के मजदूरो ने इस मशीन के विरुद्ध अपनी आवाज उठाई थी। १८५० से १८६० ई० में भी इङ्गलैंड के इसी क्षेत्र मे मशीनों के आविष्कार के कारण मजदूरों में बेचैनी फैली हुई थी। इस क्षेत्र के मजदूरों में बेचैनी का यही एक कारण था कि इस भाग में खेती मशीनों द्वारा होती थी। पश्चिमी योरुप के देशों में खेती के लिये जो मशीनों का प्रयोग होता था वे मजदूरों के लिये कम हानिकारक थीं। इसका एक कारण यह था कि योरुप के इस भाग में कारखाने अधिक खुले हुये थे। मजदूर लोग इन्हीं कारखानो के काम मे लगे हुये थे। योरुप के दक्षिणी भाग में इतने अधिक कारखाने नहीं थे। इस भाग मे व्यवसायिक विकास अधिक सीमित रूप मे था। १८५७ ई० मे इङ्गलैंड की खेती को बड़ी हानि पहुँची। इसका कारण यह था कि अमरीका मे कृषि की उन्नति के लिये नये-नये खेत बनाये गये इन खेतों मे मशीनों द्वारा खेती होने लगी जिसके कारण अनाज की उपज मे वृद्धि हो गई। इसका प्रभाव यह पड़ा कि अमरीका विदेशो को अनाज दूसरे देशों की अपेक्षा कम दामो में देने लगा। अमरीका की इस नीति का सब से अधिक प्रभाव इगलैंड पर पड़ा। मशीनो के आविष्कार से इंगलैंड के मजदूरों की आर्थिक दशा और खराब हो गई। इसके पश्चात १९२० ई० से अन्य प्रकार की कृषि सम्बन्धी मशीनो का आविष्कार होने लगा। खेती का कार्य ट्रैक्टरों और अन्य मशीनो द्वारा होने लगा। इन मशीनो के आविष्कार से किसानों को भी प्रभावित होना पड़ा। उनके खेतों की घास का प्रयोग कम हो गया। इसका कारण यह था कि घोड़े और खच्चरों की सख्या मे कमी हो गई। कृषि सम्बन्धी मशीन के आविष्कार ने भूमि सम्बन्धी भौगोलिक दशा मे भी परिवर्तन कर दिया है। मशीनों द्वारा अर्ध रेगिस्तानी क्षेत्र तोड़ कर खेत बना दिया गया है।

कनाडा, आस्ट्रेलिया, सयुक्त राज्य अमरीका का पश्चिमी भाग और अर्जेन्टाइना देशो के जिन भागो मे वर्षा कम होती था और जिन भागों का जोतना मनुष्य के लिये बड़ा कठिन था वे भाग कृषि सम्बन्धी मशीनो द्वारा जोत डाले गये हैं। कृषि वाली मशीनो से उन्हीं क्षेत्रों मे काम नहीं लिया जा सकता है जो नम रहते हैं। भौगोलिक परिवर्तन के अलावा कृषि सम्बन्धी मशीनों के कारण कृषि प्रणाली मे भी एक बड़ा परिवर्तन हो रहा है। विश्व के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में कृषि सम्बन्धी सगठन भी हो रहा है। सयुक्त राज्य अमरीका के जिन क्षेत्रों में स्थानीय भूगोल मे समानता पाई जाती है उन क्षेत्रों में खेती की मशीनो से अधिक काम लिया जा सकता है। ऐसे

क्षेत्रों में बड़े-बड़े खेत बनाये जा सकते हैं जिनमें मशीनों के प्रयोग द्वारा उपज बढ़ाई जा सकती है। इस प्रकार के क्षेत्रों में खेती के लिये मजदूरों पर बहुत कम निर्भर रहना पड़ता है। कनाडा और संयुक्त राज्य अमरीका के जिन भागों में खेती बड़ी-बड़ी मशीनों द्वारा नहीं हो सकती है। उन भागों में उसी योग्य मशीनों द्वारा खेती होती है मशीनों द्वारा कृषि का होना और यातायात सम्बन्धी मार्गों का विकास इन दोनों का प्रभाव विश्व के बाजारों पर पड़ा है। इससे यह ज्ञात हुआ है कि मशीनों का प्रभाव कृषि सम्बन्धी प्रत्येक क्षेत्र पर पड़ा है।

कृषि के मशीन सम्बन्धी कारखाने:—

कृषिसम्बन्धी औजारोंमें वे सभी प्रकार के सामान आते हैं जिनका प्रयोग खेत में किया जाता है। खेती के काम में लोहे वाले हलों, हसियों, कुल्हाड़ियों और इसी भांति के अन्य औजारों का प्रयोग शताब्दियों से होता चला आया है। ग्रामों के लोहारों का यह कर्तव्य होता था कि जब इस प्रकार के औजारों में खराबी आ जाती थी तो वह इनकी मरम्मत कर के किसानों को काम करने के लिये दे देता था। धीरे-धीरे लोहे के कामों में विकास होने लगा। आने जाने के साधनों में भी उन्नति होने लगी। इसका यह प्रभाव हुआ कि पहले की अपेक्षा बड़े-बड़े बाजारों की स्थापना हो गई। इसके बाद छोटे छोटे लोहे वाले कारखानों की स्थापना हुई। इन कारखानों में खेती के लिये औजार बनने लगे। धीरे-धीरे इन औजारों की विधि में भी विकास होने लगा। लोगों की भिन्न-भिन्न आवश्यकताओं के अनुसार औजार बनाये जाने लगे। इन औजारों में थोड़ी बहुत सुन्दरता भी आने लगी। गाव के लोहार उस समय के उन्नति शील कारखानोंकी भांति सफलता पूर्वक सामान न बना सकते थे। संयुक्त राज्य अमरीका में एक विभिन्न प्रकार का हल बनाया गया। इस हल के लिये वहां पर १८३० ई० के पहले ही एक भिन्न प्रकार का कारखाना था। १८३८ ई० मे पिट्स बर्ग में एक कारखाना था जो एक दिन में १०० हल बनाता था। यह कारखाना भाप द्वारा चलता था। यह नगर आजकल एक उन्नति शील केन्द्र बन गया है। ८४३ ई० में मेसाचूसेट्स साहब कहा करते थे कि वे प्रति वर्ष ६०,००० हल बना सकते हैं। उस समय व्यक्ति गत कारखानों की संख्या भी बढ़ रही थी। १८५५ ई० में जानडीर साहब ने मोलीन और ईलीनोइस में एक वर्ष में १३,००० से अधिक लोहे वाले हलों को बनावा गया था। इसी प्रकार से कृषि सम्बन्धी औजारों के बनने में उन्नति होती रही। हसियां, फावड़े और अन्य प्रकार के औजारों के बनाने में भी अधिक विकास हुआ। संयुक्त राज्य के दक्षिणी भाग में जो कारखाने खुले थे वे केवल कपास ओटने वाली मशीनों के बनाने में लगे रहते थे।

इसके पश्चात् मशीनों के बनाने वाले कारखानों में अधिक विकास हुआ फसलों के काटने वाली मशीनें भी बनाई जाने लगी। इस प्रकार से कृषि-सम्बन्धी मशीनों में विकास होता गया। कृषि की उपज में भी वृद्धि होती गई। इसके बाद ऐसी मशीनें बनने लगीं जिसमे मजदूरों के श्रम की बचत होने लगीं। यद्यपि १८३१ ई० में ३३ इङ्गलिश, २ कांटीनेन्टल और २२ अनाज काटने वाली अमरीकन मशीनों का आविष्कार हो चुका था। किन्तु वे इस दशा में नहीं पहुँची थी कि उनका प्रयोग किया जा सके। यह मशीनें उस समय तक अन्तिम रूप मे न आ सकी थीं जब पश्चिमी प्रेरीज में मजदूरों का अधिक अभाव हो गया था। इसी कारण से ऐसा बाजार बनाय गया जिसमें मशीनों का प्रदर्शन होने लगा। इस से लोगों को अपनी-अपनी मशीनों के बेचने का एक अच्छा अवसर मिल गया। लोग रात दिन फसलों के काटने वाली मशीनों को बनाने लगे। १८४५ ई० तक मेकारमिक साहब की बनाई हुई अनाज काटने वाली मशीन अधिक लाभदायक थी। मेकारमिक साहब अपना कारखाना खोलने के लिये सिनसिनाटी और ब्राक पोर्ट में प्रयत्न किया। किन्तु उसको अपनी इच्छानुसार स्थान न मिल सका। इस के बाद उसने १८४७ ई० में शिकागो में अपना कारखाना खोला। १८४९ ई० तक उसकी १९ स्थानीय एजेन्सियां हो गई। १८५१ ई० तक उसके सामानों की अधिक बिक्री होती रही। इसके बाद उसने ६

बड़े-बड़े कारखानों के खोलने का संगठन किया। इसी तरह धीरे-धीरे मशीनो के बनने में उन्नति होती रही। १८५२ ई० में (सुल्फरेक), १८५७ ई० में माश हार वेस्टर, १८७४ ई० में वायर सेल्फबाइन्डर और १८७९ ई० में ट्वाइन सेल्फबाइन्डर नामक मशीनों आविष्कार हुआ। इसी प्रकार से कृषिसम्बन्धी मशीनो का धीरे-धीरे आविष्कार होता रहा। संयुक्त राज्य अमरीका कृषिसम्बन्धी मशीनों के लिये अधिक प्रसिद्ध है। इसका कारण यह है कि इसके पास मशीनो के बनाने के लिये कच्चा सामान अधिक है। आज कृषिसम्बन्धी मशीनों के निर्माण के लिये संयुक्त राज्य अमरीका विश्व में प्रसिद्ध है। इसकी बनाई हुई मशीनें अन्य देशों में भी जाया करती हैं। यह राज्य अपनी मशीनों को अधिकतर अर्जेन्टाइना, कनाडा, रूस, फ्रांस, आस्ट्रेलिया और ब्रिटिश दक्षिणी अफ्रीका आदि देशों में भेजता है। अमरीका अधिकतर फसलों के काटने वाली मशीनों को दूसरे देशों में भेजता है। यहां कृषिसम्बन्धी मशीनों के बनाने के लिये अंतर राष्ट्रीय हार वेस्टर कम्पनी है। इस कम्पनी ने अपने कारखाने जर्मनी, रूस, स्वेडेन, फ्रांस और कनाडा में भी स्थापित किये हैं। वैसे तो खेती में काम आने वाले औजार स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार प्रत्येक देश में बनाये जाते हैं। किन्तु कृषिसम्बन्धी विशेष प्रकार की मशीनें तो केवल कुछ ही देशों में बनाई जाती हैं। स्वेडेन क्रीम की मशीन बनाने के लिये प्रसिद्ध है। फ्रांस और इटली में अधिकतर ट्रैक्टर बनाये जाते हैं। इसका एक मुख्य कारण यह भी है कि इन देशों में ट्रैक्टरों के मँगाने में संयुक्त राज्य अमरीका की अपेक्षा कम खर्च पड़ता है। आस्ट्रेलिया और न्युजीलैंड भी खेती की मशीनों के बनाने के लिये प्रसिद्ध है।

निम्नलिखित तालिका से संयुक्त राज्य अमरीका के कृषिसम्बन्धी मशीनो के उत्पादन का पता लगता है।

	कृषि वाले मशीनो के कारखानें				खेती वाले ट्रैक्टर	
वर्ष	कार्यालय की संख्या	नौकरों की संख्या	उत्पादन का मूल्य डालर में १०,००,०००	कृषिसंबंधी मशीनों का मूल्य डालर में जो बाहर भेजी जाती है। १०,००,०००	उत्पादन का मूल्य डालर में (१०,००,०००)	बाहर जाने वाले का मूल्य डालर में (१०,००,०००)
१८४९	१,३३३	७,२२०	७	—	—	—
१८५९	१,९८२	१४,८१४	१८	—	—	—
१८६९	२,०७६	२५,२४९	५२	१	—	—
१८७९	१,९४३	३९,५९०	६९	३	—	—
१८८९	१९१०	३८,८२७	८१	४	—	—
१८९९	७१५	४६,५८२	१०१	१२	—	—
१९०९	६४०	५०,५५१	१४६	२६	—	—
१९१४	६०१	४८,५२९	१६४	३२	१८	४
१९१९	५२१	५४,३६८	३०५	७३	१७३	२९
१९२१	३५३	३०,३५९	१६४	४६	५१	८
१९२३	३१२	३०,९६२	१५१	५०	९२	१५
१९२५	३०३	२८,६९६	१६९	७७	१२१	३३
१९२७	२७७	३३,६४६	२०३	९१	१६०	४६

जर्मनी में कारखानों का विकास १९ वीं शताब्दी के अर्ध भाग में हुआ। १९०० ई० में जर्मनी में लगभग १२०० मशीनों की स्थापना हो चुकी थी। इनमें काम करने वाले मनुष्यों की संख्या भी लगभग २३,००० थी। इन कारखानों में अधिकतर हल बनाये जाते थे। इनमें से कुछ हलों का आकार इस प्रकार का होता था जिसे कोलोरडो वाले देश और दक्षिणी अमरीका के लोग अधिक पसन्द करते थे। १९०३ ई० में से कारखाने सुरक्षित व्यवस्था के अन्तरगत रहे। इसी कारण से १९०६ ई० तक बाहर भेजी जाने वाली मशीनों की संख्या बढ़ गई। जर्मनी जो मशीनें अपने प्रयोग के लिये दूसरे देशों से मंगाते था उस संख्या में कमी हो गई। विश्व युद्ध के आरम्भ होने से पहले जो मशीनें इस देश में बनती थीं उनका ६६.५ प्रतिशत भाग दूसरे देशों को भेजा जाता था। इसका लगभग ३३ प्रतिशत रूस खरीद लेता था। युद्ध के कारण सामान अधिक संख्या में बनाये जाने लगे। किन्तु उनका अधिक प्रयोग उसी देश में होने लगा जिस देश में सामान बनता था। लड़ाई के समाप्त होने के पश्चात् जो कारखाने लड़ाई वाले सामानों आदि के बनाने में लगे हुये थे उनमें खेती सम्बन्धी मशीनें और औजार बनाये जाने लगे। यह अनुमान लगाया जाता है कि जर्मनी में १९२० ई० में लगभग ८०० मशीनें थीं जिनमें ७५,००० मनुष्य काम करते थे। जर्मनी ने खेती वाले ट्रैक्टरों के बनाने में अधिक उन्नति की है। १९२८ ई० में प्रथम बार जर्मनी से बाहर जाने वाले ट्रैक्टरों की संख्या ट्रैक्टरों के मंगाने वाली संख्या की अपेक्षा अधिक थी। इसी प्रकार से हर देश ने कुछ न कुछ उन्नति खेती सम्बन्धी मशीनों के बनाने में की है। इन मशीनों द्वारा खेती की अधिक उन्नति हुई है।

कृषिसम्बन्धी ऋण—कृषिसम्बन्धी उन्नति के लिये जो ऋण या सहायता मिलती है वह उस ऋण या सहायता से भिन्न हुआ करती है जो किसी अन्य आवश्यकता के कारण लिया जाता है। कृषिसम्बन्धी ऋण साधारणतः छोटे-छोटे ही रूप में लिये जाते हैं। इस प्रकार के ऋण की संख्या प्रायः उन देशों में अधिक पाई जाती है जहां पर छोटे-छोटे खेत घने रहते हैं। इस प्रकार के ऋण देने का साधारण रूप में यही नियम होता है कि ऋण दिया जाने वाला धन उधार लेने वालों में बांट दिया जाता है। इस प्रकार का ऋण किसानों की आवश्यकता के विचार से ही दिया जाता है। इस प्रकार के ऋण देने का उस दशा में कोई लाभ नहीं निकलता है जब कि ऋण बिना आवश्यकताओं के विचार के दिया जाता है। वे लोग जिन की आय के साधन कम हैं इस प्रकार का संगठन नहीं बना सकते हैं। इसी कारण से ऐसे लोगों को भी कृषिसम्बन्धी ऋण पर निर्भर रहना पड़ता है। कृषिसम्बन्धी उन्नति के लिये उधार देना भी एक प्रकार का व्यापार ही होता है। किसानों से लिये दिये गये धन पर नाम मात्र का व्याज लिया जाता है। इस प्रकार का ऋण प्रायः सहकारी समितियों ही द्वारा मिलता है। यह समितियां धनी लोगों के संगठन द्वारा बनाई जाती हैं। यह लोग अपना रुपया किसानों को इसी प्रकार की समितियों द्वारा दिया करते हैं। इस प्रकार का व्यापार अधिकतर पारिवारिक धर्मों पर ही निर्भर रहता है। ऐसा उधार देने से पहले यह देखना पड़ता है कि ऋण देने वाले परिवार की क्या आर्थिक दशा है। अगर उसके परिवार की आर्थिक दशा अच्छी नहीं रहती है तो वह अपना धन सहकारी समितियों में ऋण सम्बन्धी कार्य के लिये नहीं दे सकता है। इस प्रकार से जो व्यक्ति ऋण देता है उसके धन और परिवार में एक घनिष्ट सम्बन्ध रहता है। एक किसान जिसकी आय के साधन अधिक सीमित रहते हैं उसको उधार कठिनाई से मिलता है। उस की योग्यता की तरफ कुछ भी ध्यान नहीं दिया जाता है। एक किसान धन के अभाव के कारण सहकारी समितियों का साझीदार भी बड़ी कठिनाई से हो सकता है। अगर उसके पास कुछ धन है भी तो साझीदार होने के लिये उसको कुछ धन उधार भी लेना पड़ता है। फिर भी उस किसान के कार्य सीमित ही रहते हैं क्योंकि वह अधिक धन नहीं पा सकता है। उसको मालिक की भांति काम करने के लिये उस समय तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है जब तक

उसके पास इस कार्य के लिये धन नहीं आ जाता है। किसान को अपने बाल-बच्चों की शिक्षा के लिये, ब्याह के लिये, रहन-सहन के लिये और अन्य पारिवारिक सम्बन्धी चिन्तायें लगी रहती हैं। इन सब का प्रभाव उसके कृषि-कार्य पर पड़ता है। इन्हीं कारणों से वह धन भी एकत्रित नहीं कर पाता है। इन सब का प्रभाव उस धन पर भी पड़ता है जो वह उधार लेता है। ऐसी दशा में कृषिसम्बन्धी उधार कुछ उसी प्रकार सा है जो दुकान आदि के लिये उधार लिया जाता है। फिर भी इस प्रकार का उधार व्यवसाय सम्बन्धी उधार से नहीं मिलता है। व्यवसाय सम्बन्धी उधार अपना एक अलग रूप रखता है।

कृषि की आर्थिक दशा इस बात पर भी निर्भर करती है कि उसके पूर्वजों ने कितना धन छोड़ा था। इसका प्रभाव किसानों पर प्रधान रूप से पड़ता है। साधारण रूप में यह देखा जाता है कि कि कृषिसम्बन्धी प्रबन्ध के लिये लोग अपनी सम्पत्ति बेच डालते हैं। वे अगर ऐसा नहीं करते हैं तो अपनी सम्पत्ति को रेहन अवश्य कर देते हैं। इस प्रकार से किसानों की प्रत्येक नई पीढ़ी एक नई चीज रेहन करती जाती है। सम्पत्ति के रेहन करने की प्रथा संयुक्त राज्य अमरीका में भी पाई जाती है। १९०० ई० से १९२० ई० मे तक संयुक्त राज्य अमरीका की रेहन सम्बन्धी प्रथा विधान में अधिक बाधा रही। इसका कारण यह था कि चीजों और भूमि का दाम चढ़ गया था। किन्तु इसके बाद से हर एक सामान का भाव गिरने लगा। इसका प्रभाव इस देश की रेहन प्रथा पर पड़ा। इस देश के किसान लोगों ने इसी कारण से योरुप के किसानों की अपेक्षा रेहन पर अधिक धन दिये। संयुक्त राज्य के लोग गांवों या छोटे-छोटे नगरों में रहना अधिक पसंद करते हैं। वे लोग जल्दी ही अवकाश ग्रहण करने के पश्चात् गांवों में जा कर रहते हैं। उधार सम्बन्धी दृष्टि कोण से यह कहना बड़ा कठिन है कि उपज के हेतु लिये गये उधार और खाने आदि के हेतु लिये गये उधार में क्या अंतर है। अगर ऋण मशीनों के खरीदने के लिये लिया जाता है तो यह नहीं कहा जा सकता है कि यह किस प्रकार का ऋण है। इसी तरह अगर खेत वाली नई कुटियों के बनाने के लिये ऋण लिया जाता है तो यह आवश्यक खपत सम्बन्धी ऋण नहीं कहा जा सकता। संयुक्त राज्य अमरीका के दक्षिणी कपास वाले क्षेत्रों के किसानों को उनकी दैनिक जीवन सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये ऋण दिया जाता है। इस प्रकार के ऋण से उनके भोजन का भी काम चलता रहता है। यह ऋण उस समय उनको मिलता है जब कि उनकी फसलें उगती रहती हैं। यह प्रथा कम या अधिक रूप में संयुक्त राज्य अमरीका के उन क्षेत्रों में भी पाई जाती है जिनमें नगदी की फसल खेती होती है। क्रय-विक्रय के लिये भी ऋण लिया जाता है किन्तु इस ऋण में और कृषिसम्बन्धी उधार में अंतर रहता है। कृषिसम्बन्धी ऋण किसानों को मिलता है। इसके अलावा इस प्रकार का ऋण सहकारी समितियों को, गोदाम वालों को और यातायात सम्बन्धी सुविधायें प्रदान करने वालों को भी मिलता है। क्रय-विक्रयसम्बन्धी ऋण केवल थोड़े समय के लिये मिलता है। इस प्रकार का ऋण वाणिज्य सम्बन्धी ऋण कहा जाता है। कृषिसम्बन्धी ऋण प्रायः कृषकों को ही दिया जाता है। कृषकों को स्वावलम्बी होना भी बड़ा अनिवार्य है। इसका प्रभाव उनकी ऋण सम्बन्धी आवश्यकता पर भी पड़ता है। किसानों में प्रायः यह देखा जाता है कि वे अपने खाने पीने वाले सामानों को अधिकतर बाजारों से नहीं लेते हैं। इस सम्बन्ध में वे प्रायः स्वतंत्र रहते हैं। किन्तु इस बात को अधिक बढ़ाना भी उचित नहीं है। किसी-किसी देश के किसानों को खाने-पीने का सामान बाजारों से लेना पड़ता है। संयुक्त राज्य अमरीका में विश्व के किसी देशों की अपेक्षा कृषि अधिक उन्नति पर है। वहां के लोगों ने १९२३ और १९२८ ई० में के बीच में खेतों के कुल उपज के २३.३ प्रतिशत भाग को अपने काम में लगाया था। योरुप और एशिया आदि देशों में छोटे-छोटे खेत बने हुये हैं। इन देशों के किसान अधिकतर उन्हीं फसलों की उपज करते हैं जिनको वे अपने

निजी कार्य में लाते हैं। वे बाजारों में बेचने वाली बहुत कम फसलें पैदा करते हैं। इन कारणों से किसानों की उन आवश्यकताओं में कमी हो जाती है जिसके लिये वे उधार लेना चाहते हैं।

इसके अलावा कृषिसम्बन्धी और भी अनेक विशेष बातें हैं जिनका प्रभाव कृषिसम्बन्धी उधार पर पड़ता है। जो उधार कृषि कार्य के लिये जाता है उसको ९० दिनों में देना पड़ता है। इसमें संदेह नहीं है कि इस प्रकार का जो पशु या फसल सम्बन्धी उधार होता है उसके भुगतान के लिये समय बहुत कम दिया जाता है। इसके भुगतान के लिये किसानों को अपनी उपज जल्द ही बेचनी पड़ती है। इस कारण से उनको दाम भी कम मिलता है। इस प्रकार के उधार की भुगतान के लिये किसानों को कम से कम ६ या ७ महीने का समय मिलना चाहिये क्योंकि किसानों को अपनी उपज को ठीक से बेचने के लिये ७ से ९ महीने का समय की आवश्यकता रहती है। इसके अलावा किसानों को यह उधार जो दूध देने वाली गायों के खिलाने के लिये लेते हैं एक ही महीने में उसका भुगतान करना पड़ता है। किसानों की फसलों को पकने के लिये कुछ महीनों की आवश्यकता पड़ती है। इसके अलावा किसानों को भूमि के लिये, मशीनों के लिये और कुटिया आदि बनाने के लिये अलग से धन को व्यय करना पड़ता है। इससे यह पता चलता है कि किसान बेचारे किस स्थिति में पड़े रहते हैं। यही हाल चरवाहों का है इनके द्वारा लिये गये उधार और दूध या मक्खन के बिकने से जो पैसा आता है उसमें केवल थोड़े ही दिनों का अंतर पड़ता है। इन बीच में वह दूसरे संकट में पड़ जाता है। उसको अधिक धन चौपायों में व्यय करना पड़ता है। किसानों को कृषि तथा वाणिज्य सम्बन्धी उधार से कुछ लाभ उसी समय मिल सकता है जब कि खेती उसके विकास-अवस्था के अनुसार की कारखानों में सामानों के बनाने का कार्य अलग-अलग ढंगों पर होता है। इसके लिये कारखानों में अलग-अलग मशीनें भी होती हैं। इनके प्रबन्ध में कोई विशेष अंतर भी नहीं होता है। इस प्रकार के कारखानों को उधार आवश्यकता केवल थोड़े समय के लिये रहती है। ऐसे कारखाने सामानों को जो कि जल्द तैयार हो जाता है बेचकर उधार का भुगतान कर देते हैं। इसके बाद इन कारखानों में दूसरा सामान बनने लगता है। इस प्रकार के ढंग से कारखाने थोड़े समय में ही आसानी से अपने उधार का भुगतान किया करते हैं। कृषि में अभी इस प्रकार की उन्नति नहीं हो सकी है। केवल चारा वाली फसलें ऐसी हैं जो विकास-अवस्था के अनुसार पैदा की जाती हैं। इस सम्बन्ध में किसान यह काम करता है कि जिस खेत की चारावाली फसल तैयार रहती वह पशुओं को खिलाता रहता है। इस समय वह दूसरे खेतों में इन फसलों को इस हिसाब से बोता है कि इसके समाप्त होने तक उन खेतों की फसलें तैयार हो जाती हैं। विकास-अवस्था सम्बन्धी साधन पशुओं के साथ भी अपनाया जाता है। जो पशुओं के छोटे-छोटे बच्चे रहते हैं उनको बढ़ने के समय चराई वाले क्षेत्रों में चरने के लिये छोड़ देते हैं। इसके बाद उन पशुओं को कृषिवाली क्षेत्रों में मोटा बनाया जाता है। इस प्रकार के साधन में विकास की आशा जल्दी नहीं की जा सकती है। इन दोनों प्रकार के कार्य क्षेत्र में विशेष अंतर भी है।

कृषिसम्बन्धी उधार में सबसे अधिक महत्व भय सम्बन्धी समस्या का रहता है। किसान लोग उस दशा में बड़े संकट में पड़ जाते हैं जबकि उनकी फसलें मौसमी क्षति या किसी अन्य कारणों से नष्ट हो जाती हैं। ऐसी दशा में वह लिये हुये उधार का भी भुगतान नहीं कर सकता है।

संयुक्त राज्य अमरीका में १९०९ से १९१९ ई० तक फसलों को अधिक हानि पहुँची थी ऐसी फसलों का ब्योरा निम्न प्रकार की तालिका में दिया गया है।

फसलों का नाम	क्षति प्रतिशत में
गेहूँ	२८.७७
कार्न (मक्का)	३१.९९
जौ	२४.९८
फ्लैक्स का बीज	३६.४४
चावल	१९.०४
जई	२९.६५
सूखी घास	२०.३५
आलू	३०.१२
तम्बाकू	२०.३५
कपास	३५.४९

इस प्रकार की औसत क्षति सम्बन्धी आँकड़ा उन लोगों से मिला था जो कृषि-विषय की सूचना देने वाले होते हैं। इसमें कुछ कमी या अधिकता भी हो सकती है। उन सूचना देने वालों ने यह भी बतलाया था कि इस प्रकार से जिन फसलों को हानि पहुंची है उसका कारण या तो मौसमी क्षति है या इन फसलों में पौधे वाले रोग लगगये थे। इनमें से कुछ फसलों को कीडे मकोड़ों ने भी हानि पहुंचाई थी। किसी-किसी वर्ष कई कृषि वाले क्षेत्रों में इससे भी अधिक हानि हुई है। कहीं कहीं पर २ या ३ सालों तक लगातार फसलें पूर्ण रूप से नष्ट हो गई थीं। जब इस प्रकार से फसलें नष्ट हो जाती है तो इसका सबसे अधिक प्रभाव उन बैंकों पर पड़ता है। जो कृषिसम्बन्धी उधार देते हैं। ऐसी दशा में किसानों द्वारा लिये गये उधार धन का भुगतान करना बड़ा ही कठिन हो जाता है। अगर फसलों की उपज कम होती है तो ऐसी दशा में चीजों का दाम बढ़ जाता है। इस प्रकार से किसान अपने लिये हुये ऋण का भुगतान कर सकता है। इसी प्रकार से जब फसलों की उपज अधिक होती है तो उस दशा में चीजों का दाम बहुत गिर जाता है। किसानों की आय में बहुत कमी हो जाती है। ऐसी परिस्थिति में किसान लोग अपने उधार के भुगतान में असमर्थ हो जाते हैं। इस प्रकार से दिये गये उधार के भुगतान में भय उत्पन्न हो जाता है। ऐसी दशा में किसान लोग अपने उधार के भुगतान के लिये ही नहीं असमर्थ हो जाते है। वरन् वे अपनी फसलों को भी नहीं बेचते हैं। वे बाजार के भाव के चढ़ने की प्रतीक्षा करते हैं। जिससे उनको कुछ अधिक दाम मिल जाते। जो उधार चरवाहे लोग लेते हैं उनके भुगतान में इतना भय नहीं रहता है। कभी-कभी ऐसा होता है कि उनके चौपायों को रोगों से हानि पहुँती है। बीमारी के कारण उनके चौपाये आदि अधिक सख्या में मर जाते हैं। बाढ़ या तूफान आदि से भी चौपायों को हानि पहुंचती है। चरवाहों के पशुओं को उस दशा भी हानि पहुंचती है जब देश में सूखा पड़ जाता है। उनको खाने के लिये कुछ नहीं मिलता है। फिर भी इसमें संदेह नहीं है कि पशु सम्बन्धी भय का अवसर कृषिसम्बन्धी भय की अपेक्षा बहुत कम रहता है। प्रायः यह देखा जाता है कि चरवाहों के पशुओं को इतनी हानि नहीं पहुचती है। ऐसा भी देखने में आता है कि चरवाहे लोग जो उधार लेते हैं उनको उसके भुगतान में कोई विशेष कठिनाई नहीं होती है फिर भी इस प्रकार का उधार भय रहित नहीं है। इस सम्बन्ध में उन बैंकों को अधिक भय रहता है जो छोटी-छोटी फसलों पर उधार देते हैं। बड़ी-बड़ी फसलों पर जो उधार दिया जाता है। उसमें भय बहुत कम रहता है। इसका कारण यह है कि इनकी छोटी फसलें की अपेक्षा अधिक होती है। इसका दूसरा कारण यह भी है कि इस प्रकार की फसलों की खेती अधिक क्षेत्र में होती है। छोटी छोटी फसलें होती है उनकी उपज अधिकतर स्थानीय आवश्यकताओं के आधार पर ही होती है। इसी कारण से इन फसलों को मौसमी क्षति को भय हर समय बना रहता है। उधार सम्बन्धी भुगतान का भय उन क्षेत्रों में भी बना रहता है। जहा पर व्यवसायिक फसलों की उपज होती है। इस प्रकार का भय उस खेती के लिये भी बना रहता है जो किसी एक विशेष आधार पर होती है। जिस क्षेत्र में पशु पालन और खेती का कार्य मिला हुआ रहता है। वहा पर इस प्रकार के उधार के भुगतान न करने का भय कम रहता है। इस प्रकार के उधार के भुगतान न करने का भय सबसे अधिक खेती वाले क्षेत्रों में रहता है। जहां पर किसानों का केवल एक सहारा उनका भाग्य रहता है। कृषि व्यवसाय और परिवार के रहन सहन में एक घनिष्ट सम्बन्ध है। किसान सबसे पहले अपने परिवार की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। इसके बाद वह फिर उधार आदि के भुगतान की तरफ अपना ध्यान देता है। उधार सम्बन्धी भुगतान न करने का वास्तव में वही भय माना जाता है जो कृषि सम्बन्ध में उधार दिया जाता है। खेती की फसलों को आग या तूफान से नष्ट होने का भय बना रहता है। यह भय अधिकतर उस समय तक के लिये बना रहता है जब तक अनाज किसानों के घर नहीं पहुँच जाता है। अनाज के भाव में कमी आने का भी भय किसानों को बना रहता है। भूमि

निजी कार्य में लाते हैं। वे बाजारों में बेचने वाली बहुत कम फसलें पैदा करते हैं। इन कारणों से किसानों की उन आवश्यकताओं में कमी हो जाती है जिसके लिये वे उधार लेना चाहते हैं।

इसके अलावा कृषिसम्बन्धी और भी अनेक विशेष बातें हैं जिनका प्रभाव कृषिसम्बन्धी उधार पर पड़ता है। जो उधार कृषि कार्य के लिये जाता है उसको ९० दिनों में देना पडता है। इसमें संदेह नहीं है कि इस प्रकार का जो पशु या फसल सम्बन्धी उधार होता है उसके भुगतान के लिये समय बहुत कम दिया जाता है। इसके भुगतान के लिये किसानों को अपनी उपज जल्द ही बेचनी पड़ती है। इस कारण से उनको दाम भी कम मिलता है। इस प्रकार के उधार की भुगतान के लिये किसानों को कम से कम ६ या ७ महीने का समय मिलना चाहिये क्योंकि किसानों को अपनी उपज को ठीक से बेचने के लिये ७ से ९ महीने का समय की आवश्यकता रहती है। इसके अलावा किसानों को वह उधार जो दूध देने वाली गायों के खिलाने के लिये लेते हैं एक ही महीने में उसका भुगतान करना पड़ता है। किसानों की फसलों को पकने के लिये कुछ महीनों की आवश्यकता पड़ती है। इसके अलावा किसानों को भूमि के लिये, मशीनों के लिये और कुटिया आदि बनाने के लिये अलग से धन का व्यय करना पड़ता है। इससे यह पता चलता है कि किसान बेचारे किस स्थिति में पड़े रहते हैं। यही हाल चरवाहों का है इनके द्वारा लिये गये उधार और दूध या मक्खन के बिकने से जो पैसा आता है उसमें केवल थोड़े ही दिनों का अंतर पड़ता है। इस बीच में वह दूसरे संकट में पड़ जाता है। उनको अधिक धन चौपायों में व्यय करना पड़ता है। किसानों को कृषि तथा वाणिज्य सम्बन्धी उधार में कुछ लाभ उसी समय मिल सकता है जब कि खेती उनके विकास-अवस्था के अनुसार की कारखानों में सामानों के बनाने का कार्य अलग-अलग ढंगों पर होता है। इनके लिये कारखानों में अलग-अलग मशीनें भी होती हैं। इनके प्रबन्ध में कोई विशेष अंतर भी नहीं होता है। इस प्रकार के कारखानों को उधार आवश्यकता केवल थोड़े समय के लिये रहती है। ऐसे कारखाने सामानों को जो कि जल्द तैयार हो जाता है बेचकर उधार का भुगतान कर देते हैं। इसके बाद इन कारखानों में दूसरा सामान बनने लगता है। इस प्रकार के ढग से कारखाने थोड़े समय में ही आसानी से अपने उधार का भुगतान किया करते हैं। कृषि में अभी इस प्रकार की उन्नति नहीं हो सकी है। केवल चारा वाली फसलें ऐसी हैं जो विकास-अवस्था के अनुसार पैदा की जाती हैं। इस सम्बन्ध में किसान यह काम करता है कि जिस खेत की चारावाली फसल तैयार रहती वह पशुओं को खिलाता रहता है। इस समय वह दूसरे खेतो में इन फसलों को इस हिसाब से बोता है कि इसके समाप्त होने तक उन खेतों की फसलें तैयार हो जाती है। विकास-अवस्था सम्बन्धी साधन पशुओं के साथ भी अपनाया जाता है। जो पशुओं के छोटे-छोटे बच्चे रहते हैं उनको बढ़ने के समय चराई वाले क्षेत्रों में चरने के लिये छोड़ देते हैं। इसके बाद उन पशुओं को कृषिवाली क्षेत्रों में मोटा बनाया जाता है। इस प्रकार के साधन में विकास की आशा जल्दी नहीं की जा सकती है। इन दोनों प्रकार के कार्य क्षेत्र में विशेष अंतर भी है।

कृषिसम्बन्धी उधार में सबसे अधिक महत्व भय सम्बन्धी समस्या का रहता है। किसान लोग उस दशा में बड़े संकट में पड जाते हैं जबकि उनकी फसलें मौसमी क्षति या किसी अन्य कारणों से नष्ट हो जाती हैं। ऐसी दशा में वह लिये हुये उधार का भी भुगतान नहीं कर सकता है।

संयुक्त राज्य अमरीका में १९०९ से १९१९ ई० तक फसलों को अधिक हानि पहुँची थी ऐसी फसलों का ब्योरा निम्न प्रकार की तालिका में दिया गया है।

फसलों का नाम	क्षति प्रतिशत में
गेहूँ	२८.७७
कार्न (मक्का)	३१.९९
जौ	२४.५८
फ्लैक्स का बीज	३६.४४
चावल	१९.०४
जई	२५.६५
सूखी घास	२०.३५
आलू	३०.१२
तम्बाकू	२०.३५
कपास	३५.४९

इस प्रकार की औसत क्षति सम्बन्धी आँकड़ा उन लोगों से मिला था जो कृषि-विषय की सूचना देने वाले होते हैं। इसमें कुछ कमी या अधिकता भी हो सकती है। उन सूचना देने वालों ने यह भी बतलाया था कि इस प्रकार से जिन फसलों को हानि पहुँची है उसका कारण या तो मौसमी क्षति है या इन फसलों में पौधे वाले रोग लगगये थे। इनमें से कुछ फसलों को कीडे मकोड़ों ने भी हानि पहुंचाई थी। किसी किसी वर्ष कई कृषि वाले क्षेत्रों में इससे भी अधिक हानि हुई है। कहीं कहीं पर २ या ३ सालों तक लगातार फसलें पूर्ण रूप से नष्ट हो गई थीं। जब इस प्रकार से फसलें नष्ट हो जाती है तो इसका सबसे अधिक प्रभाव उन बैंकों पर पड़ता है। जो कृषिसम्बन्धी उधार देते हैं। ऐसी दशा में किसानों द्वारा लिये गये उधार धन का भुगतान करना बड़ा ही कठिन हो जाता है। अगर फसलों की उपज कम होती है तो ऐसी दशा में चीजों का दाम बढ़ जाता है। इस प्रकार से किसान अपने लिये हुये ऋण का भुगतान कर सकता है। इसी प्रकार से जब फसलों की उपज अधिक होती है तो उस दशा मे चीजों का दाम बहुत गिर जाता है। किसानों की आय में बहुत कमी हो जाती है। ऐसी परिस्थिति में किसान लोग अपने उधार के भुगतान में असमर्थ हो जाते हैं। इस प्रकार से दिये गये उधार के भुगतान में भय उत्पन्न हो जाता है। ऐसी दशा में किसान लोग अपने उधार के भुगतान के लिये ही नहीं असमर्थ हो जाते हैं। वरन् वे अपनी फसलों को भी नहीं बेचते हैं। वे बाजार के भाव के चढ़ने की प्रतीक्षा करते हैं। जिससे उनको कुछ अधिक दाम मिल जाते। जो उधार चरवाहे लोग लेते हैं उनके भुगतान में इतना भय नहीं रहता है। कभी-कभी ऐसा होता है कि उनके चौपायों को रोगों से हानि पहुँती है। बीमारी के कारण उनके चौपाये आदि अधिक सख्या में मर जाते हैं। बाढ़ या तूफान आदि से भी चौपायों को हानि पहुंचती है। चरवाहों के पशुओं को उस दशा भी हानि पहुंचती है जब देश में सूखा पड़ जाता है। उनको खाने के लिये कुछ नहीं मिलता है। फिर भी इसमें सदेह नहीं है कि पशु सम्बन्धी भय का अवसर कृषिसम्बन्धी भय की अपेक्षा बहुत कम रहता है। प्राय: यह देखा जाता है कि चरवाहों के पशुओं को इतनी हानि नहीं पहुंचती है। ऐसा भी देखने में आता है कि चरवाहे लोग जो उधार लेते हैं उनको उसके भुगतान मे कोई विशेष कठिनाई नहीं होती है फिर भी इस प्रकार का उधार भय रहित नहीं है। इस सम्बन्ध मे उन बैंकों को अधिक भय रहता है जो छोटी-छोटी फसलों पर उधार देते हैं। बडी-बड़ी फसलों पर जो उधार दिया जाता है। उसमें भय बहुत कम रहता है। इसका कारण यह है कि इनकी छोटी फसलें की अपेक्षा अधिक होती है। इसका दूसरा कारण यह भी है कि इस प्रकार की फसलों की खेती अधिक क्षेत्र मे होती है। छोटी छोटी फसलें होती हैं उनकी उपज अधिकतर स्थानीय आवश्यकताओं के आधार पर ही होती है। इसी कारण से इन फसलों को मौसमी क्षति को भय हर समय बना रहता है। उधार सम्बन्धी भुगतान का भय उन क्षेत्रों में भी बना रहता है। जहां पर व्यवसायिक फसलों की उपज होती है। इस प्रकार का भय उस खेती के लिये भी बना रहता है जो किसी एक विशेष आधार पर होती है। जिस क्षेत्र में पशु पालन और खेती का कार्य मिला हुआ रहता है। वहां पर इस प्रकार के उधार के भुगतान न करने का भय कम रहता है। इस प्रकार के उधार के भुगतान, न करने का भय सबसे अधिक खेती वाले क्षेत्रों में रहता है। जहां पर किसानों का केवल एक सहारा उनका भाग्य रहता है। कृषि व्यवसाय और परिवार के रहन सहन मे एक घनिष्ट सम्बन्ध है। किसान सबसे पहले अपने परिवार की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। इसके बाद वह फिर उधार आदि के भुगतान की तरफ अपना ध्यान देता है। उधार सम्बन्धी भुगतान न करने का वास्तव मे वही भय माना जाता है जो कृषि सम्बन्ध में उधार दिया जाता है। खेती की फसलों को आग या तूफान से नष्ट होने का भय बना रहता है। यह भय अधिकतर उस समय तक के लिये बना रहता है जब तक अनाज किसानों के घर नहीं पहुँच जाता है। अनाज के भाव में कमी आने का भी भय किसानों को बना रहता है। भूमि

का मूल्य मकानों के मूल्य की अपेक्षा उसकी मांग पर अधिक निर्भर रहता है। इसका कारण यह है कि मकान सरलता पूर्वक धन द्वारा खरीदा जा सकता है। प्रायः यह भी देखा जाता है कि जब भूमि के मूल्य में कमी होती है तो इसका प्रभाव भूमि के एक बड़े क्षेत्र तक पड़ता है। इसका एक उदाहरण हम को संयुक्त राज्य अमरीका के उत्तरी मध्य भाग से मिलता है जहां पर भूमिसम्बन्धी मूल्य की कमी का प्रभाव १८८० से १९०० ई० तक था। भूमि की मूल्यसम्बन्धी दशा संयुक्त राज्य अमरीका के गेहूं खेती वाले क्षेत्रों में एक भिन्न रूप से पाई जाती है। इसके लिये संयुक्त राज्य अमरीका का उत्तरी पश्चिमी भाग अधिक प्रसिद्ध है। इस क्षेत्र में वर्षा के दिनों में भूमि का मूल्य घटता बढ़ता रहता है।

कभी यह सोचा जाता था कि कृषिसम्बन्धी उन्नति होने पर इसकी आर्थिक दशा में भी परिवर्तन हो जायेगा। ऐसा हो जाने से कृषिसम्बन्धी बाधाओं में भी कमी आ जायेगी। किन्तु अभी ऐसा नहीं हो सकता है प्रायः यह देखा जाता है। कि जिन भागों में खेती बड़े-बड़े विस्तार वाले क्षेत्रों में होती है, ऐसे क्षेत्रों में मजदूरों की भी संख्या में कमी रहती है। कृषिसम्बन्धी उधार भी बड़े-बड़े रूप में दिये जाते हैं। यह भी देखा जाता है कि इस प्रकार का उधार लोगों को अक्सर दिया जाता है। इस प्रकार के उधार प्रायः व्यवसायिक ढंग पर दिये जाते हैं। इस दशा में भी धीरे-धीरे परिवर्तन हो रहा है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि जिन क्षेत्रों में खेती आधुनिक प्रणाली द्वारा होती है, उन क्षेत्रों में मशीनों और चौपायों आदि की अधिक आवश्यकता रहती है। इसके लिये अधिक व्यय भी करना पड़ता है। ऐसे क्षेत्रों मे धन का अभाव उन्नति के लिये एक बाधा का रूप उपस्थित करता है। धन की कमी के कारण भूमि भी खेती की आवश्यकतानुसार नहीं खरीदी जा सकती है। धन का उपयोग उस दशा में होना बड़ा कठिन है जब की उधार इस आधार पर न दिया जायेगा कि उधार लेने वाले को अपना खेत रखना अनिवार्य है। ऐसा करने से लोगों को उधार के भुगतान करने की भी चिन्ता अधिक रहेगी। धन का प्रवाह जल्दी-जल्दी होता रहे इसके लिये यह भी आवश्यकता है कि समबद्ध खेत सम्बन्धी प्रणाली को अपनाया जावे। कृषिसम्बन्धी जो उधार दिये जाते हैं उसके अवधिकाल को भी जाना जा सकता है। इस सम्बन्ध में जो छोटे-छोटे उधार लिये जाते हैं उनका एकीकरण भिन्न-भिन्न प्रकार वाली समितियों और अर्ध प्रजा उधारसम्बन्धी विद्यालयों द्वारा हो जाना चाहिये। ऐसा योरुप और संयुक्त राज्य अमरीका में किया जाता है। इस प्रकार का ढंग अगर अपनाया जावे तो सरलता पूर्वक यह पता चल जायेगा कि किस प्रकार की उधार सम्बन्धी अवश्यकता अधिक रहती है। साधारण रूप से ऐसी आवश्यकता तीन प्रकार की होती है। (१) जल्दी भुगतान सम्बन्धी उधार (२) दीर्घकालीन उधार सम्बन्धी भुगतान और (३) मध्यवर्ती सम्बन्धी उधार। संयुक्त राज्य अमरीका में जल्दी भुगतान करने वाला उधार नियमानुसार केवल ६ महीने के लिये दिया जाता है। इसी प्रकार से दीर्घकालीन सम्बन्धी उधार नियमानुसार तीन वर्ष से पांच या इससे भी अधिक वर्षों के लिये और मध्यवर्ती सम्बन्धी उधार ९ महीने से ३ वर्ष तक के लिये दिया जाता है। जल्दी भुगतान करने वाला उधार प्रायः मजदूरी देने के लिये पशुओं का चारा आदि खरीदने के लिये, खेतों में खाद डालने के लिये, खेतों में बोने के लिये, बीज और फसलों को रोग आदि से रक्षा के लिये लिया जाता है। इस के अलावा इस प्रकार का उधार इस लिये भी लिया जाता है कि जिससे आवश्यकता सम्बन्धी सामान जैसे बोरा, बोतल, पीपा सुतली या और भी अन्य प्रकार के पात्र खरीद जा सकें। खेती वाले पौधे को लगाने के लिये, फसलों की देख भाल करने के लिये और फसलों को पकजाने पर काटने के लिये किसानो को मजदूरी देनी पड़ती है। इसी मजदूरी के भुगतानके लिये लोगों को उधार लेना पड़ता है। जो धन उधार लिया जाता है उसका कुछ अंश उस मजदूर को भी दिया जाता है जो चौपायों की देख रेख करता है। कुछ किसानो को उधार उनका खर्चा चलाने के लिये भी दिया जाता है क्योंकि ऐसे किसानो की जब तक फसलें तैयार

नहीं हो जाती है उनके पास खाने को कुछ नहीं रहता है। अधिकतर किसान लोग अपने मजदूरों की मजदूरी आदि कुछ अन्य प्रकार के खर्चों को छोड़ कर अपने दैनिक आय से ही दे देते हैं। जो उधार मजदूरों की मजदूरी देने के लिये लिया जाता है उसका पहली दशा के अनुसार भुगतान करना बड़ा कठिन हो जाता है। इसके अलावा उसी उधार में से भूमि सम्बन्धी विकास के लिये और उन पशुओं की देख रेख के लिये जो चरागाहों में चरते हैं मजदूरी देना पड़ता है। खेतों में बीज बोने के लिये जो उधार लिया जाता है वह भी बड़ा आवश्यक है। इस प्रकार के उधार से गेहूँ, आलू और वाटिकाओं आदि की फसलें बोई जाती हैं। इस सम्बन्ध में लिये गये उधार का भुगतान प्राय. तीन से नौ महीनों के भीतर हो जाता है। इस समय तक यह भुगतान केवल उसी दशा में होता है जब कि फसलों को किसी भी प्रकार की हानि नहीं पहुंचती है। खेतों में खाद डालने के लिये उधार लिया जाता है वह भी एक महत्व वाला उधार है। इस उधार से अधिक लाभ संयुक्त राज्य अमरीका के पुराने कपास वाले क्षेत्रों को होता है। इस उधार में खाद इन्हीं क्षेत्रों में डाली जाती है। जिससे कपास की अच्छी उपज होती है। पशु सम्बन्धी जो उधार लिया जाता है उसका भुगतान ६ महीनों में हो जाता है। चरवाहों को इस उधार की इस लिये आवश्यकता पड़ता है कि उनको अपने चौपायों के चराने के लिये मजदूरी भी देनी पड़ती है। इसकी पूर्ति यह लोग उधार द्वारा कर देते हैं। पशुओं को चारा खिलाने के लिये भी उधार मिलता है। यह उधार किसानों को इतना नहीं मिलता है कि जिसके द्वारा यह लोग अपने चौपायों को अच्छा चारा खाने के रूप में दे सकें। किसानों को इस लिये भी उधार मिलता है कि जिससे उनको अपनी फसलों को रोकने के लिये कोई आर्थिक कठिनाई न उठाना पड़े। इस प्रकार का उधार किसानों को उसी आधार पर मिलता है जब कि उनकी उपज गोदाम में भली भांति सुरक्षित रहती है। इसके साथ-साथ भाव के गिरने का भी भय न रहना चाहिये। किसानों के लिये यह निर्णय करना बड़ा ही कठिन हो जाता है। किस परिस्थिति में अनाज को रोका जाय और किस परिस्थिति में बेचा जाये। ऐसी दशा में मूल्य सम्बन्धी अधिक अन्तर रहना बहुत ही अनिवार्य है। ऐसी दशा का अनुमान कृषि संघ समितियां किसानों की अपेक्षा अच्छा लगा सकती हैं। इस प्रकार की समितियों से किसानों को लाभ भी पहुंचता है।

मध्यवर्ती आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये भी उधार मिलता है। इस प्रकार का ऋण घर बनाने के लिये दिया जाता है। इस प्रकार का ऋण भूमि सम्बन्धी उन्नति के लिये भी मिलता है। इस ऋण के द्वारा खेती के लिये मशीनें खरीदी जाती हैं। बाग आदि लगाये जाते हैं। फसलों की रक्षा के लिये खेतों की सीमा बन्दी की जाती है। नालियां भी बनाई जाती हैं। भूमि को खेती योग्य बनाया जाता है। जंगल साफ किये जाते हैं। इसी प्रकार से इस ऋण द्वारा दूध देने वाली गायें खरीदी जाती हैं और फलों के भंडार को सुरक्षित भी रखा जाता है। इनमें से जो ऋण घर बनाने के लिये, फलों के स्टाक को सुरक्षित रखने के लिये या भूमि को खेती योग्य बनाने के लिये लिया जाता है उस का भुगतान ६ महीने से ३ वर्ष के भीतर नहीं किया जाता है। इस सम्बन्ध में लिये गये ऋण का भुगतान पाच वर्षों में किया जाता है। ऋण लेने वाला पाच वर्ष के लिये अपनी सम्पत्ति को रेहन रख देता है। किसानों की यह इच्छा रहती भी है कि वे इस प्रकार से लिये गये ऋण का भुगतान अपनी फसलों द्वारा २ या ३ वर्षों में कर दें। इसी लिये लोग यह चाहते हैं कि उनके खेतों को रेहन रख कर कोई दूसरा छोटा सामान रेहन रख लिया जावे। अक्सर यह भी देखा जाता है कि लोग पहले से ऋण लेकर अपना खेत रेहन कर देते हैं। इस के बाद उसी रेहन पर और अधिक धन माँगने लगते हैं जो असम्भव रहता है। संयुक्त राज्य अमरीका में यह भी प्रथा पाई जाती है कि नोट प्रणाली पर किसानों को ऋण दिया जाता है। जब तक किसान लोग लिये हुये ऋण का भुगतान नहीं कर देते हैं वह इसी नोट को फिर से नवीन कराया करता है। ऐसी प्रथा

युद्ध काल या अन्य किसी संकट-परिस्थिति में काम नहीं करती है। क्योंकि ऐसे समय में धन का अधिक व्यय रहता है। ऐसे समय में जो उधार पशुओं के पालने के लिये, दूध देने वाली गायें खरीदने के लिये फलों को सुरक्षित रखने के लिये या कृषिसंबंधी मशीनों को खरीदने के लिये दिया जा चुका था। उसके भुगतान के लिये अधिक जोर दिया जाता है। उधार लेने वालों से यह कहा जाता है कि उधार के भुगतान वह उसी समय के भीतर कर दें जिस समय के लिये उनसे कहा गया था। दीर्घकाल के लिये जो उधार दिया जाता है उसको रेहन द्वारा सुरक्षित रखते है। ऐसा ऋण प्राय: उसी समय मिलता है जब कि उधार लेने वाला अपनी सम्पत्ति या खेत को रेहन रख देता है। सयुक्तराज्य अमरीका में इस प्रकार के उधार के लिये किसान लोग अपना खेत ५ से १० वर्ष तक के लिये रेहन रख सकते हैं। अगर किसान इस से भी अधिक समय के लिये उधार लेना चाहता है तो उसको उधार के भुगतान न होने के समय तक अपने खेत को रेहन करना पड़ता है। इस प्रकार की रेहन संबंधी प्रथा योरुप मे बहुत प्रचलित है। योरुप में बड़े-बड़े उधारों को दो भाग में बाट देते हैं। हर एक भाग का व्याज एक दूसरे से भिन्न रहता है। इस प्रकार से अपने उधार का प्रथम भाग को वह पहले भुगतान कर देता है। इसके बाद फिर दूसरे भाग का भुगतान करता है किन्तु उसको अपना खेत एक ही बार रेहन रखना पड़ता है।

प्राय. यह भी देखा जाता है कि कृषिसबधी उधार में जो धन लगा रहता है उसका उलट फेर बहुत धीरे-धीरे होता है। इसी कारण से बैंकों को भी इस प्रकार के उधार देने में कठिनाई होती है। एरिक वोल मैन साहब ने जो एक अमरीकन थे १८९६ ई० मे यह लिखा था कृषिसबधी जो उधार बैंक देता है वह एक कष्ट देने वाली प्रणाली है। किसान लोग यह भी शिकायत करते हैं कि बैंक वाले उनके हित का उस अंश तक ध्यान नहीं रखते हैं जैसे वे व्यापारियों का रखते है। बैंक भी किसानों को स्वतंत्र रूप से उधार देते थे। इस प्रकार के उधार के लिये बैंक-नोट मिलते थे। कुछ समय बाद इस संबंध में कठिनाईयां उपस्थित हुई। फलस्वरूप १८६४ ई० मे नेशनल बैंकिंग नियम पास हुआ। इसके अनुसार बैंकों को यह मना कर दिया गया कि वे उधार के सुरक्षा हेतु खेत आदि रेहन न रक्खा करे। कृषि वाले क्षेत्रों मे भी बैंक खोले गये। ५०,००० डालर उधार देने के लिये बैंकों को दिया गया। किसान को जितने धन की आवश्यकता होती थी। उसको अधिकतर वे व्यापारियों या कृषिसंबधी मशीन बनाने वालो से ले लिया करते थे। धीरे-धीरे बैंकों ने भी उधार देने वालों की सख्या में वृद्धि कर दी। १९०० ई० मे नेशनल बैंकिंग नियम में सुधार किया गया। इस सुधार का यह फल निकला कि बैंकों की सख्या बढ़ गई। ग्रामीण क्षेत्रों में भी बैंक खुल गये। इसके बाद १९१३ ई० मे सघ कर सम्बन्धी नियम पास हुआ। इस नियम का भी प्रभाव लोगों पर अधिक पड़ा। इस नियम द्वारा बैंकों को यह अधिकार मिल गया कि वे थोड़ा बहुत ऋण खेतों के रेहन के ऊपर दिया करें। सघ संरक्षण परिषद ने भी इस सम्बन्ध में अपनी उदारता का परिचय दिया। इस परिषद ने बैंकों के पास इतना धन दे दिया कि जिससे वे लोग ऋणसबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें। इस परिषद ने यह भी आज्ञा दे दी कि किसानों को कृषिसबंधी मशीनों के खरीदने के लिये और चौपाये आदि को भी खरीदने के लिये ६ महीने के समय तक के लिये ऋण दिया जावे। धीरे-धीरे *कृषि-ऋण सम्बन्धी प्रणाली मे परिवर्तन होता* गया। १९१७ ई० में सघ कृषि-ऋण प्रणाली की स्थापना की गई। इसके साथ-साथ १२ प्रादेशिक बैंक और जाईस्टस्टाक लैंड बैंक की स्थापना किसानों को कृषिसबंधी ऋण देने के लिये हुई। किसान लोग जो ऋण लेते थे। उसके बदले में वे लोग अपना खेत रेहन रख देते थे। इस प्रकार के ऋण से किसान अपने लिये चौपाये या खेती के लिये भूमि आदि खरीदते थे। इसी ऋण से वे लोग खेती की मशीनें और खेत मे डालने के लिये खाद भी खरीदते थे। पांच वर्षों से कम और चालीस वर्ष से अधिक समय के लिये किसी प्रकार का ऋण रेहन पर नहीं

मिलता था। मध्यवर्ती ऋण में एक और नियम की व्यवस्था १९२३ ई० में की गई। इस नियम के अनुसार एक मध्यवर्ती ऋण सम्बन्धी बैंक की स्थापना हुई। मध्यवर्ती ऋण-सम्बन्धी बैंक की स्थापना प्रत्येक संघ खेत सबधी उधार जिलों मे की गई। इस प्रकार के जिलों की सख्या १२ थी। इनका प्रबन्ध संघ खेत उधार सम्बन्धी बैंकों द्वारा होता था। इन बैंकों का मेल संघ-खेत सम्बन्धी ऋण-परिषद् से रहता है। यह परिषद् वाशिंग्टन में स्थित है। यह परिषद् कृषिसंबधी ऋण देने वाले बैंकों के ऋण-पत्र या अन्य सरक्षण वाले पत्र खरीद सकता है। बैंक वाले ऋण किसानों को सीधे नहीं देते हैं। वे लोग ऋण केवल सहकारी समितियों को ही देते हैं। इस प्रकार के ऋण के भुगतान का समय ६ महीने से तीन वर्ष तक रहता है। साधारणत: धन ऋण-पत्रों को बेच कर इकट्ठा किया जाता है। केवल वही ऋण-पत्र बेचे जाते हैं जिन की थोड़ी अवधि होती है। १९२३ ई० में एक नियम पास किया गया। इस नियम के अनुसार संघ सरक्षण बैंकों को ९ मास तक कृषि वाले पत्र में कटौती करने का अधिकार मिला है। १९२६ ई० में ऐसे ६ से ९ और ३ से ६ महीने वाले ऋ० पत्र थे उनमें कटौती की गई थी। यह कटौती १९२३ ई० के नियम के अनुसार हुई थीं। १९२७ ई० मे संघ खेत सम्बन्धी ऋण प्रणाली द्वारा १,८२,५०,००,०० डालर ऋण दिया गया था। यह ऋण खेतों के रेहन के आधार पर दिया गया था। बीमा वाली कम्पनियों ने भी १,९ ,९०,००,००० डालर ऋण दिया था। इन दोनो साधनों द्वारा संयुक्त राज्य अमरीका का ४० प्रतिशत खेत रेहन रखा गया है। कृषि ऋण-संघ सम्बन्धी प्रणाली का व्यापार प्रति वर्ष १०,००,००,००० डालर के रेट से बढ़ रहा है। मध्यवर्ती ऋण सम्बन्धी बैंक का बहुत कम विकास हुआ है। इस बैंक ने पाच वर्षों के भीतर (१९२३ से १९२७ ई० तक) केवल ३७,४०,००,००० डालर का ऋण सहकारी समितियों को दिया था। इसी बैंक को २५,७०,००,००० डालर का धन कटौती द्वारा मिला था। इस धन का भी अधिक अंश ऋण मध वृद्धि और चौपायों सम्बन्धी ऋण कम्पनियों को दे दिया था। सयुक्त राज्य अमरीका के कृषि ऋण सम्बन्धी प्रणाली के अनुसार किसानों को भी ऋण मिलना चाहिये जिससे कि वे लोग खेती के लिये भूमि खरीद सकें। इस प्रणाली के अनुसार उन अच्छे किसानों को भी ऋण मिलना चाहिये जो कम उपजाऊ भाग में आबाद हैं।

योरुप में भी दो प्रधान कृषि-ऋण सम्बन्धी प्रणालियां पाई जाती हैं। एक जर्मनी में और दूसरी फ्रांस में। जर्मन प्रणाली में प्रजा और सहकारिता का मिश्रण है। फ्रांस वाली प्रणाली में प्रजा और व्यक्तिगत का मिश्रण है जैसे सयुक्त राज्य अमरीका में संघ सरक्षण प्रणाली है। जर्मनी में दीर्घ कालीन रेहन सम्बन्धी ऋण भी दिया जाता है। इस प्रकार के ऋण जर्मनी के ९ बैंकों द्वारा मिलता है। इसके अलावा इन बैंकों द्वारा ऋण भुगतान के समय तक मिलता है। इस ढङ्ग का ऋण ३० से ७१ वर्ष तक चलता है। जर्मनी में मध्यवर्ती ऋण भी मिलता है। इस प्रकार का ऋण प्राय भूमि सम्बन्धी उन्नति के लिये दिया जाता है। इसके अलावा इस देश में अल्प काल सम्बन्धी ऋण भी मिलता है। इस प्रकार का ऋण स्थानीय सहकारी ऋण सम्बन्धी सघों द्वारा मिलता है। फ्रांस में भूमि सम्बन्धी ऋण फोनसीयर द्वारा मिलता है। इसका सम्बन्ध प्रजा के साथ उसी प्रकार से रहता है जैसे फ्रांस के बैंक का रहता है ऋण फोनसीयर दो प्रकार रेहन सम्बन्धी ऋण देता है। यह पहला ऋण १० वर्षों के लिये देता है और दूसरे प्रकार के ऋण केवल ९ वर्षों के लिये देता है। किन्तु दोनों दशाओं में सम्पत्ति का रेहन रखना अनिवार्य रहता है। एग्रीकोल द्वारा ऋण थोड़े दिनों के लिये मिलता है। यह ऋण देने वाला सघ मध्य सम्बन्धी ऋण भी देता है। फ्रांस में ऋण सहकारी सम्बन्धी विद्यालय भी है। फ्रांस में यह विद्यालय पारस्परिक ऋण एग्रीकोल के नाम से प्रसिद्ध है।

कृषि-सम्बन्धी अर्थशास्त्र

संयुक्त राज्य अमरीका—इस राज्य में कृषि-सम्बन्धी अर्थशास्त्र का विकास अभी थोड़े ही वर्षों में हुआ है। कृषि विद्यालयों की स्थापना की स्वीकृति १८६२ ई० के भूमि अनुदान सम्बन्धी नियम से मिल चुकी थी। किन्तु इस प्रकार के स्कूलों की स्थापना गृह युद्ध के बाद में हुई। १८८७ ई० में इस प्रकार के नियम भी बनाये गये। जिन के अनुसार इन विद्यालयों के साथ-साथ परीक्षा गृहों की भी स्थापना हुई। इस के बाद संयुक्त राज्य के कृषि विभाग और राज्य सरकारों के कृषि-विभागों की स्थापना की गई। इन विभागों का कार्य कृषिसम्बन्धी अनुसंधान करना और कृषिसम्बन्धी शिक्षा देना था। संयुक्त राज्य अमरीका में कृषि विषयक बातें वहां का पेटेन्ट नामक कार्यालय देखता था। किन्तु अब वहां की सब सरकार संयुक्त राज्य अमरीका के आर्थिक या वाणिज्य सम्बन्धी बातों को स्वयम् देखती है। वहां के कृषि विभाग ने आर्थिक कृषि कार्यालय की स्थापना की थी। यह कार्यालय कृषिसम्बन्धी आर्थिक समस्याओं पर दृष्टि रखता था। इस शताब्दी के प्रारम्भ में संयुक्त राज्य अमरीका के कृषि-विभाग ने पौधों के उद्योग सम्बन्धी एक कार्यालय खोला था। उसमें घास और चारा वाले पौधों के सम्बन्ध में अन्वेषण होता था। इस कार्यालय के कुछ लोगों ने यह विचार करना आरम्भ किया कि इसका क्या कारण है कि कुछ किसानों को खेती के काम में सफलता मिलती है और कुछ असफल रहते हैं। १९५० ई० में इस कार्य को अधिक प्रधानता मिली। इसके लिये कृषि प्रबन्ध सम्बन्धी एक अलग कार्यालय खोला गया। इस कार्यालय के अध्यक्ष डब्लू० जे० स्पिलमैन साहब बनाये गये। यह कार्यालय खेत के प्रबन्ध का निरीक्षण किया करता था। इसके बाद १९१२ ई० में इन्हों ने एक पुस्तक निकाली जिसका शीर्षक "खेत सम्बन्धी प्रबन्ध" था। इस पुस्तक में इन्होंने यह बतलाया था कि किस प्रकार से सफलता पूर्वक खेती की जा सकती है। इसी समय में जार्ज एफ० वारेन साहब भी कार्नेल विश्व विद्यालय में ५ वर्षों तक इस सम्बन्ध में खोज करते रहे। १९११ ई० में इन्होंने भी कृषि के सम्बन्ध में एक विस्तृत जांच पड़ताल की। टाम्प किन्स काउन्टी नामक एक पत्रिका भी निकाली थी। इसके बाद १९१२ ई० में वारेन साहब ने खेत प्रबन्ध पर एक पुस्तक भी छापी। यह उस समय की एक प्रमुख पुस्तक थी। यह पुस्तक अब भी व्यवहार में लाई जाती है। धीरे-धीरे खेत प्रबन्ध सम्बन्धी विषय की उन्नति होती गई। खेत प्रबन्ध सम्बन्धी विषय की उन्नति के लिये इस देश में एक खेत प्रबन्ध विभाग भी खोला गया। इसके बाद संयुक्त राज्य अमरीका में क्रय-विक्रय सम्बन्धी साधनों में अनाज के भावों में विदेशीय व्यापारों में या अन्य प्रकार के कृषिसम्बन्धी सुधार उसी समय से होने लगे जब से इस देश में वाणिज्य सम्बन्धी कृषि प्रारम्भ हुई। इस देश में अन्य प्रकार के सुधार १९०९ ई० के बाद से होने लगे। १९१३ ई० में यहां के कृषि विभाग ने एक बाजार सम्बन्धी कार्यालय खोला गया। यह कार्यालय मुख्यतः बाजार सम्बन्धी समस्याओं को देखता था। इसके बाद क्रय-विक्रय सम्बन्धी कार्यालयों की स्थापना हुई। आर्थिक सम्बन्धी उपज की उन्नति के लिये १९०२ ई० में एक विश्व विद्यालय में भी आन्दोलन प्रारम्भ हो गया। ऐसा आन्दोलन हेनरी सी० टेलर के कारण से हुआ। इस काम में इनको रिचर्ड टेलर साहब की भी सहायता मिली थी। टेलर साहब मुख्यतः आर्थिक कृषि की उन्नति चाहते थे। वे खेत प्रबन्ध सम्बन्धी सब के सदस्यों की अपेक्षा वाणिज्य सम्बन्धी कृषि की उन्नति के पक्ष में अधिक न थे। टेलर साहब कृषि विषयक नीति सम्बन्धी समस्याओं के अधिक पक्ष में रहते थे। टेलर साहब ने आर्थिक कृषि पर एक पुस्तक १९०५ ई० में छापी। इस पुस्तक में इन्होंने क्रय-विक्रय के सम्बन्ध में, कृषि वाले मजदूरों के सम्बन्ध में, रहन-सहन के सम्बन्ध में, यातायात के संबंध में, करों के सम्बन्ध में और ग्रामीणों की आर्थिक दशा के संबंध में कहीं कुछ भी नहीं लिखा है यद्यपि यह बातें खेत सम्बन्धी समस्या के लिये अपना विशेष महत्व रखती हैं।

इसके बाद धीरे-धीरे आर्थिक कृषि में उन्नति होती रही। इसकी उन्नति के लिये जो अनुसधान अब तक हो चुके थे या इसकी उन्नति के लिये जो साधन अपनाये गये थे उनकी फिर से जांच परताल की गई। इसकी जाच परताल कृषि अनुसधान विज्ञान संबन्धी समिति द्वारा की गई थी। कुछ वर्षो से संयुक्त राज्य अमरीका में आर्थिक खेती की अधिक उन्नति हुई है। इसके लिये आर्थिक कृषि कार्यालय खोला गया। यह कार्यालय चार विभागों से मिल कर बना था। उनके नाम इस प्रकार से हैं। (१) खेत सबधी प्रबन्ध विभाग (२) खेत संबधी आर्थिक विभाग (३) फसलों की उपज का अनुमान लगाने वाला विभाग (४) बाजार सबंधी विभाग। आर्थिक कृषिसबंधी कार्यालय में काम करने के लिये ऐसे लोग रक्खे गये हैं जो इस प्रकार के कामों में दक्ष हैं। उस कार्यालय का सयुक्त राज्य अमरीका में एक विशेष महत्व है। इसके अलावा यह विभाग उन कृषिसबधी परीक्षा घरों को पथ प्रदर्शक का कार्य करता है जो राज्य सरकारों में स्थित हैं। सयुक्त राज्य अमरीका में प्रत्येक राज्य सरकारों को यह अधिकार है कि वे अपने राज्य की स्थानीय समस्याओं और आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये कृषिसबंधी नयी योजना बनावें। सयुक्त राज्य अमरीका आर्थिक कृषि के लिये पहले की अपेक्षा अब अधिक विश्व में प्रसिद्ध है। इस सबंध में अधिक विकास करने के लिये पुरनेल नामक नियम भी १९२५ ई० में बनाया गया। इस नियम के अनुसार प्रत्येक राज्य के परीक्षा घर को ६०,००० डालर वार्षिक सहायता मिलती है। यह धन मुख्यत अर्थ सबधी कृषि के अनुसधान की उन्नति में व्यय किया जाता है। धीरे-धीरे अर्थ संबंधी कृषि का विषय स्कूलों और विश्वविद्यालयों भी पढाया जाने लगा। इस से इस विषय की और अधिक उन्नति होगी।

योरुप—योरुप मे अर्थ सम्बन्धी कृषि का विकास अमरीका से बहुत पहले आरम्भ हुआ था। इसके विकास के लिये एक शताब्दी से जर्मनी में एक विश्व विद्यालय भी खुला था। जिसमें यह पढाया जाता था कि कृषि का राज्य और समाज से क्या सबंध है। १८५१ ई० में कृषि के काम के लिये एक विद्यालय बर सलीज में भी खुला था। जिसमें लिवोन्सडेला लावेर जनी साहब ने ग्रामीण शास्त्र पर अपना एक व्याख्यान भी दिया था। किन्तु इस विषय की अधिक उन्नति गत ३० वर्षों से ही हुई है। अर्थ सबधी कृषि समस्या प्रत्येक देश मे भिन्न-भिन्न रूप से पाई जाती है। इङ्गलैंड मे व्यय सबधी विषय पर अधिक ध्यान दिया जा रहा है। डेन्मार्क स्विटजरलैण्ड चेकोस्लोवेकिया और स्वडिन में भी कृषिसबधी व्यय के ऊपर सोच विचार किया जा रहा है। इन देशो मे आर्थिक कृषि पर अनुसधान हो रहा है। नार्वे मे भी आर्थिक कृषि की अधिक उन्नति हो रही है। इस सबध मे जो अनुसधान होते हैं उनके फल सबंधी आकड़ों का हिसाब किताब रखा जाता है। मध्यवर्ती योरुप भी कृषिसबधी उन्नति के लिये प्रसिद्ध है। इस क्षेत्र के देश वालों ने भूमि सबंधी सुधार मे अधिक ध्यान दिया है। इन देशों में बड़े-बड़े राज्यों को समाप्त कर दिया गया है। यहां पर छोटी-छोटी सम्पत्तिया अधिक सख्या मे पाई जाती हैं। इटली देश मे खेती के लिये बहुत अच्छे नियम बने हुये हैं। इस प्रकार के खेतों का वहा के कृषिसंबंधी मित व्ययी लोगों के कारण अधिक विकास हुआ है। इसी कारण से वहां के खेतों की आय भी अधिक हो गई है। फ्रांस देश में क्रय-विक्रय सबधी अधिक उन्नति नहीं हुई है। सयुक्त राज्य अमरीका की भांति इस देश मे भाव सबधी ध्यान नहीं रखा गया है। इसमें सदेह नहीं है कि फ्रांस में कृषिसबंधी उन्नति कम है।

योरुप के देशों मे इङ्गलैण्ड से भी अधिक जर्मनी में आर्थिक कृषि का विकास हुआ है। इसके अलावा जर्मनी ने खेत सबधी प्रबन्ध की तरफ भी अधिक ध्यान दिया है। यहा पर कृषि की उन्नति के लिये कृषिसबंधी ऋण दिया जाता है। कृषिसबधी सहकारी समितियां भी बनी हुई हैं। खेतों के मजदूरों का भी एक सुन्दर प्रबन्ध रहता है। यहा के कृषि विषयक विद्यार्थियों को यह साधन बतलाया जाता है कि वे किस प्रकार से श्रम सबधी योग्यता को बढ़ावें।

इङ्गलैण्ड में भी आर्थिक उन्नति जर्मनी की तरह से हुई है। यहा पर भी आर्थिक कृषि के अनुसधान के लिये सगठित योजना बनाई गई है। इस देश में कृषि की उपज के क्रय-विक्रय के सबंध मे अधिक ध्यान दिया जा रहा है। आक्सफोर्ड में आर्थिक कृषिसबंधी एक अनुसंधान विद्यालय है। इस विद्यालय का कार्य सी० एस० अरविन साहब और मदलो और कृषि मन्त्रि मडल की देख-रेख में होता है। इस विद्यालय की स्थापना १९१३ ई० में हुई थी। इस विद्यालय मे व्ययसबंधी अनुसंधान पर अधिक महत्त्व दिया जाता था। इस विद्यालय के मंत्रि मंडल की ओर से एक पदाधिकारी भी होता था जो आर्थिक कृषि के सबध में अपनी सलाह दिया करता था। यह पदाधिकारी कई विद्यालयों और विश्व विद्यालयों के व्यय संबंधी अध्ययन की देख-रेख करता था। कृषि व्यय सबंधी अध्ययन से यह पता चला है कि अगर थोडी सख्या में व्यय सम्बन्धी साधनों के अनुसार खेती की जावे तो इसका फल भी सीमित रूप से प्राप्त होवे। स्विज़र लैण्ड में कृषिसंबंधी हिसाब किताब का सादा ढङ्ग अनुसधान के लिये प्रयोग किया जाता है। डेन्मार्क मे भी इसी प्रकार कृषिसबंधी अनुसधान कार्य होता है। इन दोनों देशो में इस प्रकार का काम गत तीस वर्षों से हो रहा है। अन्य देशों में भी कृषिसंबंधी परीक्षा घर खुले हुये हैं। कई देशों में कृषकों को प्रति वर्ष कृषिसबंधी दीक्षा भी दी जाती है। यह दीक्षा केवल थोड़े समय के लिये दी जाती है। इसमे परीक्षा घरों में काम करने वाले किसान लोग भी आते हैं। परीक्षा घरों के किसान लोग प्रति वर्ष अपना कृषिसंबंधी आंकड़ा भी कृषि-शिक्षा-सगठनों को विश्लेषण के लिये देते हैं। इसके लिये स्विजरलैंड विश्व के अन्य देशों की अपेक्षा अधिक प्रसिद्ध है। देश आर्थिक कृषिसम्बन्धी आंकड़ा एक सुन्दर रूप में रखता है। कृषिसम्बन्धी इसी प्रकार का कार्य डेन्मार्क देश मे भी होता है। किन्तु इस देश में कृषि-सम्बन्धी आंकड़ा एक सूचना वाला कर्मचारी रखता है। यह कर्मचारी कृषिसम्बन्धी सहकारी समितियों का नौकर होता है। इसको वेतन भी इन्हीं समितियों द्वारा मिलता है। डेन्मार्क देश मे कृषक लोग कृषि परीक्षा सम्बन्धी आंकड़े को अपने पास नहीं रखते हैं। इस देश में १९२७ ई० में अनुसंधान-कार्य के लिये लगभग ६० कृषिसम्बन्धी हिसाब किताब रखने वाली सहकारी समितियां थीं। यह समितियां कृषिसम्बन्धी अनुसंधान करती थीं। इन समितियों के के पास लगभग १०० सूचना सम्बन्धी कर्मचारी थे। स्थानीय समितियों के कृषिसम्बन्धी आंकड़े का विश्लेषण खेत-प्रबन्ध तथा आर्थिक कृषिसम्बन्धी कार्यालय द्वारा होता है। यह एक केन्द्रीय सगठन है। यह काम प्रो० एच० लार्सन साहब की देख-रेख में होता है जो कोपेन हेगन कृषि-विद्यालय के एक प्रोफेसर हैं। चेकोस्लोवेकिया का प्रेग एक प्रधान नगर है। इस नगर मे भी एक बड़ा कृषि विद्यालय है। इस विद्यालय में कृषिसम्बन्धी परीक्षा और अनुसंधान प्रोफेसर ब्लाडी मीर साहब की देख-रेख में होता है। १९२६ ई० में इस विद्यालय ने कृषि-सम्बन्धी आंकड़ो को चार प्रतियों में छापा था। चेकोस्लोवेकिया भी कृषिसम्बन्धी उन्नति के लिये विश्व में प्रसिद्ध है। इटली देश में कृषि की उन्नति के लिये भूमि पर अधिक महत्व दिया जाता है। इसका कारण इस देश की सम्पत्ति-सम्बन्धी प्रणाली है। यहा पर कृषि और सम्पत्ति-सम्बन्धी आय पर कर भी देना पड़ता है। इस देश मे भूमि और कृषिसम्बन्धी आय एक प्रकार का व्यवसाय माना जाता है। इसमें सदेह नहीं है कि योरुप में ऐसे कृषिसम्बन्धी सगठनों की संख्या अधिक पाई जाती है जो अनुसधान का कार्य करते हैं। इन संगठनों ने परीक्षागृहों की स्थापना की है। इस प्रकार के संगठनो को सरकारी सहायता भी मिलती है। कृषि की अधिक उन्नति इन सगठनों के कारण भी होती है।

कृषिसम्बन्धी उन्नति के लिये जर्मनी, आस्ट्रिया और हगारी भी अधिक प्रसिद्ध हैं। इन देशों मे कृषि की उन्नति के लिये विभाग भी बने हुये हैं। यहां के कृषि वाले परीक्षा गृहों की देख-रेख भी इन्हीं विभागों द्वारा होता है।

कृषिसम्बन्धी शिक्षा—कृषिसम्बन्धी शिक्षा लोगों को प्राचीन समय से मिलती आई है। धीरे-धीरे लोगों का अनुभव इस सम्बन्ध में बढ़ता गया। विश्व सम्बन्धी चीजें उनको मालूम होती गईं। उन लोगों का अनुभव पौधे और पशु जीवन के सम्बन्ध में भी बढ़ता गया। पहले इस प्रकार की शिक्षा के लिये कोई स्कूल न थे। किन्तु अब इस प्रकार की शिक्षा लोगों को स्कूलों द्वारा मिलने लगी। इस प्रकार के स्कूलों का विकास अभी थोड़े समय से हुआ है। आधुनिक विज्ञान का आरम्भ १६ वीं और १७ वीं शताब्दी में हुआ था। कृषि की उन्नति के विकास के लिये आधुनिक विज्ञान का महत्व लोगों को बहुत समय के बाद मालूम हुआ था। हेल विश्व विद्यालय की स्थापना १६९४ ई० में हुई थी। इसमें विद्यार्थियों को कृषि-सम्बन्धी नये-नये विषय और साधन सिखलाये जा रहे थे। इसी प्रकार से धीरे-धीरे कृषिसम्बन्धी शिक्षा में उन्नति होती गई। १८ वीं शताब्दी के अन्त तक कृषिसम्बन्धी अधिक विद्यालय खुल गये। १७९१ ई० में इस प्रकार का विद्यालय बल्गेरिया के तिस्तोश में १७७९ ई० में हंगारी के जर्वास में १७ ६ ई० में नागी-मिकलोस और १७८६ ई० ने किस्थेली नामक स्थानों में खोले गये। जर्मनी में इस प्रकार के विद्यालय १८०६ ई० में मोयगलेन में और १८११ ई० में सेक्सोना में खोला गया। वर्तमान समय में हर एक देश में कृषिसम्बन्धी विद्यालय खुले हुये हैं जिनमें कृषिसम्बन्धी कार्य एक सुन्दर ढंग पर हो रहा है। १९ वीं शताब्दी में योरुप के पश्चिमी और मध्य भागों में जो देश स्थित हैं उनमें कृषिसम्बन्धी शिक्षा और अनुसंधान की अच्छी उन्नति हुई है। इन भागों में सरकार की तरफ से भी कृषि विद्यालय और परीक्षा घर खुले हुये हैं। इसके अलावा कृषिसम्बन्धी सभा ने भी इस प्रकार के स्कूल खोले हैं, जिनके सचालन के लिये सरकार की ओर से सहायता भी मिलती है। हर एक देश में इस प्रकार के जो स्कूल खुले हुये हैं उनका सगठन तथा प्रबन्ध एक दूसरे से भिन्न रहता है। किसी-किसी देश में इस प्रकार के स्कूल वहा के कृषिसम्बन्धी साधनों के अनुसार खोले गये है। कहीं-कहीं पर इस प्रकार के स्कूलों की स्थापना वहां की राष्ट्र सम्पत्ति और प्रजा सम्बन्धी नीति के आधार पर की गई है। इस प्रकार के स्कूलों की स्थापना प्रायः उन्हीं स्थानों में होती है जहां पर युवक कृषक दीक्षा के लिये मिलते हैं। इन कृषकों को ऐसे स्कूलों में प्रयोगात्मक दीक्षा भी दी जाती है। १९१४-१९१८ ई० के विश्व युद्ध के बाद योरुप के प्रत्येक देश में कृषिसम्बन्धी अधिक विकास हुये हैं। कृषिसम्बन्धी उच्च प्रकार की शिक्षा देने के लिये बड़े-बड़े विद्यालयों की स्थापना हुई है। कृषिसम्बन्धी अनुसधान और परीक्षा गृहों की भी स्थापना अधिक सख्या में हुई है। इस प्रकार के स्कूलों को सरकारी सहायता भी मिलती है। विश्व के इतहास में कृषि में इस प्रकार की उन्नति पहले कभी नहीं पाई जाती है। इङ्गलैंड में भी इस प्रकार के विद्यालयों और परीक्षा गृहों की संख्या अधिक है। इङ्गलैंड में इस प्रकार के विद्यालय को स्वतंत्र रखा गया है। इन विद्यालयों को परीक्षा सम्बन्धी कार्य के लिये एक अधिक विस्तार वाला खेत भी दिया गया है। ऐसे परीक्षा गृहों का प्रबन्ध वहां के कृषि विद्यालयों के प्रबन्ध से अलग किया जाता है। इसके कुछ कारण है। परीक्षा गृहों की स्थापना प्रायः इसी लिये की जाती है कि जिससे कृषिसम्बन्धी समस्याओं का और उनके उपज के यथार्थ उपयोग का कुछ हल निकल सके। इसी कारण से ऐसे घरों का कोई विशेष सम्बन्ध वहा के कृषि विद्यालयों से नहीं रहता है। इस प्रकार के विद्यालयों और घरों को इसी लिये स्वतंत्र रूप से काम करने दिया जाता है कि जिससे अनुसधान या परीक्षा सबन्धी कार्यों में कोई विघ्नबाधा न उपस्थित हो सके। इङ्गलैंड के कृषि स्कूलों को छोड़ कर योरुप के जो कालेज या विश्व विद्यालय के कृषि विभाग हैं उनसे वर्तमान कृषिसंबंधी शिक्षा से कोई सम्बन्ध नहीं रहता है। योरुप में कृषिसबंधी शिक्षा प्रचार द्वारा दी जाती है। इस प्रकार का प्रचार प्रायः वहा की कृषक-समितियों द्वारा किया जाता है। इन समितियों को सुचारु रूप से चलाने के लिये सरकार सहायता भी देती है। योरुप के हर एक देश के किसी न किसी प्रकार का कृषिसंबंधी प्रचार कार्य किया जाता है। किन्तु आस्ट्रिया, हंगारी

रूमानिया और चेकोस्लोवेकिया नामक देशों में कृषि सम्बन्धी प्रचार योरुप के अन्य देशों की अपेक्षा एक भिन्न रूप में होता है। योरुप में जो कृषिसम्बन्धी उन्नति हुई है उसका प्रभाव अमरीका में भी पड़ा। अमरीका निवासियों ने भी इस सम्बन्ध में परिश्रम करना आरम्भ कर दिया। संयुक्त राज्य अमरीका में १८१९ और १८४० ई० के मध्य में कई मजदूरों के स्कूलों की स्थापना की गई। इन स्कूलों में कृषिसम्बन्धी शिक्षा दी जाती थी। इसके बाद संयुक्त राज्य अमरीका में बड़े-बड़े कृषिसम्बन्धी स्कूल खोले गये। इस देश में कृषिसम्बन्धी सभों का यह मुख्य काम था कि वे कृषि की उन्नति की तरफ अपना ध्यान दें। यही समितियां कृषिसम्बन्धी परीक्षा और प्रदर्शन का कार्य करती थीं। प्रदर्शन द्वारा लोग चौपायों का भी किया करते थे। कृषिसम्बन्धी साहित्य के विकास की भी प्रयत्न करती थीं। कृषिसम्बन्धी मेले भी लगवाती थीं। इन मेलों में चौपाये या अन्य कृषि-सम्बन्धी नमूने बिकने के लिये आते थे। कृषकों के लिये इस प्रकार के मेले वास्तव में बड़े लाभदायक होते थे। इसके बाद १९ वीं शताब्दी के अंत में संयुक्त राज्य अमरीका में कृषिसम्बन्धी पत्रिकायें भी निकलने लगीं। इनमें किसानों के हित के लिये कृषिविषय सम्बन्धी सूचनायें भी रहती थीं। इनमें यह भी सूचना दी जाती थी कि संयुक्तराज्य अमरीका के किन-किन स्थानों में कृषिसम्बन्धी विद्यालयों के स्थापना की आवश्यकता है। १२ फरवरी, १८५५ ई० में मिशीगन विधान के अनुसार कई कृषिसम्बन्धी कालेजों की स्थापना की गई। इसके बाद संयुक्त राज्य अमरीका में जुलाई २,१८६२ भूमि अनुदान सम्बन्धी नियम पास किया गया जिसके द्वारा इस देश में कृषिसम्बन्धी शिक्षा की अधिक उन्नति हुई। इस नियम के अनुसार संयुक्त राज्य अमरीका के जिन राज्यों ने कृषि की शिक्षा सम्बन्धी उन्नति के लिये भूमि के लिये कांग्रेस में प्रतिनिधित्व किया था उनको आवश्यकतानुसार भूमि दी गई। इस भूमि की पैदावारों को बेचने से जो आय होती थी वह कृषि वाले स्कूलों की सहायता के रूप में खर्च की जाती थी। संयुक्त राज्य अमरीका के प्रत्येक राज्य में कृषि विद्यालयों की स्थापना हो गई। इन स्कूलों में कृषिसम्बन्धी विषयों की शिक्षा दी जाने लगी। धीरे-धीरे इन स्कूलों के कार्य क्षेत्र में विकास होने लगा। प्राचीन समय में इन स्कूलों को अधिक कठिनाईयां सहनी पड़ी थीं। उस समय ऐसे व्यक्तियों का मिलना बड़ा कठिन था जो कृषि के कार्य में दक्ष थे। कृषिसम्बन्धी निजी अनुभव भी बहुत ही कम रहता था। इन कठिनाईयों के होते हुये भी प्राचीन स्कूलों में आज अनेक कृषिसम्बन्धी स्कूल एक बड़े विद्यालय बने हुये हैं। गृह युद्ध के समय कृषिसम्बन्धी उन्नति में बाधा पड़ी। लोगों की रुचि भी इसकी उन्नति की तरफ न रही। कृषि विद्यालयों में बहुत कम विद्यार्थी ऐसे होते थे जो कृषिसम्बन्धी शिक्षा लेना चाहते थे। लगभग ३० वर्ष तक यही दशा थी। धीरे-धीरे प्रजा का विश्वास फिर कृषि के प्रति उत्पन्न हो गया। कृषिसम्बन्धी शिक्षा की तरफ लोग अधिक ध्यान देने लगे।

संयुक्त राज्य, अमरीका की सरकार ने इन विद्यालयों के अनुदान में भी वृद्धि कर दी। भूमि अनुदानसम्बन्धी नियम द्वारा जो कृषिसम्बन्धी विद्यालय खुले थे उनमें अधिकतर कृषिसम्बन्धी परीक्षा और वैज्ञानिक अनुसंधान का कार्य होता था। संयुक्त राज्य अमरीका में परीक्षासम्बन्धी कार्य का संगठन १८५० ई० प्रारम्भ हुआ था। १८७५ ई० में कनेक्टिकट के मिडिलटाउन नामक स्थान पर कृषि-सम्बन्धी परीक्षा गृह खुले थे। इसके दस वर्ष बाद १६ परीक्षा गृहों की और स्थापना की गई। इसके बाद इन की उन्नति तथा विकास के समय-समय पर नियम भी बनते रहे। १८८७ ई० में हैच नियम ११०६ ई० में आडम्स नियम और १९२५ ई० में पुर्नेल नामक नियम परीक्षा गृहों की उन्नति तथा विकास के लिये बने थे। उस समय के स्थापित कृषिस्कूलों और विद्यालयों में कृषिसम्बन्धी अनुसंधान अधिक कार्य होता था। १८९७ ई० में कृषि की उन्नति में जो विघ्न बाधायें थीं वह सब समाप्त हो गई। नई शताब्दी के प्रारम्भ में कृषिसम्बन्धी अधिक उन्नति हुई। २०वीं शताब्दी के प्रथम १५ वर्षों तक कृषि कालिजों में अधिक संख्या कृषि विषयक

विद्यार्थियों की हो गई। लोगों को कृषिसम्बन्धी दीक्षा भी एक सुन्दर ढंग पर मिलने लगी। पहले से ही कृषिविद्यालय किसानों की सहायता करना चाहते थे। कृषिविद्यालय यह चाहते थे कि किसान लोग उनकी कृषिसम्बन्धी पत्रिकाओं के पढ़ने के लिये मंगाया करें। मेले या अन्य अवसरों पर किसानों को सहायता उनकी आवश्यकता अनुसार बारबर विद्यालय से मिलती रही। किसानों की सहायता तथा कृषि कार्य में उन्नति के लिये सभायें भी की जाने लगीं। इन सभाओं में किसान लोग आते थे। कृषि विद्यालयों के मास्टर लोग भी इसमें आकर इकट्ठे होते थे। यह लोग किसानों को कृषिसम्बन्धी अच्छी-अच्छी बातें सिखलाते थे। यह मास्टर लोग किसानों को प्रदर्शन द्वारा खेती का काम बतलाते थे। ऐसी सभायें १८७० ई० में प्रारम्भ हो गई थीं। यह इस प्रकार की सभायें पहले पहल कान्सास और मेसाचुसेट्स में में हुई थीं। इस प्रकार की सभाओं को कृषि-विद्यालयों के नाम से पुकारा जाता था। ऐसी सभाओं से किसानों को अधिक लाभ पहुंचा। अत में लोगों ने यह इच्छा प्रगट की ऐसी सभाओं या विद्यालयों के विकास के लिये सरकारी सहायता मिलनी चाहिये। इस सम्बन्ध में संयुक्त राज्य, अमरीका की कांग्रेस ने एक नियम बना दिया। यह नियम १९१४ ई० में पास हुआ था। उसका नाम स्मिथ नियम था। इस नियम के पास हो जाने से कृषिसम्बन्धी कार्य में और अधिक विकास हो गया। १९वीं शताब्दी के अंत में कृषि सम्बन्धी एक नया विकास हुआ। लोगों में प्रकृतिसम्बन्धी बातों के अध्ययन करने की इच्छा प्रगट हुई। लोगों की यह भी इच्छा थी कि प्रारम्भिक स्कूलों में कृषि तथा उद्यान सम्बन्धी विषय भी पढ़ाये जावें। लोगों इस प्रकार की भावना यहां तक प्रबल हो गई कि १९१५ ई० में संयुक्त राज्य अमरीका का २२ राज्यों के प्रारम्भिक स्कूलों में कृषिसम्बन्धी विषय सिखलाये जाने की आवश्यकता प्रतीत हुई। इसमें से कुछ स्कूलों में कृषिसम्बन्धी विषय पढ़ाया भी जाने लगा। यह काम अब भी प्रत्येक देश में हो रहा है। हर एक देश के बच्चों को उनकी आवश्यकता अनुसारी ही कृषिसम्बन्धी शिक्षा दी जाती है।

कृषिसम्बन्धी परीक्षा गृह।—यह वास्तव में एक प्रकार का विद्यालय होता है जिसमें कृषिसम्बन्धी अनुसंधान किया जाता है। इस प्रकार के प्रत्येक गृह का एक संचालक होता है। यही सब कामों की देख भाल भी किया करता है। इस प्रकार के गृहों को अधिक रूप में आर्थिक सहायता भी मिलती है। इसकी अनुसंधान सम्बन्धी सभी आवश्यकतायें पूरी की जाती हैं। इसके पास परीक्षा सम्बन्धी कार्य के लिये खेत भी रहते हैं। अमरीका में भी योरूप की भांति परीक्षा सम्बन्धी कार्य व्यक्तिगत परिश्रम द्वारा ही प्रारम्भ हुआ था। इस प्रकार के कार्य में कृषि सम्बन्धी समितियों और बड़े बड़े मनुष्यों से भी सहायता मिलती रही। १७९६ ई० राष्ट्रपति वाशिंग्टन साहब ने एक राष्ट्र कृषि-परिषद की स्थापना के लिये कांग्रेस से कहा था। इसके बाद १८४९ ई० में न्यूयार्क कृषि विषयक समिति ने एक रसायनिक प्रयोग शाला खोली थी। १८५६ ई० में मेरीलैंड नियम के अनुसार एक कृषि विद्यालय की स्थापना हुई। कृषिसम्बन्धी उन्नति के लिये १८६२ ई० कृषि संघ विभाग की भी स्थापना हुई। यह विभाग कृषि सम्बन्धी अनुसंधान और परीक्षा की देख रेख करता था। कृषि सम्बन्धी परीक्षा गृहों की संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ती चली जा रही है। संयुक्त राज्य अमरीका के कृषि संघ विभाग में एक परीक्षा गृह सम्बन्धी कार्यालय है। यह कार्यालय राष्ट्र के परीक्षा गृहों की कार्य प्रणाली की देख रेख किया करता है। यह कार्यालय सरकारी परीक्षा गृहों की भी देख रेख करता है। इस राज्य के अलास्का, गुआम, हवाई पोर्टोरिको और वर्जिन द्वीपसमूहों में सरकारी कृषि परीक्षा गृह खुले हुये हैं। इस प्रकार के सरकारी घरों द्वारा संयुक्त राज्य, अमरीका तथा विदेश के देशों को भी कृषिसम्बन्धी सूचना मिलती रहती है। भारतवर्ष में कृषिसम्बन्धी परीक्षा कार्य प्रान्तीय सरकार के कृषि विभागों द्वारा होता है। यहां पर इस प्रकार के गृहों का संगठन १९०६ ई० में हुआ था। यहां पर पूसा में भी एक बहुत बड़ा कृषि अनुसंधान सम्बन्धी घर है। आजकल प्रत्येक देश में कृषि की उन्नति के लिये विशेष ध्यान दिया गया है। परन्तु

रूमानिया और चेकोस्लोवेकिया नामक देशों में कृषि सम्बंधी प्रचार योरुप के अन्य देशों की अपेक्षा एक भिन्न रूप में होता है। योरुप में जो कृषिसम्बंधी उन्नति हुई है उसका प्रभाव अमरीका में भी पड़ा। अमरीका निवासियों ने भी इस सम्बन्ध में परिश्रम करना आरम्भ कर दिया। संयुक्त राज्य अमरीका में १८१९ और १८४० ई० के मध्य में कई मजदूरों के स्कूलों की स्थापना की गई। इन स्कूलों में कृषिसम्बन्धी शिक्षा दी जाती थी। इसके बाद संयुक्त राज्य अमरीका में बड़े-बड़े कृषिसम्बन्धी स्कूल खोले गये। इस देश में कृषिसम्बन्धी सभों का यह मुख्य काम था कि वे कृषि की उन्नति की तरफ अपना ध्यान दें। यही समितियां कृषिसम्बन्धी परीक्षा और प्रदर्शन का कार्य करती थीं। प्रदर्शन द्वारा लोग चौपायों का भी किया करते थे। कृषिसम्बन्धी साहित्य के विकास की भी प्रयत्न करती थीं। कृषिसम्बन्धी मेले भी लगवाती थीं। इन मेलों में चौपाये या अन्य कृषि-सम्बंधी नमूने बिकने के लिये आते थे। कृषकों के लिये इन प्रकार के मेले वास्तव में बड़े लाभदायक होते थे। इसके बाद १९ वीं शताब्दी के अंत में संयुक्त राज्य अमरीका में कृषिसम्बन्धी पत्रिकायें भी निकलने लगीं। इनमें किसानों के हित के लिये कृषिविषय सम्बन्धी सूचनायें भी रहती थीं। इनमें यह भी सूचना दी जाती थी कि संयुक्तराज्य अमरीका के किन-किन स्थानों में कृषिसम्बन्धी विद्यालयों के स्थापना की आवश्यकता है। १२ फरवरी, १८५५ ई० में मिशीगन विधान के अनुसार कई कृषिसम्बन्धी कालेजों की स्थापना की गई। इसके बाद संयुक्त राज्य अमरीका में जुलाई २, १८६२ भूमि अनुदान सम्बन्धी नियम पास किया गया जिसके द्वारा इस देश में कृषिसम्बन्धी शिक्षा की अधिक उन्नति हुई। इस नियम के अनुसार संयुक्त राज्य अमरीका के जिन राज्यों ने कृषि की शिक्षा सम्बन्धी उन्नति के लिये भूमि के लिये कांग्रेस में प्रतिनिधित्व किया था उनको आवश्यकतानुसार भूमि दी गई। इस भूमि की पैदावारों को बेचने से जो आय होती थी वह कृषि वाले स्कूलों की सहायता के रूप में खर्च की जाती थी। संयुक्त राज्य अमरीका के प्रत्येक राज्य में कृषि विद्यालयों की स्थापना हो गई। इन स्कूलों में कृषिसम्बन्धी विषयों की शिक्षा दी जाने लगी। धीरे-धीरे इन स्कूलों के कार्य क्षेत्र में विकास होने लगा। प्राचीन समय में इन स्कूलों को अधिक कठिनाइयां सहनी पड़ी थीं। उस समय ऐसे व्यक्तियों का मिलना बड़ा कठिन था जो कृषि के कार्य में दक्ष थे। कृषिसम्बन्धी निजी अनुभव भी बहुत ही कम रहता था। इन कठिनाइयों के होते हुये भी प्राचीन स्कूलों में आज अनेक कृषिसम्बन्धी स्कूल एक बड़े विद्यालय बने हुये हैं। गृह युद्ध के समय कृषिसम्बन्धी उन्नति में बाधा पड़ी। लोगों की रुचि भी इसकी उन्नति की तरफ न रही। कृषि विद्यालयों में बहुत कम विद्यार्थी ऐसे होते थे जो कृषिसम्बन्धी शिक्षा लेना चाहते थे। लगभग ३० वर्ष तक यही दशा थी। धीरे-धीरे प्रजा का विश्वास फिर कृषि के प्रति उत्पन्न हो गया। कृषिसम्बन्धी शिक्षा की तरफ लोग अधिक ध्यान देने लगे।

संयुक्त राज्य, अमरीका की सरकार ने इन विद्यालयों के अनुदान में भी वृद्धि कर दी। भूमि अनुदानसम्बन्धी नियम द्वारा जो कृषिसम्बन्धी विद्यालय खुले थे उनमें अधिकतर कृषिसम्बन्धी परीक्षा और वैज्ञानिक अनुसंधान का कार्य होता था। संयुक्त राज्य अमरीका में परीक्षासम्बन्धी कार्य का संगठन १८७० ई० प्रारम्भ हुआ था। १८७५ ई० में कनेक्टिकट के मिडिलटाउन नामक स्थान पर कृषिसम्बन्धी परीक्षा गृह खुले थे। इसके दस वर्ष बाद १६ परीक्षा गृहों की और स्थापना की गई। इसके बाद इन की उन्नति तथा विकास के समय-समय पर नियम भी बनते रहे। १८८७ ई० में हैच नियम ११०६ ई० में आडम्स नियम और १९२५ ई० में पुर्नेल नामक नियम परीक्षा गृहों की उन्नति तथा विकास के लिये बने थे। उस समय के स्थापित कृषिस्कूलों और विद्यालयों में कृषिसम्बन्धी अनुसंधान अधिक कार्य होता था। १८९७ ई० में कृषि की उन्नति में जो विघ्न बाधायें थीं वह सब समाप्त हो गईं। नई शताब्दी के प्रारम्भ में कृषिसम्बन्धी अधिक उन्नति हुई। २०वीं शताब्दी के प्रथम १५ वर्षों तक कृषि कालिजों में अधिक संख्या कृषि विषयक

विद्यार्थियों की हो गई। लोगों को कृषिसम्बन्धी दीक्षा भी एक सुन्दर ढग पर मिलने लगी। पहले से ही कृषिविद्यालय किसानों की सहायता करना चाहते थे। कृषिविद्यालय यह चाहते थे कि किसान लोग उनकी कृषिसम्बन्धी पत्रिकाओं के पढ़ने के लिये मंगाया करें। मेले या अन्य अवसरों पर किसानों को सहायता उनकी आवश्यकता अनुसार बराबर विद्यालय से मिलती रही। किसानों की सहायता तथा कृषि कार्य में उन्नति के लिये सभायें भी की जाने लगीं। इन सभाओं में किसान लोग आते थे। कृषि विद्यालयों के मास्टर लोग भी इसमें आकर इकट्ठे होते थे। यह लोग किसानों को कृषिसम्बन्धी अच्छी-अच्छी बातें सिखलाते थे। यह मास्टर लोग किसानों को प्रदर्शन द्वारा खेती का काम बतलाते थे। ऐसी सभायें १८७० ई० में प्रारम्भ हो गई थीं। यह इस प्रकार की सभायें पहले पहल कान्सास और मेसाचुसेट्स में हुई थीं। इस प्रकार की सभाओं को कृषि-विद्यालयों के नाम से पुकारा जाता था। ऐसी सभाओं से किसानों को अधिक लाभ पहुंचा। अत में लोगों ने यह इच्छा प्रगट की 'ऐसी सभाओं या विद्यालयों के विकास के लिये सरकारी सहायता मिलनी चाहिये। इस सम्बन्ध में संयुक्त राज्य, अमरीका की कांग्रेस ने एक नियम बना दिया। यह नियम १९१४ ई० में पास हुआ था। उसका नाम स्मिथ नियम था। इस नियम के पास हो जाने से कृषिसम्बन्धी कार्य में और अधिक विकास हो गया। १९वीं शताब्दी के अंत में कृषि सम्बन्धी एक नया विकास हुआ। लोगों में प्रकृतिसम्बन्धी बातों के अध्ययन करने की इच्छा प्रगट हुई। लोगों की यह भी इच्छा थी कि प्रारम्भिक स्कूलों में कृषि तथा उधार सम्बन्धी विषय भी पढ़ाये जायें। लोगों में इस प्रकार की भावना यहां तक प्रबल हो गई कि १९१५ ई० में संयुक्त राज्य अमरीका का २२ राज्यों के प्रारम्भिक स्कूलों में कृषिसम्बन्धी विषय सिखलाये जाने की आवश्यकता प्रतीत हुई। इसमें से कुछ स्कूलों में कृषिसम्बन्धी विषय पढ़ाया भी जाने लगा। यह काम अब भी प्रत्येक देश में हो रहा है। हर एक देश के बच्चों को उनकी आवश्यकता अनुसारी ही कृषिसम्बन्धी शिक्षा दी जाती है।

कृषिसम्बन्धी परीक्षा गृह—यह वास्तव में एक प्रकार का विद्यालय होता है जिसमें कृषिसम्बन्धी अनुसंधान किया जाता है। इस प्रकार के प्रत्येक गृह का एक संचालक होता है। यही सब कामों की देख भाल भी किया करता है। इस प्रकार के गृहों को अधिक रूप में आर्थिक सहायता भी मिलती है। इनकी अनुसंधान सम्बन्धी सभी आवश्यकतायें पूरी की जाती हैं। इसके पास परीक्षा सम्बन्धी कार्य के लिये खेत भी रहते हैं। अमरीका में भी योरूप की भांति परीक्षा सम्बन्धी कार्य व्यक्तिगत परिश्रम द्वारा ही प्रारम्भ हुआ था। इस प्रकार के कार्य में कृषि सम्बन्धी समितियों और बड़े बड़े मनुष्यों से भी सहायता मिलती रही। १७९६ ई० राष्ट्रपति वाशिंगटन साहब ने एक राष्ट्र कृषि-परिषद की स्थापना के लिये कांग्रेस से कहा था। इसके बाद १८८९ ई० में न्यूयार्क कृषि विषयक समिति ने एक रसायनिक प्रयोग शाला खोली थी। १८५६ ई० में मेरीलैंड नियम के अनुसार एक कृषि विद्यालय की स्थापना हुई। कृषिसम्बन्धी उन्नति के लिये १८६२ ई० कृषि सघ विभाग की भी स्थापना हुई। यह विभाग कृषि सम्बन्धी अनुसंधान और परीक्षा की देख रेख करता था। कृषि सम्बन्धी परीक्षा गृहों की संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ती चली जा रही है। संयुक्त राज्य अमरीका के कृषि संघ विभाग में एक परीक्षा गृह सम्बन्धी कार्यालय है। यह कार्यालय राष्ट्र के परीक्षा गृहों की कार्य प्रणाली की देख रेख किया करता है। यह कार्यालय सरकारी परीक्षा गृहों की भी देख रेख करता है। इस राज्य के अलास्का, गुआम, हवाई पोर्टोरिको और वर्जिन द्वीपसमूहों में सरकारी कृषि परीक्षा गृह खुले हुये हैं। इस प्रकार के सरकारी घरों द्वारा संयुक्त राज्य, अमरीका तथा विदेश के देशों को भी कृषिसम्बन्धी सूचना मिलती रहती है। भारतवर्ष में कृषिसम्बन्धी परीक्षा कार्य प्रान्तीय सरकार के कृषि विभागों द्वारा होता है। यहां पर इस प्रकार के गृहों का संगठन १९०६ ई० में हुआ था। यहां पर पूसा में भी एक बहुत बड़ा कृषि अनुसंधान सम्बन्धी घर है। आजकल प्रत्येक देश में कृषि की उन्नति के लिये विशेष ध्यान दिया गया है। परन्तु

इस सम्बन्ध मे सबसे अधिक उन्नतिशील देश सयुक्त राज्य अमरीका है।

कृषि सम्बन्धी मेले—कृषिसम्बन्धी मेले एक प्रकार के ग्रामीण विद्यालय की भांति होते हैं। इस प्रकार के मेले पश्चिमी विश्व के प्रत्येक देश मे पाये जाते हैं। यह मेले वास्तव मे बाजारों के ढंग पर लगते हैं। इन मेलों का रूप एक प्रदर्शनी की भांति रहता है। ऐसे मेलों का मुख्य कार्य कृषि सम्बन्धी विकास होता है। ग्रामों के लोग इन मेलों मे इकट्ठा होते हैं। और एक दूसरे से मिल कर अपने दिल बहलाते हैं। संयुक्त राज्य अमरीका और कनाडा में इस प्रकार के मेलों को कृषि सम्बन्धी मेला कहा जाता है। योरुप, आस्ट्रेलिया और नई दुनियां के दूसरे देशों मे इस प्रकार के मेलों का कृषिसम्बन्धी कहा जाता है। इस प्रकार वाले तमाशे इङ्गलैंड में १८२५ ई० से हुआ करते थे। उसी समय इङ्गलैं में सर्व प्रथम कृषि सम्बन्धी और समितियों का सगठन भी हुआ था। उस समय कृषिसम्बन्धी उन्नति के मुख्य साधन केवल मेले और संघ आदि थे। इन्ही दो प्रकार के साधनों द्वारा कृषि की उन्नति होती थी। इसी समय इङ्गलैंड मे व्यवसायिक आन्दोलन भी चल रहा था। लोग व्यवसायिक उन्नति के लिये अपना ध्यान अधिक दे रहे थे। इसके बाद १७९३ई० मे कृषि परिषद् की स्थापना हुई। इङ्गलैंड मे जो कृषिसम्बन्धी मेले हुआ करते थे उनमें लङ्काशायर समाज मेला (शो) अधिक प्रसिद्ध था। इस प्रकार का मेला १७६१ ई० में लगा था। इसके बाद १७७७ई० में बाथ और पश्चिमी इङ्गलैंडमे लगा था। इसके अलावा स्थानीय मेले भी लगा करते थे। कृषि परिषद का सर्व प्रथम राष्ट्रीय मेला १८२० ई० मे लगा था। इङ्गलैंड मे स्थानीय और राष्ट्रीय दोनो प्रकार के मेले अब भी लगा करते हैं। इसी प्रकार के मेले प्राय. अन्य देशो मे भी पाये जाते हैं। योरुप के देशों के कुछ मुख्य मेलो का नाम लिया जा रहा है। राष्ट्रीय मेला इस मेला का आयोजन स्पेन के सार्वजनिक शिक्षा सम्बन्धी सघ द्वारा होता है। अन्तरराष्ट्रीय मक्खन सम्बन्धी व्यवसायिक प्रदर्शनी। इटली का व्यापार पूर्वी प्रशा कृषिसम्बन्धी प्रदर्शनी सार्वजनिक एग्रीकोल डी पेरिस।

सयुक्त राज्य, अमरीका मे भी कृषि सम्बन्धी मेलों का विकास इङ्गलैंड की भांति हुआ है। इस प्रकार की उन्नति संयुक्त राज्य अमरीका मे इङ्गलैंड से २५ वर्षों के बाद से प्रारम्भ हुई थी। यहां पर १८१९ ई० तक कृषिसम्बन्धी मेलों की अधिक उन्नति न हो सकी थी। यहां पर कृषिसम्बन्धी संघ और समितियों का सगठन १७८५ ई० मे हो गया था। उसी समय लोग यह भी सलाह दे रहे थे कि इस प्रकार के मेलो का आयोजन भी इन्हीं और समितियो द्वारा हुआ करे। सयुक्त राज्य अमरीका के वाशिंग्टन नामक नगर के लोगों ने इसके लिये अधिक अनुराग दिखलाया। इसका फल यह निकला था कि इसी राज्य मे कृषिसम्बन्धी पहला मेला लगा था। इसके बाद १८०४ ई० में तीन मेले लगे। यह मेले सयुक्तराज्य अमरीका के पेटेन्ट नामक कार्यालय के कमीशनर की सलाह के आधार पर लगाये गये थे। इस सम्बन्ध में इन्होंने यह कहा था कि चौपाये और स्थानीय पैदावारो के बेचने के लिये बाजार का दिन नियत कर दिया जावे। कुछ वर्षो के बाद कोलम्बियन कृषि सम्बन्धी समाज ने १८१० ई० में भी मेलों का लगवाना आरम्भ किया था। इन मेलो में सामान भी बेचे जाते थे। इन मेलों मे नीलाम द्वारा भी सामानों को बेचा जाता था। नीलाम प्रायः उसी समय हुआ करता था जब कि मेले का समय समाप्त हो जाता था। नीलाम द्वारा चौपाये अधिक बिकते थे। ऐसा करने से लोगों का यह विचार था कि मेला सम्बन्धी उन्नति होगी। वाशिंग्टन में जो मेले लगते हैं उनमे प्रदर्शनी भी दिखलाई जाती है। लोगो का यह अनुमान था कि कृषिसम्बन्धी मेले प्राचीन समय के मध्यकालीन मेलो के आधार पर होते थे। किन्तु ऐसा नहीं मालूम होता है। इङ्गलैंड मे कृषिसम्बन्धी मेले कृषिसम्बन्धी सामानों द्वारा ही लगाये गये थे। संयुक्त राज्य, अमरीका मे भी जो कृषिसम्बन्धी मेले होते हैं उनका आयोजन पहले बर्कशायर कृषिसम्बन्धी समाज ने किया था। इस समाज के नेता वाटसन साहब थे। इन्होंने इस प्रकार के मेले पहले १८१० ई० मे मेसाचूसेट और पिट्स फील्ड मे लगवाये थे। अमरीका में यही समाज पहला मेला सम्बन्धी संघ था। इसके बाद अमरीका में मेलों की सख्या बढ़ने लगी। मेलो की सख्या के बढ़ने का मुख्य कारण यह था कि प्रजा को इस प्रकार के मेलो से लाभ पहुचता था। उनको सामान सस्ते दामों पर आसानी से मिल जाता था। अमरीका की सरकार भी मेलों की उन्नति के लिये सहा-

बना देती है। संयुक्त राज्य, अमरीका में १८५० से १८७० ई० तक का समय कृषि वाले मेलों के लिये अधिक प्रसिद्ध था। इस काल को सुनहरा काल के नाम से कहा जाता था। इस का कारण यह था कि इसी समय मेलों की संख्या में वृद्धि हो गई। मेलों में लोग अधिक संख्या में आने लगे। इसके अलावा भिन्न-भिन्न प्रकार के मेले भी होने लगे थे। रोबिनो साहब लिखते हैं कि संयुक्त राज्य अमरीका में लगने वाले मेलों की ठीक संख्या का पता लेना कठिन हो गया था। उनका कहना है कि मेलों की संख्या अब बहुत बढ़ गई है। संयुक्त राज्य अमरीका में ३,००० से भी अधिक मेले प्रति वर्ष भिन्न-भिन्न मौसमों में लगा करते हैं। ई० एल० रिचार्डसन साहब अन्तरराष्ट्रीय मेला समाज के अध्यक्ष हैं। इसी संघ की देखरेख में संयुक्त राज्य और कनाडा दोनों देशों के मेले लगा करते हैं। इनका कहना है कि इन दोनों देशोंमें लगने वाले सभी मेलों में आने वाले लोगों की संख्या ३,९४,६८,५५० है। अन्य प्रकार वाले मेलों का आयोजन कृषि समितियों या मेला संघों द्वारा होता है। इस प्रकार भी समितियों या संघों को सरकारी सहायता भी मिलती है। ग्रामों में जो मेला लगा करते हैं उनका आयोजन ग्रामीणों ही द्वारा होता है। कृषिसम्बन्धी मेलों द्वारा लोगों को शिक्षा भी मिलती है। मेले में वे लोग भांति भांति के सामान देखते हैं, जिनसे उनके ज्ञान की वृद्धि होती है। मेलों में कृषि सम्बन्धी प्रचार भी होता है जो किसानों या ग्रामीणों के लिये लाभदायक होता है। फसलों को काटने या खेतों को बोने के सम्बन्ध में भाषण भी होते हैं कृषक विद्वान लोगों को यह बतलाते हैं। कि वे उनको किस प्रकार से फसलों को बोना और काटना चाहिये। इसी प्रकार से लोगों को आवश्यकतानुसार सामान भी मेलों में मिल जाता है। इसमें संदेह नहीं है कि ऐसे मेले अधिक लाभदायक हैं।

कृषिसम्बन्धी बीमा:—जिस प्रकार से हमारे देश में मनुष्य के जीवन का बीमा होता है। उसी प्रकार से संयुक्त राज्य अमरीका में फसलों और चौपायों का बीमा किया जाता है। प्रायः उन्हीं फसलों या चौपायों का अधिकतर बीमा होता है जिनको नष्ट होने का भय रहता है। ओले सम्बन्धी बीमा उगने वाली फसलों पर किया जाता है। यह कहा जाता है कि फसल सम्बन्धी बीमा १८वीं शताब्दी में जर्मनी में प्रारम्भ हुआ था। इसके बाद १८८० ई० में संयुक्त राज्य अमरीका में भी इसका आरंभ हुआ था। १९१० ई० तक इस विषय पर बहुत अधिक पुस्तकें लिखी गईं। १९१९ ई० में अमरीकन फसलों पर पाला (तुषार) सम्बन्धी बीमा की किश्त ३,००,००,००० थी संयुक्त राज्य अमरीका या अन्य कई देशों में पाला सम्बन्धी बीमा तीन प्रकार का होता है। इस सम्बन्ध के पहली श्रेणी वाला बीमा ज्वाइन्ट स्टाक बीमा कम्पनी द्वारा होता है। इसमें भिन्न-भिन्न प्रकार की सम्पत्ति सम्बन्धी बीमा सम्मिलित रहता है। दूसरी श्रेणी वाला बीमा पाला सम्बन्धी पारस्परिक बीमा कम्पनी द्वारा होता है। तीसरी श्रेणी वाला पाला सम्बन्धी राज्य बीमा बोर्ड द्वारा होता है। संयुक्त राज्य अमरीका में तीसरी श्रेणी वाली बीमा-कंपनी नार्थ डाकोटा, साउथ डाकोटा, मान्टाना और नेबारका में पाई जाती है। संयुक्त राज्य अमरीका में पाला सम्बन्धी बीमा की भिन्न-भिन्न दरें पाई जाती हैं। यह दरें फसलों और स्थानीय वातावरण के अनुसार बदलती रहती हैं। यह दरें २ से ५ प्रतिशत तक रहती है। योरुप तथा अन्य देशों में भी मौसमी क्षति संबंधी बीमा-कम्पनियां पाई जाती हैं। फसलों के बीमा से किसानों को भी लाभ पहुँचता है। उनकी फसलें किसी न किसी प्रकार सुरक्षित समझी जाती है। फसलों की भांति फ्लारेडा और कैलीफोर्निया राज्यों में फलों का भी बीमा किया जाता है। इसी प्रकार से लुसियाना में गन्ना का बीमा होता है। १९२० ई० में संयुक्त राज्य अमरीका में इस प्रकार की कम्पनियों को अधिक हानि उठानी पड़ी थी। इसका मुख्य कारण अनाज के भावों का गिरना था। फसल संबंध बीमा केवल कृषि संबंधी उधार की रक्षा के लिये किया जाता है। योरुप के बहुत से देशों में चौपायों आदि का भी बीमा किया जाता है। यह कार्य पारस्परिक कम्पनियों द्वारा होता है चौपायें संबंधी पारस्परिक का कार्य योरुप में गत ७०० वर्षों से होता है संयुक्त राज्य अमरीका में पशुसंबंधी बीमा को अधिक महत्व नहीं दिया जाता है। अमरीकन किसान लोग अपनी फसलों का बीमा केवल आग या तुफान की हानि संबंधी रक्षा के लिये कराते हैं। वहां पर लगभग २००० पारस्परिक कृषक आग संबंधी बीमा-कम्पनियां हैं। इनके सदस्यों की संख्या भी ३२,५०,००० है। इसमें संदेह नहीं है कि इस प्रकार वाली बीमा कम्पनियों से संयुक्त राज्य अमरीका या अन्य देशों के किसानों को अधिक लाभ पहुँचता है।

कृषिसम्बन्धी सहकारिता—कृषि सहकारी समितियों का आयोजन कृषकों की आवश्यकतानुसार किया जाता है। ऐसी समितियां कई प्रकार की होती हैं। कृषि सहकारी समितियों की स्थापना व्यापारिक दृष्टि कोण से नहीं होती है। इस प्रकार की समितियों की स्थापना केवल किसानों को व्यापार सम्बन्धी हानि से बचने के लिये होती है। यह समितियां किसानों को यह भी बतलाती हैं कि किस प्रकार की फसलों को पैदा किया जावे और कितना पैदा किया जावे। इस सम्बन्ध मे जहां तक मालूम है वह यह है कि इस प्रकार की समितियों का सगठन सबसे पहले १८५१ ई० मे स्विजरलैंड मे हुआ था। धीरे-धीरे इस प्रकार को सगठनों में वृद्धि और उन्नति होती गई। इसमें सदेह नहीं है कि इससे किसानों को बहुत लाभ पहुंचता है। अमरीका और योरुप की सहकारी समितियां एक दूसरे से भिन्न हैं। दोनों देशों मे इस प्रकार की समितियों के लिये अलग अलग नियम भी बने हैं। सयुक्त राज्य अमरीका मे व्यापार लगभग ११०० क्रय-विक्रय सम्बन्धी समितियों द्वारा होता है। इन समितियों का व्यापार २,५०,००,००,००, डालर तक पहुच चुका है। ऐसी समितिया सयुक्त राज्य अमरीका में अन्य देशों की अपेक्षा अधिक उन्नति पर है। निम्नलिखित तालिका मे उधार सम्बन्धी ब्योरा दिया गया है। इसमे सयुक्त राज्य अमरीका की उधार प्रणाली का भी पता चलता है।

लैंड बैंक द्वारा १९१८ ई० से १९३० ई० तक दिया उधार

	फेडरल लैंड बैंक			ज्वाइन्ट स्टाक लैंड बैंक			
	दिसम्बर ३१ तक जो ऋण बाकी था (१०,००,००० डालर में)	नये बन्द ऋण		३१ दिसम्बर तक दिये गये ऋण की सख्या	३१ दिसम्बर तक जो ऋण बाकी था (१०,००,००० डालर में)	नये बन्द ऋण	
		सख्या (१००० में)	धन (१०,००,००० डालर में)			सख्या (१००० में)	धन (१०,००,००० डालर में)
१९१८	१५६	—	११८	९	८	—	—
१९१९	२९४	—	—	३०	६०	—	—
१९२०	३५०	—	—	२७	७८	—	—
१९२१	४३३	—	६८	२५	८५	०.९	५
१९२२	६३९	७४.१	२२४	६३	२१९	१५.९	१३९
१९२३	८००	६०.१	१९२	७०	३९३	२७.४	१९०
१९२४	९२८	४७.२	१६६	६४	४४६	११.४	७७
१९२५	१००६	३९.९	१०७	५३	५४६	१९.७	१३१
१९२६	१०७८	३६.९	१३१	५६	६३२	१९.९	१२३
१९२७	११५६	३९.३	१४०	५०	६७०	१४.१	८२
१९२८	११९४	२७.०	१०२	४९	६५७	७.३	४१
१९२९	११९८	१७.१	६४	४९	६२७	३.१	१८
१९३०	११८८	१२.५	४८	४८	५९०	.९	५

संघ मध्यवर्ती ऋण-बैंकों द्वारा १९२३ ई० से १९३० ई० तक दिया गया उधार (१०,००,००० डालर में)

	जो ऋण ३१ दिसम्बर तक बाकी था।		३१ दिसम्बर तक कटौती जो बाकी था।		
	जोड़	रुई पर दिया गया उधार	जोड़	जो ऋण कृषि संघ वद्ध उधार समितियों को दिया गया	जो ऋण चौपाये सम्बन्ध उधार कम्पनियों को दिया गया
१९२३	३३.६	१६.३	९.१	४.८	३.८
१९२४	४३.५	१३.६	१८८	९८	४.०
१९२५	५३.८	२३.४	२६.३	१५.३	१०.४
१९२६	५२.७	२५.७	३६ ७	२३.८	१५.६
१९२७	३२.०	१४.९	४३ ९	२२.५	२१.२
१९२८	३६.२	२३.१	४५.१	२१.०	२३.८
१९२९	२६.१	१२.०	५०.०	२१.०	२६.९
१९३०	६४.३	३९.१	६५ .	३०.४	३२.४

लगान सम्बन्धी खेत:—अपने खेतों के लिये लगान देना पड़ता है। लगान की यह प्रथा विश्व के प्राय: सभी देशों में पाई जाती है। भूमि के अनुसार खेतों का लगान कम या अधिक भी हुआ करता है। इस लगान को किसान रुपयों के रूप में भूमि मालिकों को देता है। संयुक्त राज्य अमरीका में १८८० ई० में लगान द्वारा जोते जाने वाले खेतों की संख्या कुल संख्या की २५.६ प्रतिशत थी। १८८० ई० में यह संख्या बढ़कर २८.४ प्रतिशत हो गई। इसके बाद १९०० ई० में इस प्रकार के खेतों की संख्या २८.४ प्रतिशत से बढ़कर ३५.३ प्रतिशत तक हो गई। इसमें सन्देह नहीं कि ऐसे खेतों की संख्या में बराबर वृद्धि होती रही। इसके बाद संयुक्त राज्य अमरीका में इस प्रकार के खेतों की संख्या १९२० ई० में बढ़ कर ३७ प्रतिशत हो गई। १९२५ ई० में लगान वाले खेती संख्या बढ़ कर ३८.६ प्रतिशत तक हो गई। १९२० से १९२५ ई० तक बढ़े हुये खेती की संख्या ८००० थी। फिर इसके बाद लगान सम्बन्धी खेतों की संख्या में १९२५ ई० से १९३० ई० तक अधिक वृद्धि हो गई। इस समय के बढ़े हुये खेतों की संख्या २,०१,५५७ या ८.२ प्रतिशत रही। १९२५ ई० ऐसे खेतों की संख्या २४,६२,२०८ थी। १९३० ई० में यह संख्या बढ़ कर २६,६४,३६५ हो गई। अमरीकन किसान लोग लगान सम्बन्धी खेतों को अधिक पसन्द करते थे। संयुक्त राज्य अमरीका के पहाड़ी क्षेत्रों में भी लगान वाले खेतों की संख्या में वृद्धि

१९२० ई० में कर-सम्बन्धी खेतों की संख्या

भूमि का विवरण जो किसानों द्वारा कर पर जोती जाती है।	संयुक्त राज्य अमरीका	उत्तरी भाग	दक्षिणी भाग	पश्चिमी भाग
समस्त आसामियों की संख्या	२४,५४,८०४	७,७९,२१८	१५,९१,१२१	३,८४,४६५
साझे वाले आसामियों खेती और करने वालों की सख्या	१६,७८,८१२	४,२२,८५९	१२,१२,३१५	४३,६३८
साझीदार मुख्य आसामियों और खेती करने वालों की सख्या	११,१७,७२१	—	६,५१,२२४	—
	५,६१,०९१	—	५,६१,०९१	—
रुपये में लगान देने वालों की संख्या	१,२७,८२८	१,०३,७५१	२२,६७२	२,०७५
स्थायी तथा रुपये में कर देने वालों की संख्या	५,८५,००५	२,२५,४६३	३,२४,१८४	३५,३५८
रुपये में कर देने वालों की संख्या	४,८०,००९	—	२,१९,१८८	—
स्थायी रूप में कर देने वालों की संख्या	१,०४,९९६	—	१,०४,९९६	—
जिस भूमि का स्पष्टी करण नहीं हुआ है	६३,१६५	२७,८२१	३१,९५०	३,३९४

विश्व की व्यवसायिक फसलों में फ्लैक्स, हेम्प और जूट भी अधिक प्रसिद्ध हैं। इन तीनों फसलों की गणना रेशा दार पौधों में होती है। जूट का स्थान भारतवर्ष माना जाता है। लगभग १०० वर्ष पूर्व जूट भारतवर्ष से योरुप और अमरीका को गया था। जूट की उपज इण्डोचीन, जापान, फारमूसा, स्याम और दक्षिणी चीन में भी होती है। विश्व के जूट की उपज का ९९ प्रतिशत भाग भारतवर्ष ही में पैदा होता है। हेम्प का पौधा सबसे पहले मध्य या पश्चिमी एशिया में पाया गया था। जङ्गली हेम्प अब भी कास्पियन सागर के पास, उत्तरी-पश्चिमी चीन में, अल्टाई पहाड़ों पर और यूराल और वाल्गा नदियों के निचले भागों में पाया जाता है। अब इसकी उपज प्राय: विश्व के प्रत्येक देश में होती है। फ्लैक्स से लिनन कपड़ा बनाया जाता है। इसकी भी उपज विश्व के हर एक देश में होती है। फ्लैक्स और हेम्प की उपज का ब्योरा निम्नलिखित तालिका में दिया गया है।

होती रही। संयुक्त राज्य अमरीका के पहाड़ी भागों में १८८० ई० में इस प्रकार के खेतों की संख्या ७.४ प्रतिशत थी। १९२५ ई० में यह संख्या बढ़ कर २०.२ प्रतिशत हो गई। १९३० ई०,में यह संख्या बढ़ कर २४.४ प्रतिशत हो गई। इस प्रकार के खेतों का विवरण निम्नलिखित तालिका में दिया गया है।

१८८० ई० से १९३० ई० तक संयुक्त राज्य अमरीका के लगान वाले खेतों की संख्या प्रतिशत में जो किसानों द्वारा जोता जाता है।

भौगोलिक भाग	१९३०	१९२५	१९२०	१९१०	१९००	१८९०	१८८०
संयुक्त राज्य अमरीका	४२.४	३८.६	३८.१	३७.०	३५.३	२८ ४	२५.६
न्यू इंगलैंड	६.३.	५.६	७ ६	८.३	९ ४	९.३	८.५
उत्तरी-पूर्वी मध्यवर्ती भाग	२७.३	२६.०	२८.१	२७.०	२६.३	२२.८	२०.५
उत्तरी-पश्चिमी मध्यवर्ती भाग	३९.९	३७.८	३४.८	३०.९	२९ ६	२४.०	२०.५
दक्षिणी-एटलान्टिक	४८.१	४४.५	४६.८	४५.९	४४.२	३८.५	३६.१
दक्षिणी पूर्वी मध्यवर्ती भाग	५५.९	५०३	४९.७	५०७	४८.१	३८.३	३६ ८
दक्षिणी-पश्चिमी मध्यवर्ती भाग	६२.३	५९.२	५२.९	५२.८	४६.१	३४.६	३५.२
मध्य अटलान्टिक	१४.७	१५.८	.२.७	२२.३	२५.३	२२.१	१९ ८
पर्वतीय	२४.४	२२.२	१५.४	१०.७	.१२.१	७.१	५.४
पैसिफिक (प्रशान्तीय)	१७.७	१५.६	२०.१	१७.२	१९.७	१४.७	१६.८
उत्तरी	३०.०	२८.०	२८.२	२६.५	२६.२	२२.१	१९.८
दक्षिणी	५५.५	५१.१	४९.६	४८.६	४७.०	३८.४	३६.८
पश्चिमी	२०.९	१८.७	१७.७	१४.०	१६.६	१८.१	१८.१४.०

, १९२० ई० में कर-सम्बन्धी खेतों की संख्या

भूमि का विवरण जो किसानों द्वारा कर पर जोती जोती है।	संयुक्त राज्य अमरीका	उत्तरी भाग	दक्षिणी भाग	पश्चिमी भाग
समस्त आसामियों की संख्या	२४,५४,८०४	७,७९,२१८	१५,९१,१२१	३,८४,४६५
साझी वाले आसामियों खेती और करने वालों की संख्या	१६,७८,८१२	४,२२,८५९	१२,१२,३१५	४३,६३८
साझीदार मुख्य आसामियों और खेती करने वालों की संख्या	११,१७,५२१	—	६,५१,२२४	—
	५,६१,०९१	—	५,६१,०९१	—
रुपये में लगान देने वालों की संख्या	१,२७,८२८	१,०३,७५	२२,६७२	२,०७५
स्थायी तथा रुपये में कर देने वालों की संख्या	५,८५,००५	२,२५,४६३	३,२४,१८४	३५,३५८
रुपये में कर देने वालों की संख्या	४,८०,००९	—	२,१९,१८८	—
स्थायी रूप मे कर देने वालों की संख्या	१,०४,९९६	—	१,०४,९९६	—
जिस भूमि का स्पष्टी करण नहीं हुआ है	६३,१६५	२७,८२१	३१,९५०	३,३९४

विश्व की व्यवसायिक फसलों में फ्लैक्स, हेम्प और जूट भी अधिक प्रसिद्ध हैं। इन तीनों फसलों की गणना रेशा दार पौधों में होती है। जूट का स्थान भारतवर्ष माना जाता है। लगभग १०० वर्ष पूर्व जूट भारतवर्ष से योरुप और अमरीका को गया था। जूट की उपज इण्डोचीन, जापान, फारमूसा, स्याम और दक्षिणी चीन में भी होती है। विश्व के जूट की उपज का ९९ प्रतिशत भाग भारतवर्ष ही में पैदा होता है। हेम्प का पौधा सबसे पहले मध्य या पश्चिमी एशिया में पाया गया था। जङ्गली हेम्प अब भी कास्पियन सागर के पास, उत्तरी-पश्चिमी चीन में, अल्टाई पहाड़ों पर और यूराल और वाल्गा नदियों के निचले भागों में पाया जाता है। अब इसकी उपज प्राय: विश्व के प्रत्येक देश में होती है। फ्लैक्स से लिनन कपड़ा बनाया जाता है। इसकी भी उपज विश्व के हर एक देश में होती है। फ्लैक्स और हेम्प की उपज का ब्योरा निम्नलिखित तालिका में दिया गया है।

विश्व में फ्लैक्स की उपज

(१००० कुइन्टाल ‡ में)

देश का नाम	वार्षिक औसत उपज १९०९-१३	वार्षिक औसत उपज १९२५-२९
बेल्जियम	२३५	२६३
फ्रांस	१८४	२३७
आयरलैंड	७९७	७२
लैटविया	३०२	२२
लिथुयेनिया	२४१	३६४
पौलैंड	४२०	५६०
सोवियत रूस	५१३०	३४९५
जापान	२३	३०
समस्त योरुप	७२३६	५७२६
समस्त एशिया	२५	३७
अफ्रीका	३८	११
विश्व की उपज का योग	६४१९	५६५५

विश्व में हेम्प की उपज

(१००० कुइन्टाल में)

देश का नाम	वार्षिक औसत उपज १९०९-१३	वार्षिक औसत उपज १९२५-२९
फ्रांस	११३	४८
हंगारी	११०	८५
इटली	८२५	१००२
यूगोस्लेविया	७४	८८८
पौलैंड	२०५	१९३
रूमानिया	२०	१६७
स्पेन	११८	९९
सोवियत रूस	३१९०	३२९९
जापान	९४	८७
कोरिया	७५	२०८
समस्त योरुप	५३२२	५२५२
समस्त एशिया	१६९	२९५
विश्व की उपज का योग	५४१६	५५७३

‡ एक क्विन्टाल तौल में १०० पौंड अथवा लगभग सवा मन के बराबर होता है।

गेहूँ
चाँदी
अ फ्री का

अफ्रीका-उपज
यो रो प
ए शि या
लि बि या
अ र ब
स हा रा
ट्यूनिस

अमरीका उपज
कोयला
सोना
पेट्रोलियम
चाँदी
कपास
कृषि
अंग्रेजी मील
मछली पकड़ना
नमदा
अलास्का

संयुक्त राष्ट्र
न्यूआर्लियन्स
मेक्सिको
दक्षिणी अमरीका
मध्य अमरीका

दक्षिण अमरीका उपज
ब्राज़ील
केशर
चाँदी
रबर
ढोर
पीतल
पेट्रोलियम
सोना

प्राकृतिक कृषि प्रदेश

प्राकृतिक कृषि प्रदेश

पेशे
कृषि

कृषि
बिजली

प्रधान नहरें, समुद्र के भीतर से सुखाये हुवे प्रदेश, कृषि और चरागाह

गेहूँ
सन
जौ
अंगूर
शहतूत
कृषि और प्राकृतिक प्रदेश

गेहूँ
मक्का
गन्ना
चावल
कृषि और जल-
वायु सम्बन्धी
प्रदेश